विज्ञान

(जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान सम्मिलित है)

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

भाग ४१

मेषार्क—कन्यार्क, संवत् १९९२

प्रकाशक

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

आयुर्वेद विज्ञान

उद्भिज्ज-विज्ञान

औद्योगिक

गणित-ज्योतिष

भौतिक विज्ञान

विविध

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

साहित्य विश्लेषण

सहयोगी विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४१ } प्रयाग, मेषार्क, संवत् १९९२। अप्रैल, सन् १९३५ ई० { संख्या १

मंगलाचरण

[ले०—स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक]

जय जय वैज्ञानिक - भविष्य - भूषित भुवि भारत
सब-विधि-सुविधा-भरित, विविध विध भुवि-सेवा-रत
त्यों जगके सब सुजन सुखद - जीवन - पथ - नेता
वैज्ञानिक - साधन - सुयोग - प्रद उन्नत - चेता

त्यों अन्य अन्य भू-मातके
धीर वीर गंभीर सुत
सब जीओ जयी जुगान जुग
जगत-अंत लों, जगत-नुत ॥६॥५॥

विज्ञान और पुराणका समन्वय

सृष्टि-क्रम-विकास

(लेखक—रामदास गौड़)

युग-परिमाणके सम्बन्धमें विद्वानोंमें मतभेद
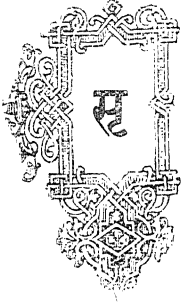
ष्टि-क्रमके सम्बन्धमें सृष्टि-विज्ञानियों-का जहाँ प्रायः मतैक्य है वहाँ उसके युग-परिमाण और कालके सम्बन्धमें अबतक विचारोंका विकास होता चला आया है। ईसाई तो सृष्टिको कुल छः हजार बरसकी समझते थे। मिस्र और बाबुल देशकी खुदाइयों और इतिहासके परिशीलनसे यह अवधि बढ़ गयी। भूतत्त्व-वादियोंने इस कालावधिको लाखोंकी संख्यामें गिनना शुरू किया। भौतिक-विज्ञानियोंने धरतीके सुकड़ने, तापके निकलने और बढ़ने, समुद्रमें नमकके घुलने, धरतीके विविध स्तरोंके बनने आदिका लेखा लगाकर इसे और बढ़ाया। उनके सिरमौर लार्ड केल्विनने दो करोड़ बरस धरतीकी आयु बतायी। उनके बाद रश्मि-विकीरक तेजोमय धातुओंका पता लगा जिनसे पृथ्वीकी आयु अत्यन्त बढ़ गयी। अब तो यह संभावना समझी जाती है कि धरती शायद अधिकाधिक गरम होती जाती होगी।

रेलेका मत और पुराण

ब्रिटिश असोसियेशनके संवत् १९७८ वि०के व्याख्यानमें प्रो० रेलेने कहा कि इस धरतीपर आजसे एक अरब बरस पहलेसे जीवनका होना हमारे ज्ञानके विकासने अधिक संभाव्य बना दिया है और पृथ्वीका बनना तो इसके दो तीन या चार गुने अधिक समयकी बात जान पड़ती है। निदान हिन्दुओंके इस पौराणिक कथनसे कि सृष्टिके आरम्भ हुए लगभग दो अरब बरस हुए हैं, रेलेकी इस अटकलका पूरा समन्वय हो जाता है।

अहर्गण क्या है ?

हर हिन्दू पंचांगपर अहर्गण दिये हुए होते हैं। सृष्टि-के आदिसे लेकर आजतक जितने दिन बीत चुके हैं उनकी पूरी संख्याका ही नाम "अहर्गण" है। अहर्गणके हिसाबसे १ अरब ९८ करोड़से कुछ अधिक वर्ष आते हैं। अतः हिन्दू भी प्राचीन कालसे वही सृष्ट्यब्द बतलाता आया है जिसका अनुमान प्रोफेसर रेले करते हैं।

तीन बड़े दीर्घकाल

सृष्टि विज्ञानियोंने सृष्टिके विकासके अनेक युगोंकी भी कल्पना की है। उनकी कल्पना यह है कि सौर ब्रह्मांडकी स्थापनासे लेकर महाद्वीपों और महासागरोंकी तलियोंके निर्माण तकका काल अत्यन्त दीर्घ रहा होगा। दूसरा अन्तर आदिम जीवन युगान्तर है। तीसरा अन्तर बिना रीढ़के प्राणियोंका आरम्भ है। ये तीन अन्तर बड़े बड़े दीर्घकाल हैं।

तीन महायुग

इनके बाद तीन महायुग आते हैं, जिनमें सामुद्रिक प्राणियोंसे लेकर मानव-प्राणियोंके आरम्भतककी सृष्टि आती है।

मानव सभ्यताका युग

सातवां युग वही मानव-सभ्यताका युग है जिसमें हम मौजूद हैं।

सात मन्वन्तर

इस प्रकार वैज्ञानिक भी उसी तरह सात अन्तरोंकी कल्पना करता है जैसे एक कल्पमें हिन्दू पौराणिक सात मन्वन्तरोंकी कल्पना करता है।

वैज्ञानिक और हिन्दू सृष्टि-काल-विभागोंमें अन्तर

वैज्ञानिक सृष्टि-काल-विभाग समान नहीं है, परन्तु हिन्दू-सृष्टि-काल-विभाग समान है। वैज्ञानिक रेलेका कहना है कि जीवनका आरंभ हुए एक अरब बरसके लगभग बीता होगा और भूपिंडकी रचना कई अरब बरस पहलेसे आरंभ हुई होगी, तब यह धरती जीवनके उदयके लिये उपयुक्त हुई होगी। सृष्टिके आरम्भसे अन्ततक पौराणिक चार अरब बत्तीस करोड़ बरसोंका समय बतलाता है परन्तु

वर्तमान सृष्टिसे अबतकका काल, अहर्गणोंके हिसाबसे एक अरब पौने निन्नानवे बरसोंका हो चुका है।

अहर्गण और उसकी सम्भवता

अहर्गण सावन दिनोंकी गणना है और यह तभीसे संभव है जब लगभग चौबीस घंटोंका अहोरात्र होने लगा था। यह उसी समय संभव है जब धरतीका ऊपरी चिप्पड़ सारे धरातलपर समानरूपसे दृढ़ हो गया और पृथ्वीका घूमना नियमित और इकट्ठा एक पिंडकी तरह होने लगा। इस समय सागर जलसे भर गया होगा परन्तु तप्त रहा होगा। जीवनका आरम्भ इस घटनाके बहुत बाद हुआ होगा।

रेलेके मतसे पुराणके समन्वयका फल

यदि रेलेके कथनका समन्वय पुराणके साथ किया जाय तो हम कह सकते हैं कि जीवनका आरंभ धरतीपर चौबीस घंटेके अहोरात्र होने लगनेके तीस करोड़ बरसोंके भीतर ही भीतर हुआ होगा जब स्वायंभुव मन्वन्तरकी समाप्ति होती है। इस तरह आदिम जीव लगभग पौने दो अरब बरस हुए प्रकट हो चुका होगा।

पहले मन्वन्तरका अन्तकाल

आदिम जीवोंसे बहुत धीरे-धीरे बेरीढ़वाले बड़े प्राणियों-का विकास हुआ होगा। समुद्र ही पहले-पहल इन प्राणियोंसे बसा होगा। जलचरोंमें बेरीढ़वालोंसे धीरे-धीरे रीढ़वाली मछलियाँ बनी होंगी। यह समय पहले मन्वन्तर-का अन्त होगा।

प्रलयकाल क्या है? उस कालकी अवस्था

प्रत्येक मन्वन्तरके अन्त और आदिका समय प्रलयका होना समझा जाता है। भूकम्प, जलप्लावन, अग्निवर्षा, हिमवर्षा बहुत कालतक चलते रहनेसे धरातलके रहने-वाले सभी प्राणी समाप्त हो जाते हैं। गहरे समुद्रोंमें ही शायद कुछ जीव बचे रह जाते होंगे, जिनमेंसे अनेक छिछले अंशोंसे भागकर अपने जीवनकी रक्षा करनेवाले प्राणी होंगे। इनमेंसे भी वे ही गहरे समुद्रोंमें भी बच सकते होंगे जो अपनेसे बड़े प्राणियोंके द्वारा उदरस्थ न कर लिये गये होंगे।

आदिम जीव

इस तरह अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी ही बच रहे होंगे जिन्हें हम प्राथमिक जीव कह सकते हैं। ये आदि-जीवकी अपेक्षा अधिक विकसित होंगे।

प्रकृतिका पैजावा

परन्तु अब ठीक-ठीक वही ईंटें नहीं बच रही हैं जिनपर पहली इमारतकी बुनियाद रखी गयी थी। अब प्रकृतिके पैजावेमें फिरसे नयी ईंटें पकेंगी जिनसे कि प्रलयकालके विनाशकी कमी पूरी हो सकेगी। ठीक मार्गसे काम न हो सकनेके कारण फिर समय अधिक लगेगा। परन्तु जब एक बार पहलेकेसे बेरीढ़ और रीढ़वाले प्राणी बन गये तो विकासकी गाड़ी कुछ अधिक वेगसे चलने लगती होगी।

दूसरा मन्वन्तर

लगभग बीस करोड़ बरसोंमें प्रलयकी संधि, प्राथमिक जीवोंका विकास, बेरीढ़ोंका विकास, रीढ़वालोंका विकास, जल वनस्पतियोंका उद्भव और विकास, निदान सारे जल-समुद्रका विविध प्राणियोंसे बसकर फिरसे रँजापुँजा हो जाना बहुत संभव है। इसे हम दूसरा मन्वन्तर कहेंगे।

वेदोद्धार। पौराणिक मत्स्यावतार

जब रीढ़वालों और बेरीढ़ोंका पूर्ण विकास हो लेता है तब फिर पुराणोंका मत्स्यावतार होता है। यह वह मत्स्या-वतार नहीं है जो प्रलयकालमें होता है। यह वह है जो शंखासुरको मारकर वेदोद्धार करता है। रीढ़वाले प्राणी बेरीढ़वालोंको परास्त करके विकासरूपी वेद-मार्गकी स्थापना करते हैं। इसी अवतारसे विकासकी रुकी हुई गाड़ी आगे बढ़ती है।

उभयचर प्राणियोंके विकासकी अन्तिम सीमा

प्रलयकी लम्बी संधिके अन्तमें जब स्थलके फिरसे दर्शन होते हैं, छिछले जलकी आबादी रेंगकर धीरे-धीरे स्थल पर आती है और उभयचरों और स्थलचरोंका इस बार साथ ही विकास शुरू होता है। कछुए, ह्वेल आदि उभयचरोंमें और कीड़े-मकोड़े आदि पतली कमरवाले एवं रेंगनेवाले साँप और छिपकली आदि स्थलचर प्राणियों-तकका विकास होनेमें चार करोड़ बरस और लग जाते हैं। कूर्मावतार इसी समयमें होता है। परन्तु यह वह कूर्मा-वतार नहीं है, जिसकी पीठपर मन्दराचलको टिकाकर देवासुरोंने समुद्रका मंथन किया था। वह तो चन्द्रमाके

पृथ्वीसे अलग होनेके समयका रूपक है, जब आठ दस ही घंटोंका अहोरात्र होता था। इस कूर्मावतारने मुख्य चरित चाहे जो किये हों, परन्तु उभयचर प्राणियोंके विकासकी यह अन्तिम सीमा थी।

विकासके दो मार्ग, स्थल-और व्योमचारी

धरती पर रेंगनेवाले छोटे जीवोंका अब दो दिशाओंमें विकास हुआ। प्रकृतिने कीटोंको सपक्ष करके पतंगोंकी उत्पत्ति कर ली थी और पंखोंसे वायु-समुद्रमें कैसे जीवन बिताया जा सकता है सीख लिया था। रेंगनेवालोंको पहले पेटके बल चलाया और यह परीक्षा की कि मुख दोनों ओर रखा जाय कि एक ओर। फिर टाँगें निकालीं फिर अनेक टांगें बनाकर देखा, फिर चार चार टांगें रखीं, लम्बाई ऊँचाई बढ़ायी। फिर विकासके दो मार्ग कर दिये—एक स्थलचारी, दूसरा व्योमचारी।

वनस्पति-विकास

सामुद्रिक विकासमें शैवाल तक वनस्पतियोंका विकास, हो पाया था, परन्तु स्थल बिना वनस्पति—विकासकी गाड़ी भी रुकी हुई थी। जब स्थलका उभार हुआ, तब घास उगने लगी और धीरे-धीरे उसका भी विकास हुआ। पहले फूल नहीं होते थे। वनस्पति-जीवनके प्रसारका यह साधन स्थलपर ही तब विकसित हुआ जब उसके फैलानेवाले सहायक जीव कीट-पतंगोंका विकास हुआ। धीरे-धीरे पौधे बढ़े। फूल और फल होने लगे। ऊँचाई बढ़ने लगी। स्थल-जीवनके दो करोड़ बरसोंमें ही बहुत ऊँचे-ऊँचे आकाशसे बातें करनेवाले पेड़ निकले। उस समय दो-दो सौ फुटकी ऊँचाईके अत्यन्त घने जंगल थे जो भांति-भांतिके छोटे बड़े जीवोंसे भरे थे।

उरग, व्याल और दिग्गजों आदिका अवतार

साथ ही उरग भी इतने ऊँचे कदके होने लगे जो इन ऊँचे पेड़ोंकी पत्तियाँ अपनी लम्बी गर्दन बढ़ाकर आसानीसे चुग लेते थे। महोरगों और महाव्यालोंके इसी युगमें दिग्गजोंका और वासुकि आदि महानागोंका अवतार हुआ। नाग, व्याल, महोरग, दिग्गज आदि केवल पर्य्यायवाची शब्द ही नहीं हैं, बल्कि एक ही जातिके विविध विशाल-काय प्राणियोंके नाम हैं।

उरगोंकी दो शाखाएँ

इनके विकासकालमें ही छोटे उरगोंमें दो शाखायें फूटीं। एकसे तो चार पाँववाले स्थलचारी पशु विविध आकारों और प्रकारोंके हुए। दूसरीसे पक्षियोंका विकास हुआ। पीछेकी दोनों टांगें तो बनी रहीं परन्तु आगेकी दोनों टांगोंने डैनेका रूप धारण कर लिया और पर जमे। प्रकृतिने कीटों-पतंगोंके पाँव अलग रखे थे और पर भी निकाले थे। उस परीक्षापर विकास करके उसने पावोंमें किफायत की और डैनोंपर पर लगाकर उड़नेकी क्रियामें सुभीता कर दिया। स्थलचारियोंकी पूँछ गतिमें विशेष सहायक न थी। परन्तु पक्षियोंकी पूछ बड़े कामकी चीज़ बनी।

गरुड़ और हंसके अवतार

पक्षियोंका विकास बहुत दूरतक हुआ। इसी जातिमें गरुड़ और हंसके अवतार हुए।

व्यालों और पक्षियोंका विकासकाल

निदान, व्यालों और पक्षियोंका विकास प्रायः एक-ही युगमें हुआ। यह सब साढ़े चार करोड़ बरसोंमें हुआ होगा।

अंडज

स्थल-चारियोंमें उरग और उरगोंसे विकसित पक्षी शाखावाले प्राणी अंडज होते आये।

पिंडज

परन्तु स्थल-चारियोंका विकास भिन्न ढंगपर हुआ। माता अपने भ्रूणका विकास अण्डोंके रूपमें अपने शरीरसे अलग अब नहीं करती। अब वह अपने भ्रूणको गर्भाशयके भीतर रखकर पूरा-पूरा विकास करने देती है। तब उसे बाहर निकालती है। बाहर आनेपर भी अपने स्तनके दूधसे कुछ कालतक बच्चेका पालन करती है। यही पिंडज हुए।

वाराह अवतार-काल

पिंडजोंके विकासतकका आरंभकाल ऊपर बतलाये हुए साढ़े चार करोड़ बरसोंके अन्तका काल समझना चाहिये। इनकी अन्तिम सीमाको सूचित करनेवाली पिंडज जातियोंमें महावाराह शरीरवाले प्राणियोंको समझना चाहिये। वाराहावतारका यही समय होगा।

वैज्ञानिक मत, नृसिंहावतारका रहस्य

अगले डेढ़ करोड़ बरसोंमें पिंडजोंका विकास और भी वेगसे हुआ होगा। इसी युगके मध्यकालमें प्रकृतिने चाहा कि बनके सबसे बड़े बलवान पिंडज सिंहसे मनुष्यका विकास किया जाय। इसी कोशिशमें नृसिंह जातिके प्राणियोंकी रचना हुई। इस भयंकर जातिका प्रतिनिधित्व करनेवाले भगवान नृसिंहका अवतार इसी बातकी सूचना देता है।

वामन अवतार

फिर भी प्रकृतिका यह प्रयोग सफल नहीं हुआ। उसने और भी प्रयोग किये। उसने पहले-पहल मानव-प्राणियोंके निर्माणमें हाथ लगाकर पहला मानवाकार प्राणी जो बनाया वह बहुत छोटा था, वानरके आकारसे मिलता-जुलता था। परन्तु इसमें भी सफलता न मिली। पुरुषने वामनावतार धारण करके इस प्राणीके भी भावी विकासका रूपक दिखाया। यह भी डेढ़ करोड़ बरसोंका काल जब समाप्तिपर आया और दूसरे स्वारोचिष मन्वन्तरकी अवधि भी पूरी हुई तो दूसरा प्रलय आरंभ हुआ।

दूसरा प्रलयकाल

यह दूसरा प्रलय संभवतः अग्निकी प्रचण्ड ज्वालाओंके कारण हुआ होगा जो बाहरके सूर्यसे और धरतीके गर्भसे निकली होंगी। इनसे थोड़े ही कालमें इस धरतीपरका सर्वनाश हो गया होगा और प्रकृतिके विकासका रथ फिर लौटकर वहीं खड़ा कर दिया गया होगा जहाँ पहले मन्वन्तरके आरम्भमें था। इस प्रकार सृष्टिके साठ करोड़ वर्ष बीत गये होंगे।

दूसरे प्रलयकालके बाद सृष्टिका आरंभ

यह प्रलयकाल बहुत समयतक रहकर बड़वानलके शान्त होनेपर समुद्रके भीतर ही नये जीवनकी बुनियाद फिरसे रखी गयी, फिर और सृष्टि उसी प्रकारसे चली। जिन कामोंका अनुभवकी कसौटीपर कसकर प्रकृतिने अभ्यास कर लिया था उन्हें फिरसे कर डालनेमें उसे पहलेकी अपेक्षा कम ही समय लगा।

जीवोंके विकास-क्रमका काल

इस बार एक करोड़ वर्षके भीतर ही प्रलयकालकी अवधि बीत गयी और प्राथमिक जीवोंका शीघ्र ही विकास हुआ। पहले आठ करोड़ बरसोंके भीतर ही जल-चरोंका विकास हुआ और वनस्पतियोंका जलमें आरम्भ हुआ और इस कालके बाद स्थलके उभरते ही घास और बड़े पौधे प्रकट हुए। स्थलचरों, उभयचरों, कीटों, पतंगों, फूलवाले पौधों और बड़े-बड़े कीटोंका आरम्भ हुआ। फिर सात करोड़ बरसोंके बीच ही इनका विकास हुआ। पहले सात करोड़ बरसोंमें मत्स्यावतार, दूसरे सात करोड़ बरसोंमें कूर्मावतार हुआ। तीसरे सात करोड़ बरसों में महोरग, पक्षी आदि पिंडज तथा फूलवाले पौधे और बड़े-बड़े कीड़े हुए और बढ़े। इसी कालमें वासुकी, गरुड़ और हंसावतार हुए।

पिण्डजोंका इस बारका विकास-क्रम

इसके बादके चार करोड़ बरसोंमें पिंडजोंका विकास हुआ और इस बार विशालकाय विचित्र मानवाकार दैत्य, दानव, यक्ष, गंधर्व, वेताल आदि उपजे और इनका विकास हुआ। यही मानवाकार प्राणी उस समय जीवन-विकासके शिखरपर समझे गये। इन्हीं आठ करोड़ बरसोंमें क्रमसे वराह, नृसिंह, वामन और परशुरामतकके अवतार हुए।

उत्तम मन्वन्तरका अन्त और प्रलय

इसी अवधि या युगके अन्तमें परशुरामके द्वारा संहारके अनन्तर शायद उत्तम मन्वन्तरका अन्त और अन्तर-प्रलय हुआ, जिसकी अवधि एक करोड़ या पचास लाख बरसोंकी होगी परन्तु यह शायद जल-हिम-प्रलय हुआ होगा।

तामस मन्वन्तरमें जीवोंका विकास-क्रम

तामस मन्वन्तरके आरम्भमें जब हिमाच्छद गलकर जल बन गया और जलसे धीरे-धीरे फिर स्थल, पहाड़ आदि निकले तो जलचरोंका विकास जल्दी हुआ। स्थलचारी उभयचारी भी शीघ्र ही हुए। कीटों और उरगोंका पहलेकी अपेक्षा अधिक विस्तार हुआ। पिंडज प्राणियोंके प्रकार बहुत बढ़ गये। प्रत्येक जातिका विस्तार विशाल हुआ। क्रम वही पहले मन्वन्तरोंका था। भेद विस्तारमें ही था। अवतार भी क्रमसे वही हुए। आदर्शोंकी स्थापना भी उसी प्रकार होती रही। इस बार विविध जातियोंके राक्षस और असंख्य प्रकारके लांगूली, वानर आदि प्राणी उत्पन्न हुए। इनके प्रकार बढ़े, इनका विकास हुआ। इन्हींकी एक शाखामें वे मानवाकार प्राणी हुए जो आगे चलकर बढ़े और तामस मन्वन्तरके अन्तमें जिनसे उस समयके राक्षसोंसे घोर संघर्ष हुआ।

तामस मन्वन्तरका अन्त और दूसरा हिम-प्रलय

इसी मन्वन्तरके अन्तकी किसी चतुर्युगीमें परशुराम और फिर रामावतार हुआ जिसने आदर्श पुरुषोत्तमकी स्थापना की। ये अवतार प्रत्येक मन्वन्तरमें होते आये। संभवतः इसी रामावतारके अन्तमें या कुछ काल पीछे तामसमन्वन्तरका अन्त हुआ और दूसरा हिम-प्रलय हुआ।

रैवत मन्वन्तर और महा हिम-प्रलय

इस प्रकार नब्बे करोड़ बरसोंके बाद रैवतमन्वन्तरका आरम्भ हुआ। इस मन्वन्तरमें भी थोड़े बहुत भेद और विस्तारके अन्तरके साथ सृष्टिका वही क्रम चला जो पिछले मन्वन्तरोंमें था। इसमें और चाक्षुप मन्वन्तरोंमें क्रमशः राक्षसों और वानरोंका अधिकाधिक विकास हुआ और दोनों आदर्श पुरुषोत्तम रामावतारतक सभी सृष्टि विधायक और संरक्षणसहायक अवतार हुए। इन दोनों मन्वन्तरोंके अन्तमें महा हिम-प्रलय हुआ जो दीर्घकालतक रहा।

हिम-प्रलय-काल

हिम-प्रलयोंमें जो दीर्घ कालतक जारी रहते होंगे धीरे-धीरे सृष्टिका नाश होता होगा। कई लाख बरसोंमें कहीं जाकर वह नाश पूर्णताको पहुँचा होगा।

चाक्षुष मन्वतरका प्रलयकाल और मत्स्यावतार

चाक्षुप मन्वन्तरके अन्तमें जलप्लावनद्वारा प्रलय हुआ। यह प्रलय पर्वतशिखरोंतकको निमग्न करनेवाला हुआ। इसी प्रलयके प्रारम्भमें मनुकी सहायता करनेवाला मत्स्यावतार हुआ जो वैवस्वत मन्वन्तरके आरम्भतक विद्यमान था। इस मन्वन्तरका आरम्भ कल्प-सृष्टिके आरम्भसे एक अरब अस्सी करोड़ वर्ष बाद हुआ।

सातवें मन्वन्तरका विकास-क्रम

सृष्टिकर्त्री प्रकृतिके पहले अनुभवोंके कारण इस सातवें मन्वन्तरमें सारा विकास बड़ी जल्दी-जल्दी हुआ। पहले तो चौदह करोड़ बरसोंका काम अर्थात् जलचरोंके पूर्ण विकासतक तो प्रलयमें ही बचा रह गया। मन्वन्तरके आरम्भसे स्थलपर वनस्पति, स्थलचर और उभयचरोंके विकासका क्रम चला। इसीलिये इस बार सत्रह करोड़ बरसोंसे ही मानव-विकास-तकका पूर्ण क्रम चला आया। साथ ही राक्षस और उच्च प्रकारके वानरोंका, रामावतारके समयमें जिनका प्रबल संघर्ष देखा गया, एकदम लोप हो गया। इस मन्वन्तरमें भी किसी पिछली चतुर्युगीमें, जिसके कई लाख बरस हो चुके हैं, रामावतारतक हो चुका है।

कृष्णावतार और बौद्धावतार

इधर कोई इक्कीस हजार बरस हुए कृष्णावतार भी हुआ और ढाई हजार बरसोंके लगभग हुए कि बौद्धावतार भी हो चुका है।

कालके सम्बन्धमें हमारा मत

हमने कालके सम्बन्धमें प्रोफेसर रेलेके अनुमानको ठीक माना है और सृष्टिक्रम तो विकास-विज्ञानियोंका ही माना है।

पुराणोंके सृष्टिक्रम और वैज्ञानिकोंके कालक्रमका समन्वय

पुराणोंका विशेष विषय सृष्टि है, अतः हमने पुराणोंके सृष्टिक्रम और कालक्रमका वैज्ञानिकोंके विचारके साथ समन्वय करके यहाँ दिखाया है। यह सच है कि पुराणोंमें ठीक-ठीक इस तरहका क्रम कहीं एक जगह नहीं दिया है और विज्ञानके किसी विद्वानने कभी पौराणिक शब्दोंमें सृष्टिक्रम या विकासका विज्ञानसे इस प्रकार समन्वय नहीं किया है। हमने यह समन्वय इन शब्दोंमें इसलिये दिया है कि हमारे देशके पाठक विज्ञानके इस दुर्बोध विषयको इस रूपमें सहजमें ही हृदयंगम कर लेंगे।

धार्मिक कृत्योंके युग और कल्प आदि

कालकी अवधि गिननेमें हिन्दू ज्योतिषमें कुछ मत-भेद है। प्रायः सभी शास्त्र इस बातमें सहमत हैं कि धार्मिक कृत्योंके लिये कलियुग बारह सौ वर्षोंका, द्वापर उसका दूना, त्रेता तिगुना और सतयुग चौगुना अर्थात् अड़तालीस सौ वर्षोंका होता है। इस प्रकार पूरी चतुर्युगी बारह हजार वर्षोंकी होती है। एक सहस्र चतुर्युगियोंका अर्थात् एक करोड़ बीस लाख वर्षोंका एक कल्प होता है।

दिव्य वर्ष

यह मान हमने "धार्मिक" कृत्योंके लिये इसलिये कहा है कि पंचांगोंमें ये आम तौरसे दिव्य वर्ष माने गये हैं। तीन सौ साठ मानव वर्षोंका एक दिव्यवर्ष माना जाता है। इसीलिये पंचांगोंमें ऊपर बताये अंकोंके तीन सौ साठ गुने मान दिये गये हैं और सृष्टिके दिन 'अहर्गण' उस

खेलका और कामका ठीक तराजू

(हॉबीजसे अनुवादित)

(अनुवादक—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० एस० ई०, प्रयाग विश्वविद्यालय)

तराजूका उपयोग

तराजू इतनी उपयोगी चीज है कि आश्चर्य मालूम पड़ता है कि यह इतने कम घरोंमें पाया जाता है। फोटोग्राफी और रसायनके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु यह कई अन्य कामोंके लिये उपयोगी है—उदाहरणार्थ, डाकके लिये चिट्ठियों और पारसलोंका तौलना, और साधारण घरेलू कामोंके लिये।
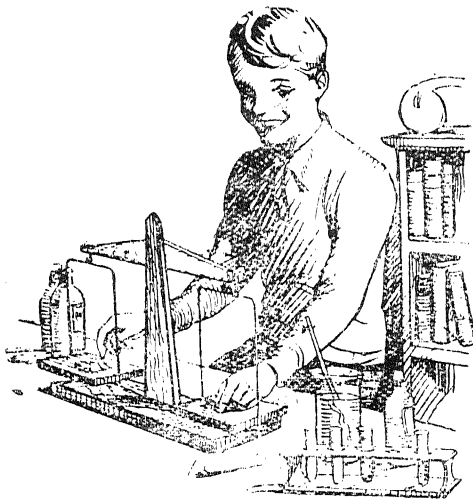
स्तम्भ और अड़कन

जिस सरल रीतिके तराजूका चित्र यहाँ दिखलाया गया है यह बचे खुचे प्लाइवुड (plywood) या पतली लकड़ीसे बनाया जा सकता है और अधिकांश कामोंके लिये
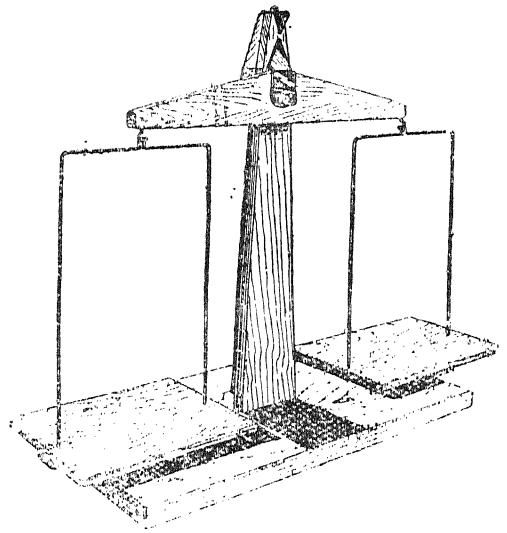
काफी सच्चा होगा। जड़ मोटी लकड़ीका एक सादा आयताकार (चौकोर) टुकड़ा है जो नापमें १२ × ६ इञ्चका है।

चित्र १ में दिखलाया गया स्तंभ और अड़कन प्लाइवुड या साधारण ½ इंच मोटी लकड़ीसे काटे जा सकते हैं। अड़कनको स्तंभकी पीठपर सरेससे चिपका दिया जाता है

कल्पके आरम्भसे गिने हैं जो १, २०, ००, ००० × ३६० अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ बरसोंका होता है।

प्रत्येक मन्वन्तरकी अवधिका अनुमान

प्रोफेसर रेलेके अनुमानसे यही अंक अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं और हमने भी ऊपर इन्हींके अनुपातिक अंक दिये हैं। परन्तु जो लोग उपर्युक्त शास्त्रीय-काल-परिमाण ही मानव-वर्ष मानते हैं वे यदि उन्हींके अनुसार अंक चाहें तो हमारे ऊपरके अनुमानोंका ३६० वाँ अंश कर दें। इस प्रकार प्रत्येक मन्वन्तर साढ़े आठ लाख बरसोंका ही हो जायगा।

और २ या ३ पेंच जड़कर जोड़को पक्का कर दिया जाता है। स्तंभ और अड़कनके नीचे बढ़े हुए चूलोंके लिये जड़-वाली लकड़ीके बीचमें छेद काट लिया जाता है। चूल बैठा कर देख लेना चाहिये कि जोड़ सच्चा बैठेगा या नहीं, परन्तु अभी ही सरेस लगाकर इनको जोड़ न देना चाहिये।

तराजू चित्र १

दो लकड़ियाँ जिनसे खंभा, दंड या स्तंभ बनता है। छोटी लकड़ी अड़कन है जो बड़ीकी पीठपर उससे समकोण बनाती हुई जड़ी जाती है।

½ इञ्च मोटी लकड़ीका एक टुकड़ा स्तंभके ऊपरी भाग पर पीठकी ओर सरेससे चिपका देना चाहिये। यह टुकड़ा अड़कनके माथेपर डटा रहे और स्तंभके हिसाबसे इस टुकड़ेके जो भाग बाहर बढ़े रहें उनको काटकर निकाल देना चाहिये।

चौकोर छेद

इसमें जो चौकोर छेद किया गया है वह (Knife-edge) छुरी-धारके पहननेके लिये है।

छुरीधार

इसी छुरी-धारके बल तराजूकी डंडी घूमेगी। यह छुरी-धार काफी मोटे इस्पात या लोहेके पत्तरसे बनाया जाता है। यह करीब १½ इञ्च लंबा और ½ इञ्च चौड़ा रहे इसके ऊपरी कोरको रेतकर तेज धार बना दिया जाता है (जैसा चित्र ४ से स्पष्ट है)।

छुरीधार कसनेमें सावधानी

छुरी-धारके लिये बनाये गये छेदमें छुरी-धारको कस रहना चाहिये, जिसमें इसको छेदके भीतर ठोंक देनेपर य उसमें दृढ़ हो जाय। इस क्रियामें सावधानी रखनी चाहि जिसमें छुरी-धारका वह भाग जो स्तंभके अग्रभाग मुर के बाहर बढ़ा रहे वह स्तंभकी सतहपर लंब हो। चित्र में ये सब ब्यौरे दिखलाये गये हैं।

चित्र २ में डंडीकी रूप रेखा दिखलायी गयी है। इसके पहले पूरे नापका खींच लेना चाहिए। चित्र ३ में क, ख और ग से अंकित तीन शकलें दिखलायी गयी हैं। इनके पीतलके पत्तर या कड़े टीनसे काट लेना चाहिए। यदि पीतल मिल सके तो यह टीनसे बहुत अधिक अच्छा सिद्ध होगा।

तराजू चित्र २—डंडी, या डांड़ी

डंडी

'क' और 'ख'से अंकित पत्तरोंको डंडीपर पेंचसे कसना चाहिये। एक पत्तर एक ओर रहे और दूसरा दूसरी ओर। इनके नीचेवाले किनारे ठीक-ठीक एक दूसरेके समानांतर और डंडीके किनारेसे ठीक एकही दूरीपर रहें। डंडीके कोरसे इन पत्तरोंमेंसे प्रत्येकका नीचेवाला कोर १ इंचपर रहे। चित्र २ में इस स्थितिमें सुगमताके लिये एक रेखा खींच दी गयी है।

यदि 'क' और 'ख'को उचित स्थानपर टिकाकर छेद इस प्रकार किया जाय कि दोनों पत्तरों और डंडीमें एक साथ ही आरपार छेद हो जाय तो दोनों पत्तर डंडीपर छोटे-छोटे पीतलके दो बाल्ट और ढिबरीसे जड़ दिये जा सकते हैं। इन पत्तरोंके नीचेवाले कोरोंमें ठीक बीचमें नन्हे-नन्हे गड्ढे रेत दिये जाते हैं। ये गड्ढे छुरी-धारके ऊपर बैठते हैं। डंडीके सिरोंसे ½ इंच हटकर छोटे-छोटे पेंचदार हुक लगा दिये जाते हैं।

पलड़े

पलड़ोंमेंसे प्रत्येकको दो टुकड़े प्लाइवुड या पतली लकड़ीको सरेससे जोड़कर बनाया जाता है और उनको पीतलके तारसे लटकाया जाता है। ये तार मोड़कर उचित आकारके बना लिये जाते हैं। चित्र नं० ५ में इन भागोंके आकार और नाप दिखलाये गये हैं। लटकाने वाले तार पलड़ोंके छेदमें पहनाये रहते हैं और उनके सिरे मोड़ दिये जाते हैं जिससे वे निकल न आयें।

अब डंडीको छुरी-धारपर लटकाया जा सकता है और पलड़ोंको हुकोंपर लगाया जा सकता है। पत्तर 'ग' (चित्र नं० ३) को एक समकोणपर मोड़ दिया जाता है और स्तंभके माथेपर पेंचसे जड़ दिया जाता है। अब पलड़ोंके वज़नके बराबर होनेकी जाँच की जा सकती है।
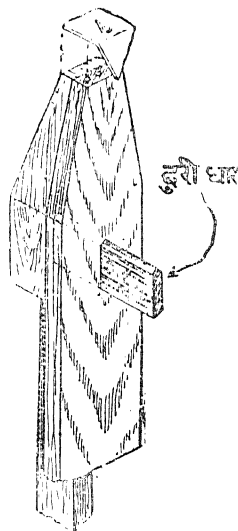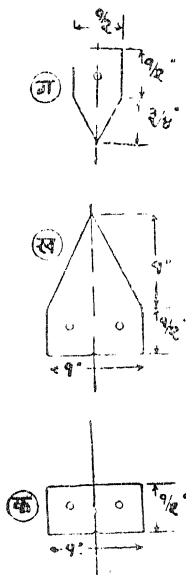
चित्र नं ३ चित्र नं० ४
डांड़ीके लिये पीतलके टुकड़े। स्तंभमें छुरीधार कैसे लगती है।

तराज़ूका समतूल करना

इसके लिये हलके पलड़ेपर आवश्यकतानुसार छोटे-छोटे एक दो पेंच रखो। जब पत्तर 'ख' और 'ग'के नोक एक दूसरेकी सीधमें आ जायँ, या करीब-करीब सीधमें आ जायँ तब पलड़ेको उतारकर उसकी पेंदीमें उन पेंचोंको कस दो। आवश्यकता हो तो इन पेंचोंके सिरोंको रेता जा सकता है और इस प्रकार तराज़ू पूर्णतया समतुलित किया जा सकता है।

तराज़ूके साथ साथ कुछ बाटोंकी भी आवश्यकता पड़ेगी। कैसे बाट चाहिए यह इसपर निर्भर है कि तराज़ूसे क्या काम लिया जायगा। बाट सस्तेमें खरीदे जा सकते हैं या सिक्कोंसे बाटोंका काम लिया जा सकता है या वे घरपर बनाये जा सकते हैं।

बाट या बटखरे बनाना

घरपर बाटोंके बनानेके लिये एक इशारा चित्र नं० ६में दिया गया है। यहाँ प्रत्येक बाट दो गोल लकड़ियोंसे बनाया गया है। नीचेकी लकड़ी कुछ दूरतक खोखली कर दी जाती है और इस प्रकार बने गड्ढेमें सीसेके टुकड़े या छर्रे इतने रख दिये जाते हैं कि बाटका वज़न पूरा हो जाय।
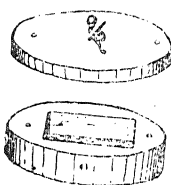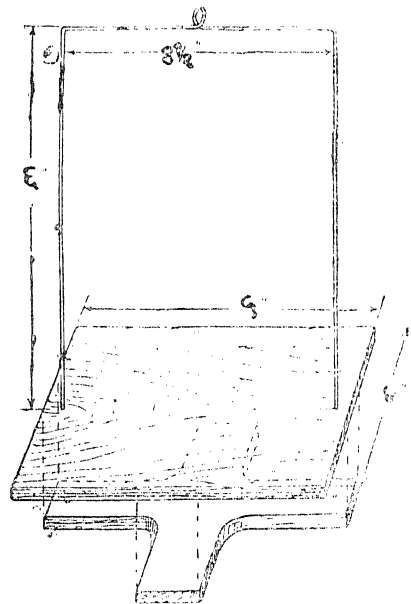
चित्र नं० ५
पलड़ा और लटकानेवाला तार

प्रत्येक बाटको असली बाटोंसे तौलकर ठीक कर लेना चाहिये और उनको रंग भी देना चाहिये।

चित्र नं० ६
बाट कैसे बनाया और भरा जाता है।

त्रिदोष समस्याकी वैज्ञानिक पूर्ति

(सर्वाधिकार रक्षित)

[लेखक—वैद्यरत्न पं० ब्रजभूषणलाल चतुर्वेदी, देवरी, सागर]

(१)

१—उपक्रम

अखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलनने सन् १९२८ ई०में त्रिदोष सिद्धान्तको वैज्ञानिक विधि द्वारा सिद्ध करनेवाले निबन्ध लेखकको ५००) रु० पारितोषक देनेकी घोषणा की थी, परन्तु उसमें प्रतिबन्ध यह था कि निबन्ध संस्कृत भाषामें लिखा जाना चाहिये। मैंने उसी अवसरपर "त्रिदोष समस्या" शीर्षक एक लेख श्रीधन्वन्तरि (विजयगढ़) अलीगढ़से प्रकाशित होनेवाले मासिक पत्रमें छपवाकर सम्मेलनके मंत्रीसे प्रार्थना की थी कि त्रिदोष-समस्यामें त्रिदोषके विषयमें किये जानेवाले या हो सकनेवाले आक्षेपोंका संग्रह मैंने धन्वन्तरिमें प्रकाशित कराया है और इसकी वैज्ञानिक पूर्ति जो कि त्रिदोष समस्याकी वैज्ञानिक पूर्तिके नामसे मैंने हिंदी भाषामें जिसके द्वारा मैं अपने मनोगत भावोंको भली भांति व्यक्त कर सकता हूँ लिखा है। परन्तु जब मुझे यह उत्तर मिला कि निबन्ध संस्कृतमें लिखा होना चाहिये, अन्य भाषाओंको स्थान न दिया जायगा, मैं हताश होकर बैठ गया। दो वर्षतक त्रिदोष समस्यापर भी आयुर्वेद-प्रेमियोंका ध्यान न होते देख इसी त्रिदोष समस्याको अनुभूत-योग-माला (वरालोकपुर) पाक्षिक पत्रमें पुनः प्रकाशित कराया। फलस्वरूप कुछ महानुभावोंने उत्तर न देकर केवल कटूक्तियों द्वारा मुझे खूब जी भरकर कोसा*। मैंने उन्हें यथामति उत्तर दिये। तबसे आजतक इसकी कोई चर्चा न उठी। परन्तु इस वर्ष श्रद्धेय स्वामी हरिशरणानन्दजी द्वारा निर्मित "त्रिदोष मीमांसा" नामक पुस्तक पढ़कर मुझे अपने उसी समयके लिखे निबन्धकी याद आ गयी जिसे रद्दीकी टोकरीमेंसे खोजकर विज्ञानके पाठकोंकी भेंट करता हूँ। आशा है कि विद्वान वैद्यगण इसे पढ़कर निश्चय करेंगे कि श्रद्धेय स्वामीजीद्वारा बताये त्रिदोषवाद अथवा मेरी क्षुद्र बुद्धिद्वारा प्रतिपादित "शासन, शुद्धि और पुष्टि"का त्रिदोष समयके कितना अनुकूल है।

* आपपर पहले प्रहार हो चुका है। परन्तु प्रहार होना चाहिये अनुचित तर्कों और युक्तियोंपर। व्यक्तियोंपर प्रहार विचारकी निर्बलताका द्योतक है। —रा० गौ०

२—विषय-प्रवेश

चिकित्साके आरम्भ कालसे ही हमारे देशमें त्रिदोषका अस्तित्व और उनके द्वारा शरीरकी स्वास्थ्य-क्रियाओंका सम्पादन तथा उनकी विकृतिसे स्वास्थ्यकी विकृति और उनके संस्कारसे स्वास्थ्यका सुधार अनिवार्य माना गया है। चरक, सुश्रुत और वाग्भट्टके समयसे बहुत पहिले भी लोग वात, पित्त और कफकी विकृतिको रोगका कारण समझते थे, इसमें सन्देह करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। परन्तु यदि अनुमान विशेष अन्य अनुमानोंकी तुलनामें इतना विश्वसनीय समझा जा सकता है कि उसे प्रमाणका पद प्राप्त हो और प्रमाण इतना विश्वसनीय हो सके कि उसे अनुभवका पर्याय कहा जासके और अनुभव इतना सविवेक हो कि उसे **विज्ञान** कह सकें तो आज त्रिदोषकी आकृति, प्रकृति और विकृतिके स्वीकार किये जानेमें विद्वानोंको उतनी ही आपत्ति हो सकती है जितनी चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन आचार्योंको उस समयका लोकमत स्वीकार कर लेनेमें थी।

सहस्रों वर्ष पूर्व मनुष्य प्रकृतिका बहुत अधिक अनुयायी था। उसके जीवनमें सरलता, समानता और स्वस्थता अनिवार्य रूपसे पायी जाती थी। उन्हें केवल वे ही विकार सताते थे जो प्रकृतिकी प्रतिक्रियाओंके प्रतिरूप होते थे। वे भूख लगनेपर ही भोजन करते और वह भी

सादा और सरल और स्वाभाविक, प्यास लगनेपर ही पानी पीते, नींद आते ही सो जाते और भोजनकी तलाशमें शत्रुपर आक्रमण करने अथवा उनसे बचने और अपने निवासस्थानादिकी सुविधा बढ़ानेके प्रयत्नमें परिश्रम-शील रहते थे। खुली हवामें रहते और स्वाभाविक जीवन व्यतीत करते हुए अधिकांश रोगोंसे उस समयका समाजका समाज अपरिचित था। परंतु जो रोग स्वस्थसे स्वस्थ मनुष्यको भी अच्छेसे अच्छे स्थानमें रहते हुए अग्नि और वीर्यकी रक्षा करते हुए भी सता सकते थे उनका वर्णन उन्हें किसी न किसी प्रकार करना इष्ट था ही, अतएव वे खाँसी आनेकी अवस्थाको खाँसी अथवा कास न कहकर उसके विशेष लक्षण कफ द्वारा ही उसका वर्णन करते थे। इस प्रकारका वर्णन कहनेवाले और सुननेवालेको एक समान सरल प्रतीत होता था उसी प्रकार पित्त और वात विकारोंके लिये समझिये। परन्तु इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि वास्तवमें उन्हें त्रिदोषका कुछ ज्ञान था। वे केवल शरीरकी विकृतावस्थाको शरीरके बाहर आनेवाले असाधारण पदार्थोंसे ही समझ सकते थे और उन पदार्थोंको ही यदि वे अपनी व्याधियोंका कारण समझते थे तो यह उस समयकी सरल सामाजिक अवस्थाको देखते हुए उचित ही था। हमारे महामान्य आचार्योंने उस समयके लोकमतका निरादर करके रोगोंकी उत्पत्ति विषयको कोई जुदा सिद्धान्त स्थिर करना उचित नहीं समझा, यद्यपि हमारा यह ध्रुव विश्वास है कि यदि वह ऐसा चाहते तो कर सकते थे। वह समय जितनी सरलता-का था उतनी ही उद्दंडताका भी। लोकमत यदि पृथ्वीको चपटी कहता था तो उसे गोल कहना साहसका काम था और यदि विष्णु भगवानकी चतुर्भुजी मूर्तिके यथार्थ तत्वमें कोई जरा भी शंका करता तो वह पागल, आततायी (?) धूर्त, पाखंडी इत्यादिकी श्रेणीमें आये बिना और उसका सामाजिक दण्ड भोगे बिना नहीं रह सकता था।*

फिर कोरा सिद्धान्त अलापना एक बात है और इसके द्वारा यश और अक्षय कीर्ति उपार्जन करना दूसरी। वैद्य लोग समझ सकते हैं कि उन्हें अपने रोगियोंका सन्तोष अधिक प्रिय है अथवा चिकित्सा सम्बन्धी सिद्धान्त†।

सारांश यह है कि समाजकी आदिम अवस्थाके लोकमतकी भित्तिपर ही आयुर्वेदकी रचना हुई है‡।

विद्वान आचार्योंने एक साधारण सी सामग्री लेकर उसको इतना परिष्कृत और समुन्नत कर दिया कि आज सहस्रों वर्ष हो चुके उनके द्वारा स्थिर किये हुए सिद्धान्त इतने व्यवहारोपयोगी माने जाते हैं कि २० वीं शताब्दीकी आश्चर्यजनक वैज्ञानिक क्रान्तिमें भी उसके लिये एक महत्व-पूर्ण स्थान सुरक्षित ही है। सचमुच प्रतिभाके लिये सामग्रीकी अपेक्षा नहीं रहती, वह प्रस्तुत सामग्री पर ही अपना प्रभाव डालकर तिलका पहाड़ बना सकती है। दृष्टान्त स्वरूप लातों मारी फिरनेवाली अत्यन्त साधारण वस्तु लोहेकी धाऊसे लोहा निकालकर प्रतिभा उसे इतना संस्कृत कर देती है कि उससे बननेवाली बाल कमानियाँ जो कीमती घड़ियोंमें लगायी जाती हैं, सोनेसे अठगुणी तलवारके लोहेसे सहस्रगुणी और मिट्टीसे लक्षगुणी मूल्य पर बिकती हैं। यह प्रतिभाका चमत्कार और बुद्धिके सदुपयोगका परिणाम है कि जो बात साधारणसे साधारण मनुष्यको भी चरक-कालसे सहस्रों वर्ष पूर्व ज्ञात थी उसे लेकर आयुर्वेदके विद्वान आचार्योंने इतनी व्यापक बना दी कि वह आज केवल अनुमान और प्रमाणमें ही सम्बद्ध नहीं रह गयी किन्तु प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा चिकित्साके अधिकांश क्षेत्रोंमें विज्ञानका गौरव और महत्ता प्राप्त कर रही है। आवश्यकता केवल उक्त "प्रत्यक्षानुभव" का कार्य-कारण-सम्बन्ध निर्दिष्ट करनेकी रह गयी है। अतएव मैं यहाँ शरीर-विज्ञान सम्बन्धी कुछ विचार करूँगा।

३. शरीर विज्ञान सम्बन्धी कुछ विचार

विज्ञानका अर्थ बुद्धिका निरपेक्ष उपयोग है और इसी लिये वैज्ञानिक विचार सारे संसारमें आदर्श, श्रद्धा और विश्वासकी दृष्टिसे देखे जाते हैं।

*भारतवर्षमें इस हदकी असहिष्णुता इतिहाससिद्ध नहीं है। रा० गौ०

† रोगी अच्छा होना चाहता है, उसे आपके सिद्धान्तसे वास्ता नहीं है। रोगियोंको सन्तोष देनेवाली विधियाँ आपके वादोंसे प्रायः विभिन्न होती हैं। रा० गौ०

‡ उस समयके लोकमतपर हुई है, इसका प्रमाण ? विद्वानोंके मतपर हुई है, यह तो आयुर्वेदीय साहित्य कहता है। रा० गौ०

सारे विश्वकी तुलनामें मिट्टीके कङ्कर समान इस पृथ्वीपर मनुष्यका अस्तित्व केवल एक आकस्मिक घटना नहीं है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म जंतुओंसे जो जीवनधारा आरम्भ होती है उसके प्रभावमें करोड़ों वर्षतक असंख्य परिस्थितियोंकी टक्करें लेते लेते मनुष्य अपनी वर्तमान दशाको प्राप्त हुआ है। वह अपनी जीवनयात्रा नैसर्गिक क्रमसे उसी प्रकार व्यतीत करता है जैसे कि अन्यान्य जीव जंतु। अर्थात् उसके शरीरमें अनेकानेक अवयव और तज्जनित द्रव्य तथा धातुओं (रस रक्तादि) की भिन्न-भिन्न प्रकारकी सामग्रियाँ वर्तमान हैं और उनका सुसम्बद्ध अवस्थामें रहनेका नाम ही जीवन है। और उक्त अवस्था सुव्यवस्थित होनेपर ही स्वस्थ जीवन प्राप्त हो सकता है। परंतु हम देखते हैं कि सुव्यवस्थाके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी विशेष प्रकारकी हो अथवा यह कि उससे भिन्न होनेपर वह सुव्यवस्था रह ही नहीं सकती। एकसे अधिक प्रकारसे भी जीवनके आधार-स्तम्भ सामग्रियोंका संगठन सुचारु रूपसे हो सकता है और स्वस्थ जीवन बना रह सकता है। यह आवश्यक नहीं कि किसीके हृदयकी अपेक्षा फुफ्फुस अथवा आमाशयकी क्रियाकी योग्यता एक विशेष अनुपात ही हो। शरीरकी गर्मीको ही लीजिये। शीतप्रधान देशोंमें स्वस्थ युवाओंके रक्तकी गरमी ९८·६° फ० होती है। परंतु उष्णप्रधान देशोंमें १ डिग्री कम रहते हुए भी मनुष्य स्वस्थ रहता है। पहाड़ोंपर रहनेवाले मनुष्योंकी श्वासक्रियासे नाविकोंकी श्वासक्रियाओंमें भी ऐसा ही अन्तर पाया जाता है। केवल खिचड़ी हजम करनेवाले लोग भी स्वस्थ जीवन बिताते और कच्चा मांस भरपेट खाकर डकार न लेनेवाले हट्टे-कट्टे मनुष्य युवावस्थामें ही भयानक रोगोंमें ग्रस्त तथा अकालमृत्युके शिकार होते पाये जाते हैं। इन दृष्टान्तोंसे ज्ञात होता है कि शरीरके अन्तर्गत अनेक व्यापारोंका एकाधिक रूपसे व्यवस्थित परिणाम ही स्वस्थ जीवन है। स्वस्थ शरीरमें किसी निर्दिष्ट परिस्थितिमें एक ही प्रकारकी विकृति प्रायः देखनेमें नहीं आती। मान लीजिये चार मित्रोंकी एक मंडली बम्बईकी सैर करनेके लिये निकली। रास्तेमें उनका खानपान प्रायः एक ही प्रकार और एक ही साथ होता था, बम्बई जाकर भी वह एक ही होटलमें ठहरे और एक ही साथ घर लौटे। पर देखा गया कि एकको ज्वर हो गया और दूसरेको अतिसार तो तीसरेको मामूली प्रतिश्याय और चौथेपर जैसे कुछ प्रभाव ही न पड़ा हो। इसका समाधान सिवाय इसके कि उनके शरीरकी आवयविक व्यवस्था भिन्न भिन्न प्रकारकी थी और दूसरा कोई नहीं हो सकता अर्थात् यह स्वीकार करना पड़ता है कि उनकी प्रकृति भिन्न भिन्न प्रकारकी थी। अब प्रकृतिका विश्लेषण कीजिये तो जान पड़ेगा कि एक विशेष प्रकारके मनुष्योंको यदि गरिष्ठ वस्तुएँ सहन नहीं होतीं तो दूसरेको अधिक मात्रामें भोजन कर लेना अस्वस्थ कर देता है। यदि एक मनुष्यको रात्रिके जागरणके पश्चात् दिनमें बहुत अधिक आलस्य और तन्द्रा मालूम पड़ती है तो दूसरे पर उसका कुछ भी प्रभाव मालूम नहीं पड़ता। इस प्रकार खान-पान और विहारके अति हीन और मिथ्या योगोंके वशीभूत जितने प्रकारकी असुविधाएं, पीड़ाएं अथवा विकृत अवस्थाएँ मनुष्यको प्राप्त होती हैं, अनुभव द्वारा उनमें भी एक जाति सम्बन्ध पाया हुआ देखा गया कि जिस मनुष्यको अमरूदका एक टुकड़ा खा लेनेसे प्रतिश्याय हो जाना अनिवार्य हो जाता है उसीको प्रायः जागरण भी सहन नहीं होता और जिसे मूँगफली खानेसे सिरमें दर्द होने लगता है उसे ही धूपमें चलना बहुत अखरता है और जिसे बदलीका मौसम सुहावना नहीं मालूम होता उसे ही इमली खानेसे जोड़ोंमें दर्द और मगदका लड्डू खानेसे अतिसार हो जाता है। तात्पर्य यह कि इन लक्षणोंके जातिभेद करने बैठिये तो उक्त अनेक लक्षण थोड़ीसी जातियोंमें विभक्त पाये जायँगे। अब शरीरकी बनावटपर ध्यान दीजिये। शरीरका ढाँचा (कंकाल) अस्थि धातुसे बना हुआ है जिसकी वृद्धि और क्षय शरीरके साथ ही होती है। अस्थिके अन्तर्गत मज्जा रहती है जो ज्ञानतंतुओंकी परिपोषक जान पड़ती है। अस्थिका ऊपरी भाग मांसद्वारा आच्छादित होता है जिसकी पुष्टि और अपुष्टि रक्त धातुपर अवलम्बित रहती है। रक्तका संचार शरीरमें हृदय, नाड़ियों, शिराओं और धमनियोंद्वारा होता है और फुफ्फुस, यकृत और गुर्दोंमें उसकी शुद्धि तथा संस्कार होता है। रक्त केवल रसकी चैतन्यावस्था है। जिस आयोजन द्वारा हमारे शरीरमें रसका निर्माण होता है उसे पाचन - क्रिया और जिस अवयव समूहमें यह पाचन-क्रिया सम्पादित होती है

उसे हम आमाशय कहते हैं। शरीरके प्रजनन कार्यके लिये जिस धातुका संचय अंडकोषोंमें होता रहता है उसे शुक्र धातु कहते हैं। शरीरमें गरमी बनाये रहनेके लिये ईंधनका काम देनेवाली स्निग्ध धातु भी संचित रहती है जो मांसके ऊपर और चमड़ेके नीचे जमा रहती है। उसे मेद धातु कहते हैं। इन धातुओंकी मात्रा, विशुद्धता और सजीवता प्रत्येक मनुष्यमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है और देशकाल और वयस-व्यवसाय आदिके अनुसार बदलती रहती है। हम देखते हैं कि किसी मनुष्यकी हड्डी बहुत पुष्ट और लम्बी चौड़ी रहती है और किसीकी साधारण अस्थियोंपर मांस बहुत अधिक लदा रहता है, किसीके शरीरमें रक्त फूटा पड़ता है। आँखके कोयोंमें, गालोंमें, ओठोंमें और नाखूनोंमें उसका सुन्दर रंग झलकता रहता है और किसीमें जठराग्नि इतनी प्रबल पायी जाती है कि उसे अरुचिकर अथवा अहितकर कोई खाद्य पदार्थ जान ही नहीं पड़ता। देश परदेशमें समय कुसमय पथ्यापथ्य थोड़ा बहुत जो कुछ भी खा लेता है उसका उसपर कुछ भी प्रभाव पड़ता नहीं जान पड़ता। इसी प्रकार कुछ लोग थोड़ेही परिश्रम अथवा सर्दी गर्मीके आघात अथवा नित्य नियमके व्यतिक्रमसे घबड़ा उठते हैं और कुछ सर्दीमें अधिक सर्दी और गर्मीमें अधिक गर्मीका अनुभव नहीं करते। कुछ लोग साधारण अस्वस्थतामें ही अपना काम करनेके अयोग्य होजाते हैं और कुछ सान्निपातिक अवस्थाके निकट पहुँचते-पहुँचते भी कठिन शारीरिक परिश्रम करते देखे जाते हैं। गरज यह कि हमारे शरीरकी भिन्न-भिन्न धातुओंका आपसी सम्बन्ध या समझौता जिस प्रकारका होता है वही हमारी प्रकृति बन जाती है।

४—स्वभाव स्वभावमें भेद

हम यह नहीं कहते कि समस्त संसारमें मनुष्यमात्रके शारीरिक और आवयविक संगठनमें यह भेद तीन ही प्रकारका हो सकता है और तीनसे अधिक प्रकारका नहीं, परन्तु व्यवहारोपयोगी विषय चाहे आयुर्वेद हो अथवा कोई शिल्प-चातुर्य, उसके मूल सिद्धान्त जितने स्पष्ट और अल्पसंख्यक होंगे उतना ही उस कला, विद्या अथवा व्यवसायका अधिक प्रचार होगा। हम यह कदापि नहीं मान सकते कि आयुर्वेदके संस्थापक इस विषयमें संकीर्ण तथा अनुदार थे। वे उसका अधिकसे अधिक प्रचार चाहते थे और इसीलिये उन्हें उसके आधारभूत सिद्धान्त सरलसे सरल रखने पड़े। परन्तु आज भी हम इस विषयको स्वतंत्र रूपसे चाहे जितना सरल करना चाहें प्रकृति सम्बन्धी भेद एकसे अधिक मानने ही पड़ेंगे। अन्यथा भेदकी कल्पना ही निरर्थक है। परन्तु भेदका अस्तित्व निर्विवाद सिद्ध करनेके लिये ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे अधिक कहनेकी आवश्यकता तबतक नहीं जान पड़ती जबतक कि विद्वत्समाज उसे पर्याप्त, असम्बद्ध अथवा अप्रामाणिक कहकर अस्वीकार न कर दे।

इसलिये यह मान लेना पड़ता है कि एकसे अधिक सुव्यवस्थाएँ (प्रकृतियाँ) जिनका जिक्र ऊपर आ चुका है, सरलताकी दृष्टिसे तीन प्रकारोंमें ही विभक्त हो सकीं। अनेक प्रकारकी प्रकृतियोंको एक भी नहीं कहा जा सकता और उनके स्थूल विभाग किये बिना विषय इतना सरल भी नहीं बनाया जा सकता कि वह चिकित्सकमात्रको ग्राह्य हो सके। इस विषयमें हम पुराने आचार्योंकी दूरदर्शिता और सद्भावनाकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते।

इस प्रकार यह स्थिर हुआ कि मनुष्यकी प्रकृतियाँ कमसे कम तीन प्रकारकी मानी जा सकती हैं। परन्तु आयुर्वेद यह कहता है कि मनुष्यकी प्रकृति कैसी ही हो उसमें तीनों दोष तन्मय अवस्थामें अवश्य रहते हैं और उन तीनोंका परस्पर समान शासन होते रहनेकी अवस्थामें ही शारीरिक स्वास्थ्य संभव है। अतएव हम दोषोंके अस्तित्वपर प्रकाश डालेंगे। जिस प्रकार मनुष्यके शरीरमें धातुओंका अनुताप जुदा जुदा होता है उसी प्रकार परन्तु धातुओंके अनुरूप ही शरीरकी आवयविक व्यवस्था भी अनुतापशील होती है। अर्थात्, अन्य अवयवोंकी तुलनामें यदि किसीका हृदय अधिक बलवान होता है तो किसीका आमाशय और यदि किसीकी श्वासेन्द्रियाँ बलिष्ठ होतीं हैं तो किसीके ज्ञान-तंतु, परन्तु कोई मनुष्य इनमेंसे एकके अभावमें भी जीवित नहीं रह सकता। हृदयकी शरीरको वैसी ही आवश्यकता है जैसी कि फुफ्फुसोंकी। न ज्ञान-तंतुओंके विना ही मनुष्यका जीवन संभव है न आमाशयके बगैर। जिस प्रकार अनेकानेक प्रकारकी प्रकृतियोंको सरलताकी दृष्टिसे केवल तीन स्थूल भेदोंमें विभक्त

कर दिया है उसी प्रकार आवयविक व्यापारोंको भी समझिये। वे अनेक प्रकारके होते हुए भी तीन प्रकारके कहे जा सकते हैं। अर्थात् शासन, पुष्टि और शुद्धि। किसी भी अवयवका कार्य उपरोक्त तीनमेंसे एक कार्यके सम्पादनके हेतु ही होता है। ज्ञानतंतु शरीरके समस्त व्यापारों और चलने-फिरने-तकपर शासन करते हैं, आमाशय और उसके उपांगोंके समस्त व्यापार पुष्टिविषयक होते हैं। फुफ्फुस, यकृत, गुर्दे इत्यादि शुद्धिकार्यमें निमग्न रहते हैं। इन्हीं भेदोंको कदाचित् कुछ अपवादोंके साथ वात, पित्त, कफ माना हो। इसके लिये अन्य प्रमाण खोजनेकी आवश्यकता नहीं। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि ज्ञान-तंतुओंके विकारोंको पुराने आचार्योंने प्रायः वात-व्याधि माना है, और आमाशयसम्बन्धी विकारोंको पित्त-जन्य, और इसी प्रकार फुफ्फुस और मूत्र और स्वेद सम्बन्धी व्याधियोंको कफजन्य। नीचे लिखी तालिकासे यह विषय स्पष्ट समझमें आ जायेगा।

संस्कृत नाम	अंग्रेजी नाम	अवयवपर प्रभाव
	वातजन्य व्याधियाँ	
उदक मेह	डायाबिटिस इन्सिपिडस	गुर्दे
उन्माद	हिस्टीरिया	ज्ञानतन्तु विशेष
अपस्मार	एपीलेप्सी	मस्तिष्क
अर्दित	फेशियल पेरालिसिस	ज्ञानतन्तु विशेष
आमवात	रुमेटिझम	मांस-पेशियाँ
गृध्रसी	शायटिका	ज्ञानतन्तु विशेष
वातरक्त	गाउट	कोमलास्थि
श्लीपद	एलीफिनटाइटिस	मांसपेशियाँ
	पित्तजन्य व्याधियाँ	
संग्रहणी	स्प्रू	पक्वाशय
अर्श	पाइल्स	रक्तवाहक शिरायें
अजीर्ण	डिस्पेपसिया	आमाशय
मधुमेह	डायबिटिस	क्लोम, यकृत
शुक्रमेह	स्परमिटोरिया	पुरुष जननेन्द्रिय
कुष्ट	लिपरसी	रक्त
रक्तगुल्म	ओवेरियन ट्यूमर	गर्भाशय
	कफजन्य व्याधियाँ	
राजयक्ष्मा	थाइसिस	फुफ्फुस
कास	ब्रोंकायटिस	फुफ्फुस श्वासप्रणाली
श्वास	अस्थमा	श्वासपटल और फुफ्फुस
अश्मरी	केलक्यूलस	मूत्राशय (वस्ति)
अतिसार	डायरिया	पक्वाशय और मलाशय
विष्टब्धता	कांसटीपेशन	मलाशय

उपरोक्त विषय ध्यानमें रखते हुए दोषोंकी आकृतिपर विचार करना निरर्थक है। दोषोंकी आकृति कुछ हो ही नहीं सकती, वह तो भावमूलक केवल अवयवोंकी एक अवस्था मात्र है। क्रियाकी आकृति कुछ नहीं हो सकती और दोषकी कल्पना क्रियात्मक न मानकर संज्ञात्मक मानना मेरी समझमें अत्यन्त भ्रमात्मक है। हम ज्ञान-तन्तुओंके स्वरूपको वातका स्वरूप नहीं दे सकते और न आमाशय अथवा उसके अन्तर्गत पाचक रसोंके आकारको पित्त दोषका आकार मान सकते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिसे कास रोगमें खाँसनेपर निकलनेवाले कफ या खखारको कफ दोष अथवा पित्तज्वरमें होनेवाले वमन द्रव्यको पित्त दोष और वायु दोषोंमें यदा-कदा वायुसम व्यवहार करने वाली क्रियाओं अथवा दूषित वायुके निकलनेपरसे वातकी आकृति स्थिर करना विडम्बनामात्र है। अधिकसे अधिक उन्हें दोषोंका संकेत उसी प्रकार माना जा सकता है जिस प्रकार कि नकशेमें समुद्र बतानेके लिये नीला रंग अथवा रेलकी सड़क बतानेके लिये एक खास प्रकारकी लकीर खींचकर अथवा नगरके लिये एक बड़ासा बिन्दु रखकर ज्ञान कराया जाता है।

५–त्रिदोषवादकी प्रकृत स्थिति

यह सब हम इसलिये नहीं कहते हैं कि हमें पुरानी परिपाटी मिटाकर किसी नयी पद्धतिका प्रचार करना इष्ट है और न हम यही चाहते हैं कि त्रिदोषविषयक समाधान ऐसी गूढ़ और अप्रत्यक्ष बातोंसे किया जावे जिनसे उनका समुचित ज्ञान प्राप्त करना और भी अधिक कठिन विषय हो जावे। हमें उस तर्क-पद्धतिका आश्रय लेना अनिवार्य है जिसे आज संसारके समस्त वैज्ञानिक उपयोगमें ला रहे हैं। काल्पनिक सिद्धान्तोंका मूल्य व्यावहारिक सिद्धान्तों-की अपेक्षा अधिक माना जाता होता तो आज त्रिदोषकी अनेक काल्पनिक व्याख्याएँ रची जा सकती थीं। अनेक काल्पनिक नाड़ियों, कोषों और व्यापारोंकी सहायतासे उन काल्पनिक सिद्धान्तोंका यथेष्ट प्रतिपादन किया जा सकता था परन्तु हमें ध्यान रखना चाहिये कि आयुर्वेदका जगत्, कल्पनाका जगत् नहीं है। उसके सिद्धान्तोंका व्यावहारिक समर्थन जब तक वैज्ञानिक ढंगपर न होगा चिकित्सक संसार उसे सदोष, अपूर्ण और अव्यवस्थित ही कहेगा। मैं यह भी दावा नहीं करता हूँ कि त्रिदोषकी आकृति स्वतंत्र न होकर आवयविक स्थिति सिद्ध करनेका मैंने जो प्रयास किया है वह निर्दोष, अकाट्य अथवा सम्पूर्णताबोधक है। मैंने केवल एक विशेष परिपाटीका अवलम्बन करके एक ऐसा ढाँचा तैयार किया है जिसे मैं विद्वानोंके सन्मुख निःसंकोच इस आशाके साथ उपस्थित कर सकता हूँ कि वे इसमें आवश्यक सुधार करके इस विषयपर अधिकाधिक प्रकाश डालनेकी कृपा करेंगे। जिसने बिजलीका आविष्कार किया होगा उसे गैसकी रोशनीमें ही काम करना पड़ा होगा और गैसके आवि-ष्कारकको केरोसीनके लेम्प अथवा मोमबत्तीपर संतुष्ट रहना पड़ा होगा। बहुत संभव है कि दोषोंकी नयी कल्पना अथवा नया स्वरूप अधिकांश वैद्योंको स्वीकार न हो परन्तु लेखकको भरोसा है कि नयी व्याख्याके अनुसार दोषोंपर निदान और चिकित्सा करनेवाले वैद्योंको पुरानी पद्धतिका विस्मरण हो जायगा। क्योंकि नयी पद्धतिकी व्यवहारोपयोगिता पुरानी पद्धतिकी स्मृतिके लिये स्थान ही न रहने देगी। लेखकने इसी पद्धतिका अनुसरण करके पुरानी पद्धतिको ताकमें रख दिया है। पुरानी व्याख्याका अनुसरण करते हुए उसे जो भ्रम होता था वह नयी व्याख्यामें नहीं होता और इसका प्रमाण उन्हें स्वयं ही मिल जायगा जो हठधर्मी छोड़कर इसका अनुसरण करेंगे। चिकित्सकका काम चिकित्सा करना है और चिकित्साका हेतु पीड़ाको दूर और रोगको निर्मूल करना है। इससे कुछ प्रयोजन नहीं है कि त्रिदोषविषयक कल्पना किस प्रकारकी है। रोगीको उसमें कोई अभी रुचि नहीं होती। वह चाहता है कि पीड़ा शान्त हो और रोग दूर। त्रिदोषविषयक वाक्योंका रोगीके सन्मुख पाठ करनेसे रोगका निवारण नहीं होता। यदि निवारण होता है तो रोगका कारण समझकर उसकी सविवेक चिकित्सा करनेसे। इसीलिये चाहे हमारे पाठ्य ग्रन्थोंमें त्रिदोषकी आकृति, प्रकृति और विकृतिका चाहे जो वर्णन हो, हमारे कामका वर्णन वही है जिससे हमारी बुद्धि जागरित हो, जो व्यवहारमें फलीभूत हो और जो किसी भी निष्पक्ष विचारकको मान्य हो।

हम यदि कहते हैं कि नहीं, दोषोंकी आकृतिके विषय-में प्रचलित मत निर्विवाद है तो उसका सिद्ध करना आज-कलके वैज्ञानिकोंके लिये भी अत्यन्त दुस्तर कार्य है, क्योंकि शवच्छेदक्रिया, एक्सरेज और अन्यान्य उपायोंसे भी हम किसी जीवित अथवा मृतावस्थामें वात, पित्त और कफकी स्थिति इस प्रकारकी नहीं देखते हैं जिससे हम उनकी आकृति निश्चित कर सकें। जिन वस्तुओंको हम देख नहीं सकते अथवा अन्य इन्द्रियोंद्वारा उसका परिचय नहीं प्राप्त कर सकते उसकी आकृतिके विषयमें क्या कहा जा सकता है परन्तु यदि हम किसी परिमाणको कार्य मानकर कारणको त्रिदोष मान लें तो त्रिदोषका रूप केवल काल्पनिक अथवा व्यापारिक ही होगा, संज्ञात्मक रूप विना वास्तविक आधारके मान बैठना विवेकको त्याग देना ही है। ऐसे दृष्टान्तोंकी कमी नहीं है कि जहाँ मनुष्य-का पित्त उचित प्रमाणमें और यथेष्ट मात्रामें वर्तमान है परन्तु उसे हुआ है पित्तरोग, पर शंकासमधानके लिये कहीं रंजक और कहीं अम्ल पित्त और कहीं रक्तपित्त इत्यादि नामोंकी मनगढ़ंत सृष्टि कर ली जाती है। अधिकसे अधिक तो यह रोगका अथवा किसी लक्षण विशेषका नाम-मात्र है। यथार्थ तो यह है कि इन व्याधियोंसे और यकृतद्वारा संचित पित्तसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। हाँ, यदि त्रिदोषकी पुरानी व्याख्या के समान शरीर-क्रिया-विज्ञानको भी निर्विवाद मान लिया जावे, तो बात दूसरी है। भेद इतना ही है कि एक युक्ति-सम्मत अनुभवसिद्ध समयानुकूल और विश्वसनीय परिणामका देनेवाला होगा और अन्यान्य चिकित्सा पद्धतियोंकी स्पर्धामें टिक सकेगा, दूसरा नहीं। इसके अतिरिक्त वैद्यको आत्म-निर्भरताका मूल्य भी समझ रखना सुपरिणामशील चिकित्साके लिये अनिवार्य है। जहाँ वैद्यको अपने ज्ञानकी उपयोगितामें विश्वास होता है वहां देखा गया है कि उसे यश भी मिलता है। इसके विपरीत जहाँ उसे स्वयं भ्रम अथवा संशय रहता है वहाँ प्रायः उसका परिश्रम व्यर्थ जाकर उसे अपयशका भागी बनना पड़ता है।

अब त्रिदोषकी प्रकृतिपर विचार करना चाहिये। हम कोई कारण नहीं देखते कि इस विषयमें हम आधुनिक वैज्ञानिकोंके मतका उपहास करें। यदि आज एक सहस्र वर्षोंसे आयुर्वेदकी उन्नति रुकी न होती, यदि आज भारत-वर्षके वैद्योंको खोजकी पिपासा अमेरिका और यूरूपके वैज्ञानिकोंके समान ही होती, यदि हमारे देशकी गवर्नमेंट और राजा रईस भी बड़ी बड़ी प्रयोगशालाएँ खोलकर वैद्योंको उत्साह देते होते अथवा हम ही सहस्रों वर्ष पूर्व लिखे आधार-ग्रन्थोंको सर्व-गुण-सम्पन्न, समयोपयोगी और निर्विवाद मानकर निश्चेष्ट न बैठे रहते और उनके लेखको और संग्रहकर्ताओंको देवता मानकर उनकी स्तुति और आराधना द्वारा ही सिद्धिकी आशा लगाये न बैठे होते तो कदाचित हमारे शरीरक्रियाविज्ञान (फिजियालोजी) और (पैथालोजी) शरीरविकृतिविज्ञानसे पाश्चात्य वैज्ञानिक भी अवतरण लिया करते। परन्तु जब कि दुर्भाग्य-वश ऐसी स्थिति नहीं है तो हमें मिथ्याभिमान न करके अपनी कमी अवश्य पूरी करनी चाहिये। विज्ञान एक-देशी नहीं होता, सारे संसारको उसका फल भोगनेका अधिकार है। हमारा संकेत यह है कि त्रिदोषोंकी प्रकृतिके विषयमें निरर्थक वाद-विवाद न करके जिन अवयव विशेष-की जो क्रिया आज वैज्ञानिक जगतको मान्य है उसे आयुर्वेदमें भी मान्य समझकर जिन अवयवोंका जिस दोषसे सम्बन्ध ऊपर बतलाया जा चुका है उनकी प्रकृतिको अर्थात् उनके व्यापारोंको ही उक्त दोषोंकी प्रकृति या व्यापार मान लिया जावे। यह भय न करना चाहिये कि ऐसा करनेसे हमें पुराने सिद्धान्तोंसे कितनी दूर हटना पड़ेगा। हटना तो पड़ेगा परन्तु उन्नतिके पथपर चलनेकी अनिच्छाके कारण न हटना हठधर्मी नहीं है तो क्या है? अमेरिकाके वैज्ञानिक जापान या जर्मनीकी वैज्ञानिक शोधोंको सादर स्वीकार करते हैं और जापान और जर्मनी इंग्लैड और फ्रांसके। यदि ऐसा न होता तो आधुनिक जगतकी उन्नति भी न होती। पर यदि हमें अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी पकाना ही इष्ट है तो संसार-को इससे कुछ प्रयोजन नहीं। हमीं भूखे रहेंगे, निर्बल रहेंगे, पुरुषार्थ न कर सकेंगे और अकाल मृत्युसे मरेंगे।

६—त्रिदोषवादियोंकी गुत्थियां

दोषोंकी प्रकृतिको विज्ञानमूलक मान लेनेपर यह अनिवार्य हो जाता है कि उनकी विकृतिको भी विज्ञान-की ही दृष्टिसे देखा जाय। किसी विषयका ज्ञान यदि

वह वैज्ञानिक साधनोंद्वारा प्राप्त हुआ है व्यवहारोपयोगी और विश्वसनीय ही सिद्ध होगा। जितने भी वैद्य अथवा अवैद्य किसी पीड़ा या रोगको दूर करनेके प्रयासमें जो कुछ उद्योग करते हैं उसकी तहमें शरीरकी विकृतिके विषयमें किसी न किसी प्रकारकी कल्पना अवश्य रहती है। यह सब कल्पनाएँ प्रायः सत्य नहीं होतीं। परंतु उपचारोंके परिणाम प्रायः यथेष्ट प्रकारसे लाभकारी पाये जाते हैं। इस परसे यदि कोई यह आशय निकाले कि शरीरकी विकृतिके विषयमें उसकी जो कल्पना थी वह निर्विवाद अथवा एक वैज्ञानिक सत्य है तो आश्चर्य नहीं। परंतु दूसरी बार जब वह उसी कल्पनाके आधारपर फिर उसी प्रकारका उपचार करता है, तो असफल होकर या तो रोगीपर कुपथ्यका अभियोग लगाता है अथवा परिचारकपर असावधानीका। उसकी समझमें नहीं आता कि जब वह एक बार इसी प्रकारके रोगीको एक विशेष प्रकारके उपचारद्वारा रोगमुक्त कर चुका है तो उसी प्रकारके दूसरे रोगीको उसी उपचारसे क्यों न लाभ होना चाहिये। वह यह नहीं जानता कि भिन्न प्रकारकी विकृतियोंसे प्रायः समान लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं और एक ही प्रकारकी विकृति भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंपर भिन्न-भिन्न प्रकारका प्रभाव डाल सकती है। वह न उपचारकी गलती स्वीकार करता है और न निदानकी, और सफलतासे असफलता और असफलतासे सफलताके साथ टकराता हुआ सफलताका यश अपने लिये और असफलताका अपयश दूसरेके हिस्सेमें बाँटकर चिकित्सकका पद सफल करता है। वैद्यवृन्द दोषोंकी विकृतिके विषयमें जिस ज्ञान सम्पन्नताका परिचय देते हैं वह न तो शास्त्रसम्मत होता है और न विज्ञानसम्मत। कभी तो वह कहते हैं कि ग्रहणी नामक भाग-विशेषमें पित्त कुपित होकर अपान वायुको दूषित कर देता है और कभी यह कहते हैं कि अपानवायु स्वयं कुपित होकर पित्तको आमाशयमें नहीं आने देती। पित्तज्वरमें सिर-दर्दका कारण कभी तो यह बतलाया जाता है कि अपानवायुके कुपित होनेसे पित्त सिरमें व्याप्त हो जाता है और कभी यह कि पित्तके कुपित होनेके कारण सिरमें रहनेवाली उदान-वायु कैद होकर मँड़राया करती है। गठिया (क्रोष्टुशीर्ष) वातव्याधिमें कभी तो यह कहा जाता है कि जोड़ोंमें वायु भर जाती है जिसके कारण शोथ और पीड़ा होती है और कभी यह कि जोड़ोंमें रहनेवाली वायु स्वयं कुपित होकर रक्तमें मिल जाती है जिससे रोगाक्रान्त स्थान फूला हुआ और वायुके अभावके कारण पीड़ाका अनुभव करता है। बहुमूत्रको कफजन्य व्याधि, मधुमेहको पित्तमूलक, और अजीर्णको वायुमूलक बताकर वैद्यगण कल्पना-जगत्में न जाने किस विकृतिकी सिद्धि करते हैं। शरीर-क्रिया-शास्त्रके साधारण तत्व जाननेवाला भी इन कारणोंके जाननेमें असमर्थ रहता है। वह कुछ न कुछ कारण मानकर चिकित्सा आरम्भ कर देनेकी अपेक्षा केवल बाह्य लक्षणोंके शमन-द्वारा रोगीका मन बहलाये रखना अधिक श्रेयस्कर समझता है। परंतु जो लोग दोषोंकी विकृतिकी मनगढ़न्त कल्पनाएं करते हैं वे एक ओर शास्त्रीय मत और दूसरी ओर वैज्ञानिक व्याख्याको रखकर दोनोंमेंसे एकका भी यथेष्ट ज्ञान न रखकर दोनोंमें एक विचित्र समझौता स्थापित करना चाहते हैं। ऐसा करनेसे वे चाहे अपने रोगियोंको अपने अगाध ज्ञानका संतोषजनक परिचय देनेमें समर्थ भले ही हो सकें परंतु विद्वान् संसार उन्हें उपहासकी दृष्टिसे ही देखेगा। उनकी इस प्रकारकी कल्पनाओंसे आयुर्वेदकी उन्नति कदापि नहीं हो सकती और न आयुर्वेदकी उन्नति पुराने आचार्योंके रचे हुए श्लोक-दुर्गमें बाँधकर कैद रखनेसे ही हो सकती है। तात्पर्य यह है कि दोषोंकी प्रकृति और विकृतिके विषयमें हमें आधुनिक विज्ञानकी खोजोंको सादर ग्रहण करके आयुर्वेदमें उसका समावेश करना और उसकी महत्ताको बढ़ाना चाहिये और पुराने वाक्योंका नया भाष्य विज्ञानके आधारपर करना चाहिये।

पाश्चात्य चिकित्सा-साहित्यमें शरीर-विकृति-विज्ञानपर अनेक ग्रन्थ हैं। छोटीसे छोटी और साधारणसे साधारण बात पर अधिकसे अधिक प्रकाश डाला गया है। उस शास्त्रके पढ़नेसे शारीरिक विकृतियोंका बोध इतना स्पष्ट हो जाता है जितना कि दर्पणमें मुँह देखकर। क्या, वैद्यगण कोई ऐसा कारण भी बतला सकते हैं कि जिससे विकृतियोंका वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना वैद्य और रोगी तथा आयुर्वेद और उसकी उन्नतिके लिये श्रेयस्कर न होगा? मैं जानता हूँ कि बहुतसे वैद्योंके स्वाभिमानको इस प्रकारके लेखसे बड़ा धक्का पहुँचेगा, परंतु मेरा लक्ष्य इससे बहुत दूर है।

हालकी वैज्ञानिक खोजोंसे दार्शनिक कल्पनाओंका एकीकरण

प्रकृति और एलेक्ट्रॉन, प्रोटोन

(लेखक—स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य)

१–प्रकृति क्या है ?

हमारे प्राचीन विचारक सृष्टिकी आदि-रचनामें कुछ मतभेद रखते हैं। कुछके विचार हैं कि इस विषयमें एक ही अनादि अनन्त सत्ता ईश्वरकी है। एक समय वह आता है जब प्रकृतिके सारे जीव उसमें तल्लीन हो जाते हैं। कुछके विचार हैं कि जिस प्रकार इस विश्वमें ईश्वर अनादि, अनन्त है उसी प्रकार प्रकृति भी अनादि, अनन्त, नित्य है। उसके विकृतरूप विश्वका तिरोभाव हो जानेपर, विश्वके नष्ट हो जानेपर, प्रकृति नष्ट नहीं होती। कुछ इस प्रकृतिको इस विश्वका स्वतः उपादान-कारण जीव-सहित मानते हैं, कुछ कहते हैं कि प्रकृतिके कार्य व्यापार ईश्वरकी प्रेरणासे होते हैं। हम इन मतोंके सम्बन्धमें कोई अधिक विचार नहीं करेंगे कि उनमें सही कौन सा है। हमने एक और लेखमें ईश्वरकी सत्ता कैसी है और वह विश्वका मूल कारण किस प्रकार है इसको स्पष्ट कर दिया है। यहाँ उसी प्रकार स्वतन्त्ररूपेण प्रकृतिके कारणत्वपर भी अपने विचार रक्खेंगे। हमारे यहां यदि प्रकृतिकी अनादिता और नित्यताका विचार छोड दिया जाय,—और केवल इस बातको देखा जाय कि इस विश्वकी रचनामें प्रधान हाथ किसका है,—तो सब मत एक स्वरसे यही कहते मिलेंगे कि इस विश्वमें प्रकृति ही एक उपादानकारण है। विश्वरचनामें प्रकृतिकी ही प्रधानता है। सृष्टिरचनाके समय उस प्रकृति-को कोई प्रेरित नहीं करता। प्रत्युत उसमें स्वतः कार्य करने और कार्य-रूपमें परिणत होनेकी शक्ति है। [ज्योतिर्विज्ञानसे सिद्ध है कि विश्वमें कहीं सृष्टिरचना हो रही है, कहीं संहार हो रहा है, विकास और ह्रास दोनों निरन्तर स्वतः जारी हैं। अतः सृष्टि और प्रलयका कोई विशेष समय नहीं है। काल सापेक्ष है। रा० गौ०।] शास्त्रकारोंने प्रकृति शब्दके अर्थसे भी यही सिद्ध किया है कि जो अपने कार्यव्यापारमें स्वतः समर्थ हो वही प्रकृति है। प्रकृतिको शक्ति, सामर्थ्य रूप भी माना है जिसकी निरुक्ति भी यों की है यथा—"शक्यते कर्तुम्" अथवा "शक्यते वा तया परलोकं जेतुम्" अर्थात् कार्य करनेकी स्वतः ही शक्ति जिसमें हो अथवा कार्यरूपमें परिणत होनेकी जिसमें शक्ति हो उसे शक्ति कहते हैं। इसी प्रकार "शक्यते सामर्थ्यंवा" समस्त कार्य करनेकी जिसमें सामर्थ्य हो। अथवा स्वकृत्ये समर्थं वा, अपने कृत्यमें स्वयं समर्थ हो वह सामर्थ्य है

मैं इस विषयमें परिश्रमसे जी चुराकर पाश्चात्य विज्ञानको अपनानेकी सिफ़ारिश नहीं कर रहा हूँ, किन्तु उसे सुदृढ़ और सुरक्षित बनाये रखनेके लिये ही विज्ञानकी अपेक्षा करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि त्रिदोषका व्यापार-क्षेत्र (?) और तत्सम्बन्धी अवयवोंकी आपेक्षिक और स्वाधीन क्रियाओंकी नीवपर ही निदान और चिकित्साकी इमारत खड़ी की जाये। केवल सामग्री आयुर्वेदकी हो, नकशा वैज्ञानिक और समयानुकूल।

भूमिकाके रूपमें मुझे जो कुछ कहना था कह चुका। परंतु मैं समझता हूँ कि जो कुछ कहा है वह थोड़ा नहीं, बहुत है। केवल मनोविनोदके लिये पढ़नेवाले पाठकोंको कदाचित मेरा लिखना पर्याप्त न हो परंतु जिन्हें सचमुच यह चिंता है कि त्रिदोषोंकी आकृति, प्रकृति और विकृति इस प्रकार स्थित की जावे कि वह सारे संसारकी विद्वान् मंडलीको मान्य हो और डाक्टर रणजीत सिंह और कर्नल जे० जे० हौरनलसनको उसपर अनुचित आक्षेपोंका मौका न रहे। उन्हें काममें जुट जानेके लिये इस योजनासे कुछ उत्साह मिलेगा, इस आशासे ही मैंने इस विषयपर अपना मत स्वतंत्रता-और निर्भीकता-पूर्वक लिख दिया है। नहीं कहा जा सकता कि फल क्या होगा।

इस प्रकार प्रकृति, शक्ति, और सामर्थ्य नामसे उसके स्वतः कार्य करनेकी शक्तिका बोध होता है।

जिस प्रकृतिके सम्बन्धमें इस प्रकारका सैद्धान्तिक वर्णन पाया जाता है उस प्रकृतिका स्वरूप कैसा है? और उससे विश्वनिर्माणका क्रम कैसे चलता है? इसके सम्बन्धमें हमारे ग्रन्थकार संक्षिप्त सा सैद्धान्तिक निरूपण देते हैं। वह कहते हैं कि "सत्वरजस्तमसांसाम्यावस्था प्रकृतिः" अर्थात् सत्व, रज और तम तीनोंकी साम्यावस्था, बराबरीकी अवस्थाका नाम है प्रकृति। यहाँपर जो अवस्था शब्द आया है वह सत्व, रज, तमसे सम्बद्ध है, ऐसा तो इस सूत्रसे प्रकट होता है। किन्तु, उनकी साम्यावस्था समानावस्थामें प्रकृतिका रूप जो बतलाया गया है, उसका स्पष्टीकरण किसी ग्रंथकारने नहीं किया। सत्व, रज और तम क्या हैं? और इनकी विषमावस्था और साम्यावस्था क्या है? यदि इसका कहींसे स्पष्ट उल्लेख मिले तो प्रकृतिके स्वरूपका स्पष्टीकरण हो सकता है।* (किन्तु मिलता नहीं)। कोई एक वस्तु जब भिन्न भिन्न समयमें, भिन्न भिन्न स्थितिमें देखी जाती हो जैसे मनुष्य, बालक युवा और फिर वृद्ध होता है तो उसके शरीरकी इस परिवर्तनशील स्थितिको देखकर हम कहते हैं कि मनुष्य प्रथम बालक फिर युवा और फिर वृद्ध होता है। मनुष्यके शरीरकी इन भिन्न भिन्न स्थितियोंको हम अवस्था कहते हैं। अवस्था शब्द स्थामें 'अव' उपसर्ग लगकर बना है जिसका अर्थ है किसी वस्तुका विशेष दशामें ठहरा रहना। यह सब जानते हैं कि मनुष्य शरीरपर उक्त तीनों अवस्थाएँ एक साथ एक समय नहीं रहतीं। इसी प्रकार यदि सत, रज और तम नामक तीन अवस्थाएँ हों और प्रकृतिरूपी शरीरपर आती हों तो, इस प्रकारका आना या मानना सुसंगत नहीं दीखता। यदि सत, रज और तम नामक विविध वस्तुओंके तीन भिन्न रूप हों और वह रूप संख्यावाले हों जिनमें घटी बढ़ी होती हो और वह विशेष स्थितिमें आ सकते हों जहाँ उनकी साम्यता या बराबरी बनती हो, तो वहाँ हम इसे एक जैसी हालतमें आना कह सकते हैं। और उन तीनोंके इसी एक-रूपताको प्रकृतिका रूप बना सकते हैं।

इस सूत्रकी सत, रज और तम नामक विशेष विभाग युक्त वस्तुसत्ता तथा उनकी साम्यावस्थामें प्रकृतिका रूप, तल्लीन हो रहा है। शास्त्रोंमें सत, रज और तमका जो अर्थ दिया है और उसे गुणरूप कहा है, उन समस्त अर्थोंका इस प्रकृतिकी साम्यावस्थासे कोई सम्बन्ध नहीं मिलता। क्योंकि यहाँ तो शास्त्रकार प्रकृतिके स्वरूपका निर्देश करता है। और यही एक सूत्र है जो वास्तवमें प्रकृतिके रूपका उद्‌घाटन करा सकता है। इस सूत्रसे भिन्न,—प्रकृतिके रूपका विवेचन देनेवाला,—अन्य प्रमाण भी नहीं है। हम यदि उक्त सूत्रके आधारपर यह कहें कि प्रकृति अनेकरूपा है और उसके सत, रज, तम, तीन विशिष्ट रूप हैं जिनसे विश्वका व्यापार आरम्भ होता है, यही विशिष्ट तीन रूपोंका समावस्थामें आना प्रकृति है, तब ठीक अर्थ हो सकता है। इनके रूपकी समावस्थाका भावार्थ है प्रकृतिकी निश्चल, निष्क्रिय अवस्था जहाँ विश्वका व्यापार नहीं होता। और जब वह प्रकृति विकृतिमें,— असाम्यावस्थामें,—(सत, रज, तमकी असमसंख्यामें) आती है तो उस प्रकृतिसे महत्, अहंकार आदिके रूपोंका प्रादुर्भाव होता है। अर्थात् उस समय प्रकृतिके अनेक रूप बन जाते हैं। अब हमें यहांपर प्रकृतिके सत, रज, तम नामक सत्ताको ढूँढ़ना है और यह देखना है कि इनका गुण, स्वभाव क्या है?

२–सत्व रज तम सत्ताके गुण-स्वभाव

इस समयतक जितनी भी सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातोंका अनुसन्धान हो चुका है उनमेंसे दैनिक शास्त्रके सूक्ष्म अनुसन्धानोंमेंसे एक बात स्पष्ट हो रही है कि इस विश्वमें स्थूल दृष्टिसे दो वस्तुएँ दिखाई देती हैं। एक पदार्थ और दूसरी शक्ति। अणु-और परमाणुरूप विश्वकी सत्ता पदार्थ है तथा इससे भिन्न विद्युत, प्रकाश, उत्ताप, आकर्षण आदि अनेक जीती जागती सत्ताएँ शक्तिरूप हैं। पदार्थमें शक्ति और शक्तिमें पदार्थ निहित है। और इन दोनोंका समवाय सम्बन्ध या नित्य सम्बन्ध देखा

* "सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति संभवाः" (गीता)
सत्व रजस् तमस् ये तीनों गुण प्रकृतिसे सम्भूत हैं। ये तीनों गुण हैं, द्रव्य नहीं हैं। तीनों गुणोंका साम्यावस्थामें रहना ही प्रकृति है। इनकी विषमता ही विकृति है। साम्यावस्था प्रलयावस्था है। वैषम्य, विकृति, सर्गावस्था हैं। यह बातें तो अपने हिन्दू साहित्यमें स्पष्ट हैं। रा० गौ०

* वस्तुसत्ता और परमाणुमय माननेसे ही संख्या हो सकती है। गुण माननेसे संख्या नहीं कह सकते। मात्रा कह सकते हैं। रा० गौ०

जाता है। या यों कहिये कि पदार्थमें शक्ति है और शक्तिमें ही पदार्थत्व है। इस समय जिन व्यक्तियोंने परमाणुओंकी अन्तर्रचनाका अनुमान किया है, वह प्रयोगोंसे सिद्ध करते हैं कि परमाणु या पदार्थके भीतर दो प्रकारके भिन्न भिन्न कण एक विशेष स्थितिमें विद्यमान हैं, जिससे पदार्थ या परमाणुका स्वरूप बना है। यदि यह दोनों कण उस विशेष स्थितिसे हट जायं तो उस पदार्थका पदार्थत्व मिट जाता है। इनका नाम वह रखते हैं, Proton और Electron। हम इनका नाम रखते हैं, **सतप्रपराणु और रजप्रपराणु**। प्रपराणु शब्द परमाणुसे भी अत्यन्त सूक्ष्म कणिकाओंके लिये प्रयुक्त हुआ है। प्र + परा + अणु। जिन वैज्ञानिकोंने इनका अच्छी प्रकार अनुशीलन किया वह सिद्ध करते हैं कि इन परमाणुओंके भीतर एक केन्द्र होता है, उस केन्द्रमें तो सत प्रपराणु रहता है और उस केन्द्रके बाहर एक विशेष सीमाके भीतर रजप्रपराणु उस केन्द्र-वर्त्ती सतप्रपराणुके चक्कर काटा करता है। उद्जन नामक तत्वमें सत और रजप्रपराणुओंकी संख्या एक एक पायी जाती है किन्तु इससे आगे अन्य तत्वोंके परमाणुओंमें इनकी संख्याएं विषम अनुपातमें ही मिलती हैं। अर्थात् कहीं यह दो चारमें हैं तो कहीं ३:६, ८:१६, हैं। इसी प्रकार आगे अधिकाधिक अन्तर पड़ता चला गया है।

यह सत और रजप्रपराणु एक विशेष आकृति रूप भार आदिके होते हैं। और सतप्रपराणु, रजप्रपराणुसे बिलकुल भिन्न रूप गुण शक्ति स्वभाव वाले हैं। इनके सूक्ष्म रूप-का अध्ययन करनेवालोंने जो कुछ इनके सम्बन्धमें मालूम किया है वह इस प्रकार है।

३—सतप्रपराणुओंकी तन्मात्रा गुण आदि

इनके अस्तित्वका पता कुछ रश्मिविकीरक तत्वोंके परमाणुओंके टूटनेके समय लगा। वहाँ यह किसी उक्त पर-माणुके टूटनेपर जब केन्द्रसे विलग हुए तो इनके रूप, गुण, स्वभावका बहुत कुछ ज्ञान प्रयोगोंसे हो गया यथा—

(१) सतप्रपराणु अत्यन्त सूक्ष्म कणिकाकृति होते हैं, जिनका तन (आयतन) लगभग उद्जन परमाणुके और मात्रा उद्जन परमाणुसे कुछ अधिक पायी जाती है।

(२) यह प्रपराणु स्वतः स्वभाव ज्योतिःस्वरूप और अपने कार्य व्यापारमें स्वतः समर्थ हैं। अर्थात् विश्व निर्माणकी सामर्थ्य स्वतः ही इनमें निहित है।

(३) जब यह किसी तत्वके परमाणुसे उसके विच्छेद कालमें निर्गत होते हैं तो ईथर या आकाशमें यह प्रतिसे केण्ड २०,००० मीलकी गतिसे एक सरल रेखामें ही गमन करते हैं।

(४) जिस स्थानसे इनका उद्गम हो उसके आस-पास या इनके मार्गमें रजप्रपराणु हों तो यह फिर सरल रेखामें नहीं चलते। बल्कि उनको पाते ही उस ओर झुकते हैं और उनसे टकराते,—या यों कहिये कि उनको देखते ही उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं और उस ओर बढ़ते या उनके समीप पहुँचनेकी चेष्टा करते ही वह कहीं विलीन या अन्तर्हित हो जाते हैं। इसके पश्चात् उनके उस ज्योतिः स्वरूपका कोई पता नहीं चलता कि कहाँ गये।

(५) इन्हें अपने उद्गम स्थानसे निकलते समय किसी प्रबल अवरोधी पदार्थसे रोकनेकी चेष्टा की जाय तो यह अवरोधी पदार्थसे टकराते ही नहीं वरन् विलीन हो जाते हैं। और जहाँ यह किसी अवरोधी पदार्थसे टकराकर विलीन हो रहे हों वहाँ काफी मात्रामें रजप्रपराणु विद्यमान हों तो इन दोनोंकी विद्यमानतामें उस टकरानेके समय नये परमाणुओंका जन्म होता है। ऐसे समय भिन्न-भिन्न तत्वोंके परमाणु इनसे बनते पाये गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि रजप्रपराणुओंसे सतप्रपराणुओंका रासायनिक स्नेह है, इनमें परस्पर प्रीत्याकर्षण होता है और यह फिर नये सिरेसे परमाणुका रूप बनाते हैं। और परमाणुके रूपमें आनेपर पुनः यह अपनी अपनी शक्ति सामर्थ्य उस परमाणु-को देकर उसका रूप खड़ा कर देते हैं। ऐसे समय उस परमाणुमें इनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कोई नहीं रहता।

(६) प्रत्येक मौलिकके परमाणुमें इनकी संख्या विविध होती है। किन्तु एक ही मौलिकके समान परमाणुमें इनकी संख्या अबतक प्रायः निश्चित पायी जाती है। ऐसा प्रायः नहीं होता कि उद्जनके किसी एक परमाणुमें इनकी संख्या एकसे कम या अधिक हो। जबतक यह किसी परमाणुकेन्द्रमें अपने स्थानपर बने रहते हैं, परमाणुका अस्तित्व बना रहता है, और उस परमाणुसे अनेक अणु और यौगिक पदार्थ बनते बिगड़ते

रहते हैं। जहाँ यह उस केन्द्रसे विचलित हुए,--स्थान छोड़ा नहीं कि,-परमाणुका अस्तित्व वहीं मिट जाता है।

(७) जितने भी सतप्रपराणु किसी प्रकार देखे और परीक्षामें आये हैं सब अपनी सामर्थ्यमें एक समान हैं। सबकी तन्मात्रा भी एक जैसी ही है अर्थात् जितना तन जितनी मात्रा एक सत प्रपराणुमें पायी जाती है उतनी ही अन्यमें होगी। इसमें यत्किञ्चित् अन्तर नहीं पाया जाता।

(८) प्रत्येक सत प्रपराणु जब किसी परमाणुकी रचनामें प्रयुक्त होता है तो उस समय इसकी मात्रा कुछ घट जाती है। उद्जन परमाणुसे यह भारी है किन्तु एक उद्जन परमाणुमें इसकी १ संख्या भारी होनेपर भी उद्जनका परमाणु इससे कुछ हलका रहता है। खोजनेसे इसके रहस्यका पता निकल आया है। जिस समय यह सतप्रपराणु रजप्रपराणुके रासायनिक-स्नेहमें बैठने लगता है, उस समय इसकी कुछ सामर्थ्य उसको अपने अंकपाशमें बाँधनेमें बँट जाती है। और वह उस समयतक बँटी रहती है जबतक परमाणुका अस्तित्व रहता है। यह उसका बन्धक सामर्थ्य परमाणुकी मात्राके साथ नहीं तुलता। इसी लिये उस उपादानसे पदार्थ कुछ हलका रहता है।

(९) विद्युत्धारामें इन सत प्रपराणुओंका प्रबल पुञ्ज होता है। विद्युत्धाराके समय सब जानते हैं कि दो तारोंका उपयोग होता है। इसमेंसे एक तारका सामर्थ्य या धनधारा नाम होता है। यद्यपि तारमें एक दूसरी शक्ति या ऋणधारा भी होती है, जो रजप्रपराणुओंके प्रबल पुञ्ज-प्रवाहका नाम है। यह दोनों शक्ति सामर्थ्य विद्युत्-धारामें सम्मिलित रूपमें होता है तथापि एक तार जिसमें सत प्रपराणुके प्रबल पुञ्जका प्राबल्य होता है वह सामर्थ्यधारा या धनधाराके नामसे पुकारा जाता है। और जिसमें रजप्रपराणु पुञ्जका प्राबल्य होता है उसे शक्ति या ऋणधाराके नामसे पुकारते हैं। और जहाँपर जाकर उक्त तारोंके किनारोंको मिलाकर एक कुंडली पूर्ण कर देते हैं, वहाँ दोनों ओरसे उक्त धारामें आनेवाले यह सत रज-प्रपराणु-समूह उस कुण्डलीके स्थानमें आकर बड़े सघनपुंज रूपमें, वहाँपर २०,००० से लेकर एक लाख मील प्रति सेकेण्डकी चालसे आते हुए, टकराते हैं। इनके इस टक्करसे वहाँ एकाएक प्रकाश-संजनक प्रबल उत्ताप होता है, जिसके संरक्षणकी विधि हमने मालूम कर ली है। इसीसे आज हम हर एक शहरमें इस विद्युत्का प्रकाश प्राप्त कर रहे हैं।

४-रजप्रपराणुओंकी तन्मात्रा और गुणादि

रजप्रपराणुओंका पता सर्वप्रथम क्रुक्सद्वारा निर्मित शून्य-नलीमें विद्युत्धाराके बहानेपर हुआ। और वहीं इसके रूप गुणकी बहुत कुछ परीक्षा भी हुई। इसके सम्बन्धमें निम्न बातें जानी गयीं।

(१) यह सतप्रपराणुवत् अत्यन्त सूक्ष्म कणिका रूप होते हैं, जिनका तन उद्जनके १/१००००० भागके बराबर सूक्ष्म है। और मात्रामें यह उसके १/१८५० के तुल्य है। अर्थात् यह सतप्रपराणुसे तन्मात्रामें अत्यन्त छोटा है।

(२) यह प्रत्येक प्रपराणु स्वतः स्वभावसे शक्तिस्वरूप और ज्योतिः स्वरूप हैं और प्रत्येक प्रपराणुकी इकाई विद्युन्मात्राकी पूर्ण गुणक होनेसे ज्ञात हुआ कि यह विद्युत्-स्वरूप ही हैं।

(३) जब यह किसी स्थानसे निकलते हैं तो ईथरमें इनकी गति एक लाख प्रति सेकेण्ड होती है। और यह भी गमन करते समय एक बिलकुल सीधी सरल रेखामें चलते हैं।

(४) इन समान प्रपराणुओंमें एक समान विद्युत् शक्ति या मात्रिक शक्ति विद्यमान है। और इसकी शक्ति और इसकी मात्रा अन्तकी मात्रा है। इसीलिये यह तन्मात्रा-की परम इकाई हैं, ऐसा माना गया है।

(५) जब यह अपने उद्गम स्थानसे निकल रहे हों, उस समय इनको रोकनेके लिये फुटों मोटी धातुकी दीवारतक खड़ी की गयी पर यह उनके बीचमेंसे घुसकर उससे उसी प्रकार पार निकल जाते हैं जैसे खुले स्थानमें चलते हैं। अवरोधी पदार्थोंको पार करते समय भी इनकी चाल वही एक लाख मील देखी गयी, इससे ज्ञात हुआ कि इनपर अवरोधी पदार्थकी बाधा कुछ नहीं होती।

(६) जब यह किसी उद्गम स्थानसे निकल रहे हों, उस समय इनके किसी ओर महत्का प्रभाव उत्पन्न किया जाय अर्थात् चुम्बक लाया जाय तो जहाँ महत्का प्रभाव हो वहाँ यह प्रपराणु पुञ्ज उस ओर कुछ आकर्षित होकर आगेको बढ़ते पाये जाते हैं। इससे पता चलता है कि इनपर महत्का प्रभाव होता है।

(७) इसके धारा पुञ्जको किसी स्थानपर टकरावें तो

उस स्थानको यह रक्ततप्त कर देते हैं। और जब वह किसी अवरोधी पदार्थसे टकराकर वक्र होते हैं तो उस, समय इनसे एक अद्‌भुत प्रकारकी ज्योति निर्गत होती है जो त्वचा मांस आदिमेंसे तो विना बाधाके पार हो जाती है, पर अस्थिको पार नहीं करती। इसी ज्योतिके उपयोग-से मानव शरीरके अस्थियोंका चित्र लिया जाता है।

(८) यह रजप्रपराणु ही जब सतप्रपराणुके जालमें फँस जाते हैं तो यह उसपर इतने आसक्त होते हैं कि यह फिर अपनी स्वतन्त्र गति, स्वतन्त्र शक्तिको भूल जाते हैं और उनके प्रेमपाशमें बँधकर सदा उस सतप्रपराणुकी परिक्रमा करने लग जाते हैं। इनके सतप्रपराणुके साथ संयोगसे परमाणुओंका प्रादुर्भाव होता है। उस समय इनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कुछ नहीं रहता। परमाणु-के अस्तित्वमें इनका आस्तित्व निहित होता है।

(९) परीक्षाओंसे देखा गया है कि ईथरमें व आकाश वा अन्तरिक्षमें जहाँ देखो यह रजप्रपराणु इसा प्रकार परिपूर्ण हो रहे हैं, जैसे समुद्रमें जल और पृथ्वीपी हवा। इनसे कोई स्थान खाली नहीं। यही नहीं, यहर समस्त विश्वमें व्यापक हो रहे हैं। जिस तरह विश्वमें स्वतन्त्रतया इनका अस्तित्व मिलता है उस तरह सत-प्रपराणुओंका नहीं मिलता।

यह बात नहीं कि ईथरमें केवल रजप्रपराणु ही रज-प्रपराणु होंगे। सतप्रपराणु जब परमाणुके टूटते समय निकलते हैं तो कुछ दूर चलकर अन्तर्धान हो जाते हैं, फिर उनके अस्तित्वका पता नहीं चलता। निश्चय है कि उस समय भी उनका किसी ऐसे तमरूपमें अस्तित्व रहता है जिसको हम प्रयोगोंसे नहीं जान पाते।

हमारे यहाँ प्रकृतिकी तीन अवस्थाएँ मानी हैं। इनमेंसे प्रकृतिकी सत, रज, रूप अवस्थाका तो हमें अच्छी तरह परिचय मिलता है। पर जब सत प्रपराणु अन्तर्द्धान होकर हमारी प्रयोग कसौटीसे परे हो जाते हैं, छिप जाते हैं, तो निश्चय है कि वह नष्ट नहीं होते, बल्कि किसी अन्य रूपमें चले जाते हैं। उनकी उस अवस्थाको हम जान नहीं पाते। तमसका अर्थ है ऐसी स्थिति जिसका बोध न हो सके। यह तो प्रयोगोंसे भी देखा जा चुका है कि इस विश्वमें जितना भी शक्ति सामर्थ्यका भण्डार है तथा प्रकृतिके जितने भी महत्, विद्युत, प्रकाश, उत्तापादि रूप पाये जाते हैं नष्ट नहीं होते बल्कि एक रूपसे दूसरे रूपमें बदलते रहते हैं। इनका प्रवाह नित्यशः प्रयोगोंसे सिद्ध हैं। जब यह नित्य हैं, इनका नाश नहीं है, तो निश्चय है कि सत प्रपराणु किसी ऐसे रूपमें चले जाते हैं जिसकी अवस्थाका हमें ज्ञान नहीं होता। सम्भव है यह अवस्था साम्यावस्था-की हो, जिसका हमारे शास्त्रोंने निरूपण किया है, और जिसका नाम प्रकृति दिया है। कुछ दार्शनिक विद्वान् कहेंगे कि हमारे ग्रन्थोंमें तो प्रकृतिको अव्यक्त, अगोचर माना है। यहाँपर जो कुछ प्रयोगोंसे जाना गया है यह तो सब व्यक्त हो गया। इस व्यक्त और प्रयोगसिद्ध वस्तुसे प्रकृति बहुत ही दूरकी सत्ता है। यह कुछ और ही होगा, प्रकृतिका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके सम्बन्धमें उन व्यक्तियोंको सांख्यकारिका देखनी चाहिये जिसका यह अभिप्राय कहीं नहीं लिया गया है कि अव्यक्त पदार्थका अस्तित्व नहीं होता, बल्कि वहाँ कहा है "अव्यक्त प्रकृति यद्यपि इन्द्रियोंकी प्रत्यक्ष गोचर न हो तथापि उसका अस्तित्व सूक्ष्म रूपसे अवश्य होना चाहिये।" प्रकृतिसे ही विश्वके स्थूल पदार्थोंका रूप बनता है। इसी-लिये उसे प्रसक्तधर्मिणी कहते हैं। और आरम्भ-सृष्टिमें सत रज तम तीनोंकी साम्यावस्थाका भंग स्वयम् उसीमें होता है। इसीलिये उसे गुणक्षोभिणी भी कहा है।

५—अव्यक्तताके सम्बन्धमें

लोकमान्य पंडितप्रवर तिलकजी महाराजने अपने गीता रहस्यके क्षराक्षर-विचार नामक सातवें प्रकरणमें लिखा है कि "जो अनेक पदार्थ हमारी इन्द्रियोंके गोचर होते हैं अर्थात् जिन्हें हम देखते हैं, सुनते हैं, चखते हैं, सूँघते हैं, स्पर्श करते हैं, उन्हें सांख्य शास्त्रमें व्यक्त कहा है। स्मरण रहे कि जो पदार्थ हमारी इन्द्रियोंको स्पष्ट रीतिसे गोचर होते हैं वे सब व्यक्त कहलाते हैं, चाहे फिर वे पदार्थ अपने आकृतिके कारण, रूपके कारण, गन्धके कारण या किसी अन्य गुणके कारण व्यक्त होते हों। व्यक्त पदार्थ सूक्ष्म भी होते हैं। यहाँ सूक्ष्मसे छोटेका मतलब नहीं। 'सूक्ष्म शब्दसे स्थूलके विरुद्ध' या वायुसे भी अधिक महीन। यही अर्थ होना चाहिये। स्थूल और सूक्ष्म शब्दोंसे किसी वस्तुकी शरीर रचनाका ज्ञान होता है और व्यक्त

एवं अव्यक्त शब्दोंसे हमें यह बोध होता है कि उस वस्तुका प्रत्यक्ष ज्ञान हमें हो सकता है, या नहीं। अतएव भिन्न भिन्न पदार्थोंमेंसे चाहे वे दोनों सूक्ष्म हों तो भी,—एक व्यक्त दूसरा अव्यक्त हो सकता है। उदाहरणार्थ, यद्यपि हवा सूक्ष्म है तथापि हमारे स्पर्शेन्द्रियको उसका ज्ञान होता है, इसीलिये वह व्यक्त है। पर मूलप्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म है उसका ज्ञान हमारी किसी इन्द्रियको नहीं होता। इसीलिये उसे अव्यक्त कहते हैं।" प्रमाण

व्यक्तं चेन्द्रियकं चैव गृह्यते तत्तदिन्द्रियैः।
अयोऽन्यत् पुनरव्यक्तं लिंगग्राह्यमतीन्द्रियम्॥(चरक १ अ०)

अर्थ—व्यक्तको 'इन्द्रियक' कहते हैं अर्थात् व्यक्त इन्द्रियग्राह्य है। व्यक्तसे भिन्न अव्यक्त है अर्थात् वह इतना सूक्ष्म है जिसको इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकतीं। इसी लिये प्रकृतिको अव्यक्त कहा। प्रयोगोंसे जिस सूक्ष्म सत्ताका ज्ञान बतलाया जा चुका है वह सब इन्द्रियसे परेका ही ज्ञान है, क्योंकि उसको देखनेके और जाननेके साधन सूक्ष्मताकी चरम सीमातक पहुँचे हुए हैं। गणितके अंकोंकी भी प्रायः कुछ दूरतक ही पहुँच है। भौतिक विज्ञानी भी इन सत, रज स्वरूप सत्ताको अव्यक्त ही मानते हैं। किन्तु अव्यक्तका अर्थ यह कोई नहीं मानता कि जिसकी सूक्ष्म सत्ता ही नहीं उसको अगोचर अव्यक्त कहते हैं।

यह तो प्रत्येक विचारवान् भी मानेंगे कि जिस सूक्ष्म अव्यक्त सत्तासे स्थूल व्यक्त जगत्का निर्माण होता है उस अव्यक्तकी सूक्ष्मता कितनी भी अधिक क्यों न हो, है अवश्य, बस। जब ईश्वरकी अव्यक्तताको जान लिया गया (?) तो प्रकृतिकी अव्यक्तता उसके सामने कोई अस्तित्व नहीं रखती।

निश्चय ही जिससे इस विश्वके सूक्ष्मतम पदार्थके परमाणु बने हैं जिसमें विश्वके निर्माणका प्रकट अहंभाव पाया जाता है, वही हमारे दर्शनकारके अहंकारी तत्त्व हैं। और इन तत्त्वरूप अहंकारियों तथा प्रकृतिरूप सत, रजके मध्य "महत्की विद्यमानता इन दोनोंके सम्बन्धको मिलानेवाली निश्चित कही है। जिसका ही निरूपण शास्त्रकारने "प्रकृतेर्महत् महतो अहंकारः" से स्पष्ट किया है, जिसका विस्तृत उल्लेख हम अगले किसी लेखमें करेंगे।

हमने सत, रज, और तमको महान् सूक्ष्म कणिकाके रूपमें देखा या जाना इसीलिये हम इन्हें प्रपराणु कहने लगे। शास्त्रकारने इन्हें केवल सत, रज नाम देकर इनको प्रकृतिका गुण रूप माना। मेरे विचारमें प्रकृति इन सत, रज रूप सत्ताओंसे कोई भिन्न सत्ता नहीं। उत्ताप, प्रकाश, विद्युत् सत रज प्रपराणु महत्, आदि समस्त शक्ति सामर्थ्य रूप सत्ताओंके साम्यका नाम, ऐक्यभावका नाम, प्रकृत्ति है। इन्हीं भिन्न भिन्न रूपोंमें उसकी स्वकृति देखी जाती है। इन सबोंके सामूहिक शक्ति सामर्थ्य व्यापारसे विश्वका व्यापार चल रहा है। यह प्रत्यक्ष साधनोंसे सिद्ध होता है। इनसे परे कोई सत्ता है तो वह एक ईश्वरकी है जिसके आधार पर इस प्रकृतिका कार्य व्यापार हो रहा है। यही हमारे शास्त्रोंमें कही गयी मूलप्रकृति है, जिसका मूल नहीं। "मूलाभावात्मूलम् मूलम्।"*

सम्पादकीय टिप्पणी।

स्वामीजीने इस लेखमें ऋणाणु (एलेक्ट्रोन)को रज और धनाणु (प्रोटोन)को सत्त्व माना है। सांख्याचार्य्य कपिलने प्रकृतिकी मीमांसा करनेमें सत्व, रज और तम शब्दोंका प्रयोग किया है। सांख्य संप्रदाय परमाणुवादको नहीं मानता है। वैशेषिक मत अबाध परमाणुओंका पोषक है। ऐसी परिस्थितिमें यह कहना कठिन है कि सत्व और रजका तात्पर्य्य प्रोटोन और एलेक्ट्रोनसे है या नहीं।

आधुनिक विज्ञानने परमाणुओंके धनकेन्द्रका भी विश्लेपण कर डाला है। सन् १९३२ में श्रीमती कुरी-जोलिओट और जोलिओटने और तदुपरान्त चैडविकने 'न्यूट्रोन'की खोज की। इनमें न तो धन विद्युत होती है और न ऋण। ये गामा किरणोंके समान होते हैं, पर पदार्थोंमें इनकी प्रवेशता बहुत ही अधिक है। इनका भार प्रोटोनके समान ही होता है। न्यूट्रोनको तो एक प्रोटोन और एक एलेक्ट्रोनसे मिलकर बना हुआ माना जा सकता है।

सन् १९३२ में एण्डरसनने पोज़ीट्रोनकी खोज की। इनका भार एलेक्ट्रोनके बराबर ही है, पर इनपर ऋण विद्युत् न होकर धन विद्युत् है। इस प्रकार यह प्रोटोनसे तो कहीं अधिक छोटा है, और एलेक्ट्रोनका सहोदर है। अतः इस दृष्टिसे यदि एलेक्ट्रोनको रज माना जाय तो पोज़ीट्रोनको सत्त्व मानना चाहिये न कि प्रोटोनको। पर अच्छा तो यही है कि सांख्यके पारिभाषिक शब्दोंको आधुनिक शब्दोंसे समन्वय करनेका प्रयत्न न किया जाय। सांख्यने प्रकृतिसे आरंभ कर पुरुष तकके विकासका जो क्रम निर्दिष्ट किया है उसका निजी मूल्य है। —सत्यप्रकाश

* लेखकके "सृष्टि-रचना-शास्त्र"के एक अध्यायका सार।

वेदोंका काल अबसे तीन लाख बरस पहले

वेदकाल-निर्णय । पं० दीनानाथ शास्त्रीकी खोज

[ले० पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद, हेडमास्टर गवर्नमेंट हाईस्कूल, बलिया]
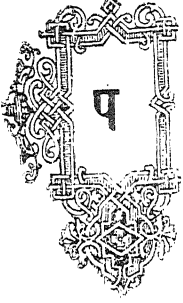
हले एक लेखमें बतलाया जा चुका है कि (१) नक्षत्रों और मासोंका संबंध क्या है, (२) वसंतसम्पात, शरद्‌सम्पात, उत्तरायण और दक्षिणायन विन्दु क्या हैं, और (३) इनके द्वारा प्राचीन कालकी गणना किस प्रकारकी जा सकती है। यह भी बतलाया गया है कि वसंत-सम्पात ९६० वर्षमें एक नक्षत्र पीछे हट जाता है। इसलिए इसका पूरा चक्कर लगभग २६००० वर्षोंमें हो जाता है। यदि यह बात सच है तो संस्कृत साहित्यमें जिसको हिन्दू लाखों वर्षोंके अनुभवका भण्डार कहते हैं इसकी चर्चा अवश्य होनी चाहिए। **पंडित दीनानाथ शास्त्री चुलैटजीने** अपने वेदकालनिर्णय ग्रन्थमें इसका विचार बड़ी विद्वत्ताके साथ किया है।

१—उत्तरायण और दक्षिणायनके विविध अर्थ

यह शब्द संस्कृत साहित्यमें कई अर्थोंमें प्रयुक्त हुए हैं। पहले लेखमें दिये हुए आकाशचित्रोंसे यह भली भाँति प्रकट होता है कि वसंतसम्पातसे आगेके साढ़े तेरह नक्षत्र विषुववृत्तसे उत्तरमें होते हैं और शरद् सम्पातसे आगेके साढ़े तेरह नक्षत्र दक्षिणमें। जो साढ़े तेरह नक्षत्र विषुववृत्तसे उत्तर रहते हैं वे ही उत्तरी ध्रुवपर रात्रिमें सदा दिखाई पड़ते हैं और जो साढ़े तेरह नक्षत्र दक्षिण रहते हैं वे ही दक्षिणी ध्रुवपर सदा दिखाई देते हैं। उत्तरी ध्रुवको देवलोक और दक्षिणी ध्रुवको यम या असुरलोक भी कहते थे। इसलिए जो नक्षत्र देवताओंको सदा देख पड़ते थे उनको देवनक्षत्र और जो नक्षत्र असुरोंको सदा देख पड़ते थे उनको यमनक्षत्र* या पितृनक्षत्र कहते थे। जब सूर्य देवनक्षत्रमें पहुँचता है तब देवताओंका दिन आरंभ होता है और उत्तरके देशोंमें वसंत ऋतुका भी आरंभ होता है। इस समयसे छः मासतक सूर्य सदा देवताओंको दिखाई पड़ता है जिसमें वसंत, ग्रीष्म और वर्षा तीन ऋतुएं होती हैं। इसीलिए इन तीन ऋतुओंको देवऋतु† कहते थे और वसंतऋतुको वर्षका मुख भी कहते थे क्योंकि वर्षका आरंभ वसंतसे ही समझा जाता था। जब सूर्य शरद्‌सम्पातपर पहुँचता था तब देवताओंकी रात और असुरोंका दिन आरंभ होता था। अबसे छः मासतक जो तीन ऋतु शरद्, हेमंत और शिशिर बीतती थीं उनको पितरोंकी ऋतु कहते थे। प्राचीन कालमें वसंत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओंको ही उत्तरायण कहते थे जब कि सूर्य विषुववृत्तके उत्तर रहनेके कारण देवताओंको छः मासतक बराबर देख पड़ता था। इसीलिए उत्तरायणको देवताओंका दिन और दक्षिणायनको देवताओंकी रात कहते हैं।

परन्तु उत्तरायण और दक्षिणायनके यह अर्थ धीरे धीरे बदल गये। इसका कारण शायद यही था कि वसंत सम्पात विन्दुके पीछेकी ओर खसकते रहनेसे ऋतुओं और मासोंका मेल बिगड़ने लगा था। क्योंकि मासोंका सम्बन्ध नक्षत्रोंसे है जो अचल हैं और ऋतुओंका सम्बन्ध वसंतसम्पात विन्दुसे है जो चल है।

जब वसंतसम्पात कृत्तिकामें था तब वसंतका आरंभ उस समय होता था जब सूर्य कृत्तिकामें आता था, ऐसी दशामें पूर्णमासी विशाखा नक्षत्रमें होती थी क्योंकि चन्द्रमा जब सूर्यसे साढ़े तेरह नक्षत्रके अन्तरपर रहता है तभी

*देवगृहा वै नक्षत्राणि।………कृत्तिकाः प्रथमं। विशाखे उत्तमं तानि देवनक्षत्राणि। अनुराधाः प्रथमं। अपभरणीरुत्तमं। तानि यम नक्षत्राणि। तैत्तिरीय ब्राह्मण १, ५, २, ७। (देखो The Orion, पृ० ४१)

† वसंतो ग्रीष्मो वर्षा ते देवा ऋतवः। शरद्धेमंतः शिशिरस्ते पितरो। शतपथ ब्राह्मण २, १, ३ (देखो The Orion, पृ० २४)

पूर्णमासी होती है। इसीलिए विशाखा नक्षत्रकी पूर्णमासी वैशाख मासमें होनी चाहिए। परन्तु आजकल वसंत सम्पात उत्तरा भाद्रपदमें है इसलिए वसंतका आरंभ सूर्यके उत्तरा भाद्रपदमें आनेपर ही हो जाता है, जब पूर्णमासी उत्तरा फाल्गुनीमें होती है अर्थात् जब फाल्गुनका महीना होता है। परंतु कृत्तिकासे उत्तरा भाद्रपदतक आनेमें वसंतसम्पातको चार नक्षत्र पीछे खसकना पड़ा। यह लगभग ४००० वर्षमें हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि कृत्तिका-कालमें ४००० वर्ष पहले वसंतका आरंभ वैशाख मासमें होता था तो आजकल वह फाल्गुनमें होता है। इसी प्रकार प्राचीन-कालमें ऋतुओं और मासोंका मेल न बैठनेके कारण उत्तरायण और दक्षिणायन शब्दोंके अर्थ बदल गये होंगे। इसलिए माध्यमिक कालमें उत्तरायण उस समयको कहने लगे जब सूर्यका दक्षिणकी ओरका बढ़ना रुककर उत्तरकी ओर बढ़नेकी प्रवृत्ति हो जाती है और दक्षिणायन उस समयसे कहने लगे जब सूर्यकी उत्तर ओरकी वृद्धि रुक जाती है और वह दक्षिणकी ओर प्रवृत्त होने लगता है।

उत्तरायण और दक्षिणायनके अर्थ तो बदल गये परन्तु इनके प्राचीन पर्याय वैसे ही बने रहे। इसलिए यद्यपि अब उत्तरायणसे देवताओंका दिन नहीं आरंभ होता था फिर भी उत्तरायणका अर्थ देवदिन ही बना रहा। इसीलिए तो भास्कराचार्यजीको संदेह* हुआ था जिसका निवारण वे नहीं कर सके।

आजकल तो माध्यमिक अर्थ भी बदल गया है। अब भी उत्तरायण मकरसंक्रान्तिसे आरंभ हुआ माना जाता है और दक्षिणायन कर्क संक्रान्तिसे, यद्यपि सूर्यकी उत्तरकी ओर बढ़नेकी प्रवृत्ति मकरसंक्रान्तिसे २३ दिन पहले ही हो जाती है, और दक्षिणकी ओर बढ़नेकी प्रवृत्ति कर्क संक्रान्तिसे उतने ही दिन पहले। इसीलिए पंचांगोंके लिए अब 'उत्तर गोल' और 'दक्षिण गोल' शब्द रचे गये जो प्राचीनकालके उत्तरायण और दक्षिणायनके सूचक हैं।

पहले बतलाया गया है कि वर्षका आरंभ वसंतसे माना जाता था। परन्तु जब वसंतका आरम्भ वसन्त-सम्पात-चलनके कारण प्रत्येक मासमें हो सकता है तब वर्षका आरंभ भी प्रत्येक मासमें होना चाहिए। यथार्थमें ऐसा हुआ भी। तभी तो कहीं कहीं कार्तिक, कहीं मार्गशीर्ष, कहीं वैशाख, कहीं चैत्र, कहीं भाद्रपद और कहीं आषाढ़का मास वर्षके आरम्भका मास माना जाता है।

३—कर्काचार्यका काल

अब यह देखना है कि शास्त्रीजीने वसन्त-सम्पातके स्थान प्राचीन ग्रंथोंमें कहाँ कहाँ पाये हैं और उनसे उन ग्रंथोंके काल किस प्रकार निश्चय होते हैं। सबसे पहले आप कात्यायन शुल्वसूत्रके भाष्यकार कर्काचार्यका काल-निर्णय करते हैं। इस ग्रंथमें प्राची दिशाका निश्चय करनेके लिये एक सूत्र दिया गया है जिसका भाष्य करते हुए कर्काचार्यजी लिखते हैं।†

दक्षिणायने तु चित्रां यावदादित्य उपसर्पति। उदगयने स्वातिमेति। विषुवतीयेत्वहनि चित्रास्वात्योर्मध्य एवोदय। अतस्तन्मध्ये शङ्कुगतैवच्छाया भवति। एवं च सति अहरन्तरेषु सैव प्राची न भवतीत्यत्रोच्यते। तं पाश्चमुद्धरतित्यनेन प्राङ्युद्धरणे कृतेनेकाहः साध्येपि कर्मणि तदेवाद्धरणमित्यहरन्तरे दोषो न भवति।

इसका संक्षेपमें अर्थ यह है कि दक्षिणायनमें सूर्य चित्रातक रहता है और उत्तरायणमें यह स्वातीपर चला जाता है। जिस दिन सूर्य चित्रा और स्वाती नक्षत्रोंके बीचमें उदय होता है वह विषुव दिन कहलाता है। इत्यादि।

यहाँ यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उत्तरायण या उदगयन और दक्षिणायनके अर्थ प्राचीन कालवाले अर्थ हैं क्योंकि सूर्य चित्रातक दक्षिणायन कहा गया है और स्वातीमें उत्तरायण, तथा विषुवान् दिन उस समय होता है जब सूर्य इन दोनों नक्षत्रोंके मध्यमें उदय होता है। इसलिए इससे सिद्ध होता है कि कर्काचार्यके समयमें वसंतसम्पात चित्रा और स्वातीके मध्यमें होता था। आजकल यह उत्तराभाद्रपदमें होता है। इसलिए उस प्राचीनकालसे अबतक वसन्त

---

* दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत्संहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत्फलकीर्तनाय तत्॥
गोलाध्याय अध्याय ७, ११

*देखो Orion, Introduction, पृ० ५ और Indian Chronology, पृ० ४३–४५।

† वेदकाल निर्णय, कर्काचार्यका काल निर्णय, पृ० २०।

सम्पात १६ नक्षत्र पीछे चला आया है। परन्तु इसके १ नक्षत्र पीछे हटनेमें ९६० वर्ष लग जाते हैं इसलिए १६ नक्षत्र पीछे हटनेमें १६×९६०=१५३६० वर्ष या मोटे हिसाबसे १५ हज़ार वर्ष बीत गये हैं। इस प्रकार कर्काचार्यका काल आजसे १५००० वर्ष पूर्व ठहरता है।

यह भी सहज ही जाना जा सकता है कि कर्काचार्य के समयमें किस मासमें वसन्तऋतुका आरम्भ होता था। जब सूर्य चित्रा और स्वातीके बीचमें उदय होता था तब वसंतसंपातपर आता था, इसलिए वसन्तऋतुका आरम्भ इसी समयसे होता था। ऐसी दशामें पूर्णमासी स्वातीके आगे १४वें नक्षत्र अश्विनीमें होती थी। इसलिए वसन्तऋतुका आरंभ आश्विन मासमें होता था और यही मास वर्षके आरम्भका मास था।

इस बातका समर्थन शास्त्रीजी गवामयन नामक यज्ञके समय भी करते हैं। शास्त्रीजी लिखते हैं—

"इस यज्ञमें दीक्षित लोग जब इस यज्ञसे उठें तो उन्हें अवभृथ स्नानके लिए विपुल जल और औषधियाँ और विभिन्न ओषधियाँ मिलनी चाहिए। ....ऐसी अवस्थामें इस यज्ञके करनेवालोंको इस अवभृथ स्नानका सुभीता चैत्रीसे माघी पूर्णिमाके चार दिन पहलेतक ही मिल सकता है।"......"कर्काचार्यके इस कथनसे सिद्ध होता है कि कर्काचार्यके समयमें पानीकी विपुलता, स्वच्छता और औषधियों और वनस्पतियोंकी सघन प्ररोहता चैत्र मासतक मिल सकती थी, जिनसे तत्कालीन शरदसम्पातका होना चैत्रमें सिद्ध होता है। क्योंकि पानीकी विपुलता, स्वच्छता तथा वनस्पतियोंकी सघन प्ररोहता शरदऋतुकी आदिमें या वर्षाऋतुके अन्तमें ही रहती है"।*

इस उद्धरणसे यह सिद्ध होता है कि कर्काचार्यके समयमें शरदऋतुका प्राकृतिक वर्णन चैत्र मासमें मिलता है। इसी प्रकार शास्त्रीजी सिद्ध करते हैं कि वसन्तऋतुका प्राकृतिक वर्णन आश्विन मासमें बतलाया गया है। आप कहते हैं कि कर्काचार्यने पारस्कर गृह्यसूत्र (२.१०.१५) के श्रावणीके सूत्र "अक्षतधाना अखादन्तः प्राश्नीयुः" का भाष्य करते हुए 'यवानां धाना अनवखण्डयन्तः प्राश्नीयुः' कहा है जिसका अर्थ यह है 'अपक्व (कच्चे) जौओंको किसी प्रकार खण्डित नहीं करते हुए बगैर चबाए प्राशन करे'। यहाँ अक्षतका अर्थ अखण्डित जौ किया है।†

* वेदकाल निर्णय, कर्काचार्यका काल निर्णय, पृ० २६-२७।

† वही पृ० २८

इससे सिद्ध होता है कि उस समय अपक्व जौ (यव) श्रावण मासमें मिलते थे जैसे कि आजकल माघ मासमें मिलते हैं और इसकी फसल आश्विनमें तैयार होती थी जब कि वसन्तसम्पात होता था।

३—गृह्य सूत्रका काल

इसके सम्बन्धमें शास्त्रीजी लिखते* हैं, "उसके रचनाकालमें वसंतसम्पात मार्गशीर्ष मासमें होता था...... जिस वक्त मार्गशीर्ष मासमें वसंत सम्पात होता था उस वक्त मार्गशीर्षमें ही संवत्सरका आरंभ तथा उत्तरायण होता था। इस बातको पुष्ट करनेके लिए हमें कालमाधवमें† एक प्राचीन प्रमाण मिला है, '**मार्गमासाधिकैस्त्रिभिर्ऋतुभिः कल्पितः कालः षण्मासात्मकमुत्तरायणम्। ज्येष्ठमासादिकैर्दक्षिणायनमिति।**

....

"ऊपर हम बता चुके हैं कि संवत्सरके आरंभके साथ उत्तरायण और वसंत ऋतुका आरंभ होता था और...मार्गशीर्ष मासमें वसंत संपात होता था तब संवत्सरका आरंभ मार्गशीर्षसे ही होना चाहिए। जैसे आजकल चैत्रसे साल शुरू होनेके कारण चैत्रसे ही महीनोंकी गणना शुरू होती है, वैसे ही मार्गशीर्षसे भी महीनोंकी गणनाके प्रमाण हमें अधिकांशमें मिलना आवश्यक है, और मार्गशीर्षके साथ वसन्त ऋतुका भी उल्लेख मिलना चाहिए"।

इतना लिखनेके बाद शास्त्रीजी गीताका प्रसिद्ध श्लोक‡ जिसपर लोकमान्य तिलकजीने ओरायन ग्रन्थ लिखा है उपस्थित करते हैं और दिखलाते हैं कि उससे केवल यही अर्थ निकल सकता है कि मार्गशीर्ष मासमें वसतऋतु होनेसे मार्गशीर्षमास वर्षके आरंभका मास समझा जाता और वसंतऋतु प्रथम ऋतु कहलाती थी। इसका अर्थ यह मान लेनेसे यह भी मानना पड़ेगा कि उस समय वसंतसम्पात मृगशिरामें नहीं होता था वरन् मृगशिरासे चौदहवें नक्षत्र ज्येष्ठामें होता था क्योंकि तभी वसंत ऋतु मार्गशीर्ष मासमें हो सकती है जब कि पूर्णिमाके समय चन्द्रमा मृगशिरा नक्षत्रमें रहता था। इस दृष्टिसे देखनेपर यह प्रकट हो

* वेदकाल-निर्णय, पृष्ठ ४८—४९।

† कालमाधव, अयन प्रकरण, पृ० ३०।

‡ मासानां मार्गशीर्षोहं ऋतूनां कुसुमाकरः।

जाता है कि जिस समयकी घटना उक्त श्लोकसे सूचित होती है उस समयसे अबतक वसंत सम्पात २० नक्षत्र पीछे हट गया क्योंकि ज्येष्ठासे उत्तरा भाद्रपदतक उलटे क्रमसे २० नक्षत्र होते हैं। इसलिए इस समयके बीते २० × ९६०=१९,२०० वर्ष हो गये।

शास्त्रीजीकी इस खोजके बाद लोकमान्य तिलककी आग्रहायण मासकी व्युत्पत्ति बिलकुल निरर्थक हो जाती है। आपने तो अपने ओरायन ग्रन्थमें यह सिद्ध किया है कि मासका नाम आग्रहायण इसलिये नहीं पड़ा कि यह वर्षके आरम्भका मास था और इसी मासमें वसंत ऋतु होती थी वरन् लोगोंने भूलसे इसको वर्षारम्भका मास कह दिया। आपका मत है कि मृगशिरा नक्षत्रको आग्रहायण इसलिये कहते थे कि वसंतसम्पात पहले यहीं होता था। इसलिए नक्षत्रोंमें इसका नाम प्रथम था। पीछेसे लोग अग्रहायण मासको भूलसे वर्षका प्रथम मास समझने लगे और नक्षत्रका नाम आग्रहायणी रख दिया। *मेरे विचारसे तिलकजीका तर्क सरल नहीं है, शास्त्रीजी ही ठीक मालूम होते हैं। इसके बाद प्रमाणमें शास्त्रीजी बतलाते हैं कि अग्रहायण उस यज्ञको कहते थे जो वर्षकी आदिमें किया जाता था (पृष्ट ५७) जब कि वसंत ऋतुका आरम्भ होता था। इसके बाद शास्त्रीजी बतलाते हैं कि यह आग्रहायण यज्ञ मार्गशीर्षकी पूर्णमासीको होता था।

मार्गशीर्ष्यां पौर्णमास्यामाग्रहायणी कर्म (पारस्कर गृह्य सूत्र)

४—पौलिशसिद्धांतका काल

यह सिद्धान्त स्वतन्त्र रूपसे नहीं मिलता। वराह मिहिरने अपनी पंचसिद्धान्तिकामें एक अध्यायमें पौलिश सिद्धान्तका संक्षेपमें वर्णन किया है। उसी अध्यायके ध्रुवाङ्कोंसे शास्त्रीजी पौलिश सिद्धान्तकालका निश्चय करके कहते हैं कि इसका काल शकारम्भसे पूर्व ६३४२ वर्ष निश्चित होता है। अबसे ८१९८ वर्ष प्राचीन ठहरता है। इस सिद्धान्तमें यवनपुरसे उज्जैन और काशीके देशान्तर दिये हुए हैं। यवनपुरको अभीतक लोग सिंकदरिया (Alexandria) समझते थे, परन्तु शास्त्रीजी इसको कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) मानते हैं और आजकलके इन तीनों स्थानोंके देशान्तरोंसे सिद्ध करते हैं कि पौलिश सिद्धान्तमें दिये हुए रेखान्तर बिलकुल ठीक आते हैं। इससे आप यह परिणाम निकालते हैं कि जब पौशिल सिद्धान्तमें लिखे हुए रेखांश विश्वसनीय एवं सत्य हैं तब तो उस पौलिश सिद्धान्तमें लिखे हुए प्रमाणोंसे किया हुआ कालनिर्णय भी विश्वास करने योग्य और सत्य सत्य होगा। साथमें यह अनुमान होता है कि उस प्राचीनकालमें इन तीनों नगरोंमें वेधशालाएँ होनी चाहिए और उक्त नगरोंके ज्योतिषियोंका भी परस्पर व्यवहार होना चाहिए, क्योंकि बिना इसके इतना सूक्ष्म मान नहीं मिल सकता"*।

पौलिश सिद्धान्तमें तीसरे अध्यायका एक श्लोक इस प्रकार है—

आश्लेषार्द्धादासीद्यदा निवृत्तिः किलोष्ण किरणस्य।
युक्तमयनं तदासीत् साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः ॥२१॥

इस श्लोकके चौथे चरणके 'अयन' शब्दका अर्थ शास्त्री जी वसंत-सम्पात करते हैं जैसा कि प्राचीन कालमें उत्तरायणका अर्थ समझा जाता था। और उससे यह परिणाम निकालते हैं कि पौलिश-सिद्धान्त-कालमें वसंतसम्पात पुनर्वसु नक्षत्रमें होता था इसीलिए पुनर्वसु नक्षत्रका नाम पोलक्स तारा पड़ा जो पौलिश आचार्यके नामपर रखा

---

*It is true that the word आग्रहायण as denoting a Nakshatra is now lost and Amarasinha gives आग्रहायणी and not अग्रहायण as a synonym for this Nakshatra of मृगशिरा (The Orion, pp. 78-79)

But it appears that the tradition about मृगशिरा (आग्रहायण) ever being the first of the Nakshatras, was completely lost in those days and native scholars believed, on what they cansidered to be sound etymological ground, that the month and not the Nakshatra was the commencement of the year. Once started and embodied in the Gita, the theory gained an easy and rapid currency amongst native scholars. (The Orion, pp. 80-81)

* वेदकाल निर्णय, पृष्ठ २७।

गया होगा। जब वसंतसम्पात पुनर्वसुमें माना जायगा तब उसका समय भी आजसे ८००० वर्ष पूर्व अवश्य होना चाहिए क्योंकि पुनर्वसुसे अबतक वसंतसम्पात ९ नक्षत्रके लगभग पीछे हट गया, इसलिए उस समयसे अबतक ९ × ९६० = ८६४० वर्षके लगभग होता है।

परन्तु मेरी समझमें शास्त्रीजी यहाँ अयन शब्दका अर्थ ठीक नहीं करते, क्योंकि उसी अध्यायका २३ वाँ श्लोक इस प्रकार है—

मेष तुलादौ विषुवत् षडशीतिमुखं तुलादि भागेषु।
षडशीतिमुखेषुरवेः पितृदिवसा येऽवशेषाःस्युः॥

इस श्लोकके प्रथम चरणमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि विषुव दिन मेष और तुलाके आरंभमें होता है अर्थात् जब मेष और तुला संक्रान्ति होती हैं तब विषुव दिन होता है, जब दिन और रात्रिके मान समान होते हैं। इसलिए वसंतसम्पात मेषके आदिमें ही समझना चाहिए और अयन शब्दका अर्थ वह दक्षिणायन करना चाहिए जो माध्यमिक कालमें अथवा वराहमिहिरके समयमें प्रचलित था और जो वर्तमान सूर्यसिद्धान्तमें है क्योंकि जब मेष या अश्विनी नक्षत्रके आदिमें वसंतसम्पात होगा तब अश्विनीसे सातवें नक्षत्र पुनर्वसुमें दक्षिणायन होगा। परन्तु खेद है कि शास्त्रीजीने इस श्लोकपर अपने विचार कुछ भी नहीं लिखे हैं, यद्यपि यह श्लोक बड़े महत्वका है।

पंचसिद्धान्तिकाके तीसरे अध्यायका नाम पौलिश सिद्धान्त रखा गया है जिससे शास्त्रीजी यह परिणाम निकालते हैं कि इसमें वराहमिहिरने पौलिश सिद्धान्तको ठीक उसी रूपमें लिखा है जैसा उनको मिला होगा। परन्तु मैं समझता हूँ कि ऐसी बात नहीं है। इसमें ध्रुवाङ्क और नियम तो वे ही हैं जो पौलिश सिद्धान्तमें थे परन्तु साथ ही साथ वराहमिहिरकी भी टीका टिप्पणी है। इस दृष्टिसे 'साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः' को वराहमिहिरने अपने समयके विचारसे लिखा होगा जब कि पुनर्वसु नक्षत्रमें दक्षिणायन होता था।

इस श्लोकसे केवल इतना ही ज्ञान हो सकता है कि पौलिशाचार्यके समयमें आश्लेषाके आधे भागपर दक्षिणायन होता था क्योंकि वैधृति और व्यतीपात योगोंके जाननेकी जो रीति २० वें श्लोकमें बतलायी गयी है उससे सिद्ध होता है कि पौलिश सिद्धान्तके समय वसंतसम्पात अश्विनी नक्षत्रसे २४ अंश पूर्व था। वह श्लोक इस प्रकार है—

अर्केन्दुयोग षट्के वैधृतमुक्तं दशर्क्ष साहितेषु।
यद्विचक्रो व्यतिपातो वेला मृग्या गतैर्भागैः॥२०॥

अर्थ—सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंका योग दश नक्षत्रोंके साथ मिलकर यदि ६ राशिके समान हो तो वैधृत योग और १२ राशिके समान हो तो व्यतिपात योगका समय समझना चाहिए।

यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि वैधृत और व्यतिपात योग क्या हैं।

सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंका योग—अमावास्या कालके सिवा किसी अन्य कालमें जब सूर्य और चन्द्रमा विषुववृत्तसे उत्तर या दक्षिण समान अन्तरपर रहते हैं अर्थात् जब इन दोनोंकी क्रान्तियाँ समान होती है, तब वैधृति और व्यतीपात योग होते हैं। जब सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंका योग ३६० अंश या १२ राशि होता है तब वैधृत योग होता है और जब दोनोंके भोगांशोंका योग १८० अंश या छः राशि होता है तब व्यतीपात योग होता है। इस श्लोकमें बतलाया गया है कि सूर्य चन्द्रमाके भोगांशोंके योगको १० नक्षत्रोंमें जोड़ देनेसे यदि फल ६ राशिके समान हो तो वैधृति योग होता है। इसलिए देखना चाहिए कि इससे वैधृति योगके सम्बन्धमें क्या बात मालूम होती है।

सूर्य + चन्द्रमा + १० नक्षत्र = ६ राशि

∴ सूर्य + चन्द्रमा = ६ राशि—१० नक्षत्र

= १८० अंश—१३३ अंश २० कला

= ४६ अंश ४० कला

= १२ राशि + ४६ अंश + ४० कला

क्योंकि किसी कोणके परिमाणमें १२ राशि या ३६० अंशके जोड़नेसे व्यवहारमें कोई अंतर नहीं पड़ता। इसी तरह व्यतीपात योगके लिए

सूर्य + चन्द्रमा + १० नक्षत्र=१२ राशि

∴ सूर्य + चन्द्रमा=१२ राशि—१० नक्षत्र

=६ राशि + ६ राशि—१० नक्षत्र

=६ राशि + ४६ अंश ४० कला

इस प्रकार सिद्ध होता है कि पौलिश-सिद्धान्त-कालमें वसंतसम्पात ४६ अंश ४० कलाके आधे २३ अंश २० कलापर होता था। अर्थात् अश्विनी नक्षत्रसे २३ अंश २० कला पूर्व वसंतसम्पात होता था*। इसलिए उस समय अयनांश २३ अंश २० कला अश्विनीसे पूर्व था जैसा कि आजकल पच्छिम है। जब इस स्थानपर वसंतसम्पात होता था तब अश्लेषाके आधे भागपर दक्षिणायन होना भी सिद्ध होता है जिसकी चर्चा २१वें श्लोकके पूर्वार्धमें है।

शास्त्रीजीने इस अध्यायके २१ श्लोकके चतुर्थ चरण और २२वें श्लोकका अर्थ इस प्रकार किया है 'वर्तमान कालमें अयनकी स्थिति पुनर्वसु नक्षत्रपर है। इसलिए इस वक्त विपरीतायनपात† होता है। अतः पंचांगमें जब रविचन्द्रके मान परमक्रान्तिके स्थान तुला मेषारंभपर होवें तब रवि चन्द्रके योग चक्रार्धमें होनेवाला व्यतीपात होता है।" इसके बाद इसकी व्याख्या की गयी है परन्तु वह स्पष्ट नहीं है। इसके प्रतिकूल इस श्लोकका अर्थ आचार्य सुधाकर द्विवेदी तथा डाक्टर थीबोने इस प्रकार किया है। **'यदा विपरीतायन भागो विपरीतायनांशो भवति, शशि रव्योर्मध्ये क्षेपश्च अर्ककाष्ठांश समः परमक्रान्ति रसमस्तदा दिनकृच्छशियोगचक्रार्द्धे व्यतिपातो भवति'** ।‡

When the degrees of the ayana are in the opposite direction (i. e. when the precession is retrograde) and the quantity to be added to the longitudes of sun and moon amounts to (as much as) the degrees of the sun's greatest declination (i. e. when the degrees of precession amount to 24); then the Vyatipata takes place when the sum of the longitudes of sun and moon amount to half a circle. ×

* वैधृत और व्यतीपात योगोंके विषयमें सूर्यसिद्धान्त पाताधिकारके विज्ञानभाष्य, पृष्ठ १०२८–२६में अच्छी तरह चर्चा की गयी है।

† विपरीतायन पातो यदार्क काष्ठांश शशि रविक्षेपः।
भवति तदा व्यतिपातो दिनकृच्छशियोग चक्रार्द्धे: ॥२२॥

‡ पंचसिद्धान्तिका प्रकाशिका पृष्ठ १४

× " अंग्रेजी अनुवाद पृष्ठ १८-१६

इन उद्धरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि पौलिश सिद्धान्तने अपने समयके अनुसार जब कि अयनांश २३°२०' या २४° पूर्व था २१वें श्लोकमें नियम दे दिया, फिर २२वें श्लोकमें यह बतलाया कि जब अयनांश २४ अंश विपरीत हो जावेगा अर्थात् पीछे हटकर अश्विनीके आदि विन्दुपर चला आवेगा तब रविशशिके भोगांशोंका योग ६ राशि होनेसे ही व्यतीपात योग होगा।

इस प्रकार यह प्रकट हो जाता है कि शास्त्रीजीने अयन और व्यतीपातकी गणनासे पौलिश सिद्धान्तका जो काल ८००० वर्ष पूर्वका निकाला है वह युक्तियुक्त नहीं है। इसके बाद उन्होंने दो और युक्तियोंसे अपने मतका समर्थन किया है जिनको संक्षेपमें समझाना असंभव है। परन्तु लेखका कलेवर बढ़ जानेके डरसे उसका विस्तार भी नहीं किया जा सकता।

सूर्यकी परमक्रान्ति आजकल शुद्ध गणनासे २३ अंश २७ कलाके लगभग आती है परन्तु यह मान अचल नहीं है वरन् निरंतर थोड़ा थोड़ा घट रहा है। इसका सूत्र* यह है।

२३°२६' ५७".३५–०".४६८ (व–१९८०)

इसका पहला खंड १९८० वि०की मेषसंक्रान्ति-कालीन सूर्यकी परमक्रान्ति है और '४६८ विकला प्रतिवर्ष कमी पड़ती जा रही है। यदि उलटी गणना करके १९८० विक्रमीके पहलेकी क्रान्ति जानना हो तो सूत्रका रूप यह हो जायगा।

२३°२६'५७"·३५ + ०"·४६८ (१९८०–व)

जहाँ व उस संवत्को सूचित करता है जिस संवत्की परमक्रान्ति जानना हो, अथवा १९८०—व उन वर्षोंकी संख्या है, १९८० से जितने वर्ष पहलेकी परमक्रान्ति जानना हो। मान लीजिये हमको यह जानना है कि १९८० संवत्से कितने वर्ष पहले सूर्यकी परमक्रान्ति २४ अंश थी। यदि इस संख्याको क मान लिया जाय तो सूत्रका नीचे लिखा समीकरण बनेगाः—

२३°२६'५७"·३५ + ·४६८" × क = २४°

∴ ·४६८ क विकला = २४° – २३°२६'५७"·३५

= ३३'२"·२५

= १९८२·२५ विकला

* विज्ञान भाष्य त्रिप्रश्नाधिकार, पृष्ठ ३६४

$$\therefore \text{क} = \frac{१९८२\cdot२५}{\cdot४६८} \text{ वर्ष}$$
$$= ४२३६ \text{ वर्ष}$$

अर्थात् अबसे कोई सवा चार हजार वर्ष पहले सूर्यकी परमक्रान्ति २४ अंश थी जो अबतक मानी जा रही है।

शास्त्रीजीने उपर्युक्त रीतिसे गणना करके पृष्ठ १०५ में सूर्यकी परमक्रान्तिका मान २७ अंश २५ कलातक दिया है। और पृष्ठ ८४ में लिखा भी है—

"प्राचीन ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे परमक्रान्ति २४॥ अंशकी तथा २७ अंशकी जब निश्चित होती है तब इसकी सिर्फ दो अंशके भीतर-की आन्दोलन गतिका खंडन हो जाता है।......इस सम्बन्धका विशेष स्पष्टीकरण आगे वैदिककाल-निर्णयमें हम करेंगे।"

अच्छा होता यदि शास्त्रीजी उस ग्रन्थका नाम तथा श्लोक इस जगह दिये होते, क्योंकि यदि ऐसा कहीं स्पष्ट रूपेण मिल जाय तब तो अर्वाचीन आन्दोलन-गतिकी कल्पना अवश्य अशुद्ध ठहर जाती। वर्तमान कल्पना तो यह है कि सूर्यकी परमक्रान्ति २४ अंशसे एकाध अंश आगे पीछे रहती है। इससे अधिक अन्तर नहीं होता।

शास्त्रीजीने परमक्रान्तिकी गणना उन अक्षांशोंसे की है जो प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसार दो दो महीने और चार चार महीनेके दिनकी सीमा माने गये थे। देखो पृष्ठ १०४, ११२, ११३। इसी प्रकार पौलिश सिद्धान्तमें बतलाये हुए चरखंडोंसे आप सिद्ध करते हैं कि पुलिशाचार्यने जिस परमक्रान्तिको मानकर अपने ग्रन्थमें चरखंडके प्रमाण दिये हैं वे ८००० वर्ष पुराने हैं जब कि परमक्रान्ति २४ अंश ३१ कला थी। परन्तु (पृष्ठ ११४) किसी स्थानके चरखंडों-का मान तो सूर्यकी क्रान्ति और उस स्थानके अक्षांशपर अवलम्बित है क्योंकि चरज्या = क्रान्तिस्पर्श रेखा × अक्षांश स्पर्श रेखा। इसके सिवा यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन ग्रन्थोंमें जो अंक लिखे गये हैं वे वेधसे बिल्कुल शुद्ध किये गये थे योंकि इधर २००० वर्षोंके इतिहाससे तो यह सिद्ध नहीं होता कि इस कालमें जो वेध लिये गये थे वे बिल्कुल ठीक थे। इस लिए ऐसी भूल प्राचीन कालमें भी हो सकती थी।

इसी तर्कके अनुसार आप लल्लाचार्यके दिये हुए अक्षांशोंसे सिद्ध करते हैं कि जिस समय सूर्यकी परमक्रान्ति ३१°१०′ थी उस समयके दो दो महीने और चार चार महीने दिनकी सीमा बतलानेवाले अक्षांश लल्लाचार्यजीने लिखे हैं, इसलिए उन्होंने कोई भूल नहीं की। आप लिखते हैं—"जिस प्रकार २४ परमक्रान्तिका तीन हजार वर्ष हो जानेपर भी भास्कराचार्यने वही वर्णन किया [जो उनके समयसे ३००० वर्ष पहले था] उसी प्रकार २८००० वर्षकी बात होते हुए लल्लाचार्यने भी वही लिख दिया है, ऐसा ज्ञात होता है" पृष्ठ ११६—१७। परन्तु यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भास्कराचार्यजी तथा ब्रह्मगुप्त आदि मध्यकालीन आचार्योंके समयमें सूर्यकी परमक्रान्ति २३॥ अंशसे अधिक थी। ब्रह्मगुप्तके समयमें परमक्रान्ति २३ अंश ३७ कला थी इसलिए २४ अंश मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं था। परन्तु लल्लाचार्यजीके लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता। लल्लाचार्यने अपने गोलाध्यायमें लिखा है कि ६६°३०′ के अक्षांशके देशमें धनु और मकर राशियाँ नहीं देख पड़तीं और ७५° के अक्षांशके देशमें वृश्चिक, धनु, मकर और कुम्भ राशियाँ नहीं देख पड़तीं। इसीपर भास्कराचार्यने उनका उपहास किया है क्योंकि भास्कराचार्यकी गणनासे यह ६९°२०′ और ७८°१५′ क्रमशः होना चाहिए। अब शास्त्रीजी कहते हैं कि लल्लाचार्यजीका ६६°३०′ कला अक्षांश उस समयका है जब सूर्यकी परमक्रान्ति ३१°१०′ थी। (पृष्ठ ११५ पादटिप्पणी)। परन्तु उस समयके लिए दूसरी संख्या ७६°४१′ होनी चाहिए परन्तु वह ७५° ही है। इसपर आप लिखते हैं कि १॥। अंशका फर्क स्वल्पान्तर है, इसलिए ग्राह्य हो सकता है। (पृष्ठ ११६)

यह बात मेरी समझ में नहीं आती। ७८°१५′ भी तो ७५° से सवा तीन ही अंश अधिक है। इसलिये पौने दो अंशका अंतर स्वल्पान्तर नहीं है और लल्लाचार्यजीके बत-लाए हुए अंक २८,००० वर्ष पुराने समयकी क्रान्तिके अनुसार नहीं हैं। इनको कैसे मालूम हुआ कि २८००० वर्ष पहिलेकी क्रान्ति २७ अंश थी? किसी ग्रन्थमें तो इसकी चर्चा होती। मुझे तो जान पड़ता है कि या तो लल्लाचार्यजीकी गणनामें भूल हुई है या लेखकोंके प्रमादसे लल्लाचार्यजीके शुद्ध अंक लिखे नहीं जा सके हैं। इसका दूसरा कारण नहीं हो सकता।

इसी प्रकार पौलिश सिद्धान्तके वर्ष मानसे भी गणना

गर्भवती सूतिका गृहमें कब जायगी ?

प्रसवकाल-निर्णय

[लेखक—श्रीब्रजबिहारी लालजी गौड़, टी० टी० ई०, मऊ जंकशन, B. & N. W. Ry.]
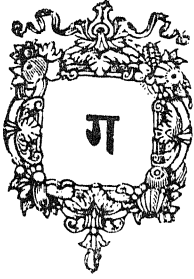
र्भका स्वाभाविक काल ४० सप्ताह, १० चान्द्रमास या २८० दिन है। अधिकांश बच्चोंका जन्म २७०से लेकर २८० दिनके बीचमें होता है। कभी कभी स्वाभाविक कालसे प्रसवका दिन २० या ३० दिनतक टल जाता है। पर ऐसा बहुत कम होता है। यदि गर्भाधानका दिन मालूम हो तो प्रसवका समय जाननेके लिये गर्भकालकी गिनती उसी दिनसे करनी चाहिये।* अगर यह न मालूम हो तो समय अन्तिम ऋतुकालके दिनसे गिना जा सकता है। और यदि अन्तिम ऋतुकालका दिन भी याद न रहे तो पेटमें जिस दिन सर्वप्रथम गर्भका संचालन जान पड़े वह दिन प्रसवकाल जाननेके लिये उपयोगमें लावे। किन्तु यह याद रखना चाहिये कि प्रसवका काल माता पिताकी उम्रपर भी निर्भर करता है। उम्रके साथ साथ गर्भका समय भी बढ़ता जाता है। तथापि इतना अंतर नहीं होता कि गिनतीमें कोई विशेष कठिनाई पड़े। प्रसवकाल ठीक ठीक न जाननेसे कभी कभी अचानक ऐसी तकलीफोंका सामना करना पड़ जाता है जो वस्तुतः विशेष कष्टदायक होती हैं। इस अड़चनको दूर करनेके लिये नीचे दी हुई सारिणी उपयोगमें लायी जा सकती है।*

*गर्भाधानका दिन न मालूम हो तो रजोदर्शनके अन्तिम दिनसे ही गणना करनेसे प्रायः ठीक समय निकल आता है। रा० गौ०।

* यह सारिणी हिन्दुस्तानी सौर तिथियोंके अनुसार दी गयी है। इन तिथियोंमें वृद्धिक्षयादि नहीं है। संक्रान्ति-संक्रान्ति मास चलता है जो अंग्रेजी महीनोंके मध्यके लगभग पड़ती है। इसके लिये ज्ञानमंडल-सौर-पंचांग या सौर रोजनामचा देखना चाहिए। —रा० गौड़।

करके आप सिद्ध करते हैं कि उसका काल सवा ६ हजार वर्ष प्राचीन है। आपने इस अध्यायके ३४वें श्लोकका अर्थ अद्भुत किया है। इसलिये उसको यहाँ उद्धृत करना आवश्यक जान पड़ता है।

"मार्गादुपेतमेता काले लघुतत् न तावदतिदूरे।
***सविषय भूताद्रसैरब्दैः पश्यास्य विनिपातम्॥३४॥"**

शास्त्रीजीका अर्थ यह है "गणित मार्गसे मालूम होता है कि अभी थोड़े ही वर्ष हुए हैं, तब सम्पातके एक पादके बीतनेमें ६८५५ वर्ष हुए हैं सो गणितसे देखलें।" (पृष्ठ १५१)। शास्त्रीजीके उद्धरणमें 'ख'की जगह 'स' है।

आचार्य सुधाकर द्विवेदी इस श्लोकके साथ पाँच और (३२-३७) श्लोकोंके सम्बन्धमें लिखते हैं, "अत्राशुद्ध्याधिक्यादानुपूर्व्या सर्वेषामाशयो न विदितो भवति" (पंच सिद्धान्तिका प्रकाशिका, पृष्ठ १६)। इसलिये विद्वानोंको विचार करना चाहिये कि शास्त्रीजीका अर्थ कहाँतक ठीक है।

इसके बाद आप लिखते हैं कि चित्रा संपातसे पौलिश सिद्धान्तका काल किस प्रकार निश्चय किया जाता है (पृष्ठ १५१) परन्तु जिन श्लोकोंका आपने यह अर्थ लगाया है वे वहीं हैं जिनका सुधाकर द्विवेदीजीने अर्थ ही नहीं किया। इसलिये शास्त्रीजी पहिले इन श्लोकोंका अर्थ कर देते तो अच्छा होता, क्योंकि इस सम्बन्धमें आप जो कुछ लिखते हैं वह स्पष्ट नहीं है।

वेदाङ्ग-ज्योतिष-कालके सम्बन्धमें शास्त्रीजीके विचारका दिग्दर्शन अगले अंकमें किया जायगा।

* पाठान्तर "प" भी है। 'सविषय" न मानकर "ख" पाठ माननेसे ६८५५० वर्ष होते हैं, जो दसगुना अधिक हो जाता है। शास्त्रीजी कृपया छहों आर्याओंके अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा।

प्रसव काल निर्णय

गर्भाधान	गर्भकी गति	प्रसव
मेष— १	सिंह— १५	मकर— ८
... २	... १६	... ९
... ३	... १७	... १०
... ४	... १८	... ११
... ५	... १९	... १२
... ६	... २०	... १३
... ७	... २१	... १४
... ८	... २२	... १५
... ९	... २३	... १६
... १०	... २४	... १७
... ११	... २५	... १८
... १२	... २६	... १९
... १३	... २७	... २०
... १४	... २८	... २१
... १५	... २९	... २२
... १६	... ३०	... २३
... १७	... ३१	... २४
... १८	कन्या — १	... २५
... १९	... २	... २६
... २०	... ३	... २७
... २१	... ४	... २८
... २२	... ५	... २९
... २३	... ६	... ३०
... २४	... ७	कुम्भ— १
... २५	... ८	... २
... २६	... ९	... ३
... २७	... १०	... ४
... २८	... ११	... ५
... २९	... १२	... ६
... ३०	... १३	... ७
... ३१	... १४	... ८
वृष — १	... १५	... ९
... २	... १६	... १०
... ३	... १७	... ११
... ४	... १८	... १२
... ५	... १९	... १३
... ६	... २०	... १४
... ७	... २१	... १५
... ८	... २२	... १६
... ९	... २३	... १७

गर्भाधान	गर्भकी गति	प्रसव
... १०	... २४	... १८
... ११	... २५	... १९
... १२	... २६	... २०
... १३	... २७	... २१
... १४	... २८	... २२
... १५	... २९	... २३
... १६	... ३०	... २४
... १७	... ३१	... २५
... १८	तुला— १	... २६
... १९	... २	... २७
... २०	... ३	... २८
... २१	... ४	... २९
... २२	... ५	... ३०
... २३	... ६	मीन— १
... २४	... ७	... २
... २५	... ८	... ३
... २६	... ९	... ४
... २७	... १०	... ५
... २८	... ११	... ६
... २९	... १२	... ७
... ३०	... १३	... ८
... ३१	... १४	... ९
मिथुन— १	... १५	... १०
... २	... १६	... ११
... ३	... १७	... १२
... ४	... १८	... १३
... ५	... १९	... १४
... ६	... २०	... १५
... ७	... २१	... १६
... ८	... २२	... १७
... ९	... २३	... १८
... १०	... २४	... १९
... ११	... २५	... २०
... १२	... २६	... २१
... १३	... २७	... २२
... १४	... २८	... २३
... १५	वृश्चिक—१	... २४
... १६	... २	... २५
... १७	... ३	... २६
... १८	... ४	... २७

गर्भाधान	गर्भकी गति	प्रसव
... १९	... ५	... २८
... २०	... ६	... २९
... २१	... ७	... ३०
... २२	... ८	मेष— १
... २३	... ९	... २
... २४	... १०	... ३
... २५	... ११	... ४
... २६	... १२	... ५
... २७	... १३	... ६
... २८	... १४	... ७
... २९	... १५	... ८
... ३०	... १६	... ९
... ३१	... १७	... १०
... ३२	... १८	... ११
कर्क— १	... १९	... १२
... २	... २०	... १३
... ३	... २१	... १४
... ४	वृश्चिक—२२	... १५
... ५	... २३	... १६
... ६	... २४	... १७
... ७	... २५	... १८
... ८	... २६	... १९
... ९	... २७	... २०
... १०	... २८	... २१
... ११	... २९	... १२
... १२	धनु— १	... २३
... १३	... २	... २४
... १४	... ३	... २५
... १५	... ४	... २६
... १६	... ५	... २७
... १७	... ६	... २८
... १८	... ७	... २९
... १९	... ८	... ३०
... २०	... ९	... ३१
... २१	... १०	वृष— १
... २२	... ११	... २
... २३	... १२	... ३
... २४	... १३	... ४
... २५	... १४	... ५
... २६	... १५	... ६
... २७	... १६	... ७
... २८	... १७	... ८

गर्भाधान	गर्भकी गति	प्रसव
... २९	... १८	... ९
... ३०	... १९	... १०
... ३१	... २०	... ११
सिंह— १	... २१	... १२
... २	... २२	... १३
... ३	... २३	... १४
... ४	... २४	... १५
... ५	... २५	... १६
... ६	... २६	... १७
... ७	... २७	... १८
... ८	... २८	... १९
... ९	... २९	... २०
... १०	मकर— १	... २१
... ११	... २	... २२
सिंह—१२	मकर— ३	वृष— २३
... १३	... ४	... २४
... १४	... ५	... २५
... १५	... ६	... २३
... १६	... ७	... २७
... १७	... ८	... २८
... १८	... ९	... २९
... १९	... १०	... ३०
... २०	... ११	... ३१
... २१	... १२	मिथुन— १
... २२	... १३	... २
... २३	... १४	... ३
... २४	... १५	... ४
... २५	... १६	... ५
... २६	... १७	... ६
... २७	... १८	... ७
... २८	... १९	... ८
... २९	... २०	... ९
... ३०	... २१	... १०
... ३१	... २२	... ११
कन्या— १	... २३	... १२
... २	... २४	... १३
... ३	... २५	... १४
... ४	... २६	... १५
... ५	... २७	... १६
... ६	... २८	... १७
... ७	... २९	... १८
... ८	... ३०	... १९

गर्भाधान	गर्भकी गति	प्रसव	गर्भाधान	गर्भकी गति	प्रसव
... ९	कुम्भ—१	... २०	... २०	... १३	... ३०
... १०	... २	... २१	... २१	... १४	... ३१
... ११	... ३	... २२	... २२	... १५	सिंह—१
... १२	... ४	... २३	... २३	... १६	... २
... १३	... ५	... २४	... २४	... १७	... ३
... १४	... ६	... २५	... २५	... १८	... ४
... १५	... ७	... २६	... २६	... १९	... ५
... १६	... ८	... २७	... २७	... २०	... ६
... १७	... ९	... २८	... २८	... २१	... ७
... १८	... १०	... २९	वृश्चिक—१	... २२	... ८
... १९	... ११	... ३०	... २	... २३	... ९
... २०	... १२	... ३१	... ३	... २४	... १०
... २१	... १३	... ३२	... ४	... २५	... ११
... २२	... १४	कर्क—१	... ५	... २६	... १२
... २३	... १५	... २	... ६	... २७	... १३
... २४	... १६	... ३	... ७	... २८	... १४
... २५	... १७	... ४	... ८	... २९	... १५
... २६	... १८	... ५	... ९	... ३०	... १६
... २७	... १९	... ६	... १०	मेष—१	... १७
... २८	... २०	... ७	... ११	... २	... १८
... २९	... २१	... ८	... १२	... ३	... १९
... ३०	... २२	... ९	... १३	... ४	... २०
... ३१	... २३	... १०	... १४	... ५	... २१
तुला—१	... २४	... ११	... १५	... ६	... २२
... २	... २५	... १२	... १६	... ७	... २३
... ३	... २६	... १३	... १७	... ८	... २४
... ४	... २७	... १४	... १८	... ९	... २५
... ५	... २८	... १५	... १९	... १०	... २६
... ६	... २९	... १६	... २०	... ११	... २७
... ७	... ३०	... १७	... २१	... १२	... २८
... ८	मीन—१	... १८	... २२	... १३	... २९
... ९	... २	... १९	... २३	... १४	... ३०
... १०	... ३	... २०	... २४	... १५	... ३१
... ११	... ४	... २१	... २५	... १६	कन्या—१
... १२	... ५	... २२	... २६	... १७	... २
... १३	... ६	... २३	... २७	... १८	... ३
... १४	... ७	... २४	... २८	... १९	... ४
... १५	... ८	... २५	... २९	... २०	... ५
... १६	... ९	... २६	धनु—१	... २१	... ६
... १७	... १०	... २७	... २	...२२	... ७
... १८	... ११	... २८	... ३	...२३	... ८
... १९	... १२	... २९	... ४	...२४	... ९

गर्भाधान	गर्भकी गति	प्रसव
... ५	...२५	... १०
... ६	... २६	... ११
... ७	... २७	... १२
... ८	... २८	... १३
... ९	२९	... १४
... १०	... ३०	... १५
... ११	... ३१	... १६
... १२	वृष—१	... १७
... १३	... २	... १८
... १४	... ३	... १९
... १५	... ४	... २०
... १६	... ५	... २१
... १७	... ६	... २२
... १८	... ७	... २३
... १९	... ८	... २४
... २०	... ९	... २५
... २१	... १०	... २६
... २२	... ११	... २७
... २३	... १२	... २८
... २४	... १३	... २९
... २५	... १४	... ३०
... २६	... १५	... ३१
... २७	... १६	तुला—१
... २८	... १७	... २
... २९	... १८	... ३
मकर—१	... १९	... ४
... २	... २०	... ५
... ३	... २१	... ६
... ४	... २२	... ७
... ५	... २३	... ८
... ६	... २४	... ९
... ७	... २५	... १०
... ८	... २६	... ११
... ९	... २७	... १२
... १०	... २८	... १३
... ११	... २९	... १४
... १२	... ३०	... १५
... १३	... ३१	... १६
... १४	मिथुन—१	... १७
... १५	... २	... १८
... १६	... ३	... १९
... १७	... ४	... २०

गर्भाधान	गर्भकी गति	प्रसव
... १८	... ५	... २१
... १९	... ६	... २२
... २०	... ७	... २३
... २१	... ८	... २४
... २२	... ९	... २५
... २३	... १०	... २६
... २४	... ११	... २७
... २५	... १२	... २८
... २६	... १३	वृश्चिक—१
... २७	... १४	... २
... २८	... १५	... ३
... २९	... १६	... ४
... ३०	... १७	... ५
कुम्भ—१	... १८	... ६
... २	... १९	... ७
... ३	... २०	... ८
... ४	... २१	... ९
... ५	... २२	... १०
... ६	... २३	... ११
... ७	... २४	... १२
... ८	... २५	... १३
... ९	... २६	... १४
... १०	... २७	... १५
... ११	... २८	... १६
... १२	... २९	... १७
... १३	... ३०	... १८
... १४	... ३१	... १९
... १५	... ३२	... २०
... १६	कर्क—१	... २१
... १७	... २	... २२
... १८	... ३	... २३
... १९	... ४	... २४
... २०	... ५	... २५
... २१	... ६	... २६
... २२	... ७	... २७
... २३	... ८	... २८
... २४	... ९	... २९
... २५	... १०	धनु—१
... २६	... ११	... २
... २७	... १२	... ३
... २८	... १३	... ४
... २९	... १४	... ५

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

होमियोपैथीकी स्थिति

सभी प्रकारके उपचार शास्त्रोंमें होमियोपैथी और मानसोपचार शास्त्र ही ठीक ठीक वैज्ञानिक प्रयोगोंपर आधारित चिकित्सा विधियाँ हैं। औषध बेंचनेवालोंका स्वार्थ ही इस समय अल्लोपथीकी जराजर्ज्जर इमारतको थामे हुए है। कई कई औषधियोंको मिलाकर देनेसे जीवित शरीरपर क्या क्या प्रभाव पड़ता है इसका पता लगाना कठिन है। एक ही मिक्सचर भिन्न भिन्न प्रकृतियोंपर भिन्न भिन्न प्रभाव डालता है। उसमेंकी किस ओषधिका क्या प्रभाव पड़ता है यह केवल अटकलकी बात है। मात्राके तारतम्य भी अनन्त हैं। होमियोपैथीमें एक ही ओषधिकी परीक्षा अनेक शरीरोंपर करके समान लक्षणोंकी तुलनाकी जाती है। उसकी विविध मात्राओंका प्रयोग करके परखा जाता है। अन्य विधियोंमें भी ऐसी परीक्षाएँ की जा सकती हैं, परन्तु इस ओर किसी अन्य विधिवालोंने कभी ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि वैज्ञानिक विषयोंमें आजकलके बड़े बड़े और प्रमुख विज्ञानी अल्लोपैथीको शामिल नहीं करते। रा० गौ०

होमियोपैथीके उपचारक

हानिमानके समयसे लेकर आजतक होमियोपैथीकी असंख्य परीक्षाएँ हो चुकी हैं और इस विषयका साहित्य बहुत विशाल हो गया है। जिन लोगोंने कुछ भी आरंभिक वैज्ञानिक शिक्षा पायी है, वह भी साधारणतया घरेलू इलाज पुस्तकोंके सहारे कर लेते हैं। परन्तु इसका पेशा करनेके लिये विधिपूर्वक कुछ रसायन विज्ञान, कुछ भौतिक विज्ञान, शरीरच्छेद विज्ञान, शरीर-व्यवस्था-विज्ञान, शारीरिक रसायन, ओषधिगुण, लक्षणोपचार संग्रह, इत्यादि आवश्यक आनुषंगिक विषयोंका अनुशीलन अनिवार्य्य है। जिसने विधिवत् इनका अध्ययन नहीं किया है, वह पेशेका अधिकारी नहीं है। यद्यपि यह सच है कि किसी विशेष विधानका नियंत्रण न होनेसे बहुतसे नौसिखिये भी डाक्टरी करने लगे हैं, तथापि यह भी सच है कि जिन-

गर्भाधान	गर्भकी गति	प्रसव
... ३०	... १५	... ६
मीन— १	... १६	७
... २	... १७	... ८
... ३	... १८	... ९
... ४	... १९	... १०
... ५	... २०	... ११
... ६	... २१	... १२
... ७	... २२	... १३
... ८	... २३	... १४
... ९	... २४	... १५
... १०	... २५	... १६
... ११	... २६	... १७
... १२	... २७	... १८
... १३	... २८	... १९
... १४	... २९	... २०
... १५	... ३०	... २१

गर्भाधान	गर्भकी गति	प्रसव
... १६	... ३१	... २२
... १७	सिंह—१	... २३
... १८	... २	... २४
... १९	... ३	... २५
... २०	... ४	... २६
... २१	... ५	... २७
... २२	... ६	... २८
... २३	... ७	... २९
... २४	... ८	मकर —१
... २५	... ९	... २
... २६	... १०	... ३
... २७	... ११	... ४
... २८	... १२	... ५
... २९	... १३	... ६
... ३०	... १४	... ७

विज्ञानके चमत्कार

न-जलनेवाली पत्थरकी रुई

अस्बेस्टास एक प्रकारका पत्थरका ही ऊन है जिसका कपड़ा, कागज, दफ्ती आदि बनाते हैं। इसमें यह गुण विशेष है कि आगमें नहीं जलता। इसपर आगका असर नहीं होता। वैज्ञानिकोंको सं० १८९४ में यह ज्ञान हुआ था कि पत्थरसे यह ऊन बन सकता है। उस समय हवाई द्वीपके किलौयिआ नामक ज्वालामुखीका उद्गार हुआ था। संयोगवश उस समय वहाँ कुछ भूगर्भ-विद्या-विशारद भी मौजूद थे। उन्होंने देखा कि ज्वालामुखीके उद्गारमें जो गला हुआ पदार्थ निकल रहा है एक विशेष प्रकारसे ठण्ढा होकर ऊन जैसा मुलायम हो जाता है। तबसे सौ वर्ष बीत जानेपर वैज्ञानिक आज कृत्रिम रूपसे ऐसा ऊन तैयार करनेकी बात सोच रहे हैं। किन्तु इस ऊनकी तैयारीके लिये एक नकली ज्वालामुखी चाहिये और उसीके उद्गारकी तरह वैसाही गरम पदार्थ उससे निकालना होगा। ११ फीट लम्बे-चौड़े और मोटे पत्थरसे चार इंच लम्बा चौड़ा ऊन तैयार हो सकता। यह ऊन धूप तथा ठण्ढ दोनोंसे रक्षा करता है।

एक लाख बरस पहलेका गजराज

कोई तीन महीने हुए दैया-इस्टेटके मुरलीपुर नामक

विधियोंमें पर्य्याप्त नियंत्रण है उन विधियोंके अनुयायी जो नये नये कार्य्यक्षेत्रमें आते हैं, उन नौसिखियोंसे अधिक प्रवीण नहीं होते और जनताकी उनकी अपेक्षा कम हानि नहीं करते। अल्लोपैथीके तो अनुभवी डाक्टर भी प्रमादवश रोगीके प्राणघातक हो जाते हैं, और बड़े बड़े डाक्टरोंका तो यहाँतक कहना है कि उनकी दसमें नौ असफलताका कारण उनका औषधोपचार है। अतः चिकित्साके संबन्धमें योग्य लोगोंको स्वतंत्रता भी चाहिये और नितान्त अयोग्योंको इस पेशेमें न आने देनेके लिये किसी परीक्षाका भी प्रबन्ध होना चाहिये।

हम ऐसे कई अच्छे होमियोपैथोंको जानते हैं जिन्होंने न विधिवत् किसी संस्थामें इस विषयकी शिक्षा पायी और न कोई परीक्षा पास की है। परन्तु वह बड़े ही दक्ष उपचारक हैं। वह इस योग्य हैं कि वह औरोंकी परीक्षाएँ लें। होमियोपैथीके इतिहासमें तो आरंभसे ही ऐसोंके उदाहरण भरे पड़े हैं। इस प्रान्तमें इस बातकी आवश्यकता है कि एक "हानिमान–परिषत्" बने जिसमें यहाँके अच्छे अच्छे होमियोपैथ सम्मिलित हों। यही परिषत् परीक्षा लिया करे और प्रमाणपत्र दिया करे। यदि परिषत् कुछ कालतक ठीक राहपर चलकर अपनी साख जमा लेगी तो जनता और पेशा दोनोंको सुभीता हो जायगा। *आशा है कि प्रान्तके प्रमुख होमियोपैथ हमारे इस प्रस्ताव पर जल्दी ही विचार करेंगे। रा० गौ०

* इस विषयका एक लेख डा० हुबदारसिंहका प्राप्त हुआ था। स्थानाभावसे हम उसे दे न सके। उस लेखके उद्देश्यपर ही यह टिप्पणियाँ दी गयी हैं। रा० गौ०

विज्ञानका उद्योग-व्यवसायांक

हम इसी अंकको विशेषांक कर देनेवाले थे। परन्तु जिस प्रकारकी जितनी सामग्री चाहिये थी वह इकट्ठी न हो पायी। हम ठोस और अत्यंत उपयोगी चीज निकालना चाहते हैं। अतः हमारे मान्य पाठकवृन्द कुछ और प्रतीक्षा करें। जब सब सामग्री प्रस्तुत हो जायगी तभी यह विशेषाङ्क निकलेगा। हम इसके लिये उद्योग कर रहे हैं।

डा० गणेशप्रसादका स्मारक अंक

परिषत्की कौंसिलने निश्चय किया है कि उसके स्वर्गीय सभापति डा० गणेशप्रसाद सम्बन्धी संस्मरणोंका संग्रह अगस्तमासके अंकमें निकाला जाय। अतः डाक्टर साहबके बड़ों, सहाध्यायियों, मित्रों, शिष्यों और नातेदारोंसे प्रार्थना है कि अपने अपने संस्मरण लिखकर शीघ्र भेजनेकी कृपा करें। उनके चित्र, उनका हस्ताक्षर, उनके लेख आदि सभी चाहियें। रा० गौ०

समालोचनार्थ साहित्य

हमारे पास समालोचनार्थ साहित्य इकट्ठा हो रहा है। परन्तु स्थानाभावसे हम अबतक न दे सके। आशा है अगले अंकमें हम कुछ समालोचना देंगे। रा० गौ०

हाथसे कुटे चावल, पिसे आटे और बने गुड़की महत्ता

डाक्टर अंसारीकी राय

महात्मा गांधीने अंग्रेजीके 'हरिजन' में हाथकी बनी इन तीनों चीजोंके लाभपर डा० अंसारीकी राय उद्धृत की है। विज्ञानके पाठकोंके हितार्थ 'हरिजन सेवक' से हम उसका अविकल अवतरण देते हैं।

चावल

"सब अनजोंमें चावल ही एक ऐसा अनाज है, जिसमें सबसे अधिक—क़रीब-करीब ५० प्रतिशत—स्टार्च होता है। चावलके स्टार्चमें विशेष लाभ यह है कि वह छोटे छोटे और सहजमें पच जानेवाले कणोंके रूपमें होता है। चावलको जब उबालते हैं, तब वह फूल जाता है और अपने वजनसे पंचगुना पानी सोख लेता है। उसमें जो खनिज और अन्य द्रव्य होते हैं उनका इस उबालनेकी क्रियामें नाश हो जाता है। लेकिन इस क्रियामें जिस सबसे आवश्यक द्रव्यका नाश हो जाता है, वह पानीमें गल जानेवाला विटामिन 'बी' (अन्नका प्राणतत्व) है। चावलपर पालिश चढ़ानेकी क्रियामें चावलका तमाम थर उखड़ जाता है। इस थरमें चावलका कना और चोकर दोनों ही होते हैं। पीलेसे रंगका जो कना होता है उसमें

गाँवके पास एक बहुतही प्राचीन प्रस्तरीभूत कंकाल मिला है। वह एक पानीके सोतेमें कंकड़की सतहपर पड़ा हुआ था और उसका एक हिस्सा ही बाहरसे देख पड़ता था। दैया-इस्टेटके राजा साहबने जब उसे खोदवाकर बाहर निकलवाया और कुछ वैज्ञानिकोंने उसे ग़ौरसे देखा तब जान पड़ा कि वह उस जातिके हाथीका कंकाल है, जो अबसे एक लाख वर्षसे भी पहले पाये जाते थे। अब-के हाथियोंसे उसकी डील-डौल अधिक है और उसके दाँत बारह-बारह फीट लम्बे हैं। कंकालके कुछ हिस्से पहलेहीसे गायब थे और बहुत पुराने होनेके कारण उखाड़ते वक्त टूट गए। राजा साहबने इस महत्पूर्ण कंकालको काशी विश्वविद्यालयके सुपुर्द कर दिया है। यहाँ वह सुरक्षित रूपसे रहेगा और उसकी जाँच पड़ताल की जायगी।

काल-किरण

लैसिस्टरके वैज्ञानिक श्रीचैडफील्डका यह दावा है कि मैं एक ऐसी किरण निकाल सकता हूँ जो कई सौ फुटकी दूरीपर खड़े मनुष्यके ऊपर पड़े तो भी उसे दम भरमें समाप्त कर सकती है। उसे कोई कष्ट न होगा, बल्कि उसे हलकी सुखद गरमी प्रतीत होगी और उसीके नशेमें वह बेहोश होकर मर जायगा। परन्तु मैं अपना यंत्र इस उद्देशसे बना रहा हूँ कि मांस खानेवालोंके लिये पशुकी हत्या बिना पीड़ाके हो सके और खेतीबारी-को सत्यानाश करनेवाले कीड़े भी सहजमें मर सकें। उन्होंने मक्खियोंके मारनेमें पहले सफलता पायी, तब वह अधिक शक्तिशाली यंत्र बनानेमें लगे। इन्हीं काल-किरणोंसे अंडे या गर्भके भीतरके बच्चेके नर या मादा होनेका निश्चय किया जा सकता है।

कल-पुरजोंसे बने मनुष्यका सुनना बोलना

लंडनके प्रोफेसर हरी-मेने कल-पुरजोंसे बने यंत्र मानव-का हालमें ही प्रदर्शन किया है। इस मनुष्यसे कहो कि 'जाग जाओ' तो अँगड़ाइयाँ लेता है, 'खड़े हो जाओ' तो उठकर खड़ा हो जाता है, "अपना दाहिना हाथ उठाओ" तो दाहिनाही हाथ उठाता है। कहने पर वह खाली पिस्तौल भी छोड़ता है। "तुम कितने बरसके हो" यह पूछनेपर साफ जवाब देता है चौदह बरसका। शब्दावली और वाक्य निश्चित हैं। जरा भी फेरफार करनेसे यंत्र-मानव निश्चल रहेगा, मानों कुछ सुनाही नहीं। इसके दिमागके भीतर बिजलीके स्फुरण उत्पन्न होते हैं जो निश्चित शब्दावलीसे प्रभावित होकर यंत्र-मानवके चालक पुरजोंको चला देते हैं। आरम्भमें इस यंत्र-मानवने प्रयोग-की अवस्थामें ही एक मिस्त्रीको इतना मारा कि उसकी सूरत बिगड़ गयी। अपने निर्म्मातापर ही गोली चला दी। परन्तु अब तो यह यंत्रमानव बड़ा भलामानस हो गया है।

विटामिन 'बी', चरबी और प्रोटीन होता है, और ये सारे ही द्रव्य शरीरके स्वास्थ्य तथा पोषणके लिए आवश्यक हैं। इस भूसीके निकल जानेसे चावलके सभी पोषक द्रव्य नष्ट हो जाते हैं। यह साबित हो चुका है कि पालिश किये हुए चावलमें विटामिन 'बी' नहीं होता और उसके अभावसे 'बेरीबेरी' नामका रोग पैदा हो जाता है। इसके विपरीत, बिना पालिशका हथकुटा चावल चूंकि मिलोंकी तरह उसाया तो जाता नहीं इसलिए उसमें विटामिन 'बी', प्रोटीन, चरबी और खनिज द्रव्य ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। ये द्रव्य चावलमें मूलतः कुछ बहुत अधिक तो होते ही नहीं। बिना पॉलिशके चावलमें भी मिलके कुटे चावलसे ओखली-मूसलका कुटा चावल बढ़िया होता है। कारण यह है कि मिलमें बिना पानी डाले भले ही चावलको खुश्क गरमी दी जाती हो, पर हाथके कुटे चावलमें तो इसकी भी जरूरत नहीं पड़ती।

आटा

"भारतवर्षमें सर्वश्रेष्ठ अनाज गेहूँ है। गेहूँके दानेमें इतने अंग होते हैं। भूसी यानी ऊपरी थर, जो 'सेल्युलोज' का बना हुआ होता है। गेहूँकी 'देह', जो स्टार्च या मैदाका बना हुआ होता है। और जीवाणु जो घुल सकनेवाले स्टार्च, प्रोटीन और थोड़ी-सी चरबीका बना हुआ होता है। प्रोफेसर चर्चके मतके अनुसार गेहूँके दानेमें निम्नलिखित द्रव्य होते हैं :—

पानी	१४.५%	स्टार्च (मंड) और शक्कर	६९%
नोषजन	११%	सेल्युलोज (छिद्रोज)	२.६%
चरबी	१.२%	खनिज द्रव्य	१.७%

मिलमें जब गेहूँको पीसते हैं, तब उसका जीवाणु और चोकर निकल जाता है, और इसके साथ ही गेहूँके और भी कई अत्यन्त उपयोगी तत्व नष्ट हो जाते हैं। इसका यह कारण है कि जीवाणुके साथ-साथ प्रोटीन और चरबीका अधिकांश निकल जाता है। इस बातका पता लगनेके बाद मिलकी पिसाईमें कोई ऐसी क्रिया निकाली गयी है कि जिससे इन द्रव्योंका नाश होना रुक जाय। मगर गाँवोंकी हथचक्कीके पिसे और बिना चले हुए गेहूँके आटेमें यह द्रव्य जितनी मात्रामें होते हैं उतनी मात्रामें मिलके पिसे आटेमें ये कभी रही नहीं सकते, और इसीसे उस आटेमें पोषक तत्व अधिक होता है, फिर हाथकी चक्कीका आटा सस्ता भी होता है, और गाँवोंके गरीब लोगोंको वह आसानीसे मिल भी सकता है।

गुड़

"दानेदार चीनी बनाते समय गुड़ तो आप ही बन जाता है। गन्नेका रस कड़ाहमें डालकर जब उबाला जाता है, तब पानी तो भाप बनकर उड़ जाता है, और मटमैले रंगकी गीली-गीली चीज कड़ाहमें रह जाती है। इसमें दानेदार बन सकनेवाली गन्नेकी खाँड़, बिना दानेकी फलवाली खाँड़, थोड़ा-सा मैल और कुछ रंगीन-सी चीज बच रहती है। नीचे लिखे अनुसार इन उपादानों से यह बनता है:—

गन्नेकी खाँड़	४७%	क्षार	२.६०%
फलकी खाँड़	२०%	पानी	२७.३%
मैल और रंगीन वस्तु २.७%			

साफ की हुई गन्नेकी दानेदार शक्करको ही लोग सबसे अधिक जानते हैं। रसायन विज्ञानकी दृष्टिसे इस शक्करमें तथा (चुकन्दर) बीटरूट, मेपल आदिसे बनी हुई शक्करमें कुछ फर्क नहीं है। जठरमें अम्ल आदिके बहनेके बाद ही गन्नेकी शक्कर पचती है, अर्थात् उसके पचनेमें देर लगती है, और इसके पश्चात् कलेजेमें 'ग्लाइकोजन' नामक पदार्थके रूपमें वह जम रहती है। इसके विपरीत, फलकी शक्कर सहज ही (मधुजन) 'ग्लाइकोजन'में परिणत हो जाती है, अर्थात् वह आसानीसे पच जाती है। सिर्फ गन्नेकी शक्कर जितनी मात्रामें खायी जाय उतनी ही मात्रामें अगर गुड़ खाया जाय तो उसमें गन्नेकी शक्कर और फलकी शक्कर २ और १ के अनुपातमें होनेके कारण वह जल्दी पच जाता है। इसलिए साफ की हुई सफेद चीनीकी अपेक्षा गुड़से कम-से-कम ३२ प्रतिशत विशेष पोषणशक्ति प्राप्त होती है।"

हाथके कुटे चावलपर नीचे लिखा एक और लेख महात्मागांधीने दिया है। वह भी मनन करने योग्य है।

हाथके कुटे चावलपर डाक्टरोंकी राय

पारसाल श्रीकोंडा वेंकटप्पय्या और मैंने मिलकर गुंटूर जिलेके हथकुटे चावलका प्रचार करनेवाले मंडलकी ओरसे गुंटूर कस्बेके डाक्टरोंकी राय इस विषयमें एकत्र की थी, और हमने उन सम्मतियोंकी एक पुस्तिका तेलगु भाषामें छपायी थी। राय देनेवाले सज्जनोंमें एक तो आई० एम्० एस्० आफिसर हैं, २३ एलोपथीकी हिन्दुस्तानी डिग्रीधारी हैं, २ के पास आयुर्वेदकी डिग्री हैं, और ५ उनमें बिना डिग्रीके हैं। इन पाँच सज्जनोंमें २ यूनानी हैं, १ प्राकृतिक उपचार करनेवाले हैं, और २ हैं होमियोपथीवाले। कई तो इनमें खास पुराने और अनुभवी हैं। कुछ नये भी हैं। पर सबने एक स्वरसे उखलीके कुटे चावलके पक्षमें ही राय दी है, और मिलके पालिशदार चावलको हानिकारक बतलाया है। आई० एम्० एस्० आफिसर लिखते हैं, "मिलके कुटे और पालिश किये चावलकी अपेक्षा हथकुटेमें पोषकतत्व अधिक है, और 'बेरीबेरी' नामक रोगको रोकनेका भी उसमें गुण है। विटामिनकी मात्रा भी उसमें अधिक है।" एक दूसरा डाक्टर लिखता है, "१९२९-३०में इकट्ठे किये हुए आँकड़ोंसे यह पता चलता है, कि जहाँ-जहाँ धान कूटनेकी बड़ी-बड़ी मिलें हैं, और जहाँ चावल ही लोगोंका मुख्य आहार है वहीं बेरीबेरी रोगके मरीज अधिक-से-अधिक संख्यामें पाये जाते हैं।" एक तीसरा डाक्टर अपने निजी अनुभवके आधारपर लिखता है, "हथकुटा चावल काममें लानेसे मेरे कुटुम्बवालोंको आरोग्यकी दृष्टिसे बहुत लाभ पहुँचा है।"

बेजवाड़ाके 'खद्दर-संस्थानम्' वाले श्रीवेंकट कृष्णैयाने बेजवाड़ाके ८ डाक्टरोंकी राय इस विषयमें इकट्ठी की थी। गुंटूरके वैद्य-डाक्टरोंकी रायसे ये डाक्टर भी इस बातमें सहमत हैं, कि लोगोंमें हथकुटा चावल खानेका ही प्रचार करना चाहिये। बेजवाड़ाके इन सम्मतिदाताओंमें ४ तो वैद्य हैं और ४ डाक्टर।

कई वर्ष हुए कि मद्रास-सरकारने कृषि-विभागसे एक पुस्तक प्रकाशित की थी। उसमें लिखा है, कि बेरीबेरीके इस दुष्ट रोगका मूल मिलके कुटे चावलमें है। जापान-सरकारने एक खास हदसे अधिक पालिश किये हुए चावल खानेकी मनाही कर दी है, क्योंकि एक डाक्टरने लिखा है कि, "चावलमें योंही प्रोटीन, चर्बी और क्षारकी मात्रा बहुत कम होती है, उसमें भी जब चावल मिलका कुटा और पालिशदार हो तब तो वह और भी खराब हो जाता है।"

इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है, कि पालिश किया हुआ चावल काममें लानेसे मनुष्यके स्वास्थ्यको बहुत नुकसान पहुँचता है। सरकार तथा जनताको जिस तरह बिने जल्द ही हथकुटे चावलके उपयोगका प्रचार शुरू कर देना चाहिये। सरकारके जो अस्पताल और जेलखाने हैं, वहाँ मरीजों और कैदियोंको पॉलिश किया हुआ चावल दया जाता है। अगले वर्षके आरम्भसे सरकारको हथकुटे चावलके लिए टेंडर मँगाने चाहिये। सरकारने ऐसा किया तो इस उद्योगको प्रोत्साहन मिलेगा, और इस सम्बन्धका अनुकूल वातावरण भी बन जायगा।

हथकुटे चावलका उपयोग तो एक फेशन हो जाना चाहिये और उसे सर्वसाधारणकी चीज बन जाना चाहिये। हाथसे धान कूटनेका यह धंधा स्वस्थ शरीरवाले गरीब लोगोंको सारे दिन काममें लगाये रह सकता है। इस दिन-दिन बढ़ती हुई बेकारीके जमानेमें तो यह धंधा आशीर्वाद रूप साबित होगा। इस हथकुटे चावलका एकदम भी लोग उपयोग करने लग जायँ, तो भी न तो चावलका अकाल ही पड़ जायगा, न भावमें तेजी ही हो जायगी। जहाँ जितनी माँग होगी, वह सब वहीं स्थानिक प्रयत्नसे पूरी हो जायगी।

—जी० सीताराम शास्त्री (हरिजनसे)

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४१ } प्रयाग, वृषार्क, संवत् १९९२। मई, सन् १९३५ ई० { संख्या २

शुभाकांक्षा

[ले०—साहित्यरत्न पं० भगवतीलाल श्रीवास्तव्य, 'पुष्प', काशी]

संकट सूदन सुखद-
सुसंस्कृत सौम्य सुधा-मय ।
वैभव-विमल-विचार-
विवर्द्धक बुद्धि-विभा-मय ।
दूरै दुराशा दैन्य द्वन्द्व-
द्युति दिव्य-दृष्टि-कर ।
शान्ति-सौख्य-सद्भाव-
समादर सुष्ठु-सृष्टि-कर ।
अति उच्च व्यवस्थित लाभ-प्रद
पूरण अध्यवसाय हो ।
मत-भेद-हीन जग-जय-करन
वैज्ञानिक व्यवसाय हो ॥

खाद और उसकी उपयोगिता

भारतीय कृषकोंकी दुर्गतिका मुख्य कारण, खादका दुरुपयोग ।

(लेखक—साहित्यरत्न पं० भगवतीलाल श्रीवास्तव्य, अध्यापक ग्रामोपयोगी शिक्षा, म्युनिसिपलिटी काशी)

भोजनकी आवश्यकता
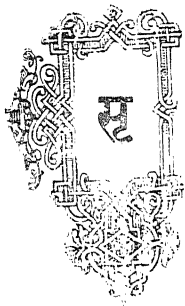
ष्टिकी सत्ता भोज्य पदार्थोंकी तात्विकतामें सन्निहित है। बिना भोजन जीवनकी सत्ता शून्य है, चाहे वह किसी प्रकारकी हो। भोजन प्राणिमात्रके लिए एक आवश्यक जीवनांश है। जीवधारियोंतक ही इसकी आवश्यकता नहीं, बल्कि जड़-जगत्‌को भी इसकी परमावश्यकता है। प्रसाणमें अगणित कलें विद्यमान हैं, जो बिना कोयला, तेल इत्यादिके अपना कार्य-सम्पादन सुचारु रूपसे करनेमें असमर्थ हो जाया करती हैं। तात्पर्य, विधि-विनिर्मित सृष्टिमें भोजनकी आवश्यकता सबको है।

भोजनके प्रकार

भोजन अनेक प्रकारके हैं। प्राकृतिक विभागमें भोजन के प्रायः तीन प्रकार हैं—भौमिक, जलीय तथा हवाई। तीनों प्रकारके भोजन संसारके प्राणी किसी न किसी रूपमें प्राप्त करते हैं। भोजनकी विभिन्नता रुचिपर अवलम्बित होनेके कारण अनिवार्य है। इसपर देश, काल, पात्र तथा अन्य अनेक उपादानोंका प्रभाव पड़ा करता है। वनस्पतियाँ इनसे विरक्त नहीं। ये भी अपनी जीवन-रक्षाके लिए भिन्न-भिन्न प्रकारके भोज्य पदार्थोंका उपयोग करती रहती हैं।

वनस्पतियोंका भोजन

मनुष्य-जगत्‌में जिसे भोजन कहते हैं, वनस्पति-जगत्‌में उसे ही 'खाद' कहते हैं। जिस प्रकार बिना भोजनके चेतन जगत् अपनी सत्ता स्थिर नहीं रख सकता उसी प्रकार बिना खादके वनस्पति-संसार अस्तित्वहीन है।

खादकी परिभाषा

खादकी परिभाषा बतलाना 'हाथ कंगनको आरसी' दिखलाना है। भोजनकी परिभाषा कर सकनेवालोंको खादकी परिभाषा ज्ञात होगी। यों कहा जाता है कि भोजनमें मनुष्यकी जीवनी शक्तिके योग्य सभी अंश उपस्थित रहते हैं और उसके उपयोगसे वह बढ़ता और शक्ति-सम्पादन करता है। अस्तु, कहा जा सकता है कि "खाद वह वस्तु-विशेष है जिसमें वनस्पति-जीवनके सभी अंश विद्यमान हों और जो उसकी वृद्धि तथा शक्ति-सम्पादनमें योग दे सके।"

खाद क्यों देना चाहिए ?

इस प्रश्नका समुचित उत्तर खादकी परिभाषाके साथ स्पष्ट हो चुका है अर्थात् पौधे या भूमिकी आवश्यकता-पूर्ति-पौधेको भोजन पाने—किसी अंशकी पूर्ति—उर्वरा-शक्तिकी वृद्धि तथा स्थूल पदार्थोंमें क्रियोत्पादनके लिए खादोंका देना परमावश्यक है।

खादके प्रकार

हम पहले कह आये हैं कि पौधोंको भोजन अनेक प्रकारसे प्राप्त होता है। प्रकृतिने उनकी बनावटमें ही कुछ भोजन मिला दिया है। बड़े होनेपर वे प्राकृतिक रूपमें भी भोजन ले लेते हैं। इनके भोजनके प्राकृतिक साधन हवा, भूमि और जल हैं। हवासे पौधोंको कई प्रकारकी गैसें मिलती हैं। वायुसे पौधा केवल कार्बनिकाम्ल स्वतन्त्र रूपमें ग्रहण करता है। नोपजन भी कुछ न कुछ इनके काम आता है। कर्बनसे पौधेका छिद्रोज, मंड और काष्ठ-अंश बनता है। पौधे हवासे आवश्यकतानुसार ओपजन और अमोनिया (सड़ी चीज़ोंसे निकली हुई दुर्गन्धि) भी ले लेते हैं।

पानी पौधोंकी खुराकका आवश्यक साधन है। पौधे अपना भोजन घोलके रूपमें लेते हैं जो बिना पानीके असम्भव सा है। पानीकी दोनों गैसें अर्थात् **उद्जन** ओपजनसे ही पौधेका **मंड** और शकर तय्यार होता है।

हवा और पानीसे पौधा गैसें प्राप्त करता है मंड भूमि उसको खनिज अंश देती है। जैसे-फास्फोरस (स्फुर), सिलीका,

लोहा, सोडा (सैंधकम्), पोटाश (पांशुजम्), गन्धक इत्यादि।

इन सबके अतिरिक्त अनेक और उपयोगी खादें भी पौधोंको दी जाती हैं, जैसे गोबर, खली, विष्ठा आदि जो कृत्रिम रूपमें पौधोंके काम आती हैं। इसप्रकार स्वाभाविक तथा कृत्रिम खादके दो प्रकार हो जाते हैं।

खादके और प्रकार

बहुतेरे विद्वान् खादको दो भागोंमें विभक्त करते हैं (१) जीवित प्राणियोंसे प्राप्त तथा (२) निर्जीव प्राणियोंसे प्राप्त। वे पहलेको जान्तव खाद (Organic manures) तथा दूसरेको खनिज खाद (Inorganic manures) कहते हैं। इन खादोंके प्रभावमें विभिन्नता होनेसे इसके दो विभाग भी हैं—१-साधारण खाद। २-विशेष खाद।

साधारण खाद और उसका प्रभाव

साधारण खादमें अधिकतर गोबर, कूड़ाकरकट, घोड़ेकी लीद, भेड़-बकरियोंकी मेगनी, अनेक जीवों तथा मनुष्यकी विष्ठा, खली, मछली तथा हरियाली आदिकी पाँसोंका नाम आता है। साधारण खादमें पौधेके भोजनकी सभी वस्तुएँ पर्याप्त मात्रामें उपस्थित रहती हैं। इसका प्रभाव देरमें पड़ता तथा अधिक समयतक बना रहता है। यह प्रत्येक जिन्स और सब प्रकारकी भूमिके लिए परमोपयोगी है। इसमें सन्देह नहीं कि साधारण खाद दीन-धनी सभी कृषकोंका साथी और हितुआ है। इसकी प्राप्ति भी सरल-से सरल उपादानोंपर अवलम्बित है। बस आँख खुलने मात्रकी देर है।

विशेष खाद और उसका प्रभाव

विशेष खादमें विशेषकर शोरा, अमोनियमगन्धित, पोटाशियमगन्धित, चूना, हड्डीसे बने खाद, नाइट्रोलिय, कोलन्तर आदिका नाम आता है। इस प्रकारके खादमें किसी जिन्स-विशेषके लिए या किसी भाग-विशेषकी न्यूनता-पूर्तिके लिए अंश रहते हैं। जैसे दालदार पौधे तथा चिकनी मिट्टीके लिए चूना, गेहूँ मक्काके लिए शोरा आदि। इसका भिन्न भिन्न प्रभाव होनेके लिए सभी प्रकारकी जिन्सों तथा भूमिके लिए अनुपयुक्त है। विशेष खादका प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ता है और शीघ्र ही समाप्त भी हो जाता है। साधारण खादकी भाँति यह सबके काम भी नहीं आ सकता। इससे केवल पैसेवाले लाभ उठा सकते हैं। कारण कि भारत जैसे निर्धन देशमें इसकी सम्यक् प्रतिष्ठा नहीं है।

अच्छे खादकी पहचान

प्रायः खाद वही अच्छी कही जाती है जो खूब सड़-गल गयी हो। न सड़नेवाली खाद कृषिको कभी लाभप्रद नहीं होती क्योंकि उसके लाभदायक अंश बिना गले घुल न सकनेके कारण पौधोंके काम नहीं आ सकता। खादका नरम होना भी उसकी अच्छाईका चिह्न है। कठिन खादसे पौधे अपना जीवनांश ग्रहण कर सकनेमें असमर्थ होते हैं क्योंकि वे भूमिमें अपना अस्तित्व छोड़नेमें विफल रहते हैं। अच्छी खाद देखनेमें स्याह होती है। उसकी कालिमामें एक प्रकारकी सुन्दरताका आभास मिलता है। सड़कर दुर्गन्धि-रहित हो जाना अच्छी खादका दूसरा लक्षण है। अच्छी खादमें नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश और चूनेका अंश पर्य्याप्त मात्रामें तथा घुल जानेवाली अवस्थामें होता है।

खादका भीषण दुरुपयोग

साधारण कृषकोंके यहाँ प्रकृतिद्वारा ऐसे-ऐसे साधन प्राप्त हैं, जिनसे उन्हें अनायास ही अधिकसे-अधिक मात्रामें उपयोगी खादकी वस्तुएँ प्राप्त होती रहती हैं। गोबर, कूड़ा-करकट, पतझड़की पत्तियाँ, चिड़ियोंका बीट, अनेक प्रकारसे प्राप्त राख, नोना मिट्टी, तालाबकी सड़ी-गली मिट्टी तथा अनेक प्रकार स्वयं उत्पन्न पौधोंकी गणना ऐसी ही उपयोगी वस्तुओंमें है, जिनके लिए हमको पैसा खर्च नहीं करना पड़ता प्रत्युत प्रकृति हमें स्वयं देती है किन्तु अपनी महान् निष्क्रियताके कारण हम इनके अलभ्य लाभोंसे वंचित रहते हैं और उनकी ओर फूटी आँखसे भी नहीं देखते। यदि आवश्यकता पड़नेपर देखते भी हैं तो उसका प्रयोग ऐसे भद्दे ढंगसे करते हैं कि उनसे लाभके स्थानमें हानि होती है। उदाहरणस्वरूप गोबरको ही लीजिए। गोबर ऐसी खादोपयोगी वस्तुको हम लोग जलाते अथवा योंही खेतोंमें फेंक देते हैं। ऐसा करनेसे हमारे खेतोंमें उत्पादन-शक्ति पैदा होनेके स्थानमें दीमकोंके उत्पन्न करनेकी शक्ति आ जाती है। उपयोगी और अत्यन्त लाभ-

दायक विष्ठा तथा मैलेके पाँसोंकी भी यही दशा है। महुए और नीमकी खलियाँ जलायी जाती हैं। मछली खानेवाले अधिक हैं किन्तु खादके उपयोगमें धर्मकी ओटमें हिंसाकी दुहाई देते हैं। रखनेकी विधिमें भी इन वस्तुओंकी कम दुर्दशा नहीं की जाती। जहाँका-तहाँ बेतरतीब फेंक दिया जाता है, जिसके फलस्वरूप अधिकांश खादकी वस्तु और उसका उपयोगी अंश नहीं रह जाता। खाद देनेकी विधिमें भी उसकी दुरुपयोगिताका पूर्व आभास दृष्टिगत होता है। ऐसे समयमें खाद खेतमें फेंक दिये जाते हैं कि वे मिट्टीमें न मिलकर यों ही सूखकर व्यर्थ हो जाते हैं। जब इन साधारण वस्तुओंकी यह दुर्दशा है तो हड्डीका नामतक लेना पाप होगा। इसका तो कुछ भी उपयोग अधिकांश कृषकोंको कौन कहे, १ फी सदी कृषकोंके यहाँ होता नहीं देखनेमें आता। यहाँकी आर्थिक हीनता भी खादोंके दुरुपयोगमें बहुत कुछ सहायक है। चूना, नमक, सोडा, खली आदिका उपयोग विशेष मूल्यवान होनेके कारण कृषक नहीं कर पाते। भारतीय खादकी दुरुपयोगिता देखते हुए कहना पड़ता है कि अपनी करनीका पूरा फल अभी भारत नहीं पा चुका है।

खादकी उपयोगिता

खादकी उपयोगिता उसके तय्यार करनेकी विधि, देनेकी प्रणाली तथा उसकी समयोचित उचित मात्रा आदिपर निर्भर है। गोबर, बीट, मेगनी-मूत्र तथा विष्ठाकी पाँस प्रायः पशुओंके भेद-अवस्था-भोजन-विचाली (पागुर), निवासस्थान तथा जमा करनेकी विधिपर बहुत कुछ अवलम्बित है। साधारणतः बैलका गोबर ठंढा होता है। खूब सड़ गल जानेपर सूअरकी विष्ठा, भेड़की मेगनी और घोड़ेकी लीद और पेशाब एकसे एक बढ़कर लाभप्रद हैं। न्यून अवस्थाके पशुका गोबर जवानसे और जवानका बूढ़ेसे कहीं अच्छा होता है। इसी प्रकार निठल्लेका खाद परिश्रमीसे अधिक लाभप्रद होता है। दूध देनेवालोंका गोबर कम लाभ पहुँचानेवाला होता है। छप्परदार पशुशाला तथा औसत (माध्यम) मात्राकी विचालीसे बने गोबरमें पौधेके भोजनकी सामग्री अधिक रहती है। खादोंकी उपयोगिता उनके घुल जानेवाली दशामें विशेष बढ़ जाती है अतः उपयोगी होनेके लिए उनका सड़-गलकर चूर-चूर नर्म होना परमावश्यक है।

खाद तय्यार करनेकी विधियाँ

आजकल जिस प्रणालीका प्रयोग खाद तय्यार करनेमें साधारण कृषक करते हैं—उसको तय्यारीकी विधि न कहकर 'बिगाड़-विधि' कहना ही उपयुक्त जँचता है। खादकी असीम कृपा है जो पड़े पड़े तय्यार होनेका दम भरता है। इस अवस्थामें पड़ा गोबर कूड़ा-करकट, पत्तियाँ आदि सभी या तो नष्ट हो जाते हैं या अपनी दुर्गन्धिसे रोगोत्पादक हो जाते हैं। अस्तु—

गोबर-कूड़ा-करकट

आदिसे उत्तम खाद तय्यार करनेकी उत्तम विधि यह है कि इन्हें एक ऐसे गढ़ेमें रक्खा जाय जिसमें इनकी पूर्ण रक्षा हो सके और बरसातका पानी गर्मीकी आँधी इन्हें नष्ट न कर सकें। इनकी बनावट भी ऐसी होनी चाहिये कि इनका रस भूमि न सोख ले और न हवा-पानी उड़ा ले जायँ। अर्थात् ऐसे गढ़ोंकी भीतरी दीवालें या तो पलस्तर की हुई हों अथवा खूब पिटी और चिकनी मिट्टीसे लिपी पुती हों। इनकी स्थिति ऐसी ऊँची जगह पर होनी अनिवार्य है कि आसपाससे पानी आकर न भर जाय अथवा इन्हें बहा न ले जायँ। इनके ऊपर पुष्ट छप्परका होना भी आवश्यक है। गढ्ढेमें रहनेवाली वस्तुओंको खूब ढाँपकर रखनेमें ही लाभकी सम्भावना है। इनसे निकली दुर्गन्धिकी रक्षा परमावश्यक है। सड़नेके लिए इन्हें कमसे कम साल-भरकी अवधि मिलनी चाहिए। इन गढ्ढोंका आकार कुण्डाकार न होकर वर्गाकार अथवा आयताकार होनेमें ही विशेष सुविधा होती है। पचीस तीस पशुओंके गोबरका खाद तय्यार करनेवाले गढ़ेका आनुमानिक विस्तार २० फुट लम्बा १५ फुट चौड़ा तथा ५ फुट गहरा होता है। इस प्रकारके गढ़ेमें गोबर कूड़ा-करकटके अतिरिक्त अनेक जानवरोंकी विष्ठा, मेगनी, हड्डी, लीद आदि सभी सड़ाकर काममें ला सकते हैं।

हरियाली अथवा वानस्पतिक खाद

तय्यार करनेकी विधि यह है कि उन्हें खेतोंमें बोकर कुछ बढ़ जानेपर जोतकर मिट्टीमें मिला दिया जावे। इससे

भूमिमें वनस्पतिका अंश अधिक होकर पौधोंको विशेष भोजन प्राप्त करनेमें सहायक होता है। इस खादके लिए फलदार चीज़ें विशेष उपयुक्त होती हैं क्योंकि इनके कारण हवासे जड़ द्वारा प्राप्त नाइट्रोजन भूमिको विशेष बलवान बना देता है। ऐसी फसलोंमें 'सनई' विशेष उपयुक्त है। बोड़ा, मोथी, नील, लोबिया आदि भी काममें आती हैं।

मैले और मूत्रसे खाद

तय्यार करनेकी विधियाँ शहरकी म्युनिस्पैलिटियोंमें प्रायः होती हैं। वहाँ गढ़े विशेषमें मैला जमा होता और सड़ता है और जिसे आवश्यकता होती है ले जाता है। पशुओंके मूत्रके जमा करनेकी विधि अत्यन्त सरल है। पशुओंके रहनेके स्थान ढालुआँ बनाकर सबसे पिछले भागमें नाली बनाकर एक गढ़ेमें एकत्रित किया जा सकता है। गोबर लीदकी अपेक्षा मूत्रकी उपयोगिता विशेष है।

अन्य प्रकारके खाद

जैसे खली, चूना, शोरा, नमक तथा अनेक खनिज खाद गढ़ेमें सड़ाये न जाकर यत्नपूर्वक बोरे आदिमें रखे रहते हैं और अवसर आनेपर चूर्णके रूपमें दिये जाते हैं। उनका सड़ना-गलना खेतमें ही होता है। मेंगनी तथा पक्षियोंके बीटसे भी उपयोगी खाद बनानेके लिए उनका महीनसे महीन चूरा बनाना अनिवार्य है।

खाद देनेकी विधियाँ

हमारे यहाँ खाद देनेकी प्रणाली भी विकृतावस्थामें है। यह तो प्रकृतिका ध्यान रख कृषककी इच्छा तथा उसके अवकाश मिलनेपर निर्भर हो चली है। यही कारण है कि अधिकसे अधिक मात्रामें खाद देनेपर भी अनेक कृषकोंको माथा ठोंककर रह जाना पड़ता है। खाद देते समय इस बातका ध्यान होना चाहिए कि खाद खेतमें यों ही पड़ा न रहे उसे खेतमें पहुँचते ही मिट्टीमें मिला देना चाहिये। खाद खेतमें सब जगह सम मात्रामें देनेसे पौधे एकाङ्गी न होकर सब ओरसे पूर्णरूपमें फैलते तथा वृद्धि पाते हैं। सच पूछा जाय तो खेतमें खाद देनेका उपयुक्त समय वही है, जब खेत जोतकर बोनेके लिए तय्यार हो। ऐसे समय खाद देनेसे उसका पूरा लाभ पौधोंको प्राप्त होता है अन्यथा उनके तत्वोंके उड़ जाने अथवा वर्षा, हवा, धूपके प्रभावसे क्षीण हो जानेका भय रहता है। खाद देते समय इस बातका पूरा विचार रखना आवश्यक है कि वे मिट्टीमें पूर्णतया मिल घुल जावें और पानी पड़नेपर घोलके रूपमें पौधोंका लाभदायक अंश दे सकें।

कुछ विद्वानोंके मत—

के अनुसार बार बार उठाकर खाद न देनेकी अपेक्षा एक ही बार उनका खेतमें रखना ही विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है। उनका कहना है कि यदि खेत छोटा और खादकी चीजें कम हों तो खेतमें छोटे छोटे गढे (लगभग ५ फुट लम्बे ५ फुट चौड़े १ फीट गहरे) खोदने चाहिए। ये गढ़े एक साथ न खुदे जाकर एकके बाद दूसरे होंगे-जब एक खादसे भर जायगा तब दूसरा तय्यार होगा। इस प्रकार तमाम खेत खादसे पट जायगा और मिट्टी भी अदली-बदली रहेगी। निम्नांकित चित्रसे इसका स्पष्टीकरण हो जायगा।
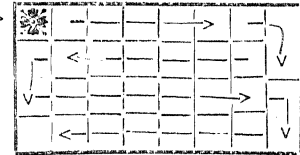
इसी प्रकारकी दूसरी विधि उन कृषकोंके लिए है जिनके पास खेत और पशु अधिक हैं और खादकी वस्तु विशेष मात्रामें उपलब्ध हैं। इस विधिमें खेतमें मेड़के पास एक फुट ज़मीन छोड़कर पाँच फुट चौड़ी और एक फुट गहरी खाँई खोदते हैं। खाँईकी मिट्टी छोड़ी भूमिपर छोड़ते हैं। खादसे पट जानेपर दूसरी खाँईकी मिट्टी उसपर छोड़ देते हैं और अन्तिम खाँईमें छोड़ी भूमिकी मिट्टी छोड़ते हैं। इसका चित्र इस प्रकार है—

१ फुट छोड़ी हुई भूमि—> जिसपर पहली खाई की मिट्टी जमा होगी। एक खाई के बाद दूसरी खाई काम में आती है।

खाई नं० १
२
३
४

५ फुट चौड़ी और १फुट गहरी खाई जिसे खाद से पाटेंगे।

खाद कब देनी चाहिए ?

जिस प्रकार भूखेको भोजन भूख मालूम होनेपर देना चाहिए अथवा कोई वस्तु उसके ग्रहणकर्ताके उपस्थित होनेपर देना चाहिए उसी प्रकार खादके देनेका भी वही समय है। जब पौधोंको उसकी आवश्यकता हो अथवा जब भूमि उसके ग्रहण करने योग्य हो। वनस्पतिका खाद बरसातके प्रारम्भमें ही बोकर जोत दिये जानेसे पौधोंको समयपर लाभ पहुँचाते रहेंगे। उनको खेतमें मिला देना हमारा लाभ है, पौधोंमें वितरण करना प्रकृतिका काम है। कुछ फसलोंमें बोनेके पूर्व, कुछमें १५-२० दिनके अन्तरसे, कुछमें फूलते समय तथा कुछमें फल लगनेके समय दिया जाता है। साधारण खाद साधारणतः बोनेके पूर्व और फल लगनेतक बीच बीचमें सब दिन दिया जाता है किन्तु विशेष खाद प्रायः किसी विशेष कमीकी पूर्ति अथवा फल लगनेके समय दिया जाता है। स्मरण रखना चाहिए कि खलीका खाद सर्वदा सिंचाईके बाद देना ही लाभप्रद होता है। हड्डीका चूरा, शोरा, नमक, फास्फोरस आदि प्रकारके खाद सिंचाईके पूर्व ही देनेसे विशेष लाभप्रद सिद्ध होते हैं। इनके देनेके बाद सिंचाई करके गोड़ाईकर देना बहुत उपयोगी है। खादका पूरा लाभ तभी प्राप्त हो सकता है जब खेतमें उसकी मात्रा सर्वत्र समान हो। उसका मिट्टीमें मिलना और घुलना भी आवश्यक है। अस्तु, जुताई, गुड़ाई, सिंचाईके पूर्व उसका समय कहा जा सकता है।

खादकी मात्रा

जिस प्रकार मनुष्यके भोजनकी मात्राका ठीक ठीक बतलाना कभी सम्भव नहीं, उसी प्रकार खादकी मात्राका ठीक ठीक बतलाना भी कठिन कार्य है। हाँ! इस बातका ध्यान रहना परमावश्यक है कि खादकी मात्रा इतनी न हो कि पौधोंको बादीका रोग हो जाय और वे अधिक खाकर किसी कामके योग्य न रहें। अधिक खाद देनेसे पौधे ज़ोरदार होकर गिर जाते हैं और उनमें फल-फूल लगनेकी कम सम्भावना होती है। कम खाद देना भी लाभकारी नहीं। इससे कहा जा सकता है कि खाद उचित मात्रामें दिया जाने पर ही विशेष लाभ हो सकता है। खादकी मात्रा प्रायः जिन्सोंके भेद तथा भूमि-भेदपर बहुत कुछ निर्भर है। मूल्यवान खादकी मात्रा प्रायः कम हुआ करती है। नीचेकी तालिकासे खादकी मात्राका कुछ अन्दाज़ा लग सकता है किन्तु भूमि तथा फसलके विचारसे यह अनुमान सोलहो आने ठीक होनेका दावा नहीं कर सकता।

नाम खाद	मात्रा फी एकड़ तथा विशेष बातें
१—गोबर, कूड़ा-करकटसे सड़ाया हुआ खाद तथा सड़ी मिट्टी।	यह आसानीसे मिलनेवाला सस्ता खाद है इसकी जितनी मात्रा खेतमें हो लाभ-प्रद है। अनुमानतः १०-१५ गाड़ी फी एकड़।
२—खलीका खाद।	यह खाद सभी प्रकारके जिन्सोंके उपयुक्त है।
अ—बे छिलकेदार खली।	१०ऽ से २०ऽ तक। गोबरकी खली कई गुना अधिक प्रभाव डालती है। फलदार पेड़, कीमती तरकारी तथा फूलदार पौधोंके योग्य है।
ब—छिलकेदार खली।	१५ऽ से २५ऽ तक।
स—नीमकी खली।	१०ऽ से २०ऽ तक। दीमक मारनेमें विशेष सहायक है।
३—मैलेका खाद।	५०ऽ से २००ऽ तक। चिकनी मिट्टीमें अधिक न देना चाहिए क्योंकि उसकी चिकनाहट घट जानेका भय है।
४—नमकका खाद।	१ऽ के लगभग। तरकारीके पौधोंको विशेष लाभप्रद है।
५—चूनेका खाद।	गेहूँ मक्कामें फलनेसे पहले देना चाहिए। ३ऽ से ४ऽ तक। यह हानिकर चीजोंको रोकता तथा भूमिकी खटाई दूर करता है।
६—कैलशियम।	१०ऽ से १२ऽ तक।
७—हड्डी।	५०ऽ से १००ऽ तक। पौधेका अंश फास्फोरस इसमें अधिक होता है।

८—शोरा ९—अमोनियम सलफेट १०—पोटैशियम सलफेट	जल्द असर करनेवाली चीज है। फूल निकलनेसे पहले देना चाहिए प्रत्येक १५ से ३५ तक।
११—नाइट्रोलियम।	यह राख अथवा मिट्टीके साथ मिलाकर दिया जाता है मिलावटकी मात्रा १ और २ के अनुपातसे होनी चाहिए।
१२—बीट (पक्षीका)।	इसकी मात्रा प्रति पौधा एक पसर या पाव भरके लगभग हो सकती है। यह सागभाजीके लिए अतीव उपयोगी खाद है।
१३—खून, मछली इत्यादि।	ये अन्य खादोंके साथ मिलाकर दिये जाते हैं। उचित मात्रामें इसकी मिलावट उपयुक्त होती है।

यह तालिका लगभग अनुमानपर अवलम्बित है। यदि बुद्धिसे काम लिया जाय और खादकी उपयोगिताका मूल्य आँका जाय तो मनुष्य खादकी मात्राका उपयुक्त अन्दाजा लगा सकता है।

खाद और भूमि

खाद देते समय भूमिका ध्यान आवश्यक है। जैसे मैलेकी खाद चिकनी मिट्टीके लिए उतनी लाभप्रद नहीं जितना चूना है। इसका ध्यान न रहनेसे प्रायः हानिकी सम्भावना रहती है। गोबर, राख, सड़ा कूड़ा-करकट आदि सभी प्रकारके खेतोंकी मिट्टीके उपयुक्त होते हैं। भूमि सुधारनेके लिए भी खादोंका प्रयोग होता है। सड़ा गोबर विशेष बालूदार मिट्टीको ठीक कर देता है। चिकनी मिट्टीके लिए बिना सड़ा गोबर उपयुक्त है। मिट्टीकी चूनेकी अधिकता वनस्पतिके प्रयोगसे कम हो जाती है। वानस्पतिककी अधिकता तथा खटाईकी अधिकतासे चूनेसे दूर हो जाती है। मिट्टीमें अंश विशेषकी कमी पूरी करनेके लिए खाद विशेषका प्रयोग होता है। इसके लिए गोबर, खली या मैलाका उपयोग भी उचित है अथवा भेड़ोंका रखाव किया जाय तो विशेष लाभ की सम्भावना है।

खादका व्यापार

आजकल कृषकोंकी असावधानी या उनके पास समयका प्रभाव—चाहे जो कारण हो उनका सर्वस्व खाद भी व्यवसायियोंके हाथमें चला गया है और आवश्यकता पड़नेपर तीनका तेरह लगानेसे काम पूरा होता है। विधियोंके लोप हो जानेके कारण सभी अच्छी खाद नहीं बना सकते। अतः इसके विशेषज्ञ उचित ढंगसे खाद बनाते और कृषकोंसे बेचकर पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं। इस प्रकारके तय्यार खाद प्रायः सरकारी फार्मोंपर उचित मूल्यमें प्राप्त होते हैं। सौभाग्य समझिये या अभाग्य हमारे नित्य काम आनेवाले—कृषिप्रधान कहलानेवाले देशमें भी—खाद अन्य देशोंसे आने लग गये हैं। इसकी भी कपड़ेसे कम भयानक स्थिति होनेमें कोई सन्देह नहीं। हमारी दयालु सरकार भी इससे अचेत नहीं। अनेक प्रकारके खादोंके प्रचारमें पूर्ण योग देकर कृषकोंका हाथ बँटा रही है।

खाद और अर्थ

ऊपरकी व्याख्यासे हमको खादका बहुत कुछ महत्व ज्ञात हो चुका है। खेतसे सम्बन्ध रखनेवालोंके लिए खादका वही महत्व है जो शरीरका शरीरीसे। खादके बिना भूमिवालोंकी दुर्गति कभी दूर नहीं हो सकती। उनकी सोलहों आने आर्थिक स्थिति इसी खादपर अवलम्बित है। भारतकी आर्थिक दुर्गतिका मूल कारण यहाँके कृषकोंमें खादका उचित उपयोग न करना मुख्य है। भारतके खेतोंकी रासायनिक मीमांसा द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि भारतीय भूमि अभी निर्बल नहीं प्रत्युत उचित खादके प्रयोगकी कमी उसकी शक्ति दबाये हुए है। इस प्रकार और समय व्यतीत हो जानेपर लोगोंकी धारणा ही कुछ ऐसी हो जायगी कि वे प्रारब्धके ओटमें भूमिको निर्बल समझने लगेंगे। अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनेवाले कृषकोंको उचित है कि वे अपने इस अनायासप्राप्त अमूल्य रत्नदायिनी तत्वकी रक्षा करें और उसके उचित प्रयोगसे पूरा लाभ उठावें। ये हमारे गुदड़ीके लाल किसी प्रकार कल्पवृक्षसे कम नहीं। हम तो यहाँतक कहनेके लिए तय्यार हैं कि खादका उचित उपयोग प्रारब्धसे भी बलिष्ठ है। कहा भी है कि—

मनोविश्लेषण और अध्यात्म-विज्ञान

प्रोफेसर फ्रूइडकी धारणायें

[ले०—रामदास गौड़]
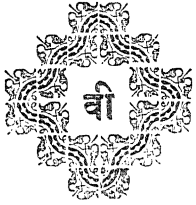
वीनाके प्रोफेसर फ्रूइडने अपनी नयी खोजोंसे मनोविज्ञानकी एक नयी शाखा उत्पन्न की है। इस शाखाका विषय मुख्यतः अचेतन अन्तःकरण है। फ्रूइडकी कुछ धारणायें तो वैज्ञानिक जगतने मान ली हैं और बहुतेरी ऐसी भी हैं जो अभीतक स्वीकृत नहीं हुई हैं। इस नयी शाखाकी सबसे बड़ी उपयोगिता शिक्षक और चिकित्सकके काममें है।

मुख्य धारणा यह है कि हमारे अन्तःकरणका एक बहुत बड़ा अंश ऐसा है जिसका हमको बिल्कुल पता नहीं है परन्तु उसीके प्रभावसे हम सपना देखते हैं। सपने इसी बड़े अंशकी कर्मण्यतासे पैदा होते हैं। वात रोगोंसे पीड़ित होकर जिन रोगियोंके अंगोंकी क्रिया बिगड़ गयी थी फ्रूइडने उनकी जाँच की तो पता लगा कि लकवा, अंधापन, बहरापन और गूंगापन आदि अनेक रोग बहुधा शरीरके बाहरकी किसी घटनाके प्रभावसे हो गये हैं। जैसे बरसों पहले किसी रोगीने अत्यन्त कष्ट और पीड़ाजनक कोई बात देखी और उसके बाद ही वह अन्धा हो गया। अपने होश-हवासमें रोगी यह कभी नहीं समझता था कि मेरे अंधेपनसे उस घटनाका कोई सम्बन्ध है परन्तु जब कभी रोगीको सम्मोहन-क्रियासे सुषुप्त अवस्थामें पहुँचाया गया तो बहुधा पता लगता था कि उसके अन्धेपनका कारण वही घटना है। कभी-कभी रोगी स्वयं इसी मतलबका सपना देखता था और वर्णन करता था, परन्तु उसकी साधारण चेतना उसके रोग और घटनाका कर्मकारण सम्बन्ध होना नहीं मानती थी।

फ्रूइडने यह भी देखा कि बड़े कष्टदायक अनुभव जो जागते हुए होश-हवासमें याद नहीं आते थे, साधारण स्वस्थ मनुष्योंको बहुत थोड़े बदले हुए रूपमें सपनेमें बहुत दिखाई देते थे और साधारण और असाधारण दोनों तरहके मनुष्योंके सपनेकी जब व्याख्या की जाती थी तब बराबर यही पता लगता था कि उस व्यक्तिकी कोई ऐसी इच्छा या अभिलाषा अवश्य थी, जिसे शारीरिक नैतिक या सामाजिक हेतुओंसे वह जाग्रत अवस्थामें पूरी न कर सकता था। सपनेमें उसकी पूर्ति-कल्पनाका चित्रण होता था। जान-बूझकर या नैसर्गिक रीतिसे भूल जानेकी क्रियाको फ्रूइडने भावोंको दबा देना कहा है। इस तरहसे दबी हुई स्मृतियोंके समूहका नाम उसने अचेतन रखा क्योंकि एक इच्छाके दबानेमें वह सारे अनुभव भी दब जाते हैं जिसके कारण वह इच्छा पैदा हुई। यही बात है कि प्रायः हमें अपने अत्यन्त बचपनकी याद बिल्कुल नहीं आती।

"खादी कूड़ा ना टरै कर्म लिखा टरि जाय"।

कृषिका मूल साधन भूमि (खेत)का अस्तित्व सोलहो आने इसीपर अवलम्बित है। सुनिये—

"खाद पड़े तो खेत, नहीं तो कूड़ा रेत"।

अतः कृषकोंके अर्थसे खादका घनिष्ठ सम्बन्ध है—इसपर उन्हें पूरा ध्यान देना चाहिए।

खादका भविष्य

खाद सम्बन्धी लोक-चिन्तनका स्मरण करनेसे कहना पड़ेगा कि इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल और आशामय है। साथ ही आलसी और परावलम्बी खेतिहरोंके लिए कम भयावह तथा कण्टकसे खाली भी नहीं है। खाद-विषयक सफल उपायों, साधनाओं एवं गवेषणाओंके बलपर कहना न होगा कि धरित्री फिर धरित्री, वसुन्धरा, रत्नगर्भा आदि कहलानेका सौभाग्य शीघ्र ही प्राप्त करेगी और उसके उपयोगकर्ता शीघ्र ही दारिद्र्यके चंगुलसे छूट अर्थसम्पन्न दिखलाई पड़ेंगे। इतना होते हुए भी प्रगति अभी नहींके बराबर है। हमें इसके लिए विशेष रूपमें तय्यार तथा चैतन्य होनेकी आवश्यकता है।

सुषुप्त चेतना या तैजस

भारतीय प्राचीन मनोविज्ञानियोंने जाग्रत अवस्थाकी चेतनाको प्राज्ञ और स्वप्नावस्थाकी चेतनाको तैजस कहा है। यह एक तरहकी सोयी हुई चेतना है जो सपनेमें मानों जग पड़ती है। पाश्चात्य विज्ञानी इसे सुषुप्त या अन्तःचेतना कहते हैं। कोई शब्द ठीक जबानपर है, पर याद नहीं आता। सोचनेपर उसका पूरा ख्याल आ जाता है और ठीक-ठीक कहा भी जा सकता है। यह क्रिया जाग्रत चेतनाकी नहीं है। मुझे कोई खास काम करना है परन्तु घंटों उसका ख्याल नहीं आता। पर उसके कर डालनेकी घड़ी ज्योंही पास आती है उस कामका ख्याल भी दिमागमें सीधे चला आता है। कोई कठिनाई नहीं होती। मैं ठीक चार बजे जग जाना चाहता हूँ। ठीक चारका घंटा बजते हुए या उससे कुछ मिनिट पहले ही मैं जाग पड़ता हूँ। यह उस अवस्थाके कुछ उदाहरण हैं जिसमें कि विचार देखनेमें तो चेतनाके भीतर नहीं हैं परन्तु सर्वथा बाहर भी नहीं है। इसीके लिए अन्तःचेतना शब्द आया है।

फ्रूइडकी धारणा है कि भूतकालकी सोयी हुई याद इसी अन्तःचेतनावाले परतमें इकट्ठी जमा है। यहीं हमारे दबे हुए भाव भी इकट्ठे हैं। भावों या विचारोंको कभी दबानेकी हम जान बूझकर कोशिश करते हैं और कभी अपने आप कोशिश हो जाती है। भाव और विचार बड़ी गहराईमें दब जाते हैं, तो भी वह बराबर जाग्रत अवस्थामें निकलनेकी कोशिशमें रहते हैं और जाग्रत दशामें यही दबे भाव और विचार एक हदतक हमारे मानसिक जीवनपर प्रभाव डालते रहते हैं यद्यपि हमें इसका पता नहीं चलता। साथ ही दबे हुए भावोंको कुछ संतोष भी होता जाता है।

मानसिक रोग

युरोपके पिछले महासमरमें फौजी अस्पतालोंमें वात-रोगियोंकी चिकित्सामें बड़े-बड़े डाक्टरोंको यह अनुभव हुआ कि बहुतसे मानसिक रोग ऐसे भावोद्वेगोंके रुक जानेसे हो गये हैं जिनको कि रोगी बिल्कुल भूल गया है और जिनके हुए बहुत काल बीत चुका है। मानसिक चिकित्सा-विशारदोंने ऐसी भूली हुई बातों और भावोंको फिरसे जगाकर मनको साफ कर दिया है और रोगी बिल्कुल अच्छे हो गये हैं। जान पड़ता है कि भावोद्वेगोंके अत्यधिक दबे रहनेसे वात-संस्थान क्षुब्ध हो गया। डाक्टरोंने जब उन दबे भावोंको बाहर करके दबावको कम कर दिया तो रोगीको आराम होगया।

डाक्टर रिवर्सने लैंसेटमें बड़े विस्तारसे एक रोगीका हाल दिया है जो एक भूले हुये अनुभवके कारण बीमार पड़ा था। हम यहाँ उसे संक्षेपसे देते हैं। एक नौजवान डाक्टर था जिसे युद्धके पहिलेसे ही सुरंग और तंग कोठियाँ जैसी बन्द जगहोंसे बड़ा भय लगता था। वह कभी लंडन या अन्य बड़े युरोपीय नगरोंमें धरतीके नीचे चलनेवाली नलरेलसे यात्रा नहीं करता था और जब कभी रेलगाड़ी सुरंगमेंसे जाती थी तो उसे बड़ा डर लगता था। लड़ाईमें एकबार उसे एक गड्ढेमें जाती बेर एक फावड़ा दिया गया और कहा गया कि अगर मिट्टीके भीतर दब जाना तो इसीसे खोदकर निकल आना। इससे उसकी नींद बहुत बेचैनीकी होने लगी और उसका स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया कि उसे बीमारीके कारण अपने घर चला आना पड़ा। कोशिश की गयी कि वह युद्धको बिल्कुल भूल जाय और मनोरंजक विषयोंमें ही मन लगावे परन्तु यह उपाय व्यर्थ हुए। उसे युद्धके बड़े भयानक सपने आते थे जिनसे वह जग पड़ता था। उस समय वह पसीनेसे तर होता था और समझता था कि मैं मर रहा हूँ। ऐसी दशामें डाक्टर रिवर्सने उसका इलाज शुरू किया। उन्होंने उसे सलाह दी कि कोशिश करके जो सपने देखो उन्हें याद करो और जब सपनों पर खयालकर रहे हो उस समय जो जो भूली बातें याद आवें उन्हें लिखते जाओ। कुछ ही दिनों बाद उसने सपना देखा और जब वह बड़े-बड़े सपनेको सोच रहा था उसे याद आया कि जब मैं तीन बरसका था तब बच्चोंके साथ एक बूढ़े कबाड़ी पड़ोसीके यहाँ अपने घरकी पुरानी बेकार चीजें ले जाया करता था और वह पैसे देता था। एक दिन अकेला पड़ गया। लौटती बेर उसकी कोठरीके अँधेरे लंबे रास्तेमें पड़ गया। दरवाजा बन्द हो गया था। मैं खोल न सकता था। पीछेसे एक कुत्ता उसी ओर आया और मुझपर भूँकने लगा। कुछ देरमें मुझे इस महाभयानक स्थितिसे छुटकारा मिला। यह ऐसी घटना थी जिसे भूलना असम्भव था, परन्तु इतने कालतक यह खयाल दबा रहा। फिर एक सपनेसे जो वह रोगी उठा तो "मक्खन, मक्खन" चिल्लाता

था। एकाएकी उसे खयाल आया कि उस बूढ़ेका नाम "मक्खन" था। रोगीके माता पिताने भी इस बातका समर्थन किया कि पड़ोसमें "मक्खन" नामका एक दरिद्र बूढ़ा रहता था। इस यादके लौट आनेका रोगीपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। कुछ ही दिनोंमें बन्द जगहोंका भय उसके मनसे एकदम दूर हो गया और वह सुरंगों और नलचाली रेलोंमें मजेसे यात्रा करने लगा। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि जाग्रत जीवनपर एक बिल्कुल भूले हुए अनुभवका कितना बड़ा प्रभाव पड़ता रहा। और भी विचारणीय बातें यह हैं कि (१) असली घटना बड़े भावोद्वेगकी और बड़ी बेचैन करनेवाली थी। (२) सपनेपर सोचनेसे ही वह भूला अनुभव फिर याद आया। (३) बेकार डरको दूर करनेकी जितनी कोशिश जाग्रत चेतना करती थी व्यर्थ जाती थी। (४) बारंबारके भयोद्वेगसे वह भयानक अनुभव जाग्रत चेतनमें उभड़ पड़ता था, यद्यपि इतना दब गया था कि जाग्रत चेतनको उसकी याद बाकी न थी। इस भयोद्वेगका उद्दीपन बन्द जगहोंके देखनेसे ही हो जाता था।

मानसिक चिकित्साके इस तरहके अनेकानेक उदाहरण सुषुप्त चेतनाका अस्तित्व सिद्ध करते हैं। उनपर विस्तारकी यहाँ ज़रूरत नहीं है। एक कुतूहलकी बात याद आती है कि इस नयी विश्लेषण-विधिका स्वप्नोंकी व्याख्या करनेमें अब बहुत उपयोग किया जा रहा है। इस तरहकी व्याख्यामें यह बात मान ली जाती है कि दबे हुए भावोंका प्रकाश सपनोंमें हुआ करता है। परन्तु हर सपना केवल दबे हुए भावोंका प्रतिबिम्ब है, ऐसा भी मान लेनेके लिये कोई हेतु नहीं है। इस विषयपर स्वप्नके विशेषज्ञोंका मतभेद है। साथ ही यह भी कहना ठीक नहीं कि सभी सपने निरर्थक होते हैं और व्यक्तिके भूत कालकी स्मृतियोंके विच्छृंखल और असंगत प्रतिबिम्ब हैं। सपनोंके विश्लेषणसे हमारा ज्ञान-भंडार बहुत भर गया है और अब सभी नहीं तो अधिकांश सपनोंकी व्याख्या करनेके लिये मनोवैज्ञानिकोंने एक सूत्र बना लिया है कि सपना दबी हुई इच्छाका प्रतिबिम्ब हुआ करता है। यह इच्छा इसलिये दब जाती है कि किसी न किसी कारणसे किसी न किसी रूपमें वह जाग्रत अवस्थामें दुःखका कारण होती है। परन्तु दबे हुए भाव नष्ट नहीं होते और कभी न कभी प्रकट होनेका अवसर ढूँढते रहते हैं। सोतेमें चेतन और अचेतनके बीचकी गाँठ कुछ ढीली पड़ जाती है। भावोंके ऊपरका निर्दय दबाव घट जाता है। तो भी यह भाव अपने शुद्ध रूपमें प्रकट नहीं होते। उनका रूप विकृत हो जाता है और बदले हुए भोंडे रूपोंमें व्यक्त होते हैं। फ्राइडने "स्वप्नोंकी व्याख्या" नामक पुस्तकमें इन बातोंके अनेक उदाहरण दिये हैं और व्याख्याकी विधियाँ भी बतायी हैं।

सभी सपने दबे हुए भावोंके चित्र नहीं होते। अनेक तो दिनभरके खयालोंके अपूर्ण और असंगत चित्र होते हैं और टुकड़ोंके रूपमें देख पड़ते हैं। कोई कोई होनेवाली घटनाके भी सपने होते हैं और कभी कभी ऐसी बातें भी देखनेमें आती हैं जिनके अनुभवमें आनेकी इस जीवनमें सम्भावना नहीं होती। कई सपने ऐसे भी होते हैं जो आदिसे अन्ततक बिल्कुल पूरे सिलसिलेवार सुसंगत घटनाक्रम दिखाते हैं। यह अचेतनमें दबे हुए भावोंकी पूर्त्तिके पूरे रूपक होते हैं। पर इस तरह भी दबे हुए भाव पूर्णतया संतुष्ट नहीं होते। दबाना अब भी जारी है, यद्यपि ढीला है। किसी न किसी कारणसे जब भावोंकी ठीक तुष्टि नहीं हो पाती तो मानसिक शक्ति विषम विधियोंसे स्वप्नद्वारा उसके लिए निकासी पैदा करती है। बहुतसे कलाके काम भी, सपनेकी तरह, दबे भावोंको बाहर निकालनेके साधन हो जाते हैं। कभी-कभी जब सपनेसे दबे हुए संकर भावोंकी तुष्टि नहीं होती तो मानसिक रोगोंकी दशा उत्पन्न हो जाती है। योषापस्मार (हिस्टीरिया) उन्माद और कभी एक ही व्यक्तिमें दो व्यक्तियोंका प्रकट होना इन्हीं दबे हुए सांकर्योंका फल होता है। पिछले महासमरमें भाग लेनेवालोंके मनःपटलपर अत्यन्त दूषित प्रभाव पड़ जानेसे इस तरहके अनेक रोग देखनेमें आये हैं।

सपनोंके ऊपर एक बिल्कुल भिन्न विचार भी मनोवैज्ञानिकोंमें हैं। डाक्टर विलियम ब्राउन कहते हैं कि सपनेका उद्देश्य निद्रावस्थाकी रक्षा है। भय, भागना, सुस्ताना आदि नैसर्गिक भावोंकी तरह सोना भी एक नैसर्गिक भाव है जिसकी विकास-क्रमसे वृद्धि हुई है। रातको यह निसर्ग काम करने लगता है। परन्तु उस समय बाहरी आवेगों और भीतरी निसर्गों और प्रवृत्तियोंसे उसका विरोध होना

है। उस समय इच्छाएँ, अभिलाषाएँ, चिन्ताएँ तथा पहलेकी स्मृतियाँ जो मनमें भरी हुई हैं, उबल पड़ती हैं और जगानेकी कोशिश करती हैं, यद्यपि मुख्य व्यक्ति पीछे हटा हुआ होता है। यदि यह सब चेतनातक पहुँच जायँ तो नींद ख़तम हो जाय। इसीलिये जाग्रत और सुषुप्त अवस्थाके बीचमें सपनेकी अवस्था इन सब उद्वेगोंकी शक्तिको घटा देती है और इन्हें आगे बढ़नेसे रोक रखती है। इस तरह नींद टूटने नहीं पाती। इस व्याख्यामें सभी तरहके सपने सन्निविष्ट हैं।

(४) शरीरके बाहरी पदार्थोंसे चित्तका सम्बन्ध

शरीरके जागते सोते और सपनेकी अवस्थाओंमें मानसिक व्यापारोंपर मनोविज्ञानकी जितनी धारणाएँ हैं उन सबका सम्बन्ध केवल शरीरकी वस्तुसत्तासे है। मनोविज्ञान मनके सभी साधारण व्यापारोंपर विचार करता है और विचारोंके पाने और भेजनेमें इन्द्रियोंका व्यवहार भी उसका विषय है, परन्तु इस बातका प्रयत्न करके भी उसे सफलता नहीं हुई कि वह यह समझा सके कि शरीरके यांत्रिक स्पन्दन भावोंमें और अनुभावोंमें कैसे बदल जाते हैं अथवा चित्तके उद्वेग और समवेदनसे जड़शरीरमें यांत्रिक स्पन्दन कैसे पैदा हो जाते हैं। उधर भौतिक विज्ञान केवल जड़ पदार्थपर विचार और प्रयोग करता है और जहाँ चित्तका सम्बन्ध आता है वह यही मान लेता है कि भौतिक पदार्थपर चित्तकी क्रिया केवल जड़ पदार्थसे विकसित एक विशेष वस्तुसत्ताकी क्रिया है। इस तरह ऐसा जान पड़ता है कि जड़ पदार्थपर ही प्रयोग हो सकते हैं, और चेतनाकी जड़ पदार्थसे भिन्न कोई स्थिति नहीं है।

परन्तु वैज्ञानिकोंने हालमें इस तरहकी खोजें भी की हैं जिनसे यह पता भी चलता है कि चित्तका अस्तित्व जाने हुए जड़ पदार्थोंसे बिल्कुल अलग और स्वतन्त्र भी हो सकता है। बहुत कालसे ऐसी अनेक अनुभूत बातें कही जाती रही हैं जिनपर वैज्ञानिक ध्यान नहीं देते थे। पिछले पचास-साठ वर्षोंसे उन बातोंपर विचार किया जाने लगा और खोजोंसे अब यह धारणा हो गयी है कि जड़ पदार्थसे अलग भी चित्तका अस्तित्व हो सकता है और यद्यपि उसका प्रकाश केवल जड़ पदार्थद्वारा ही होता है तथापि उसके काम जड़ पदार्थसे बाहर भी बहुत कुछ होते हैं और यह कि जड़ और चेतन वस्तुतः अलग-अलग हो सकते हैं। और यह भी सम्भव है कि हमारी इन्द्रियोंसे अतीत कोई सूक्ष्म पदार्थ हो जिसमें कि चित्त उसी तरह स्वच्छंदतासे अपना व्यापार कर सके जैसे कि जड़ पदार्थोंमें करता है। जड़ और चेतनके इस सम्बन्धके खोजमें क्या क्या बातें मालूम हो सकती हैं और हम कहाँतक अपने ज्ञानकी वृद्धि इस दशामें कर सकते हैं। इन प्रश्नोंका उत्तर वैज्ञानिकोंने एक नये ढंगके अन्वेषणमें पाया है जिसे हम अध्यात्म-विज्ञान कह सकते हैं। इस विज्ञानका अन्वेषण अन्तःकरणसे घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। इसलिये इसे मनोविज्ञानका ही एक अंग समझना चाहिए।

इस विद्याके विषयोंका अनुशीलन बहुत कालसे इक्के दुक्के वैज्ञानिक करते आये। लगभग पचहत्तर वर्षोंसे इसपर विशेष रूपसे काम होने लगा। भौतिक विज्ञानियोंमें प्रमुख प्रोफेसर विलियम क्रुक्सने इस विषयपर विशेष खोज की। उसी समयके लगभग अनेक प्रमुख वैज्ञानिकोंने मिलकर परान्वेषण परिषद्‌की रचना की जिसने बड़ी सावधानीसे इस तरहकी खोजोंका बीड़ा उठाया। इस परिषद्‌में बड़े बड़े वैज्ञानिक और विचारक सम्मिलित हुए। यह परिषद् बनी तो इंगलिस्तानमें परन्तु धीरे धीरे यह अन्ताराष्ट्रिय हो गयी और आज संसारके भारीसे भारी वैज्ञानिक जो इस विषयमें रस रखते हैं इसके सदस्य हैं। इस परिषद्‌में आवश्यकतासे अधिक सावधानी इस बातमें की गयी कि रहस्य और अन्ध-विश्वास इस खोजके मार्गको किसी तरहसे धुंधला न कर सकें।

(५) परचित्त ज्ञान

पहली खोज परचित्तज्ञानके सम्बन्धमें हुई। बहुत सावधानीसे परीक्षाएं करके यह बात पायी गयी कि कोई विचार या मानसिक चित्र एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके मनमें साधारण इन्द्रिय-साधनोंके बिना भी पहुँच सकता है। केवल शर्त यही है कि दूसरे मनुष्यके मनमें उस विचार या चित्रको ग्रहण करनेका सामर्थ्य हो। इस तरहकी परीक्षाएँ पहले एकही कमरेमें अत्यन्त साधारण छोटी छोटी चीजोंके चित्रों और अंकोंको लेकर की गयी और आँखें बन्द करनेके बदले पूर्ण अपारदर्शी पर्देका प्रयोग

किया गया, और साधारण ज्ञानेन्द्रियोंके प्रयोगमें पूरी बाधा डाली गयी। इन परीक्षाओंमें सफलता होनेपर दूरी बढ़ायी गयी। बढ़ते बढ़ते यह दूरी इतनी कर दी गयी कि किसी प्रकारसे भी भौतिक साधनोंसे विचारकी अदला बदली असम्भव हो गयी। इन परिक्षाओंसे यह सिद्धि हो गया कि शारीरिक या भौतिक साधनोंके न होते हुए भी एक चित्त अपने विचारको दूसरे चित्ततक पहुँचा सकता है। अथवा यों कहना चाहिये कि साधारणतया जिन विधियोंसे जिन इन्द्रियोंके द्वारा एक मन दूसरे मनपर अपने भाव प्रकट करता है उनके बिना भी विचारों और भावोंका विनिमय हो सकता है। हज़ारों मीलकी दूरीपर विचारों और भावोंका विनिमय होनेसे यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक मस्तिष्क दूसरे मस्तिष्कतक बेतारवाली बिजलीके लहरोंकी तरह कोई सूक्ष्म लहर भेजता होगा अथवा किसी अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थके कण जाते होंगे जो विचारों और भावोंके वैसे ही चित्र बना देते होंगे जैसे कि भेजनेवालेके मनने बनाये थे। यह भी सम्भव है कि दूरी चाहे कितनी हो परन्तु दोनों मस्तिष्कोंके बीचवाले देशमें कोई ऐसा सूक्ष्म पदार्थ ओतप्रोत भावसे भरा हुआ है जिसके भीतरसे होकर विचार-लहरोंकी माला प्रकाश और बिजलीसे भी अधिक वा बराबरके वेगसे स्थूल रुकावटोंकी परवाह न करके अथवा उनके द्वारा बिल्कुल अवरुद्ध न होकर सहजहीमें आती जाती है। एक और कल्पना की जा सकती है। वह यह कि कोई सूक्ष्म अवस्थामें रहनेवाली चेतना युक्त व्यक्ति है जो बड़े वेगसे चलकर एक मस्तिष्कसे दूसरे मस्तिष्कतक विचारों और भावोंके चित्र उसी तरह पहुँचाती है जिस तरह कोई दूत सन्देश पहुँचा देता है। यह तीसरी कल्पना सुननेमें तो व्यर्थसी लगती है परन्तु इसके पहलेवाली कल्पनाएं अनेक ऐसी गुत्थियोंको नहीं सुलझा सकतीं जो पिछले कल्पनासे सुलझ जाती हैं। मानसिक लहरों या कणोंकी कल्पनामें एक तो यह दोष है कि उनका अस्तित्व अबतक असिद्ध है। दूसरे हारमोनोंकी डाककी तरह ऐसा मानना पड़ेगा कि हज़ारों मीलकी दूरीपर ग्राहकके मस्तिष्कमें ही वह विचारकण या तरंग इसलिये पहुँचते हैं कि उसीके साँचेके बने होते हैं। अथवा बेतारकी बिजलीकी तरह स्वरोंकी सी अनुकूलता रहती है। कुछ विद्वानोंका यह भी विचार है कि पाशविक अवस्थामें बिना वचन और कर्मका सहारा लिये किसी मानसिक रीतिसे ही आपसमें विचार विनिमयका कोई साधन होगा, और मनुष्यके मनोदेहमें परम्परासे वह साधन मौजूद है जो काममें न आनेसे और सभ्यताके बढ़ जानेसे दब गया है और कभी कभी परचित्त-ज्ञानके रूपमें प्रकट होता है।

(६) छाया-रूप या माया

जिस तरह एक्स किरणें परीक्षाओं और प्रयोगोंके लिये प्रकट की जाती हैं, परन्तु वस्तुतः उस तरहकी अन्य किरणों तथा अनेक सूक्ष्म कणोंका कई पदार्थोंसे अपने-आप विकिरण भी होता रहता है, उसी तरह परचित्तज्ञानकी क्रिया जो प्रयोगके लिये देखी गयी, अपने आप होती रहती है वा नहीं, इस बातकी भी खोज की गयी। कथा कहानियोंमें एवं इतिहासमें भी ऐसी घटनाएँ तो असंख्य कही जाती हैं, परन्तु परिषदने परचित्तज्ञानके तथ्यको स्थापित करके इस विषयकी भी पूरी खोंच की और पक्के प्रमाण पाये। इन सब परिक्षाओंमें प्रायः सर्वथा यह बात देखी गयी कि जो मनुष्य अत्यन्त भय या शोक या करुणा या संकटकी अवस्थामें या मरणासन्न दशामें होता है अथवा उसी दशामें मर जाता है, उसकी छाया उसके मित्र या हित या किसी तरहके राग द्वेषके सम्बन्धीके पास पहुँचती है, उसे प्रत्यक्ष दीखती है और उसपर किसी न किसी ढंगसे अपने भाव प्रगट करती है। जाँचके लिये जानबूझ-कर प्रयोगमें और इस अपने आप होनेवाली घटनामें अन्तर यह है कि प्रयोगमें तो प्रेरक अपने प्रयोगकी सफ-लताके उद्देश्यसे अपने दृढ़ संकल्पको ग्राहककी ओर मजबूतीसे विचारको भेजनेमें लगाता है, यद्यपि यह सिद्ध नहीं हुआ है कि इस संकल्पका प्रयोग वस्तुतः फलदायक है। परन्तु अपने आप होनेवाली घटनामें तो मन या मस्तिष्कका वह अंश काम करता है जो अचेतन है, वा जाग्रत चेतनासे नितान्त भिन्न है, क्योंकि प्रेरक अपनी जान भरमें इस तरहके विचार-चित्र, या छाया, या भावकी प्रेरणासे बिल्कुल बेखबर होता है। आग लगी हुई है, या जहाज़ डूब रहा है और एक मनुष्यको जानकी जोखिम

है। वह इतना घबड़ा जाता है, उसके अन्तरात्मा पर इतना दबाव पड़ता है कि वह तुरन्त काम करने लगता है। वह अपने-आप होश-हवासमें इस बातकी खबर नहीं रखता, परन्तु किसी बहुत दूरपर रहनेवाले भाई-बन्धुके मनमें ऐसा स्पष्ट चित्र पहुँच जाता है कि उसे उस व्यक्तिके जोखिमकी कल्पनाका चित्र आँखोंके सामने प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है। जान पड़ता है कि भीगे कपड़ोंमेंसे पानी टपक रहा है। संकटापन्न बन्धु सहायताके लिये पुकार रहा है, उसके शब्द सुन पड़ते हैं, यद्यपि स्थूल आँखें या स्थूल कान यह देख सुन नहीं रहे हैं, केवल मानसिक घटना है, तो भी ऐसा ही जान पडता है कि एक छाया या रूप सामने दीख रहा है और पाससे ही शब्द सुनाई दे रहे हैं। विमान या वायुयानसे एक दुर्घटनामें बहुत दूरसे आते हुए एक नवयुवक बड़े वेगसे गिरता है और मर जाता है। उसी समय उसका जो साथी सैकड़ों मील दूरीपर है, उसे मालूम होता है कि खेमेंके पास ही कोई विमान गिरकर चूर-चूर हो गया है। उसकी आवाज़ साफ ही सुन पड़ी। तुरन्त ही वह नवयुवक अपने साधारण वेषमें खेमेंमें आता देख पड़ता है। साथी उसके इतनी दूरसे इतनी जल्दी आ जानेपर आश्चर्य प्रकट करता है। उस नवयुवकका रूप उत्तर देता है और फिर खेमेंके बाहर निकल जाता है। उसी शामको उस साथीको यह पता लगता है कि उसका नौजवान दोस्त रास्तेमें ही वायुयानकी दुर्घटनासे ठीक उसी घड़ी मर गया था जिस घड़ी वह उसे खेमेमें दिखाई पड़ा था। इस घटनाका विस्तारसे वर्णन जून सन् १९१९ ई० के परान्वेषण परिषद्के मुखपत्रोंमें छपा है। इस तरहके उदाहरण अनेक हैं और जीवनचरितोंमें बहुत पाये जाते हैं। मुश्किलसे कोई परिवार ऐसा होगा जिसमें इस तरहके अनुभवोंकी कोई कथा न हो। यह बात भी बड़ी विलक्षण है कि ऐसी छाया केवल तत्सम्बन्धी मनुष्यको ही देख पड़ती है और इस तरहके शब्द उसीको सुन पड़ते हैं। उसके पास जो लोग मौजूद होते हैं उन्हें किसी तरहकी खबर नहीं होती। वह कहता भी है कि देखो अमुक-अमुक रूप सामने है या अमुक शब्द सुन पड़ता है। परन्तु दूसरे लोग उसी जगह होनेपर भी न देख सकते हैं और न सुन सकते हैं। ऐसी घटनाओंकी बड़ी सरल व्याख्या यही हो सकती है कि संकटापन्न या भयग्रस्त या क्रोधातुर या किसी भावोद्वेगसे पीड़ित प्राणीके सुषुप्त चेतनकी ओरसे जिन शब्दों और चित्रोंकी विवश प्रेरणा होती है उन्हें ग्राहककी प्रच्छन्न किन्तु प्रबल ग्राहिका शक्ति मानसिक शब्दों और रूपोंमें परिणत कर लेती है और जैसा कि हम अन्यत्र दिखा आये हैं वास्तविक सुनने और देखनेकी इन्द्रियाँ तो दिमाग़के भीतर ही हैं, जो शब्द या चित्रका अनुभव कर लेती हैं। फिर उन्हीं शब्दों और चित्रोंका अनुभव बाहरवाला कैसे कर सकता है? ऐसे उदाहरण इतने असंख्य हैं कि यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा अकस्मात् ही या संयोगसे ही हो जाता है।

कभी-कभी ऐसी घटनाओंसे झूठे निष्कर्ष भी निकाले जा सकते हैं। एक माझीकी माँ सपना देखती है या प्रत्यक्ष देखती है कि उसका लड़का उसकी खाटके पास खड़ा है और उसके भीगे कपड़ेसे पानी चू रहा है। वह समझती है कि लड़का डूब मरा और रो पीट कर संतोष कर बैठती है। छः महीने बाद वह भला चंगा लौट आता है और पूछनेपर मालूम होता है कि सचमुच छः महीने पहले एक मस्तूलसे वह समुद्रमें गिर गया था और बड़ी मुश्किलोंसे डूबनेसे बचा लिया गया। जिस तारीखको यह घटना हुई थी ठीक उसी दिन माँको छाया दीखी थी।

मरनेके बहुत काल पीछे भी लोगोंको मरे हुए मनुष्योंकी जो छाया देख पड़ती है उसका भी कारण मरनेवालेकी ओरसे विचार-प्रेरणा ही समझी जाती है और मरणकालका ही रूप दिखाई देनेसे ऐसा समझा जाता है कि शायद विचारकी प्रेरणा मरणकालमें ही हुई हो और उसके ग्रहण करनेमें देर लगी हो।

त्रिदोष-समस्याकी वैज्ञानिक पूर्ति

[ले०—वैद्यरत्न पं० ब्रजभूषणलाल चतुर्वेदी, देवरी, सागर]

(२)

७—समन्वयका प्रयत्न

नीचे दी हुई सारिणीमें त्रिदोषका अधिकार क्षेत्र तत्सम्बन्धी अवयव और उनके व्यापारोंके विषयमें संक्षिप्त रूपसे अपना मत देता हूँ। उसपर विस्तृत व्याख्या करना विद्वानोंपर छोड़ता हूँ।

दोष	अधिकार क्षेत्र	क्रिया क्षेत्र	विस्तार क्षेत्र धातु	अवयव	प्रकृति	विकृति	चिकित्सा
वात	शासन (चेतना)	ज्ञान तन्तु माँस पेशियाँ अस्थियाँ	मज्जा मांस अस्थि	मस्तिष्क, रीढ़, ज्ञान-नाड़ी मण्डल मांस पेशियाँ अस्थियाँ और जोड़			
पित्त	वृद्धि	पाचन शोषण } रक्ताभिसरण } प्रजनन शक्ति-संचय	रस रक्त शुक्र मेद	आमाशय और तत्सम्बन्धी अवयव हृदय, नाड़ी, धमनी, शिराएँ अंडकोष, डिम्बकोष गर्भाशय, स्तनादि			
कफ	क्षय (शुद्धि)	रक्त-शुद्धि मल-शुद्धि	सम्पूर्ण इन्द्रिय ग्राम (वि०सं०)	फुफ्फुस, यकृत, गुर्दे मलाशय, मूत्राशय त्वचा			

शासन-संस्थान, वात-प्रकृति

अस्थिमात्र शरीरका ढांचा है। उससे शरीरकी आकृति बिगड़ने नहीं पाती, सुडौल बनी रहती है और उसपर जुड़ी हुई ज्ञाननाड़ियां मांसपेशियां और उसके खोलमें रहनेवाले अवयव जैसे मस्तिष्क, फुफ्फुस, हृदय, आमाशयादि सुरक्षित रहते हैं। मान लीजिये हम एक कागजका ही पुतला बनावें तो ढांचा बाँस और सुतलीसे अवश्य तैयार करना होगा नहीं तो हम बनाना चाहेंगे कुछ और बनेगा कुछ। मांस-पेशियां जिनसे हमारे गमन और स्थानान्तर होनेका काम होता है हड्डीका कठोर आधार पाये बिना बेकाम रहेंगी। मांस-पेशियोंकी प्रकृति सबको मालूम है। हमारी कोई भी शारीरिक चेष्टा ऐसी नहीं है जो मांस-पेशियोंके बिना सम्पादित होती हो। इसी प्रकार बहुतसे जीवन-क्रिया सम्बन्धी कार्योंका सम्पादन भी एक विशेष प्रकारकी मांस-पेशियों द्वारा होता है, इसीलिये

मांस-पेशियोंको दो स्थूल प्रकारोंमें बाँटा जा सकता है। एक तो वे जो हमारी गमनशील अथवा शारीरिक चेष्टाओंके सम्पादनमें सहायक होती हैं और जिन्हें स्वेच्छानुगामी कहते हैं। दूसरी जिनपर हमारा कोई अधिकार नहीं रहता वे अपना कार्य प्रकृतिके शासन सम्बन्धी अधिकारके अन्तर्गत करती रहती हैं और जिनपर हमारी इच्छाका कोई शासन नहीं रहता। हृदय, आमाशय और पक्वाशयकी मांसपेशियां इत्यादि, दूसरे प्रकारके मांसपेशियोंके ही दृष्टान्त हैं। पेशी-समूहद्वारा मलाशयसे पचा हुआ मल गुदाद्वारा बाहर निकल जाता है और जिन्हें वैद्य-समुदाय अपान वायुके नामसे समझते हैं वे यही अनिच्छानुगामी मांस-पेशियां ही हैं। गेंद फेकनेका व्यापार, खाना, पीना, चलना, फिरना और शारीरिक व्यापारकी चेष्टाएँ जैसे, घास काटना, मिट्टी खोदना, खेत बोना, नाव चलाना आदिमें जितनी मांस-पेशियोंसे सम्बन्ध रहता है वे स्वेच्छानुगामी होती हैं।

मज्जा—धातुके अन्तर्गत समस्त वातस्थान आवेष्टित है। शरीरकी कोई छोटीसे छोटी क्रिया ऐसी नहीं जो उसके अभावमें चल सके। बृहद् और लघु मस्तिष्क स्तम्भ, शुषुम्ना प्रान्तस्थ नाड़ीमंडल तथा मध्यस्थ वात-मंडल और अन्यान्य प्रकारकी नाड़ियाँ सब मज्जा धातुसे बनी होती हैं। और जुदे जुदे शारीरिक तथा मानसिक एवं ऐन्द्रिय व्यापारोंपर शासन रखती हैं। ज्ञान-नाड़ी सुषुम्नासे निकलकर अपने अपने शासन क्षेत्रोंकी तरफ फैली रहती है और उनका बड़ा कठोर और सूक्ष्म जाल मांस तथा बसाके अन्तर्गत प्रवेश किये रहता है। यहां-तक कि यदि हम त्वचाको एक सूईकी नोकसे भी छूते हैं तो यथार्थमें किसी न किसी ज्ञान तन्तुके सूक्ष्मसे सूक्ष्म भागको छुए बिना नहीं रह सकते। यही कारण है कि मस्तिष्कको मालूम हो जाता है कि अमुक स्थानको सुई जैसी नुकीली चीज़ छेद रही है और वह उससे होनेवाली शारीरिक हानिको बचानेके लिये अंग विशेषको तुरन्त ही दूर हटा लेता है। इन्द्रिय सम्बन्धी समस्त व्यापार भी विशेष प्रकारके नाड़ी मण्डलसे आच्छादित हैं और उनके सहयोगके बिना वे अपना अपना कार्य देखना, सुनना, सूँघना आदि नहीं कर सकते। पहिले स्नायुओंका कार्य यहींतक मर्यादित समझा जाता था। इसीलिये उनका नाम ज्ञान तन्तु रखा गया। प्रान्तस्थनाड़ीमंडलमें मस्तिष्कसे निकली हुई २४ नाड़ियां और सुषुम्नासे निकली हुई ६२ तथा उदर और वक्षस्थलपर फैला ग्रन्थिमाल तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी नाड़ीजाल शामिल है।

वृद्धि-संस्थान अथवा पित्त

शरीरके इस व्यापारके अन्तर्गत जैसा कि चक्रसे ज्ञात होता है शरीरकी शेष धातुएँ रस, रक्त, मेदा और शुक्र हैं। प्राणिमात्रको अपने जीवनकी रक्षा करनेके लिए खाद्य पदार्थकी आवश्यकता होती है। नाना प्रकारकी खाद्य-सामग्री प्राणियोंके शरीरमें जाकर न केवल उनका जीवन-व्यापार चालू रखती है प्रत्युत उनकी शारीरिक पुष्टि और प्रजनन-कार्यमें भी सहायक होती है। अतएव वृद्धि-संस्थानके अन्तर्गत पोषण-संस्थान (रस सम्बन्धी अवयव) रक्त-संस्थान (रक्ताभिसरण सम्बन्धी नाड़ियाँ, शिराएँ और केशिकाएँ आदि) और प्रजनन-संस्थान (जननेन्द्रिय सम्बन्धी अवयव विशेष) समझना चाहिये। पोषण-संस्थानमें दाँत, अन्नप्रणाली, उदर अथवा आमाशय, यकृत अर्थात् पित्ताशय, क्लोम, पक्वाशय अर्थात् क्षुद्रान्त्र और मलाशय अर्थात् बृहदन्त्र तथा मलद्वार समझना चाहिये। इन अवयवोंका कार्य नीचे लिखे प्रकार है। दाँतोंका काम जिह्वाकी सहायतासे खाद्य सामग्रीको बारीक करके मुँहमें रहनेवाली लाला-ग्रन्थियोंसे उत्पन्न लाला अथवा लारमें सानना है। इस प्रकार भोजनकी पाचन-क्रिया मुँहसे ही आरम्भ हो जाती है। लाला अर्थात् लारका गुण यह है कि नशास्ता अर्थात् आलू चावल सिंघाड़ा जैसे श्वेतसार-प्रधान वस्तुओंको अपने संयोगसे द्राक्षा शर्कराके रूपमें परिणत कर देता है। इस प्रकार गीला और मुलायम भोजन अन्नप्रणालीमेंसे होता हुआ आमाशयमें पहुँचता है जिसे पाकस्थली भी कहते हैं। यह थैली उदरके बायें भागमें होती है। आमाशयके भीतरी भागमें एक झिल्लीका अस्तर सा रहता है जिसमेंसे एक प्रकारका रस निकलता है जिसे आमाशयिक रस कहते हैं। यह रस भोजनके आमाशयमें पहुँचनेके साथ ही बनता है और भोजनको पचानेका कार्य करने लगता है। लगभग तीन घंटेतक यह क्रिया हुए पीछे आमाशयकी माँसपेशियाँ सिकुड़ने

लगती हैं और आमाशयके रससे मिला हुआ भोजन पक्वाशयमें पहुँचा देती है, जहाँ एक दूसरे प्रकारके रसका मिश्रण होता है और खाद्य-सामग्री इन दोनों रसोंके प्रभावसे स्वयं दूध जैसे द्रव्यमें परिणत हो जाती है। जब भोजन पक्वाशयमें होता है तब उसमें यकृतसे उपजा एक द्रव्य जिसे पित्त कहते हैं मिल जाता है तथा क्लोममेंवाला क्लोम-रस भी पक्वाशयमें आकर खाद्य-रसमें मिल जाता है। क्लोम रसका प्रभाव लाला जैसा ही होता है, वैसा जैसे स्निग्ध पदार्थोंके पचानेमें पित्त सहायक होता है तथा मलको आँतोंमें सड़नेसे रोकता है और उसे शीघ्र शरीरसे बाहर पहुँचानेमें सहायक होता है। इस प्रकार आमाशयिक रस क्षुद्रान्तिक रस क्लोम-रस और पित्त नामक द्रव्यसे मिलकर पची हुई खाद्य-सामग्री क्षुद्रान्त्रमें चार-पाँच घंटे रहती है। इस समयमें क्षुद्रान्त्रकी दीवालोंके दबावसे आहार रस श्लैष्मिक कलामेंसे छनकर रक्तमें मिल जाता है और शेष भाग क्रमशः नीचे ढकेला जाकर और गाढ़ा होते होते बृहदन्त्रमें पहुँच जाता है जहाँसे कि वह क्रमशः मलद्वारसे शरीरके बाहर निकल जाता है। पोषण संस्थान-की इतनी क्रियाओंके अतिरिक्त एक और क्रिया भी है जिसे इस धातुके अन्तर्गत ही समझना चाहिये। वह यह कि आहार रस क्षुद्रान्त्रकी श्लैष्मिक कलासे छनकर रक्तमें मिल जाता है और शरीरके प्रत्येक भागको तर कर देता है। इस प्रकार शरीरके एक एक कणके चहुँ ओर उसकी आवश्यक पोषक सामग्री प्रस्तुत रहती है।

रक्ताभिसरण—रक्तके द्वारा ही हमारे समस्त शरीरका पोषण होता है। पक्वाशयसे उपार्जित पोषक द्रव्यका वाहक रक्त ही होता है। रक्तमें एक तरल भाग और दूसरा समूह होता है। रक्तके सौ भागोंमें ६० भाग तरल होंगे तो ४० भाग रक्त-कणोंके। शरीरके भारका २०वाँ हिस्सा रक्तका होता है। रक्त-कण तीन प्रकार होते हैं। एक रक्ताणु, दूसरे श्वेताणु, तीसरे अत्यन्त सूक्ष्म रक्त-कण। ये रक्ताणु सूक्ष्मातिसूक्ष्म होते हैं। एक बूंदमें करोड़ोंकी तादादमें रहते हैं। एक अरब लाल कणोंका भार १॥ रत्तीके करीब होता है। श्वेत परमाणु उससे भी छोटे होते हैं। जिन नलियोंद्वारा शरीरमें रक्त भ्रमण करता है वह तीन प्रकारकी होती हैं। एक तो वह जो हृदयसे शरीरकी ओर जाती है जिनमें शुद्ध रक्त रहता है। उन्हें धमनी कहते हैं। वे जिनमें होकर शरीरका अशुद्ध रक्त दूसरी ओरसे हृदय और फुफ्फुसमें लौट जाता है। वे शिराएँ कहलाती हैं। तीसरे वे सूक्ष्म नलिकाएँ जो धमनियों और शिराओंकी सन्धि-स्थानमें रहती हैं और जो शरीरके सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्थानमें रक्त पहुँचानेमें सहायक होती हैं। वे केशिकाएँ कहलाती हैं। रक्त परिचालक यन्त्रको हृदय कहते हैं। वह एक पम्पके समान कार्य करता है। एक ओर-से फुफ्फुसद्वारा शुद्ध रक्तको ग्रहण करता है और दूसरी ओरसे उसी रक्तको शरीरमें पहुँचाता है। शरीरके सब अंगोंको आवश्यक वस्तुएँ देकर हृदयके दाहिने ऊपरी भागमें फिर लौट आता है। इस भागको ग्राहक कोष्ठ कहते हैं। रक्तसे भर चुकनेपर यह ग्राहक कोष्ठ दबने लगता है तब रक्त उसके नीचेके भागमें जिसे क्षेपक कोष्ठ कहते हैं पहुँचता है। दाहिने ग्राहक कोष्ठसे फुफ्फुसीय धमनी निकलती है। रक्त उसमें होकर फुफ्फुसके अन्तर्-देशमें पहुँच जाता है। फुफ्फुस रक्त-शुद्धिका स्थान है। वायुद्वारा प्राप्त ओषजन-वायु रक्तके उस मलको शुद्ध करती है जो उससे मिलकर कर्बनिकाम्ल बन सकता है। रक्तशुद्धिकी अन्य क्रियाएँ यकृत और गुर्दोंमें भी होती हैं। फुफ्फुससे शुद्ध होकर हृदय के बाँयें ग्राहक कोष्ट में रक्त लौट आता है। भर जानेपर यह कोष्ट सिकुड़ने लगता है और रक्त उसमेंसे निकलकर बाँयें क्षेपक कोष्टमें होता हुआ शरीरके समस्त भागोंमें बृहत् धमनीद्वारा पहुँच जाता है। बाँयें क्षेपक कोष्टके आकुंचनसे रक्त वेगके साथ बृहत् धमनीमें प्रवेश करता है और उसकी अनेक शाखाओंमें जाकर समस्त अंगोपांगोंमें पहुँचता है जहाँ इन धमनियोंकी अनेक छोटी-छोटी शाखाएँ हो जाती हैं। इन शाखाओंमें बहता हुआ रक्त केशिकाओंके जालमें पहुँचता है। जब रक्त इन केशिकाओंमें बहता है तो थोड़ा रक्तका तरल भाग उनकी पतली दीवारोंसे घूमकर बाहर निकल जाता है और शरीरके प्रत्येक कणको तर-ब-तर कर देता है। इस प्रकार शरीरका प्रत्येक कण पौष्टिक पदार्थ ग्रहण करता रहता है और ओष-जन वायु लेकर शुद्ध होता रहता है और कर्बनद्वयोषिद वायु केशिकाओंसे लौटे हुए रक्तके साथ छोटी-छोटी शिराओंमें पहुँचती है और वहाँसे बड़ी-बड़ी शिराओंमें होती हुई

दाहिने ग्राहक कोष्ठके नीचे भागमें जाता है। इस प्रकार रक्ताभिसरणक्रिया सम्पादित होती है।

प्रजनन अथवा उत्पादन

जिस प्रकार जीवनका एक लक्षण वृद्धि और दूसरा शुद्धि है उसी प्रकार उत्पादन अर्थात् अपने स्वजातीय व्यक्तिको उत्पन्न करना भी है। इस व्यापारसे जातिकी रक्षा और वृद्धि होनेके कारण उससे वृद्धिसंस्थानके अन्तर्गत माना गया है। इसके अतिरिक्त उत्पादन-क्रियाका सम्बन्ध शरीरके शेष व्यापारोंकी अपेक्षा पुष्टिविषयक व्यापारसे ही विशेष है। सन्तानोत्पत्तिके काममें आनेवाले अङ्ग पुरुष और स्त्रीमें जुदे-जुदे प्रकारके होते हैं। जैसे पुरुषमें शिश्न, अण्डकोष, शुक्राशय और सहायक ग्रन्थियाँ, वैसे ही स्त्रियोंकी जननेन्द्रियमें योनि, गर्भाशय, डिम्बकोष, डिम्ब-प्रणाली, स्तन इत्यादि। इन अंगोंकी पृथक्-पृथक् उपयोगिता और व्यापारका स्थूल ज्ञान प्रायः सभी वैद्योंको होता है। सब जानते हैं कि बाह्य रूपसे योनिद्वारसे होता हुआ योनिमें शिश्न प्रवेश करता है और घर्षण तथा हर्षणके कारण अण्डकोषोंसे स्खलित हुआ वीर्य शिश्नकी नली द्वारा गर्भाशयके द्वारतक पहुँचता है और इस प्रकार मैथुन-क्रिया समाप्त होती है। मैथुन ठीक प्रकारसे होनेपर स्त्रीको गर्भ रह जाता है। जैसे पुरुषमें अण्डकोष रहते हैं, वैसे ही स्त्रियोंमें भी दो डिम्ब-ग्रन्थियाँ एक गर्भाशयके दाहिनी ओर और दूसरी बायीं ओर होती है। इन्हींमें डिम्ब तैयार होता है और प्रतिमास स्त्रीके रजस्वला होनेपर एक डिम्ब डिम्ब-प्रणालीमें पहुँच जाता है। यह प्रणाली गर्भाशयसे लेकर डिम्ब ग्रन्थितक जाती है। पुरुषका वीर्य और स्त्रीके डिम्बमें एक विशेष प्रकारका आकर्षण रहता है। और यद्यपि एक बार स्खलित वीर्यमें करोड़ों शुक्राणु रहते हैं तथापि उनमें एक ही डिम्बके भीतर घुस पाता है शेष सब नष्ट हो जाते हैं। और एक ही शुक्राणुकी आवश्यकता भी गर्भाधानके लिए हुआ करती है अनेककी नहीं। परन्तु यदि किसी आकस्मिक योगसे दो शुक्राणुओं या डिम्बसे संयोग हो जावे तो ऐसे गर्भसे एक ऐसा बालक पैदा होता है जिसके दो शरीर एकमें जुड़े रहते हैं। पर ऐसे बालक अधिक समयतक जी नहीं सकते। माताके शरीरके रक्तसे नालद्वारा गर्भ दिन-प्रतिदिन पुष्ट होता रहता है और उसके अनेक अंगोपाङ्ग बनते और विकास पाते रहते हैं और ९ मास १० दिनकी अवधिमें गर्भाशयकी क्रिया समाप्त होकर प्रसव होता है। प्रसवके समय गर्भाशयका मांस सिकुड़ने लगता है। इसी कारण जननीको पीड़ा होती है। गर्भाशयकी दीवारोंके दबावके कारण गर्भगत शिशु गर्भाशयके द्वारसे योनिमें होता हुआ बाहर निकल आता है। ज्योंही बच्चा बाहिर निकलता है वह साँस लेने लगता है और स्वभावसे माताका स्तन-पान करने लगता है। स्त्रीके दो स्तन अर्थात् दुग्ध-ग्रन्थियाँ होती हैं और जब स्त्री गर्भवती होती है तब यह ग्रन्थियाँ बड़ी हो जाती हैं और उनमेंसे दुग्ध निकलने लगता है। लगभग १॥ वर्षतक बच्चा इसी दूधको पीकर जीता है। इस प्रकार प्रजनन-क्रिया सम्पादित होती है।

मेद-धातु वा वसा

मेद धातुसे तात्पर्य उस द्रव्यसे है जो शरीरके चमड़ेके नीचे आमतौरसे और कुछ विशेष अवयवोंमें खास तौरसे पाया जाता है। मोटे स्थूलकाय मनुष्योंमें प्रायः त्वचाके नीचे मेदकी एक मोटी तह ढकी रहती है। दुबले मनुष्योंमें मांसके साथ वसाका भी अभाव होता है। अधिक वसा प्रायः उन लोगोंमें पायी जाती है जो चिकने पदार्थ ज्यादा खाते हैं और परिश्रम कम करते हैं। परिश्रमसे वसाका व्यय होता है और परिश्रमकी कमीके कारण वह जमा होते होते अन्तमें इतनी बढ़ जाती है कि भीतरी अवयवोंको भी ढाक लेती है और उनके व्यापारमें शिथिलता ले आती है। वसाका उपयोग शरीरमें शरीरकी गर्मी बनाये रखनेके लिये ईंधनके समान है। इसके अतिरिक्त गर्मी और सर्दीसे वह शरीरको बचाती भी है। परन्तु अधिक परिमाणमें वसाका एकत्र होना अकारण बोझमात्र होता है और उसके कारण मनुष्य परिश्रमसे जी चुराने लगता है, स्वास्थ्य खो बैठता है।

शुद्धि-संस्थान (कफ)

जीवनका एक अनिवार्य लक्षण मलत्याग है। जिस प्रकार हम छोटेसे छोटे प्राणिको भी भोजन करते और उसे शरीरके अनुरूप बनाकर शरीरकी कायिक और सांख्यिक वृद्धि

करते देखते हैं उसी प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्राणियोंमें भी मलोत्सर्गका व्यापार पाया जाता है। मनुष्यके शरीरमें शुद्धि-संस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले स्थानोंमें फुफ्फुस, त्वचा, यकृत्, गुर्दे, मूत्र-प्रणाली और क्षुद्रान्त्र तथा बृहदन्त्र हैं।

फुफ्फुसमें रक्तकी शुद्धि केवल उसी अंशमें होती है जिस अंशमें वायुके ओषजन नामक तत्वमें ईंधनका अंश जलकर कार्बनिकाम्ल वायव्य बनकर श्वासोच्छ्वासके साथ बाहर निकल सकता है।

गुर्दोंमें रक्तका मलभाग छनकर मूत्राशयमें जमा हो जाता है और पिया हुआ पानी इन पदार्थोंके घोलने और शरीरके बाहर ले आनेमें सहायक होता है।

यकृत्की क्रिया इससे भिन्न होती है। वह रक्तमें रहनेवाले अनेक प्रकारके मलोंको या तो पानीमें घुल न सकनेवाले मलको घुल जाने योग्य बना देता है अथवा उनका शोषण करके एक विचित्र प्रकारकी क्रियाद्वारा उन्हें भस्म कर देता है।

त्वचासे प्राप्त हुई शुद्धि प्रायः वैसे ही होती है जैसी कि मूत्रस्थानसे। पसीना रासायनिक दृष्टिसे मूत्रके अनुरूप ही होता है। जो शुद्धि गुर्दों-द्वारा होनेसे शेष रह जाती है वह त्वचामें रहनेवाली श्वेत ग्रन्थियोंद्वारा छनकर बाहर निकल आती है। इस प्रकार त्वचा द्वारा होनेवाली शुद्धि गुर्दोंकी सहायकमात्र है।

आँतोंसे होनेवाली शुद्धि सहजग्राही है। सब जानते हैं कि भोजनका सार भाग शरीरमें ग्रहण होनेके उपरान्त जो फोकस बच रहता है उसे आँतोंमें रहनेवाली मांस-पेशियाँ अपने क्रमशील आकुंचनद्वारा शरीरसे बाहर निकाल देती हैं। इस प्रकारकी क्रियाको पुराने आचार्योंने अपान वायुद्वारा सम्पादित होना माना है। शरीरकी शुद्धि क्रियामात्र कफ दोषके अन्तर्गत समझी जानी चाहिए। यद्यपि सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर शरीरका सूक्ष्मसे सूक्ष्म व्यापार भी तीनों दोषोंके सहयोग बिना नहीं हो सकता। मनुष्योंकी प्रकृति समझनेमें स्थूल नियम यही है कि जिसके शरीरमें जिस प्रकारकी धातु, अवयव अथवा क्रियाका जितना बाहुल्य हो उसका तत्सम्बन्धी दोष उतना ही पुष्ट और जितनी न्यूनता हो उतना ही क्षीण वह दोष-विशेष समझा जावे।

दोषोंकी प्रकृतिके विषयमें जो कुछ लिखा गया है वह अत्यन्त संक्षिप्त रूपमें प्रसंगवश लिखा गया है। इस विषयपर बड़े-बड़े विस्तृत ग्रन्थ जुदे लिखे हुए अन्य भाषाओंमें प्राप्त हैं। हिन्दीमें सबसे अच्छा ग्रन्थ जो आज वर्त्तमान है वह डाक्टर त्रिलोकीनाथजी कृत "हमारे शरीरकी रचना" नामक ग्रन्थ है। यद्यपि यह साधारण रूपसे वैद्योंके लिए पर्याप्त है तथापि अँगरेजी और अन्य पाश्चात्य भाषाओंमें उक्त विषयके ग्रन्थोंके विस्तारके सम्मुख यह ग्रन्थ भी अत्यन्त संक्षिप्त है। परंतु क्या हिन्दी भाषाके इस संक्षिप्त ग्रन्थमें और क्या अन्य भाषाओंके विस्तृत ग्रन्थोंमें वात, कफ, पित्तके अधिकारका जुदा-जुदा चित्र नहीं दिखाया गया है और उसे दिखलानेके लिए ही शरीरकी बनावट और उसके अंग-प्रत्यंगोंका वर्णन सूक्ष्मातिसूक्ष्म किया गया है।

विकृति

सूर्यके रहते हम आँख बंद करके यह नहीं कह सकते कि सूर्य नहीं है और आँखसे देखकर हम किसी वस्तुके यथार्थत्वको अस्वीकार नहीं कर सकते। अनेक प्रकारके यंत्रों और रासायनिक परीक्षाओंद्वारा जो बातें सिद्ध हो चुकी हैं उन्हें हम आज गलत ठहरायें तो वह किस आधार पर? क्या इसलिये कि आजसे सहस्रों वर्ष पहिलेके आचार्योंने यह बात नहीं लिखी? अथवा इसलिये कि उनके अभावमें भी आयुर्वेदीय चिकित्सा सफलतापूर्वक की जा सकती है? ध्यान रखना चाहिये कि सफलताका अर्थ सापेक्ष है। अन्यान्य चिकित्सा-पद्धतियोंका पलड़ा यदि पहले ऊपरको था तो अब नीचेको जा रहा है और आयुर्वेदका वजन और प्रभाव दिन-प्रतिदिन कम हो रहा है। केवल यह कहकर संतोष कर लेना कि उसे राजाश्रय प्राप्त नहीं है, हठधर्मी मात्र है। आधुनिक संसारमें शरीर विकृति-विज्ञानकी जो उन्नति हुई है और उससे जो सिद्धान्त तथा ज्ञातव्य बातें प्राप्त हुई हैं वह आयुर्वेदीय चिकित्सकोंका अभिवादन करनेको उसी प्रकार तैयार हैं जिस प्रकार कि अन्यान्य चिकित्सकोंको। और आयुर्वेदमें यदि यह विषय ले लिया जाय तो इससे आयुर्वेदका हित ही होगा अहित नहीं। परन्तु एक ओर तो हम अपने माधवनिदानको छोड़ना नहीं चाहते। दूसरी ओर वर्तमान

विज्ञानके शोधोंके प्रकाशमें उसकी विस्तृत समीक्षा नहीं करना चाहते और न विज्ञान-चिकित्सा-शास्त्र और मनुष्यत्वके नाते हम आधुनिक शोधोंका व्यवहारिक प्रयोग ही करना चाहते। हम इन्हें अस्पृश्य और अनावश्यक मानकर अपने आपको दिन-प्रतिदिन क्षीण और निस्तेज बनाते जा रहे हैं और डेढ़ चावलकी खिचड़ी पकाकर ही संतुष्ट रहते हैं, बल्कि गर्वित भी। हम कहते हैं कि हमारे आयुर्वेदमें क्या नहीं है। यदि आयुर्वेदमें सब कुछ है, तो आश्चर्य है कि शेष संसारको सैकड़ों वर्षोंतक प्रयोगशालाओंमें इतना मगज पचाना पड़ा। कोई व्यवस्था चाहे वह सामाजिक हो अथवा वैज्ञानिक, व्यावहारिक हो या दार्शनिक। यदि वह मिथ्याभिमानमें रत होकर समयके साथ नहीं चलती और समयानुकूल नहीं बनती तो समय भी उसका साथ नहीं देता। आयुर्वेदके इतिहासमें वह दिन बड़ा भाग्यशाली होगा जब कि वैद्य-समुदायकी समझमें ऊपर लिखी बात प्रवेश कर सकेगी और वे आधुनिक विज्ञानके प्रकाशमें आयुर्वेदीय निघंटुका उपयोग ऐसी सफलताके साथ कर सकेंगे कि संसार यह समझने लग जायगा कि भारतीय वैद्य भी वैज्ञानिक शोधोंका उपयोग करना जानते हैं और एक ओर यदि उन्होंने शेष संसारसे वैज्ञानिक ऋण लिया है तो दूसरी ओर आयुर्वेदके विलक्षण सिद्धान्तों और अनुभवसिद्ध औषधियों और उपचारोंद्वारा उसे लौटाया भी है। तात्पर्य यह है कि शरीरकी विकृति-सम्बन्धी आधुनिक शोधोंको सहर्ष आयुर्वेदीय-साहित्यमें सम्मिलित किया जावे और वात, पित्त, कफ दोषोंके चक्रानुसार उनकी विकृति निश्चित कर ली जावे जो कि अत्यन्त सरल और सुबोध कार्य होगा। अर्थात् वातादि दोषोंके अन्तर्गत अवयवों और क्रियाओंकी विकृति उक्त चक्रानुसार विभक्त कर दी जावे। इस प्रकार वातसम्बन्धी किसी अवयव अथवा क्रियाविशेषकी विकृति वातकी विकृति और पित्त अथवा कफसम्बन्धी अवयवों अथवा क्रियाओंकी विकृति तद्दोषसम्बन्धी विकृति समझना चाहिये। विकृतिके विषयमें और अधिक कहना आवश्यक जान पड़ता है।

चिकित्सा

वैद्यक शास्त्रके अन्तर्गत जितने शास्त्र हैं सबका हेतु चिकित्सा अर्थात् आरोग्यकी प्राप्ति और विकृतिकी समाप्ति, पीड़ाकी निवृत्ति और व्यापारोंकी निवृत्ति है। रोगी वैद्यके पास निदान, निघण्टु, सम्प्राप्ति अथवा शरीर-रचनाका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए नहीं जाता। उसका हेतु वैद्यकीय चिकित्साद्वारा आरोग्य प्राप्त करनेका ही होता है। कुशल वैद्यको दोषोंकी आकृति, प्रकृति-विकृति समझ लेनेपर भी "चिकित्सा" नामक विषयका अलग अध्ययन तथा मनन करना पड़ता है। चिकित्सा नामक विषयसे तात्पर्य रोगोंके स्वभाव और उन्हें दूर करनेके अनुभवसिद्ध प्रयोगोंका ज्ञान प्राप्त करना और तद्वत् व्यवहार करना है। चिकित्सकको अनेक प्रकारसे प्राप्त अनुभवके द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि किस प्रकारकी आन्तरिक विकृतिका बाह्य लक्षण क्या है। इसी प्रकार अनुभवसे यह भी जान लेना है कि किन उपचारोंसे विकृति विशेष विलीन हो जाती है जिसका कि निश्चय उसे रोगके बाह्य लक्षण निःशेष हो जाने और रोगाक्रान्त अवयवोंके प्रकृत व्यवहार करनेमें समर्थ होनेमें हो जाता है। यह अनुभव चिकित्सकोंकी संगठित अवस्थामें विनिर्मित और संशोधित होता रहता है और समयकी गतिके अनुसार अधिकाधिक विश्वसनीय उपयोगी और निर्दोष होता जाता है। आयुर्वेदीय चिकित्सामें ऐसे अनेकानेक अनुभव सहस्रों वर्षोंसे एकत्र हो रहे हैं परंतु इनकी अपेक्षा सहस्रगुणित अनुभव चिकित्सकोंकी संकीर्णहृदयता, अनुदारता, अदूरदर्शिता, असंगठित अवस्था और साहित्यिक अयोग्यताके कारण लुप्त हो गये हैं। कुछ हो, आज हमारे पास जो सामग्री शेष है उसका अच्छेसे अच्छा उपयोग करना, ढलके हुए दूधपर आँसू गिरानेकी अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर है। यहाँ हमारा तात्पर्य यह है कि अवयव, धातु अथवा क्रिया-विशेषकी विकृतिके अनुसार ही रोग वात, पित्त अथवा कफजनित समझे जावें और हजारों सालके बीत चुकनेपर आजके बलाबल और देशकाल आहार-विहारको लक्ष्यमें रखकर पुनः इस बातकी शोध की जावे कि किस प्रकारकी धातुगत, क्रियात्मक अथवा अवयवसम्बन्धी विकृतिमें किस प्रकारके बाह्य लक्षण प्रगट होते हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस विषयमें भी अन्य विषयोंके समान आधुनिक विज्ञानसे बड़ी सहायता मिलेगी। साथ ही

ठीक प्रकारसे चिकित्सा करनेके लिए यह आवश्यक होगा कि आयुर्वेदीय निघण्टुकी कच्ची औषधियाँ और उनसे तैयार किये हुए योगोंका अधिकसे अधिक ज्ञान प्राप्त किया जाय। आज इतना जान लेनेसे काम नहीं चल सकता कि अमुक वनस्पति कफनाशक, किंचित् कड़वी, स्निग्ध और गरिष्ठ है। हमें यह देखना होगा कि किस ओषधिका हमारे शरीरकी किस धातुपर, किस अवयवपर, किस क्रियापर, किस प्रकारका प्रभाव पड़ता है, वह कितना स्थायी अथवा अस्थायी होता है, उसकी प्रतिक्रिया क्या होती है, वह किस विषयमें किस अन्य ओषधिसे समानता रखती है, किससे मैत्री और किससे विरोध है, किस ओषधिके साथ उसका योग अधिक प्रभावशाली हो सकता है और किस ओषधिके साथ सौम्य, क्षीण अथवा नष्टप्राय। इस प्रकार तैयार किये हुए अथवा संशोधित और संवर्द्धित निघण्टुसे हम यह भली प्रकार जान सकेंगे कि शरीरके किस भागमें किस धातु, अवयव अथवा क्रियाविशेषकी किस प्रकारकी विकृतिको सुधारनेके लिए किस द्रव्यका आयोजन होना चाहिए और हम निश्चयात्मक चिकित्सा (हुक्मी इलाज) करनेमें समर्थ होंगे तब हम अन्धकारमें छर्रेकी बन्दूक चलाकर इस आशापर शिकारियोंमें नाम न लिखा लेंगे कि एक न एक छर्रा लगेगा ही। जबतक हमें यह ज्ञान न होगा कि हम जिस रोगकी चिकित्सा कर रहे हैं उसकी स्थिति कहाँ है और जबतक हमें यह न मालूम होगा कि किस ओषधिका कार्यक्षेत्र कौन है तबतक हम ठीक प्रकारकी ओषधिका निर्वाचन करनेमें असमर्थ रहेंगे और हमारी चिकित्सा सदैव सन्देहशील रहेगी। हमारा प्रयोजन किसी विशेष प्रकारकी आयोजनाके विषयमें लिखनेका नहीं था। यहाँ जो कुछ लिखा गया है वह मेरे मतके अनुसार चिकित्साकी जो पद्धति होनी चाहिए उसे व्यक्त करनेके लिए ही लिखना पड़ा। मुझे निश्चय है कि शरीरके अन्तर्गत वात, पित्त और कफ सम्बन्धी दोषोंको मान लेनेमें उनका सिद्धान्त और चित्र स्थिर कर लेनेमें चिकित्सकको बड़ी सहायता मिलती है और वह किस प्रकार मिल सकती है यही मैंने इस निबंधद्वारा संकेत रूपसे दिखलानेका प्रयत्न किया है। इस विषयपर अनेक विद्वानोंद्वारा बहुत कुछ लिखा जाने और विचार किये जानेकी आवश्यकता है। यदि रक्षा करनी है आयुर्वेदकी, वैद्योंके हितकी और उन करोड़ों प्राणियोंकी जिनकी चिकित्साका साधन आयुर्वेद और उसके प्रचारक वैद्यमात्र हैं।

वर्तमान प्रणालीके उपयोगमें व्यावहारिक कठिनाइयाँ और अनुचित उपयोग होनेकी सम्भावनामें एक दृष्टान्त देकर मैं इस लेखको समाप्त करूँगा। मान लीजिए किसी रोगीको ज्वर और अतिसार होनेके उपरान्त मूर्च्छा आ गयी है और नाड़ी-परीक्षासे अथवा बाह्य लक्षणोंसे जान पड़ता है कि इसे वातका विकार है। अब वैद्य उसकी चिकित्सा किस प्रकार करेगा? वह निघण्टुमें अनेकों ओषधियाँ ऐसी पाता है जो वातदोषनाशक हैं। तब क्या वह उसे भिलावा, मेथी, या वत्सनाभ देवे, क्या अश्वगन्धके काढ़ेसे काम चल जावेगा, अथवा कुचलेकी गोली देनी होगी? वर्तमान वैद्यक साहित्यसे वैद्यको यह नहीं मालूम हो सकता कि अनेक वातनाशक ओषधियोंमेंसे सबसे अधिक उपयुक्त और गुणकारी उक्त रोग-विशेषमें कौन सी ओषधि होगी। निदान वह अनुभूत प्रयोगोंका सहारा लेता है। वह किसी पुस्तकमें देखता है कि अमुक योगसे ज्वर और अतिसारसे उत्पन्न हुए उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। अब यदि वे योग उसके पास नहीं हैं तो सिवाय आँख बन्द करके किसी भी वातनाशक ओषधिके प्रयोगके उसके पास कोई दूसरा साधन नहीं रहता और परिणाम जो होता है वह वैद्य लोग जानते ही हैं कि अकस्मात् डाक्टर बुला लिया जाता है और आयुर्वेदपर अविश्वास बढ़ानेमें योग दे जाता है।* अनुभवसे वैद्योंको कुछ सहायता अवश्य मिलती है, परन्तु वह अनुभव उन्हें कितना कड़ुवा होता है, कैसी घोर निराशाओं और असफलताओंपर उसका अवलम्ब रहता है, यह वही जानते हैं, उन्हें यश प्राप्त करनेके पहिले अपयशका भागी बनना पड़ता है, नाम कमानेके पहिले बदनाम होना पड़ता है,

---

* लेखकने जो दशा वैद्यकी बतायी है, एलोपैथिक डाक्टरकी दशा ठीक वैसी ही है, भिन्न नहीं। केवल इतना भेद है कि डाक्टरका निघंटु भिन्न है। उसे सफलता वैद्य और हकीमसे अधिक नहीं होती। यह समझना कि अलोपैथी शुद्ध विज्ञानानुमोदित है लेखककी भूल है। अँधेरेमें ढेला मारनेवाले दोनों हैं। रा० गौ०

ऊँचा देखनेके पहिले नीचा देखना पड़ता है और धन कमानेके पहिले भूखों मरना पड़ता है। इन आरम्भिक कठिनाइयों, असुविधाओं, उनके कारण उत्पन्न हुई क्षति और दुर्दशाको घटाकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिणाममें लाया जा सकता है, यदि हमारे वैद्य महानुभाव हठधर्मी छोड़कर कुछ उदारतासे काम लें और ऊपर बतायी हुई पद्धतिसे रोगका निश्चय और चिकित्साकी व्यवस्था करें, रोगीके बाह्य लक्षणोंद्वारा समझ लें कि उसके किन-किन अंगोंमें किन किन धातुओं और किन-किन व्यापारोंमें किस प्रकारकी विकृति है और निघंटुद्वारा देख लें कि हम किन-किन औषधियोंके एक-एक अथवा सामूहिक उपयोगसे उक्त विकृतियोंका निराकरण कर सकते हैं। हमें उन महाशयोंसे कुछ नहीं कहना है जो यह आपत्ति करें कि यह तो एलोपैथी अथवा होमियोपैथी है अथवा अमुकपैथी है, जब कि एलो-पैथी और होमियोपैथीवाले यह नहीं कहते कि यह तो हिन्दुस्थानियोंका चिरायता है अथवा बेल और अडूसा है। हम सारे संसारका अनुभव करके भी भारतीय बने रह सकते हैं, अंग्रेजी पढ़कर भी हिन्दी भाषाकी उन्नति कर सकते हैं, कोट पतलून पहिनकर भी हिन्दू कहला सकते हैं, तब क्या आयुर्वेदकी उन्नति संसारमें पाये जानेवाले समस्त साधनोंद्वारा करके भी उसके व्यक्तित्व और उसकी विशेषताकी रक्षा नहीं कर सकते? अवश्य कर सकते हैं, और ऐसी उत्तमता और सफलताके साथ कि संसार केवल यही न कहेगा कि आयुर्वेद संसारकी सबसे पुरानी चिकित्सापद्धति है किन्तु यह भी उसे कहना पड़ेगा कि वह सबसे अधिक उदार, विश्वसनीय, व्यावहारिक और समया-नुकूल पद्धति है।

नाड़ी-परीक्षा

त्रिदोषकी मीमांसामें नाड़ी-परीक्षाका वर्णन करना इसलिये आवश्यक जान पड़ता है कि वात-पित्तका नाड़ी-परीक्षासे पुराने आचार्योंद्वारा अनिवार्य सम्बन्ध माना गया है और आजतक भी छोटे-बड़े सभी वैद्य बिना नाड़ी देखे रोगका निर्णय नहीं करते, रोगी-समुदाय भी अपनी व्याधिकी चर्चा करनेके साथ ही नाड़ी देखनेके हेतुसे हाथ बढ़ा दिया करते हैं। यह नहीं माना जा सकता कि यह केवल प्रथामात्र है। हजारों वर्षतक यह प्रथा रहकर अधिक उन्नतिको नहीं पहुँची इसका कारण मध्यकालीन और अर्वाचीन वैद्योंमें वैज्ञानिक रुचिका अभाव ही है। नहीं तो आज जिस प्रकार नाड़ी देखनेके अनेक प्रकारके यंत्र पश्चिमी वैज्ञानिकोंने बनाये हैं और वे रक्तका दबाव, हृदय-के धड़कनका क्रम और संस्था लय और विलय इत्यादि कागजपर खींचकर रख देते हैं, ऐसे ही विलक्षण यंत्र हमारे यहाँ भी मौजूद होते, जिनमें वात पित्त और कफकी विकृतियोंका जुदा-जुदा पता केवल नाड़ी देखकर ही किया जा सकता। हम यह जानते हैं कि नाड़ी-परीक्षाका यह आदर्श कि उससे यह जाना जा सके कि रोगीने पिछली रातमें दही खाया था, अथवा यह कि परदानशीन महिलाओंकी कलाईमें धागा बाँधकर उसका दूसरा सिरा वैद्यजी हाथमें लेकर नाड़ी-परीक्षा अथवा रोगनिर्णय कर लें, केवल कपोल-कल्पना है। नाड़ीसे हृदय और रक्त-भ्रमण की दशाका ज्ञान होता है। उससे धमनियाँ और हृदयके रोगोंका पता लग जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ रोगोंमें और प्रायः मरनेके पूर्व हृदयकी गतिमें, ऐसे परिवर्तन भी होते हैं जो नाड़ी देखकर स्पष्ट जाने जा सकते हैं। परन्तु नाड़ी देखकर किसी दोष-विशेषकी विकृति बतला देना यद्यपि व्यवहारमें सम्भव है, परन्तु उसकी व्याख्या अभी तक अस्पष्ट है। ऐसी कई बातें हैं जिनका हम कारण नहीं जानते फिर भी उनका यथार्थ तत्व स्वीकार करना पड़ता है। यही हाल आयुर्वेदीय नाड़ी-परीक्षाका भी है। यदि उस ओर पूरी खोज हुई होती तो इसमें सन्देह नहीं कि अभीतक यह विषय बहुत स्पष्ट हो गया होता और हम आज उसका वैज्ञानिक कारण निर्दिष्ट करनेमें समर्थ होते। हम बतला सकते हैं कि अंगुष्टमूलके पास रखी हुई पहिली अंगुली क्यों वात दोषकी सूचक होती है। क्यों दूसरी अंगुली पित्तकी और तीसरी अंगुली कफकी। और तब हम यह भी बतला सकते हैं कि अंगुलियोंके ठीक नीचे न ज्ञात होकर उनके बीचमें होता हुआ स्पंदन क्या अर्थ रखता है। परन्तु हमलोग संतोषी जीव हैं। रावणकृत नाड़ी-परीक्षाको ही हमने यथेष्ट मान लिया और जब रावणजीने हमारी ओरसे जितना परिश्रम चाहिये था कर डाला, तो अब हमें क्या जरूरत पड़ी है कि और आगे परिश्रम

करें? नाड़ी-परीक्षापर ही बहुत सा निदान अवलम्बित रहता है। परन्तु आश्चर्य है कि इस विषयपर साहित्यका एकदम अभाव है। कुछ अनुभवी और सिद्ध वैद्यगण निःसन्देह नाड़ी-परीक्षाद्वारा बड़ा चमत्कार दिखाते हैं। परन्तु खेदका विषय है कि उन्होंने भी अपना अनुभव दूसरोंके लिये सुलभ करनेका कोई उद्योग नहीं किया। कुछ भी हो यह निर्विवाद है कि शारीरिक व्यापारोंकी अनेक दशाओंका ज्ञान नाड़ीद्वारा प्राप्त किया जा सकता है, और यह भी निर्विवाद है कि नाड़ी-परीक्षाके लिये वात-पित्तकफके जो स्थान भी निर्दिष्ट किये गये हैं वे उपयोगी और विश्वसनीय हैं। हम चाहे उसका कारण न बतला सकें परन्तु व्यवहारमें देखते हैं कि दोषोंके विचारकी यह व्यवस्था उपयोगी और सराहनीय है। यहाँ हम जिस प्रकारके तर्कसे काम ले रहे हैं उसका औचित्य सिद्ध करनेके लिये हम अमेरिकाके नये प्रकारकी निदान-पद्धतिका वर्णन करते हैं जो केवल आँखों-की पुतलीद्वारा की जाती है। वहाँके विद्वानोंने काँचका एक यंत्र बनाया है। उस यंत्रसे आँखकी पुतली बहुत बड़ी और स्पष्ट दिखती है और पुतलीमें शरीरके अंगोपांगोंकी दशाका पूरा आभास मिलता है और उनकी दशाओंमें जो परिवर्तन होते हैं उनके अनुरूप आँखकी पुतलीमें भी परिवर्तन होते रहते हैं। उक्त यंत्रकी सहायतासे चतुर चिकित्सक शरीरकी भीतरी दशाओंका भली भांति अनुमान कर सकता है। यंत्रद्वारा दिखाई देनेवाले पुतलीके बड़े चित्रमें यह स्पष्ट दिखता है कि इसके चारों ओर विशेष प्रकारकी रेखाएं और आकार हैं जो प्रत्येक मनुष्यकी आँखोंमें उसकी प्रकृति और शरीरकी भूत और वर्तमान अवस्थाके अनुसार बनते-बिगड़ते और घटते-बढ़ते रहते हैं। आकारोंका पूरा अनुशीलन करके उनका स्थान निर्दिष्ट किया गया है और यह पता लगाया गया है कि किस आकार और रेखासे क्या सूचना मिलती है। इस प्रकार शरीरके सभी अवयवों और उनकी क्रियाओं तथा धातुओंकी विकृतिका ज्ञान केवल आँखकी पुतली देखकर किया जा सकता है। अनेकानेक अनुभवों द्वारा और निदानके अन्यान्य साधनोंद्वारा पुतलीपर दिखाई देनेवाली रेखाओंका अर्थ भली भाँति स्पष्ट कर दिया गया है और हम पुतली देखकर न केवल यही कह सकते हैं कि अमुक अवयव विकृत अवस्थामें हैं बल्कि यह भी कि उसकी विकृति किस प्रकारकी है। यदि अमेरिकामें आयुर्वेदका प्रचार हुआ होता तो नाड़ी-परीक्षाकी ऐसी असहाय अवस्था न होती जैसी कि आजकल है। वे अवश्य ही किसी ऐसे यंत्रका आविष्कार कर डालते जिसमें कि नाड़ीके स्पन्दनके सूक्ष्माति-सूक्ष्म कम्पन तथा उनके भेद व्यक्त किये जा सकते। जिस दिन हमारे देशमें लोग इस विषयके महत्वको समझेंगे और नाड़ी-परीक्षाका आयुर्वेदीय मतके अनुकूल यंत्र बनावेंगे वह दिन आयुर्वेदके इतिहासमें चिर-स्मरणीय रहेगा और आयुर्वेदीय चिकित्सा संदेहग्रस्त न हो-कर विज्ञानके आधारपर अधिकाधिक श्रेय प्राप्त करेगी। *

* विज्ञानका नितान्त अज्ञान उसी तरह हानिकर है जिस तरह उसका आतंक। जो विषय व्यवहारमें उपयोगी पाया जाय, किन्तु उसकी वैज्ञानिक व्याख्या न हो सके, वह अवैज्ञानिक नहीं समझा जाना चाहिये। व्यवहार ही सत्यकी कसौटी है और विज्ञानका आधार है। रा० गौ०

वैज्ञानिक भित्तिपर सूक्तियाँ

[ले०—श्रीमान पं० किशोरीदासजी वाजपेयी शास्त्री, हरिद्वार]

(१)

चाकी बाँकी मधुर धुनि, जिन घर नीके होति।
घरनीके बल तिन घरनि, जरा-व्याधि नहिं होति।

(२)

पीसति गावति झूमि कछु, घरनी सुघर रसाल।
चन्द-बदन अरुनित कछुक, कछु स्रम-सीकर भाल।

(३)

छरति छरहरी छवि-भरी, धान छबीली बाम।
मनु व्याधिनके सीस पै, देति मुसल अविराम।

(४)

लै प्रकास सिव-सूर सों, छत्रसाल राकेस।
भयो सुधाधर जगत कौं, प्रगटी कला विसेस।

(५)

स्याम, तिहारो सेत रँग, धरत दुनी सब अंग।
अहो, स्याम पै दूसरो, चढ़त न कबहूँ रंग।

४—चन्द्रमामें सूर्यसे प्रकाश आता है और छत्रपति श्री शिवाजीसे महाराज श्री छत्रसालको प्रकाश मिला था।

५—विष्णु सत्त्वप्रधान हैं, जिसका वर्ण श्वेत माना गया है। श्वेत रंगके अनन्तर अन्य रंगोंका उद्भव कहते हैं।

विज्ञान और दर्शनके समन्वयकी चेष्टा

अहंकार और परमाणु तथा तन्मात्रा

(ले० स्वामी श्रीहरिशरणानन्दजी वैद्य)

आर्य दर्शनकार विश्व-निर्म्माणके सम्बन्धमें कहते हैं कि सत्व, रज, तमरूपिणी प्रकृति जब असात्म्य रूपमें होती है—विकृत होती है—तो उससे महत्की उत्पत्ति होती है और महत्से अहंकारकी। महत् क्या है ? इसका कार्य-व्यापार क्या है ? इसके गुण, धर्म क्या हैं ? इसका किसीने भी विस्तारके साथ वर्णन नहीं किया। केवल मात्र सूत्ररूपमें बतला दिया है कि विश्व-रचनाके समय यह अव्यक्त प्रकृति और व्यक्त जगत्के मध्यका एक तत्व है। हम आज इसपर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं। हमारे यहां महत् शब्दका अर्थ है बहुत बड़ा, जिसकी सीमा नहीं। इतना बड़ा यह व्यापक अर्थमें भी प्रयुक्त हुआ है। प्रकृति अव्यक्त, व्यापक होनेसे तत्संभूत महत् भी वैसे ही रूपवाला हो सकता है। अब देखना यह है कि प्रकृतिके पश्चात् किस व्यापक पदार्थका स्थान आता है। यही नहीं; इसके साथ यह भी देखना है कि विश्व-रचनामें उस कारण भूत सत्ताका अब भी हाथ है या नहीं।

पुराणोंमें कई स्थानोंमें आया है कि पृथ्वीको शेषने धारण किया है। आलंकारिक* भाषामें शेष शब्दसे शेषनागनामक विष्णुशय्याके सर्पको भी लिया है। शेषनामक सर्प अपने फनपर पृथ्वीको धारण किये हुए हैं। परन्तु दार्शनिक पक्षमें शेष शब्दसे अव्यक्त, व्यापक उस सूक्ष्म सत्तासे अभिप्राय है जिससे परे और प्रकृतिकी शेष (बाकी) सत्ता नहीं। इसी अव्यक्त, व्यापक शेषने पृथ्वीको, विश्वको, धारण किया है, ऐसा अर्थ है। वृक्षसे सेबको गिरता देखकर इसके कारणका स्पष्ट अनुभव न्यूटन नामक विद्वान्को हुआ। उसने ही सबसे प्रथम इस बातको बतलाया कि इस पृथ्वीसे बाहर दूरतक—एक ग्रहसे दूसरे ग्रहतक—एक ऐसी सत्ता व्यापक है जिसका नाम उसने आकर्षण दिया है। †

हम चुम्बक नामके लोह या पाषाणको बहुत समयसे जानते हैं। उसकी आकर्षण-शक्तिका भी हमें ज्ञान है कि चुम्बक लोहेको अपनी ओर खींच लेता है। किन्तु इस बातका ठीक-ठीक पता न्यूटनके पश्चात् ही लगा कि विश्वके समस्त ग्रह, उपग्रह लोहचुम्बकवत् एक दूसरेको खींच रहे हैं। इसी व्यापक आकर्षणके बलसे समस्त विश्वके पदार्थोंकी यथास्थान स्थिति है। आकर्षण और निराकरण यह दो व्यापक व्यापार जिस सत्ताके देखे जाते हैं उसीका नाम दर्शनकारने महत् दिया है। महत्की व्यापकता जिस प्रकार विश्वके बाहर है, उसी प्रकार विश्वके भीतर (पदार्थोंके भीतर) तभी सिद्ध होती है। यही नहीं, प्रत्युत महत्का (सत्-रजप्रपराणु, विद्युत, प्रकाश, उत्ताप आदि) प्रकृतिसे अन्योऽन्य-सम्बन्ध, समवाय-सम्बन्ध, नित्य-सम्बन्ध सिद्ध होता है। महत् प्रकृतिकी वह भिन्न आंशिक सत्ता है जिसकी उपस्थितिके बिना विश्वरचनाका व्यापार चल ही नहीं सकता।

---

* इस अलंकारिकताको लोगोंने यथार्थरीत्या समझा नहीं है। जिसे आकाशगंगा कहते हैं, वह सर्प शय्याकी तरह दीखता ही है, अतः इस आलंकारिक भाषामें सत्यको समझनेके लिये उपयुक्त सामग्री है। केवल आलंकारिक कहकर छोड़ देना उचित नहीं। (नारा + अयन) नारायणका उसीपर शयन करना विश्व—विराटके रूपका यथार्थ वर्णन है। क्षीरसागर तो नीहारिकाके विस्तारका ही नाम है। इस रूपकके सौन्दर्य्यको विचारवान् ज्योतिर्विज्ञानी ही समझ सकता है। —रा० गौ०

† और जिसका नाम सर शाह मुहम्मद सुलेमानने "ग्राविटन" Graviton दिया है। प्रो० ऐन्स्टैन आकर्षणवादको एवं ईथरकी सत्ताको व्यर्थ ठहराते हैं। विज्ञानके इन वादोंमें सर्वमान्यता अभी नहीं आयी है। —रा० गौ०

महत्‌का स्वरूप

जिस प्रकार प्रकृतिके सत्-रजरूप प्रपराणुओंकी कणिकाओंकी सत्ताका पता लग गया है, इसी प्रकार महत्-की कणिका तथा उसके स्वरूप आदिका बोध हो गया है।

मैंडलीफने अपने आवर्तसंविभागमें उद्‌जनसे पूर्व दो और तत्त्वोंकी कल्पना की है जिसका परमाणुभार ०·४ और ०·१७ माना है। यह ०·१७ भारवाला तत्त्वको उसने प्रकाशवाहक ईथर भी समझा है और दूसरे तत्त्वका नाम कोरोनियम है। इनमें प्रो० आइन्स्टाइनका प्रसिद्ध समीकरण यह है—

$$स = म\ व^{२}$$

जिसमें स = सामर्थ्य, म = मात्रा और व = प्रकाशका वेग। प्रकाशका वेग = ३×१०^{१०} शम प्रति सेकण्ड है। यदि सामर्थ्य अर्गोंमें ली जाय और भार एक ग्राम हो, तो आइन्स्टाइनके इस समीकरणद्वारा १ ग्राममें सामर्थ्य-की मात्रा निम्न होगी—

$$स = १ \times ९ \times १०^{२०}\ अर्ग$$

अर्थात् १ ग्राममें ९×१०^{२०} अर्ग सामर्थ्य होगी, यदि वेग प्रकाशका वेग माना जाय। १ कलारीमें $४·२ \times १०^{७}$ अर्ग होते हैं। अतः

$$९ \times १०^{२०}\ अर्ग = \frac{९ \times १०^{२०}}{४·२ \times १०^{७}}\ कलारी$$
$$= २·१५ \times १०^{१३}\ कलारी$$

उक्त विद्वानोंके मतसे सिद्ध होता है कि महत्‌में आकर्षण निराकरणके व्यापार उसके महदाणविक स्वरूपके कारण हैं। और इन महदाणुओंकी सर्वव्यापकता, विश्व-परिपूरणताके कारण ही सृष्टि-रचनाका क्रम चल रहा है। इसकी महत्ताका रूप हम आगे अहंकारकी रचनामें दिखावेंगे। वहीं इसके गुण-धर्मका भी उल्लेख करेंगे।

दर्शनकार कहते हैं—"प्रकृतेर्महत्, महतोऽहंकारः" प्रकृतिसे महत् महत्‌से अहंकार हुआ, किन्तु, प्रयोगोंसे (?) पता चलता है कि प्रकृतिसे महत्, महत्‌से अहंकार नहीं, प्रत्युत प्रकृति और महत् दोनोंकी स्थितिसे अहंकारकी रचना होती है।

प्रकृति पहिले और महत् पीछे नहीं, वरन् इनका नित्यसम्बन्ध सिद्ध होता है, अथवा यों कहिये कि जहाँ जहाँ प्रकृतिके सत्, रज रूपमें क्षोभ होता है—प्रकृति विकृति होती है तो इस विकारप्राप्त रूपका संस्थापक यही महत् होता है जो सदा उसीमें रहता है।

जिस तरह दर्शन ग्रन्थोंमें महत्‌का स्पष्ट विवेचन नहीं मिलता उसी प्रकार अहंकारका हाल है। अहंकार क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? इसको किस प्रकार जाना गया? इत्यादि बातोंका स्पष्ट रूपसे कोई पता नहीं चलता। हाँ, उसकी शब्द-रचनासे अवश्य ही उसकी कुछ महत्ताका पता चलता है। "अहमित्यहंकारः" मैं हूँ, मुझमें कर्तृत्वशक्ति है ऐसा भाव जिस सत्तामें पाया जाय उसे अहंकार कहा जाता है। यहाँ, दर्शनकार सृष्टिकी आदि उत्पत्तिका क्रम बतला रहा है, जहाँ प्रसंग सृष्ट्युत्पत्तिका हो, वहाँ अहंकार शब्दसे ऐसी ही सत्ताका ग्रहण किया जा सकता है जो उस अव्यक्त, अगोचर व्यापक सत्तासे चलकर कुछ स्थूल रूपकी ओर हो और जिसमें विश्वनिर्माणकी अहंता कर्ता-पनका समावेश हो।

प्रकृति सृष्टि-रचना-कालमें अपने परम सूक्ष्मरूपमें विकारभावको प्राप्त हो स्थूलरूपकी ओर बढ़ती है। इस क्रम-विकासमें अव्यक्तसे व्यक्तरूपमें आनेके लिये पहिली सीढ़ी अहंकारकी पड़ती है, फिर स्थूल जगत्‌की। इस व्यक्ततामें प्रकृतिका अहंकार आरम्भिक रूप है और अहंकार नाममें कर्त्तापनका भाव पाया ही जाना चाहिये, जभी इस शब्दकी सार्थकता है।

अहंकारका व्यक्तरूप कोई नहीं देख सका, इसी बातको देखकर सम्भव है कणादऋषिने वैशेषिक दर्शनमें परम अणुरूपवाला इसे परमाणु कहा हो।* किन्तु इस समय प्रयोगोंसे जिन परमाणुओंको स्थूल जगत्‌का आरम्भस्वरूप माना जाता है वह अहंकारके समस्त भावोंसे ओतप्रोत दिखाई देता है। और इसके स्वरूप-रचना आदिके भेद भी दर्शन-शास्त्रोंकी कल्पनाका पूर्ण समर्थन करते हैं।

अहंकार या परमाणु विश्व-रचनाकी प्राथमिक ईंटें हैं। इन्हींसे स्थूल विश्वका रूप बनता है, यह सर्वतन्त्र-सिद्ध सिद्धान्त है। अहंकार या परमाणुमें प्रकृतिके सत

---

* कणादका परमाणु अहंकारसे अधिक स्थूल और भिन्न है।
—रा० गौ०

और रज प्रपराणुओंकी भिन्न-भिन्न संख्या या मात्राएँ पायी जाती हैं। जिस परमाणुमेंसे यह निकल जाते हैं उसका अस्तित्व मिट जाता है। सत, रज रूप प्रपराणु या अवस्थाओंका भिन्न-भिन्न मात्रामें भिन्न-भिन्न स्थानोंमें एकीभाव होना, बैठना, विभक्त रूपोंमें स्थितिका ही नाम शास्त्रकारोंने विकृति दिया है। विकृति शब्दका अर्थ है बिगड़ना, असली रूपका तिरोहित हो जाना, बदल जाना। यहाँ भी प्रकृतिका सत् रज रूप अपनी स्वतन्त्रता सर्वव्यापक सत्ताको त्यागकर एक देश-विशेषमें एक विशेष स्थितिमें अपनेको मिटाकर नया रूप देता है, इसीका नाम विकृति है।

अहंकार या परमाणुकी अन्तर-रचनाको अच्छी प्रकार देखा गया है। परमाणुके भीतर एक प्रपराणु सतका मध्यमें होता है और एक रजप्रपराणु उसकी सदा परिक्रमामें लगा रहता है। प्रपराणुकी ऐसी स्थिति जब होती है तो उद्जन नामक विश्वके मूलघटक एक परमाणुका रूप बनता है। इसी प्रकार जब चार सत् प्रपराणु मध्यमें आ जाते हैं और दो रज प्रपराणु उनको घेर लेते हैं तथा उनके चारों ओर चक्कर लगाने लगते हैं तो इससे एक नये विश्वघटक हिमजन नामक तत्वके अहंकारीका रूप बन जाता है। इस प्रकार १६ सत्प्रपराणु मध्यमें और ८ रज प्रपराणु उनको घेरकर एक सीमाके भीतर जम जाते हैं तो ओषजन नामके अहंकारी तत्वका जन्म होता है।

प्रयोगोंसे देखा गया है कि परमाणुकी रचना हो जाने पर सत्, रज प्रपराणुओंका कोई भिन्न अस्तित्व नहीं रहता। बल्कि, सत् और रज प्रपराणु दोनों ही अपने रूप गुणके अस्तित्वको गवाँकर परमाणुका जब रूप लेते हैं तो उस परमाणुके रूप, गुण, स्वभाव सब उससे बिलकुल ही भिन्न होते हैं। इसीका नाम है विकृति। पूर्व वस्तुके तन्मात्रादि समस्त अस्तित्वात्मक बातोंका तिरोहित हो जाना और एक नयी वस्तुका अस्तित्वमें आना, जिसमें सृष्टि-रचनाकी अहंता पायी जाती हो उसका नाम अहंकार पूर्ण सार्थक है। और उसका परम अणुरूप होनेसे परमाणु कहाया। हम चैतन्य जगत्के प्राणियोंमें—विशेषकर मानव-जातिमें स्पष्ट अहंकारका भाव पाते हैं, जिसका अर्थ यह है कि इसमें कर्त्तापनका अभिमान है। यह कहता भी है कि मैं कर्त्ता हूँ? यह सब कुछ मेरा किया हुआ है? इत्यादि सृष्टि-रचनाके संबंधमें इसी प्रकारका भाव परमाणुके भीतर पाया जाता है। इस बातको समस्त विद्वान् एकमत हो मानते हैं कि परमाणु पदार्थका प्रथम रूप है। सत्, रज प्रपराणु पदार्थ नहीं, प्रत्युत शक्ति, सामर्थ्यस्वरूप हैं। इनको कोई विद्वान् पदार्थकी संज्ञा नहीं देता। क्योंकि, इनमें पदार्थत्व नहीं, पदार्थपनका रूप गुण, स्वभाव अहंकार या परमाणुमें है। इसीलिये विद्वानोंने इसको तत्व संज्ञा भी दी है। तत्व शब्द पदार्थके उस प्राथमिक अवस्थाके लिये रूढ़ हुआ है जिससे विश्वकी सजीव, निर्जीव सृष्टिका रूप बनता है। यह अहंकारी सृष्टिके मूल-पदार्थ पाये जानेसे विद्वानोंने इन्हें मूल तत्व या मौलिक भी कहा है। आजकल इन्हें मूल-तत्व या मौलिक पदार्थ ही कहा जाता है।

अहंकार-भेद

अहंकारका जिसमें भाव पाया जाता है ऐसे सृष्टिके मौलिक तत्वोंके भेदपर दर्शनकारोंने कोई वर्णन नहीं दिया। तथापि प्रकृतिमें जब "एकोऽहं बहु स्याम्" का भाव आता है तभी वह प्रथम एकसे सत्, रज और तम इन तीन रूपोंमें विभक्त होती है। और उस तीन रूपसे मिलकर महत् बनता है जिससे उस त्रिगुणात्मिकासे अनेक रूपवाले जगत्के अनेक मौलिक रूप बनते हैं। जगत्के पदार्थ भी अनेक रूपमें हैं, इनकी यह अनेकता उस मौलिक तत्वोंसे ही आयी जिनमें अहंकारका भाव पाया जाता है। अहंकार नामसे एक तत्व नहीं, प्रत्युत ९२ तत्व उत्पन्न हुए। जो सबके सब एक दूसरेसे भिन्न थे। बहुरूपता और पृथक्ता उनमें जैसी थी, उससे ही उन्होंने विश्वके पदार्थोंकी रचना और वृद्धि की। इसीसे विश्वमें पदार्थोंके अनन्त रूप दिखाई देते हैं।

अहंकार शब्दसे दार्शनिक

आजकलके किसी एक रूपसंज्ञक मूल-तत्वकी जो कल्पना करते हैं वह सृष्टि-क्रमविकासका ठीक-ठीक अर्थ नहीं जानते, जभी ऐसी भूल करते हैं। सृष्टि-विकासका क्रम एकसे अनेक होनेपर ही चल सकता है। एकसे एक होने पर नहीं। "एकोऽहं बहु स्याम्" जब इस श्रुतिको ईश्वरपरक लगाते हैं तो वहाँ भी एकसे अनेक रूपताकी कल्पना होती है फिर उसी क्रममें जहाँ कि अनेकताका

बीजारोपण होता है वहाँ अहङ्कार शब्दसे एक तत्वकी कल्पना करना भूल नहीं है।

अहंकार और तन्मात्रा

दर्शनकार सृष्टि-रचनाका क्रम बतलाते हुए लिखते हैं, "अहङ्कारात् पंचतन्मात्रा" अहंकारसे पञ्चतन्मात्राका—शब्द-तन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, गन्धतन्मात्रा और रसतन्मात्राका—जन्म होता है और इनसे पञ्चमहाभूत होते हैं। प्रथम तो विचारणीय बात यह है कि यहाँपर तन्मात्रा शब्द जो दिया है इसका अर्थ क्या? तत्–सो मात्रा—परिमाण। अर्थात् उसके सूक्ष्मरूपका अस्तित्व। अहंकारमें सूक्ष्मता या पदार्थताका होना, शब्दतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा आदि शब्दसे मानवी पञ्चज्ञानेन्द्रियपरक अर्थका भाव लगाया जाता है और इन ज्ञानेन्द्रियोंके सूक्ष्म स्वरूपका भाव उस सृष्टिके मूलकारणमें आरोपित किया जाता है, ऐसा समझना भूल है। सृष्टिकी आदि रचनासे मानवी या चेतन जगत्की पञ्च-ज्ञानेन्द्रियोंका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं। हमने अपने ज्ञानेन्द्रियोंकी स्थितिको देखकर उसकी अपेक्षासे सूक्ष्म-रूपकी जो भिन्न कल्पना करते हैं और उसको पञ्चभूतोंका कारण शरीर मानते हैं यह क्रम-विकाससे सिद्ध नहीं होता। यहाँ अहंकारात् पञ्चतन्मात्राके स्थानपर "अहङ्कारे पञ्चतन्मात्रा" होना चाहिये जिसका अर्थ अहङ्कारमें पञ्च-तन्मात्रा अर्थात् उस अहन्तापूर्ण तत्वमें उसकी अस्तित्व-द्योतक पञ्चतन्मात्राओंका उत्पन्न होना ही अर्थ ठीक बैठता है। इस समयके प्रायोगिक विज्ञानसे भी अहंकारियोंमें उसकी अस्तित्वद्योतक पाँच बातें पायी जाती हैं—१ तन (आयतन), २ मात्रा (परिमाण = भार), ३ घन (सघनता) ४ वर्ण (रूपता) ५ ताप (आन्तरिक उत्ताप) यही हैं उसकी तन्मात्राएँ जिनकी ओर दर्शनकारोंका संकेत हैं।

यह बड़ी मोटी बात है और इसमें कोई पेचीदगी भी नहीं। जब पदार्थका रूप बनता है तो उसमें पदार्थके अस्तित्वद्योतक बातोंका होना आवश्यक है। प्रकृतिके सत्, रज और तमस्वरूपमें उक्त पाँचों बातें नहीं पायी जातीं, कुछ पायी जाती हैं। इसी लिए उनकी पदार्थ संज्ञा नहीं, शक्तिसामर्थ्य संज्ञा है। और उक्त शक्ति, सामर्थ्य स्वरूप सत्, रज प्रपराणुओं के संयोग से उत्पन्न अहंकार-की पदार्थ संज्ञा पड़ती है। और इसमें पदार्थद्योतक उक्त पञ्चतन्मात्राएँ पायी जाती हैं। जिसमें पूर्ण रूप से उक्त पंचतन्मात्रायें नहीं पायी जातीं वह पदार्थ-पदार्थ नहीं। यही नहीं, वैज्ञानिक इन पञ्चतन्मात्राके ज्ञान से ही एक जातिके अहङ्कारियोंको दूसरी जातिके अहङ्कारियोंसे विभिन्न करनेमें समर्थ हुए। यदि इनमें पञ्चतन्मात्राएँ न होतीं तो हम इनको अनेक रूपताके विभेदको कभी न जान पाते। अहङ्कार या मौलिक तत्वसे पञ्चतन्मात्राएँ उत्पन्न नहीं हुई प्रत्युत मौलिक तत्वोंमें उसके जीवनके प्रादुर्भावके साथ-साथ उसमें पञ्चतन्मात्राएँ प्रादुर्भूत हुईं और उन पञ्चतन्मा-त्रिकों मौलिकोंसे स्थूल पञ्चभूत अर्थात् निर्जीव जगत् हवा, पानी, पृथ्वी आदि पदार्थ उत्पन्न हुए। यही क्रम दार्शनिक है। जिसकी व्याख्या आधुनिक प्रायोगिक विज्ञान करता है।*

संपादकीय टिप्पणी

स्वामीजीकी कल्पनायें तो मनोरञ्जक अवश्य हैं, पर हाँ, सांख्यके साथ वर्त्तमान भौतिक विचारोंका समन्वय इतना सरल नहीं है। महत्को आकर्षण और निराकरण शक्ति मानना और फिर अहङ्कारसे परमाणुओंकी भावना लेना केवल कल्पना ही है। सांख्य दर्शनमें निम्न सूत्र महत्का भाव स्पष्ट कर देते हैं।

स्थूलात्पंचतन्मात्रस्य ॥ १ । ६२ ॥

अर्थात् स्थूल पंचभूतोंसे पंचतन्मात्राओंका अनुमान लगाया जा सकता है।

बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाहङ्कारस्य ॥ १ । ६३ ॥

अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तर इन्द्रियोंसे अहङ्कारका अनुमान होता है।

तेनान्तःकरणस्य ॥ १ । ६४ ॥

उस अहङ्कारसे अन्तःकरण अर्थात् महत्का अनुमान होता है, और...ततः प्रकृते ॥ १ । ६५ ॥

उस अन्तःकरण या महत्तत्वसे प्रकृतिका। इस प्रकार इस उल्टे क्रममें ज्ञात स्थूल पंचभूतोंसे क्रमशः प्रकृति-तककी पुष्टि की गयी है। इन सूत्रोंमें महत्का एक पर्याय शब्द अन्तःकरण दिया हुआ है। महत्की आगे एक सूत्रमें व्याख्या इस प्रकार की गयी है।

* सृष्टि-रचना-शास्त्रके एक अध्यायसे संक्षिप्त।

संडासका सबसे उत्तम रूप

वैज्ञानिक संडास

[लेखक—श्री सी० डब्ल्यू० हौज़, सैनीटरी इंजिनियर, प्रयाग]

१—मलकी रक्षासे स्वास्थ्य-रक्षा

संसारको धीरे-धीरे यह पता लग रहा है कि मनुष्य जातिकी स्वास्थ्यरक्षाके लिये उसके मलका क्या किया जाय, यह समस्या बड़े महत्त्वकी है। मलके साथ ही साथ पेटसे निकलनेवाले कीटाणुओं और जीवाणुओंसे ही संसारके अनेक महाघातक रोग दूसरोंको लग जाते हैं। बहती हुई धारामें मलको बहाकर अथवा धूप और हवामें उसे खुले मैदान सुखाकर उसे दोष-हीन बनानेकी विधियाँ बहुत पुरानी हो गयी हैं और वहीं काम देती हैं जहाँ आबादी बहुत थोड़ी और गतिशील है और बहनेवाली धारा बहुत बड़ी और विस्तृत है। परन्तु जहाँ लोग जमकर बसे हुए हों और घनी आबादी हो वहाँ इससे भिन्न ऐसे उपाय करने पड़ेंगे जिनसे कि मलसे हानि न हो सके, बीमारी न फैले।

[सबसे बड़ी हानि यों होती है कि मलपर मक्खियाँ बैठती हैं और उसे अपने पंखोंमें लपेटे हुए भोजनपर बैठ जाती हैं। उसमें मलको पोंछ देती है, सान देती हैं, और साथ ही भयानक रोगोंके कीटाणु भी इस तरह भोजनमें मिलकर पेटमें पहुँच जाते हैं। डा० त्रिलोकीनाथ वर्म्माने अपने "स्वास्थ्य और रोग" नामक ग्रंथमें इस विषयको बड़े मनोरंजक चित्र देकर समझाया है। अतः हमें भरसक मलकी ऐसी रक्षा करनी चाहिये कि उसपर मक्खियाँ बैठने ही न पावें।
—रा० गौ०]

इस लेखके मूल लेखक श्री सी० डब्ल्यू० हौज़ (C. W. Haughes) प्रयागके सैनिटरी इंजिनियर हैं। आपने नये ढंगके अनेक वैज्ञानिक संडास बनवाये हैं? इस काममें आप कुशल हैं। संडासके विषयपर आपसे विशेष अनुरोध करके "विज्ञान"के लिये प्रोफेसर सालिगराम भार्गवने यह लेख लिखवाया है। संडासका प्रचार पहले भी था। इन संडासोंमें अब वैज्ञानिक परिवर्त्तन ऐसे ढंगसे किया गया है कि धरतीको विशेष रूपसे लाभ होनेकी भी संभावना है।—रा० गौ०।

२—किफायती बन्दोबस्त

पाखानेमें किसी ऐसे बरतनमें मलसंचय हो जिससे कि मलको उसके गड्ढेमें पूरे तौरपर उँडेल देनेमें और बादको उसे धो डालनेमें आसानी हो। इस बरतनको ज्योंही इस्तेमाल किया जाय त्योंही मलपर इतनी राख या धूल डाल दी जाय कि आधे इंचके लगभग मोटी तह उसपर हो जाय। ऐसा कर देनेसे न तो बू आवेगी और न मक्खी बैठेगी। शहरकी साधारण जनताके लिये, जो ज्यादा खर्च करके वैज्ञानिक संडास बनवानेमें असमर्थ है, यह सबसे अच्छी विधि है। इस बरतनमें मूत्र या आबदस्तका जल न गिरने पावे। [डा० त्रिलोकीनाथ वर्म्मा और महात्मा गांधी द्वारा वह विधि सबसे किफायतकी बतलायी गयी है।] परन्तु नाक और आंखको इस विधिमें भी कुछ घृणा होती ही है।

महदाख्यमाद्यकार्यं तन्मनः ॥ १।७१ ॥

अर्थात् कारण रूप प्रकृतिकी सर्व प्रथम कार्य्यावस्था महत् है और उसीका नाम मन या बुद्धि-सत्व है। अतः सांख्यका तात्पर्य स्पष्ट है, और महत् अन्तःकरण या बुद्धि-सत्व अथवा मनका ही दूसरा नाम है, बुद्धि और इन्द्रियोंके विकासके बीचकी सत्ताका नाम अहङ्कार है। मन इस अहङ्कार तत्व-द्वारा इन्द्रिय-जन्य पृथक् पृथक् ज्ञानोंका समन्वय करता है। सांख्याचार्य कपिलने इस प्रकार महत् और अहङ्कार दोनों-को ही स्पष्ट कर दिया है और यहाँ आकर्षण, निराकरण, परमाणु आदिकी कल्पनाएँ उचित नहीं प्रतीत होती हैं।
—सत्यप्रकाश

[देहातोंके लिये खेतोंमें एक फुटसे लेकर हाथभर तक गहरी नालियाँ खोदकर उन्हें काममें लाने और फिर मिट्टीसे ढक देनेवाली विधिमें दोहरा फायदा है। स्वास्थ्यके लिये बचाव और खादकी तैयारी दोनों बातें होती हैं। —रा० गौ०]

[पुराने ढंगकी संडासें बहुत गहरी खोदी जाती थीं और समय समयपर उसमें खारी मिट्टी डाल दी जाती थी। इससे आंख नाकको घृणा भी नहीं होती थी। स्वास्थ्यरक्षा भी निश्चित थी। भीतर ही भीतर खारी मिट्टी और कृमियोंसे मल-मूत्र सड़ गलकर खाद हो जाता था। परन्तु खादका लाभ किसीको नहीं मिलता था। कुवाँ पास हुआ तो उसका पानी सत्यानाश हो जाता था। यह विधि भी किफायतकी थी, परन्तु कुएँको बिगाड़नेवाली थी। —रा० गौ०]

इस किफायती बन्दोबस्तमें भी बहुधा देखा जाता है कि फिर भी मक्खियोंसे और जानवरोंसे रक्षा नहीं हो सकती। और साथही साथ सबसे बड़ी खराबी तो यह है कि उस कमोडकी सफाईके लिये एक और आदमीकी सेवा दरकार होती है जिसे भंगी कहते हैं। उसका काम ऐसा गंदा रखना ही पड़ा और उसे मसलहतसे समाजसे अलगाया गया क्योंकि समाजने उसे सफाई न तो सिखायी और न स्वयं सफाईकी उत्तम विधि बरतकर उसकी कठिनाइयोंको दूर किया, बल्कि उसे सपरिवार सदाके लिये बिगाड़ दिया। हमें बेचारे भंगीसे घृणा नहीं करनी चाहिये बल्कि उसके साथ अनुकम्पाका व्यवहार करके उसे ऊँचा उठाना चाहिये।

ठीक प्रकारका पाखाना तो ऐसा होना चाहिये जिसमें सब तरहका सुभीता हो। किसीको भी आंख नाकका कष्ट न हो। किसी भंगीकी सेवा दरकार न हो। सफाई ऐसी हो कि पाखानेका घर और सभी घरोंकी तरह शुद्ध स्वच्छ रह सके। यह सारी बातें कृमिकुंडवाली संडासों-में घटित होती हैं। [शहरोंमें जहाँ मल-नल-द्वारा धाराओं-में बहानेका प्रबन्ध है साइफनकी बदौलत यही सुभीते मिलते हैं परन्तु धारा खराब होती है, नदियाँ वैतरणीसे भी बुरी हो जाती हैं। अतः उत्तम प्रबन्ध तो वही है जिसमें गन्दगी कहीं भी न हो। सौभाग्यसे कृमिकुंड-वाली विधि ऐसी ही आदर्श पद्धति मालूम होती है। रा० गौ०]

३—कृमिकुंडका सिद्धान्त और सुभीते

कृमिकुंड बनाना सहज है, आसानीसे काम करता है और पूरा काम करता है। वह इसी सिद्धान्तपर बनता है कि सभी आंगारिक या कार्बनिक पदार्थोंको कृमिसमूह मिलकर गला-पचाकर अधिकांश द्रव और वायव्य रूप-में परिणत कर देते हैं। जो अंश घनरूपमें बच रहता है, उसमें कोई बूबास नहीं होती और रासायनिक कर्मण्यता भी नहीं होती। कृमियोंकी यह क्रिया सुभीतेकी परिस्थिति-में होती है। पाखानेको इस प्रकार गला-पचाकर निर्दोष बना देनेका काम कृमिसमूहसे लेना हो तो उसे एकदम अंध-कार दीजिये और ४० से लेकर १२५ अंशके भीतर फारनहैटका तापक्रम भी दीजिये। संडास या कृमिकुंडमें ये दोनों बातें सहज ही सुलभ होती हैं। साथ ही हिलना-डोलना भी इस काममें बाधक होता है। यह भी संडासमें बहुत कम होता है। बहुत ज्यादा ओषजनसे भी काम बिगड़ता है। इन संडासोंमें सब ओरसे बन्द रहनेके कारण हवा भी ताज़ी नहीं पहुँचा करती। यह भी एक लाभ है। यह कुंड या संडास इतनी बड़ी होनी चाहिये कि दिन रात-का इकट्ठा मल अँट सके, हमेशा बिलकुल भरा रहे, जिसमें मल तुरत ही पहुँच जाया करे, और जितना ताजा मल पहुँचे, उतना ही पहलेका पचा अंश तुरत उसमें-से निकल जाया करे। इसी सिद्धान्तपर कृमि-कुंड-संडासकी रचना की जाती है।

४—कृमि-कुंड अर्थात् वैज्ञानिक संडासकी रचना

इसका कोई विशिष्ट प्रामाणिक रूप या नकशा नहीं हो सकता। ऊपर जैसी अनुकूल परिस्थितियोंका वर्णन किया गया है, वैसी अवस्था जिस ही रूपमें सुलभ हो, उसी रूपसे काम लिया जा सकता है। साधारण व्यवहारसे यह एक बात तो मान ली गयी है कि कुंडकी लम्बाई उसकी चौड़ाईकी अपेक्षा दूनी होनी चाहिये और उसमें मलकी गहराई तीन फुट अर्थात् दो हाथसे तो कम होनी ही नहीं चाहिये। ३॥ या ४ फीट हो तो और भी अच्छा। यह कुंड जलके लिये निर्दोष बर्त्तन होना चाहिये। कहींसे पानी

रसे या टपके नहीं, जिसमें द्रवका तल स्थिर बना रहे और जिसमें जभी आवश्यकता पड़े तभी उसमेंकी सामग्री कुछ दूरपर ले जाकर रफा-दफा की जा सके। इन शर्त्तोंका लिहाज़ रखते हुए चाहे जिस मसालेसे कुंड बने, कोई बात नहीं। कंक्रीट तो ठीक है पर हमारे देशमें उसपर व्यर्थ ही ज्यादा खर्च करना पड़ता है। तीन हिस्से बालू एक हिस्सा सीमेंट मिलाकर अच्छी ईंटोंकी जुड़ाईसे बहुधा बहुत अच्छा कुंड बन सकेगा। इसकी भीतरी भीतोंपर इसी सीमेंटवाले मसालेसे पलस्तर भी होना चाहिये। इस कुंडका ढकना चाहे लोहेपर चढ़ा कंक्रीट हो, चाहे पत्थर हो, चाहे लोहेसे जकड़ी ईंटें हों, या और कोई चीज हो जो सुभीतेसे इतनी दृढ़ और मजबूत हो कि उसके ऊपर लदी हुई मिट्टीके बोझको सुभीतेसे सह सके। जहां कुंड अच्छा बने। वहांकी भीतोंको ४॥ इंच मोटी होना बहुत काफी है। एक बँगलेके कामके लिये जो संडास बने उसके लिये तो इस मोटाईकी भीतका कुंड बिलकुल काफी है।

कृमिकुंड संडासें बहुत तरहकी और विविध ढंगोंकी होती हैं। हर एकमें कोई न कोई खास सुभीता रखा जाता है। अनुभवसे यही प्रतीत होता है कि बहुत नखरे-तिल्लेकी, बहुत एच-पेचकी जरूरत नहीं है। मलको पचानेवाली क्रिया मुख्य है और इस क्रियाकी सफलताके लिये एक कुंड जरूर चाहिये जिसमें यह काम निर्विघ्न जारी रहे। एक या दो रोकनेवाली भीतें भी इसलिये उपयोगी होंगी कि मैला जब पाखानेके नलसे चले तो कुंडमें हलचल न हो जाय। यह दीवारें पत्थरकी हों या कंक्रीटकी पटिया हों जो आने और जानेके मार्गोंके पास ही दीवारमें लगी हों। या यह दीवार कुंडके बीचोबीच एक पतलीसी परदेकी तरह हो, और अच्छा हो कि इस तरह रहे कि एक तिहाई जगह बाहर निकासीकी राहके पास और दो तिहाई जगह भीतर प्रवेशके मार्गके पास उससे छूट जाती हो। इस दीवारमें एक छेद ९ इंचसे लेकर १ फुटतक वर्गाकार धरातलके निकट ही हो और कुंडके केंद्रके लगभग पड़े जिसमें एक सिरेसे दूसरे सिरेतक मल आसानीसे यात्रा कर सके। इस भीतपर कोई दबाव नहीं है इसीलिये इसका तीन इंच मोटा होना काफ़ी है। पतला प्लास्टर लगाकर कुल ३॥ इंचसे अधिक होनेकी जरूरत नहीं है। यह एक ईंटकी साधारण मोटाई हुई। प्रवेशमार्ग और निकासीकी राह दोनों विविध ढंगोंसे बन सकते हैं। सबसे जरूरी बात यह है कि मलको तलके नीचेसे प्रवेश करना चाहिये और नीचेके ही तलसे बाहर भी निकलना चाहिये क्योंकि कुंडके ऊपरी तलपर मोटी झाग बटुर जाती है। इस झागमें हलचल न पड़नी चाहिये। यदि निकासीके मार्गमें यह झाग पहुँच जाय तो बहुत संभव है कि निकालनेवाली नली बन्द हो जाय। प्रवेश और निकास दोनों मार्ग हवादार होने चाहियें। तिसाखी (टी) नलिकाओंके बदले कोनियाँ (एलबो) नलिकाएँ काममें लायी जायँ तो उनमें हवाके सहजमें आने जानेके लिये छोटे-छोटे छेद कर देने चाहियें।

५—कुंडमें दूसरे तीसरे विभाग

मलका अन्तिम परिणाम क्या होगा इसीपर कृमिकुंडके दूसरे विभागका होना न होना निर्भर है। मेरी रायमें भारत-वर्षमें कुंडके तीसरे विभागकी कभी जरूरत नहीं पड़ सकती। मलको रफा-दफ़ा करनेके तीन तरीके हैं, जिनको काममें लाया जा सकता है। सुभीतेसे हो सके तो किसी नाले नदी आदिमें बहाया जाय। पहाड़ों और जंगलोंमें जहाँ पानी पीनेके लिये काममें न आता हो यह उपाय निर्दोष है। इस पानीको वहाँ सिंचाईके काममें भी ला सकते हैं जहाँकी फसिल मनुष्य कच्ची नहीं खाता। जहाँ संडासको नालेसे मिलाना हो वहाँसे ज्यादा ऊँचाईपर कृमिकुंडका होना जरूरी है जिसमें दूसरा कुंड ठीक धरातलसे ऊपर हो। ऐसा वहीं हो सकता है जहाँ ढाल हो या जहाँ पाखानेकी जगह धरातलसे ऊँचाईपर हो। दूसरा कुंड पचानेवाले कृमि-कुंडसे कम गहराईका हो सकता है, और पचानेवाला कृमि-कुंड तो पचानेके सुभीतेके लिये काफी गहरा होना ही चाहिये। दूसरा कुंड धरातलसे नीचे भी हो सकता है परन्तु पंप लगानेकी जरूरत पड़ेगी। इसमें अधिक खर्च पड़ेगा। अपने आप चलनेवाला ज्यादा कीमती होगा। आदमीके हाथसे चलेगा तो बराबर एक नौकरकी तैनाती कोई सुभीतेकी बात न होगी। अगर मलसे निकले हुए पानीको सिंचाईके काममें लाया जाय, तो इस सम्बन्धमें यह विचार करना होगा कि पानी उतना मिल सके

जितनेकी जरूरत हो। यदि सिंचाईके लिये ज्यादा जरूरत हो तो और तरहपर पानीका बन्दोबस्त करना पड़ेगा। यह भी याद रखनेकी बात है कि कृमिकुंड मलका द्रावक मात्र है। शोधक नहीं है। उद्भिज्जाणु मलको खाते हैं और इसी भोजनपर उनकी वृद्धि होती रहती है। इस तरह ठोस मल द्रव रूप ग्रहण करता है। इन उद्भिज्जाणुओंको खानेवाले कुछ प्राथमिक जीव भी इन संडासोंमें पैदा हो जाते हैं। ये प्राथमिक जीव भी किसी विवेकसे नहीं खाते। जो बीजाणु रोग उपजाते हैं और जो नहीं उपजाते, दोनोंको निष्पक्ष भावसे खा जाते हैं। इस विधिसे छूतवाले रोगोंकी संभावना कुछ कम अवश्य हो जाती है, परन्तु सर्वथा मिट नहीं जाती। कृमिकुंडसे शोधनके संबन्धमें दो बातें तो अवश्य होती हैं, एक तो इससे मल इस तरह टूटकर विकृत हो जाता है कि उसमें मानव इंद्रियोंके लिये तो कोई घृणास्पद बात नहीं रह जाती। दूसरे मक्खियोंके लिये आकर्षण भी नहीं रह जाता। मक्खियाँ नहीं बैठतीं तो छूत उनके द्वारा नहीं फैलती। रोग फैलनेकी एक संभावना तो कम हो ही जाती है। सिंचाई तो इससे खूब हो सकती है परन्तु जितना काम लगे उसका फल भी उसी परिमाणमें मिले तो ठीक है और सिंचाई करनेवाला आदमी भी पूरे ध्यानसे काम करे।

सिंचाईके काममें इस मल-द्रवके लानेकी संभावना बड़े स्कूलों अथवा ऐसी बड़ी संस्थाओंमें ही हो सकती है। अकेली कोठियों और बँगलोंके लिये, जहाँ धरती रेतीली हो सबसे ज्यादा सुभीता इसीमें है कि धरतीके भीतर नलद्वारा पानी बहने दिया जाय कि धरती सोखती जाय। यह नल ऊपरी धरातलसे १॥-२ फुट नीचे लगा हो और १० फुटमें एक इंचकी ढालपर हो। यह नलिकाएँ ४ इंच व्यासकी हों और एक फुट लम्बी हों और जोड़ोंपर बहुत साधारण तौरपर जुड़े हों कि पानी सहजमें उनकी राहसे निकल जा सके। कांचका टुकड़ा, कागज या और कोई ऐसी ही चीज़ जोड़ोंपर रखी जाय तो अच्छा हो। नलकी लम्बाईका कुछ ठीक नहीं। आवश्यकतानुसार होनी चाहिये। संडास-पर जितने बैठनेवाले हैं उतने ५० फुट काफी होंगे, परन्तु हर हालतमें यह जरूरी नहीं है। रेतीली जमीनमें १५०-२०० फुट लम्बाई काफी होगी। शुरूमें इससे कम ही लंबाई रखी जा सकती है। बादको जैसी जरूरत हो बढ़ायी जा सकती है। यह जरूरी नहीं है कि ये नल एक ही पंक्तिमें हों। कई समानान्तर पाँतियाँ बैठायी जा सकती हैं। संडाससे निकलनेवाले परनालेसे कुछ नीचे हीके तलसे ये नल लगाये जायँ तो अच्छा हो, और पहले दस फुटतक तो कंकड़के दृढ़ नल हों जिनके जोड़ोंको सीमेंटसे मजबूत मिला दिया गया हो और १० फुटमें ३-४ इंचोंकी ढाल भी हो। सोखनेकी क्रिया तुरन्त नहीं हो सकती। सबेरे तो बारंबार पानी बहाया जाता है। उस समय सोखनेमें जरूर ही देर होगी। घंटे दो घंटे तक पानी इन नलोंमें जमा रहे तो कोई हर्ज नहीं है, शर्त्त यह है कि पानीकी मात्रा इतनी न बढ़ जाय कि कुंडके जलतलमें अन्तर डाल दे। इन नलोंकी ढाल बहुत तेज़ न करनी चाहिये। इन्हें घासके रमने, फलोंके बाग, या बाड़ोंके नीचे लगा देना चाहिये, परन्तु शर्त्त यह है कि पौधे ऐसे न हों, जिनकी जड़ें सेवारकी तरह पानीमें ही रहती हैं। तर-कारियोंके खेतके नीचे भी इन्हें ला सकते हैं परन्तु मेरी रायमें शकरकन्द, गाजर आदि जिन पौधोंकी जड़ें कच्ची खायी जाती हैं, उनके नीचे इस मलद्रवका सोखने देना ठीक नहीं है, क्योंकि जोखिम कम होते हुए भी स्वरक्षा वांछनीय है। बड़ी संस्थाओंकी संडासें विशेष रूपकी बननी चाहियें।

इनके बनानेमें जो खर्च लगता है वह विचारणीय है। स्कूलोंके कामकी सम्पूर्ण कृमिकुंड-संडासें सवासौ रुपयेके औसत खर्चमें प्रति कमोड बन सकती हैं। खर्चमें तो कमी बेशी हो ही सकती है। कोठियोंके लिये तो खर्च प्रत्येक कोठीके ढंग ढांचे और सामग्रीपर निर्भर होगा। प्रति कमोड १७५) से लेकर २००) तक कमसे कम बैठ सकता है। अच्छे ढंगके नीचे कुंडोंवाले तीन कमोड यदि एक बंगलेमें सुभीतेके साथ बनवाये जायँ तो कमसे कम पांच छः सौ रुपयेमें बन जायँगे।

किसी बँगलेमें यदि कृमि-कुंड-संडास बनायी जाय तो उसके लिये नमूनेका नक़शा नीचे दिया जाता है।

हमारा जातीय भोजन

[ले० डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी, एफ़० आइ० सी० एस०, प्रयाग विश्वविद्यालय ।
(डा० नीलरत्न धरके एक अंग्रेजी लेखसे अनूदित)]

इण्डियन केमिकल सोसाइटीके वार्षिक अधिवेशनमें सभापतिके पदसे वक्तृता देते हुए ४ जनवरीको मैंने बताया था कि अपने भोजनके निर्धारित करनेमें हमें आधुनिक विज्ञानकी सहायता लेनी चाहिये । २ मार्च के 'नेचर' में भी इसी बातका उल्लेख किया गया है जैसा कि निम्न पंक्तियोंसे विदित होगा ।

"शरीरकी सभी आवश्यकताओंमेंसे भोजनकी आवश्यकता सर्वोपरि है और सभी अब इस बातका अनुभव कर रहे हैं कि यदि उचित भोजनका व्यवहार किया जाय, तो कमसे कम बाल्यावस्थामें अवश्य ही मनुष्यका स्वास्थ्य भी अच्छा रह सकता है और वह समाजके लिये अधिक हितकर सिद्ध हो सकता है । वैज्ञानिक पद्धतिपर प्राप्त ज्ञानकी महत्ता अब उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, और केवल भावुकता अथवा

दस आदमियोंके लिए एक वैज्ञानिक संडासका नक़शा
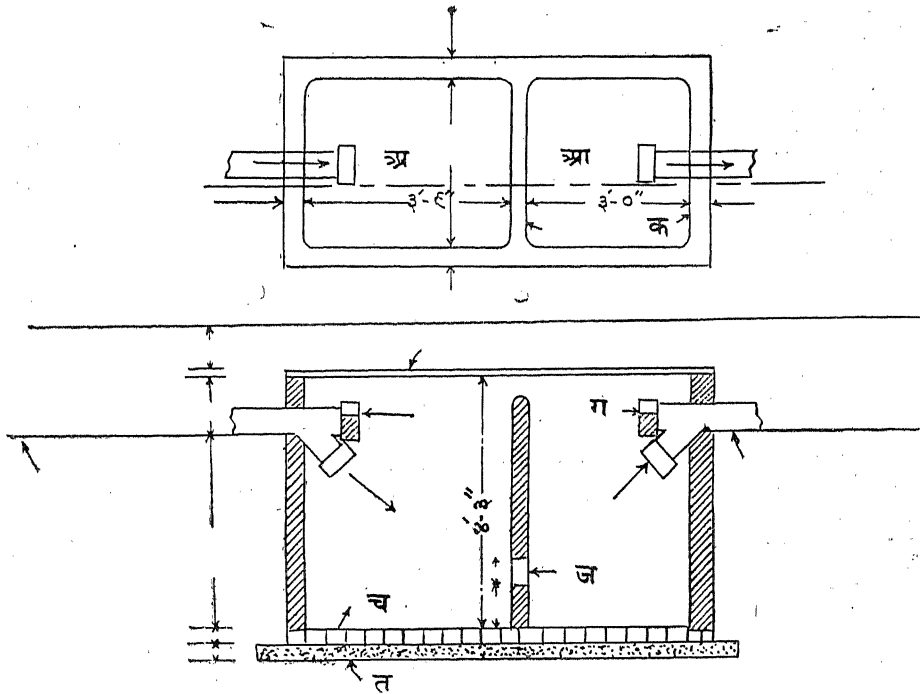
ऊपरवाला नक्शा आडी काट है नीचे वाला खड़ी कांट ।
अ = प्रवेशमार्गवाला खंड ३' × ३'९"
आ = निकासवाला खंड ३' × ३'९"
क = सीमेंटका प्लास्टर
ग = कंकड़का नल
च = ईंटका फर्श
ज = खुला अंश, झरोखा
त = कंकरीट

स्वादपर निर्भर रहनेवाले अनुभवोंका अब अधिक मूल्य नहीं माना जाता है। अब भी लोगोंका यह विश्वास दूर करना है कि भोजन सम्बन्धी बातोंका वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त किये बिना भी यदि अतीतकालसे जातियाँ जीवित चली आयीं तो अब आगे भी ऐसा ही क्यों नहीं हो सकता। पर जातियोंका जीवित चला आना ही इस बातका प्रमाण नहीं है कि अधिकांश जनता उचित जीवन व्यतीत करती रही अथवा उसने अपनी सभी निहित शक्तियोंका समुचित लाभ उठाया।"

स्वास्थ्यकर-भोजनमें अच्छे प्रकारके प्रोटीन वसामय पदार्थ, शर्कराएँ, लवण, विटेमिन और पानी होना चाहिये। आजकलके अनुसन्धानोंने यह स्पष्ट कर दिया है कि वनस्पति जगत्‌के प्रोटीनोंकी अपेक्षा पशुओंसे प्राप्त प्रोटीन जिनमें शरीरसे मिलते-जुलते हो अमिनोअम्ल होते हैं, आहारके लिये अधिक हितकर हैं। अच्छे प्रकारका प्रोटीन अर्थात् पशुसे प्राप्त प्रोटीन न केवल शरीरकी वृद्धिके लिये ही प्रत्युत मस्तिष्ककी वृद्धिके लिये भी आवश्यक है। यह पशु-प्रोटीन हमारे देशमें अधिकतर दूधमें प्राप्त होता है, पर दूध बहुत ही हलका भोजन है क्योंकि इसमें ८९ प्रतिशत पानी होता है। अतः यह आवश्यक ही प्रतीत होता है कि युवा मनुष्य दूधके साथ भी अंडों का व्यवहार करे। अण्डोंमें केवल अच्छे प्रकारके प्रोटीन ही नहीं होते प्रत्युत इनमें विटेमिन ए० और विटेमिन बी० भी होते हैं जो शरीरकी वृद्धिके लिये, और सहनशक्तिके बढ़ानेके लिये एवं बेरी-बेरीके समान अनेक रोगोंसे बचानेके लिये आवश्यक हैं, यही नहीं, अब तो यह बात पूर्णतः सिद्ध हो गयी है कि हरे शाक और ताज़े फल तो अनिवार्य्य आवश्यकताएँ हैं, केवल अमीरीकी ही निशानी नहीं है, और इनका व्यवहार तो इस समय जितनी मात्रामें किया जाता है उससे अधिक मात्रामें करना चाहिये। साफ़ चिकने चावल और अन्य अन्नोंकी मात्रा कम कर देनी चाहिये और दूध और मक्खन जिनमें विटेमिन ए और डी होते हैं अधिक मात्रामें खाने चाहिये।

चावलका आहार-मूल्य

चावलके आहार-मूल्यके संबन्धमें कुछ भ्रान्तियाँ हैं, यह तो अब स्पष्ट हो गया है कि जो साफ चिकना चावल बाज़ारमें बिकने आता है, उसमें गेहूँकी अपेक्षा यद्यपि अच्छे प्रकारका प्रोटीन होता है, तथापि उसमें विटेमिन बी नहीं होता जो बेरी-बेरी रोगके दूर करनेके लिये आवश्यक है। यह सभी जानते हैं कि धानके ४ भाग होते हैं। बाहरी भूसी, अन्नके ऊपरकी सूक्ष्म त्वचा, अन्नका बीज और सबसे अन्दरका अंश। चावलमें सबसे अधिक मात्रा इस चौथे आन्तरिक अंशकी होती है, और यह मुख्यतः नशास्ता होता है। पर इसके बाहरके भागमें प्रोटीन, वसा आदि पदार्थ होते हैं और इसलिये इसका विशेष महत्व है, इसे उप-त्वचा कहते हैं। इस त्वचाको दूर कर दिया जाय तो बीजका बीजत्व नष्ट हो जाता है। धानसे चावल निकालनेकी भिन्न-पद्धतियोंपर यह निर्भर है कि चावलकी ये त्वचाएँ कितनी मात्रामें बच रहती हैं और कितनी नष्ट हो जाती हैं। (प्लीमरकी 'वाइटेमिन एण्ड दी चोइस आव फूड' १९२२, पृ० १८-१९-के आधारपर।)

चिकना श्वेत चावल अधिकतर मशीनवाली चक्कियोंमें तैयार किया जाता है, और यही चावल समस्त संसारमें आजकल बेचा जाता है। इस चावलमें ऊपर कही गयी समस्त त्वचाएँ नष्ट हो जाती हैं जिनमें बीजका विशेष बीजत्व होता है। आइज्कमन (१८९७) ग्रिज्न्स (Grijns) (१९०१), फ्रेज़र और स्टेण्टन (१९११), बेडर (१९१३) आदि वैज्ञानिकोंने प्रयोगोंद्वारा यह दिखा दिया है कि पूर्वके देशोंमें जहाँ चावलका ही मुख्य व्यवहार होता है विशेषतः निर्धन जनतामें बेरीबेरीकी बीमारी अधिक पायी जाती है। पर जिन अमीर घरोंमें सभी प्रकारका अन्न-शाक भोजनमें व्यवहृत होता है, उनमें यह बीमारी नहीं होती। यदि भोजनके साथ चावलकी भूसीका व्यवहार किया जाय तो बेरी-बेरी दूर हो सकती है। इस भूसीमें विटेमिन डी होता है जो इस रोगकी एक मात्र ओषधि है। चिकने श्वेत चावलोंमें इस विटेमिनका सर्वथा अभाव होता है।

न केवल चावल ही, प्रत्युत साफ़ श्वेत गेहूँके आटेके मैदाके व्यवहार करनेसे भी बेरी-बेरी रोग हो जाता है। अतः बिना चोकर निकाला हुआ आटा ही अधिक श्रेयस्कर है। इस प्रकार चावलकी भूसी, या कम कुटे हुए चावल भूसी सहित आटा आदि पदार्थोंमें बेरी बेरी रोगको दूर करनेवाला तत्व होता है। पर जो चावल बाज़ारमें बेचा

जाता है उसमें यह तत्त्व नहीं है, और यही कारण है कि इस देशमें भी अनेक लोग इस रोगसे ग्रस्त पाये जाते हैं।

कबूतरोंपर प्रयोग

दूसरे देशोंमें तो प्रयोग किये ही गये हैं पर भारतीय परिस्थितिको ध्यानमें रखते हुए हमने अपने सहयोगियों—डा० चण्डीचरण पालित, श्री रामजी कृष्ण कौल, श्रीहीरालाल दूबे इत्यादिके साथ कई वर्षोंसे तरह तरहके चावलों और मैदेपर विटेमिन-बीकी दृष्टिसे कबूतर आदिपर प्रयोग किये। हमारे प्रयोगोंके फल 'जर्नल आफ् इण्डियन मैडिकल रिसर्च' और 'जर्नल आफ् फिज़िकल कैमिस्ट्री' आदि पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। उनसे स्पष्ट है कि यदि कबूतरोंको केवल चिकना साफ चावल ही खिलाया जाय तो उनको पोलीन्यूराइटिस रोग हो जाता है। यह रोग दो सप्ताहमें प्रकट होने लगता है और रोगीकी अवस्था इतनी बिगड़ती जाती है कि तीन-चार सप्ताहमें वह कभी कभी मर भी जाता है। इस रोगसे ग्रस्त कबूतरोंको दूध, टमाटरका रस, साबित गेहूँ और अन्य विटेमिन-युक्त पदार्थ दो दिन तक खिलाये गये, और जब उनकी अवस्था कुछ सुधर गयी तो उन्हें दाल भी दी गयी। ऐसा करनेपर एक सप्ताहमें ही उनका पोलीन्यूराइटिस रोग दूर हो गया, उनकी अवस्था सुधर गयी और फिर स्वस्थ हो गये। मैदापर भी ऐसे ही प्रयोग किये गिये। मैदा भी उतना ही बुरा सिद्ध हुआ जितना कि चावल।

अतः यह स्पष्ट है कि चिकने चावलोंमें यद्यपि शर्करा पदार्थोंके अतिरिक्त उपयोगी प्रोटीन भी होता है, पर इसमें बेरी बेरी रोग दूर करनेवाला विटेमिन न होनेके कारण यह हानिकर है। अतः इस रोगसे बचनेके लिये लोगोंको चावलके साथ गेहूँ, अण्डे, मटर आदिके साबित दाने, छीमियाँ, अँकुरवाले चने, अखरोट, टमाटर आदि पदार्थ खाने चाहिये।

मिश्रित भोजन

ब्रिटिश मेडिकल एसोसियेशनकी एक समितिने यह विचार प्रकट किये हैं कि मिश्रित भोजन ही श्रेयस्कर है, अर्थात् भोजनमें प्रोटीन, वसा, लवण और विटेमिनोंकी दृष्टिसे तरह तरहके पदार्थ हों, और इनसे प्रति दिन ३४०० कलारी ताप शरीरमें उत्पन्न हो सके। यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि वसामय पदार्थोंसे उत्पन्न कुछ मज्जिकाम्ल भी उतने ही आवश्यक हैं जितने कि प्रोटीनोंसे उत्पन्न अमिनो-अम्ल। प्रति दिन ३००० कलारी ताप उत्पन्न करनेके लिये हमारे जातीय भोजनमें प्रत्येक व्यक्तिको प्रतिदिन निम्न पदार्थ चाहिये—

(१) १ सेर शर्करा पदार्थ-चावल, आलू, रोटी, शक्कर, मिठाई आदिके रूपमें, साधारणतः पकाये भोजनमें ५०% पानी होता है, अतः पकाये हुए १ सेर भोजनसे लगभग २००० कलारी ताप निकलेगा।

(२) ४॥ छटांक वसा पदार्थ, मक्खन, घी, तैल आदि के रूपमें जिससे ५०० कलारी ताप उत्पन्न होगा।

(३) २ छटांक प्रोटीन, दाल, दूध (३ पावके लगभग प्रति दिन) और संभव हो तो २ अंडोंके रूपमें, इससे ५०० कलारी ताप मिलेगा।

(४) कुछ ताज़े फल जैसे नारंगी, नीबू, आम, अमरूद इत्यादि जिनमें विटेमिन-सी होता है जो कि अत्यावश्यक है। पपीता भी यकृत और प्लीहाके लिये अच्छा फल है।

(५) हरे पत्ते काले लाल जैसे पालक, बथुआ, चौलाई, खुलफा, इत्यादि जिनसे विटेमिन-ए और लोह लवण मिलते हैं। ककड़ी, लौकी, गोभी, करमकल्ला, आदि पदार्थ भी उपयोगी हैं क्योंकि इनसे क्षारीय पदार्थ मिलते हैं। मूली-गाजर बहुत ही अच्छा भोजन है क्योंकि यह शरीरमें विटेमिन-ए पैदा करता है, बिना उबाले टमाटर नमक और शक्करके साथ खानेमें गुणकारक होते हैं, क्योंकि इनमें विटेमिन ए, बी, और सी होते हैं।

बुद्धि विरुद्ध ऊटपटांग भोजन करना हमारे दुःख और संकटोंका कारण होता है। बहुतसे रोग अनुचित भोजनके कारणही उत्पन्न हो जाते हैं, अतः बुद्धिपरक भोजनसे हमारी जातिका स्वास्थ्य और सुख दोनोंही बढ़ेगा।

(लेखक की 'न्यू कंसेप्शन्स इन बायो-केमिस्ट्री १९३२, भी देखो)

सम्पादकीय टिप्पणियां

देश भाषामें शिक्षा देनेवाले विद्यापीठ

संसारके सभी सभ्य देशोंमें वहांके निवासियोंकी भाषामें शिक्षा दी जाती है। परन्तु अभागे भारतमें यह एक अनोखीसी बात है। और निजामके उसमानिया विद्यापीठमें देशी भाषामें ऊँचीसे ऊँची शिक्षा दिया जाना हमारे पंडितम्मन्य विद्वानोंके निकट एक अजीब बात समझी जाती है। हमारे भूतपूर्व डैरेक्टर श्रीमैकेंजीको तो वहां जानेपर ही यह विश्वास हुआ कि देशी भाषामें शिक्षादान असंभव नहीं है।

जो हो, उसमानिया विद्यापीठ भारतमें इस काममें अगुआ होनेके लिये अभिनन्दनीय है।

जो काम निजामने किया है वह स्वाभाविक है और अत्यन्त सरल है। महीशूर राज्य चाहे तो तुरन्तही अपने विद्यापीठमें ऐसेही आदेश दे सकता है।

ग्वालियर, इन्दौर, कश्मीर, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, भोपाल आदि राज्योंमें भी एकाएक देशी भाषाद्वारा शिक्षा देनेवाले विद्यापीठ स्थापित हो सकते हैं। धन है, और सब तरहका साधन भी है। संकल्पकी देर है। इन्दौर इस काममें अब अग्रणी हुआ चाहता है।

—रा० गौ०

इन्दौरका हिन्दी विश्वविद्यालय

हमको यह सुनकर बड़ा हर्ष हुआ कि इन्दौरमें "हिन्दी विश्वविद्यालय" स्थापित होने जा रहा है। उद्देश्य अत्यन्त स्वाभाविक है, कल्याणकारी है, सच्चा है और सुन्दर है। हम उसका सहर्ष स्वागत करते हैं। हमारी हृदयसे प्रार्थना है कि भगवान् इस काममें वहाँके यत्नशील उत्साहियोंको सर्वतोभद्र यश दें। "असतोमा सद् गमय, तमसोमा ज्योतिर्मय।" नामके सम्बन्धमें हमारा विनम्र निवेदन है कि "हिन्दी" और "विश्वविद्यालय" दोनों शब्द ठीक नहीं हैं।

"हिन्दी" राष्ट्रभाषा है और संस्थाके असंख्य विषयोंमेंसे एक है। शिक्षा इसीके द्वारा दी जायगी यह सही है, परन्तु केवल इसीलिये नाम भी "हिन्दी" रखा जाय, यह ठीक नहीं है। किसी न किसी दिन समस्त "विश्वविद्यालयों" को हिन्दीद्वारा शिक्षा देनी ही पड़ेगी। सभी "हिन्दी विश्वविद्यालय" होनेवाले हैं। उस समय यह नाम अपनी विशेषता खो बैठेगा? "इन्दौर" "तुकोजीराव" "हुकुमचन्द" आदि विशेषणात्मक शब्द अपनी विशेषता चिरकालतक स्थापित रख सकते हैं।

"विश्वविद्यालय" शब्द "युनिवर्सिटी" का भद्दा उल्था है। संस्कृतमें विद्यापीठ विद्याधानी आदि शब्द अधिक उपयुक्त हैं। "विश्वविद्यालय" नाम रखकर अनेक विषयोंकी शिक्षाका प्रबन्ध न होना न तो "सत्य" है और न "शिव"। "विद्यापीठ" नाममें असत्य और अशिव कुछ भी नहीं है। कविवर रवीन्द्र ठाकुरने "विश्व-भारती" शब्दका प्रयोग इसी "विश्वविद्यालय" के अर्थमें किया है। "विश्वभारती" शब्द भी बहुत अच्छा है, सुन्दर है। परन्तु उसके "विश्व" में भी यही दोष है। "विद्या" शब्द स्वयं बहुत व्यापक अर्थ रखता है। अठारहों विद्याएँ और चौसठों कलाएँ इसी "विद्या" शब्दके अन्तर्गत हैं। अतः "विद्यापीठ" शब्द काफी है। एक पीठमें अनेक "आलय" हो सकते हैं। "इन्दौर विद्यापीठ" कोई असुन्दर नाम न होगा।

—रा० गौ०

इन्दौर विद्यापीठके उद्देश्य क्या हों?

यदि इन्दौर विद्यापीठने केवल शिक्षाका माध्यम बदला, परन्तु वस्तु और विधि वही रही, तो उसने उतना काम किया जितना कि उसमानिया युनिवर्सिटीने किया है। उसने निजामकी नकलकर डाली, उन्हीकी डाली हुई लीकपर चला। देशके एक कपूतसे अधिक श्रेयस्कर काम नहीं किया। अँग्रेजीमें बने-बनाये युनिवर्सिटी नामके ग्रन्थका एकने उर्दू उल्था किया, दूसरेने उर्दू-उल्थाके संस्करणको देखकर हिन्दी उल्था कर डाला। बात क्या हुई?

वही है सूत मामूली मगर चर्खा तिलाई है

इन्दौर विद्यापीठ केवल माध्यम बदलकर रह न जाय। वस्तु और विधि भी बदले। भारतीय विश्वविद्यालयोंमें जो वस्तु और विधि प्रचलित हैं, उन्हें हम तीन पीढ़ियोंसे

व्यवहारकी कसौटीपर कस चुके हैं और बराबर खोटी पाते आये हैं। जो खरी बताते थे उनकी जबान बन्द है और अब तो सर राधाकृष्णन प्रभृति देश और विदेशकी प्रतिष्ठा पाये हुए विद्वान भी उसे एक स्वरसे दोषपूर्ण बताने लगे हैं। उनके खोटेपनके प्रमाणपत्रपर सबकी सही हो चुकी है। फिर भी जो विश्वविद्यालय तीन पीढ़ियोंसे चल रहे हैं, जिनमें लाखों रुपये मासिक वेतनभोगी विद्वान् हैं जिनकी भारी हानि वस्तु और विधिके बदलनेमें है, वहां जड़से सुधार होना असम्भव है। परन्तु जहां हम नींव रख रहे हैं, वहां हम क्यों भूल करें, वहां क्यों न अपने तीन पीढ़ीके अनुभवसे पूरा लाभ उठावें?

इन्दौरमें भी एक कालिज है जो आगरा विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध है। यदि उसे केन्द्र बनाया तो वस्तु और विधिके न बदले जानेकी मुहर लग गयी। उसे तो एकदम तोड़ देना चाहिये। आगरेसे संबद्ध उसके रहते नये विश्वविद्यालयकी भित्ति दृढ़ न होने पावेगी। पुरानेपनका, रूढ़िका, जादू स्थानी नवयुवकोंको भी उसमें खींच ले जाया करेगा। नये विद्यापीठकी दशा वही होगी जो काशी विद्यापीठ, विहार विद्यापीठ या गुजरात विद्यापीठकी हुई।

—रा० गौ०

वस्तु और विधि क्या हो

इन्दौर विद्यापीठ ज्ञान, इच्छा और क्रियाशक्तियोंका एक तेजोमय केन्द्र हो जहांसे बिखरकर उसकी किरणें भारत भरमें फैलें और उससे प्रभावित हो देशकी दरिद्रता भयानक बेकारी और व्यापक अज्ञान मिट जाय। आज हमारी शिक्षाका भारी दोष यह है कि शिक्षित लोग (१) बाबू बन जाते हैं, और शारीरिक श्रमसे लजाते हैं, (२) नौकरीके पीछे दीवाने हैं, (३) किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हैं, नहीं जानते कि क्या करें, (४) जो कुछ करनेमें सफल भी होते हैं तो वे काम देशके लिये हानिकार अधिक होते हैं और लाभकारी तो अत्यन्त कम। (५) शिक्षा पानेमें जितना समय, शक्ति और धन लगा देते हैं उतनेका ब्याज भी बहुतोंको नसीब नहीं होता, और (६) वे देशको उबारनेमें तो बहुत कम लगते हैं, उलटे स्वयं देशके लिये भार हो जाते हैं।

हमारे देशकी दशा और देशोंसे निराली है। देश और विदेश दोनोंके पूंजीपति उसका शोषण कर रहे हैं। यह शोषण इसीलिये संभव है कि यहांकी जनता स्वयं अपने धनकी रक्षा नहीं करती। शिक्षापद्धति ऐसी है कि धनकी रक्षा सिखानेके बदले धननाशकी ओर प्रवृत्त करती है और शोषणका मुख्य मशीन बनी हुई है। क्योंकि शोषकोंके ही इशारों पर बनी है। इन्दौर विद्यापीठ यदि उसी पद्धतिपर बना, तो व्यर्थ है। उसे धनरक्षक बनना चाहिये और जनताको रक्षाकी शिक्षा देनी चाहिये। आर्थिक स्वाधीनता और धनकी निश्चित रक्षा इस बातपर निर्भर है कि देशको स्वावलंबनकी शिक्षा दी जाय। हम अपने खाने और कपड़ेके लिये मिलों और मशीनोंके पुरजोंमें फँसे रहेंगे तो स्वावलम्बन असंभव होगा। इसलिये हमें तो ऐसी विद्या चाहिये जो बंधनोंसे हमें छुड़ावे, **सा विद्या या विमुक्तये**। मैं यहां केवल सिद्धान्त दे रहा हूँ। विस्तारकी तो बात ही अलग है, रूपरेखातकका वर्णन करनेको अनेक पृष्ठ चाहियें। हमें तो शिक्षा ऐसी चाहिये कि अपने जीवनमें हम उससे प्रत्यक्ष लाभ उठा सकें।

रा० गौ०

अंग्रेजीमें वैज्ञानिक साहित्यकी वृद्धि

डाक्टर मेघनाथ साहा आकाशीय भौतिक विज्ञानके विशेषज्ञ हैं। संसारके प्रमुख भौतिक शास्त्रियोंमें उनका नाम है। रायल सोसायटीके फेलो हैं। भारतका सिर ऊँचा करनेवाली संतानोंकी गणनामें आपका नम्बर बहुत ऊँचा है। "विज्ञान"को उनका उचित गर्व है। कलकत्ता विश्वविद्यालय जहां ऐसे रत्नोंका आकर है वहां प्रयाग विश्वविद्यालय उन्हें अपना मुकुटमणि बनानेका उचित श्रेय रखता है। उन्होंने विज्ञानके कई ग्रंथ लिखे हैं, जो बड़े महत्त्वके हैं, जिनका वैज्ञानिक संसारमें बड़ा आदर है। परन्तु हमें दुःखके साथ कहना पड़ता है कि ये ग्रंथ किसी भारतीय भाषामें नहीं है। अंग्रेजीमें हैं। सर जगदीश वसु और सर प्रफुल्लचन्द्ररायने भी अपने ग्रंथ अंग्रेजीमें लिखे हैं। इन भारतरत्नोंने अंग्रेजीमें क्यों लिखा? भारतीय भाषाओंमें क्यों नहीं? इस प्रश्नका उत्तर यही है कि ये अपनी कीर्त्ति अपना यश चाहते हैं। संसारमें सर्वाधिक

प्रचार भी इष्ट है सही, परन्तु यशोलिप्सा इसमें भी है। इनकी यशोलिप्सा जन्मभूमिकी भक्तिसे ऊपर है। धन-लिप्सा नहीं कह सकते, क्योंकि ये जो वेतन पाते हैं वह दरिद्र भारत देशमें अत्यधिक है। पुस्तकें विदेशोंमें पाठ्य-ग्रंथ हो गयी हैं और उनसे आमदनी है। परन्तु वह बहुत भारी नहीं है। क्या अच्छा होता यदि इन विद्वानोंकी देशभक्ति सब भावनाओंसे ऊपर होती और ये मातृभाषामें अपने ग्रंथ प्रकाशित करते और किसी दिन इन्हें पाठ्य ग्रंथ बनाकर हम "हिन्दी विश्वविद्यालयों"की साध पूरी करते।

—रा० गौ०

विज्ञान-सम्मेलन और विज्ञान-परिषदें

हम इन पृष्ठोंमें विज्ञानके सम्मेलनों और परिषदोंकी चर्चा कभी-कभी कर देते हैं। देशके सौभाग्यकी बात है कि ऐसी संस्थाएँ भारतमें खुल गयी हैं और हम इनका स्वागत करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। परन्तु हमें यह देखकर मर्म्मान्तिक दुःख होता है कि इन सब संस्थाओंमें-से एकने भी किसी भारतीय भाषामें अपना काम शुरू नहीं किया। भारत ही वह अभागा देश है जहांके विद्वानों-के हृदयमें भी अपनी मातृभाषाका उचित सम्मान नहीं है। बल्कि वे उलटे परायी भाषा द्वारा ही राष्ट्रीय काम करनेमें अपनेको गौरवान्वित मानते हैं। केवल इस स्वाभिमानका ही अभाव हो, यह बात नहीं है। आश्चर्य्य-की बात तो यह है कि अधिक उपयोगिता समझनेवाली साधारण बुद्धिका भी इन विद्वज्जनोंमें अभाव है। उन्हें यह ध्यानमें नहीं आता कि अपनी भाषामें विज्ञानका प्रचार होगा तो देशवासियोंकी एक बहुत बड़ी पढ़ी-लिखी संख्या उससे लाभान्वित हो सकेगी। नहीं तो, जैसे कानपुर, लायलपुर और पूसा आदि स्थानोंके कृषि-कालेज खेतिहरोंके कौड़ी कामके नहीं, यद्यपि उन्हींके पैसे खाकर पलते हैं, उसी तरह ये संस्थाएँ भी देशको वह लाभ कदापि नहीं पहुँचा सकतीं, जो देशी भाषा द्वारा संभव था। क्या यह दुःखकी बात नहीं है कि इन भारत-भूमिके लालोंका ध्यान अन्नदाता जनताकी ओर नहीं जाता! इन संस्थाओंकी रिपोर्टें रत्नोंके वह डिब्बे हैं जो विद्याधनके कुबेरोंकी मेजों-की शोभा हैं। इन्हें दरिद्रोंमें वितरण करना असंभव है।

हमारे देशके राय बोस रमण और साहा सरीखे विद्वानों-के मनमें कहीं यह लगन पैदा हो जाती तो हमारे भाग्यके सूर्य्यके चमक उठनेमें सन्देह न था। ऐसे ही लोग तो इन परिषदों और सम्मेलनोंके प्राण हैं और प्रेरक शक्ति हैं।

—रा० गौ०

अंग्रेजीमें "सायंस एंड कलचर" नामका पत्र

हम तो इसीपर दुःखी थे कि भारतीय विद्वान् अंग्रेजी-में ग्रंथ लिखकर, व्याख्यान देकर, रिपोर्टें लिखकर ऐश्वर्य्य-वान्का पेट भरनेकी चेष्टा करते हैं, और "दरिद्रान् भर"का उपदेश दोहरानेवाले थे। परन्तु हमें तो यह जानकर और भी अधिक मर्म्मान्तिक कष्ट हुआ कि हमारे देशके गौरव प्रोफेसर साहासाहब सुबोध विज्ञानपर **अंग्रेजीमें** एक पत्र निकालने जा रहे हैं। आपने लेखकोंको निम्नलिखित पत्र भेजा है—

SCIENCE AND CULTURE
A JOURNAL OF NATURAL & CULTURAL SCIENCE.
93A, Dhurrumtolla Street,
CALCUTTA.

Dear Sir,

You are probably aware that for sometime past a number of eminent scientists of the country has felt the necessity of popularising science and bringing scientific information within easy reach of our reading public. I hope you will agree with us that such a step is long overdue, for science is playing a very important and increasing part in all walks of our national life. The absence of a journal whose object will be not only the propagation of scientific knowledge among the reading public but also the publication of sober views on the application of science to problems of national importance, is very keenly felt. With a view to remove this want it is proposed to bring out a journal which has been named SCIENCE AND CULTURE. It will pubilsh long and short articles on current advances in science, research notes, book reviews, correspondance, sections on popular science and news of scientific societies. It will

open its colums to well considered criticisms of the policy of the state in which science is likely to play any part. The promoters of the journal will be very glad to avail themselves of your cooperation and encouragement. They hope that you will help it by contributing articles, research notes and other things which may be considered worthy of public attention.

Yours etc.
M. N. Saha

भाव यह है कि देशके बड़े-बड़े वैज्ञानिक "पढ़नेवाली जनता" के लिये विज्ञानको सुबोध रूपमें सुलभ करनेकी आवश्यकता प्रतीत करते हैं। इसलिए "सायंस एेंड कलचर" नामका पत्र कलकत्तेसे निकलेगा। इसके लिये लेख चाहियें। इसका उद्देश्य ठीक वही है जो "विज्ञान" का है। यह कहीं नहीं लिखा है कि इस पत्रकी भाषा क्या होगी। पढ़नेवाली जनता तो हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि देशी भाषाओंकी जाननेवाली बहुत ज्यादा है। कलकत्तेसे निकलेगा, अतः शायद बँगलामें निकले। परन्तु पत्र अंग्रेजीमें है नाम भी अंग्रेजीका है। लेख ऐसोंसे भी माँगा गया है जो बँगलामें नहीं लिख सकते। फिर यदि बँगला या किसी देशी भाषामें निकलनेवाला होता तो अंग्रेजी भाषाके पत्रमें इसका स्पष्टीकरण अवश्य होता। परन्तु पत्रसे तो हम यही निष्कर्ष निकालते हैं कि पत्रकी भाषा अंग्रेजी होगी। फिर "पढ़नेवाली जनता" का क्या अर्थ है? अंग्रेजी पढ़ सकनेवाली जनता? तब तो पत्रका प्रचार केवल अंग्रेजी-पढ़े लोगोंके बीच होगा। उसका उद्देश्य अत्यन्त संकुचित क्षेत्रमें ही पूरा हो सकेगा। इस संकुचित क्षेत्रसे भी विज्ञापनदाता खूब ही धन चोषण करते हैं, परन्तु इस अंग्रेजी पत्रका यह उद्देश्य तो हो ही नहीं सकता।

अंग्रेजीके जितने पत्र सुबोध विज्ञानके निकलते हैं सबका मुख्य लक्ष्य होता है व्यापार-वृद्धि और विज्ञापनबाजी। सुबोध विज्ञान तो गौण वस्तु है। डाक्टर साहब इस बातसे अनभिज्ञ न होंगे। हिन्दीवाला विज्ञान आज बीस बरसोंसे जिस कठिनाईसे निकल रहा है, वह हम जानते हैं और डाक्टर साहा भी जानते हैं। सरकारकी मदद न होती तो विज्ञान कभीका बन्द हो चुका होता। हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यका अभाव था। बीस बरस पहले तो राष्ट्रभाषामें कोई वैज्ञानिक पत्र था भी नहीं। "विज्ञान" जब निकला तब सहयोगियोंमें भी कभी वैज्ञानिक लेख नहीं निकलते थे। विज्ञानकी देखादेखी और अंग्रेजी पत्रोंके अनुकरणमें और पत्रोंमें भी वैज्ञानिक लेख निकलने लगे, और अब तो दैनिक मिलाप और "आज" तकमें वैज्ञानिक लेख निकला करते हैं, साप्ताहिकों और मासिकोंमें वैज्ञानिक लेख न रहा करें तो उनमें रोचकता न आवे। आज तो "विज्ञान" और "विज्ञान सागर" ये दो वैज्ञानिक पत्र हिन्दीमें भी निकल रहे हैं। फिर भी, बीस बरसोंके बादमें फिरभी "विज्ञान"की आर्थिक दशा इतनी नहीं सुधरी है कि वह अपने पंखों खड़ा हो सके। परन्तु परिषत् अपने उद्देश्य पर दृढ़ है। हानि उठाकर भी "विज्ञान" चलाये जाती है।

अंग्रेजीमें वैज्ञानिक साहित्यकी कोई कमी नहीं है। अंग्रेजी बोलनेवाले देशोंमें सुबोध विज्ञानके पत्र काफी निकलते हैं। वे भारतीय अंग्रेजी पत्र क्यों खरीदने लगे? व्यापारी दृष्टिसे भी विदेशके व्यापारी इसे अपनाने चलें, इस बातकी अधिक संभावना नहीं है। यदि हो भी तो भारतका और भी अधिक चोषण करनेके लिये। इस चोषणके सहायक डाक्टर साहा हों, यह भारतके दुर्भाग्यके सिवा क्या होगा? यदि अंग्रेजी उपनिवेशोंके लिये आपने निकाला, तो भी भारतका उसमें क्या लाभ है? और, यदि आपने यह अंग्रेजीका वैज्ञानिक पत्र भारतके लिये ही निकाला, तो कितनी बड़ी विडम्बना है? अंग्रेजी भाषाद्वारा शिक्षण ही भारतीयोंपर क्या कम अभिशाप है कि आप अंग्रेजीमें सुबोध विज्ञान प्रकाशित करके भारतीयोंको अधिक दंड देना चाहते हैं। क्या भारतमें अंग्रेजी पढ़े लोगोंकी संख्या बहुत बड़ी है? जो लोग अपनी लिपिमें अपना नाम कठिनाईसे लिख पढ़ सकते हैं, वे जब पढ़े लिखे गिने जायँ तो इस बीसवीं शताब्दीकी तिहाई बीतनेपर भी सौमें मुश्किलसे सात पढ़े लिखे समझे जाते हैं। इनमें अंग्रेजी पढ़े तो अत्यन्त कम हैं। क्या उन्हींको "विज्ञान" समझानेको आप इतने यत्नशील हैं कि अपनी सारी शक्ति, और सरकारी सहायताका बल लगाकर अंग्रेजीका पत्र निकालने जा रहे हैं? क्या पन्द्रह करोड़ हिन्दी भाषा भाषीका आप-

सहयोगी विज्ञान

१—फौन्टेन-पेनकी स्याहीका सहज नुसखा

हरिजन-सेवकके १५ मार्च १९३५के अंकमें "सतीश बाबूके साथ एक घंटा" शीर्षकवाले लेखमें श्रीमहादेव हरि देसाई लिखते हैं—

सस्ता उपचार, पेटेण्ट दवाइयों और व्यापारिक रहस्यों-के बारेमें हमारी और भी बातचीत हुई। होते-होते उनकी बनाई हुई फाउण्टेनपेनकी स्याहीकी भी बात आयी, जिसे वह कई महीनोंसे हमारे लिए भेज रहे हैं। मैंने कहा, "बाजारमें फाउण्टेनपेनकी जो बढ़िया-से-बढ़िया स्याही मिलती है उससे यह मुकाबला कर सकती है।"

"इतने पर भी," सतीश बाबूने कहा, "इसकी कीमत बहुत कम है। इन सस्ते उपचारों, सस्ती स्याही और जो साबुन आप यहाँ देखते हैं उनके बनानेमें मेरा यही उद्देश्य है कि गरीब-से-गरीब आदमी भी अपने रोजमर्राके इस्ते-मालकी चीजें घरमें ही बना लें। इन व्यापारिक रहस्योंने तो हमें चौपट कर दिया है। मैं तो समझता हूँ कि व्यापा-रिक रहस्य जैसी कोई बात है ही नहीं, यह बता देना कोई मुश्किल बात नहीं है। इस स्याहीकी बोतलको ही देखिए, जिसे आप बाजारकी अच्छी-से-अच्छी स्याहीके

पर कोई हक नहीं है? क्या आप उन्हींके अन्तर्गत क्षेत्रके प्रोफेसरीका लाभ नहीं उठा रहे हैं? अच्छा, हिन्दीवालोंकी बात जाने दीजिये। आप बंगाली हैं, आठ करोड़ बंगला बोलने वालोंका भी आपपर कोई हक है या नहीं? इस जमानेमें जब देशी भाषाओंको उनके उचित आसनपर बैठानेकी चेष्टा हो रही है, आप प्रमुख वैज्ञानिक होकर इस विषयमें पचास बरस पिछड़े क्यों देख पड़ते हैं? क्या आप समझते हैं कि अंग्रेजी भाषाका साहित्य बढ़ानेमें भारतीयोंका कल्याण है? क्या आप अबतक इसी असत्य सुखस्वप्नमें मुग्ध हैं कि किसी दिन अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा हो जायगी? क्या ऐसी भी वैज्ञानिक धारणा हो सकती है कि भारतीय भाषाएँ अपना अपना साहित्य लिये किसी युगमें लुप्त हो जायँगी और किसी चमत्कारसे समस्त नवजात बालक और उनकी माताएं अंग्रेजी बोलने लगेंगी? हमें तो ऐसी कोई धारणा दिमागमें नहीं आती।

दरिद्रान् भर कौन्तेय! मा प्रयच्छेश्वरे धनम्

हमारी सलाह तो यह है कि आप उक्त पत्र किसी भारतीय भाषामें निकालिये और उसके लिये सरकारसे पर्य्याप्त सहायता लीजिये। —रा० गौ०

इंदौरमें ज्यौतिष-सम्मेलन

इन्दौरमें इस वर्ष ९-१०-११ जूनको अखिलभारतीय ज्यौतिष-सम्मेलन होने जा रहा है।

भारतमें प्राचीनकालसे वेधद्वारा पंचांग-निर्म्माणकी परम्परा चली आयी थी। समय समयपर करण ग्रन्थोंका संस्कार होता आता था। इधर पिछले सौ बरसोंसे नाटिकल अलमनाककी सहायतासे पंचांग निर्म्माण सुगम हो गया। परन्तु करण ग्रंथोंका और अलमनाककी मेल कैसे मिल सकता है। इसीलिये जितने पंचांग हैं उतने प्रकारके बनते हैं। नाटिकल अलमनाककी सहायतासे पंचांग बनाना अपनी राष्ट्रियता और ज्योतिर्विज्ञान दोनोंका अपमान है। हमारे ज्यौति-षियोंको चाहिये कि सब मिलकर दृक्प्रत्ययसे निर्णीत एक ही प्रकारके पंचांगके निर्म्माण-पद्धतिका निश्चय कर लें।

फलित ज्यौतिषमें भी प्रयोग, परीक्षा और परि-शीलनके द्वारा सुधारकी आवश्यकता है। इन्द्र, वरुण और कुबेर नामके नये ग्रहोंके फलाफलका उसमें समावेश होना चाहिये।

यह सम्मेलन हिन्दी साहित्यसम्मेलनके साथ होने-वाला था। अच्छा हुआ कि यह अलग हो रहा है। इसमें गणित और भौतिक विज्ञानके पंडितोंको भी अवश्य सम्मिलित होना चाहिये।

इस भारी योजनाके कर्णधार विद्वद्वर विद्याभूषण पंडितप्रवर दीनानाथ शास्त्री चुलैटको परमात्मा इस मह-दुद्योगमें पूर्ण सफलता दे।

—रा० गौ०

मुकाबलेकी बताते हैं। १२ औंस स्याहीकी यह बोतल तीन आनेसे ज्यादा मूल्यकी नहीं है। हर कोई इसे बना सकता है। मगर हम २ औंस स्याहीवाली शीशी बाजारमें ३ से ६ आनेतक देकर खरीदते हैं। मैंने एक मित्रसे कहा कि हमें इस बोतलको बिकरीके लिए बाजारमें रखना चाहिए तो उसने आशंका प्रकट की कि यह बिकेगी नहीं। मैंने कहा कि व्यापारिक लोग इसे हमारे पाससे ६ आनेमें लेकर ८ आनेमें बेंचे तो भी, आज बाजारमें जो स्याही मिलती है उसकी बनिस्बत, यह दुगुनी-चौगुनी सस्ती पड़ेगी। लेकिन फिर भी मित्रको विश्वास न हुआ। उन्होंने कहा, हम तो ऐसी स्याही खरीदनेके आदी हो रहे हैं, जो हो तो चाहे २ औंस ही पर हो रंगीन लेबलवाले पुट्ठेके डिब्बेमें बन्द सुन्दर शीशीके अन्दर। विदेशोंसे आनेवाली स्याही तो और भी अधिक सावधानीके साथ पैक की हुई होती है। इस प्रकार, जब-जब हम २ औंसकी शीशी खरीदने जाते हैं तभी हमें स्याहीके साथ शीशी, लेबल, पुट्ठे आदिके लिए भी पैसे देने पड़ते हैं। और यह सब उस हालतमें, जब कि आप जानते हैं स्याही बनाना कितना आसान है।" यह कहते हुए, कुछ ही मिनटोंमें, मेरे देखते-देखते, उन्होंने एक औंस स्याही बनाकर बता दी। उन्होंने कहा, "यह स्याही बनानेकी किताब है, जिसका मूल्य २) रु० है। लेकिन मेरी तरकीब दूसरी है, उसका कोई मूल्य नहीं है। मेरी तरकीब इस प्रकार है—

गालनटका (माजूफलका) चूरा ४ औंस लेकर उसमें, दो बारमें करके, ६० औंस पानी मिलाओ। फिर पन्द्रह दिन या और अधिक समय तक उसे ज्यों-का-त्यों रहने दो। इससे वह घोल पारदर्शी हो जायगा और नटका चूरा नीचे जम जायगा। तब पानीको नितारकर इस अन्दाजसे उसमें और पानी मिलाओ कि कुल मिलाकर ६० औंस हो जाय। इसके बाद नीचे लिखी चीजें उसमें और मिलाओ—(हरा कसीस) फेरस सल्फेट २० ड्राम; सल्फुरिक एसिड (गंधकाम्ल) ४० (बूंद) मिनिम; वाटरब्लू (आई० जी०) ५ ड्राम; मेथिलेटेड स्पिरिट २० ड्राम।

जैसा कि अभी आप देख चुके हैं, कोई भी आदमी इस तरह स्याही बना सकता है।"

२—चेचकसे बचनेकी दवा

केलेके बीजका अपूर्व गुण

बम्बई दयाप्रचारक संघके मन्त्री लिखते हैं—

जिन लोगोंको चेचकका टीका लगवानेमें दया अथवा विज्ञानकी दृष्टिसे आपत्ति है उन्हें भी इस सम्बन्धके कानून-के सामने सिर झुका देना और अपने सिद्धान्तका हनन करना पड़ता है। ऐसे लोगोंके लिये उद्भिज्ज अनुसन्धान कार्यालयके श्री वी० एन० फड़केकी बतायी नीचे लिखी ओषधि चेचकसे बचने और चेचक हो जानेपर उससे छुट-कारा पानेके लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

चेचकको रोकने और दूर करनेके लिये केलेका बीज बड़ा उपकारी होता है। गोआके डाक्टर बहुत दिनोंसे इसका प्रयोग करते आ रहे हैं। हालमें बम्बईके आर्थररोड अस्पतालमें भी इसका प्रयोग हुआ है। जोरोंकी चेचकमें भी इससे लाभ हुआ है। चेचक या और तरहके स्फोटकके विषके शरीरमें प्रवेश करने और स्फोटकके निकलनेके बीचके समयमें यदि केलेके बीजका प्रयोग किया जाय तो सबके सब रोगियोंको लाभ पहुँचना निश्चित है। इस बीजमें यह शक्ति भी है कि यह जोरका बुखार भी आठ पहरके भीतर उतार देता है।

चेचकसे बचनेके लिये इसकी मात्रा इस प्रकार होनी चाहिये। बड़ोंके लिये—केलेके आठ बीजोंका करीब दस ग्रेन चूर्ण यदि शहद या दूधके साथ एक बार खा लिया जाय तो निश्चय है कि सालभर तक चेचक आदि न होगा। बच्चोंके लिये—१ से ५ बरसके बच्चोंके लिये—चौथाई और ५ से १५ बरसतकके बच्चोंके लिये आधी मात्रा है।

चेचकसे छुटकारा पानेके लिये मात्रा इस प्रकार है। बड़ोंके लिये—केलेके बीजका दस ग्रेन चूर्ण शहदके साथ दिनमें दो बार देना चाहिए। अवस्था देखकर आवश्यकता-नुसार तीनसे पाँच दिनोंतक रोज इसी तरह दवा देनी चाहिए। रोगीके लिये हलके भोजन, ठंढी हवा, ठंडा पानी या शरबत और हलकी चादर वगैरहका प्रबन्ध होना चाहिये गरम चीज पीनेको न दी जाय।

आर्थर रोड अस्पतालकी सन् १९३३ की रिपोर्टमें लिखा है कि २८ रोगियोंको केलेका बीज शहदमें मिलाकर

दिया गया। बहुत जल्द चेचक सूख गयी। १४ रोगी अच्छे हो गये।

३—पेड़ोंकी छालसे रंग निकालना

भागलपुरके सरकारी रेशम कारखानेके प्रबन्धकने पेड़ोंकी छालसे बादामी, भूरा, बैंगनी और खाकी रंग तैयार करनेका बिलकुल नया तरीका निकाला है। रँगनेका खर्च फी सेर चार आनेसे ज्यादा नहीं पड़ता, बशर्त्ते कि छाल मुफ्त मिल जाय। मामूली रंगमें फी सेर १) से लेकर ५) तक खर्च पड़ता है। इस आविष्कार द्वारा आम, पीपल, अमलतास, जामुन, अनार, लाल रेंड़ी, अमरूद आदिकी छालसे कारखानेमें चोखा रंग तैयार किया गया है। रँगनेकी तरकीब बहुत सहज है। पेड़ोंकी छालको करीब दो घंटे उबालते हैं। फिर पानीको छानकर उसमें भींगा हुआ रेशम आध घंटेतक डुबो रखते हैं। इसके बाद रँगे हुए रेशमको पाँच फीसदी तूतिया या फिटकरीके पानीमें डाल देते हैं। चार सेर छालसे एक सेर रेशम रँगा जा सकता है। रंग पक्का होता है। इस वनस्पति-रंगसे व्यवसायमें बड़ा लाभ पहुँचनेकी आशा है। —'आज'से

४—मुर्गी जातिमें पृथा-जनन

यह कम लोग जानते हैं कि कभी-कभी बिना आधानके भी गर्भ रह जाता है और सन्तान उत्पन्न होती है। महाभारतमें कथा है कि कुन्तीने बिना आधानके कर्णको उत्पन्न किया था। इस तरहकी उत्पत्तिको हम इसीलिये पृथा-जनन कहते हैं। इसे अशुक्र-जनन भी कह सकते हैं। जहाँ डिम्बको वीर्य्याणुजनित उत्तेजनाकी अपेक्षा रहती है, अर्थात् वहाँ शुक्राणुद्वारा गर्भाधान हुए बिना काम नहीं चल सकता, वहाँ डिम्बकी वृद्धि गर्भाशयमें ही रुक जाती है। पृथा-जननवाले डिम्बोंमें उत्तेजनाकी आवश्यकता नहीं होती। वह ज्योंही प्रौढ़ताको पहुँचते हैं त्योंहीं उनके भीतर शरीर-रचना होने लगती है। पौधोंके नन्हें कीड़े, बहुतेरे षट्पद, और कई जलभ्रमर गरमीभर पृथा-जननसे काम लेते रहते हैं। नर-मधुमक्खी भी इसी रीतिसे उत्पन्न होता है। उसकी माता है। पिता नहीं है। रानी और काम करनेवाली मक्खियां शुक्राहित अंडोंसे उत्पन्न होती हैं। पर किसीने मुर्गीमें पृथाजनन नहीं सुना था। पांच वर्ष हुए मेरी पालतू मुर्गीने जो पंद्रह बरससे पींजरेमें ही थी, एक अंडा दिया और उसे सेती रही। दुर्भाग्यवश वह समयसे पूर्व ही किसी तरह गंदा हो गया। फोड़नेपर उसमें शावकका अपूर्ण ढाँचा निकला। जहाँतक मुझे मालूम है मुर्गीमें पृथा-जननका यह नया उदाहरण था। वैसे अनाहित अंडे देना तो नया नहीं है। मेरे पास एक अंडा गतवर्षका स्पिरिटमें रखा हुआ है जो मेरे पड़ोसी पं० शिवशंकर शुक्लकी पींजरा-वासिनी मुर्गीने दिया था। रा०गौ०

५—गठियाकी अनुभूत दवा

सहयोगिनी "नवशक्ति" में गठियाके लिये एक अनुभूत तैलका नुसखा, मानभूमि कुसुंडाके श्रीरामहितसिंहने छपवाया है—

(१) मुलतानी हींग (२) कमाइनी मोसब्बर (३) जमाल गोटा (४) सफेद करजनी (५) कुचिला (६) जेठी सोंठ (७) कपूर, इनमेंसे प्रत्येक चीज़ दो पैसे की, (८) काली मिर्च एक आने की (९) मैनसील (१०) अफीम (११) भीखमा (१२) मीठी लकड़ी, प्रत्येक दो आनेकी (१३) असली सरसोंका तेल एक सेर (१४) धतूर (१५) सफेद अकवन (१६) मुठिया-सीज (?) प्रत्येकका रस चार छटांक, हींगके रसमें घोल कर, सब दवाई एक साथ मिलाकर कड़ाहीमें बैरकी लकड़ीसे तेल पकावे। जब मसाला तेलके ऊपर आ जाय तो आगसे कड़ाही उतार ले। तेल ठंढा करके बोतलमें रखे और रोगीको दिन रातमें तीन चार बार खूब मालिश करे। दही, खटाई, गुड़, बैंगन, कोहँड़ा न खाये। इससे गठियाका रोगी शर्तिया अच्छा हो जायेगा।

६—तिरानबेवां मौलिक "बोहीमियम"

५ जून १९३४ के "टैम्स" नामक लंडनके दैनिकमें उसके रोमके संवाददाताने लिखा है कि रोगके रायल युनिवर्सिटीके अध्यापक एनरिको फारमीने यूरेनियमसे भी भारी एक मौलिक पदार्थ खोज निकाला है जिसका नाम उन्होंने "बोहीमियम" रखा है। इसका परमाणुभार २४० है। यह भी उन्हें पिचब्लेंडीमें मिला है। इसका विस्तृत विवरण अपेक्षित है। —प्रकृतिसे

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४१ } प्रयाग, मिथुनार्क, सं० १९९२, विक्रमी, जून, सन् १९३५ ई० { संख्या ३

मंगलाचरण

[ले० स्व० पंडित श्रीधर पाठक]

निज स्वदेश ही एक
सर्वपर ब्रह्मलोक है,
निज स्वदेश ही एक
सर्वपर अमर ओक है,
निज स्वदेश विज्ञान-
ज्ञान-आनन्द-धाम है,
निज स्वदेश ही भुवि-
त्रिलोक-शोभा भिराम है,
सो निज स्वदेशका सर्व विधि
प्रियवर आराधन करो,
अविरत-सेवा-सन्नद्ध हो
सबविधि सुखसाधन करो ॥ ६ ॥ ४ ॥

घर बैठेका रोजगार

शहद और मोम पैदा करना

(ले०—ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस्० सी० विशारद, सब-रजिस्ट्रार, तहसील हाटा, गोरखपुर)

१. शहद और मोमकी उपयोगिता

देश हितैषियों एवं अनुभवी व्यक्तियों-का ध्यान आजकल ऐसे घरेलू उद्योग धंधोंकी ओर गया है जिनका संचालन थोड़ी ही पूँजीसे हो सके। उनके प्रचार-प्रसार एवं चुनावमें यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये कि घरोमें नित काम आने वाली वस्तुओंका ही उत्पादन एवं निर्माण किया जावे ताकि वे शीघ्र ही खप जाय। इस प्रकारके धंधों में 'शहद और मोमका रोजगार' भी है। इसके करनेमें न बहुत रुपये पैसे की आवश्यकता है और न किसी विशेष (Training) शिक्षाकी। इनकी खपत भी कम नहीं है। शहदका शर्बत अन्य शर्बतों से अधिक स्वादिष्ट और गुणकारी होता है; बहुत लोग इसे रोटी पर चुपड़ कर खाते हैं। यही नहीं, दवा-दारू, मुरब्बे शराब, सिरकेके बनाने और फलोंके (Cooking) सिझानेमें भी यह बहुत काम आता है। मोमकी मांग भी कम नहीं है। मोमबत्ती, खिलौने, साँचे, ठप्पे, वार्निश, पालिश आदिके बनाने और कलम लगाने (Grafting) एवं बिजलीके काममें भी यह बहुत आता है। केवल संयुक्त राज्य अमेरिकामें मधु-मक्खियोंके कृत्रिम छत्तों (Comb foundation) के निर्माणमें लगभग पाँच लाख पाउंड मोम प्रतिवर्ष खर्च होता है।

> हमारे देशमें बेरोजगारी बड़े उग्र रूपमें व्याप रही हैं। सौमें पचहत्तर किसान हैं, उनमेंसे नब्बे प्रति सैकड़ा के पास कोई और धंधा नहीं है और बरसमें छः महीने निठल्ले रहते हैं। शेष सैकड़ा पीछे पचीसकी आबादीमें अधिकांश पराश्रित, दरिद्र और भिखारी हैं। घर बैठेका रोजगार सबको चाहिये चरखे खद्दरका व्यवसाय ऐसा ही है। योग्य लेखकने मोम और शहदका भी एक ऐसा रोजगार सुझाया है, जो हरएक किसान घर बैठे कर सकता है।
> —रा० गौ०

संयुक्त राज्य अमेरिकामें शहदकी पैदावारको प्रधानता दी जाती है। इस धंधेसे वहांके लगभग आठ लाख मनुष्यों की रोजी चलती है। लाभप्रद होनेके साथ-साथ यह रोजगार बड़ा रुचिकर भी है। लिखा-पढ़ीका काम एवं दूसरे प्रकारके रोजगार करनेवालोंको यह धंधा परिवर्तन (Change) का काम देगा और मेहनत-मज़दूरी करनेवालों को (Recreation) विनोद अथवा मन बहलावका। वकील, चित्रकार, प्रोफेसर; मज़दूर, सभी श्रेणीके पुरुष इसे मनोरंजक और लाभप्रद पायेंगे। किसानोंके लिये तो यह धंधा इतना आवश्यक है जितना गाय, बैलोंका पालना।

यहाँके लिये शहद कोई नयी वस्तु नहीं है। इसके गुणागुणोंकी जानकारी बहुत पहले से है। महाकवि बिहारी लालका यह दोहा अत्यन्त प्रसिद्ध है—

नहिं परागु, नहिं मधुरमधु,
नहिं बिकास एहि काल।
अली, कली ही सौं बँध्यौ,
आगे कौन हवाल॥

स्पष्ट है कि शहद फूलोंसे प्राप्त होता है और भौंरे अथवा उनके भाई-बन्धु तुच्छ कीड़े उसका प्राशन करके अपने छत्तोंमें जमा करते हैं। किन्तु इस अभागे देशमें कवियोंके सिवा इस 'मधुर-मधु' की किसीने क़दर नहीं की। धंधेकी दृष्टिसे इसके उत्पादन एवं संचयकी ओर सुशिक्षित जनताका ध्यान नहीं जमा। भारत जैसे विशाल देशमें बहुत ही कम आदमी शहदके लिये मक्खियाँ पालनेका रोजगार करते दीखते हैं। फिर ऐसे मक्खी-भवनों (Apiaries) का जिसमें मधु-मक्षिकाओंके अनागिनत

छत्ते रखे जाते हों, सर्वथा अभाव ही है। लखनऊका मच्छी-भवन नाम मात्रको 'मक्षी-भवन' है। दो चार छत्तोंको छोड़ और कुछ भी नहीं और सो भी प्राकृतिक दशामें पाये जाते हैं। मनुष्योंका उसमें तनिक भी हाथ नहीं है। तात्पर्य यह कि यहाँ पर वे वृक्षों और दीवारों या दरारोंमें प्राकृतिक अवस्थामें पायी जाती हैं। उनके रहन-सहन और भोजनादि की व्यवस्थामें सहारा और सुभीता देना तो दर किनार, हम उनके गाढ़े श्रमसे संचित किये हुए मधुके निकालनेमें भी ऐसी बेदरदी और घातक नीतिका अवलम्बन करते हैं जिसका ठिकाना नहीं। इस क्रियामें हम उन्हें उजाड़ देते हैं और उनके छत्तों एवं अंडों बच्चोंका तहस-नहसकर डालते हैं। जिनकी बदौलत हमें इतना गुणकारी मधुर-मधु प्राप्त हो, उनके साथ हमारा यह नाशकारी

भारतीय मधु मक्षिका

रानी मजदूर नर

व्यवहार! इसका दुष्परिणाम जो होना चाहिये, वही हो रहा है। आज हम दवा-दारूके लिये शुद्ध शहद पाने को विदेशियोंका मुँह ताकते हैं।

२. यह धंधा कैसे करें?

हम ऊपर कह आये हैं कि शहद और मोम मधु-मक्खियोंसे मिलता है। अतः उन्हें पैदा करनेके अभीष्टसे हमें अधिक मधु-मक्खियाँ रखनी पड़ेंगी। वे प्रायः प्राकृतिक अवस्था ही में पायी जाती हैं—गाय भैंसोंकी भांति वे पालतू प्राणी नहीं हैं। तथापि हम देखते हैं कि मानव सभ्यताके आरम्भ हीसे मनुष्य उन्हें पालते चले आये हैं। जिस भांति खेल-तमाशा करनेवाले अनुभवी व्यक्ति बन्य पशु पक्षियोंको तरह-तरहके खेल सिखा अपनी रोजी कमाते हैं उसी भाँति मधु मक्खियोंके पालनेवाले भी उनके स्वभाव और रहन-सहनके अनुकूल कामकर उनसे मन-माना लाभ उठाते हैं, उनसे प्रतिवर्ष हजारों मन शहद और मोम पैदा करते हैं। यही नहीं, उनकी नस्ल और वातावरणमें आवश्यक सुधारकर इन पदार्थोंकी उपजमें काफ़ी वृद्धिकर रहे हैं।

शहद और मोम पैदा करनेके लिये यदि हम स्वाभाविक अवस्थामें पायी जानेवाली मधु-मक्खियों पर निर्भर रहें तो स्पष्टतः हम अधिक शहद और मोम न जमा कर सकेंगे। इसके लिये तो हमें उनको अधिक संख्यामें पालना पड़ेगा। संख्या बढ़ानेके हेतु हमें इस बातका यत्न करना पड़ेगा कि उनके अंडे बच्चे बरबाद न होने पावें। अधिक शहद पानेके लिये उनके रहनेको बने बनाये छत्ते मुहैया करने पड़ेंगे ताकि उनके निर्माण करनेसे जो समय और शक्ति बचे वह शहदके संचयमें लग सके। फिर हमें उनके भवनों अर्थात् छत्तोंकी व्यवस्था ऐसे स्थानोंमें करनी होगी जहाँ ऐसे फूलोंका बाहुल्य हो जिनसे वे अल्प कालमें उत्तम प्रकारका मधु जमाकर सकें। क्योंकि जितने ही निकट पुष्प होंगे, मधु-संचयका कार्य उतना ही शीघ्र और अधिक हो सकेगा।

३—मधु मक्खियोंका रहन-सहन

हर छत्तेमें तीन प्रकारकी मधु-मक्खियाँ होती हैं। रानी और नर मक्खियोंका काम सन्तानोत्पादन है। मज़दूर मक्खियोंका कार्य-क्षेत्र बड़ा विस्तीर्ण है। छत्तोंका निर्माण और उनकी सफाई, चौकसी एवं जीर्णोद्धार यही करती हैं। परिषद्‌की सभी मक्खियोंके भोज्य-पदार्थ-पुष्प-रस (Nectar), पराग; जल आदि यह लाती हैं। इसके अतिरिक्त अंडों-बच्चोंके पालन-पोषण एवं रक्षाका भार इन्हींके सुपुर्द रहता है। छत्तेमें मज़दूर-मक्खियाँ ही कर्मवीर होती हैं।
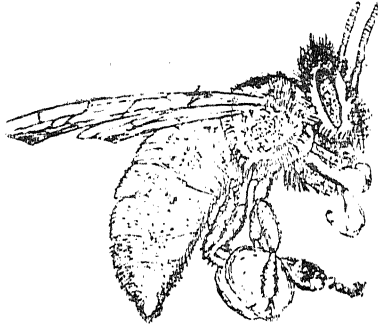
मज़दूर मक्खी (Pollen basket) परागकांडमें पराग ले जा रही हैं (दायीं ओरसे)
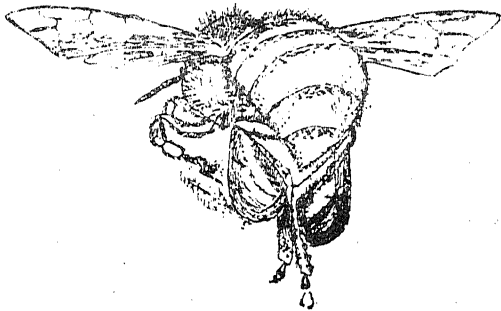
मज़दूर मक्खी अपने (Pollen basket) परांगकाडसे पराग ले जा रही हैं। (पीछेकी ओरसे)

पुष्प-रसकी खोजमें फूलोंके पास आते तो अनेकों कीड़े हैं किन्तु उनमें प्रधानता मधु-मक्खियोंकी ही होती है। अधिकांश कीड़े वहाँ जाकर अपना पेट भर लेते हैं और फिर चैनकी बंशी बजाते हैं। क्षुधाग्नि शांत हो जाने पर फूलोंसे कोई सरोकार नहीं रखती। किन्तु मधु-मक्खियाँ अपने खानेके अतिरिक्त समाजके अन्य सदस्योंके भोजनार्थ भी भोज्य-सामग्री जुटाती हैं। इतना ही नहीं, मितव्ययी पुरुषोंकी भाँति गाढ़े-सँकरेके लिये वे शहदको बचाकर छत्तोंमें जमा भी करती है। इस कारण, अन्य कीड़ोंकी अपेक्षा मधु-संचयका काम, इन्हें कहीं अधिक करना पड़ता है और इसी कारण फूलोंपर वे प्रायः अधिक दिखाई देती हैं। उनकी यह मधु-संचयकी प्रवृत्ति मानव-समाजको कितनी लाभदायक सिद्ध हुई है, इसका ठीक अनुमान तो तभी किया जा सकता है जब संसार भरके शहद और मोमकी पैदावारका लेखा-जोखा किया जावे।
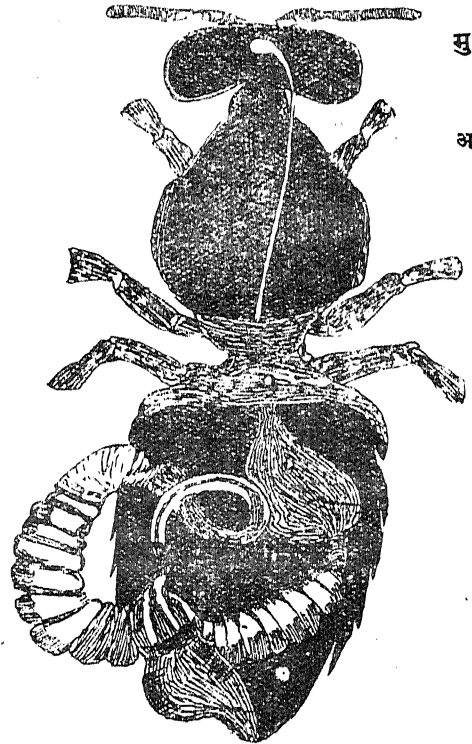
मज़दूर मक्खीका भोजन-मार्ग

फूलोंसे पुष्प-रस चूसकर वे पेटकी थैली (मधु-आमाशय Honey-stomach) में भर लेती हैं। वापस आने पर वे उसे उगलकर मधु-कोषोंमें (Honey-cells) जमा कर देती हैं, यहाँ पर यह रस कुछ रासायनिक परिवर्तनोंके अनन्तर पककर शहद बन जाता है। पकनेकी क्रियामें

पुष्प-रसमें से आर्द्रता जाती रहती है और (Sucrose) इस शर्कराका परिवर्तन (Invert sugar) विपर्ययित-शर्करामें हो जाता है जो (Dextrose) द्राक्ष-शर्करा और (Levulose) वामावर्त्ती फल-शर्कराकी सम्मिश्रण है।

४–शहद कैसे लेते हैं ?

आजकल जो लोग व्यापारकी दृष्टिसे मधुमक्खियोंको पालते हैं वे उनके छत्तोंको खेतों और फुलवारियोंके निकट लगाते हैं। जब वे छत्तोंसे शहद निकालनेको होते हैं तो (Smoker) धुँअनी अथवा सिगरेटके धुएंसे मक्खियोंको उड़ा देते हैं। ऐसा करते समय वे अपने शरीर को वस्त्रमें ढँक लेते हैं। हाथोंमें दस्ताने और चेहरे पर जालीदार कपड़ा लपेट लेते हैं। छत्ते छोटे-छोटे खुले हुए बक्सोंमें लगे होते हैं। छत्तेकी अधिकांश मक्खियाँ तो धुएंसे ही उड़ जाती हैं, थोड़ी बहुत जो बच रहती हैं वे ब्रुशसे हटा दी जाती हैं। तदनन्तर जिन मधु-कोषोंका शहद पक जाता है उनके ढक्कनों-को (Cappings) गरम चाकूसे पिघला-पिघला कर तोड़ डालते हैं। ढक्कन खुल जाने पर छत्तेको (Centrifugal machine) केन्द्रा-भिगामी यंत्रमें रखकर उसे धीरे-धीरे घुमाते हैं। ऐसा करनेसे कोषोंका सारा शहद निचुड़ आता है और उनके अंडे बच्चे जैसेके तैसे छत्तोंमें बने रहते हैं। शहद निकाल लेनेके बाद खोखले छते को उसी स्थान पर पुनः रख देते हैं और मक्खियोंके निवासके काममें पुनः आता है। इस भांति एक छत्तेसे कई बार शहद निकालते हैं और हर बार उसमें मक्खियाँ बसायी जाती हैं।
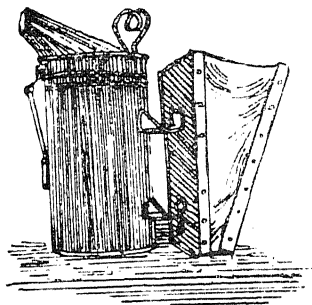
धुअँनी

मधु कोषोंके ढक्कन तोड़नेके लिये चाक

शहद निकालते समय मक्खियोंका जो दल धुएँसे उड़ा दिया जाता है उन्हें किसी लम्बी लकड़ीके छोर पर घनीपत्तियोंकी छोटी छोटी शाखाए बांध-कर उसीपर उतार लेते हैं। मधुमक्खियाँ काली वस्तु अथवा अंधेरा अधिक पसन्द करती हैं। यदि मक्खियाँ शांति प्रकृतिकी हुई तो शाखाको हिलाकर उन्हें (Basket) टोकरीमें जमा कर लेते हैं और शाम होते होते उन्हें छूंछे छत्ते में प्रवेश करा देते हैं। जिस शाखापर उनका दल उतरता है। अंगूरके काले-काले (Cluster) गुच्छोंके सदृश प्रतीत होने लगती हैं। इन गुच्छोंके समीप यदि कोई ऐसा सन्दूक रख दिया जावे जिसके भीतर अन्धेरा हो तो गुच्छेकी प्रायः सभी मक्खियाँ धीरे-धीरे सन्दूकमें घुस जायेंगी। यदि सन्दूकमें बना बनाया अंडों-बच्चों सहित खाली छत्ता मौजूद हुआ तो वे और भी शीघ्रता से उसमें प्रवेश कर जायँगी। ऐसा छत्ता पा जानेसे वे मधु-संचयका कार्य फौरन आरम्भ कर देती हैं। लोगोंका कहना है कि जितनी देरमें वे एक पाउंड मोम बनाती हैं उतनी देरमें वे छः से बीस पाउंड तक शहत इकट्ठा कर लेती हैं। अतएव शहदके व्यापारकी दृष्टिसे बना हुआ छत्ता मिल जाना अतीव लाभप्रद है। इसके सिवा ऐसी दशामें उनका स्थान परिवर्तन भी बहुत कम होता है। जब रहनेको समीप ही मकान मिल जाता है तो सुदूर जानेकी आवश्यकता ही क्या ?

५–मोमका रोजगार

इस नूतनविधिसे शहद निकालनेमें मधुकी पैदावार और शुद्धतामें तो अवश्य उन्नति हुई है, पर मोमकी पैदावार बहुत घट गयी है। कारण कि मोम तो छत्तोंके गलानेसे ही प्राप्त होता है। छत्ते तोड़े नहीं जाते। वहाँ तो कृत्रिम छत्तोंकी (Comb-foundations) माँग और खपत है। वहाँके व्यापारी शहदकी पैदावार पर ही विशेष ध्यान देते हैं। हाँ, मधुकोषोंमें टूटे हुए ढक्कन, असाव-धानीसे टूटे हुए छत्ते और अनुपयोगी छत्तोंसे ही थोड़ा बहुत मोम प्राप्त होता है। कृत्रिम छत्तों (Comb-foundations) के बनानेके लिये केवल संयुक्त-राज्यमें लगभग पाँच लाख पाउंड मोम प्रति वर्ष बाहरसे आता है।

जिन देशोंमें उत्तम प्रकारका शहद नहीं पाया जाता

है वहाँ मोमकी पैदावार पर विशेष ध्यान दिया जाता है। मोम भारतवर्ष में भी पैदा होता है किन्तु अफ्रीकाकी जंगली मक्खियोंके छत्तोंसे वह बहुत बड़ी मात्रामें प्राप्त होता है। वहाँके कुछ प्रदेशोंमें तो मोमका व्यापार ही मुख्य है। वहांसे प्रतिवर्ष लाखोंमन मोम दूसरे देशोंको जाता है। कभी-कभी मोमका दाम ८०) रु० सेर तक चढ़जाता है। इतने बहुमूल्य पदार्थकी हमारे देशमें यह बेकदरी!

मोम मधु-मक्खियोंके शरीरकारस-स्राव (Secretion) है। छत्ता बनाते समय वे उस स्थानकी छत्तसे एकके सहारे एक झूलकर एक प्रकारका (Curtain) परदा बनाती हैं। ताप क्रममें वृद्धि होनेसे मधु-मक्खियोंके उदरस्थलकी अंतिम चार मणियों (Segments) के अधोभाग पर मोमकी पपंडी (Wax-scales) जम जाती हैं। यह पपड़ी इन मणियोंमें स्थिति मोमकी ग्रन्थियों (Glands) का रस-स्राव है जो वायुके संसर्गमें आनेसे कड़ी हो जाती है मक्खियाँ मोमकी इन पपड़ियोंको अपनी पिछली टाँगोंसे खरोच लेती है और दाढ़ोंसे मसलकर उससे मनमाने कोष तैयार करती हैं।
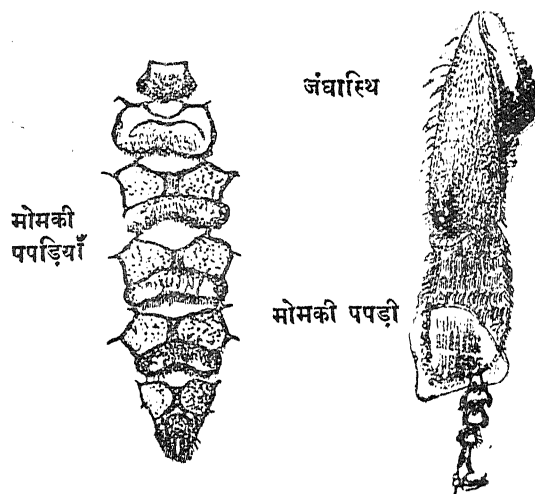
मजदूर मक्खीके उदर स्थलकी अंतिम मणियों-का निचला दृश्य

मजदूर मक्खीकी पिछली टाँग

प्राचीनकालमें पके हुए छत्तोंको कुचलकर शहद छान लेते थे या उसे गरम करके पिघला लेते थे। ठंडा करनेपर मलाईकी भांति मोमकी तह ऊपर बँध जाती थी और शहद नीचे रह जाता था। इस भाँति तैयार किया हुआ शहद उतना शुद्ध नहीं होता था क्योंकि पराग आदिकी मिलावट इसमें रह जाती थी। पर सन् १८६५ ई० में मधु-क्षरण यंत्र (Extractor) का आविष्कार हुआ और तबसे शहद बहुत शुद्ध मिलने लगा।

मोम निकालनेकी सर्वोत्तम विधि यही है कि शहद निचोड़कर छत्तेके कोषोंको गरम करके पिघला लेवे। फिर ठंडा करके उसकी रोटी बना लेवे। छत्तेमें पाये जानेवाले बाह्य पदार्थ गरम करते समय तलीमें बैठ जाते हैं। रोटी बन जानेपर चाकूसे नीचेके भागको छील देते हैं, फिर उसे सफेदकर लेते हैं। सफेद करनेमें उसके मैले रंगको निकालना पड़ता है। पानीमें मोम खौलानेसे इसका बहुत कुछ रंग जाता रहता है और कुछ दिन धूपमें रखनेसे बचा-बचाया रंग भी साफ होजाता है। यदि पिघले हुए मोमको हड्डीके कोयलेकी तहोंमें से बहाया जावे तो भी मोम सफेद होजाता है। कोई कोई मोमको पिघलाकर फिटकरीके पानीसे उसे धोकर साफ़ कर लेते हैं। मोमको पिघलाकर उसमें शोरा और गंधकका तेजाब मिलानेसे भी वह सफेद हो जाता है।

जिस तरह आजकल अच्छे-अच्छे गुणोंको उत्पन्नकर गाय-भैंसोंकी नस्ल सुधारी जाती है उसी भांति अमेरिकामें अच्छी नस्लकी मक्खियाँ पैदाकी जाती है। अधिक शहद जमा करनेवाली अथवा बली एवं अधिक मात्रामें संतान पैदा करनेवाली मक्खियोंकी वहाँके बाजारोंमें बड़ी बिक्री होती है। सुधार (Queen-bee) रानी मधु मक्खीमें ही किये जाते हैं क्योंकि वही परिषद् भरके प्राणियोंकी जननी होती है। इसीका परिणाम है कि अमेरिकामें बिक्रीके लिये रानी मधु मक्खियोंका पालना भी एक अलग रोजगार होगया है। अनेकों रोज़गारी विविध जातियोंकी मक्खियाँ उत्पन्न कर और पाल पोपकर अपनी रोजी कमाते हैं। इसके सिवा मोमके कृत्रिम छत्तोंकी भी अनेकों दुकानें हैं। मधु-मक्षिकाओंके पालनेवाले बज़ारेसे (Comb-foundations) कृत्रिम छत्ता और रानी मक्खी खरीद लेते हैं और अपना काम आरंभ कर देते हैं।

सच तो यह है कि भारतमें इस समय मधुमक्खियोंका पालना उतना आसान नहीं है जितना अमेरिकामें। क्योंकि

हज़ारों कोस दूरसे बैठे-बैठे देखना और सुनना

दिव्यदृष्टिका चमत्कार

(ले०—भगवानदास तोशतीवाल बी० एस० सी० [ऑनर्स] प्रयाग, विश्वविद्यालय)

१—दूर-दर्शन क्या है ?

कितनी ही दूरीपर होनेवाली घटनाओंका घर बैठे विद्युत्से देखनेकी सामर्थ्यको ही टेलीविज़न अथवा दूर-दर्शन कहते हैं। इसे दिव्यदर्शन भी कह सकते हैं, जो हमारे यहाँका एक प्राचीन शब्द है। दर्शनमें सफलता प्राप्त करनेके विचार वैज्ञानिकों के हृदयमें उसी वक्तसे गुदगुदी पैदा करने लग गये थे जब कि संवत् १९३३ वि० में ऐलेक्ज़ेंडर ग्रेहम बेल नामी वैज्ञानिक ने टेलीफोनका आविष्कार करके संसारमें हलचल पैदा कर दी थी। अस्तु, इस विचारको कार्य रूपमें परिणत करनेके लिये विविध प्रकारकी योजनाएँकी जाने लगीं और अन्तमें कई वर्षोंके निरन्तर परिश्रम एवं अनुसंधानके पीछे जोन लोजी बेअर्ड (John Logie Baird) नामक एक अंग्रेज वैज्ञानिकको इसमें सफलता मिली। बेअर्ड महोदयने संवत् १९८२ के वैशाखमें टेलीविजनके सार्वजनिक प्रयोग दिखलाये। इन प्रयोगोंमें केवल साधारण वस्तुओंकी मोटी आकृतियाँ (Out lines) ही एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भेजी जा सकी थीं। उसी साल श्रावणमें अमेरिकामें भी मिस्टर सी० एफ० जेनकिन्सने (Silhouettes) छाया-चित्रोंको एक स्थानसे दूसरे स्थान पर बेतार द्वारा भेजनेमें सफलता पायी। फिर भी बेअर्डने उसी संवत्में २७ जनवरीको रॉयल इन्सटीट्यूशनके करीब ४० सदस्योंको जीवित मनुष्यके चेहरेका दिग्दर्शन एक कमरेसे दूसरे कमरेमें टेलीविजन द्वारा कराया। श्रीबेअर्डके सर्व प्रथम उपकरणका नाम टेलीवाइज़र (Televisor) रखा गया है और आजकल वह लंडनके दक्षिणीय केन्सिंग्टन् अजायब घरमें रखा हुआ है। इङ्गलैंडसे अमेरिकाको टेलीविज़न द्वारा चित्र सर्व प्रथम फरवरी सन् १९२८ में भेजा गया था।

टेलीविजन और टाकीज़ * (बोलते-चालते चित्र) को रेडियो ब्रोडकास्टिंगका ही अंश मानना चाहिए क्योंकि इनकी सफलताका एक बहुत बड़ा भाग रेडियो ब्रोडकास्टिंग पर ही निर्भर रहा है। किसी चित्रको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर टेलीविजन द्वारा भेजनेके लिए हमारे पास एक ऐसा साधन होना चाहिए जिसके द्वारा वह चित्र किसी रूपमें विद्युत्की तरङ्गोंमें परिणत हो सके और फिर इन्हीं तरङ्गोंसे चित्र वापिस नज़र आने लगे। (Photo electric cell) प्रकाशीय विद्युत् उत्पादक द्वारा हम रोशनीको विद्युत् धाराओंमें तो जरूर परिवर्तन कर सकते हैं लेकिन चित्रके सब भागोंके प्रकाशके उतार-चढ़ावको हम एक ही समय विद्युत् धारामें नहीं बदल सकते, जबतक कि हम और कोई तरीका व्यवहारमें न लावें। अगर हम चित्रके प्रत्येक भागके लिए भिन्न-भिन्न प्रकाशीय-विद्युत्-उत्पादक काममें लें तो फिर इनसे पैदा हुई तरंगोंको एक साथ भेजनेमें कठिनाई होती है इस समस्याकी पूर्ति (Nipkow) निपकौ नामी एक जर्मन वैज्ञानिकने संवत् १९४१ विक्रमी-

* देखिये 'विज्ञान' भाग ४० संख्या २, नवम्बर १९३४।

वहाँ कैसे सुभीते यहाँ नहीं मौजूद हैं। तथापि हम लोगोंको इस ओर कुछ करना चाहिए, विशेष कर किसान और बागवानोंको। खेती और बागवानीमें मधु-मक्षिकाओंकी सेवा अपार है, जिसके हेतु आज तक किसीने उनके प्रति-कृतज्ञता तक प्रकट न की। कृषकों और बागवानोंको शहद और मोमके रोजगारके हेतु मधु-मक्खियाँ पालना चाहिये और दूसरोंको प्रोत्साहित करना चाहिये।

में स्कैनिङ्ग डिस्क (Scanning Disc) या विश्लेषक चक्रका आविष्कार करके किया। यह एक प्रकारका गोलाकर चक्कर है जो कि एक निश्चित गतिसे आड़ी कीलपर एक मोटर द्वारा घुमाया जा सकता है। इस चक्करपर गोल अथवा
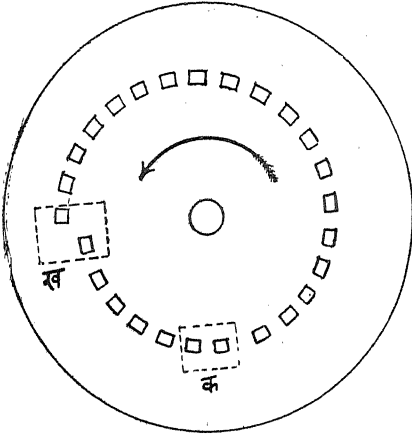
चित्र नं० १म

चौखाने छिद्र सर्पाकार बने रहते हैं। प्रथम और आखिरी छिद्रकी खड़ी दूरी चित्रकी लम्बाईसे कुछ ही अधिक होती है और दो पास-पासवाले छिद्रोंकी आड़ी दूरी चित्रकी चौड़ाईसे कुछ ही अधिक होती है।

अगर हम किसी समाचार पत्रमें छपे हुए हाफ़टोन (Half-tone) चित्रको करीबसे देखेंगे तो मालूम होगा कि वह अनेक बिन्दुओंसे मिलकर बना है जो कि एक दूसरे-से समान अन्तरपर होते हैं, और इसी चित्रको अगर दूरसे देखा जावे तो यह बिन्दु दिखलाई न देंगे और चित्र फोटोके सदृश प्रतीत होगा। निकट से देखनेपर, जितने ही पास-पास ये बिन्दु होंगे, चित्र भला मालूम होगा। टेलीविजनसे चित्र भेजनेके लिये इन्हीं बिन्दुओंके सिद्धान्तका आश्रय लिया जाता है। भिन्नता केवल इतनी ही है कि चित्रको बिन्दुओंमें विभाजित न करके धज्जियोंमें विभाजित करते हैं। हाफ़टोन चित्रोंमें चित्रको बिन्दुओंमें परदे द्वारा विभाजित किया जाता है। यहाँ यह काम स्केनिंग डिस्कसे लिया जाता है और इसकी दो विधियाँ हैं।

प्रथम विधिमें दृश्य (Object) को बहुत तेज प्रकाशमें रखते हैं और लेंस द्वारा उसका चित्र स्कैनिंग डिस्क पर बनाया जाता है जैसा कि चित्र नं० १ में दिखाया गया है, फिर इस चित्रसे छनकर प्रकाश एक फोटो इलेक्ट्रिक सेलपर पड़ता है और विद्युत् धारामें परिणत होजाता है। द्वितीय विधिमें प्रकाशकी एक रेखा डिस्कके छिद्रमें से होती हुई दृश्य पर पड़ती है और फिर वहांसे प्रतिबिम्बित होकर फोटो इलेक्ट्रिक सैलोंमें जाती है। प्रथम विधिमें प्रकाशका एक बहुत ही कम अंश फोटो-इलेक्ट्रिक सेलपर गिरता है और दृश्य (Object) अगर जीवित व्यक्ति हो तो वह अधिक तेज़ प्रकाशमें सुविधासे नहीं ठहर सकेगा और इसकी आँखें बंद होने लगेंगी। अतएव द्वितीय विधि ही आजकल काममें लायी जाती है। चित्र नं० २ यह बतलाता है कि दृश्य किस प्रकारसे डिस्क घूमनेपर पंक्तियोंमें विभाजित हो जाता है। चित्रकी लम्बाई और चौड़ाई दो परदों द्वारा आवश्यकतानुसार कम अथवा अधिककी जा सकती है। अगर दृश्य स्केनिंग डिस्कके दायें या बायें (चित्र नं० १ क) होगा तो यह पंक्तियाँ खड़ी होंगी और अगर वह ऊपर या नीचे (चित्र नं० १ ख) के भाग पर होगा तो यह पंक्तियाँ पड़ी होंगी। स्केनिंग डिस्कपर जितने ही छिद्र ज्यादा होंगे यह पंक्तियाँ भी अधिक मात्रामें होंगी और चित्र उतना ही टेलीविज़न द्वारा शुद्ध भेजा जा सकेगा। लेकिन व्यवहारमें यह छिद्र एक हदसे आगे नहीं बढ़ाये जा सकते हैं। मानलो कि प्रकाशकी रेखा स्कैनिंग
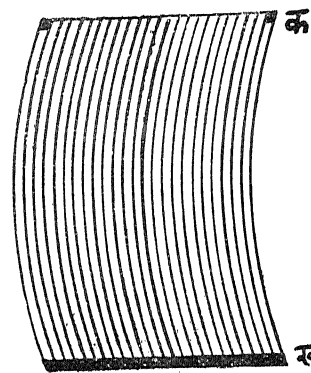
डिस्क प्रथम छिद्रसे क स्थान पर गिरती है तो यह रेखा डिस्ककी गतिके साथ क से ख तक पहुँचेगी और ज्योंही क ख पंक्ति समाप्त होगी द्वितीय छिद्र फिर नीचेसे दूसरी पंक्तिको बनाने लगेगा इस प्रकार पूर्ण चित्र विच्छिन्न हो जावेगा।

फोटो इलेक्ट्रिक सेलसे पैदा हुई विद्युत् धारायें दृश्यके चमकीले अथवा श्याम भागके अनुसार तेज अथवा मध्यम होगीं और फिर यह ही धाराएँ विस्तारक (Amplifier) द्वारा विस्तृत करनेके पश्चात् रेडियो प्रेषक यंत्र (Radio

Transmitting Apparatus) और आकाशी (Aerial) द्वारा विद्युत्-चुम्बकीय तरंगोंके रूपमें वायु-मंडलमें भेज दी जाती हैं।

अब हम (Transmitting Station) प्रेषक स्थलसे चलकर उस स्थान पर आते हैं जहाँ कि चित्र फिर नेत्रद्वारा देखना चाहते हैं। ऐसा करनेके लिए हमारे पास ऐसे साधन प्रस्तुत होने चाहिए कि जिससे हम उपयुक्त विद्युत्-चुम्बकीय लहरोंसे विद्युत-धारा पैदा कर सकें और फिर इन धाराओंको इस प्रकारसे व्यवहारमें लावें कि हमको

चित्र दिखाई पड़ने लगें। प्रथम भाग तो (Radio Receiving Set) ग्राहक द्वारा हो सकता है और द्वितीय भाग एक (Neon Tube) नूतन-नली और (Composing Disc) संश्लेषक-चक्रकी मददसे किया जाता है। निओन ट्यूब एक प्रकारका वाल्व है जिसमें निओन नामक निष्क्रिय गैस क्षीण दबाव पर भरी रहती है। इस ट्यूबमें (Cathode) ऋणद्वार (Rectangular Plate) चौकोर पट्टीके आकारका निकलनामक धातुका बना रहता है और इसके पीछे धनद्वार (Anode) एक किसी दूसरी धातुका बारीक छड़के आकारका रहता है। जब ऊँचे वोल्टेजकी विद्युत्-धारा इन (Terminals) ध्रुवोंद्वारा ट्यूबमें भेजी जाती है तो निओन गैस उत्तेजित हो जाती है और ऋणद्वार प्रकाशित होता है। यह प्रकाश प्रवेश करनेवाली धाराके वोल्टेजके अनुसार कम और अधिक होता रहता है। संश्लेषकचक्र (Composing Disc) ठीक स्कैनिंग डिस्कके जैसा होता है और ठीक स्कैनिंग डिस्ककी गतिसे उसी दिशामें एक मोटरद्वारा चलाया जाता है। हम चित्रकी एक पंक्तिके बाद दूसरी पंक्ति देखते हैं लेकिन डिस्ककी गति ऐसी होती है कि प्रत्येक पंक्ति प्रति सेकेण्ड कमसे कम १५ बार हमारे आँखोंके सामने आ जाती है इसलिए (Persistence of Vision) दृष्टिसातत्यकी मददसे हमको सम्पूर्ण चित्र एक ही समयमें दिखाई देता रहता है।

संश्लेषक चक्रकी गतिके बारेमें केवल इतना ही लिख देना यथेष्ट न होगा कि वह स्केनिंग डिस्ककी गतिके बराबर है और दोनोंकी दिशा भी एक ही है। टेलीविजनकी पूर्ण सफलताके लिए यह आवश्यक है कि दोनों चक्रोंके प्रत्येक छिद्र २ में समकालीनता (Synchronism) पायी जावे। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए कई मार्ग सोचे गये हैं। अमेरिकामें कुछ वैज्ञानिकोंने ऐसा करनेके लिए पृथक् (Wave length) तरंगदैर्ध्यपर संकेत भेजनेका निश्चय किया लेकिन बेअर्ड महोदयने एक अद्वितीय उपाय निकाला जिसमें समकालीनता प्राप्त करनेके संकेत चित्रकी विद्युत्-चुम्बकीय तरंगोंमें ही मिले रहते हैं। आपने स्केनिंग डिस्कके सामनेवाले परदोंको इस प्रकारसे रखा कि चित्रकी खड़ी पंक्तियोंके साथ साथ एक आड़ी काली पंक्ति भी बन जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि अगर डिस्कमें ५० छिद्र हों और प्रत्येक पंक्ति प्रति सेकेंड २० बार विच्छेदित हो तो फोटो इलेक्ट्रिक सेलसे एक ऐसी विद्युत्-धारा पैदा होगी जो कि हर सेकिंड

में ५० × २० = १००० बार लोप हो जावेगी, फिर इसी धारासे पैदा हुआ संकेत संश्लेषक-चक्रकी गतिको ठीक करनेके काममें लिया जाता है।

और उनके स्थानपर मूर्तिप्रेपक (Iconoscope) और (Kinescope) मूर्तिदर्शक यंत्रका व्यवहार होने लगा है। (Kinescope) मूर्तिदर्शक यंत्रका व्यवहार तो संश्लेषक-

चित्र नं० ४
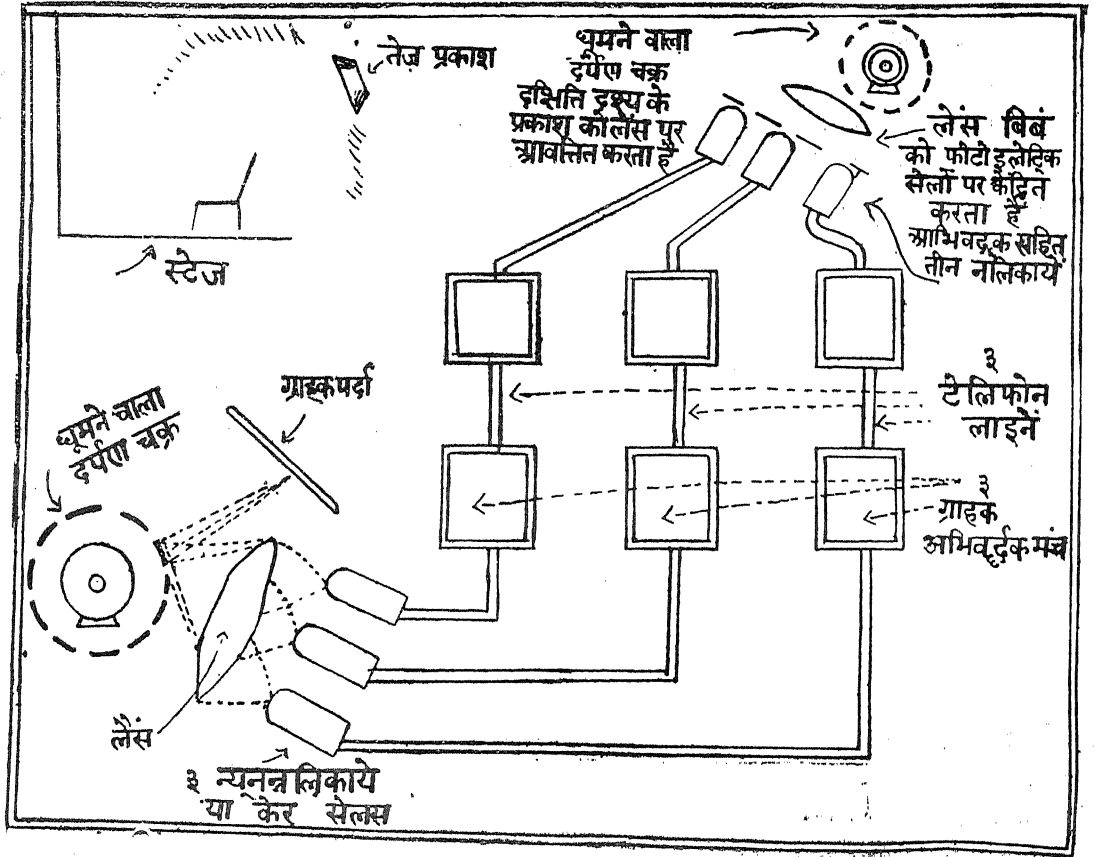
चित्र नं० ४ उस विधिको बतलाता है जिसमें स्कैनिंग डिस्कका कार्य एक घूमनेवाले दर्पण-चक्रसे लिया जाता है। दृश्यस्टेजपर एक तेज प्रकाशमें रहता है और उसका प्रतिबिम्ब ऊपरको कोनेमें दिए हुये दर्पण चक्रमें पड़ता है, पत्पश्चात् फोटो इलक्टिक सैलोंद्वारा दृश्य विद्युत् धाराओंमें परिवर्तन किया जाता है और फिर ये धाराएँ पृथक् पृथक् विस्तृत होकर ग्राहक स्थलको टेलीफोन लाइनोंद्वारा भेजी जाती हैं। ग्राहक स्थलपर यह धाराएँ फिर विस्तृत की जाती हैं और नूतन नलियोंको उत्तेजित करनेके काममें आती है। इन नूतन नलियोंसे आया हुआ प्रकाश एक द्वितीय दर्पण-चक्रपर पड़ता है और वहाँ से प्रतिबिम्बित होकर ग्राहक-पर्देपर पड़ता है। अतएव दर्शकको चित्र ग्राहक पर्देपर दिखलाई देगा।

समकालीनताके सम्बन्धमें और विशेष लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। क्योंकि इधर गत दो वर्षोंमें जो टेलीविजनके क्षेत्रमें अनुसंधान हुए हैं उनमें स्कैनिंग और कम्पोजिंग-चक्रोंको बिलकुल ही हटा दिया गया है

चक्रके स्थानपर काफी दिनोंसे होने लग गया है, लेकिन मूर्तिदर्शकका अभी हालहीमें आविष्कार किया गया है। इनके सम्बन्धमें यह बतला देना उपयुक्त होगा कि इन दोनों यंत्रोंकी सफलता ऋणाणुओंके कार्यपर निर्भर है। यह ऋणाणु

ऋणविद्युत्के छोटे-छोटे कण हैं जिनका वजन ९ × १०–२८ ग्राम, और विद्युन्मात्रा (Electric charge) ४'७७ × १०–१० और व्यासार्ध २ × १०–१३ सेंटिमीटर है। विद्युत् धाराका निर्माण इन्हीं ऋणाणुओंके प्रवाहसे होता है। फोटो इलेक्ट्रिक सैलमें भी यह ही प्रकाशद्वारा पैदा होकर विद्युत्-धारा पैदा करते हैं *। ये ऋणाणु प्रत्येक वस्तुओं में पाये जाते हैं और अगर कोई धातु गरमकी जाय तो ये ऋणाणु उससे निकलकर बाहर आने लगते हैं।

मूर्तिप्रेषक यंत्र (Kinescope) एक प्रकारका ऋण विद्युत् रेखा-संस्फुरक (Cathode ray oscillograph) है। इस यंत्रमें ऋणाणु ऋणोद को विद्युत्-धाराद्वारा गरम करके पैदा करते हैं। यह ऋणोद धातुका बना हुआ होता है जिसका ऊपरी भाग (Barium and Strontium Oxides) भार और स्त्रंश प्रोषिद्-से ढका रहता है। ऋणोदके आगे विद्युत्-स्थित-क्षेत्र (Electrostatic field) रहता है जिसको उद्वेजक क्षेत्र (Accelerating field) कहते हैं। इसकी वजहसे ऋणाणु बहुत तेज गतिसे चलने लगते हैं और फिर दो छिद्रोंमें होकर बाहर आते हैं जिससे उनका मार्ग सीधी रेखाके रूपमें होता है। ये ऋणाणु आगे चलकर एक चमक सकनेवाले पर्दे (Fluorescent Screen)
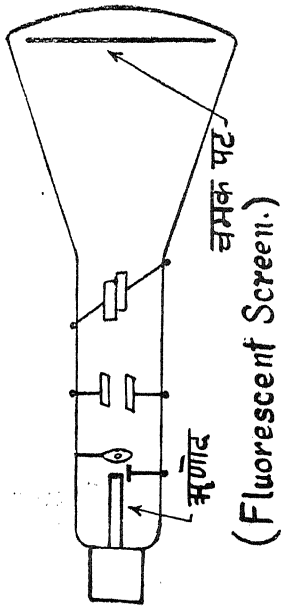
चित्र नं० ५

* देखिये 'बोलते चालते चित्र कैसे बनते हैं' "विज्ञान" नवम्बर १९३४।

नोट—चमक सकनेवाला पर्दा (Fluorescent Screen अकसर दस्तगन्धिद Zinc Blende) वस्तुकी बनी रहती है।

पर पड़ते हैं। अगर इसको अंधकारमें देखा जावे तो जहाँ तहाँ ऋणाणु टकरावेंगे, वह स्थान क्षणभरके लिए चमकने लगेंगे। ग्राहकद्वारा पकड़ी गई विद्युत् धाराओंका वोल्टेज आड़ेपट (Horizontal deflecting plate) और खड़ेपट (Vertical deflecting plate) में दिया जाता है जिसके फलस्वरूप ऋणाणुओंकी रेखा परदेपर इधरसे उधर दौड़ने लगती है और उसपर पूर्ण चित्र अंकित कर देती है। इस यंत्रका आविष्कार संवत् १९८८ में वी० के० ज्वारिकिन (V. K. Zworykin) नामके वैज्ञानिकने आर० सी० ए० विक्टर कम्पनीके गवेषणालयमें किया था।

मूर्त्तिप्रेषक यंत्रका आविष्कार भी उपर्युक्त महाशयने संवत् १९९० ई० में किया। इस यंत्रके आविष्कार करनेकी आवश्यकता इसलिये प्रतीत हुई कि प्राचीन विधिसे दृश्यको विच्छेदन करनेमें फोटो इलेक्ट्रिक सेलमें बहुत ही शक्ति-हीन विद्युत्-धारा पैदा होती है क्योंकि अगर हम यह मानलें कि टेलीविजनद्वारा शुद्ध चित्र भेजनेमें हमको ७०,००० बिन्दुओंकी आवश्यकता है तो चित्रका कोई भी भाग एक बारमें $\frac{१}{७०,००० × २०}$ सेकिंडसे अधिक समय तक अपना प्रकाश फोटो इलेक्ट्रिक सैलको नहीं भेज सकता और साधारणतया एक लेंससे पैदा किये गये चित्रका प्रकाश $\frac{१}{१०}$ ल्यूमनके बराबर होता है और अगर फोटो इलेक्ट्रिक सेलकी भावुकता (Sensitivity) ऐसी है कि वह एक ल्यूमनसे $१०^{६}$ ऐम्पिअर विद्युत्-धारा पैदा कर सकती है तो उससे पैदा की गयी विद्युत्-धाराकी शक्ति $\frac{१० × १०^{६}}{१० × ७०,०००}$ = $१'४३ × १०^{११}$ ऐम्पिअरके बराबर होगी। लेकिन (Iconoscope) मूर्त्तिप्रेषक यंत्रद्वारा पैदाकी हुई विद्युत-धारी शक्ति इससे ७०,००० गुनी अधिक शक्तिशाली होगी क्योंकि इस विधिमें चित्रका प्रत्येक भाग हर समय अपना प्रकाश फ़ोटो इलेक्ट्रिक सैलको भेजता रहता है।

मूर्त्तिप्रेषक यंत्रमें भी ऋणाणु ऋणोदको विद्युत्-धारासे गरम करके पैदा किये जाते हैं और इसमें भी (Kinescope) मूर्त्ति लेखककी तरह पथ-प्रदर्शक पट (Deflecting plates) होते हैं। इस यंत्रका खास भाग गोलाकार

होता है और उसमें एक प्लेट रहता है जिसको संकेत पट सिगनल प्लेट (Signal plate) कहते हैं। ऋणोद इस सिगनल प्लेटसे ऐसी दिशा में स्थित रहता है कि उससे पैदा की हुई ऋणाणु रेखा (Electron ray) प्लेटके (Normal) लम्बके साथ ३०° का कोण बनाती है। सिगनल प्लेटके बनानेकी कई विधियाँ हैं यह अभ्रककी एक पतली झिल्लीका बना रहता है जिसका एक तरफ़का भाग किसी भी धातुकी पतली तहसे ढका रहता है और दूसरी ओरके भागपर प्रकाश प्रभावित धातुके छोटे-छोटे कण रहते हैं। इनमेंसे प्रत्येक कण एक पृथक् फोटो इलेक्ट्रिक सैलका

केवल दृष्टिगोचर वर्णपटसे ही बल्कि पराकासनी (Ultra-violet) और परालाल (Infra-red) तरंगोंसे भी प्रभावित हो सकते हैं।

दृश्यका चित्र लेंसेज़ द्वारा इन कणोंपर बनाया जाता है और इसलिए प्रत्येक कण उसपर गिरनेवाले प्रकाशकी तीव्रताके अनुसार ऋणाणु उत्पन्न करेगा जिसके फल स्वरूप उससे बना हुआ संग्राहक का भाग धनविद्युत्-मय हो जावेगा। अब इसपर अगर ऋणाणु रेखा (Electron beam) इन कणों पर क्रमसे दौड़ाई जावे तो उसकी तीव्रता धनविद्युत्के मिलनेसे परिमित रूपसे कम होत
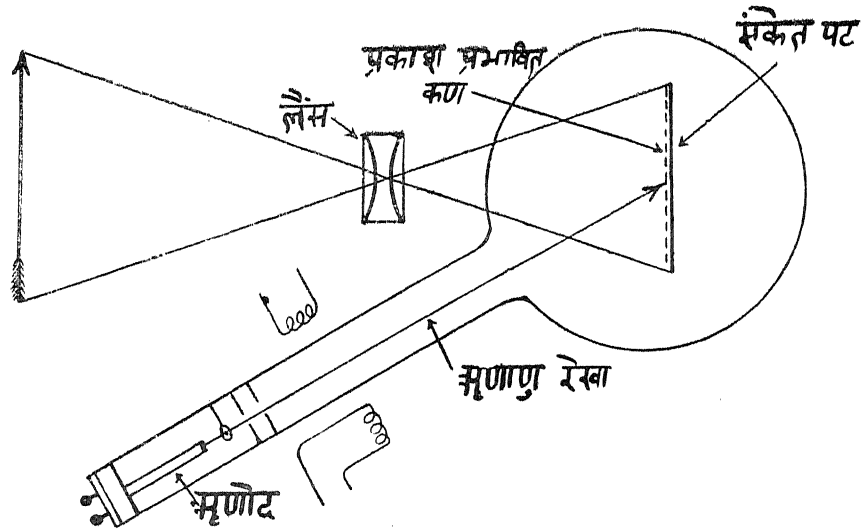
चित्र नं० ६

कार्य करता है और अभ्रककी पट्टिका व धातुकी पतली तहके संयोगसे एक (Condenser) संग्राहकका काम भी देता है। अभ्रककी पट्टिकापर प्रकाश प्रवाहित धातुके कण एकत्रित करनेकी कई विधियाँ हैं जिनमेंसे सबसे सरल बिधि यह है कि प्रकाश प्रवाहित धातुको वायुरिक्त (Vacuum) नलिकामें गरम किया जावे तो उस धातुके छोटे-छोटे कण उड़कर अभ्रककी पट्टिकापर जमा हो जावेंगे। आरंभमें तो यह कण (Alkali metals) क्षार धातुओंके बनाये जाते थे लेकिन आजकल यह कण चाँदीके होते हैं जिनको एक खास विधिद्वारा सीज़िअम नामक धातुके संयोगसे प्रकाश-प्रभावित बना देते हैं। इस प्रकारसे उत्पन्न किये हुए कण न

रहेगी और फिर यह ही परिवर्तनशील धारायें विस्तृत करनेके पश्चात् प्रेषकद्वारा वायु-मंडलमें भेज दी जावेंगी। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि प्रकाश प्रभावित कण ऋणाणु रेखाकी चौड़ाईसे बहुत ही छोटे होते हैं और एक ही बारमें बहुतसे कण उस रेखाको अपना प्रभाव दे देते हैं। (Deflecting coils) पथ-प्रदर्शक कुंडलियोंमें जो विद्युत्-धारा भेजी जाती है वह आरीके दाँतोंके रूप की होती हैं।

अगर हम चित्रके साथ-साथ आवाज़ भी सुनना चाहते हैं तो आवाज़की तरंगोंको पृथक् (Transmitter) प्रेषकद्वारा दूसरे (Wave-length) तरंग-दैर्ध्यपर भेजना

होगा और उनको पकड़नेके लिये भी पृथक् (Receiver) ग्राहककी आवश्यकता होगी जैसा कि चित्र नं० ७ में दिखाया गया है।

जैसा कि प्रारम्भमें लिखा जा चुका है प्राचीन विधिमें टेलीविजनद्वारा चित्र भेजनेके लिए दृश्यको अति तीव्र प्रकाशमें रखना आवश्यक होता था, लेकिन फोटो इलेक्ट्रिक सैलकी उन्नति होनेपर ऐसा करना अनावश्यक होगया और चित्र केवल दिनके प्रकाशकी मददसे ही भेजे जाने लगे, अतएव स्केनिंग डिस्कका व्यवहार प्रथम विधिद्वारा ही होने लगा। इतनी उन्नति होनेके पीछे वैज्ञानिकोंका ध्यान टेलीविजनद्वारा रंगीन चित्र भेजे जानेकी तरफ़ आकर्षित हुआ। पहलेकी भांति बेअर्ड महोदय ही प्रथम वैज्ञानिक थे जिन्होंने इसमें सम्वत् १९७७ के अगस्तमें सफलता पायी है।

टेलीविजनद्वारा रंगीन चित्र भेजनेके लिये हमको एक ऐसे स्केनिंग डिस्ककी आवश्यकता होती है कि जिसके छिद्रोंमें ऐसे परदे लगे हों जो पृथक् २ लाल, पीले और हरे रंगको छान सकें। बेअर्ड महोदयने ऐसी डिस्क तैय्यार की जिसमें यह विशेषता पायी जाती थी। (चित्र नं० १०)। इसमें छिद्रोंका क्रम चित्रमें दिखाया गया है।
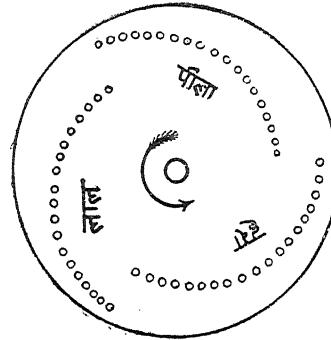
चित्र नं० १०

ग्राहक स्थल (Receiving Station) पर भी ठीक इसी प्रकार के (Composing Disc) संश्लेषक-चक्रकी आवश्यकता होती है। इन छिद्रोंमें से छने हुए रंग एक दूसरे पर पड़ते रहते हैं और चित्रमें इनके समावेशसे सर्व प्रकारके रंग आवश्यकतानुसार उत्पन्न हो जाते हैं।

केवल इतना ही नहीं, टेलीविजन द्वारा मूक चित्र (Silent Films) और बोलते चालते चित्र (Talkies) भी एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भेजे जा सकते हैं। बेअर्ड महोदयने आवाज़की भांति चित्रको भी रेकार्डस्में भरनेमें सफलता पायी है। इस आविष्कारका नाम फोनोविजन (Phonovision) रखा गया है। इसका सविस्तर वर्णन फिर कभी किया जायगा।
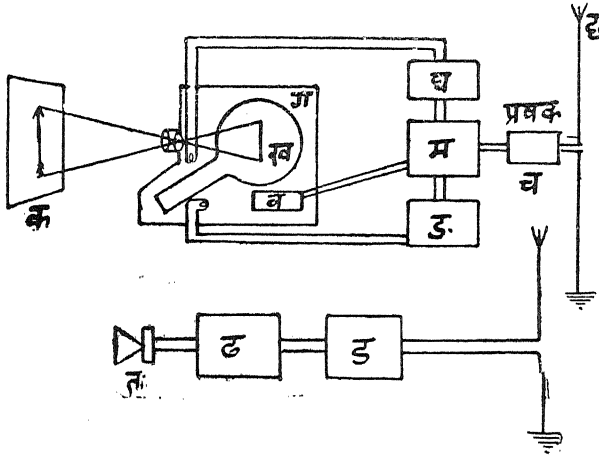
चित्र नं० ९

चित्र नं० ७

क—दृश्य, ख—आईकनोस्कोप, ग—कैमरा, घ—आडे संकेत उत्पादक, ङ—खडे संकेत उत्पादक, छ—आकाशी, झ—आडे संकेट ग्राहक, ञ—खडे संकेत ग्राहक, ट,व—विस्तारक, ठ—चित्र लेखा, ढ—ध्वनि तरंग विस्तारक, ड—ध्वनि तरंग प्रेषक, त—सूक्ष्म शब्दग्राही यंत्र, थ—ध्वनि तरंग ग्राहक द—लाउडस्पीकर, म—मोड्यूलेटर (Modulator)

प्रकृत इतिहासकाल अत्यन्त प्राचीन है

वैदिक ज्योतिर्विज्ञानकी अचूक गवाही

(लेखक—विद्याभूषण पंडित-प्रवर श्रीदीनानाथ शास्त्री चुलैट, इन्दौर)

१—इतिहास-काल-निर्णयमें आरंभिक भूल

१—सम्प्रति इतिहास-कालका निश्चय करनेके लिये ताम्रपत्र, शिलालेख, मुद्रा, ताडपत्रीपर लिखित एवं प्राचीन ग्रन्थ आदि जो साधन मिलते हैं, वही हैं जो अधिकसे अधिक एक हजारसे दो हजार वर्षों तक टिक सकते हैं। ऐसी दशामें जब कि पुराने इतिहासको सिलसिलेवार बतलानेवाले साधन ही उपलब्ध नहीं हैं तब हम पुराने इतिहासको कैसे जान सकते हैं। इसी कारण संसारका आधुनिक मानवीय इतिहास तीन हजार बरसोंसे अधिक पुराना नहीं मिलता।

२—इतिहासमें बौद्धकालका प्रमाण विशेषतया माननीय समझा जाता है। किन्तु हन्टरकृत भारतेतिहास एवं बौद्धोंके सम्बन्धके अन्य इतिहास आदिको देखते हुए यह कहीं भी सिद्ध नहीं हो सका है कि ईसाके पूर्व पाँचवीं शताब्दिमें बुद्धदेव हुए हैं। फिर भी सभी इतिहासज्ञ उसे ईसा पूर्व पाँच सौ वर्ष मानते हैं और भारतीय इतिहासमें उसका मुख्यतया उपयोग करते हैं। इसी तरहके कारणोंसे कहना पड़ता है कि वर्तमानमें इतिहासकालकी मर्यादा जो ईसाके पूर्व एक हजार वर्षकी मानी जाती है, वह कल्पनामात्र है।

३—हम जोरदार शब्दोंमें कह सकते हैं कि बिना ज्यौतिषके आधारके वर्तमानकाल भी पूर्णतया सही नहीं ज्ञात हो सकता? तब प्राचीन इतिहासकालको ज्यौतिषके बिना अन्य साधनोंद्वारा बतलाना सर्वथा असंगत है।

२—काल-निर्णयमें ज्यौतिषकी अनिवार्य्यता

४—उदाहरणके लिये जैसे कोई प्रश्न करे कि इस समय घड़ीमें कितना बजा है, तब उत्तर साधारणतया यही दिया जाता है कि ६॥ बजे हैं। किन्तु, पुनः जब शंका की जाय कि इसका क्या प्रमाण है कि घड़ी ठीक समय बतला रही है, तो यही अंतिम उत्तर मिलता है कि अमुक वेधशाला (अब्जरवेटरी)के निश्चित ज्योतिषियोंके अनुकुल इस घड़ीको मिला रखा है। अथवा यह सूर्योदयके समय अथवा मध्याह्नकालमें प्रत्यक्षसे जाँची हुई है। इस प्रकार ज्यौतिषका प्रमाण प्रत्यक्ष है। इसलिये अनुमान आदि प्रमाणोंकी अपेक्षा सभी विद्वानोंने प्रत्यक्ष प्रमाणको ही बलवान् और सच्चा माना है। इस प्रकार वर्तमानकालका भी निश्चय बिना ज्योतिषके नहीं हो सकता तथा नाविक पञ्चांगसे एवं ध्रुवोन्नति आदि ज्योतिष आधारसे पृथ्वीके रेखांश, अक्षांश आदि स्थलोंका निश्चय किया जाता है। इस तरह निःसन्देह कहा जा सकता है कि भूतकालका और

टेलीविज़न अभी पूर्णरूपसे व्यवहारमें आने नहीं लगा है लेकिन पाश्चात्य देशोंमें अब भी इससे काफी लाभ उठाया जा रहा है और भविष्यमें इससे बहुत आशायें रखी जाती हैं। भारतवर्षमें अभी तक इसका आगमन नहीं हुआ है और बहुतसे मनुष्य तो इस आविष्कारको असम्भव ही माने बैठे हैं। लेकिन समय बहुत जल्द आ रहा है जब कि टेलीविजन भी रेडियो और टाकीजकी भांति एक साधारण वस्तु बन जावेगी। सच है विज्ञानके हाथमें कोई वस्तु अपनी नवीनता अधिक काल तक कायम नहीं रख सकती। धन्य है उन वैज्ञानिकोंको जिन्होंने वर्षोंके निरन्तर परिश्रम के पीछे एक ऐसी अनुपम वस्तुका आविष्कार किया जो न केवल एक उच्च कोटिकी मनोरंजनकी ही सामग्री है बल्कि एक अति लाभदायक वस्तु सिद्ध हो चुकी है।

तदनुसार उस समयके देशका ठीक-ठीक क्रमवार वास्तविक निश्चय बिना ज्योतिषके सहारे सर्वथा होना असंभव है।

५—वर्तमानकालमें ग्रहताराओंकी गति-स्थिति आदि परिमाण अत्यन्त ही सूक्ष्म गणनासे निश्चित हो गये हैं। और कालावधि गणित साध्य बातें जैसे जैसे उपलब्ध होती जाती हैं उनके आधारपर ज्योतिषके कई सूक्ष्म परिमाण निश्चित रहे हैं। ऐसी अनुकूल स्थितिमें कितने भी प्राचीन-कालकी क्यों न हो, तत्कालमें प्रत्यक्ष देखी हुई एवं ज्योतिष-से सम्बन्ध रखनेवाली बातें हमें उपलब्ध होनी चाहिये कि ज्योतिषियोंके गणितद्वारा सरलतापूर्वक उनका कालानुक्रम और स्थल ठीक-ठीक मिल जाय। इसीलिये इतिहासके अन्यान्य साधनोंकी अपेक्षा खगोलीय घटनाओंके द्वारा निश्चित किया हुआ काल और देश एवं इतिहास सत्य, अतएव विश्वासका पात्र हो सकता है।

६—अभी तक इतिहासके देश और कालका ज्ञान प्राप्त करनेके जो साधन उपयोगमें लाये गये हैं, उनमेंसे यद्यपि ज्योतिष भी एक साधन है जो उपयोगमें लाया जाता है। किन्तु वह पर्याप्त नहीं है और न उसको उचित महत्व दिया गया है।

७—इसी कारण प्राचीन इतिहासके शोधमें आज हमें वेद पुराणादिमें हजारों ऋषियोंके कहे हुए लाखों प्रमाण उपलब्ध होते हुए भी हम जलमें मीनपियासीकी तरह यह निराशा-जनक वाक्य कहते हैं कि हम क्या करें, प्राचीन इतिहासके द्योतक साधन आज हमें उपलब्ध नहीं हैं।

८—वस्तुतः वेद, पुराण एवं संसारके प्रमुख धार्मिक ग्रन्थोंमें अत्यन्त प्राचीन-कालिक कई बातें कही गयी हैं। अलंकारयुक्त होते हुए भी उनमें अधिकांश ज्योतिःशास्त्र-से सम्बन्ध रखती हैं। लेकिन आश्चर्य है कि आज उनको धार्मिक कथामात्र समझकर उनकी उपेक्षा की जाती है।

३—प्राचीन-काल-निर्णयमें वेदोंसे प्रमाण लीजिये

९—इस बातके समझनेवाले आज दुर्लभ हैं कि वेदोंमें जो तत्कालीन ऐतिहासिक बातें देवताओंके प्रार्थनाके रूपमें उपलब्ध हैं, वह सब वस्तुतः ज्योतिर्गोलोंके सम्बन्धकी हैं। परन्तु वास्तवमें बात ऐसी ही है कि वेद ऐतिहासिक प्रमाणोंसे ओत-प्रोत हैं, एवं साहित्य, कला और विज्ञानके दर्शक हैं। इसीका अनुकरण एवं समर्थन पुराणकारोंने बड़ी गवेषणाके साथ किया है और उनमें वहीं बातें कथानक आदिके द्वारा कही गयी हैं।

१०—बड़े सौभाग्यकी बात है कि इतिहासज्ञ विद्वानोंकी दृष्टि अब ज्योतिषके सिद्धान्तों और काल-परिमाणोंके उपयोगकी ओर पड़ने लगी है किन्तु उसमें जिन प्रमाणोंको लेकर जो काल बताया गया है, वह अभी तक अपूर्ण ही है। इस विषयको स्पष्ट करके दिखानेके लिये यहाँ एक नये साधन—'खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति' द्वारा शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थका काल बताया जाता है। और इसमें उन्हीं प्रमाणों का उपयोग किया है कि जिनके आधारपर आधुनिक विद्वान् वेदोंका काल ईसाके पूर्व ४००० वर्षोंके अन्दरका, और शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थोंका काल तो उसके भी अन्दरका एवं भारतके इतिहासको अर्वाचीन बता रहे हैं। उनमेंसे भी मुख्य प्रमाण कृत्तिका संपातका है, जो उदाहरणकी भाँति हम यहाँ देते हैं।

४. शतपथ ब्राह्मणके कालके सम्बन्धमें व्यापक भ्रम

"एता (कृत्तिकाः) ह वै प्राच्यैदिशो नच्यवन्ते सर्वाणि हवा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यैदिशश्च्यवन्ते तत्प्राच्या मे वास्यैतद्दिश्यादितौ भवतः।"

अर्थः—"यह प्रत्यक्षतासे निश्चित है कि 'कृतिका' पूर्व दिशासे ढलती नहीं है और प्रत्यक्षतासे यह भी निश्चित है कि अन्य सब २७ नक्षत्र जिस पूर्व दिशासे ढलते हैं उसी प्राची (दिकसूत्र = सममंडल) दिशापर कृत्तिका और उससे प्राची दिशापर अग्नितारा दोनों एक साथ उपस्थित होते हैं।

१२ ज्योतिर्विद केतकरने नक्षत्र विज्ञानमें [मराठी, पृष्ट ५६—५७ ऊपर लिखे प्रमाण-वाक्यमेंसे "तत्प्राच्याम् एवास्यै तद्दिशाहितौ भवतः" केवल इतना अंश उद्धृत किया है। फिर उसके उपयोगके सम्बन्धमें जो कहा है उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है "इस प्रमाणसे, शतपथ ब्राह्मणकालमें कृत्तिका ठीक ठीक पूर्वमें उदय होती थी, यह प्रत्यक्ष

देखी बात है। यानी 'अन्य नक्षत्रोंके तुल्य वह पूर्व बिन्दुको छोड़कर दूसरी तरफ कभी उदय नहीं होती थी।'' ऐसा शतपथ ब्राह्मणके उद्धृत वाक्यमें स्पष्ट लिखा है। और जो तारे विषुवत् वृत्तपर रहते हैं वह हर एक गांवके ठीक पूर्वमें उदय होते हैं। इसलिये उस समय कृतिका विषुववृत्तपर थी। इससे संपातकी स्थिति ४६ अंश पर और गणितसे उसका काल शक पूर्व ३१०० वर्षका आता है।''

१३ ज्योतिर्विद दीक्षितने भी भारतीय ज्योतिष शास्त्रमें (मराठी पृ०१२८–२९) ऐसा ही किया है। उन्होंने भी सम्पूर्ण प्रमाण वाक्य, किंबा उसका अर्थ नहीं लिखा, और कृतिकाका पूर्वमें उदय होना मानकर उसका काल शकपूर्व ३००० वर्ष माना है। प्रो. बेन्टलीने ई० पू० २३२० वर्ष, प्रो० बायोने ई० पू० २३५७ वर्ष, प्रो० बेबरने ई० पू० २७८० वर्ष, प्रो० थीबोने १७८०–८२० वर्ष, लो० टिलकने ओरायनमें (मराठी पृ० २५) ई० पू० २३५० वर्ष, प्रो० मैक्समूलरने ई० पू० १००० से ८०० वर्ष, डा० हौने २००० से १५०० वर्ष और यही काल प्रो० गोडबोलेने भी वेदोंके सन्बन्धमें बताया है। ज्यो० थत्तेने श० पू० २५०० वर्ष, रा० ब० वैद्यने भारतकाल मीमांसामें श० पू० ३००० वर्ष, इसीके करीबमें श्रीदत्तरीने शतपथका एवं भारतका काल बताया है। तथा इसी अनुसार अन्यान्य सभी इतिहासज्ञ विद्वानोंने अपने अपने ग्रंथ या लेखोंमें इसी कालको मानकर इतिहास कालकी मर्यादा अर्वाचीन कालकी ठहरायी है।

५. उस भ्रमपर विचार

१४–किन्तु सत्यके अनुरोधसे नम्रतापूर्वक मैं अपना मत प्रगट करता हूँ कि वस्तुतः शतपथके प्रमाणवाक्योंमें कहीं भी कृतिका (नक्षत्र) पूर्व दिशामें उदय नहीं कहा है। तथा कृतिकाके विषुववृत्तपर रहते ग्रन्थोक्त स्थिति भी नहीं आती। फिर उसके आधारपर बताया हुआ काल सत्य कैसे हो सकता है? और जो प्रमाण वाक्यका अर्थ है सो ऊपर बता दिया है। तथा तारेके च्युत अच्युत होनेका अर्थ स्पष्ट होनेके लिये, एवं शतपथका स्थूल अक्षांश ३५ के प्रदेशमें सर्वमान्य होनेसे * तथा आगेके प्रमाण वाक्योंसे ही शतपथका स्थल अक्षांश ३५ का निश्चित होनेसे इस स्थलमें तारोंके दैनंदिन भ्रमण होनेका दृश्य एक सारिणी द्वारा आगे बतलाया गया है। और श्रीकेतकरप्रभृति विद्वानोंके कथनकी प्रमाण वाक्योंसे कैसी क्या संगति मिलती है सो बतानेके लिये उनके बनाये हुए कालमें तारोंकी क्रांति आदि परिमाणोंका कोष्टक तथा न्यास आदि बनाकर दे दिये हैं।

* शतपथ ब्रा० (१.६.३.६, १.३.३.१०) में:—''हिमालयके निकटमें भारतके उत्तर समुद्रका अस्तित्त्व बताया है। तथा ज्वालामुखीके प्रकोप एवं धरणी कंपसे कुरुक्षेत्रके उत्तरमें सरस्वती नदीका लोप होनेका और कोसल, विदेह एवं पांचाल देशोंका उल्लेख है। इस आधारसे तथा अन्य विद्वानोंके लेखोंके समर्थनसे यह सर्वसंमत है कि शतपथके स्थलके अक्षांश ३५ हैं जो कि श्रीनगर के अक्षांशके बरावर हैं। भारतीय ज्योतिःशास्त्रमें भी वेदांग ज्योतिषके आधारपर यही अक्षांश लिखे हैं।

कोष्ठक नं० १
(कृत्तिकाकी विषुववृत्त परिस्थिति)

अयनांश + ४७ अंश, रविपरम क्रांति २४ अंश द्वारा तारोंके क्रांति आदि का परिमाण						
तारोंके याम और पर्याय शब्द	दीप्ति वर्ग	नाक्षत्र भोग	कदंबमुख शर	सायन भोग	विपुवांश	क्रांति
विषुववृत्तीय नक्षत्र पुंज	प्रति					
कृत्तिका (ईटा टारी)	२·९६	३६ ९	+ ४ २	३४९ ९	३४८ २७	– ० ४२
रोहिणी शकटाग्रिम (टाऊटारी)	१·०६	४८ ४९	– ० ४३	१ ४९	१ ५७	+ ० ५
भरणी (४१ एरैटिस) केतकरोक्त	४·००	२४ २२	+ १० २७	३३७ २२	३१५ १२	+ ० ४१

अनुराधा (डेल्टा स्कार्पि)	२·५४	२१८ ४४	− १ ५७	१७१ ४४	१७१ ४५	− १ ३२
प्रश्वा (दक्षिण पुनर्वसु)	०·४८	९२ ०	− १५ ५१	४५ ०	४६ ३९	− १ ३३
हस्त (बीटा कार्व्हीं)	२·८४	७३६	− १८ २	१२६ ३२	१२४ २९	− १ ३६
खस्वस्तिकमें आनेवाले तारे	...	...	...	...	...	...
पूर्वाफाल्गुनी (थीटालियोनिस)	३·४१	१२९ ३४	+ ९ ४२	२ २४	९३ ३	+ ३३ ४१
उत्तराफाल्गुनी (डेनीबोलगा)	२·२३	१४७ ४७	+ १२ १७	६० ४७	१०३ १	+ ३५ ४७
खस्वस्तिकसे उत्तरीय तारे	...	...	...	१० ...	...	...
स्वाती (आर्कट्यूरस)	०·२४	१८० २४	+ ३० ४९	३ २४	१४८ २८	+ ४६ १२
वसिष्ठ सप्तर्षि (थीटाउरसामें जोरिस)	२·४०	१४१ ५१	+ ५६ २३	१३४ ५१	१७५ ४८	+ ८० ६
मरीचि सप्तर्षि (ईटा उरसामें जोरिस)	१·९१	१५३ ५	+ ५४ २३	९६ ५	१३१ ४८	+ ८३ ९
सम-मंडलसे च्युत होनेवाली	...	...	...	१० ...	...	...
अग्नि (नाथ) नामकतारा	१·७८	५८ ४४	+ ५ २३	११ ४४	८ ३४	+ ९ ४१

१५—पूर्वोक्त साधनों द्वारा मैं शतपथके कालका निश्चय करूँ, इससे पहले ऊपरके प्रस्तर १२ में जो काल बताया गया है, उस सम्बन्धमें पाठकों की दृष्टि कोष्टक नंबर १की ओर आकृष्ट करनेकी प्रार्थना करता हूँ। विज्ञ पाठक कोष्ठक नं० १ से देख सकते हैं कि जिस समयमें कृतिका विषुववृत्तपर थी उस कालमें (१) रोहिणी पुंजकी एक तारा, (२) भरणी, (३) अनुराधा, (४) दक्षिण पुनर्वसु (प्रश्वा), और (५) हस्त नक्षत्र इन पाँचोंकी भी शून्यांश के निकटमें कृत्तिकाके तुल्य क्रांति थी। तब एक कृत्तिका ही विषुववृत्तपर न थी, अन्य ५ नक्षत्र भी विषुववृत्तपर थे। इससे कृत्तिकाका जैसा पूर्वमें उदय होता था, वैसा ही इन पाँच नक्षत्रोंका भी होता था। किन्तु प्रमाण वाक्यमें तो किसी और नक्षत्रकी बात नहीं कही गयी। केवल एक कृत्तिकाकी ही चर्चा है। अतः यहाँ प्रमाण वाक्यकी सुसंगति नहीं लगती।

१६—उदयके समयमें पूर्वक्षितिजपर कोई तारा दीख नहीं सकता। जो तारे दिखाई भी देते हैं सो अपनी दीप्तिके अनुसार ५। १० अंश ऊपर आनेपर ही हमें वह दृष्टिगोचर होने लगते हैं। उनमें उक्त ५ नक्षत्रोंके दीप्तिवर्गकी प्रति, प्रश्वा ०।४८, रोहिणीश० १।०६, हस्त २।८४, अनुराधा २।५४, कृत्तिका २।९६, भरणी ४।००, एवं इनके लोप-दर्शनके कलांशोंमें कृत्तिकाके कलांश १६ लिखे हैं। इनको देखते जैसे कृत्तिका उदय होनेके कुछ कालके बादमें दक्षिण दिगंशोंपर उस कालमें दृष्टिगोचर होती थी, वैसे ही उक्त पाँच नक्षत्र भी दक्षिण दिगंशोंपर दृष्टिगोचर होते थे। उसमें भी उनके प्रकाशके बलपर कृत्तिकाका नंबर ५ आता है तब दिखाई देनेके समय जितने पूर्व दिक्सूत्र (सममंडल) के निकटमें वह चार तारे रहते थे उतने कृत्तिका और भरणी नक्षत्र नहीं रहते थे। इससे कृत्तिकाका न तो पूर्व क्षितिज-पर उदय दीख सकता है, न उसकी विषुववृत्तपर स्थिति

न्यास १

शतपथके (अक्षांश ३५ उ० के) स्थलमें ठीक पूर्व दिशामें दिखाई देनेवाले तारोंकी उत्तर क्रांति				
उन्नत कालांश	उदय होनेके बाद-का समय		सम मंडलमें आने-वाली उत्तर क्रांति	
अंश	घंटा	मिनिट	अंश	कला
०	०	०	०	०
३	०	१२	२	६
६	०	२४	४	११
९	०	३६	६	१५
१२	०	४८	८	१७
१५	१	००	१०	१८

ही निश्चित होती है। इतना ही नहीं। इस प्रश्नके द्वारा विपुववृत्तपर शून्य क्रांतिका अर्थ—'कृत्तिकाकी विकला तुल्य शून्य क्रान्तिका होना और इससे अन्य नक्षत्रोंका आ-विकला साम्य होना या इन नक्षत्रोंके पुंजकी योगताराका भिन्न होना, इत्यादि सूक्ष्म परिमाणोंकी कोई दलील यहाँ उपस्थित ही नहीं हो सकती। क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाई देनेमें जहाँ कई अंशोंका अंतर भी (ऊपर लिखे न्यास १ के अनुसार) ठीक तौरसे दृष्टिगोचर नहीं होता। वहाँ एक दो अंशोंके स्वल्पान्तरकी कथा ही क्या है। तथा सूक्ष्मगणितसे संपातकी गति देखी जाय तो ७ दिनमें एक विकला हटती है और विपुववृत्तपर २″।५″ हटनेके १७।१८ दिनोंमें ही एक विकला अंतर पड़ता है, तब क्या बिना आगे गणित किये सिर्फ १७–१८ दिनकी नेत्रगोचर नहीं होनेवाली सूक्ष्म घटनाको उस कालके ऋषि अंकित करनेकी कल्पना भी नहीं कर सकते ? इसलिये जब कि यह घटना अल्पकालिक और अप्रत्यक्ष है तब इसीके आधारपर प्रस्तर १२–१३ में बताया हुआ काल भी अयुक्त और असंगत निश्चित हो जाता है। तथा उदय होनेके कितने कालके बादका उल्लेख जब कि शतपथमें नहीं है, तब ऐसी बातें, जैसे उत्तर क्रान्ति (२°।६′) की कृत्तिका कालांश ३पर दीखती थी, स्वयं अनिश्चित, अतएव उक्त कालसे भिन्न कालीन होनेसे, व्यर्थ हो जाती हैं।

१७—शतपथके प्रस्तुत प्रमाण-वाक्यमें ही प्राचीदिशाका स्पष्टीकरण कर दिया है कि "जिस पूर्व दिशापरसे सब नक्षत्र च्युत होते हुए दिखाई देते हैं, अर्थात् उनके दक्षिण दिगंशोंमें परिगणित होते हैं—**'तत् प्राच्याम्'—उस प्राचीदिशामें"** इस (प्रस्तर ११ देखो) कथनसे प्राचीदिशाका अर्थ पूर्वक्षितिज बिन्दु ही नहीं किन्तु वहाँसे लेकर खस्वस्तिक पर्य्यन्त पूर्वदिशाका स्वरूप बता दिया है और वर्तमानमें भी उत्तर दक्षिण दिगंश इसी पूर्व दिशासे गिने जाते हैं। एवं इसे पूर्व दिक्सूत्र–सममंडल कहते हैं। इस विषयका सब दृश्य एक सारिणी द्वारा बता दिया गया है और प्रस्तुत प्रमाण वाक्यमें कहा गया है कि—**"एवास्यैतद्दिशि आदितो भवतः।"** उसी पूर्व दिशामें कृत्तिका, और आगे उसी रेखा रूप पूर्व दिशामें अग्नि तारा ये दोनों उपस्थित होते हैं।" किन्तु इस कथनकी संगति जब हम इस कालमें देखते हैं तो—'कृत्तिका अग्निके भोगके

न्यास २

कृत्तिकाके उन्नतकालांश २२°।३५′ पर अग्नि और कृत्तिकाकी जोड़ी का दृश्य

दोनों तारोंके नाम	क्रांति		उन्नतांश		दिगंश दिशामें	
	°	′	°	′	°	′
कृत्तिका	०	०	१८	२०	दक्षिण	१३।२५
अग्नि (तारा)	+९	४१	०	०	उत्तर	११।५१

सापेक्षांतर (२२°।३५′) को अग्निके उदय होनेके समयमें, कृत्तिकोदयसे कालांश मान लेनेपर, कृत्तिकाके उदय होनेके १॥ घंटेके बाद अग्नितारेका उदय पाते हैं। जब कि एक ओर अग्नितारा उत्तरमें १२ अंश और दूसरी ओर कृत्तिका दक्षिणमें १३ अंश रहते हैं (न्यास २ देखो) तो एक ही कालमें दोनोंका सममंडलमें आना तो दूर रहा, एक दिशामें भी आना संभव नहीं है। अग्निके उदयके समय इनमें जब (२५°।१६′) का अंतर हो जाता है तब इनका **'आदितो भवतः'** ग्रन्थोक्त यज्ञ-संयोग (पति-पत्नीत्व) कैसे हो सकता है ?

१८—यह सब बातें कृत्तिकामें घटित न होकर पूर्वा फाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीमें घटित होती हैं। क्योंकि इस समय इनकी उत्तरक्रांति +३४° +३५° अंशकी और अक्षांश लगभग ३५ की होनेसे यह दो नक्षत्र पूर्वदिशासे दक्षिणकी ओर च्यवित न होते हुए पूर्वदिशामें उपस्थितमात्र होते थे। तथा स्वाती नक्षत्र तो न पूर्वदिशामें आता था न च्यवित होता था। मध्याह्नमें ख–स्वस्तिकसे ऊपर ११०२ अंशतक आकर फिर ऊपरको ही (उत्तरमें) बढ़ जाता था। इस प्रकार यह तीन नक्षत्र अच्युत रहते हुए बाकी कृत्तिकाके साथमें अन्य पाँच नक्षत्र उदय होनेके साथ साथ ही दक्षिणके तरफ च्युत हो जाते थे। इस तरह यहाँ अति व्याप्तिके साथ साथ कृत्तिकाके संबंधके कथनमें असंभव दोष प्रगट हो जाता है।

१९—यदि हम इस विषयके प्रमाणोंकी पूर्णतापर विचार करते हैं तो देखते हैं कि शतपथ ब्रा० (२।१।२) के पाँच प्रमाण वाक्योंमेंसे केवल एक वाक्यको श्री केतकरजीने

व्याधि-संकरता

(ले०—स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य)

माधव निदानके आरम्भिक १६ से २२ श्लोकोंमें यह दिखाया गया है कि व्याधियाँ केवल अनेक प्रकारके अहित सेवनसे ही नहीं होतीं वरन् इसके और भी कारण हैं। उनमेंसे एक कारण यह भी दिखलाया है कि कुछ व्याधियाँ व्याधियोंसे भी उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे, ज्वर से रक्त पित्त, प्रतिश्यायसे कास, काससे क्षय आदि। इसी प्रसंगमें आगे चलकर लिखा है कि कुछ व्याधियाँ अन्य व्याधियोंको उत्पन्न कर आप शान्त हो जाती हैं, कुछ शान्त नहीं होतीं। आप भी बनी रहती हैं और जिन व्याधियोंको वह उत्पन्न करती हैं वह भी बनी रहती हैं। इस प्रकार मनुष्योंमें व्याधि संकरता देखी जाती है।

शास्त्रकार और टीकाकार यहाँपर व्याधि-संकरतासे यह अर्थ लेते हैं कि प्रथम प्रतिश्याय हुआ और उस प्रतिश्यायकी निवृत्ति नहीं हुई, प्रतिश्याय बना है उसके मध्य खांसी उत्पन्न हो गयी। कुछ काल पश्चात् प्रतिश्याय कम हुआ कास बढ़ने लगा, उससे क्षयका प्रादुर्भाव हो गया। इस

उद्धृत किया है। उसके संबंधके ४-५ प्रश्न ऊपर हल किये गये हैं। बाकी वाक्योंको हम आगे बतावेंगे। अभी उनमेंसे मुख्य मुख्य बातोंकी यहाँ कैसी क्या गलती है, सो बताते हैं। (१) वहाँ "कृत्तिकाको **'तद्देसलोम'** शिखा-वाला = ख स्वस्तिकमें आनेवाला बताया है।" इसलिये इसकी स्थिति विषुववृत्तपर न होते हुए वहाँसे ९० अंशपर निश्चित होती है, (२) 'यह कृत्तिका पहले सप्तर्षियोंकी पत्नी हो गयी थी किंतु अब इनके जोड़ेमें स्वल्पान्तर दृष्टिगोचर होने लग गया है'—**'ऋक्षाणां × पत्नआसुः × मिथुनेन-व्याध्यंत'** ऐसा तथा (३) 'अग्निके साथ कृत्तिकाकी जोड़ी कायम की थी सो अब बन गयी है—**'अग्निर्वा एतासां मिथुनम्'** ऐसा कहा है। सो यहाँ वसिष्ठ और मरीचि नामक सप्तर्षियोंकी क्रांति (+८०°+८३°) को एवं अग्निके साथके दिगंशोंके अंतरको देखते हुए किसीका भी मेल मिलता नहीं है।

२०—यदि हम ब्राह्मण ग्रंथोंके कालके संबंधमें लिखे अन्य प्रमाणोंको देखते हैं तो शतपथसे "**संवत्सरः × प्रतिष्ठोस्य वसन्त ऋतुः।**" (१।४।२।३१), "**संवत्सरस्य प्रथमारात्रिर्यत्फल्गुनी पौर्णमासी।**" (६।२।१।१८) वसंतऋतुके आरंभके साथ संवत्सरारंभके यज्ञ फाल्गुन मासमें किये जानेके उल्लेख मिलते हैं। और शतपथ नामसे ही शतभिषक् संपातके समयका यह ग्रंथ प्रसिद्ध है, यह स्पष्ट हो जाता है। तथा इसके समकालीन तांड्य ब्राह्मण (५।९।१।१४), गोपथ ब्राह्मण एवं तैत्तिरीय ब्राह्मणमें चैत्र फाल्गुन (अष्टका) आदिमें संवत्सरका आरंभ बतलाते हुए **यज्ञं नः पांतुवसवः × श्रविष्ठाः × संवत्सरीणम् (तै० ब्रा० ३।१।२।६)** धनिष्ठानक्षत्रस्थित सूर्यपर संवत्सरका आरंभ, एवं (३।१।४।१ में) कृत्तिकाके "अभ्रयन्ती, मेघयन्ती, वर्षयन्ती" आदि नाम वर्षाऋतुके आरंभ दर्शक कहे हैं। तथा (१।५।२।७ में) "कृत्तिकादि देवनक्षत्रोंमें दक्षिणाभिमुख एवं अनुराधादि यम नक्षत्रोंमें उत्तराभिमुख सूर्यका गमन होता है" इस तरह सायन कर्क मकर संक्रमणको कृत्तिकाऽनुराधापर बतलाया है। इसी प्रकार (३।१।४।५ में) "पुनर्वसुरविनक्षत्रपर पृथ्वी ओषधि वनस्पतियोंसे हरी भरी हो जाती है" इस तरह वर्षाऋतुके मध्यके प्राकृतिक लक्षण पुनर्वसुमें बताये हैं। इस तरहके अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकेतकर प्रभृति विद्वानोंके कथनानुसार कृत्तिका या रोहिणी नक्षत्रपर सम्पातकी स्थिति नहीं थी बल्कि धनिष्ठा या शतभिषक् नक्षत्रपर जब संपातकी स्थिति थी तब ब्राह्मण ग्रंथोंके कालकी उत्तर मर्यादा थी। क्योंकि इन्हीं ग्रंथोंमें वैशाख, चैत्र, फाल्गुन एवं माघकृष्ण (फाल्गुन बदी) में संवत्सरके मुखरूप यज्ञोंका आरंभकाल वैकल्पिक रीतिसे कहा गया है।

[आगामी अंकमें समाप्य]

प्रकार एक व्याधिसे दूसरी व्याधि उत्पन्न होकर उनका परस्पर एक शरीरमें मेल हो गया, इसका नाम व्याधि-संकरता है।

मेरे विचारमें इस प्रकार व्याधिसे व्याधिके उत्पन्न होनेमें या एक व्याधिके बने रहनेपर तत्सम्बन्धी अन्य व्याधिका प्रादुर्भाव व्याधि-संकरता नहीं है। संकरका अर्थ है मिलना। जैसे पानीमें खाँडका मिलना, दूधका मिलना। पीतलमें यशद ताम्रका मिला होना। संकरतामें होता क्या है? यही न कि दो वस्तुएँ आपसमें ऐसी मिलें कि उनका पहिचानना कठिन हो? दो वस्तुओंका परस्पर मिल जाना संकरता है प्रतिश्यायसे कास उत्पन्न हुआ, काससे क्षय। यहाँ प्रतिश्याय अपने लक्षणोंसे भिन्न व्यक्त होता है, कास भिन्न और क्षय भिन्न। क्योंकि सबके लक्षण भिन्न हैं। कई वैद्य कहेंगे कि एक शरीरमें एक साथ यह तीनों एक समयमें विद्यमान हैं, इसलिये इनमें संकरता तो सिद्ध हो गयी। यह संकरताका अर्थ सही नहीं है।

प्रथम बात तो यह है कि स्वतन्त्र और परतन्त्र रूपसे व्याधि दो प्रकारकी मानी गयी है। यहाँ कास कोई स्वतन्त्र व्याधि नहीं प्रत्युत अनेक व्याधियोंका लक्षणमात्र है। कास क्षयमें भी होता है, अन्य ज्वरोंमें भी होता है, श्वासमें भी होता है। किसी व्याधिका लक्षण व्याधि नहीं बनता, वह तो किसी व्याधिसे हुई विकृतिका चिह्न मात्र ही रहेगा। इसीलिये इनमें संकरता क्या? और उस संकरताका अर्थ क्या? दो क्या दस व्याधियाँ भी एक साथ शरीरमें हों और वह सब अपने अपने लक्षणोंसे अभिव्यक्त होती रहें तो उन्हें कभी सकर व्याधि नहीं कहा जा सकता। संकर व्याधि वही कही जा सकती हैं जो परस्पर अनेक लक्षणोंमें मिलती हों। जिनका साधारणतः पहिचानना कठिन हो। बड़े-बड़े चिकित्सकोंकी चतुराई जिनको विभिन्न करनेमें या बतानेमें खर्च हो उनको संकर व्याधि कहा जा सकता है। यहाँ हम वैद्योंके लाभार्थ इसकी कुछ चर्चा करेंगे।

ज्वरोंमें संकरता

अनेक वैद्योंको किसी ज्वर-रोगीकी चिकित्सा करते करते कभी कभी यह देखनेमें आया होगा कि एक ज्वर रोगीमें जो लक्षण या चिन्ह कुछ दिन तक ठीक बने रहते हैं पश्चात् उसी ज्वरावस्थामें एकाएक नये उपद्रव (लक्षण) उठ खड़े होते हैं, ज्वर बढ़ जाता है। जिसको देखकर प्रायः वैद्योंकी यह धारणा होती है कि रोगीने कोई कुपथ्य किया है तभी तो ये उपद्रव उत्पन्न हुए या बढ़े। सब स्थानोंमें यह बात नहीं होती समस्त वैद्य जानते हैं कि आश्विन, कार्तिकके मासोंमें विषमज्वरका प्रकोप होता है। इन दिनों जब ज्वर फैलने लगता है, वह ज्वर यदि विशेष कँपकँपी देकर चढ़े, ज्वर होनेके पश्चात् सिरमें, कमरमें दर्द हो, या सर्वांगमें पीड़ा हों, तृषा अधिक लगे, पित्तको वमन हो, ज्वर पसीना देकर उतरनेवाला हो, तो निश्चय किया जाता है कि यह विषय ज्वर है। इस विषय ज्वरके भेद ऐसे भी हैं जिनमें लगातार ज्वर बना रहता है। कभी-कभी किसी-किसी रोगी में देखा जाता है कि इसी ज्वरकालमें कास हो जाता, तथा ज्वर बढ़ जाता है। इस ज्वरके बढ़ने-घटनेके समय भी देखे जाते हैं। इस खाँसीके साथ-साथ कुछ अन्य उपद्रव यथा थूकमें खूनका आना, छातीमें दर्द, पार्श्व-शूल आदि भी दिखाई देने लगते हैं। आरम्भमें वैद्य तो समझता है कि रोगी अवश्य ही कुपथ्य कर लेता है तभी यह उपद्रव बढ़ रहे हैं। पर वास्तवमें बहुधा यह बात नहीं होती। एकमें नये ज्वरका या यों कहिये एक व्याधिके समय दूसरी स्वतन्त्र व्याधिका प्रवेश हो जाता है। रोगीके शरीरमें विषम ज्वरके मूलकारणका प्रवेश हुआ और उसके कारण कुछ दिनमें विषम-ज्वरका प्रादुर्भाव हुआ। यह विषम-ज्वर संतत या सतत भेदसे था। इसलिये इसे सात, दस या बारह दिनमें उतरना था। इसी सात या दस दिनके मध्य उस रोगीके शरीरको निर्बल पाकर क्षय रोगोत्पादक अन्य कारण उसके शरीरमें प्रविष्ट हो गया और वह भी धीरे-धीरे शरीरमें वृद्धि करने लगा तथा दो चार दिनमें अकस्मात् छातीमें दर्द और खाँसी आरम्भ हो गयी। इसके साथ इसका भी ज्वर हुआ। उधर तो विषम-ज्वर बना ही है। चिकित्सक नित्य ही नाड़ी द्वारा या अन्य साधनसे ज्वरकी मात्राको जान जाता है। जिस दिन नये उपद्रव उत्पन्न हुए चिकित्सकका ध्यान इन नये उपद्रवोंको देखकर प्रायः नयी व्याधिकी ओर नहीं जाता। वह तो नित्यके अनुभवसे यही समझता है कि रोगीने अवश्य ही कोई ऐसा कुपथ्य किया है जिससे यह उपद्रव उठ खड़े हुए। उस समयके बढ़े हुए ज्वरको भी देखकर वैद्यको नयी व्याधिके उत्पन्न

संसारको नीरोग रखनेके लिये आत्मोत्सर्ग

[ले०—श्रीकुँअर बहादुर माथुर, प्रयाग विश्वविद्यालय]

मौतसे खेलना
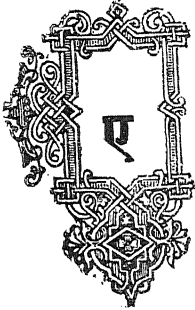
क आदमी लन्दनके एक बड़े औषधालयकी प्रयोगशालाका पाहुना था। उसने देखा कि एक युवा पुरुष एक शीशीको रोशनीकी ओर सावधानीसे झुकाये हुए था। शीशीकी तलीपर क़रीब एक इंचके पीलापन लिये हुए प्रकाशहीन कुछ तरल पदार्थ था। "कुछ गन्दा लेमोनेडकी तरह है", पाहुनेने विचारा। युवा पुरुषने दाँत निकाले "लेमोनेड! इसमें मृत्यु भरी हुई है"। और फिर कहने लगा "यह कीटाणुसे भरी हुई है, इसमें कीटाणु लाखोंकी गिनतीमें हैं और वह औषधालयके प्रत्येक मनुष्यको मारनेके लिये काफ़ी है तथा वह एक मिनटमें लाखोंकी रफ़्तारसे बढ़ते जा रहे हैं"।

ज़रा विचारिये, यदि इसमेंसे एक शीशी गिर पड़े ....कीटाणु निकल जावें.........और......एक भयानक मृत्यु।

अमेरिकाके शहर वाशिङ्गटनमें एक विष-मण्डली है इसमें स्वयंसेवक हैं जो सब प्रवीण रसायनज्ञ हैं। इनका

होनेका कोई भ्रम तक नहीं होता। जो ज्वर विषम-ज्वरकी स्थितिमें १०२—१०३ बना रहता था, नये उपद्रवके समय यदि १०४ भी इससे कुछ अधिक बढ़ा मिले तो चिकित्सक प्रायः यही समझते हैं कि चूँकि उपद्रव बढ़े हैं, रोगीने कोई कुपथ्य किया है इसीलिये ज्वर बढ़ गया है। ज्वरमें नये रोगोत्पादक कारणोंसे हुआ ज्वर प्रथम ज्वरके साथ मिल जाता है। इसीलिये चिकित्सक नये उपद्रवोंको देखकर भी यह नया भिन्न ज्वर है, यह पहिचाननेमें असमर्थ रहते हैं। जब ऐसे रोगी अधिक कालतक ज्वर-ग्रस्त पड़े रहते हैं और उस अवस्थामें पश्चात्‌का क्षय रोग शरीरपर अपना पूर्ण अधिकार जमा लेता है, तथा फुफ्फुस आदि शरीरके कुछ अवयवोंको विकृत कर देता है तब चिकित्सकको पता लगता है कि यह तो क्षय-ज्वर है।

हमने एक नहीं अनेक रोगी ऐसे देखे हैं जिनको एक साथ विषम-ज्वर-मन्थर-ज्वर, मन्थरज्वर-क्षय-ज्वर, प्रसूतिका-ज्वर-मन्थरज्वर, प्लेग-मन्थरज्वर, फुफ्फुसप्रदाह-क्षयज्वर या मंथरज्वर साथ-साथ था। कई रोगी जो ऐसे भी देखे हैं जिनको विषमज्वर भी था साथमें क्षयज्वर भी और उसके मध्य मन्थरज्वर भी हुआ। तीन-तीन भिन्न-भिन्न रोगोंके कारणोंका शरीरमें प्रवेश होकर अपने-अपने लक्षणोंसे संयुक्त ज्वरोंको उत्पन्न करना, और उनकी ज्वरावस्थाका परस्पर मिलजाना, ऐसी संकरता है जिसको पहिचान लेना सरल काम नहीं है।

इसमें कोई संशय नहीं कि प्रत्येक स्वतन्त्र और मुख्य व्याधियोंके निश्चित लक्षण जो उनमें पाये जाते हैं वह सदा ही उनके साथ रहते हैं और रोगारम्भके साथ या पश्चात् देखे भी जाते हैं। तथापि अनेक लक्षण ऐसे हैं जो कई-कई व्याधियोंमें एकसे ही देखे जानेके कारण उनके परस्पर मिल जानेपर पहिचानना कठिन होता है। आप खाँसीको ही लीजिये। खाँसी यकृतविकारके कारणसे भी होती है, फुफ्फुस विकारके कारणसे भी और केवल स्वरयन्त्रके विकारी होनेपर भी होती है। यद्यपि तीनोंकी खाँसीमें सूक्ष्म अन्तर होता है पर इसको पहचानना हरएकका काम नहीं। एक रोगीका स्वरयन्त्र खराब है, उससे उसे अरसेसे खाँसी होती चली आरही है। इसी मध्य उसका यकृत विकारी हो गया। इसका प्रभाव वायु प्रणाली या फुफ्फुसपर पड़ा उससे भी खाँसी आने लगी। अब खाँसी बढ़ गयी, रोगी और चिकित्सक इस बढ़ी हुई खाँसीको देखकर इनके अन्तरको एकाएक नहीं पहचान सकते। वह तो यही समझेंगे कि रोगीने कुपथ्य किया है, इसीसे खाँसी बढ़ गयी। इस खाँसीमें जो परस्पर मेल हो गया, उक्त ज्वरोंमें जो परस्पर मेल हो गया, उसका नाम संकरता है। यद्यपि दोनों ज्वर या खाँसी के कारण भिन्न-भिन्न हैं, और दोनोंके कारण भी शरीरमें भिन्न-भिन्न स्थानपर हैं तथापि दोनोंके चिन्ह मिलकर एक रूप हो गये। ऐसी स्थितिमें उनका पार्थक्य मालूम नहीं होता। ऐसी स्थितिका नाम व्याधि-संकरता है। (क्रमशः)

काम, ख़राब खानेकी सामग्री की जिसमें अधिकतर विष मिला रहता है जाँच करना है।

इन्हींमेंसे एक जाँचमें

रोवर्ट वेन्स फ्रीमेनकी मृत्यु हुई थी जिन्होंने खराब खानेद्वारा विष ग्रहण कर लिया था।

वैज्ञानिक पागलोंकी सूची

स्त्रियों और पुरुषोंकी सूची जिन्होंने अपना जीवन विज्ञानके लिये खतरेमें डाला, और प्रायः अपना जीवन खो भी बैठे हैं, बहुत बड़ी है।

वैज्ञानिक परीक्षाके लिये नर्सका आदर्श आत्म-त्याग

लड़ाईके दिनोंमें इस प्रकारके एक आत्म-त्यागका उदाहरण एक नर्सद्वारा दिया गया था। फ्रांसमें नौलीके औषधालयमें मिस मेरी डेविस नामक एक अंग्रेज नर्स थीं। गैसपीड़ित रोगीको चङ्गा करनेके लिये डा० टेलरको, कुनीनसे बनी हुई दवाका प्रयोग करते-करते एक ऐसे रोगीकी आवश्यकता पड़ी जो केवल गेस-गेंगरीन रोगके और किसी रोगसे ग्रसित न था। नर्स डेविसने देख रखा था कि इस प्राणघातक रोगसे ग्रसित मनुष्योंकी क्या दुर्दशा होती है। उन्होंने किसीसे कुछ नहीं कहा, एक कमरा औषधालयके पास ले लिया और दो दिनके बाद डा० टेलरके पास एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने डा० टेलरसे आनेकी प्रार्थना की थी। उन्होंने स्वयं गेस-गेंगरीनकी रोग पैदा करनेवाली दवा अपने बदनमें सुई द्वारा पहुँचा दी। दो घण्टेसे कममें ही वह गेस-गेंगरीनकी रोगिणी हो गयी। डा० टेलरने अपनी दवाकी जाँच की और वह जल्दी ही मृत्युके मुखसे दूर हो गयी। परन्तु यदि वह अच्छी न होती तो क्या होता?

दूसरा उदाहरण "मट्रोपोलिटन वाटर बोर्ड" के डा० हाउसटनका है जो यह देखनेके लिये कि मियादी बुखारके कीटाणु किस पानीमें जीवित रह सकते हैं, टेम्स नदीका करीब आधा पैन्ट गन्दा पानी पी गये। इस पानीमें क़रीब दो करोड़ कीटाणु भरे थे। यह जानकर प्रसन्नता होती है कि डा० हाउसटनकी परीक्षा सफल हुई तथा उन्हें किसी प्रकारकी हानि नहीं हुई।

जान बूझकर खतरेमें पड़ना

केम्ब्रिजमें एक प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक प्रो० केपिटजा (Liquid hydrogen) द्रव हाईड्रोजनकी परीक्षा कर रहे हैं। द्रव हाईड्रोजन कुछ दशाओंमें बड़ा विस्फोटक है। यह उन्हें सूचित है कि इन्हीं कामों द्वारा जर्मनीमें तीन आदमी तथा एक प्रयोगशालाके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। परन्तु इससे उन्हें क्या घबराहट?

ऐसे ही सर रोनेल्ड रोस भी थे जो कि अपने धन और जीवनको अन्वेषण-शास्त्रके हाथमें भेटकर दरिद्रतामें मर गये।

मि० जे० बी० एस हेन्डन और एक वीर इस वैज्ञानिक झुण्डमेंसे हैं। यह सब परीक्षा अपने ऊपर ही किया करते हैं।

सच्चे साधक—एकान्तवासी योगी

इससे भी अधिक रोचक बात एक और यह है कि गोकि यह मनुष्य अपने जीवनतकको शास्त्रोक परीक्षाके लिये भयमें डालते हैं परन्तु वह इन बातोंके लिये चिन्ता नहीं करते हैं। प्रो० मेक्सवेल लेफ्रोय जोकि एक प्रकारकी मक्खीकी जाँच करनेमें सन् १९२५में मर गये, एक साल पहिले मृत्युके पंजेसे बाल-बाल बच चुके थे। जब वह मरणोन्मुख पड़े थे तब यह पूछनेपर कि उनकी यह अवस्था कैसे हुई उन्होंने उत्तर दिया "मुझे खेद और अचम्भा है कि यह मामला इतना लोकप्रसिद्ध हो गया। क्योंकि ऐसे संयोग प्रतिदिन ही हमारे कामोंके साथ होते रहते हैं। हम लोग उन बातोंके बारेमें बहुत कम सोचते हैं।

धुनके पक्के वैज्ञानिक

मनुष्य जातिके लाभके लिये लवलीन वैज्ञानिक अनुन्वेषण अब संसारके प्रत्येक भागमें किये जा रहे हैं। बोस एक भारतवासी हैं। हाटा जापान निवासी था। रादरफोर्ड न्यूज़ीलेन्डमें पैदा हुए थे और मेन्डलीफ़ रूसी थे। यह मनुष्य विज्ञानके लिये काम करते हैं और साथ ही साथ दुखः भी झेलते हैं। यह संसारको नीरोग रखनेके लिये ही अपने जीवनको मृत्युके मुखमें डालते हैं। इसीको वह संसारमें सबसे उत्तम काम समझते हैं। उनके लिये "मनुष्य जातिकी सेवा ही ईश्वरसेवा है"।

भोजनके सम्बन्धमें कुछ आवश्यक बातें

[श्री पं० राजेश्वरदत्त शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, काशी]

सदा समय, मात्राका विचार कर हितकर भोजन करनेवाला मनुष्य रोगी नहीं हो सकता।

अहोरात्रमें केवल दो बार भोजन करना चाहिए।

शौचसे शुद्ध हो जानेपर, इन्द्रियोंके स्वच्छ होनेपर, डकार शुद्ध आनेपर, अपान वायुके साफ निकलनेपर, पेट शिथिल होनेपर, अन्नमें रुचि होनेपर, और भूख लगनेपर भोजन करना चाहिए।

प्रातः ८ बजेके पहले भोजन न करना चाहिए। तथा १२ बजेसे अधिक समय भी न बिताना चाहिए। अर्थात् ८ से १२ के अन्दर ही भोजन करना उचित है। किन्तु जिन ऋतुओंमें रात बड़ी होती है उनमें दिनके प्रथम प्रहरमें भी खा सकते हैं। अपने एक निश्चित ठीक समयपर ही सदा भोजन करना चाहिए। समयके पहले और अधिक भोजन करनेसे अनेक रोग हो जाते हैं।

दिनमें किये हुए भोजनके अजीर्ण रहनेपर भी रातका भोजन दूषित नहीं होता। किन्तु रात्रिमें किये हुए भोजनके अजीर्ण रहनेपर दिनमें भोजन करना विशेष हानिकर है।

भोजन एकान्त, रम्य, स्वच्छ और सुगन्धित स्थान पर बैठकर करना चाहिए। भोजनालयमें कपूर-वासित जल छिड़कना विशेष लाभप्रद है। इससे रोगोत्पादक जीवाणु भी मर जाते हैं, मक्खियाँ नहीं बैठतीं और स्थान भी सुगन्धित रहता है।

भोजन करनेवाला स्नान किए हुए, स्वच्छ धोती पहिने हुए, प्रसन्नचित्त होना चाहिए।

भोजनके पहले तुरन्त पैर धोकर (गीला पैर करके) भोजन करे। इससे दीर्घायु प्राप्त होती है, नेत्रशक्ति नहीं घटती और हृदयके लिये हितकर है।

भोजन बनानेवाला और परोसनेवाला पाकविद्यामें चतुर, भगवद्भक्त, विश्वासपात्र, सुशील, स्वच्छ वस्त्र पहिने हुए और स्नान किये हुए होना चाहिये। भोजनालयके नौकर स्वच्छ रहनेवाले, नख कटाये हुए, छोटे छोटे बाल रखनेवाले, होशियार और स्थिरताके साथ नौकरी करनेवाले होने चाहिये।

सोना, चाँदी, कांसा (फूल), पीतल और लोहेसे अतिरिक्त धातुके बने पात्रोंमें भोजन पकाना अच्छा नहीं। मिट्टीका नया पात्र भी भोजन बनानेके लिये बहुत अच्छा है। किंतु मिट्टीके पात्रमें खाना न चाहिये। इसी प्रकार पत्थर और काठके बने बरतनोंमें भी प्रधान भोजन खाना श्री-निवारक है। जल रखनेके लिये ताम्रपात्र, काँचपात्र तथा मिट्टीके पात्रका उपयोग करना चाहिये। खट्टी चीज़ोंके रखनेके लिये पत्थर, मिट्टी अथवा कांचके पात्र, या पत्तल काममें लाना चाहिए। पत्तलमें सब प्रकारका भोजन रख कर खा सकते हैं।

पहले खाये हुए अन्नके पच जानेपर, भूख लगनेपर, न बहुत जल्दी और न बहुत धीरे, न बकवाद करते और न जोरसे हंसते हुए अपनी प्रकृतिके अनुसार हित करने· वाला, लघु (शीघ्र पचनेवाला), स्निग्ध (घृतादि युक्त), ताजा गर्मागर्म, मात्रापूर्वक, द्रवप्रधान, भली भांति पका हुआ और रुचिकर भोजन करना चाहिये।

भूखके अनुसार पेटमें चार भागकी कल्पना करके दो भागको अन्नसे और एकको जलसे पूर्ण करके शेष एक भाग-को खाली रखना चाहिये। अर्थात् खूब कसके पेट भर कभी न खाना चाहिए कि भली भांति अन्न पचनेमें कोई बाधा न हो।

बिगड़ा हुआ, जूँठा, कङ्कड़ पत्थरके टुकड़े और तृणवाला, अरुचिकर, बेस्वाद, बहुत नमकवाला, बहुत गर्म, बासी, और दुर्गन्धित, कई दिनोंका पकाया हुआ पकवान भी, दुबारा गर्म किया हुआ, अशांत और विरुद्ध भोजन कदापि न करना चाहिए तथा थकावटकी हालतमें भी भोजन न करना चाहिये।

अपने आश्रितोपाश्रित लोगोंके लिए भोजन प्रबंधका

ध्यान करके तब स्वयं भोजन करनेके लिये बैठे। प्रथमतः जगत्पालक परमेश्वरका स्मरण करे। तत्पश्चात् मधुर पदार्थोंको खावे, उसके बाद खट्टी और नमकीन तथा अन्तमें कड़ुए तीते रसवाली वस्तुओंको खाए।

अनार आदि फलोंको भोजनके पहले ही खाना चाहिए। कठिन भोजनको सबसे पहिले, मृदुको उसके बाद और द्रवको सबके अन्तमें खावे।

दूधको भोजनके अन्तमें पीना चाहिए कि गर्म मसाला, कड़ुए, तिक्त आदि विदाही भोजनका दोष न हो सके। दही कभी अन्तमें न खावे। किन्तु मट्ठा खा सकते हैं। तत्क्षण व्यायी हुई, रोगी अथवा जिसके स्तनमें घाव हो उस गायका दूध नहीं पीना चाहिए। और छानकर साधारणतः उबालकर पीना चाहिए। रातमें कभी दही न खानी चाहिए।

अच्छी भूखकी हालतमें ही गुरु (देरमें पचनेवाले) खाद्यको खाना चाहिए, न कि भूख कम या शान्त हो जानेपर और वह भी आधा पेट। लघु द्रव्योंको भी खूब पेट भरकर न खाना चाहिए।

भोजनके पहले सदैव सेंधा नमक मिलाकर अदरक खाना पचन-शक्तिके लिये अति हितकर है।

भोजनके आदिमें जल पीनेसे मनुष्य कृश हो जाता है और अन्तमें स्थूल। अतः भोजनके मध्यमें ही थोड़ा थोड़ा करके अनेक बार पीना चाहिए। अधिक जल पीनेसे पाचन—शक्तिका ह्रास होता है। यही दोष पानी न पीनेसे भी होता है। अतः जब कभी प्यास लगे तो थोड़ी-थोड़ी मात्रामें ही बार बार पानी पीना उचित है। रास्ता चलकर थकावटकी हालतमें, भूखसे आक्रान्त होनेपर, शोक क्रोधसे व्याप्त होनेपर और विषम आसनपर बैठे हुए जल पीना हानिकर है।

भोजन करनेके बाद दाँतोंको रगड़रगड़ कर जलसे कुल्ला अवश्य करना चाहिए और दाँतोंको साफ़ करनेके लिये खरिका भी करना चाहिए, जिससे दांतोंसे जूँठा न लगा रह जावे। किंतु जो न निकल सकता हो उसे खोदकर निकालनेके लिये बहुत चेष्टा न करे। उसे दांतोंका एक अंश ही समझ कर सन्तुष्ट रहे। गीले हाथसे नेत्र आदि इन्द्रियोंको स्पर्श करना चाहिए। तदनन्तर अपनी रुचिके अनुसार लौंग इलायची सुपारी पान (बीड़ा) इत्यादि कुछ मुँहमें रखकर चूसना चाहिए। फिर धीरे-धीरे सौ कदम टहलकर लेट जाना चाहिए। पानका ज्यादा खाना अच्छा नहीं। दाँत, आँखके रोगियोंको बिलकुल त्याग देना चाहिए।

भोजनके बाद कुछ देर तक, सोना, खड़ा होना, कूदना, दौड़ना, चलना, सवारीपर चढ़ना और किसी द्रव पदार्थका अधिक पीना हानिकर है।

गर्मीके मौसमको छोड़कर शेष ऋतुओंमें दिनका सोना अच्छा नहीं। परन्तु अजीर्णवाले, गाने, पढ़ने, बोझा ढोने, रास्ता चलने और रातमें जागनेवाले खफ्त दिमागवाले, क्रोध शोक भयसे विह्वल जन तथा जिन्हें दिनमें सोनेका अभ्यास है वे सदा भोजनके बाद मध्याह्नमें सो सकते हैं। अन्यजनों को धर्म, अर्थ प्रधान विचार करते हुए इष्ट और शिष्ट मित्रोंके साथ मध्याह्नका समय बिताना चाहिए।

संध्याकालमें भोजन, शयन, पढ़ना, रास्ता चलना तथा मैथुन ये पाँच कर्म न करने चाहिए। रात्रिके प्रथम पहरमें ही भोजन कर लेना चाहिए। दिनकी अपेक्षा कुछ कम और जो गुरु न हो वह भोजन करना चाहिए। रातका पहला और आखरी पहर विद्याभ्यास सद्विचार आदिमें बिताना चाहिए, शेष मध्यके दो पहर, ९ बजेसे ३ बजे, तक सोना चाहिए। (सनातन धर्मसे)

वैरांट या वैरान्त ? वाराणसीके प्राचीन स्थानकी खोज

[लेखक—डाक्टर मोतीचन्द, पी-एच० डी०]
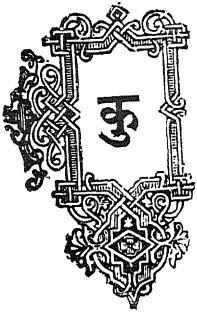
कुछ दिन हुए अखबारोंमें वैरांटके बारेमें जो बनारससे उत्तर पूर्वमें १६ माइल-पर स्थित है एक समाचार निकला था। मैं उस स्थानका निम्नलिखित विवरण देता हूँ। मैं वैरांटमें केवल एक रोज ठहरा था पर मुझे वहां काफी सफलता मिली। जो वस्तुएँ वहाँ मिलीं उनसे यह प्रकट होता हैं कि वैरांट एक बहुत ही प्राचीन स्थान है।

वैरांटके पुराने टीले गंगाके दक्षिण ओर स्थित हैं। इसकी दूरी सैदपुरसे दक्षिणपूर्व ६॥ मील, बनारससे उत्तरपूर्व १६ मील और गाजीपुरसे दक्षिण-पश्चिम २२॥ मील है। ये टीले बानगंगा नामके नालेके दक्षिण-पूर्व किनारे-पर स्थित हैं। मालूम पड़ता है कि बानगंगा प्राचीन समय-में गंगाकी धारा रही होगी जिसका पाट अब सूख गया है। इन टीलोंपर पहुँचनेके लिये दो रास्ते हैं। पहला रास्ता बी० एन० डब्ल्यू० रेलवेपर काशी स्टेशनसे होकर बलुआ घाटतक जाता है वहाँसे पार उतरकर वैरांट ६ मील पैदल जाना होता है। दूसरा रास्ता मुगलसराय, सकलडीहा या चन्दौली होकर वैरांटको जाता है। इस सड़ककी अवस्था अच्छी नहीं है। गर्दोंके कारण सवारी जाने आनेमें तकलीफ होती है और बरसातमें इस सड़कसे जाना प्रायः दुर्गम है।

वैरांटको सर्वप्रथम पुरातत्व विभागके सहकारी अध्यक्ष श्री ए० सी० एल० कारलाइलने ढूंढ निकाला था और इसका वृत्तान्त उन्होंने आरकियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डियाकी रिपोर्ट भाग २२में प्रकाशित किया है। उन्होंने वहाँ बहुत सी प्राचीन वस्तुएँ पायीं जिनमें बौद्ध कालीन प्रस्तर, स्तम्भ, वेदिकाएँ आहत सिक्के जिनपर छतरी चैत्य हाथी इत्यादि बौद्धचिह्न अंकित थे मिलीं तथा विजयमित्र और ज्येष्ठदत्तके सिक्के भी पाये। उन्होंने कुछ हाथीके दांत-के आकारकी कांसेकी वस्तुएं अकीक तथा बिल्लौर इत्यादिके बने हुए बहुतसे मनके तथा पत्थरकी बनी हुई प्राचीन थाली-का एक टुकड़ा जिसपर शंखकी नकाशी खुदी हुई थी पाया। वहाँपर उनको और भी बहुत सी मोर्चा लगी हुई लोहेकी वस्तुएं मिलीं। पर सबसे पुरानी वस्तुएं जो कारलाइलको उन टीलोंपरसे मिलीं वे पत्थर तथा घोंघेकी बनी हुई थीं इनमें विशेषतः प्रागैतिहासिक कालकी पत्थरकी बनी हुई छूरियाँ कुल्हाड़ी इत्यादि थी। उन्होंने इनको खड़हरके आसपासके नालों और खेतोंमें पाया था। कारलाइलके बाद डाक्टर कुहररने इस स्थानको देखा और इसका वर्णन उन्होंने आरकीयोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया नयी सिरीज संख्या दो, पृ० १९५—१९६में दिया है। उनका कहना है कि इन टीलोंमें प्राचीन आहत बौद्ध सिक्कोंकी बहुतायत है अतः वैरांट अवश्य पुराना स्थान है। इसके बाद वैरांटपर किसी पुरातत्ववेत्ताका ध्यान नहीं गया।

गत वर्ष बनारसके एक डिप्टी कलेक्टर श्री रामेश्वर-दयालने हम लोगोंसे वैरांटके बारेमें कहा और प्राचीन ठिकरे मनके तथा मुर्चा खाये हुए कुछ लोहेकी वस्तुएं जो उन्होंने वहाँ पायी थी दिखलायीं। इन वस्तुओंकी अच्छी तरह जांच करके मैं इस निर्णयपर पहुँचा कि वैरांट अवश्य ही एक प्राचीन स्थान है और उसका वैज्ञानिक रीतिसे अवश्य अनुसन्धान होना चाहिये।

इस सालके मार्च महीनेमें मैं कुछ मित्रोंके साथ जिनमें भारतकला-भवनके संस्थापक राय कृष्णदास मुख्य थे वैरांट गया। हमलोगोंको पहले ही मालूम हो गया था कि जमनियांवाली सड़ककी हालत अच्छी नहीं है इसलिये हमलोग बनारस गाजीपुरवाली सड़कसे चौबेपुर गये और वहाँसे कच्ची सड़कसे बलुआघाटके सामने आये और नावद्वारा पार उतर गये। वैरांट यहांसे ६ माइलकी दूरीपर है। मार्चका महीना होते हुए भी गर्मी जोरोंकी पड़ रही थी और धूपके मारे रास्ता तय करना मुश्किल मालूम होता था। फिर भी वैरांट देखनेकी लालसा हमलोगोंको जल्दीसे वहाँ खींच ही ले गयी। ३ मील चलनेके बाद हमलोग राय कृष्णदासजीके गाँव लक्ष्मणगढ़में पहुँच गये। यहाँसे वैरांटकी दूरी २॥ मीलसे कुछ ऊपर है।

छावनीके कुएंकी जगतपर खड़े होकर हमने सर्वप्रथम वैरांट ऊँचे टीलोंकी बानगंगाके किनारे दूरतक फैले हुए देखा। सदियोंका इतिहास इन टीलोंके गर्भमें छिपा हुआ है, यह सोचते ही हमलोगोंकी उत्सुकता वैरांट जल्दी देखनेकी ओर भी बढ़ गयी और झटपट हाथ मुँह धोकर हमलोग उस तरफ चल निकले।

जल्दी-जल्दी चलकर करीब ४० मिनटमें हमलोग इन टीलोंपर पहुँच गये। वैरांटके टीले दो भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं। एक तो गंगाके पूर्वी किनारेपर स्थित प्राचीन कोट और दूसरा प्राचीन नगरका भग्नावशेष जो किलेके दक्षिण तथा कुछ दूर चलकर दक्षिणपूर्वके टीलोंद्वारा सूचित होते हैं। यह कोट कपसे (?) का बना हुआ है पर इसके ऊपर बहुत-सी प्राचीन ईंटें तथा मट्टीके बर्तनके फूटन पड़े हुए हैं। इसका आकार समानान्तरचतुर्भुज है। हमलोगोंको इतना समय न था कि हमलोग इस किलेकी पूरी-पूरी नाप ले सकते, पर कारलाइलके अनुसार उसकी लम्बाई उत्तरसे दक्षिण १३५० फीट और पूरबसे पच्छिम ९०० फीट है। कोटकी चहारदीवारी ७० से १०० फीटतक मोटी है। इसके कुछ भाग पानीसे कट गये हैं पर कुछ भाग अब भी बचे हुए हैं। किलेके उत्तरपूरब, उत्तरपच्छिम तथा दक्षिणपूर्वके कोनोंमें मट्टीके कंगूरे बने हुए हैं। प्राचीन द्वारोंके चिह्न किलेके चारों ओर अब भी देख पड़ते हैं पर उत्तर तथा दक्षिणके द्वारोंके स्थान ठीक-ठीक देख पड़ते हैं। किलेका एक तिहाई दक्षिणी भाग नीचा है। इसके बाद एक तिहाई भाग उत्तरकी ओर ऊंचा होता गया है और उसके बादका उत्तरी भाग और भी ऊँचा हो गया है। उत्तर-पूर्वी कंगूरेके पास एक चौखूटी इमारतका भग्नावशेष मिला। कुछ दूर जमीन खोदनेपर पता लगा कि ईंटोंकी दीवार काफी गहराईतक गयी है। उत्तर तथा दक्षिण तरफ देखनेसे किलेकी प्राचीन खाईका बाहरी भाग अब भी देख पड़ता है।

वैरांट गांव किलेसे ४०० फीटकी दूरीपर है। इसके उत्तर-पूर्व भागमें १५० फीटकी दूरीपर एक बड़ा टीला है।

गांवसे ६ फर्लांग उत्तरकी ओर भगतिनका तालाब नामका एक पुराना तालाब है जिसके पच्छिम ओर एक छोटा मन्दिर है। मन्दिरके आधे फर्लांग उत्तरमें एक छोटा टीला है तथा तालाबके पच्छिम ओर एक फर्लांगपर रामशाला नामक औवड़ोंकी एक गद्दी है जहाँ बाबा किनारामके चेले रहते हैं। इस स्थानका नाम किनारामका स्थल भी है।

वैरांटके उत्तरपूर्व ऊँची भूमिमें मिट्टीके वर्तनके टूटन और ईंटें बिखरी हुई हैं।

किलेके दक्षिण-पश्चिम कोनेसे करीब एक चौथाई फर्लांग हटकर और बानगंगाके ठीक किनारेपर एक छोटा टीला है जिसे देवीका स्थान कहते हैं। किलेके दक्षिण तीन-चौथाई फर्लांग हटकर प्राचीन चहारदीवारीके अंश हैं जो पूर्वसे पश्चिम तरफ १४०० फीट लम्बाईमें एक पहाड़ीकी तरह फैले हुए हैं। इससे दक्षिण बानगंगाके ऊँचे किनारेपर एक ऊँचा टीला है जो चहारदीवारीसे एक गहरे गड्ढेसे अलग हो गया है। इसकी लम्बाई उत्तरसे दक्षिण ८०० फीट और पूर्वसे पश्चिम ६०० फीट है। आसपासकी भूमि प्राचीन ठीकरों और ईंटोंसे पटी पड़ी है। यहाँसे दक्षिण ओर एक नाला है जिसके दक्षिण ओर करीब २ फर्लांगपर ककरहटी ग्राम है। ककरहटीसे ३॥ फर्लांग दक्षिण नदीके ऊंचे किनारेपर रसूलपुर नामका ग्राम है जिसके दक्षिण पश्चिम किनारेपर एक बड़ा ऊँचा टीला है। इन सब टीलोंको देखते हुए यह पता चलता है कि बानगंगाका पूर्वी किनारा किलेके दक्षिण ओर एक बहुत प्राचीन नगरके भग्नावशेषका द्योतक है। पर वैरांटके टीले रसूलपुर पर ही नहीं खतम हो जाते। इनका सिलसिला रसूलपुरसे ३००० फीट दक्षिण-पूर्व चला जाता है क्योंकि नदी इस ग्रामसे दक्षिण-पश्चिम मुड़ जाती है। इस टीलेके दक्षिण भागमें एक ढालुआ टीला है जिसपर टूटी ईंटें और ठिकरे बिछे हुए हैं। इसके पूर्व भागमें एक बड़ा प्राचीन घाट है जो नदीतक चला गया है। वैरांटके टीलोंका जहाँ अन्त होता है वहींपर एक ऊँचा कपसेका बना हुआ कंगूरा है जो बरसातके कारण बहुत कट फट गया है।

किलेको छोड़कर प्राचीन नगरकी पूरी लम्बाई ७७०० फीट या ८००० फीट यानी १५ माइल कारलाइलद्वारा कूती गयी है लेकिन अगर किला भी इसमें शामिल कर लिया जाय तो इस नगरकी लम्बाई पौने दो मील या करीब २ मीलतक पहुँच जाती है।

पूर्वसे पश्चिम नगरकी चौड़ाईका ठीक-ठीक अन्दाजा नहीं लग सकता इसका कारण है कि पूर्व ओरकी भूमि बहुत कुछ समतल हो गयी है तथा नगरकी पूर्वी चौहद्दी खेत जोतते-जोतते बहुत कुछ मिट गयी है। कारलाइलने बहुत जांच पड़तालके बाद यह निश्चित किया है कि नगरकी चौड़ाई पूर्वसे पश्चिम-उत्तरी कोनेपर दो हजार फीट है दक्षिणी भागमें इसकी चौड़ाई घटकर चौदह हजार फीट और एक हजार फीट हो जाती है और इसके दक्षिण भागके अन्तमें इसकी चौड़ाई कुल आठ सौ फीट रह जाती है। कारलाइलके समयसे अबतक इस नगरकी चौड़ाई और भी घट गयी होगी क्योंकि दिनपर दिन टीले खोदकर खेत निकाले जा रहे हैं।

नगरका ठेठ पूर्वी भाग एक दूसरी नदीसे घिरा हुआ है जो अब सूख गयी है। बरसातमें नदी छिछले पानीसे भर जाती है जिसमें धानकी खेती होती है।

तमाम टीलोंपर घूम चुकनेके बाद हम लोगोंने कोटको अच्छी तरहसे ढूँढ़ना शुरू किया। कोटके दक्षिणी ढालपर हमारे भाई लक्ष्मीचन्दजीने एक प्राचीन पत्थरका होरसा या रकाबीका टुकड़ा पाया जिसमें वृत्ताकार बन्दमें कटहलकी पत्ती तथा फलोंका अलंकार बना हुआ है। बन्दके निचले भागमें पत्तियाँ तथा ऊपरी भागमें रूढ़िगत कटहल बने हुए हैं। यह निश्चित है कि यह टुकड़ा अवश्य शुंगकालका है। इसपर टुकड़ेके अलंकारकी तुलना भरहुतके ऐसे ही अलंकारसे हो सकती है। मिट्टीके बर्तनके टूटन जिन्हें हम लोगोंने वहाँ चुना तीन श्रेणियोंमें विभाजित किये जा सकते हैं! (१) मौर्य कालीन मोटे दलवाले बर्तनोंके टूटन जो लाल या मटमैले रंगे हुए हैं। (२) वे ठीकरे जिनपर रेखालंकार तथा आहत सिक्कोंपरके द्विवृत्त या आठ दस या बारह किरणवाले सूर्य जिनके बीचमें विन्दु है बने हुए हैं। (३) पालिशदार बर्तनोंके टूटन जिनके भीतरी भाग नीले या हलके गेरुआ रंगसे रंगे हैं। पुरानी नीली रंगकी पत्थरकी चूड़ियाँ भी मिलीं। दक्षिण-पूरब कंगूरेके पास मैंने एक गहरे भूरे रंगके पालिशदार पत्थरका फ्लेक तथा सीपियोंके कई टुकड़े पाये। कोटके बीचमें हमें दो सिक्के प्राप्त हुए जिनके साफ करनेपर पता चला कि वे कनिष्कके हैं। उस टीलेपरसे उतरते हुए हम लोगोंको एक मिट्टीकी मूर्तिका टूटन मिला जो एक बन्दरकी मूर्त्तिके पैरका टूटन मालूम होता है।

वहाँ पूछनेपर वैरांट सम्बन्धी बहुतसी किम्वदन्तियोंका भी पता चला। वैरांटके लोगोंका कहना है कि वैरांटका शुद्ध नाम वैरांट है और पांडवोंने अपने अज्ञात वासका अन्तिम साल यहीं बिताया था। पर यह केवल कपोल कल्पना ही जंचती है क्योंकि वैरांट नगर मत्स्य देशमें स्थित था और विद्वानोंने इस वैरांट नगरकी आधुनिक जैपुर रियासतके वैरांट गाँवसे शिनाख्त की है। दूसरी कहानी जो हम लोगोंने सुनी उससे वैरांटमें कारलाइलके अन्वेषणका पता चलता है। एक लम्बी दाढ़ीवाले बृद्ध पुरुषने हम लोगोंसे कहा कि ५० वर्ष हुए एक साहबने यहाँ खोदाई की और उसे बहुतसा खजाना मिला था। उसे एक भुइँधरेमें एक सुन्दरी युवती मिली। विलायत तार देकर उसने उसे घर ले जानेकी अनुमति माँगी पर अनुमति न मिली और उसने उसे वहीं रहने दिया। आशा है वह अब भी सुन्दरी और स्वस्थ्य होगी। अभीतक हम लोगोंको इस प्राचीन नगरीके वास्तविक नामका कोई पता नहीं है। चीनी यात्रियोंने इसका वर्णन अपनी भारत यात्राके वृत्तान्तोंमें नहीं किया है। पर प्राचीन साहित्यमें ही दो एक ऐसी सूचनाएँ हैं जिनसे वैरांटकी स्थितिपर काफी प्रकाश पड़ता है। महाभारतमें दो सूचनाएँ ऐसी हैं जिनका समर्थन पुराणोंसे भी होता है—और जिनसे यह साफ-साफ पता चल जाता है कि वैरांटके टीले एक समय दिवोदासद्वारा स्थापित की हुई वाराणसीके भग्नावशेष हैं। महाभारतके अनुशासन पर्व, आठवाँ अध्याय (कुम्भकोनम एडिशन) की एक कथासे पता चलता है कि वाराणसी दिवोदासद्वारा बनवायी गयी थी।

कथा यह है—

वीतिहव्य (बादके हैहय) इतने बलशाली हो गये थे कि उन्होंने हर्यश्व सुदेव तथा दिवोदास इन तीन काशीके राजाओंको एक-एक कर हरा दिया। दिवोदासने अपने राज्यको शत्रुओंके धावेसे बचानेके लिये वाराणसी नगरीकी स्थापना की। महाभारतके अनुसार उस नगरीका यह स्थान था।

गंगाया उत्तरे कूले वप्रान्ते राजसत्तम।
गोमत्या दक्षिणे कूले शक्रस्येवामरावतीम्॥

रसायन और कृषि

(ले० पंडित रघुबरदत्त पाण्डेय एम्० एस्-सी०)

रसायन और कृषिका सम्बन्ध

सायन और कृषिशास्त्रमें घनिष्ट सम्बन्ध है, किसी ज़मीनकी उपज उसमें उपस्थित रासायनिक पदार्थों-पर निर्भर है। इसलिये प्रत्येक अच्छे किसानके लिये यह जानना आव-श्यक है कि कौन-कौन रासायनिक पदार्थ किस-किस चीजकी खेतीके लिये आवश्यक हैं और उसके खेतकी रासायनिक पदार्थोंकी कमी किस प्रकार दूर की जा सकती है।

जमीनके आवश्यक चार तत्व

चार मुख्य तत्व जिनका जमीनमें होना अत्यन्त आव-श्यक है—कर्बन, नोषजन, स्फुर और पांशुजम हैं। इनके सिवाय और भी तत्व जैसे कि खटिकम्, लौह, गन्धक,

---

हे राज सत्तम, उसने इन्द्रकी अमरावतीके समान वाराणसी नगरीको कपसेके चहारदीवारियोंके घेरेमें गंगाके उत्तर किनारेपर और गोमतीके दक्षिण तटपर बसाया। महाभारतके अनुसार वाराणसी नगरी यहीं बसी हुई थी। पुराणोंके अनुसार दिवोदासने वाराणसी नगरीकी स्थापना काशी साम्राज्यकी सीमा गोमती तटपर की थी (ब्रह्मांड, पुराण २–६७,२९, हरिवंश १५४४,१७३८ अन्य सूचनाओं-के लिये उस पुराणका पेज ३७२ देखिये), पर इससे भी उनकी रक्षा न हो सकी और वीतिहव्योंने दिवोदासको वहाँ-से भी मार भगाया। दिवोदासके पुत्र प्रतर्दनने अपने पुरो-हित भरद्वाजकी सहायतासे हैहयोंको हरा दिया। इसके डरसे हैहय भृगुऋषिके पास भागे और उनकी शरणमें आकर ब्राह्मण हो गये। इस प्रकार प्रतर्दनने हैहयों और काशीकी पुरानी शत्रुताका अन्त कर डाला। और हो सकता है कि उस जीतके उपलक्ष्यमें उसने वाराणसीका वैरांट नामकरण कर दिया हो जैसा कि हरिवंश पुराण श्लोक १५८७ 'अ व १५८५ ब' के वैष्यान्त शब्दसे प्रकट होता है।

यह बात विचारणीय है कि प्राचीन वाराणसीकी चहार दीवारी जिसका वर्णन महाभारतमें आया है अब भी वैरांट बान गंगाके किनारे बहुत दूरतक फैली हुई है। पर इस सम्बन्धमें एक बात समझा देना आवश्यक है। आधुनिक वैरांट जिसकी शिनाख्त मैं प्राचीन वाराणसीसे करता हूँ, गंगाके दक्षिण तीरपर स्थित है लेकिन महाभारतमें वर्णित वाराणसी गंगाके उत्तर किनारेपर स्थित थी। इस बातसे हमारी शिनाख्तमें बड़ी गड़बड़ी पड़ जाती है। पर अगर हम बलिया, गाजीपुर और बनारसके नकशेको—जो आर-कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्टके २२वें भागके साथ लगा हुआ है—गौरसे देखें तो पता चलता है कि गंगाकी प्राचीन धारा बनारससे वैरांटतक इस प्रकार बहती थी। गंगा बनारससे चन्द्रावतीतक बहकर एकदम घूम जाती थी और अंगुश्ताने की शक्ल बनाती हुई सैदपुरकी तरफ चली जाती थी। इससे यह साफ हो जाता है कि गंगाका बहाव आजके ऐसा नहीं था। इस समय गंगासे वैरांट कोसों दूर है पर उस समय गंगा ठीक उसके नीचे बहती थीं। गोमती और गंगा-का संगम जो इस समय मारकण्डे महादेवसे १ मीलपर है उस समय वैरांटके और भी पास रहा होगा। किंवदन्ती है कि मारकण्डे काशीका प्रवेशद्वार है पर यह आधुनिक काशीका प्रवेशद्वार नहीं हो सकता बल्कि वह प्राचीन वारा-णसी या वैरांटका प्रवेशद्वार रहा होगा।

बौद्ध-साहित्यमें काशीके बहुतसे नाम थे। जैसे काशी-पुर, वाराणसी, सुरुन्धन, सुदस्सन, ब्रह्मवद्धन, रम्म, पुष्पवती और मोलिनी इत्यादि। सम्भवतः इनकी भी स्थिति उसी ओर रही होगी पर उनका वैरांटसे क्या सम्बन्ध था इसका तबतक कुछ पता नहीं लग सकता जबतक वहाँ खोदाई न की जाय।

हम लोगोंने कलाभवनकी ओरसे वैरांटको खोदनेके लिये सरकारसे अनुमति माँगी है और अगर आज्ञा मिल गयी तो अगले जाड़ेमें वहाँकी खोदाई होगी। ("आज"से)

मगनीसम इत्यादि भी जमीनमें कम या अधिक मात्रामें पाये जाते हैं लेकिन इनका असर उपजमें इतना अधिक नहीं पड़ता जितना कि पहिले दिये हुए प्रधान चार तत्वोंका।

कार्बनिक पदार्थका जमीनमें होना फसलको कई तरहसे लाभदायक होता है। इससे मिट्टी अच्छी हो जाती है और इसकी जोत भी सुधर जाती हैं। अकार्बनिक पदार्थोंको सरल रखनेमें कार्बनिक पदार्थ मिट्टीको मदद देता है, जो कि अन्यथा पानीमें घुलकर बह जाते हैं, इसलिये कि खेतका उपजाऊपन नष्ट न हो एक कार्बनिक पदार्थका कमसे कम मात्रामें जमीनमें होना अत्यन्त आवश्यक है। फसलें जमीनमेंसे बहुत काफी मात्रामें कार्बनिक पदार्थ लेती हैं जिससे कि फसलके अन्तमें जमीनमें कर्बनकी मात्रा कम पड़ जाती है और यह आवश्यक हो जाता है कि बाहरसे किसी न किसी रूपमें कार्बनिक पदार्थ जमीनमें दिया जाय वह किसान जोकि अपने खेतसे लगातार फसल उपजाता आता है लेकिन खेतमें कार्बनिक पदार्थ नहीं देता वह अपने पैर आप कुल्हाड़ी मारता है। फसलद्वारा लगातार कार्बनिक पदार्थ लिये जानेसे जमीनकी उपजाऊशक्ति दिनपर दिन क्षीण होती जाती है और एक समय ऐसा आता है कि अच्छीसे अच्छी उपजाऊ जमीन भी बंजर हो जाती है।

कार्बन स्थिर रखनेके उपाय

जमीनमें कार्बन खादके रूपमें दिया जाता है। खादका सबसे अधिक भाग कर्बनका होता है। इसलिये यह आवश्यक है कि खेतमें प्रत्येक फसलके बाद काफी तादादमें खाद दी जावे। सबसे अच्छा उपाय जमीनके कर्बनकी मात्राको स्थिर रखनेका यह है कि खेतमें कुछ ऐसी फसलें बोयी जावें जो खेत में ही सड़नेको छोड़ दी जावें। जई, शलजम, झाड़ इत्यादि कुछ ऐसी फसलें हैं जो इस अभिप्रायसे बोयी जाती हैं। इनके सिवाय कुछ ऐसी और फसलें हैं जो (Green manure) 'हरी खाद" के रूपमें काममें लायी जाती हैं। इस दूसरी श्रेणीकी फसलें जिनको (Legume Crops) दालोंवाली फसलें कहते हैं, वायुसे नोषजनको लेनेकी शक्ति रखती हैं। जैसे सेम इत्यादि। जब दालजाति हरी खादकी तरह काममें लायी जाती हैं तो जमीनमें कर्बनकी मात्राको बनाये रखनेके सिवाय जमीनमें नोषजनकी मात्राको भी बढ़ाती हैं क्योंकि ये दालोंवाली फसलें वायुके नोषजनसे नोषजनिक यौगिक बनाती हैं जो पौधोंकी खुराक हैं, इसलिये दालवाली फसलों को "हरी खाद" की तरह काममें लानेसे फसलमें अच्छी वृद्धि होती है और जमीनकी उपजाऊशक्ति भी क्षीण नहीं होती।

मिट्टीमें तत्वकी मात्रा

एक हल जो ७" इंच गहरा खोदता है एक एकड़ जमीनसे करीब २ लाख पाउण्ड मिट्टी उड़ेलता है। इस दो लाख पाउण्ड मिट्टीमें कितनी मात्रामें नोषजन, स्फुर और पांसुजम प्रस्तुत हों निम्न कोष्ठकमें दिया जाता है—

	नोषजन	स्फुर	पांशुजम
बहुत अच्छी उपजाऊ जमीन	६००० पौंड	२००० पौंड	३०,००० पौंड
अच्छी उपजाऊ जमीन	५००० ,,	१६,०० ,,	३५,००० ,,
कमसल पहाड़ी जमीन	१७,०० ,,	४०० ,,	८,००० ,,

ये अङ्क यू० एस्० ए० की प्रयोगशालाओंकी रिपोर्टसे लिये गये हैं।

ऊपर दी हुई सारिणीसे ज्ञात होगा कि तीन मुख्य तत्वोंमें से स्फुर सबसे कम और पांशुजम सबसे अधिक मात्रामें जमीनमें पाया जाता है। ये तत्व जमीनमें तात्विक रूपमें नहीं पाये जाते वरन् ये सब संकीर्ण यौगिकोंके रूपमें मिलते हैं। ये यौगिक अक्सर पानीमें नहीं घुलते—लेकिन इनका एक अति न्यून भाग हवा, पानी, कृमि, प्रकाशद्वारा पानीमें घुलनशील हो जाता है और ये घुलनशील पदार्थ ही पौधोंकी खुराक हैं।

पौधेमें तत्वोंका अनुपात

अगर हम एक पौधेके अलग-अलग हिस्सेका रासायनिक

विश्लेषण करें और यह मालूम करें कि अलग-अलग हिस्सों-में ये तीन मुख्य तत्व किस अनुपातमें विभाजित हैं तो एक पकी हुई खेतीमें नोषजन और स्फुर अनाजकी बालमें, पांशुजम और खटिकम् भूसा और डंठलमें बहुतायतसे पाये जाते हैं। इसलिये अनाजकी खेतीमें जमीन नोषजन और स्फुरसे रिक्त हो जाती है और यदि भूसा और डंठल भी खेतमेंसे हटा लिये जायँ तो पांशुजम और खटिकम्की कमी भी मालूम पड़ने लगती है।

तत्वोंकी रक्षाके उपाय

सबसे अच्छा तो यह है कि खेती काटनेके बाद भूसा और डंठल खेतमें ही सड़नेको छोड़ दिये जायँ। इसमें दो लाभ हैं। एक तो खेतमें पांशुजमकी कमी नहीं पड़ती क्योंकि साराका सारा पांशुजम जो पौधा जमीनसे लेता है भूसे और डंठलमें जमा रहता है, और दूसरे भूसा और डंठल जमीनमें कर्बनकी मात्रा कम नहीं होने देते; ये दोनों बातें खेतकी उपजाऊ शक्ति बढ़ाती हैं लेकिन गरीब किसानको भूसा व डंठलकी आवश्यकता मवेशियोंके खिलाने और उनके नीचे बिछानेके लिये पड़ती है। इसलिये वह भूसा और डंठलको खेतमें सड़नेके लिए नहीं छोड़ सकता ऐसी दशामें दूसरा उपयोगी उपाय यह है कि किसान गोशालाकी खादको सँभाल कर रक्खें और उसे खेतमें दे, गाय, भैंसके गोबरसे कंडे बनाकर ईंधनका काम लेनेसे खेतके लिये खादकी कमी पड़ती है और खेतीको बहुत हानि पहुँचती है। ईंधनके लिए चतुर किसान हरसाल कुछ पेड़ खेतोंकी मेंड़पर लगाते हैं जो कि ४ या ५ सालमें काटकर ईंधनके काममें आ सकते हैं और इस तरह गोबर इत्यादि खादके लिये बच जाता है।

नोषजनका महत्व

नोषजन एक ऐसा तत्व है जिसकी आवश्यकता जान-घर और पौधोंको अपनी वृद्धि और पुष्टिके लिये पड़ती है, किसी भी फसलके लिये नोषजनका पर्याप्त मात्रामें जमीनमें होना अनिवार्य है। अब हम यहाँपर यह दिखलायेंगे कि किस-किस प्रकार जमीन नोषजनको लेती और उसे पौधोंके भोजनमें परिवर्तन करती है और किस प्रकार कृत्रिम उपायों-से मनुष्य जमीनमें नोषजनकी कमीको पूरी कर सकता है।

नोषजन जमीनमें किस प्रकार मिलता है

जमीनमें नोषजन मुख्यतया कार्बनिक पदार्थोंके साथ यौगिक रूपमें पाया जाता है। इस दशामें पौधा नोषजनको नहीं ले सकता। ये संकीर्ण नोषजनिक यौगिक पहिले एक विशेष कृमिद्वारा घुलनशील नोषजनिक यौगिकोंमें परि-वर्तित होते हैं जो पौधेकी खुराक हैं।

बिजली और सूरजके प्रकाशसे वायुमें मौजूद नोषजन और आक्सिजन यौगिक बनाते हैं। ये घुलनशील नोष-जनिक यौगिक बारिसके पानीमें धुलकर पृथ्वीपर आते हैं। इसप्रकार प्रतिवर्ष कई लाख मन यौगिक नोषजन धरतीमें आता है।

नोषजनकी खोज

जैसा हम ऊपर कह आये हैं कि कुछ फसलें जैसे दाल इत्यादि वायुमेंसे नोषजन ले सकती हैं। इस आ-विष्कारका श्रेय दो प्रख्यात (Helliriegel and Wilforth) भू-वैज्ञानिकोंको है जिन्होंने पहलेपहल १८८६ ई०में दालोंकी फसलोंद्वारा जमीनमें नोषजनिक पदार्थोंकी मात्रामें वृद्धि होना साबित किया।

नोषजनके कृमि

इन पौधोंकी जड़ोंमें एक कृमि होता है जो कि वायुके नोषजनसे नोषजनिक यौगिक बनाता है। जड़ोंमें एक खास प्रकारका रस होता है जिसमें यह कृमि पलता और वंश-वृद्धि करता है। लेकिन जब पौधा तैयार हो जाता है तो पौधेकी जड़में कृमिकी खुराक चुक जाती है तब यह कृमि जमीनमें प्रवेश कर जाता है और वहाँपर तबतक रहता है जबतक खेतमें दूसरी फसल न बोयी जावे। जब वह फिर पौधोंकी जड़ोंमें घर कर लेता है यह कृमि मिट्टीमें मौजूद नोषजन और आक्सिजनसे यौगिक बनाता है।

नये खेतमें कृमि-प्रवेशका उपाय

एक नये खेतमें इस कृमिको प्रवेश करनेका उपाय यह है कि एक खेतमें जिसमें हालमें ही एक दालोंवाली फसिल बोयी जा चुकी हो उसकी सतहसे मिट्टी लेकर नये खेतमें बिखेर दी जावे और शीघ्र ही उसमें हल चलाया जावे तो

ईश्वर और ईथर

[लेखक—स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य]

मनुष्यमात्र[1] ईश्वरकी सत्ताको अनन्तकालसे मानता चला आ रहा है। आर्यजातिके भिन्न भिन्न सम्प्रदाय उसको जिस जिस रूपमें मानते चले आ रहे हैं यह भी कोई छिपी बात नहीं। आर्ष-ग्रन्थ और आर्यजातिकी रूढ़ियोंसे ज्ञात होता है कि वे जिन अलौकिक रहस्योंका अर्थ नहीं समझ पाते थे, जिन

१. यह कहना असत्य है कि अनन्तकालसे मनुष्यमात्र "ईश्वरवादी" है। संसारके इतिहासके प्रमाणसे अनन्तकालसे "ईश्वरवादी" और "अनीश्वरवादी" दोनों विचारके मनुष्य होते आये हैं, और आज भी हैं। अतः "धर्म्म और भगवान मुर्दावाद"

---

५०० से लेकर १००० पौण्ड मिट्टी प्रति एकड़में इस प्रकार बिखरानी काफी है।

नोषजन और कृत्रिम खाद

बहुधा ये प्राकृतिक (Processes) प्रक्रियायें जमीनमें फसलकी नोषजनकी आवश्यकताओंके पूर्ण करनेके लिये काफी नहीं होतीं इस दशामें बाहरसे नोषजनिक पदार्थोंका जमीनमें दिया जाना आवश्यक होता है, खाद नोषजनिक पदार्थोंमें घनी होती है। इसलिये खादसे नोषजनकी मात्रामें वृद्धि होती है। आजकल बाजारमें सस्ते मूल्यमें कृत्रिम खादें बिकने लगी हैं जिनका प्रयोग दिनपर दिन बढ़ रहा है, ये कृत्रिम खादें मुख्यतः अकार्बनिक नोषजनिक पदार्थ होती हैं जो या तो पृथ्वीके गर्भमें मौजूद रासायनिक पदार्थ हैं या कृत्रिम रूपसे वायुमें मौजूद नोषजनके यौगिक, चीलीके वर्षा हीन ऊसर देशमें शोरा बहुतायतसे पाया जाता है जो एक अति उत्तम खाद है। जिन देशोंमें जलशक्तिद्वारा विद्युत् सस्तेमें बनायी जा सकती हैं वहाँपर वायुने नोषजन और आक्सिजनसे नोषजनिक यौगिक बनाये जाते हैं जो कृत्रिम खादके रूपमें काममें आते हैं। Haber हेबर की आविष्कार की हुई वायुके नोषजनसे अमोनिया बनानेकी तरकीबसे अकार्बनिक नोषजनिक यौगिक सस्ते दामोंमें प्राप्त हो सकते हैं। आजकल ९५% कृत्रिम नोषजनिक खाद Haber हेबरकी अमोनियावाली तरकीबसे तयार की जाती है।

स्फुर तत्व और उसकी आवश्यकता

स्फुर चारों प्रधान तत्वोंमेंसे सबसे कम मात्रामें जमीनमें पाया जाता है। फसलें काफी मात्रामें जमीनमेंसे स्फुरको लेती हैं इसलिये स्फुरकी मात्रा जमीनमें बराबर घटती जाती है। पौधोंको ही नहीं वरन जानवरोंको भी स्फुरकी बहुत आवश्यकता होती है क्योंकि हड्डीका एक बड़ा हिस्सा खटिकम् और स्फुरके यौगिकका बनता है। पृथ्वीमें भी स्फुरके बहुत कम खनिज पदार्थ मिलते हैं इसलिये खेतमें स्फुरकी मात्राको बनाये रखना एक कठिन समस्या है और रहेगी।

स्फुरकी कमी कैसे दूर हो सकती है ?

आजकल कृत्रिम खाद जो स्फुरकी कमीको दूर करनेके लिये दी जाती है वह स्फुरका एक खनिज पदार्थ है। स्फुरिकाम्ल भी अक्सर इस काममें लाया जा सकता है। हड्डीमें स्फुर काफी मात्रामें होता है इसलिये कुटी हुई हड्डियाँ भी खादके रूपमें काममें लायी जाती हैं।

पांशुजम और उसकी कमी पूरी करनेकी तरकीब

चारों मुख्य तत्वोंमेंसे जिनका जमीनमें होना अत्यन्त आवश्यक है पांशुजम सबसे अधिक मात्रामें जमीनमें पाया जाता है, अक्सर खेतमें पांशुजमकी कमीकी पूर्ति करनेके लिये कृत्रिम खादकी आवश्यकता नहीं पड़ती। जर्मनीके स्टासफर्ट नामक जिलेमें पांशुजम हरिद की बहुत बड़ी खदानें हैं जो तमाम संसारकी ९५% पांशुजमकी माँगको पूरी करती हैं, इन्हीं खदानोंसे निकला हुआ पांशुजम हरिद कृत्रिम खादके रूपमें पांशुजमकी कमी पूरी करनेके लिये काममें लाया जाता है।

अचिन्त्य घटनाओंको देखकर आश्चर्य चकित होते थे; वह रहस्य, वह घटनाएँ उनके हृदयमें विश्वास[1] जमानेका साधन बनी रहीं, और अब भी हैं।

किन्तु अब विज्ञान-वादकी कृपासे उन अलौकिक रहस्यों अचिन्त्य घटनाओंकी वास्तविकताका सही सही ज्ञान होता जा रहा है और उन प्राकृतिक नियमोंका ठीक ठीक पता लगता चला जा रहा है, जिनके कारण अनेक अलौकिक घटनाएँ होती रहती हैं। ऐसी स्थितिके उत्पन्न हो जानेपर और उसका सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर भी जिनके हृदयमें बाल्यकालसे एक अदृश्य सत्ताके सम्बन्धमें दृढ़ विश्वास जमा दिया गया है, जिनका मस्तिष्क उक्त भावनाओंसे इतना परिपूरित हो चुका है कि उसके अस्तित्व पर उन्हें शंका करना भी सहन नहीं, वह उसपर किसी प्रकारके विचारको सामने आने देना ही नहीं चाहते[3] इन्होंने एक नयी कल्पनाका आश्रय लेकर उसे तर्कणातीत कहना आरम्भ किया है। ऐसे व्यक्ति ईश्वरके सम्बन्धमें कहते हैं कि उसे हम अपनी इन भौतिक इन्द्रियोंसे जान नहीं सकते, मनकी उस तक पहुँच नहीं, वह आत्म-अनुभव से किञ्चित् बोधगम्य है। उनका कहना है कि जिस आत्मतत्वसे उसकी किञ्चिन्मात्र झलक पाते हैं, उस आत्मातक[4] ही मन आदि गोचर इन्द्रियोंकी पहुँच नहीं तो उससे परेकी उस महान् किन्तु अगम्य अगोचर सत्तातक तर्कणाकी पहुँच कैसे हो सकती है?

यहाँपर विचारणीय बात यह है कि एक ओर तो वह ईश्वरको तर्कणातीत[5] मानते हैं और उसे आत्मानुभवका विषय मानकर जगत्से परेकी सत्ता कहते हैं। दूसरी ओर उसे नियन्ता मानते हैं और जगदाधार कहते हैं। जिस विश्वका हमसे सम्बन्ध है, जिस विश्वको हम तर्कणाका विषय मानते हैं, उस विश्वका नियन्ता और उसका आधार किस तरह तर्कणातीत हो गया? यह किस प्रकारका कारण-कार्य सम्बन्ध, एक गोचर और दूसरा अगोचर, मान

आदि अनेक लेख और अनीश्वरवादी साहित्य और उसके प्रतिपक्षियोंका साहित्य भी इधर प्रकाशित होता रहा है अतः हम विज्ञानके पाठकोंको भी "ईश्वरवाद" और "अनीश्वरवाद" दोनों पक्षोंका रूप दिखला देना चाहते हैं। इसके लेखक स्वामीजो **अनीश्वरवादी** नहीं हैं, परन्तु इस लेखके सिलसिलेमें हम "अनीश्वरवाद" पर भी विचार करेंगे क्योंकि विज्ञानके दोनों ही पक्ष हैं। —रा० गौ०

२–३. विश्वासपर तो संसारका जीवन है। विकासक्रममें निसर्गपर तर्कणाकी प्रवलता जिस मानवजीवनमें है उसमें भी तर्कणाका बहुत ही कम स्थान है। चौबीस घंटेके जीवनमें एक दार्शनिकके भी सौमें निन्नानबे काम केवल विश्वासके आधारपर होते हैं। रही सफलता और असफलताकी बात, सो विश्वास और तर्क दोनोंमें सफलताका निश्चय नहीं है। विकासवादसे सिद्ध है कि प्रत्येक दृढ़ जमा हुआ विश्वास परीक्षाओं, भूलों और सुधारोंके योगका दूसरा नाम है। तर्कणा वहीं आती है जहाँ नयी परीक्षा, नयी भूल और नया सुधार काम करता होता है। इससे पुराना विश्वास उखड़ भी सकता है और अधिक दृढ़ भी हो सकता है। परन्तु जिसके लिये कोई नयापन नहीं है, वह अवश्य ही तथोक्त नये विचारकी उपेक्षा करेगा, और उसे करना ही चाहिये। वह जो कह चुका है उसका पिष्टपेषण क्यों करे? —रा० गौ०

४. जिस आत्म-सत्ताको अगोचर, अगम्य बताया जाता है उसकी सत्तापर किसी अगले लेखमें विचार करूंगा, और वहीं इस बातका उत्तर दिया जायगा कि वह तर्कणातीत है या नहीं। लेखक

५. जिसने ईश्वरकी परिभाषा यही बना रखी है कि वह तर्कणातीत होते हुए भी विश्वका नियन्ता है, उसकी इस कल्पनाको कोई दूसरा मूर्खता मान ले, तो माननेवालेका अधिकार है। परन्तु जब अनीश्वरवादी ईश्वरकी या किसी मानी हुई अगोचर और बुद्धिपर सत्ताको ही कहता है कि "नहीं है" या "नहीं हो सकता" तो वह अपनी बुद्धिपर सर्वज्ञताका आरोप करके हास्यास्पद बन जाता है। भीतरी बाहरी दोनों इन्द्रियोंका परिच्छिन्न होना तो वैज्ञानिक और सर्वसम्मत तथ्य है। इनकी शक्तिको असीम मान लेना तो तर्कसे ही मूर्खता है। तर्कणातीत होते हुए भी तर्कगत जगत्का नियमन करता है, इस कथनमें विज्ञानकी आजतककी जानकारीपर भी विचार करते हुए कोई असंगति नहीं है, क्योंकि विज्ञानने आजतक भी जो कुछ जाना है वह प्रकृतिज्ञानके अपार और अथाह महासागरके किनारेकी कंकड़ियां मात्र हैं। वस्तुतः विश्व भी अबतक हमारी तर्कणासे बाहर ही है। हमारी तर्कणा तो नव मील गहरे जीवनसागरमें ही अभी गोते ले रही है। मरजीवेकी तरह ज्ञान-विज्ञानके नये नये मोती जरूर लाती रहती है, परन्तु उसकी पहुँच अत्यन्त थोड़ी है। —रा० गौ०

लिया गया ?[६] यह संगति पूर्व-कालमें चाहे अनेक अन्य विश्वासियोंके लिए सन्तोषप्रद हो, इस समय अनेक विचारवालोंको संतुष्ट नहीं कर सकती।

ईश्वरको नियन्ता जगदाधार, मान लेनेपर वह कितनी ही सूक्ष्म सत्तावाला क्यों न हो तर्कणातीत नहीं हो सकता। जबतक हम स्थूल दृश्य और तर्कपूर्ण[७] जगत्‌का उसको आदि कारण मानेंगे, तबतक उसे कल्पनासे परे नहीं कह सकते।

कल्पना और तर्कणा एक ही वस्तु नहीं है। जहाँतक हम जगत्‌को "तर्कपूर्ण" मानते हैं वहाँतक उसके तत्त्वाधारको भी। परन्तु न तो जगत् ही "तर्कपूर्ण" है। न उसका नियन्ता ही। दोनों ही अंशतः तर्कणाके विषय हैं।

ईश्वरके विशेषण और उसकी स्थिति

पूर्वकालमें ईश्वरकी सत्ताको चाहे किसी प्रकारसे क्यों न जाना गया हो, यहाँ हम उसपर अधिक विवाद नहीं करेंगे। हम तो यहाँपर उस पक्षको लेंगे जिसको आर्य-जाति बहुमतसे मानती चली आती है। पूर्वकालसे आर्य-जाति ईश्वरको निराकार, निर्विकार, अखण्ड, एकरस, विभु, व्यापक, परिपूर्ण, निर्लेप, निरञ्जन, अनन्त आदि विशेषणोंसे स्मरण करती चली आ रही है।

पूर्व-कालमें इन विशेषणोंको सुनकर चाहे किसीके चित्तमें कोई विचार न उठते हों किन्तु इस समयके विज्ञानालोकमें इसपर भी प्रकाश पड़ना ही चाहिये, ऐसे अनेकके विचार हैं।

इस समय यह तर्कणा उठती है कि जब ईश्वर तर्कणातीत मन और वाणीसे परेका विषय था तो उसकी विभुता, व्यापकता, परिपूर्णता, अखण्डता, एकरसता, निर्लेपता, अनन्तता आदिका ज्ञान किसको और कैसे हुआ? जो यह कहा जाय कि यह ज्ञान आत्मानुभवसे हुआ, समाधिमें हुआ और उस अनुभवका बोध आत्माने मनको कराया जिससे ईश्वरकी स्थितिका बोध संसारको हुआ तो इस प्रकारका निर्देश इस समयके लिए सन्तोषप्रद नहीं। एक ओर तो हम ईश्वरको निराकार संज्ञा देते हैं, दूसरी ओर यह भी कहते हैं कि "अनोरणीयान् महतो महीयान्" वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और बड़ेसे भी बड़ा है। एक ओर तो उसे आकार रहित कहना और दूसरी ओर उसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म और बड़ेसे बड़ा बताना, क्या यह असंगति दोष नहीं[८]? सूक्ष्मता और महत्ता शब्द कुछ न कुछ आकारयुक्त सत्ताकी आकृतिका निर्देश करते हैं। आकार शब्द कुछ न कुछ सीमाका बोध कराता है। ईश्वरके आकारकी भी सीमा है और इतनी सूक्ष्म है जो महत्‌में जा मिलती है, जिसका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे।

आकार युक्त वस्तुको ही अक्षर, अखण्ड, विभु, व्यापक कह सकते हैं। एक रसता भी आकारवान् सत्ताके उसके एक विशेष स्थितिमें आनेपर ही कही जा सकती है। निराकारमें विभुता, व्यापकता, परिपूर्णताका क्या अर्थ और उसमें अक्षरता, अखण्डता कैसी? जो विश्वके एक एक कणमें रम रहा हो, जो अन्त रहित माना जाता हो, जिसको सूक्ष्मसे सूक्ष्म और महान्‌से महान् संज्ञा दी जाती हो, उसका कोई आकार-या अस्तित्व-द्योतक चिह्न न हो, यह बात किसी भी विचारवान्‌के मानने योग्य नहीं[९]।

इस विश्वमें हम जल, हवा आदि कई वस्तुओंको कुछ

---

६. इसमें असंगति लेशमात्र नहीं है। अगोचर परमाणुओंसे बनी विशालकाया धरती सर्वथा गोचर है। आपका तर्क यहाँ मुझे संतुष्ट नहीं करता। —रा० गौ०

७. तर्कपूर्णसे लेखकका अभिप्राय है पूर्णतया तर्क या बुद्धिगम्य।

८. नहीं। विज्ञानसे तो यह कथन तनिक भी असंगत नहीं है। जल और वायु अग्नि और आकाश सभी निराकार हैं, परन्तु आयतन छोटेसे छोटा और बड़ेसे बड़ा हो सकता है। ईश्वरकी कल्पना करने वाला तो स्थूल पदार्थोंसे ही क्रमशः बढ़ता है और अपनी कल्पनाका विकास करते करते वहाँ पहुँचता है जहाँ उपमान पंगु हो जाता है। वहीं कहता है कि ईश्वर है। परन्तु वास्तवमें शायद वह कहीं बीच राहमें ही रुक जाता है। उसके ज्ञातृत्वकी परिधि ज्यों ज्यों विस्तृत होती जाती है, त्यों त्यों उसके कल्पनातीत ईश्वरकी विचारसीमा भी बढ़ती जाती है।

९-१०. "आकार" शब्द सापेक्ष है। जल और वायु भी निराकार ही हैं, परन्तु दोनोंकी निराकारतामें अन्तर है। अग्नि और आकाशकी निराकारता और भी भिन्न है। दोनों निराकार भी हैं। व्यापक भी हैं, असीम भी हैं। अखंड, अनन्त, अक्षर भी हैं। अस्तित्व द्योतक चिह्न इन सबके अलग अलग हैं, आकारसे ही उनका

सीमा तक व्यापक परिपूर्ण, अखण्ड, एकरस पाते हैं। समुद्रमें जल व्यापक, परिपूर्ण, अखण्ड भी देखा जाता है। इसी प्रकार वायुमण्डलकी पृथ्वीपर व्यापकता, परिपूर्णता, अखण्डता, एकरसता आदिका बहुत कुछ प्रमाण मिलता है। यद्यपि हम सब स्थितिमें व्यापक, परिपूर्ण, अखण्ड, एक रस नहीं रह सकते, तथापि कुछ स्थितिमें उक्त बातें पायी जाती हैं। जल और हवाके कणोंका कोई आकार[१०] न होता तो यह कुछ देशमें न तो व्यापक हो सकते थे, न परिपूर्ण। निराकारकी व्यापकता क्या जिसका अस्तित्व ही नहीं। कुछ पुराने विचारकोंका मत है कि निराकार वस्तु ही विभु, व्यापक हो सकती है और उसमें ही अखण्डता, अक्षरता, एकरसता आदि संज्ञाओंका रूप सिद्ध होता है, आकारमें नहीं। ऐसे विचारक यह कहते हुए तो कह जाते हैं पर जब उनसे निराकारसे साकारकी उत्पत्तिका क्रम पूँछा जाता है तो वे इसका ऐसा ही अनर्गल उत्तर देते हैं, जैसा विकासवादको न माननेवाले ईश्वरसे मनुष्यकी उत्पत्तिका उत्तर दिया करते हैं। उनके पास ऐसा कोई साधन या प्रमाण नहीं जिससे यह सिद्ध कर सकें कि निराकार वस्तुसे साकारकी उत्पत्तिका यह क्रम है[११]। पर यह तो इस झंझटमें पड़ेंगे ही क्यों, उनके पास तो एक ही उत्तर काफी है कि ईश्वर और ईश्वरके कार्य तर्कणातीत हैं। वहां मन, वाणीकी पहुँच नहीं[१२]। आत्मानुभवसे ही जो जानना चाहे वह स्वयम्, जाने; बस झगड़ा खतम[१३]।

अस्तित्व जाना जाय, यह अनिवार्य्य नहीं है। बिजलीके कामसे उसका अस्तित्व प्रकट है। उसका आकार कुछ नहीं है। प्रत्येक परमाणुका कोई न कोई आकार अवश्य है परन्तु समूहरूपसे जल, वायु अग्निका कोई आकार नहीं है। इसी तरह जहाँ परमाणु स्वयं विद्युत्कणोंका समूहन है वहाँ परमाणुजगत् निराकार हो जाता है, और जहाँ विद्युत्कणके सूक्ष्म जगत्की कल्पना करेंगे वहाँ उसे भी निराकार ही समझना होगा। अस्तित्व और साकारता दोनों इस तरह एक ही बात नहीं हैं। —रा० गौ०

११. परमाणुवादके इधर बीस बरसोंके भीतरके विकासने इसको भी कल्पना साध्य कर दिया है। परमाणुओंसे भी उत्तरोत्तर सूक्ष्म-कणोंपर विचार करते हुए हम ऐसे परतमाणुओंकी सत्ताकी कल्पना कर सकते हैं जो रेखागणितके विन्दुकी तरह दैर्ध्य वेध और प्रस्थसे सर्वथा रहित, निराकार और निरायतन है और मात्राविहीन भी है, परन्तु जिसके समूहनसे आकार, आयतन और मात्राका आविर्भाव उसी तरह होता है जिसतरह परिमाणमात्र-विहीन विन्दुओंके समूहनसे दैर्ध्य-परिमाणयुक्त रेखा बनती है, और प्रस्थपरिमाण-विहीन रेखाओंके समूहनसे दैर्ध्य प्रस्थ-परिमाणयुक्त तल बनता है और वेध-परिमाण विहीन असंख्य तलोंके समूहनसे तीनों परिमाणों और सर्वदिगाकारसे युक्त घन बनता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर विकाससे निराकारसे साकारका उत्पन्न होना गणितकी कल्पनाके अन्तर्गत है और रेखागणितके तर्कसे सर्वथा सुसंगत है।

[इस टिप्पणीमें कविराज श्रीसुरेन्द्रनाथदासजीकी उस शंकाका भी उत्तर है जो उन्होंने मेरी एक टिप्पणीपर की थी।] रा० गौ०

१२. "यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" [तैत्तिरीयोपनिषत् २।४।१] इस प्रसिद्ध वाक्यमें जवीय मनसे अप्राप्य माननेका केवल यही अर्थ है कि विचारकर्त्ता मनुष्य है और उसके पास तेजसे तेज चलनेवाला दूरसे दूर पहुँचनेवाला यंत्र यही मन ही तो है। यह मन लौट आता है। परन्तु कितनी दूर पहुँचकर लौट आता है, पहुँचनेमें कितने गजोंकी दूरी बाकी रह जाती है, यह तो निश्चय नहीं होता। संभव है कि अनन्त दूरी देखकर ही वह घबरा जाता हो, अथवा वह इस प्रकारका यंत्र ही न हो जो ईश्वरदर्शन करा सके। आखिर मन भी तो एक इंद्रिय है, परिच्छिन्न है। उसको दौड़ ही कितनी? आखिर बिजली भी तो ऐसी चीज है कि न देखी जाय, न सुनी जाय, न सूँघी जाय, न चखी जाय, न छुई जाय और न बिजलीतक मन बुद्धि चित्त अहंकारकी ही पहुँच है, निदान वह सब तरहसे इन्द्रियातीत है, तब भी उसके कार्य्योंसे जो हमारे लिये गोचर हैं, हम उसकी सत्ताको जानते मानते हैं। ईश्वरवादी इसी तरह ईश्वरको अगोचर, निराकार, निर्लेप मानते हुए भी उसके कार्य्य इस गोचर जगत्को प्रत्यक्ष अनुभव करता है। उसका उत्तर कि वहांतक मनकी पहुँच नहीं है, उसका दुराग्रह नहीं है। वह शान्त, सौम्य और सच्चे मनसे एवं अत्यन्त पुष्ट तर्कसे यह उत्तर देता है।

१३. आत्मानुभवका हवाला देना एक वैज्ञानिकके निकट तनिक भी अनुचित नहीं है। जैसे गणितकी किसी कठिन समस्याको समझनेके लिये गणितशास्त्रके अवगाहनकी आवश्यकता है, रसायनके किसी रहस्यको जाननेके लिये उसके सूक्ष्म सिद्धान्तोंका समझना अनिवार्य्य है, मनोविश्लेषण या परलोकवादके रहस्योंको जाननेके लिये विशेष अनुशीलन और स्वयं-परीक्षणकी आवश्यकता है, सबके लिये मार्ग और साधन अलग अलग हैं और सभी साधन सबको

ऐसे उत्तर धार्मिक जगत्‌को चाहे संतुष्ट कर सकते हों, पर वैज्ञानिक जगत्‌को इससे जरा भी संतोष नहीं होता ?

वैज्ञानिक जगत् तो कार्य कारण सम्बन्धको स्पष्ट जानना चाहता है और उसका यह दृढ़ विश्वास है कि इस विश्वसे परे कोई ऐसी सूक्ष्म सत्ता नहीं जिसको प्रयोगोंसे जाना न जा सकता हो।

[इस परकथनका कोई प्रमाण नहीं है, प्रत्युत ऐसा समझनेवाला यदि कोई वैज्ञानिक होगा भी तो अत्यन्त संकुचित, अनुदार और अविवेकी समझा जायगा।—रा०गौ०

ईश्वरकी निराकारतापर विचार

ईश्वरको बहुतसे माननेवाले उसे निराकार कहते हैं। आकारका अर्थ है कोई न कोई रूप वाला, जिसको गणितके अंकोंसे या अन्य उपायोंसे उसके रूपकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाईकी सीमाको बताया जा सके। इसके विपरीत जो वस्तु आकाररहित है उसकी निराकार संज्ञा है। आकार रहित वस्तुका अस्तित्व क्या ? अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वास्तवमें ईश्वरको निरपेक्ष निराकार माना जाता था या कि जैसे हवाको सापेक्ष निराकार मानकर उसका लक्षण दिया है 'स्पर्शवात् वायुः' कहीं इसी प्रकारका तो उसका अर्थ नहीं था ?

हम प्रकृति और एलेक्ट्रोन् प्रोटोन नामक लेखमें दिखा चुके हैं कि उन्होंने प्रकृतिको अव्यक्त, अगोचर जो कहा है। उसका अर्थ यह नहीं था कि वह किसी प्रकार भी व्यक्त नहीं हो सकती। वह जिस प्रकार अपनी सूक्ष्मताके कारण निराकार, अव्यक्त, अगोचर मानी गयी, हवाको भी उसका रूप न दिखाई देनेके कारण उसे निराकार माना, उसी प्रकार ईश्वरकी सूक्ष्मता, अगोचरताके कारण ही उसे भी निराकार माना।

जिन विद्वानोंने हवाको निराकार संज्ञा दी है, उन्होंने ही ईश्वरको भी निराकार संज्ञा दी है। अब, क्या कोई मान सकता है कि प्रकृति और हवा निराकार है ? कदापि नहीं। यद्यपि, प्रकृति और हवाको हम साधारणतया देख और समझ नहीं सकते तथापि उनके आकारवान् होनेमें किसीको संशय नहीं है।

अब तो प्रकृति और हवाके आकार उसकी लम्बाई चौड़ाई, ऊँचाईको भी विशेष विधिसे नाप जोख लिया गया है। सम्भव है इसी प्रकार ईश्वरकी निराकारताको भी नाप जोख लिया जाय, फिर तो संशय नहीं रहना चाहिये।

हमारा तो मत है कि जिस प्रकार पानीमें डूबी हुई मछलियाँ अपनेको उससे विलग न कर सकनेके कारण पानीको नहीं देख पातीं, हम सब हवाके मध्य डूबे रहनेके कारण उसे नहीं देख पाते। ठीक इसी प्रकार सर्वव्यापी ईश्वरमें सदा निमग्न रहनेके कारण उसका सापेक्ष ज्ञान नहीं हो पाता। क्योंकि न तो हम उसको सीमाबद्धकर सकते हैं, न हम उसके रूपका किसी ऐसी वस्तुसे विभेद कर पाते हैं जिससे उसकी सापेक्षता जानी जाय। इसलिये हम सब हवाकी तरह उसे निराकार मानते हैं। वास्तवमें देखा जाय तो जिस प्रकार हवा आणविक आकारवाली है इसी प्रकार उससे महान् सूक्ष्म परतमाणविक आकारवाला ईश्वर है।

इस बातको तो प्रत्येक विद्वान् मानेगा कि पूर्वकालमें जिन बातोंका निश्चय किया गया था अधिकतर वह बातें या तो आत्यानुभवसे जानी गयी थीं या तर्कणासे उनका निश्चय किया गया था। उस समय किसी हवा या हवासे सूक्ष्म वस्तुओंके नापने या देखनेका सरल साधन न था न उस समय किसी बातकी सूक्ष्मता स्थूलता बतानेके सही सही नपने ही ठहराये गये थे। प्राचीन समयमें शरीरका

सुलभ नहीं हैं। ठीक उसी तरह ईश्वर-साक्षात्कारके लिये साधन है, आत्माका निजी अनुभव, और वह सबके लिये एक ही छोटेसे जीवनमें सहज सुलभ नहीं है। अनुभवीकी ओरसे ऐसा उत्तर शास्त्रार्थका मैदान छोड़कर भागनेके लिये बहाना नहीं है। सर्वतंत्र स्वतंत्र अनुभवियोंका ही ऐसा उत्तर होता है। तर्ककी दिमागी कसरतमें निपुण पहलवान इसी एक पेचका मुकाबला नहीं कर सकते, और तत्त्वज्ञानके अखाड़ेमें आत्मानुभव सब पेचोंका सिरताज उचित ही रीतिसे माना जाता है। अनुभवकी महत्तापर जो कहा जाय थोड़ा है। **विज्ञान**को इसी बातका तो गर्व है कि मैं अनुभव-सिद्ध हूँ। ईश्वर-साक्षात्कार भी अनुभव सिद्ध होना चाहिये, तभी तो वह वैज्ञानिक बात होगी। यह सच है कि ऐसे अनुभवी जगत्‌में अत्यन्त कम हैं, परन्तु मेरी समझमें इनसे भी कम रेडियमपर सैकड़ों अनुभव करनेवालोंकी संख्या है जिनकी बदौलत रश्मिविकीरण शास्त्र और पिछले तीस वर्षोंके वैज्ञानिक अनुसन्धान मालामाल हो गये हैं।—रा० गौ०

रक्त, पित्त तथा वीर्य-जैसी धातुओंको अंजलियोंसे नापकर बताया गया था। आणविक नापोंका निर्देश यहाँसे आरम्भ होता है, यथा—

जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः
तस्य षष्ठितमो भागः परमाणुः स उच्यते।

अब कहिये जिन धूलिकणोंको हम प्रकाश किरणोंमें देखते हैं उन रजकणोंके साठवें भागसे ही जहाँ सूक्ष्मता की नाप चली हो, उससे यदि कोई सूक्ष्म आकारवाली वस्तु उन्हें ज्ञात हो तो उसके लिये वह सिवाय निराकारके और क्या संज्ञा दे सकते हैं।

हम तो जहां तक समझ पाये ईश्वरकी निराकारिता पर पूर्व पुरुषोंके कथनका यही अर्थ निकाल सके हैं कि ईश्वर सदा ही अव्यक्त, अगोचर रहा है, इसी लिये उसकी निराकार संज्ञा हुई। यदि वस्तुतः उसे वह निराकार मानते होते तो "अनोरणीयान्महतो महीयान्" कभी न कहते।

निष्पक्षतापूर्वक विचार करें तो हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि ईश्वर नामक सत्ता स्थूल आकारयुक्त जगत्का मूल कारण है। इससे भिन्न यह भी मानते हैं कि एक समय वह आयगा जब यह सारा दृश्य स्थूल जगत् उसके रूपसे ही तिरोहित हो जायगा। जिस सत्तासे स्थूल जगत्की उत्पत्ति और उसका लय भी जिस सत्तामें मानते हैं, उसका कोई आकार न हो, यह मानने लायक बात नहीं मालूम होती।

जो सत्तावान् पदार्थ समस्त विश्वमें व्यापक और परिपूर्ण हो जिसको जगदाधार भी माना जाता हो, जिसके अस्तित्वको स्वीकार किया गया हो, वह कितना ही सूक्ष्म स्वरूपवाला क्यों न हो, है अवश्य, उसका कुछ न कुछ रूप,—परतमाणु रूप सही,—अवश्य ही होगा। उसको निराकार नहीं माना जा सकता। निराकारताका आरोप जबर्दस्ती है।

जिस प्रकार उच्च गणितमें अत्यन्त न्यून मात्रा शून्य या नितान्तका अभाव नहीं होता, पर व्यवहारमें या स्थूल विचारसे हम उस सूक्ष्म अंशांशको शून्य ही कहते हैं, उसी प्रकार मैं समझता है कि पूर्व पुरुषोंने स्थूल बुद्धि प्राणियोंको समझाने और ईश्वरकी सूक्ष्मताको दर्शानेके लिये-क्योंकि उसकी सूक्ष्मताको हर कोई नहीं समझ सकता—निराकार कहा हो तो कोई अनुचित बात नहीं है।

प्राचीनकालमें ईश्वरको कैसे जाना गया

प्राचीन समयमें ईश्वरको किस प्रकार जाना गया? इस बातकी खोज की जाय तो प्राचीन ग्रन्थोंके अनुशीलन तथा आप्तपुरुषोंकी प्रचलित रूढ़ियोंसे ज्ञात होता है कि इसकी निश्चितिके दो[१४] कारण थे।

(१) एक तो वह अनेक प्राकृतिक घटनाएँ थीं जिनका वह उस समय समाधान नहीं कर पाते थे। यथा, नियत समय पर दिन रात्रिका होना, ऋतुओंका बदलना, ऋतुओंके अनुसार मेघोंका आना, वर्षाका होना, विद्युत्पात और उपलवर्षा, उल्कापात, चन्द्रकलाका घटना बढ़ना, ग्रहण लगना, नक्षत्रोंकी गति आदि अनेक विश्वके नियन्त्रित व्यापार।

(२) दूसरे, मानव जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक दुःख सुख जन्म मृत्यु आदिकी ऐसी घटनाएँ थीं जिनका समाधान प्रत्यक्ष कारण-कार्य्य—वादसे नहीं होता था। यथा—जन्म लेकर एकका दुःखी होना और दूसरेका सुखी होना किसीके बालक जन्मते ही या ऐसी स्थितिमें मर जावें

---

१४. खेद है कि स्वामीजीने वही स्थूल कारण इस स्थलपर उपस्थित किये हैं जो साधारणतया समाजविज्ञानी उपस्थित करते हैं। समाजमें साधारणतया आस्तिक और नास्तिक दोनों प्रकारके मनुष्य हैं। उन दोनोंके लिये ये कारण बताये जाते हैं। परन्तु साधारण जनसमुदायकी आस्तिकता भी केवल इन्हीं दो कारणोंपर अवलम्बित नहीं है। जातिरक्षा और आत्मरक्षा प्रेरणा और भय, आतंक, श्रद्धा आदिके भाव भी प्रेरक हैं। परन्तु सभी मनुष्य समाजके भीतर एकसे नहीं होते। विकसित दिलों और दिमागोंके भीतर ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद दोनों ही अधिक उच्च कोटिके होते हैं। और जब हम आत्म वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करते हैं तो समाजविज्ञानी विचार ओछा हो जाता है। वास्तवमें ईश्वरकी सत्ता अध्यात्म—विज्ञानका विषय हो तो हो भी सकती है। जैसे जीवविज्ञानसे पूर्ण संयुक्त होते हुए भी मनोविज्ञान अलग ही विषय है, वैसे ही समाजविज्ञानके अन्तर्गत ईश्वरवादके होते हुए भी उसका सूक्ष्म तत्त्व अध्यात्म-विज्ञानका ही विषय है। उसका अधिकारी अध्यात्मविज्ञानी ही है। समाजविज्ञानीका उस विषयमें वादानुरोध अनधिकार-चेष्टा है।

सहयोगी-विज्ञान

हा ! डा० शंकर राव भिसे !!!

भारतीय विज्ञानजगत्‌ने इस वर्ष यह दूसरा रत्न खोया। डॉ० भिसे उन वैज्ञानिकोंमेंसे थे जो किसी भी देशका गौरव और भूषण हो सकते हैं। पराधीन देशमें पैदा होनेसे डॉ० भिसेका नाम उतना विख्यात नहीं हुआ, जितना स्वाधीन देशोंके आविष्कारकोंके हुआ करते हैं! डॉ० भिसे खानदेशके धूलिया स्थानमें पैदा हुए थे। अन्तमें ये ही अमरीकाके पुरोगामी वैज्ञानिकोंकी पंक्तिमें बैठाले गये। उनकी जीवनी विज्ञानके भाग ३७ संख्या ६ में (पृ० १७९-१८५) हमारे पाठक पढ़ चुके हैं। 'लीनोटाइप' नामका छपाई-कंपोजका यन्त्र श्री भिसेने आविष्कृत किया था! आज भी बाजारमें 'भिसे-टैप' मौजूद हैं। अमरीकामें आपने विद्युत एवं रसायनमें कई नये आविष्कार किये। आपका आटोमिडीन आविष्कार ओषधि-जगत्‌में विशेष स्थान रखता है। लगभग २० साल तक अमरीकामें रहकर गत ७ अप्रेलको श्री शंकर राव भिसेका न्यूयार्कमें देहान्त हो गया। मृत्युके समय उनकी उम्र ६८ वर्षकी थी। डॉ० भिसेकी मृत्यु पर प्रत्येक सहृदय भारतीयको मर्मान्तिक दुःख होगा। परन्तु कालकी निर्दयताका क्या प्रतीकार है!

वैज्ञानिक संडास

पिछले अंकमें हम वैज्ञानिक संडासपर एक लेख दे चुके हैं। उसके अन्तमें जो चित्र दिया गया था, वह अपूर्ण था। संडासकी खुड्डीसे उसके कृमिकुण्डका सम्बन्ध नहीं

जब उसको उनसे सुख या आराम मिलनेवाला हो। एक बिना परिश्रमके धनी हो जाता, दूसरा घोर परिश्रम कर उदर पूर्त्ति भी न कर पाता, इत्यादि, इत्यादि।

प्राचीन समयके विद्वान् शरीरसे भिन्न एक आत्मसत्ताके अस्तित्वको स्वीकार कर चुके थे[15]। और इस आत्माका आवागमन और विविध योनियोंमें जानेका भी विश्वास कर चुके थे। इसीलिये उन्हें जब मानव जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली उक्त गूढ़ पहेलियोंका अर्थ न ज्ञात हो पाया तो उन्होंने जिस प्रकार निर्बल बलवान्‌की सापेक्षित सत्ताको अपने व्यवहारमें देखता है, उसी प्रकार यह भी निश्चित किया कि विश्व और आत्मसत्ता पर नियन्त्रण करनेवाली कोई अचिन्त्य और अधिक प्रबल सत्ता होगी।

इसका अनुमोदन आत्मदर्शियोंने किया

उक्त विचारसे मानव जगत्‌में यह भावना उत्पन्न की गयी कि इस विश्वका कोई नियन्ता सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् है तो उसे पानेके लिये विद्वान् व्यक्तियोंने आत्मसंयमका उपाय ढूँढ़ा। जिन जिन व्यक्तियोंने संसारसे बीतराग होकर आत्मसंयमकी ओर विशेष रुचि बढ़ायी, उन्हें अपने उस अभ्यासित जीवनमें सुख और आनन्दका अनुभव होने लगा। और उन्हें जो मनोनीत अनुभवमें सुखका भास हुआ उसे उन्होंने आत्मानन्द माना। इसी आत्मानन्दके आधारपर यह कल्पना कर ली गयी कि कोई इससे परे परमानन्द भी है जहाँ ईश्वरका साक्षात्कार होता होगा। इस काल्पनिक विचारने अनेकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया। तथा इससे ईश्वरकी अचिन्त्य अगोचर सत्ताके विश्वासमें अधिक जोरदार सहायता मिली।

(क्रमशः)

---

१५. विकासवादी ऐसा नहीं मानते। मानव—सभ्यताके विकासके साथ ही साथ वह ईश्वरकी कल्पनाका भी क्रमविकास मानते हैं। पहले आतंक और भयसे वह अधिक बलवान अधिक भयानकमें देवत्वका प्रतिपादन करता था। पहले यह दृष्ट था। फिर धीरे धीरे अदृष्ट भूतप्रेतादि पूज्य बन गये। उस प्राचीनकालमें आत्मा या ईश्वरकी कोई कल्पना न थी। ईश्वरकी कल्पना तो बहुत अधिक विकासके बाद पैदा हुई।

दिखाया गया था। पाठकोंके लाभार्थ यहाँ हम वह चित्र देते हैं जिसमें यह दिखाया गया है कि खुड्डीको साफ करनेके लिये ३ गिलन पानी गिरानेवाली टंकी कैसे लगी रहती
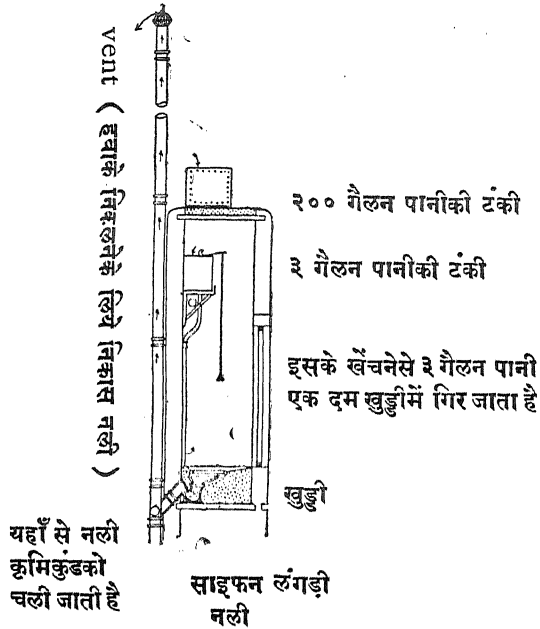
है और ज़ंजीर खींचनेसे कैसे अपने आप खुड्डी धुल जाती है, और मैला किस तरह सैफ़न या लंगड़े नलसे होकर कृमिकुंडमें चला जाता है।

संडासका यह वैज्ञानिक विकास हालका ही है। इन्दौरमें इस सम्बन्धमें जो परीक्षाएँ हुई हैं, उनकी चर्चा परमहंस राघवदासजीने आजमें लगभग उसी समय की है जब विज्ञानका पिछला अंक छप चुका था। उसमेंसे आवश्यक अंश हम यहाँ उध्दृत करते हैं--

"पहले तो इन्दौरके प्रमुख धनी सर हुकुमचन्दजीका सेपटिक टैंक था। उनके बँगलेमें मैला ट्रेनके बन्द डब्बोंमें आता और उसको भीतर ही भीतर कीड़े खाकर सबको कीड़े बना देते हैं। ये कीड़े आपसमें लड़ते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि वे मरकर पानी हो जाते हैं। और वही पानी नालीसे निकल जाता है। यह व्यवस्था शास्त्रीय ढंगसे है तो ठीक पर यहाँ उसमें कई दोष रह गये हैं जिसके फलस्वरूप वहाँ बदबू आती है।

इसके बाद श्री महाराज साहब इन्दौरके लाल बागका टंक देखा। उसमें इससे अधिक स्वच्छता थी। इसके बाद जिस महलमें महाराजा रहते हैं उसका टंक देखा। वहाँ ड्रेनेज पद्धति है जिससे सारा मैला और गन्दा पानी इस टंकमें आता है। उसके पास ही कंकड़ रोड़े डालकर एक ऊँचा गोल चबूतरा बनाया गया है जिसमें लोहेके डण्डे लगाये गये हैं। जब भीतरसे पानीका दबाव पड़ता है तब उस खोखले लोहेके डंडोंके छेदोंमेंसे वह पानी कंकड़ पत्थरपर पड़ जाता है और नीचेके छेदोंमेंसे बाहर निकल आता है। बाहर निकलनेवाले पानीमें जरा भी बू नहीं है। वह उतनाही स्वच्छ है जैसा कि कुएँ तालाबका होता है। यह पानी बहुत अच्छा खाद है। पासवाले खेतोंमें वह छोड़ा जाता है। इस पद्धतिमें पहली कठिनाई यही है कि यह बहुत खर्चीली है। दूसरी बात यह है कि यदि टंक जरा भी खुला रहा तो आफत हो जाय।"

अभी इसमें खर्च भी बहुत लगता है और भूलें भी आफत ढानेवाली होती हैं। उसका कारण है "प्लंबर"। अपने स्वार्थसे प्लंबर खर्च बढ़ाता है और अपनी अनभिज्ञतासे उसे अशुद्ध बनाता है। जब लोग इससे पूर्ण अभिज्ञ हो जायँगे, तब इसके दोनों दोष दूर हो जायँगे। शहरोंके लिये फिर भी पातालतोड़ कुएँ और मामूली पुरानी संडासें अच्छी होंगी। हम इन दोनों विषयोंपर कभी फिर लिखेंगे।

श्रीजीवाजी वेधशालाकी सेवाएँ

श्रीगोविन्द सदाशिव आपटे महोदय उज्जैनकी श्रीजीवाजी वेधशालाके अध्यक्ष हैं। आपके प्रसिद्धिपत्रक जयाजी प्रतापमें निकल रहे हैं। प्र० प० नं० २६ में लिखते हैं—

आजकल ज्योतिषके सम्बन्धमें जो सुधार चल रहे हैं उनमें नाक्षत्र वर्षमानका सुधार होना अत्यावश्यक है। जबतक इसका सुधार नहीं होगा तबतक अन्यान्य सुधार निरर्थक ही हैं। प्रत्येक ज्योतिष-सम्मेलनमें वर्षमान-सम्बन्धी चर्चाएँ होती हैं, परन्तु हमारे पुराणप्रिय ज्योतिषी आज भी इस बातपर तैयार नहीं हैं कि जो हमारा सूर्यसिद्धान्तोक्त वर्षमान वास्तविक शुद्ध नाक्षत्र वर्षमानकी अपेक्षा ८॥ पल अधिक है उसे छोड़कर शुद्ध वर्षमानका ही ग्रहण करें। शुद्ध वर्षमानके सम्बन्धमें हमारे कई एक ज्योतिषियोंका यह भी कथन है कि यह पाश्चात्य ग्रन्थोंमें लिखा हुआ वर्षमान जबतक हमें हमारी वेधशालाओंमें लिये जानेवाले वेधोंद्वारा प्रतीतिदायक न हों तबतक इसको ग्रहण नहीं करेंगे। इस हेतुसे तथा श्री० रा० चिन्तामणराव-

जी वैद्य व और कई अन्य सज्जनोंकी सूचनासे हमने यहाँ श्रीजीवाजी वेधशालामें निःशट और मुख्य मुख्य नक्षत्रोंके याम्योत्तर लंघनकाल वेधसे देखना आज चार वर्षसे आरम्भ किया। जिनमें मघा, चित्रा, शततारका, रेवती और मृग पुंजमें का "कैपा" तथा शततारका पुंजमें का 'बीटा' इनमेंसे शततारका और रेवतीके चार वर्षके वेध तथा मघाके ५ वर्षके वेधसे जो हमें अंक उपलब्ध हुए वे हम अपने पाठकों की प्रतीतिके निमित्त यहाँ लिखते हैं।

अंकोंका विस्तार देकर आप जिस निष्कर्षपर पहुँचते हैं वह इस प्रकार है—

इस ४१५ वर्षके हिसाबसे यह तो सिद्ध होता है कि एक वर्षका मान ३६५ दिन १५ घ० ३१ प० ३० वि० कभी नहीं हो सकता। यह जो कुछ भी गणित आप लोगोंके सामने रखा है वह अपने ही शास्त्रमें कहे हुए याम्योत्तर भित्ति-यन्त्रके वेध द्वारा सिद्ध किया है। अब इसे नहीं मानना अपने शास्त्रको ही नहीं मानने जैसा है। इतनेपर भी जिन महानुभावोंको शंका हो वे हमारे यहाँ आकर प्रत्यक्ष वेध लेकर अपने मनका समाधान करे। उन्हें यहाँ सर्व प्रकारकी वेधोपयुक्त सहायता प्राप्त होगी।

आधुनिक पञ्चाङ्ग और फलित ज्योतिष

इस विषयपर १६ अप्रैलके आजमें लिखते हुए पंडित चन्द्रशेखर पाठक ठीक ही कहते हैं कि जब पञ्चाङ्ग ही शुद्ध नहीं तो फलितकी शुद्धता तो असंभव ही है। वह लिखते हैं—

"अब पञ्चांगोंकी भिन्नता लीजिये—एक ही ग्रह किसी पञ्चांगमें आज अस्त हैं तो दूसरेमें दो दिन बाद। किसीमें आज संक्रान्ति है तो किसीमें चार दिन बाद। विशेषता यह है कि सूर्यकी संक्रांति सबकी साथ ही होती है। हाँ, संक्रांति कालमें थोड़ा अन्तर अवश्य रहता है। एक पञ्चांगमें शुक्रग्रह संवत् १९९१ की चैत्र कृष्ण अमावस्याको राश्यादि ०।२१।३४। २९ है, गति कलात्मक ७२।३६ है, उस पंचांगमें संवत् १९९२ में चैत्र शुक्लाष्टमीको वही ग्रह राश्यादि १।१८।२१।५ गति ७२।८ है। अर्थात् ७ दिनके अन्दर शुक्र भगवान् अपनी (संजीवनी शक्ति द्वारा) करीब २६ अंश आगे बढ़ गये। नहीं मालूम किस गणित द्वारा और किस ग्रहलाघवद्वारा यह ग्रहस्पष्ट किया गया है। दूसरे पंचांगमें चैत्र शुक्ल ९को वही शुक्र राश्यादि १।४।५९।३४ है गति ४०।४८ है। और वही ग्रह दूसरे ही दिन राश्यादि १।५।१०।२३ है गति ७२।५ है। इस अन्तरको देखते हुए ज्ञात होता है कि ग्रहोंकी कोई गति नहीं है। बेखटके गेंदकी तरह उछलते हैं। यदि इन बातोंके प्रभावपर विचार किया जाय तो कितना भयंकर परिणाम होता है। क्या वे पंचांगकार इस बातको विचारते हैं? क्या इसमें हजारों लाखों विद्वानोंकी मान-हानि नहीं है? बेचारे साधारण विद्वान कितने लांछित होते होंगे। इनको कौन सुधारे?

हम पञ्चाङ्गोंका एकाकार होना सभी बातोंके लिये आवश्यक समझते हैं और एक राष्ट्रियताके लिये तो यह अनिवार्य्य ही है। हम इन्दौर दरबारके इस प्रयत्नको स्तुत्य मानते हैं। हिन्दू विश्वविद्यालयको ही केन्द्र बनाकर क्या यह सम्भव नहीं है? यहाँके ज्योतिषी-पुंगव क्या सो रहे हैं? रा० गौ०

रिसर्च और आयुर्वेद

कविराज हरिकृष्ण सहगल हकीम इसी विषयपर हिन्दी मिलाप लाहौरके एक अंकमें लिखते हैं—

देखिये दूसरी चिकित्सा-प्रणाली वालोंने रोग निर्णयके लिये क्या क्या बनाया है। फुप्फुस व हृदयकी परीक्षाके लिये स्टैथस्कोप, ज्वरके लिये तापमापक, रक्तभारके लिये रक्तभारमापक यंत्र, वस्ति रोग तथा मूत्र रोग जाननेके लिये युरीनोमीटर, मूत्र शर्करा जाननेके लिये सीक्रोमीटर, रक्त व थूक परीक्षाके लिये माइक्रोस्कोप आदि निर्माण किये हैं। उनकी इन खोजोंको पढ़ कर, हम इस प्रकार सन्तोष कर लेते हैं, कि हमें इन साधनोंकी आवश्यकता ही क्या है। जब कि नाड़ी पर हाथकी अंगुलियोंको रख कर २—२ व ३—३ दिनका खाया पियातक बताया जा सकता है। तो क्या रोगोंको नहीं जाना जा सकता? और फिर जब नाड़ी परीक्षाके साथ दर्शन, स्पर्शन तथा प्रश्न सम्मिलित हों तो क्या फिर भी इन यंत्रोंकी आवश्यकता रह सकती है?

परन्तु आज भारतमें ऐसे नाड़ीविज्ञानवेत्ता कितने हैं? क्या वैद्य बन्धु बता सकते हैं, कि जिस प्रकार कंठप्रदर्शक यंत्रकी सहायतासे कंठ, योनिदर्शक यंत्रकी सहायतासे योनि, गुदादर्शक यंत्रकी सहायतासे गुदा और लिंगदर्शक यंत्रकी सहायतासे लिंगपरीक्षा हो सकती है क्या उसी प्रकारका ज्ञान केवल आजकी नाड़ी परीक्षा द्वारा हो सकता है? कदापि नहीं। वैद्योंको रिसर्चकी आवश्यकता है।

युरोपके आविष्कारोंने आमाशय परीक्षाके लिए एक यन्त्र गास्ट्रोस्कोपका आविष्कार किया है। यह एक प्रकारका बहुत छोटासा कैमरा है जिसे धागे द्वारा आमाशयमें उतार दिया जाता है।

कास श्वास तथा दूसरे टेंटुवेके रोगोंके जाननेके लिए भी एक प्रकार-के कैमरेका आविष्कार किया गया है। इसे ब्रांकोस्कोप कहते हैं। इसे भी टेंटुएमें उतारा जाता है। मूत्राशयके रोगोंको जाननेके लिए एक यन्त्र (कैमरा) सिस्टोस्कोपका आविष्कार किया गया है। और लीजिये शरीरकी नस नस नाड़ी अस्थि तथा प्रत्येक अंग प्रत्यंगके रोगको ऐक्सरे द्वारा प्राप्त फोटोमें प्रत्यक्ष सब कुछ देखा जा सकता है। यह युक्ति ठीक नहीं कि हम नवीन यन्त्रों व सामानोंके बिन रिसर्च नहीं कर सकते। क्या हम उनका अभाव होनेपर भी औषधियोंके गुणों और प्रयोगोंको नहीं जान सकते? क्या हम नवीन रोग और उनकी चिकित्साको निश्चित नहीं कर सकते? अगर यह सब कुछ कर सकते हैं, और निश्चय ही कर सकते हैं तो फिर कोई वजह नहीं कि हम पंगु बनकर अपनी किस्मतका मातम करते रहें।"

सहगल महोदय ठीक ही कहते हैं। हम उनके सिद्धांतसे पूर्णतया सहमत हैं। हिन्दूविश्वविद्यालयमें, गुरुकुलकांगडीमें, लाहौरके आयुर्वेद-विद्यालयमें, दिल्लीके तिब्बिया-आयुर्वेदिक कालिजमें, एवं अन्यान्य आयुर्वेद-सम्बन्धी संस्थाओंमें चाहें तो खोजका अपरिमित काम हो सकता है। आयुर्वेदपर जो पत्र निकलते हैं उन खोजोंके प्रकाशनके लिये पर्य्याप्त हैं। परन्तु इन सबका झुकाव खोजकी ओर हो तब न? कमाने खानेकी चिन्ता सबको सर्वोपरि है। पापी पेट कुछ होने हवाने नहीं देता। —रा० गौ०

इंजिनोंकी गतिको रोकनेवाली किरण

हालहीमें इटलीसे विश्वस्त समाचार आ रहे हैं कि मारकोनी महोदयने अब एक ऐसी किरणका आविष्कार किया है जिसकी सहायतासे मोटर, वायुयान आदिके इञ्जिन बंद किये जा सकते हैं।

उदाहरणार्थ यदि आकाशमार्ग द्वारा कोई इन अद्भुत किरणोंसे सुसज्जित नगरपर आक्रमण करे तो इनकी एक रश्मि वायुयानके ऐञ्जिनपर पड़कर उसे बेकाम कर देगी। फल यह होगा कि वायुयान बेकाम होकर गिर पड़ेगा। इसी प्रकार सड़कपर चलती हुई मोटरें भी रोकी जा सकेंगी कहा जाता है कि रोममें एक दिन यही हुआ भी। एक मील लम्बी सड़कपर कुछ मोटरें आध घंटे बेकाम खड़ी रहीं। अन्तमें अपने आप उनके एंजिन चलने लगे। मालूम होता है कि मुसोलिनी तथा इटालियन युद्ध सचिव आदिके सामने मारकोनी अपनी रहस्यमय किरणसे कुछ प्रयोग कर रहे थे। उसीके कारण यह मोटरें रुक गयी थीं।

यदि यह समाचार सत्य है तो संसारमें इस आविष्कारके कारण एक विलक्षण क्रान्ति हो जावेगी। इसी किरण कवचसे आवृत नगर सदा सुरक्षित रह सकता है। हाँ, सम्भवतः वैज्ञानिक इस किरणका कोई तोड़ भी निकाल लेंगे। फिर भी आधुनिक राजनीति तथा वैज्ञानिक संसारके लिये यह नयी किरणें बड़े महत्वकी होंगी।

जन्मान्तरकी बातें और प्रेततत्व

इस विषयपर आजमें अपने अग्रलेखमें सम्पादक महोदय कहते हैं—

खेदकी बात है कि इसमें अधिकतर दो प्रकारके आदमी पाये जाते हैं। बड़ा वर्ग उनका है जिनके लिये असम्भव कुछ भी नहीं है, धर्मग्रन्थका नाम लेकर जो कुछ बताइये उसे वे बाबा वाक्य माननेको तैयार हैं। दूसरा वर्ग छोटा है पर इसमें पढ़े लिखे लोग हैं और जो बात इनके प्रोफेसर अथवा पाश्चात्य विद्वान नहीं बताते उसे सुनते ही ये नाक सिकोड़ते हैं। खोज न पहला वर्ग करता है, न दूसरा। इन दोनोंके बीच सत्यका लोप हो जाता है। हम समझते हैं कि परलोक विद्याके सम्बन्धमें यही बात हो रही है। यह अत्यन्त शोचनीय स्थिति है। उत्साही और विचारशील लोगोंको चाहिये कि गुट बनाकर निःस्वार्थ बुद्धिसे—केवल सत्य जाननेकी इच्छासे इस विषयका प्रयोग द्वारा अनुसन्धान करें। यदि यह सत्य सिद्ध हुआ तो कितना बड़ा काम होगा, मानवी दृष्टिपरसे एक परदा उठ जायगा, मृत्युकी भीषणता घट जायगी। और यदि असत्य सिद्ध हुआ तो एक जाल कट जायगा एक धोखेकी टट्टी टूट जायगी, ढोलकी पोल खुल जायगी। आशा है, हमारे सत्यप्रिय पाठक इधर भी ध्यान देंगे।

यह विषय ही ऐसा है कि सच्चे प्रयोगकर्त्ताओंमें झूठे छली भी सहज ही छिप सकते हैं। झूठोंका कभी न कभी भंडाफोड़ भी हो जाता है। परन्तु इन धूर्त्तोंके कारण सत्यको भी सन्देहकी दृष्टिसे भले ही देखा जाय, उसकी कितनी ही बदनामी हो जाय, परन्तु सत्य तो—

"अच्छेद्योऽयमदाह्योयमक्लेद्योऽशोष्य एवच"

अक्षय है। पाश्चात्य देशोंमें इस वैज्ञानिक खोजकी रिपोर्टोंसे पुस्तकालय भरे हैं, नित्य खोजका काम हो रहा है। यहाँ भारतमें भी काफी प्रचार है। और बहुत प्राचीनकालसे है। धूर्त्तता, अनधिकारिता और दुष्प्रयोगके कारण यह विद्या सदा गोपनीय रही और आज भी है। परन्तु वैज्ञानिक ढंगपर इसके प्रयोग सुसाध्य हैं और करणीय हैं। वैज्ञानिक कोश ग्रन्थोंमें इस विषयको आदरणीय स्थान प्राप्त है।

रा० गौ०

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४१ } प्रयाग, कर्कार्क, सं० १९९२ विक्रमी, जुलाई, सन् १९३५ ई० { संख्या ४

स्वस्ति-सूक्ति

(रचयिता—साहित्यरत्न पं० भगवतीलाल श्रीवास्तव्य, "पुष्प", काशी)

आखर अटल अटूट अज्ञता - अंशु-विदारक
निन्दक-नीति-निकृष्ट नित्य निर्द्वन्द्व निवारक
विलख विश्व वैचित्र्य बीच व्याकुल बहु जन-मन
पुष्कल पूर्ण प्रमाण प्रेरि पोषत प्रति पल पन।

वह विश्व-वन्द्य विज्ञानवर,
जय-जय नवल-निधान हो।
कल-कीर्ति-केन्द्र कल्याण-प्रद,
कार्य-कलाप-विधान हो ॥

कृत्रिम वस्तुओंकी उत्पत्ति और उनकी परीक्षा

(लेखक—स्वामी श्रीहरिशरणानन्दजी वैद्य, अमृतसर)

नकली ओषधियोंका बाहुल्य
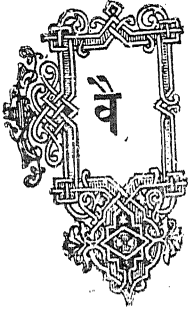
वैद्य या हकीम जिन वस्तुओंका औषधरूपमें प्रयोग करते हैं वह न तो एक देशमें उत्पन्न होती हैं और न एक स्थानपर मिलती हैं। खपरिया, हरताल, त्रायमाण, कंकुष्ठ, सुरमा, काला जीरा, हींग आदि सैकड़ों वस्तुएँ काबुल, कन्धार, गजनी, ईरान आदि देशोंसे आती हैं। शृंगिक विष, अतीस, निर्विषी, रेवदचीनी, कुष्ट, पुष्करमूल, शिलाजीत, जहरमोहरा आदि अनेकों वस्तुएँ हिमालयसे आती हैं। औषधोपयोगी वस्तुओं-की सारे भारतमें काफी माँग रहती है। परन्तु इनकी कोई खेती तो होती नहीं कि मनुष्य अपनी आवश्यकताके अनुसार उत्पन्न कर ले। इन सब वस्तुओंमेंसे खनिज तो भूगर्भसे निकाली जाती हैं। वनस्पतियाँ अपने आप जंगलोंमें उत्पन्न होती हैं। कई बार खनिज द्रव्योंकी खानें समाप्त हो जाती हैं। कभी कभी दैवी दुर्घटनासे खानें बंद हो जाती हैं। ऐसी स्थितिमें उन खनिज द्रव्योंका निकलना या मिलना कठिन हो जाता है। कभी कभी जितनी माँग किसी खनिज द्रव्यकी होती है उतना बाजारमें नहीं आता। इसी प्रकार कभी कभी वनस्पतियोंका भी अभाव हो जाता है। कभी वर्षा नहीं होती या अतिवर्षा आदि ईतियोंके कारण जब वनस्पतियाँ बाजारमें नहीं आतीं, ग्राहकोंकी माँग बराबर बनी रहती है तो ऐसी स्थितिमें उक्त वस्तुओंका भाव बाजारमें चढ़ जाता है। जब किसी चीजका भाव बाजारमें चढ़ जाय वह वस्तु बाजारमें कम हो या न मिले तो ऐसी दशामें व्यापारी जनताकी आवश्यकताको देखकर लोभवश अन्य वस्तुओंसे उसके जैसी वस्तु बनाकर या तो उस वस्तुमें मिश्रित करके बेंचते हैं या उस कृत्रिम वस्तुको ही असली वस्तुका नफा लेकर बेंचते हैं। इस समय इस प्रकार कौन कौनसे औषधोपयोगी द्रव्य नकली और मिलाकर बेंचे जा रहे हैं; उन्हें किस प्रकार बनाया जाता है और उनके जाँचनेकी क्या विधि है? वैद्योंके लाभार्थ इन विषयोंपर हम एक लेख-माला विज्ञानमें प्रकाशित कर विज्ञानके पाठकोंको उनसे बचनेका साधन प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है पाठकोंको इससे लाभ होगा।

पापड़ीखार या जवाखार

ओषधियोंमें जवाखारका काफी उपयोग होता है। यवसे राख बनाकर उससे यवक्षार तय्यार करनेमें काफी खर्च होता है। इसीलिये यवक्षार असली न जाने कितने समयसे काफी महँगा बिकता चला आरहा है। बाजारमें इसकी उतनी आय नहीं, जितनी खपत है। इसीलिये व्यापारियोंने इसको नकली तय्यार करनेका साधन ढूँढ़ निकाला।

नकली जवाखार या पापरीखार बनानेकी विधि

नमक सैंधव १ भाग, शोरा १ भाग, सोडा बाईकार्ब १ भाग, तीनोंको मिलाकर पानीमें घोल दे और उस जलको अग्निपर गाढ़ा करें जब उक्त घोल गाढ़ा हो जाय उसे उतारकर थालीमें जमादे। इसकी पतली पतली पपड़ी जम जायगी। इसको बाजारमें पपड़ीखार जवाखारके नामसे बेंचते हैं।

परीक्षा

यवक्षार प्रायः चूर्णके रूपमें आता है और खाते समय जिह्वापर कुछ तीक्ष्णतायुक्त क्षारका स्वाद देता है। परन्तु यह नकली जवाखार पपड़ीकी शकलमें बनाया जाता है और जिह्वापर रखनेसे इसमें वह तीक्ष्णता नहीं होती। बल्कि उसके स्थानपर कुछ शोरेकी ठण्ढक और कुछ निमकमिश्रित क्षारका स्वाद आता है। जहाँ जवाखार ५) रु० सेर बिकता है वहाँ यह ॥) ॥=) सेर बिकता है। इसको तय्यार करने में =)॥ ≡) सेरकी लागत आती है।

गिलोयसत्व

औषधियोंमें गिलोयसत्वका भी बहुत उपयोग होता है। गिलोयसत्व भी एक मन हरी गिलोयमेंसे यदि होशियारीसे निकालें तो १ सेर ऽ१= छटांक मुश्किलसे निकलता है। जितना निकलता है उससे कई गुना अधिक इसकी माँग बनी रहती है। इसी कारण व्यापारियोंने नकली गिलोय-सत्व बनानेका विधान ढूँढ़ा।

गिलोयसत्व क्या है ?

गिलोयसत्व वास्तवमें गिलोयका वह मण्डमय भाग है जिसको वैज्ञानिक श्वेतसार या Starchके नामसे पुकारते हैं। यह एक प्रकारका गिलोयका निशास्ता है और रासायनिक दृष्टिसे शर्करा जातिका एक पदार्थ है। जो पौधे बारहो महीने पृथ्वी और हवासे अपना भोजन नहीं प्राप्त कर सकते, जिनके पत्ते और दण्डियां दो चार मास रहकर झड़ जाती हैं, ऐसे वृक्ष अपनेको जीवित रखनेके लिये अपने भीतर श्वेतसारका संचय कर रखते हैं। पत्तोंके गिर जानेके बाद जब बाहरसे भोजन नहीं मिलता तब वे उसी श्वेतसार या निशास्तापर अपना निर्वाह करते हैं।

रवोंकी बनावट और जाँच

यद्यपि भिन्न-भिन्न वृक्षोंमें उत्पन्न स्वेतसारके कणोंको किसी सूक्ष्मवीक्षण यन्त्रसे देखा जाय तो उन सबोंके रवोंकी आकृतिमें अन्तर पाया जाता है। गेहूँके निशास्तेकी बनावट छः पहलू होती है, तो गिलोय सत्व या गिलोय निशास्तेकी बनावट अठपहलू होती है। इसी प्रकार सोंठके निशास्तेकी अठपहलू होते हुए भी गिलोयसे भिन्न होती है। मक्काका निशास्ता तो इनसे बिलकुल भिन्न होता है। शृंगिक विषका निशास्ता तो इससे भी भिन्न दशपहलू नोकदार होता है। रवोंकी बनावटमें इतना अन्तर रहते हुए भी रासायनिक दृष्टिसे सब श्वेतसारीय द्रव्य एक हैं। और इनको जिह्वापर रखकर इनकी स्वादसे परीक्षा की जाय तो कोई विशेष अन्तर नहीं बताया जा सकता। तथापि इतना अवश्य है कि गिलोयसत्वकी अपेक्षा गेहूँका निशास्ता कुछ फीका और जिह्वाको रूक्ष खरदरा लगता है और गिलोय सत्वकी अपेक्षा देरमें घुलता है। गिलोय सत्व तो जिह्वापर रखते ही घुल जाता है।

गिलोयसत्वमें गेहूँका निशास्ता रहता है

गिलोयसत्व तथा गेहूँके निशास्तेकी स्वाद तथा रूपमें तुलना देखकर अनेक व्यापारियोंने गेहूँके निशास्तेको ही गिलोय सत्वके स्थानपर बेंचना आरम्भ कर दिया। देहलीमें तो इन निशास्तोंमें कुछ पीला रंग मिलाकर उसे रंग देते हैं और उसे रंगकर ही बेंचते हैं। कई दुकानदार निशास्तेमें बहुत ही कम मात्रामें कुनाइनका हल्का घोल छिड़क कर उसे कुछ कटु बना देते हैं और ग्राहकोंको धोका देते हैं कि यह असली गिलोय सत्व है जिसप्रकार गिलोयमें कटुता होती है उसी प्रकार उसके सत्वमें भी कटुता होती है। जो कि वास्तवमें बिलकुल झूठ है। गिलोय सत्व कड़वा बिलकुल नहीं होता बल्कि फीका होता है जैसा और निशास्ता। गेहूँके निशास्तेका भाव =)॥ ≡) सेर है। जो गिलोय सत्वके नामसे बिकता है इसे दुकानदार ५) सेरसे लेकर २) २॥) सेर तक बेंच लेते हैं।

रूमी मस्तगी

मस्तगी एक वृक्षका गोंद है जो ईरानमें होता है। यह गोंद छोटे छोटे पीत वर्णके चमकदार मिर्च बराबर दानेके रूपमें आता है। इसके थैले ईरान और तूरानसे दस दस पौण्डके आते हैं। इसकी जितनी उत्पत्ति है उससे कई गुना अधिक इसकी बाजारमें माँग बनी रहती है। इसीलिये दुकानदारोंने बनावटी तरीकेसे इसे बनानेके साधन ढूँढ निकाले।

नकली मस्तगी कैसे तय्यार होती है

नकली मस्तगीको दुकानदारोंने निम्न विधिसे तय्यार किया। सूखा बिरोजा, बिरोजा सत्वके नामसे बाजारमें मिलता है। अच्छा बढ़िया बिरोजा लेकर उसे चूर्ण करते हैं फिर उसे एक मलमलके कपड़ेपर बिछाकर एक ऐसी छलनीके ऊपर उस कपड़ेको फैला देते हैं जिसके छिद्र काली मिर्चके बराबर या इससे कुछ छोटे बड़े हों। उस छलनीको एक पानी भरे हुये खुले मुँहके बर्त्तनपर टिका देते हैं और उस छलनीको एक मोटे तवेसे ढँककर उस तवेपर कोयला सुलगा

सिक्के और विनिमयकी दर

[ले० मौलाना श्री मंज़ूर-उल-नबी-साहब, सहारनपुर]

हक़ीक़तमें सिक्के और विनिमयकी दरका मसला कुछ ऐसा पेचीदा नहीं है, जिसे लोग समझ न सकें। बल्कि बहुत आसान और खुली हुई बात है। किसीने कहीं और कभी न सुना होगा कि चीज़ों और ग़ल्लेके वज़न करने और तोलनेके बाटों· में कोई गड़बड़ हुई हो क्योंकि हिन्दुस्तानमें अगर वज़न सेरसे किया जाता है और इंग्लिस्तानमें वज़न पौण्डका है तो दोनों बाटोंको सामने रखकर उनकी कमी बेशीकी निस्बत क़ायम कर ली जाती है। यही मिसाल सिक्कोंकी है। जैसे बाट वज़नका मयार है उसी तरह सिक्का क़ीमत-का मयार है। लेकिन हिन्दुस्तानके सिक्के और उसकी विनिमयकी दरका अर्सेसे झगड़ा हो रहा है और अख़बार पढ़नेवाले रोज़ देखते हैं कि कभी असेम्बलीमें झगड़ा हो रहा है, तो कभी सौदागरके जल्सोंमें पिट्टस पड़ रही है। मगर झगड़ेकी जड़ बुनियाद बहुत ही कम लोगोंकी समझ-में आती है। सो इस मामलेको समझनेके लिये सबसे अव्वल मुख्तसिर तौरपर सिक्केके ऐतिहासिक हालात और वाक़आतका जानना ज़रूरी है जिसके बाद इस मसले-का समझना आसान हो जायगा।

दुनियाभरमें परम्परासे सारी चीज़ोंका ख़रीदना और बेचना आपसमें चीज़ों और जिंसोंके तबादलेसे किया जाता था लेकिन धीरे धीरे जैसा धातुओंका चलन होता गया, ग़ल्लेकी जगह धातुएँ लेती गयीं क्योंकि उनके रखनेमें जगहकी किफ़ायत और लाने और लेजानेकी सहूलियतके सिवाय ख़राब होने, गलने और सड़नेका खटका भी नहीं है। पहले-पहल ताम्बा, उसके बाद चान्दी और फिर सोना गल्ला और चीज़ोंके बदलेमें दिया जाने लगा। लेकिन सोना दूसरी धातुओंके मुक़ाबलेमें ज्यादा बेहतर साबित हुआ क्योंकि यह आब-हवाके असरसे भी किसी तरह ख़राब नहीं होता और ज्यादा क़ीमती होनेकी वजहसे बहुतसी मालियतको कम जगहमें समा लेता है। मसलन किसी चीज़के बदलनेमें अगर एक सौ दस सेर ग़ल्ला मिलता है, तो चान्दी सिर्फ १५ तोले मिलेगी मगर सोना ८ माशे ही आयेगा और इसी कारण यह संसारभरमें बेहतरीन समझा जाता है। मगर लेन-देन अगर धातुकी डलियोंसे किया जावे तो लेने-देने वालोंको हर वक्त खरे खोटेकी जाँच और तोल जोखकी ज़रूरत बाक़ी रहेगी और लेन-देनमें देरी और दिक़्क़त होगी जिससे बचने और कामको जल्दी पूरा करनेके लिये यह तरीक़ा अख्तयार किया गया कि हकूमतकी तरफ़से किसी

देते हैं। जब कोयलेकी आँच कपड़ेपर बिछे बिरोजेपर पड़ती है तो विरोजा पिघलकर छलनीके छेदोंमेंसे टपककर उस जलमें गिरता जाता है और जलमें गिरते ही ठण्ढा होकर वैसा ही गोल चमकदार दाना (मोती) बन जाता है जैसा मस्तगीका होता है। कुछ व्यापारी सूखे विरोजेमें सुन्दर-गोंद मिलाकर इस प्रकार नकली मस्तगी तय्यार करते हैं। सुन्दर गोंद मिश्रित बनी मस्तगीमें जो सुगन्ध होती है वह सुगन्ध थोड़ी बहुत मस्तगीकी सुगन्धसे मिलती है। इस-प्रकारकी नकली मस्तगी खाली विरोजाकी घरमें ॥) सेर तथा सुन्दर गोंदमिश्रित ॥।) सेरके लगभग पड़ जाती है। जिसे २) २॥) रु० सेर व्यापारी बेंचकर ग्राहकोंको लूटते हैं।

परीक्षा

असली मस्तगी और नकली मस्तगीको अग्निपर डालते ही बिरोजाकी गन्ध और मस्तगीकी गन्ध दोनोंके अन्तरको बतला देती हैं। इससे भिन्न, दाँतसे तोड़नेपर भी दोनोंके काठिन्यमें अन्तर पाया जाता है। मस्तगी बहुत नरम होती है और बिरोजाकी मस्तगी उससे कुछ कठिन। इससे भिन्न जब इन्हें दाँतसे तोड़ा जाय तो इनसे गन्ध भी निकलती है जो नासारन्ध्रमें पहुँच कर अपना अपना असली रूप प्रकट कर देती है। (क्रमशः)

धातुके ख़ास वज़नके सिक्के बनाये जावें और सरकारी निशान उनपर लगाया जाय और बतौर सामयिक सिक्के (current coin) चलाया जाय ताकि धातुके खरे होने और तोलका

(लेखक)

इतमीनान हो जाय। लेन-देनमें किसी प्रकारकी गड़बड़ न हो और माल ख़रीदने-बेचने वाले जिसकी दोतरफ़ा जाँच पड़ताल, तोल-जोखसे बच जावें और सिक्केके चलनसे व्यापारी तरक्की हो।

जबसे सिक्केका चलन हुआ इस वक्ततक सिवाय हिन्दुस्तानके तमाम देशों और हकूमतोंमें सिक्केकी क़ीमत फ़रज़ी [झूठी] न होती थी और न है। बल्कि सिक्केमें जितनी जो धातु होती है और धातुका बाज़ारमें जो भाव होता है उसी क़ीमतपर सिक्का चलता है। चुनांचे किसी ज़मानेमें ताम्बेका भाव घटने-बढ़नेपर रुपयेके पैसे कभी ६४ मिलते थे और कभी ६६ और कभी ७०। बस पैसोंकी कमी-बेशीसे बचनेके लिये हकूमतोंने यह क़रार दिया कि ताम्बेका भाव चाहे कुछ भी हो, पैसा रुपयेका ६४वाँ भाग समझा जायेगा। इसी तरह निकलकी इकन्नी, दुअन्नी, चवन्नी और चाँदीकी दुअन्नी, चवन्नी, अठन्नी, बनती हैं जो रुपयेका भाग समझी जाती हैं और धातुके भावकी कमी-बेशीसे उनकी क़ीमतपर कुछ असर नहीं पड़ता। यानी बड़ा सिक्का रुपया या अशर्फ़ीकी क़ीमत तो चाँदी और सोनेके बाज़ारी भावके माफ़िक ही रही और असल सिक्का चाँदी या सोनेका ही रहा लेकिन छोटे सिक्के उसकी भाग क़रार दिये गये।

चाँदी और सोना दोनों क़ीमती धातुएँ हैं जिनके भाव-में कमी-बेशी होती रहती है। बाज़ मुल्कोंमें तो एक ही धातुका सिक्का चलता है और बाज़में दोनों धातुओंके सिक्के चलते हैं। चुनांचे हिन्दुस्तानमें भी १९ सदी ईसवीसे पहले दोनों तरहके सिक्के चलते थे। मिस्टर फिन्डले शिरास-ने जो सन् १९१९ में भारत सरकारके डाइरेक्टर आफ़ स्टेटिस्टिक्स [स्थित्यंक-विद्या विभाग] थे अपनी किताब 'इंडियन फाइनैन्स ऐण्ड बैङ्किंग'में लिखा है कि—

"मि० प्रिंसिपका बयान है कि हिन्दुओंका क़दीम सिक्का सोनेका था जिसका वज़न ६० ग्रेन और १२० ग्रेन होता था और चूँकि दक्षिण हिन्दमें मुसलमान बाद-शाहोंका कामिल तसल्लुत (राज्य) नहीं हुआ इसलिये वहाँ आम तौरपर मुग़लोंके सिक्के, रुपये और अशरफ़ीका चलन नहीं हुआ" (पृष्ठ ९७)

शुमाली (उत्तरी) हिंदमें मुसलमानोंका राज्य होनेके बाद चाँदीका दिरहम और सोनेका दीनार चलने लगा था लेकिन शेरशाहके राज्यमें दिरहम और दीनारकी जगह रुपया और अशरफ़ी चलने लगा जो मुग़लिया हकूमतमें भी चलता रहा।

मुग़लिया राज्यमें आगरा, अहमदाबाद, काबुल और बङ्गालमें अशरफ़ी बनानेकी टकसालें थीं। इन स्थानोंके अलावा रुपया बनानेकी टकसालें इलाहाबाद, सूरत, देहली, पटना, लाहौर, मुलतान, ठट्टा और काश्मीरमें थीं। इसी तरह इन स्थानोंके सिवाय दूसरे ६८ शहरोंमें पैसे बनाये जाते थे और लोग अपनी चाँदी, सोना, ताम्बा टकसालमें लाकर रुपये, अशरफ़ी और पैसे बनवा लेते थे और बनवाई सरकारको देते थे। तो भी अशरफ़ीका चलन आम था, जिसकी क़ीमत १५ फ़ी तोलेके हिसाबसे उतनी होती थी। जितना अशरफ़ीमें सोना हो। इसी तरह रुपयेकी क़ीमत उतनी ही होती थी जितनी उसमें चाँदी हो और जो चाँदी-का बाज़ारी भाव हो। इसलिये दूसरे देशोंके साथ व्यापार

और लेन-देन करनेमें कुछ दिक़्कत न होती थी चाहे रुपया लिया जाय या अशरफ़ी।

बहुत पुराने ज़मानेसे हिन्दुस्तानके विभिन्न सूबोंमें रुपया और अशरफ़ीका वज़न भिन्न था। ईस्ट इण्डिया कम्पनीने क़ाबू पानेके बाद अपने हस्तगत प्रदेशमें यह कोशिश की कि एक ही क़िस्मका सिक्का चलाये। चुनांचे १८०६ ई० में कोर्ट आफ़ डाइरेक्टरसने गवर्नर मद्रासको लिखा कि—

"वर्तमान सिक्का १८० ग्रेन चाँदीका होना चाहिये जिसमें १६५ ग्रेन चाँदी और १५ ग्रेन खोट हो।"

उन्होंने इस चिट्ठीमें यह भी लिखा था कि "यद्यपि हमको पूरा विश्वास है कि रुपया ही क़ीमतका असली आधार होना चाहिये और हिसाबोंमें वही लिखा जाना चाहिये, फिर भी हम अशरफ़ीके व्यवहारके ख़िलाफ नहीं हैं, बल्कि चाहते हैं कि अशरफ़ी भी इसी तरहकी चलायी जाय, जो चल सके। हमारी रायमें इसका नाम 'सोनेका रुपया' होना चाहिये। तौलमें यह भी रुपयेके बराबर ही होना चाहिये और आधे—चौथाई वज़नके इसके हिस्से भी बनाने चाहियें। [फ़िरङ्गले शिरासकी पुस्तक पेज १६]

मद्रासमें डायरेक्टरोंकी हिदायतपर काम शुरू हुआ और पुराने जमानेसे जो सोनेका सिक्का चलता था, बन्द कर दिया गया। यह सिक्का 'पगोडा' कहलाता था और ३॥) इसकी कीमत थी। इसी तरह बम्बईमें चाँदीका रुपया और उसी वज़नकी अशरफ़ी १८२९में चलायी गयी। यद्यपि डायरेक्टरोंने साफ साफ लिखा था कि वे अशर्फीको प्रचलित करनेके विरुद्ध नहीं हैं, मगर चान्दीके सिक्केको विशेष प्रोत्साहन देना चाहते हैं, इसलिये इनके नौकरोंने धीरे धीरे लोगोंको रुपयेकी तरफ आकर्षित करनेका प्रयत्न किया और १८३५ ई० में एक कानून पास कर दिया, जिसके अनुसार कम्पनी द्वारा शासित प्रदेशमें रुपया तो सामयिक सिक्का घोषित किया गया और अशर्फीको सामयिक सिक्कोंकी सूचीसे निकाल दिया गया। हालांकि अशरफ़ी खुद कम्पनीकी हिदायतके मुताबिक रुपयेके वज़नके बराबर १५) रुपयेकी बनाकर चलायी गयी थी और एक अशरफ़ी ३५) की, एक अशरफ़ी १०) की, एक अशरफ़ी ५) की कम्पनीके आदेशानुसार बनी थी। सामयिक सिक्का उसे कहते हैं जिसे कोई शख्स अपने मतालबेकी अदायगीमें किसी आदमी या सरकारको वह सिक्का दे तो लेनेवाला उसे लेनेको मजबूर हो। इन अशरफ़ियोंको 'सामयिक सिक्के' की सूचीसे निकालनेका मतलब यही था कि सरकार द्वारा चालू होनेपर भी यह सिक्का सरकारी न था।

इस कानूनके लागू हो जानेसे हिन्दुस्तानके इतिहासमें पहली बार सोनेके सिक्केका लेन-देन बन्द कर दिया गया। अशरफियोंको सामयिक सिक्केसे अलग कर देनेके बाद कम्पनीको नुकसान मालूम हुआ और कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं तो सन् १८४१ ई०में एक सरकूलर-लेटरके द्वारा खजानेके अफ़सरोंको इजाजत दी गयी कि वे सरकारी मतालबोंकी अदायगीमें सोनेका सिक्का ले लिया करें। मगर १८४७ में केलीफोर्निया और आस्ट्रेलियामें सोनेकी खानें निकल आयीं और वहाँसे बहुत ज्यादा सोना आने लगा, तो सरकारको सोनेके बहुत सस्ता हो जाने और अशरफीकी कीमत घट जानेका डर हुआ और १८५२ ई०में दूसरे सरकूलरके द्वारा कम्पनीके मतालबोंमें अशरफी लेनेकी मनाही कर दी। १८५७में विप्लव हो गया, जिसके समाप्त होनेके बाद भारतका साम्राज्य कम्पनीके हाथसे ब्रिटेनके हाथमें चला गया और राज्यके प्रबन्धके अनुसार भारतमें भी अर्थ-विभाग पृथक् स्थापित किया गया।

१८५९में इङ्गलैण्डसे मि० विल्सन, जो अर्थशास्त्रके विशेषज्ञ थे, भारत भेजे गये। उन्होंने भारतके अर्थ विभागकी जाँच करके रिपोर्ट दी कि "भारतमें सोनेका सिक्का चलाना मुनासिब नहीं है, मगर कारबारकी सहूलियतके लिये नोट (कागज़ी सिक्का) चलाये जायँ।" सन् १८६०में इंगलैण्डसे इस रिपोर्टकी स्वीकृति मिली और सेक्रेटरी आफ स्टेट मि० चार्लिसवुडने मंजूरी देते हुए लिखा—"सरकार इस बातसे सहमत है कि इस समय यह मुनासिब नहीं है कि सोनेका सिक्का चलाया जाय, क्योंकि उसे विश्वास है कि भारतीयोंकी आवश्यकताएं कागजोंके नोटोंसे अच्छी तरह पूरी हो सकेंगी।"

भारतके व्यापारियोंने सोनेका सिक्का रोकनेसे दिक्कत महसूस की, क्योंकि व्यापार ज्यादातर इंगलैण्डसे होता था और वहाँ सोनेका सिक्का चलता था।

१८५९ ई०में कलकत्ता, बम्बई और मद्रासके चेम्बर आफ कामर्सने, साथ ही कलकत्तेके सौदागर और महाजनोंने अशरफीको फिर चलानेके लिये मेमोरियल भेजा और भारत-सरकारके अर्थसदस्य मि० चार्लिस ट्रेवलियनने भी बहुत ज़ोरसे इसकी ताईद की और लिखा कि--"जो गिन्नी और आधी गिन्नी ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया या भारतमें ब्रिटेनके सिक्केके आधारपर बनायी जायँ उन्हें १०) फी गिन्नीके हिसाबसे सामयिक सिक्का माना जाना चाहिये और गिन्नीकी बनवाई भारतकी टकसालमें १) सैकड़ाकी जगह, जो असली लागतसे बहुत ज्यादा है, घटाकर पड़तेके अनुसार ली जावे। हाँ, रुपयेकी बनवाई अबकी तरह २) सैकड़ा ही रखी जाय।" अर्थसदस्यने रुपयेकी बनवाई ज्यादा रखनेकी सिफारिश इस वास्ते की थी कि चाँदीका भाव कुछ कम हो गया था। लिहाजा बनवाई ज्यादा रखनेसे रुपयेकी लागतका पड़ता ज्यादा हो जाता था। इसके विरुद्ध सोनेका भाव ज्यादा था, तो उसकी बनवाई कम करनेसे अशरफी महँगी न पड़ती और १५) में चलती रहती। लेकिन भारत-मन्त्रीने इस प्रस्तावको अस्वीकृत कर दिया।

सन् १८६६ ई०में सोनेका सिक्का चलानेका फिर आन्दोलन किया गया, जिसपर एक तहकीकाती कमीशन बिठाया गया और उसने रिपोर्ट की कि "हिन्दुस्तानी ५) १०) और १५) रुपयेकी अशर्फीको इसी कीमतके नोटसे अच्छा समझते हैं और यह बात भी है कि इन अशर्फियोंके चलानेसे नोटोंके चलनमें भी आसानी होगी। यह आम और सर्वसम्मत खयाल है कि हिन्दुस्तानमें सिक्का सोने और चाँदीका होना चाहिये और नोट भी चलें।" [रिपोर्ट लेफ्टीनेण्ट सर विलियम नेसफील्ड कमेटी]

इस रिपोर्टमें यह तजवीज भी थी "दस रुपयाके सावरनकी कीमत सोनेके भावको देखते हुए कम है। उसको बढ़ा देना चाहिये, ताकि लोग अशर्फियाँ बनवाने लगें।"

बहुत दिनों आलमारीमें बन्द रहनेके बाद १८६८में इस रिपोर्टका इतना नतीजा निकला कि सावरन और आधे सावरनको १०॥) और ५।) रु०में लेनेकी इजाजत खजानेको मिल गयी, मगर वह फिर भी सामयिक सिक्का न बनाया गया। हालां कि १८६७ ई०में पहली 'अन्तर्राष्ट्रीय सिक्का कान्फ्रेंस' पेरिसमें हुई थी, जिसमें यूरोपकी १८ सल्तनतें शरीक थीं और उनमेंसे एक सल्तनत ब्रिटिशकी थी। इस कान्फ्रेंसने तय किया था—"अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारमें सिर्फ सोनेका सिक्का ही बरता जायगा।"

यद्यपि यह हिन्दुस्तान ही है जो सदियों सोनेका सिक्का बरतनेके बाद इस जमानेमें अन्तर्राष्ट्रीय निर्णयके बाद भी सोनेका सिक्का बरतनेसे तो महरूम रहा, पर इंगलैण्डके तमाम मुतालबे जो उसके जिम्मे हों सोनेके सिक्केमें अदा करनेपर मजबूर है।

सन् १८७१ ई० में यह मुसीबत हुई कि चाँदीका भाव घटने लगा और चूंकि हिन्दुस्तानको इंगलैण्डके मुतालबे सोनेमें अदा करने पड़ते थे, इसलिये रुपयेको सोनेके सिक्केमें बदलनेसे भारत-सरकारको नुकसान होने लगा और भारतमें सोनेके सिक्केका चलन न होनेकी वजहसे सरकारपर सीधी चोट पड़ने लगी, तो फिर सोनेका सिक्का चलानेके लिये चीख-पुकार शुरू हुई और नौबत यहाँतक पहुँच गयी कि भारत-सरकारके अर्थसदस्य मि० रिचार्ड केम्बलने सन् १८७२में सरकारके पास यह याददाश्त भेजी—"हिन्दुस्तानमें सावरन तो मौजूद है पर वह 'सामयिक सिक्का' नहीं है, इसको मुनासिब कीमतपर सामयिक सिक्का बना दिया जाय।"

इसी तरह बंगाल बैंकके सेक्रेटरी मि० डिकन्सनने भी कोशिश की, लेकिन नतीजा यह हुआ कि मई १८७४ ई०में वायसरायने कह दिया—"हिन्दुस्तानमें सावरन चलानेकी मसहलतोंपर गौर किया गया। गवर्नर जनरल इन कौंसिल तैयार नहीं हैं कि अभी कोई कार्रवाई करें, जिससे हिन्दुस्तानमें सावरन सामयिक सिक्का बनाया जा सके।"

गरज कि हिन्दुस्तानमें सावरन चलाये जानेका आन्दोलन होता रहा। हिन्दुस्तानके बैंक और सौदागर कोशिश करते रहे कि चाँदीकी टकसाल बन्द कर दी जाय और सावरन चला दिया जाय। भारत-सरकारने खुद भी सन् १८८६में इसके बारेमें भारतमन्त्रीको लिखा मगर उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

भारत-सरकारको इंगलैण्डके मुतालबोंकी अदायगीमें असह्य हानि होती रही और ब्रिटिश सरकार जो कर्जख्वाह थी, इतमीनानसे अपने मुतालबे वसूल करती रही। चाँदीका

भाव दिन-दिन गिरता रहा और हिन्दुस्तान भी चीखता चिल्लाता रहा। एकबार फिर १८९२में सावरन चलाये जानेकी कोशिश हुई, भारत-सरकारने भी जोर लगाया और बंगालके व्यापार-संघके सभापति मि० जे० एल० मेकेने भारतीय-सिक्का संघकी तरफसे भारत मन्त्रीको एक मेमोरियल भेजा, जिसपर १२००० दस्तखत थे और इन दस्तखतोंमें ५००० दस्तखत यूरोपियनोंके थे। इस मेमोरियलमें दरख्वास्त की गयी थी कि हिन्दुस्तानमें सोनेका सिक्का चालू कर दिया जाय। इसका नतीजा यह हुआ कि भारत-मन्त्रीने १८९३ ई०में एक कमीशन नियुक्त किया, जो 'हरशल कमेटी'के नामसे मशहूर है। इस कमीशनकी नियुक्तिके बाद भी भारत-मन्त्रीके पास दरख्वास्तोंपर दरख्वास्तें भेजी गयीं और कहा जाता है कि भारत-सरकारकी मार्फत सिर्फ एक तारीखमें यानी ४ मईको १३५ मेमोरियल इंगलैण्ड गये, जिससे प्रभावित होकर हरशल कमेटीने अपनी तहकीकात की रिपोर्ट ३१ मईको दे दी और इस रिपोर्टकी सूचना ७ जूनको तार द्वारा भारत-मन्त्रीको दी गयी। वहाँसे भारत-सरकारके पास तारद्वारा ही १५ जूनको जवाब भी आ गया और सिर्फ एक हफ्तेमें यह तय हो गया कि टकसालमें जनताको चाँदीका सिक्का बनवानेकी इजाजत न दी जाय और सावरन चलानेकी तदबीरें अख्त्यार की जायँ।

जनताके लिये चाँदीका सिक्का टकसालमें बनवानेकी मनाहीसे कमेटीका मंशा यह था कि आइन्दा जनताको अशरफी बनवानेकी इजाजत दी जायेगी जिससे अशरफीकी कीमत तो सोनेके बाजार भावके माफिक रहे और सोनेके सिक्केके मुकाबलेमें रुपयेकी कीमत खुद सरकार मुकर्रर करे और जरूरतके माफिक ही सरकार उसे बनवाये। ताकि चाँदीके भावके उतार चढ़ावमें रुपयेकी कीमतपर कुछ असर न पड़े और रुपया अशरफीका एक ऐसा ही जुज समझा जावे, जैसा पैसा या इकन्नी आदि। यानी चाँदीका भाव चाहे कुछ ही हो १५ रुपयेमें एक अशरफी और एक अशरफीके १५ रु० हर हालतमें मिल सकें। हरशल कमेटीने अपनी इस तजवीजकी ताईदमें जो दलीलें दी थीं, उनमें यह भी लिखा था—"इङ्गलैण्डके मुतालबोंकी अदायगीमें उस वक्त ये मुतालबे १ करोड़ ६५ लाख पौण्डके करीब थे। हिन्दुस्तानको चाँदीकी कीमत गिर जानेकी वजहसे २६ करोड़ ४८ लाख रुपये देने पड़ते हैं, (उस वक्त रुपयेकी कीमत १५ पेंसके करीब थी) हालांकि इस रकमका अगर १८७३के चाँदीके भावसे मुकाबला किया जाय, तो यह रकम ८ करोड़ ७३ लाख रु० ज्यादे हैं। इतना नुकसान हिन्दुस्तानको उसी वक्त था और आगे चलकर और ज्यादा नुकसान होनेका अन्देशा था। इसी नुकसानसे बचनेके लिये हरशल कमेटीने यह तजवीज की थी कि चाँदीका सिक्का छोड़कर सोनेका सिक्का चलाया जाय, ताकि सिक्केकी विशेषताओंके मुताबिक उसकी कीमत हर जमानेमें करीब करीब एक जैसी रहे।

मगर भारत-सरकारने हरशल कमेटीकी तजवीजोंमें से इसी तजवीजपर अमल किया कि जनताके लिये टकसालमें चाँदीके सिक्के बनवानेकी इजाजतको एक्ट नं० ८ सन् १८९३के जरियेसे मंसूख कर दिया और सावरन १५ रु० में लेने और देनेकी इजाजत तो दे दी पर सावरनको न सामयिक सिक्का बनाया और न भारतमें उसकी टकसाल खोली। इसलिये हालत ज्यों की त्यों रही बल्कि और ज्यादा खराब हो गयी। यानी रुपयेकी कीमत बजाय इसके कि चाँदीके बाजारी भावके मुताबिक रहती, एक फर्जी कीमत मुकर्रर हो गयी, जो सावरनका १५वाँ हिस्सा या १६ पेंस थी।

जनताके लिये टकसाल बन्द किये जानेके वक्त रुपया चाँदीके बाजारी भावसे १४॥ पेंसका था, मगर कानूनन रुपयेकी कीमत मुकर्रर हो जानेकी वजहसे रुपयेकी कीमत उसमें लगी हुई चाँदीकी कीमतसे ज्यादा हो गयी और भारतके इतिहासमें पहली बार यह वक्त आया कि रुपयेकी फर्जी कीमत कायम हुई और इसी वक्तसे विनिमयकी दरमें पेचीदगियाँ पैदा हुईं।

रुपयेकी इस फर्जी और ज्यादा कीमतका कायम रखना सिर्फ सरकारका काम था, जिसका सीधा तरीका यह था कि पब्लिक जिस कदर रुपया देना या लेना चाहती सरकार उसके लेने या देनेका बन्दोबस्त करती और उसकी ज़िम्मेदारी लेती। मगर सरकारको रुपये बेचनेमें फ़ायदा और ख़रीदनेमें नुकसान था। इसलिये वह रुपयेके बेचनेको ख़रीदारीपर तरजीह देती थी। बस जब किसी चीज़के बेचनेवाले ज्यादा और ख़रीदार कम हों, तो कायदा है कि

चीजकी कीमत गिर जाया करती है, लिहाजा यही नतीजा रुपयेका भी हुआ कि कुदरती तौरपर रुपयेकी फर्जी कीमत कायम न रह सकी और सरकारने इस कीमतको थाम रखनेके लिये विभिन्न अवसरोंपर विभिन्न उपाय बर्ते। और इसीपर बस नहीं, बल्कि समय-समयपर हालात-के मुताबिक वह रुपयेकी फरजी कीमतको घटाती और बढ़ाती रही। चुनांचे कभी १८, कभी २४ और कभी २८ पेंसतक कीमत बढ़ायी गयी और आजकल भी १८ पेंस है और इस बढ़ी हुई फरजी कीमतसे भारतको नुकसान है क्योंकि रुपयेकी कीमत बढ़ जानेसे दूसरी चीजोंकी कीमतका गिरना लाजिमी है। फलतः बेचनेकी दर बढ़ जानेसे आयातमें वृद्धि और निर्यातमें रुकावट होती है इससे स्वदेशी शिल्प और व्यापारको नुकसान होता है और विदेशी मालसे मुका-बला करना नामुमकिन हो जाता है। हिन्दुस्तानके व्यापारी आयातके मालकी कीमत सोनेके पौंडमें विलायतमें अदा करते हैं, जिसकी कीमतका दारमदार मालकी तैयारी और किराये आदिके व्ययपर है कि लागत किस तरह बढ़ती है। बस, अगर विनिमयकी दर बढ़ी हुई है, तो मालकी कीमतमें रुपये कम देने पड़ते हैं और वह हिन्दुस्तानमें सस्ता बेचा जा सकता है। इसी तरह निर्यातके मालको लीजिये—उदाहरणार्थ, गेहूंकी कीमतका दारमदार दूसरे देशोंकी पैदावार और मांगपर है और लन्दन गेहूंकी मण्डी है। वहां जो गेहूंका निर्ख होता है, वही और दुनियामें और हिन्दुस्तानमें होता है। क्योंकि लन्दनमें भाव सोनेके सिक्के पौंडसे होता है। इसलिये हिन्दुस्तानमें लण्डनके पौंडके ऐतबारसे ही गेहूंका भाव उतरता चढ़ता है। इस प्रकार हिन्दुस्तानके रुपयेके बेचनेकी दर बढ़नेके माने यह है कि पौंडके दाम गिर गये। लिहाजा एक पौंडके जितने गेहूं मिलेंगे उतने ही गेहूंके रुपये हिन्दुस्तानमें कम मिलेंगे और काश्तकारको नुकसान होगा। बरखिलाफ़ इसके बेचनेकी दर कम होनेसे मुल्कके कारीगरों और काश्तकारोंको खूब फायदा होता है। गिरती हुई विनिमयकी दरसे मुल्कका निर्यात बढ़ता और आयात घटता है। फलतः देशकी चीज़ोंकी रक्षा होती है।

विषयको स्पष्ट करनेके लिये उचित है कि हम दादाभाई मरवानजी दलालके मतभेदात्मक नोटके कुछ उद्धरण दें, जो उन्होंने १९१९ में 'बबिंगटन-करेंसी कमीशन' के बहुमतसे मतभेद रखते हुए लिखा था। इस कमीशनने तजवीज किया था कि विनिमयकी दर २४ पेंस कर दी जाय। इस कमीशन-का कुछ परिचय और निर्णयका उल्लेख कर देना ठीक होगा।

'बबिंगटन-करेंसी-कमीशन' १९१९में सिक्का और विनिमयकी दरकी जाँचके लिये नियत किया गया था, जिसमें कुल ११ मेम्बर थे और उनमें मि० दादाभाई मरवानजी दलाल अकेले हिन्दुस्तानी थे। १० अंग्रेज़ मेम्बरोंने सम्मि-लित रूपसे शिफारिस की थी कि विनिमयकी दर २४पेंस कर दी जाय, मगर दलालाने इससे मतभेद प्रकट किया था। फिर भी विनिमयकी दर २४ पेंस कर दी गयी थी। कमी-शनके बहुमतने अपने निर्णयका समर्थन करते हुए लिखा था—कि "इस समय दुनियामें चान्दी बहुत महँगी है और अमेरिकामें (जो चाँदीसोनेकी मण्डी है) चाँदीका भाव, १३६ सेंट फी औंस है। इस भाव चाँदी खरीद-कर रुपया बनानेमें सरकारको घाटा है और रुपयेकी कीमत चाँदीकी कीमतसे जो उसमें लगी हुई है, कम बैठती है। इस लिये सरकारके लिये मजबूरी है कि रुपयेकी कीमत बढ़ावे। यद्यपि १८९३ ई०से विनिमयकी दर १६ पेंस रही है, मगर अब इस दरका कायम रखना मुश्किल है, इसलिए रुपयेकी कीमत २४ पेंस कर दी जाय। विनिमय-दर बढ़ जानेसे रुपयेकी कीमत बढ़ जायगी और दूसरी चीज़ोंकी कीमत जो एक जमानेसे महँगी रही है सस्ती हो जायगी, क्योंकि विनिमयकी दर बढ़ जानेसे चीजोंकी कीमतका गिरना लाज़मी है। चीज़ोंके सस्ता होनेसे हिन्दुस्तानको कुछ नुकसान होगा, क्योंकि १९११ ई० की मर्दुमशुमारीके अनुसार २१ करोड़ ७० लाख आबादी, यानी ७२ फी सदी किसान हैं, जिनमें १६ करोड़ ७० लाख तो ऐसे हैं, जो या तो खुद अपनी ज़मीन लेकर बोते हैं या दूसरोंकी लेकर। उनमेंसे कुछ ऐसे हैं, जो अपनी जरू-रियात पूरी करनेके बाद बचे हुए गल्लेको बेच देते हैं। अगरचे उनको गल्लेके महँगा होनेसे देखनेमें फायदा मालूम होता है, पर जीवनकी दूसरी ज़रूरी चीजें, जो दूसरे देशोंसे आती हैं, खासकर कपड़ा, उनके दाम भी तो ज्यादा देने पड़ते हैं। इसलिये वह फायदा नहीं रहता। इसे भी जाने दीजिये, आमतौरपर तो यह होता है कि किसान अपनी रोज़मर्राकी ज़रूरतों और बीजके लिये फसलसे पहले

ही कर्ज ले लेते हैं और फसलके करीब गल्लेकी सूरतमें साहूकारको दे देते हैं, इसलिये गल्लेके महँगा होनेसे किसानोंको कुछ फायदा नहीं होता बल्कि साहूकारका घर भरता है। रहे ऐसे किसान कि जिनके पास गल्ला बेचनेको बचता ही नहीं, सो उनको गल्लेके महँगा होनेसे कुछ भी फायदा नहीं। उनके तो खाने-पीनेका गुज़र ही अपनी पैदावारसे चलता है और मुश्किल यह होती है कि बाज़ारसे महँगी चीजें खरीदनेको उनकी छोटीसी पूँजी नाकाफ़ी होती है।

इसी तरह हाली और मज़दूर जो खेतपर काम करते हैं और जिनकी तादाद ४ करोड़ १० लाखसे ज्यादा है, उनके गल्ले और दूसरी चीज़ोंके महँगा होनेसे टोटा ही टोटा है। अलबत्ता हो सकता है कि उनको कुछ बचत इस लिये हो जाती है कि उनको मज़दूरीमें गल्ला ही मिलता है, पर उन लोगोंके अलावा एक बड़ी जमात और है, जिसकी आय लगी-बन्धी है और वह ज़मींदार है, जिसका गुज़र लगान और किरायेपर है या सरकारी नौकर या दूसरा कोई पेशा करनेवाले। इन लोगोंको तो चीज़ोंके महँगा होनेसे सख्त तकलीफ है। फलतः शहरोंमें रहनेवालों की, जो किसान नहीं हैं, ऐसी ही तकलीफमें बीतती है।"

इसी सिलसिलेमें आगे चलकर लिखा है कि—"यह भी याद रखना चाहिये कि विनिमयकी दरकी ज्यादतीसे जो टोटा होता है, उसे पूरा करनेके लिये उसमें खुद-बखुद कुछ फ़ायदे भी पैदा हो जाते हैं, जिससे माल बनानेवालोंको फ़ायदा पहुँच जाता है। उदाहरणार्थ, उस सामानके दाम कम पड़ने लगते हैं, जो विदेशोंसे आता है, जैसे मशीन आदि। इस तरह लोगोंके रोज़ानाके बढ़नेवाले ख़र्चोंमें कमी हो जाती है।"

और आगे चलकर कहा है कि—"कुछ गवाहोंने हिन्दुस्तानी शिल्प-व्यवसायकी तरफ़ ध्यान दिलाया है और यह ख़तरा बताया है कि विनिमयकी दर बढ़ जानेसे उसको धक्का न लगे, सो हम समझते हैं कि विनिमयकी दर बढ़ जानेसे आरज़ी तौरपर विदेशी माल स्वदेशी मालका मुक़ाबला करने लगेगा, पर हिन्दुस्तानको यह फ़ायदा भी होगा कि यहाँकी कच्ची पैदावार और मज़दूरी सस्ती हो जायगी और नये कारख़ाने बनानेवालोंको विदेशी मशीनें सस्ते दाममें मिलेंगी जिससे हिन्दुस्तानियोंके रुपयेकी बचत होगी।"

आख़िरमें इस कमीशनके बहुमतमें इँग्लैण्डके मुतालबोंकी अदायगीका ज़िक्र करते हुए लिखा है कि—"१८९३ में पब्लिकके लिये टकसाल बन्द करनेकी वजह यह भी थी कि भारत-सरकारको रोज़-रोज़ विनिमयकी दर गिरनेकी वजहसे इंगलिस्तानके मुतालबोंकी अदायगीमें दिक्क़त पेश आती थी। इसलिये विनिमयकी दर १६ पेंस कर देनेसे सरकारकी माली हालतको बहुत फ़ायदा पहुँचा और सरकारका काम बिना और कोई टैक्स लगाये ही चल गया। अब विनिमयकी दर बढ़ा देनेसे सरकारको और फ़ायदा होगा। इँगलिस्तानके मुतालबे दो करोड़ ५० लाख पौंडके क़रीब हैं, जिनकी अदायगीके लिये रुपयेकी दर १६ पेंस होनेकी हालतमें ३७॥ करोड़ रुपया दरकार होता है, पर २४ पेंसकी दर हो जानेपर २५ करोड़ रुपया ही दरकार होगा और सरकारको १२॥ करोड़ रुपयेकी बचत होगी।"

मि० दलाल इसके विरुद्ध थे। अपने विरोधी नोटमें उन्होंने लिखा था कि—"१८९३ ई०तक तो हिन्दुस्तानमें चाँदीका मियार जारी था, पर इसके बाद सरकारने उसे बदलकर सोनेका मियार जारी किया। उस वक्तसे चाँदीकी कीमतका ख्याल करना ही अनुचित है। रुपया गिन्नीका १५ वाँ हिस्सा माना जा चुका है और हर चीज़की क़ीमत इसी हैसियतसे मुक़र्रर हो चुकी है। अब अगर इस "सोनेके मियार"का नाम बदल कर "सोनेके मियारका बदल" रक्खा जारहा है, तो यह सिर्फ शब्दोंका हेरफेर है। "सोनेका मियार"में सरकारको १५ रुपयेकी एक गिन्नी देनी पड़ती थी और अब यह नाम बदलनेके बाद भी गिन्नी ही देनी पड़ेगी। फ़र्क सिर्फ इतना है कि नाम बदलनेसे गिन्नी विलायतमें लेजानेको मिलेगी और हिन्दुस्तानमें ख़र्च करनेको नहीं मिलेगी। फिर भी रुपयेकी एक स्थायी क़ीमत मुक़र्रर हो जानेसे इस नामके उलटफेरमें कुछ फ़र्क नहीं पड़ता।"

आगे चलकर वे कहते हैं कि—"महायुद्धके परिणाम अलग अलग देशोंमें अलग अलग हुए। चुनांचे हिन्दुस्तानका जहाँतक ताल्लुक़ है, यह ज़माना निहायत खुशहालीका ज़माना था और आशा की जा सकती थी कि हिन्दुस्तानकी हालत मज़बूत हो जायगी मगर अब वक्त यह

आ गया है कि यहाँके सिक्के और उसके विनिमयकी दरमें इस क़िस्मकी तबदीली की जा रही है कि उसकी वजहसे हिन्दुस्तानके लोग मुस्तक़िल मुसीबतोंमें फँस जायँगे।"

कमीशनकी गोरी टोलीने जो कुछ फ़रमाया और जिस अन्दाज़में फ़रमाया, उसमें बच्चोंको फुसलाने-जैसी बातोंके सिवाय, जिन्हें हिन्दुस्तानकी भलाईका जामा पहना दिया है, अन्धा रेवड़ियाँ अपनोंको ही बाँट रहा है। आपने देखा कि कमीशनके मेम्बर खुद मानते हैं कि हिन्दुस्तानकी ७२ फ़ीसदी आबादी किसान हैं, नौकरी करनेवाले और महाजन, डाक्टरोंकी तादाद किसी तरह भी दो फ़ीसदीसे ज्यादा नहीं है। बाक़ी कारीगर और मज़दूर हैं जो श्रमजीवी हैं। कारखानेदार तो बहुत ही कम हैं, इसपर तुर्रा यह है कि हिन्दुस्तानके किसानी मुल्क होनेकी वजहसे गल्ला और कच्चा माल विदेशोंको जाता है और दूसरी चीजें विदेशोंसे यहाँ आती हैं।

रुपयेके एतबारसे निर्यातकी तादाद आयातसे बहुत ज्यादा थी। मसलन १९१८-१९ में जानेवाले मालकी क़ीमत १६ करोड़ पौण्ड और आनेवाले मालकी क़ीमत ११ करोड़ पौण्डके क़रीब थी। बस अगर, विनिमयकी दर १६ पेंस फी रुपया हो तो जानेवाले मालकी क़ीमतमें भारतको २४० करोड़ रुपये मिलते हैं और आनेवाले मालकी कीमतमें १६५ करोड़ रुपये दूसरे मुल्कोंको देने पड़ते हैं, तो हिन्दुस्तानियोंके पास ७५ करोड़ रुपये ज्यादा आते हैं, लेकिन विनिमयकी दर २४ पेंस हो, तो इसी मालके हिन्दुस्तानको १६० करोड़ रुपये मिलेंगे और ११० करोड़ देने पड़ेंगे। यानी हिन्दुस्तानियोंके पास ५० करोड़ रुपये आवेंगे और इस प्रकार उन्हें २५ करोड़ रुपयेका घाटा रहेगा। इतना टोटा सिर्फ़ उसी हालतमें रहेगा कि विनिमयकी दरके बढ़ जानेपर भी मालका जाना-आना इसी मापमें बना रहे। हालांकि ऐसा होना करीब करीब नामुमकिन है और कमीशनके मेम्बरोंने खुद ही मान लिया है कि विनियमकी दर बढ़नेसे मालके आनेमें ज्यादती और जानेमें रुकावट होती है और ऐसा होनेसे इस नुकसानके और भी बढ़नेका डर है। फिर भी मान लें कि विनिमयकी दरके बढ़नेपर भी मालका जाना आना उसी तरह बना रहता है तो फायदा और नुकसान क्या है और किसको है? यह स्पष्ट है कि विनिमयकी दर २४ पेंस हो जानेसे जानेवाले मालकी कीमतमें ८० करोड़ रुपयेका टोटा रहेगा और यह नुकसान किसानोंको ही होगा।

कमीशनके मेम्बरोंका कहना है कि गल्लेकी कीमत बढ़नेसे किसानोंको बहुत कम फायदा होगा और असली फायदा उन महाजनोंको ही होगा, जिनसे यह कर्ज लेते हैं। कुछ कहते हैं कि फायदा सिर्फ़ गल्लेके व्यापारियोंको होगा जिनकी तादाद मुल्कमें बहुत कम है। मगर कमीशनवाले हों या और कोई विचारके, दोनों ही यह भूल जाते हैं कि महाजन या सौदागर जो गल्लेके निर्यातका व्यापार करते हैं, यद्यपि जूंकी तरह चूसनेवाले हैं, मगर ज़रासा फ़र्क़ यही है कि जूंके खून चूसनेमें तो नुकसान ही नुकसान है, पर महाजनों और व्यापारियोंसे ज़रूरतके वक्त उधार रुपया और मालकी क़ीमत मिल जानेकी सूरतमें सुभीता भी होता है (बशर्ते कि सूद बहुत ज्यादा न हो)। ऐसी हालतमें ये श्रेणियां मुल्ककी बदनीयतके ज़रूरी हिस्से हैं, ये तो अपना नफा और कमीशन ही लेनेवाले हैं, असली फायदा और नुकसान तो किसानहीको होता है।

इसलिये यह कहना कि विनिमयकी दर घटनेसे गल्लेकी जो कीमत बढ़ती है, उसका फायदा किसानोंको नहीं होता, सरासर निराधार है। इसके विरुद्ध विदेशोंसे माल मँगानेवालोंको ५५ करोड़का फायदा हुआ, क्योंकि उनको मालकी कीमतमें बजाय १६५ करोड़ रुपयेके ११० करोड़ रु० देने पड़ेंगे और १२॥ करोड़ रु० का नफा सरकारको होगा जिसको कमीशनकी बड़ी टोलीने तसलीम किया है और हिसाब साफ बता रहा है कि यह बचत किसानोंकी जेबोंसे ही आती है। इस ८० करोड़ रु० को, जो किसानोंकी जेबोंसे लिया जायगा, बटवारा यों होगा—

५५ करोड़ रु० विदेशोंसे माल मँगानेवालोंको।
१२॥ ,, ,, सरकारको।
१२॥ ,, ,, विनिमय करनेवालोंको, जिनमें सरकारका विशेष हाथ है।

कहा जाता है कि बाहरसे माल मँगानेवालोंको ५५ करोड़ रुपयाका फायदा होगा पर यह बात ठीक नहीं है और असली बात यह है कि माल मँगानेवालोंकी जेबमें एक पैसा भी नहीं जाता। उनको तो माल सस्ता मिलने लगता

है और खर्च भी कम पड़ता है, जिसकी वजहसे वे विदेशी मालको हिन्दुस्तानमें सस्ता बेचनेमें समर्थ हो जाते हैं। वास्तवमें तो ये ५५ करोड़ रुपया विदेशी कारखानेदारोंकी जेबमें ही पहुँच जाते हैं।

मिसालके तौरपर यों समझिये कि आनेवाले मालकी कीमत १६ करोड़ पौण्ड थी और भारतसे जानेवाले मालकी कीमत ११ करोड़ पौण्ड थी। यानी विलायतके व्यापारियों-को हिन्दुस्तानी किसानोंके १६ करोड़ पौण्ड देने थे और हिन्दुस्तानके व्यापारियोंसे इंगलैण्डके कारखानेदारोंको ११ करोड़ पौण्ड लेने थे। बस अगर विनिमयकी दर १६ पेंस होती, तो सरकार विलायतके कारखानेदारोंसे १६ करोड़ पौण्ड लेकर हिन्दुस्तानके किसानोंको २४० करोड़ पौंड दे देती, लेकिन २४ पेंस विनिमयकी दर हो जानेकी वजहसे सरकार किसानोंको फिर्फ १६० करोड़ रुपया देगी और ८० करोड़ रुपया अपने पास रख लेगी, लेकिन हिन्दुस्तानके सौदागरोंसे ११ करोड़ पौण्डके एवजमें सरकारको १६ पेंस-की दरसे १६५ करोड़ रुपया लेने चाहिये थे जो अब २४ पेंसकी दरकी वजहसे ११० करोड़ रु० लेगी। लिहाजा यह ११० करोड़ रुपया लेकर और ८० करोड़ शेपमें ५५ करोड़ मिलाकर अपने विलायती कारखानेवालोंकी ११ करोड़ पौण्डकी रकमको पूरा करके हिसाब चुका देगी। बस विलायतके कारखानेवालोंको जो ११ करोड़ पौण्ड पहले मिलने थे, वे अब भी मिल गये। अलबत्ता इस विनिमयकी दरकी उलटफेरकी बदौलत उनके मालकी कीमत हिन्दुस्तान-के बाजारोंमें······························घट गयी और जब बाहरसे आये हुए मालमें दामोंकी इतनी कमी हो जाय, तो हिन्दुस्तानके कारखानेदारोंको दो ही उपाय बाकी रह जाते हैं।

एक यह कि वे भी अपने मालके दाम एक तिहाई कम कर दें और इससे जाहिर है कि कीमतोंका इतना कम कर देना आसान नहीं है। दूसरे यह कि वे अपने कारखाने बन्द कर दें। कोई भी बात हो, विनिमयकी दर बढ़नेसे हिन्दुस्तानके किसानों, कारखानेदारों और कारीगरोंको नुकसान पहुँचेगा। बारबार कहा गया है कि विनिमयकी दर बढ़नेसे यद्यपि किसानोंको गल्लेके दाम कम मिलेंगे, पर उनकी रोजमर्राके जीवनकी जरूरी चीजें, जो बाहरसे आती हैं, सस्ती मिलने लगेंगी और यह नुकसान पूरा हो जायगा। आइये, देखें कि बाहरसे आनेवाला माल कहाँतक जनसाधारण या किसानके काम आता है। इसके लिए १९१८—१९ के आनेवाले मालके आँकड़ोंपर ध्यान दीजिये।

इस वर्षमें निम्नलिखित चीजें बाहरसे आयीं।

१—सूती कपड़ा मय सूत	३६	फीसदी
२—रेशम	३	,,
३—खाण्ड	९	,,
४—लोहा	७	,,
५—मशीन	३	,,
६—पेट्रोल और किरासीन तेल	२	,,
७—लोहेका सामान	२	,,
८—अन्य चीजें, जिनमें कागज, लकड़ीका गूदा, नमक, बटन, वगैरह हैं	३८	,,
	१००	,,

इन आनेवाली चीजोंमें सबसे बड़ी तादाद कपड़ेकी है, जिसे ज्यादातर रुपयेवाले और शहरी ही खरीदते और पहनते हैं। गँवार और गरीब किसान भी किसी कदर विलायती कपड़ा पहनते हैं, मगर ज्यादातर हाथका कता बुना ही पहनते हैं।

रेशम तो उनके स्वप्नमें भी नहीं आता। शुक्र है कि गुड़ और शक्कर ही खा लेते हैं। लोहा और स्टीलकी भी उन्हें हलकी फाली, किवाड़ोंकी जंजीरोंके अलावा ज्यादा जरूरत नहीं होती। पेट्रोल और मिट्टीका तेल भी कम काम आता है। ज्यादातर मोटरों और इञ्जनोंके काम आता है। वे तो चिरागोंमें भी आम तौरपर अपनी पैदा की हुई सरसोंका तेल ही जलाते हैं। मशीनें दौलतमन्द कारखानेदार ही खरीदते हैं। कारखानेकी किस्मसे कोई चीज भी उनके काम-की नहीं, क्योंकि सारे भारतमें पढ़े-लिखे लोगोंकी तादाद ही कुल ७ फीसदी है। नमक जरूर उनके खर्च आता है। रहा टीनके डब्बोंमें बन्द खुराक वगैरह सामान, ये चीजें तो बड़े लोगोंके लिये रिजर्व हैं। इसलिये विलायतके मालसे अगर कुछ नफा होता भी है, तो दो फीसदी हिस्सा तो कंगाल और गरीब किसानको मिलता है, जो आबादीका ९८ फीसदी है और मुनाफेका ९८ फीसदी हिस्सा उन

प्रकृत इतिहास-काल अत्यन्त प्राचीन है

वैदिक ज्योतिर्विज्ञानकी अचूक गवाही

[लेखक—विद्याभूषण पंडितप्रवर श्रीदीनानाथजी शास्त्री चुलैट, इन्दौर]

[गतांकसे आगे]

२१—अब जब [प्रस्तर १५-२०] इस प्रकार प्रत्यक्ष माने जानेवाले सूक्ष्मगणितके आधारोंसे इस कृत्तिकाके विषुववृत्तीयकालमें शतपथके एवं अन्य ब्राह्मण-ग्रन्थोंके वाक्योंके अर्थकी संगति बिलकुल* नहीं मिलती इसलिये जो कृत्तिका कार्यक्षितिजपर उदय मानकर उसके द्वारा [प्रस्तर १२-१३ में] जो अर्थ-काल बताया गया है सो निराधार अतएव गलत है। एवं इसी कालानुक्रमके आधारसे भारतवर्षके इतिहास-कालकी मर्यादा जो अर्वाचीनकालिक बतायी गयी है, वह सब कल्पनामात्र एवं सत्य इतिहाससे असंगत है।

* 'अग्निनक्षत्रे क्षेत्राण्योप्यन्ते' 'कृत्तिका नक्षत्रमें खेत बोये जाते हैं। अर्थात् वर्तमान मृग नक्षत्रकी स्थिति कृत्तिकामें बतायी है। सो वर्तमान उत्तरा भाद्रपदासे तीन नक्षत्र पूर्व धनिष्ठा-संपात निश्चित होता है।

५—शतपथ ब्राह्मणके पूरे वाक्यकी व्याख्या

२२—इसलिये अब हमें शतपथके कालका शोध धनिष्ठा या शतभिषक् संपातकालमें करना चाहिये क्योंकि उस समय कृत्तिकाका भुज ९० अंश था। तथा "**तस्माद्धेमन् (ते) म्लायन्त्योषधयः प्रवनस्पतीनां पलाशानि मुच्यन्ते। प्रतितरामिव वयांसि भवन्त्यधस्तरामिव वयांसि पतन्ति विपतितलोमेव पापः पुरुषो भवति।**" शतपथ ब्रा० (१।४।५।५ पृ० ३८२) में ऐसा कहा है कि—"हेमन्त ऋतुमें अत्यन्त हिमके गिरनेके कारण धान्यके पाक सूख जाते हैं। वनस्पति और वृक्षोंके पत्ते गिर जाते हैं। कई पशुपक्षियोंके रंग-रूप बिगड़ जाते हैं। कई पक्षी वृक्षोंसे गिरकर हताहत हो जाते हैं। पुरुषकी लंबी छाया भूमिपर गिरनेसे मानो रोम गिर गये हों ऐसा पुरुष दिखाई देता है।" इस कथनसे पता चलता है कि उस समय

लोगोंको मिलता है, जो मुश्किलसे आबादीके दो फीसदी हैं और इसीपर मामला खतम नहीं हो जाता, बल्कि बाहरका माल सस्ता पड़नेकी वजहसे हिन्दुस्तानके दस्तकार हाथपर हाथ रक्खे बैठे रहते हैं और फाके करनेके लिये मजबूर होते हैं।

इस बातका फैसला पाठक खुद कर लें कि गरीबोंसे रुपये लेकर रुपयेवालोंमें ही तकसीम कर देना कहाँ तक दुरुस्त है। इन सब नुकसानोंके अलावा भारतको उस समय विनिमयकी दर बढ़ानेके परदेमें यह भारी नुकसान पहुँचा कि हमारा जो रुपया इंगलिस्तानमें स्टर्लिंगोंके कार्यमें लगा हुआ था, उसके २४ पेंसके हिसाबसे रुपया बनानेमें कलमकी एक लचकके साथ ३८ करोड़ ४० लाख रुपये घट गये और कुछ भी पर्वा न की गयी। ये ही वे चीजें थीं जिनकी तरफ श्री दलालने अपने मतभेदात्मक नोटमें इशारा किया था। विनिमयकी दरकी यही गुत्थियाँ हैं जिनकी वजहसे हिन्दुस्तानी परेशान हैं। आज यही विनिमयकी दर १८ पेंस है, जो रुपयेकी फरजी कीमत है। हालांकि चाँदीके बाजार भावसे रुपयेकी कीमत सिर्फ ९ पेंसके लगभग है। और सरकार हिन्दुस्तानियोंके बार २ विरोधके बाद भी इसी फरजी कीमतके कायम रखनेपर अड़ी हुई है। हालांकि हिन्दुस्तानियोंकी हालत सँभल ही नहीं सकती, जबतक कि यहाँका सिक्का भी दूसरे देशोंकी तरह असल कीमतका न कर दिया जाय।

[विकाससे]

रविकी परमक्रांति बहुत अधिक थी। क्योंकि इस स्थलके ३५ अक्षांशके प्रदेशमें रवि परमक्रांति ३०।११ अंशकी हुए बिना हेमन्त ऋतुके मध्यमें इतनी ठंड नहीं गिर सकती कि जिसका प्रस्तुत वर्णन शतपथमें है।

२३--इसी प्रकार [अक्षांश ३५] शतपथके एक स्थलमें लिखा है कि "ग्रीष्म ऋतुके मध्यमें मध्याह्नके समय पुरुषकी छाया उसके पैरोंमें ही समा जाती है, इतनी छोटी हो जाती है" (शतपथ ब्रा० २।२।३।९-१०)† इस कथनसे पूर्वोक्त अनुमान दृढ़ होता है, क्योंकि अक्षांशोंके तुल्य रवि-परमक्रांति हुए बिना शिरके ऊपर सूर्य आ नहीं सकता। न उसकी छाया पैरोंतले समाने लायक छोटी होती है। यह प्रत्यक्ष देखी जानेवाली बात है। इसलिये उस समय रवि-परमक्रांति कमसे कम ३०।३१ अंशकी तो होनी ही चाहिये।

२४--इस प्रकारके [प्रस्तर १९-२३] प्रमाणोंको देखते हुए कृत्तिका भुज (१०°) के एक चक्र पूर्वमें, प्रो० लवरिये (फ्रांस) और प्रो० हानसेनकी कही गतिसे, उतना रवि-परमक्रांतिमान भी आ सकता है। और गतकालमें रवि परमक्रांति ४२° हमारे सिद्धांत ग्रन्थोक्त लेनेसे प्रो० हर्शलकी कही परमक्रांतिकी तुल्यता आ सकती है। इसलिये मैंने उक्त तीनों विद्वानोंकी सारिणीसे चालन देकर, रविकी परमक्रांति भिन्न भिन्न लिखकर गणितद्वारा उपयोगी तारोंके क्रांतिमान आदिका दर्शक कोष्टक नं० २ तथा उसकी दृश्य स्थितिको बतानेवाला आलेख्य एवं उसका स्पष्टीकरण तयार करके आगे दे दिये हैं।

आलेख्यका स्पष्टीकरण

शून्य क्रांतिका तारा विषुववृत्त (क-ख-ग) में घूमता है।

पूर्वक्षितिज बिन्दु = क ख स्वस्तिक „ = ख पश्चिमक्षितिज„ = ग	} = पूर्व दिशा	}

† "मध्यं दिनोऽथ वर्षाः। मध्यंदिने तर्हि ह्येषोस्य लोकस्य नेदिष्ठं भवति ॥ तन्नेदिष्ठादेवैन मेतन्मध्यान्निमिमीते छाययेव वा अयं पुरुषः ×सोरयान्न कनिष्ठो भवत्यधरपदमिवे यस्यते तत्कनिष्ठम्० ॥" शतपथ ब्रा० (२।२।३।१० पृ० ७८)

इसे पूर्व पश्चिम रेखा = समवृत्त, सममंडल आदि कहते हैं। दिगंशोंकी गणना यहींसे की जाती है।

च्युत—पूर्व दिशासे जो तारे दैनंदिन भ्रमणमें दक्षिणमें ढलते हैं, उनकी उत्तर क्रांति अक्षांशमित क्रांतिसे कम होती है। तथा दक्षिण क्रांतिवाले तारे तो सदा ही दक्षिणस्थ रहते हैं। इनके याम्योत्तर लंघन (मध्याह्न) कालमें दक्षिण दिगंश ९० लिखे जाते हैं।

अच्युत—पूर्व दिशासे नहीं ढलनेवाले वे तारे हैं कि जिनकी उत्तर क्रांति अक्षांशतुल्य क्रांतिसे अधिक होती है। मध्याह्नकालमें इनके उत्तरदिगंश २७० लिखे जाते हैं।

पूर्वमें उपस्थित मात्र—जिस तारेकी उत्तर क्रांति देखनेवालेके स्थलके अक्षांशके तुल्य है उसका उदयास्त उत्तर अग्राके तुल्य होकर सिर्फ वह मध्याह्नके समयमें पूर्व दिशामें यानी ख स्वस्तिकमें उपस्थित मात्र होता है। अतः इसके दिगंश ० लिखे जाते हैं।

९-हर्शल लवरिये और हानसेनकी तुलना

२५—ऊपर प्रस्तर ११ में लिखे प्रमाण वाक्यके अर्थके अनुसार कोष्टक २ के 'अ' 'ब' 'क' कालमकी क्रांतिको मिलाकर देखते हुए अब मैं शतपथके कालको बताता हूँ।

(अ) 'कालमें अक्षांश ३५की अपेक्षा कृत्तिका क्रांति बहुत कम है। इसलिये मध्याह्नके समय कृत्तिकाकी पूर्व रेखासे ३५-२८=७ अंशकी दक्षिणके तरफ च्युति होती थी। और अभिजित् क्रांति ४२ अंश होनेसे वह ख स्वस्तिकसे ७ अंश उत्तरतक आकर आगे उत्तरमें ही बढ़ जाता था। च्युत नहीं होता था।' इससे कृत्तिका च्युत और अभिजित् अच्युत होता है। तथा अग्नि और कृत्तिका दोनों एक साथ सममंडलमें उपस्थित न होते हुए आगे पीछे च्युत हो जाते हैं। इसलिये शतपथका 'अ' काल नहीं है।

(ब) कालमें कृत्तिका क्रांति ३४ अंशके निकटमें पहुँच जानेसे जो कृत्तिकाके सममंडलमें पूर्व दिशामें, उपस्थिति मात्र होती थी, इससे अच्युत भी समझी जा सकती है। किंतु अग्नि तारेकी क्रांति उससे बहुत कम होनेसे कृत्तिका और अग्नि दोनों एक साथ सममंडलमें आ नहीं सकते और अभिजित् और अश्विनीकी क्रांति ३६°

कोष्ठक नंबर २

खस्वस्तिकमें कृत्तिकाकी स्थिति

शुद्ध सूक्ष्मगणितसे		सांकेतिक अक्षर—"अ"			"ब"		"क"	
शतपथ ब्राह्मण-कालमें दिखाई देनेवाले तारोंकी क्रांति आदि परिमाण		प्रो० हर्शल और सिद्धांत ग्रंथोंसे शकपूर्व २३,१२२, वर्ष अयनांश + ३०६°९ " — ५३।५१ रवि परमक्रांति २४।०			प्रो० लवरकी सारिणीसे श० पू० ५३,४७२ वर्ष अयनांश + २९३°।२० " — ६६।४० रवि परमक्रांति ३० ४६		प्रो० हानसेनकी सारिणीसे श० पू० ५४,६९८ वर्ष अयनांश + ३०६।९ " —५३ । ५१ रवि परमक्रांति ३०।५५	
नक्षत्र और तारोंके नाम और पर्याय शब्द	दीप्ति वर्ग	शतभिषक्का आरंभ काल			धनिष्ठाका आरंभ काल		शतभिषक्का आरंभ काल	
		नाक्षत्र भोग	कदंबमुख शर	उत्तर क्रांति	सायन भोग	उत्तर क्रांति	सायन भोग	उत्तर क्रांति
वसिष्ठ (सप्तर्षिका तारा)	२·४०	१४१ ५१	+५६२१	४४ १५	२०८ ३१	३५ २८	१९१ ४२	३९ ३६
अभिजित (नक्षत्र)	०·१४	१६१ २८	६१ ४४	४१ १	१३२ ०	३६ १	३१६*१६	३२ ४५
कृत्तिका (नक्षत्र)	२·९६	३६ ९	४ २	२८ २	१०२ ४९	३३ ५६	९० ०	३४ ५७
मरीचि (सप्तर्षिका तारा)	१·९१	१५३ ५	५४ २३	३९ २६	२१९ ४५	३१ ४	२०६ ५६	३४ ९
अग्नि (नाथ नामक तारा)	१·७८	५८ ४४	५ २३	२७ २२	१२५ २४	२९ ४३	११२ ३५	३३ ३४
अश्विनी (ग्यामा एरैटिस)	३·००	९ ४	६ २१	२७ २७	७५ ४४	३६ ०	६२ ५५	३३ २०
उत्तराभाद्रपदा (बी. शि.)	२·८७	३४५ १९	१२ ३६	२६ ४४	५१ ५९	३५ २०	३९ १०	३० १५
पूर्वाभाद्रपदा "	२·६१	३३० ४२	१९ २३	२७ ३३	३७ २२	३५ १९	२४ ३३	२९ ६
रोहिणी (आल्डिबरान)	१·०६	४५ ५७	−५ २८	१८ १०	११२ ३७	२२ ५१	९९ ४८	२४ ५९
धनिष्ठा (आल्फा डेल्फिनी)	३·८६	२९३ ३३	+३२ २	२५ ४	० १३	२८ २	३४७ २४	२१ ५७
भरणी (एप्सिलान एरैटिस)	४·५३	२४ ४०	४ १०	२६ १८	९१ २०	२४ ५५	७८ ३१	२० ५२
पुनर्वसु (पोलक्स)	१·२१	८९ २४	६ १०	१६ ४४	१५६ ४	१७ ४८	१५३ १५	१९ १३
मृगशीर्ष (लां० ओरायन)	४·००	५९ ५२	−१३ २३	८ ४०	१२६ ३२	११ ३५	११३ ४३	१५ १
श्रवण (आल्टेर)	७·८९	२७७ ५५	+२९१८	१६ १३	३४४ ३५	१७ ३४	३३१ ४६	१२ ०
आर्द्रा (आल्फा ओरायन)	रू०वि०	६४ ५५	−१६ ३	५ १४	१३१ ३५	७ २९	११८ ४६	११ २१
स्वाती (आर्कट्यूरस)	०·२४	१८० २४	+३०४९	१० ३२	२४७ ४	२ २	२३४ १५	४ ४०

* अभिजित्की निजगतिको केतरकरके नक्षत्र-विज्ञान (पृष्ठ ३२) में उत्तर ध्रुवसे दिगंश ३४पर ०·३६ विकला वर्षगति लिखी है। उसको कदंबसूत्रीय करके उपर्युक्त कोष्टकमें निजगति संस्कृतसायन भोग और शुद्ध क्रांतिमान लिखा है।

'अ—क' कालमें एक ही अयनांश होनेसे 'अ' कालीन सायनभोग न लिखकर 'ब' कालीन सायनभोग लिख दिया है। तथा कोष्टक-रचना संबंधी विशेष स्पष्टीकरण देखना हो तो इन्द्रौर पंचांग-कमिटीकी रिपोर्टमें अयनांश भाग (पृ० १७४—७५) देखो।

'अ' भारतीय ग्रंथोक्त रवि परमक्रांति २४ के करीबमें ही प्रो० हर्शल साहबकी क्रांति होनेसे यहाँ रवि परमक्रांति २४ अंश-पूर्वली हैं। ग्लासरी पृ० ७६ में २१°।५'८।३६" से २४°।३६।५"८ तक परमक्रांति लिखी है।

'ब' प्रो० लेवरियरकृत (See Le Verrier's Table Tome IV EME P. 104.) से सन् १८५० मे र० प० कां० '२३°।२७°।३१·"८३—०·४७५९४ वर्ष' द्वारा ३०°।४"६ लिखी है (दिग्मीमांसा पृ० ३२ देखो)

'क' प्रो० हानसेनके चंद्र कोष्ठकाधारसे केतकर कृत ज्योतिर्गणित (पृ० ८७ व ८१) से 'शाके १८०० मे र० प० क्रांति २३°।२७।'१८",५—०·४७६ वर्ष' द्वारा ३०°।५'५ लिखी है।

और भाद्रपदा भरणी दोनोंकी क्रांति ३५° अंशकी होनेसे इन पाँच नक्षत्रोंकी तुलनामें केवल एक कृत्तिका अच्युत निश्चित नहीं हो सकती। इसलिये शतपथका 'ब' काल भी नहीं है। किंतु

(क) कालमें कृत्तिकाकी उत्तर क्रांति ३४°।५७' यानी ३५° अंशकी है, सो वह मध्याह्नके समय ठीक ठीक पूर्व दिशा यानी ख स्वस्तिकरूप सममंडलमें आती है। अतएव यह दक्षिणकी ओर च्युत नहीं होती है। बाकी अभिजित् समेत २७ नक्षत्रोंकी क्रांति अक्षांशतुल्य कृत्तिकाकी क्रांति ३४°।५७' से कम होनेसे वे सब पूर्व दिशासे दक्षिणकी ओर च्युत हो जाते हैं। इसी तरह जिस समय कृत्तिका ख स्वतिकमें उपस्थित होती है उस समयमें—"अग्निके उन्नतांश ७१°।१९' उत्तरदिगंश २°।४१' मात्र, पूर्व दिशासे स्वल्पान्तरित होनेसे किंवा नतकालांश १८।४६' उन्नतांश ७४°।४७' पर ठीक पूर्व दिशामें अग्निका तारा आनेसे अग्निके साथ-साथ कृत्तिका दोनों सममंडलमें उपस्थित होते हैं इस तरह जब कि प्रमाणवाक्यका अर्थ इस कालमें पूर्ण रीतिसे घटित होता है, तब निश्चित होता है कि शतपथका 'क' काल है।

७—शतपथमें दूसरा प्रमाण

२६—शतपथ (२।१।२) में दूसरा प्रमाणवाक्य यों है—"**ऋक्षाणाँ हवा एता अग्रेपत्न्यऽआसुः। सप्तर्षीनुहपुरर्क्षा इत्याचक्षते॥ ता मिथुनेन व्यार्ध्य- न्तामीह्युत्तरादि सप्तर्षय उद्यन्ति पुर एताः॥ ४॥ अग्निर्वा एतासां मिथुनम्॥ ५॥**

अर्थात्:—"पहले यह कृत्तिका सप्तर्षियोंकी पत्नि = ['**पत्निर्नो यज्ञसंयोगे' (पाणिनि)**] वेधक्रियारूप यज्ञमें संयोग पानेवाली हो गयी थी, यानी सप्तर्षियोंकी क्रांतियोंके अन्दर कृत्तिकाकी क्रांति स्थलके अक्षांश तुल्य होनेसे उनके तुल्य यह भी सममंडलमें आने लग गयी थी। किंतु अब इनकी जोड़ी बिछुड गयी है। कारण कि सप्तर्षि तो उत्तरकी ओरसे ही '**उत्—यन्ति**' घूम जाते हैं। और यह कृत्तिका तो पूर्व दिशासे उपस्थित मात्र होती है, यानी ख स्वस्तिकमें आती हुई घूमती है। वस्तुतः इन कृत्तिकाकी सदाकी स्थिर जोड़ी अग्निके साथ बनी हुई है क्योंकि यह दोनों एक साथ सममंडलमें आते हैं॥ ५॥"

इस कथनके अनुसार कोष्ठक २ की क्रांतिद्वारा काल-निश्चय किया जाता है।

'अ' कालमें सप्तर्षियोंकी क्रांतिकी अपेक्षा कृत्तिकाकी क्रांति बहुत कम है। इतना ही नहीं। सप्तर्षि अच्युत एवं कृत्तिका च्युत ये दोनों ख स्वस्तिकमें आनेवाले नहीं है। इससे इनकी जोड़ी बिलकुल ही मिलती नहीं है। इस वास्ते प्रस्तुत घटना 'अ' कालमें हुई नहीं है।

'ब' कालमें सप्तर्षियोंकी क्रांतियोंके मानमें कृत्तिका अंतर्गत हो गयी है। किंतु किसी तौरसे स्वल्पांतरित हो जोड़ी बनकर आगे बिछुड़ती नहीं है। क्योंकि मरीचिको लाँघकर २।५२ ऊपर बढ़नेसे कृत्तिका अच्युत और मरीचि सप्तर्षि च्युत होता है, जब कि एक जोड़ीके तारेके अतिरिक्त सप्तर्षियोंके कुल तारोंका उत्तरसे पूर्व गमन नहीं होता। इस वास्ते यह घटना 'ब' कालमें नहीं हुई है।

'क' कालमें मरीचिको लाँघकर कृत्तिका सिर्फ ४८ कलामात्र उत्तरमें गयी है। इससे जिस प्रकार कृत्तिका पूर्व दिशामें ख स्वस्तिकमें उपस्थित मात्र होती है, उसी प्रकार [सप्तर्षि] मरीचि भी सममंडलमें आता है और स्वल्पान्तरसे दोनों च्युत नहीं होते हैं। ऐसी जोड़ी बनकर आगे मरीचिका अंतर बढ़नेसे यह जोड़ी बिछुड़ भी जाती है, क्योंकि मरीचि च्युत और कृत्तिका अच्युत रहती है। तथा कृत्तिकासे मरीचिके भोगांतर ११७ के स्थलमें विषुवांतर १४१ बढ़ जानेसे निकटके अग्नि तारेकी तुलनामें सप्तर्षि मरीचिके साथकी जोड़ी बिछुड़ी भी सिद्ध होती है। इस वास्ते यह ग्रंथोक्त घटना 'क' कालमें हुई है। क्योंकि प्रमाणमें कहे प्रकार अग्निके साथ कृत्तिकाकी जोड़ी इस कालमें पूर्णतया मिलती है। इसलिये दोनों प्रमाणवाक्योंके आधारसे निश्चित होता है कि शतपथका काल 'अ' 'ब' न होते हुए, शकपूर्व ५४,६९८ वर्षका, = 'क' काल, है।

२७—किंतु अब यहाँ यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि जब कि यह खगोलीय ऐतिहासिक घटना पृथ्वीपर सैकड़ों हजारों वर्षोंतक बराबर दिखाई देती रही तभी तो ब्राह्मण ग्रंथकार उसे अंकित करके प्रसिद्ध कर सके हैं। इसलिये उस कालके बादके ग्रंथोंमें तो इससे भी अधिक विस्तार-युक्त प्रमाण उपलब्ध होने चाहिये। और हमारे इतिहास-पुराणोंमें सबसे बड़ा महाभारत ग्रंथ है। इस समय

संपातकी स्थिति भारतमास अर्थात् मार्गशीर्षमें होने से, एवं और प्रमाणोंसे [हमारा बनाया युग-परिवर्तन पृ० ९१ देखिये] महाभारतका काल शकपूर्व १९,००० वर्षका निश्चित हुआ है तो उस भारतसे प्रस्तुत घटना बहुत प्राचीन होनेसे भारतमें इसका वर्णन एवं कालको पुष्ट करनेवाले अनेक प्रमाण उपलब्ध होने चाहिये। इस प्रश्नके उत्तरमें कहा जाता है कि पुराणग्रंथोंमें घटनाकालसे पुराणकालतकके सैकड़ों प्रमाणवचन उपलब्ध हैं, यहां स्थानसंकोचसे उनका उद्धृत करना असंभव है। महाभारत वनपर्वमें अध्याय २१९ से २२३ तक इसी संबंधका स्कंद आख्यान लिखा है किंतु इस लघु लेखमें उसमेंसे सिर्फ १०।१२ तत्कालीन प्रमाण बताकर अब मैं निर्णीत कालको पुष्ट करता हूँ।

८—महाभारत द्वारा शतपथका समर्थन

२८—भारत वनपर्व (अ० २३० श्लो० ९–११) में कहा है कि

"अभिजित् स्पर्धमाना तु रोहिण्या कन्यसी स्वसा।
इच्छन्ती ज्येष्ठतां देवी तपस्तप्तुं वनं गता ॥१॥
मूढोऽस्मि तत्र भद्रं ते नक्षत्रं गगनाच्युतम् ॥
कालं त्विमं परं स्कंद ब्रह्मणा सह चिंतय ॥ २ ॥
धनिष्ठादि तदा कालो ब्रह्मणा परिकल्पितः ॥
रोहिणी ह्यभवत्पूर्वमेवं संख्या समाभवत् ॥ ३ ॥
एवमुक्ते तु शक्रेण त्रिदिवं कृत्तिका गताः ॥
नक्षत्रं सप्तशीर्षाभं भाति तद्वह्निदैवतम् ॥ ४ ॥"*

अर्थ—रोहिणीकी छोटी बहिन कृत्तिका (नक्षत्र) अभिजित् नक्षत्रकी स्पर्धा करती हुई कि मैं ही सब नक्षत्रोंमें ज्येष्ठ (बड़ी = उत्तर क्रांतिवाली) हो जाऊँ, तप करनेके लिये वनमें गयी। एवं ज्येष्ठताको प्राप्त हो गयी ॥१॥ लेकिन भद्रन्त अर्थात् संपातसे ९० अंशपर जानेसे उसकी गति ढल गयी। इधर अभिजित् नक्षत्रका भी गगनसे, ख-स्वस्तिकसे, * पतन हो गया था। इस तरह ब्रह्मा = अभिजित्की † च्युतिके साथमें कृत्तिकाके स्कंदित होनेके इस कालको परमस्कन्दका काल समझो ॥२॥ ब्राह्मण ग्रंथकारोंने इस कालको धनिष्ठादि संपातका काल कहा है। इसके पूर्व कालमें (भुज ९० अंश) इसी स्थानपर रोहिणी (नक्षत्र-पुंज) आयी थी। अब उसी संख्याके समान कृत्तिका आयी है ॥३॥ ऐसा जब इंद्रने कहा तब कृत्तिका (ख स्वस्तिक रूप) त्रिदिवपर चली गयी थी। सो यह सात तारोंका, सात शिरके तुल्य रूपवाला कृत्तिका पुंज, अग्नि (तारे) के साथ आकाशमें अब भी स्पष्ट दिखाई देता है ॥४॥ अर्थात् इसीके संबंधकी यह खगोलीय प्राचीन घटना कही गयी है।

२९—उक्त अर्थकी उपपत्तिद्वारा कालनिर्णय। (१) अभिजित्के उत्तर शर ६१°४४′ की तुलनामें कृत्तिकाका उत्तर शर (४°१२′) मात्र होते हुए उस (अभिजित्) को लाँघकर उत्तरमें कृत्तिका क्रांतिका जाना ही इसकी अभिजित्के साथ स्पर्धा सिद्ध होती है। कोष्टक २ के 'अ' 'ब' कालीन अभिजित् क्रांतिसे उत्तरमें कृत्तिका (+२°।१′२) गयी है। इसलिये इस घटनाका 'क' काल है।

३०—वैदिक ग्रंथकारोंने उत्तर ध्रुवस्थानके निकटके भागमें अभिजित्की स्थितिको देखकर उसे ब्रह्मा कहा है। इसलिये अब यहाँ अभिजित् क्रान्तिकी तुलना स्कंद पुंजसे बतानेके लिये कोष्ठक नं० ३ की रचना की गयी है।

---

* ज्यो० शंकर बालकृष्ण दीक्षितजीने भारतीय ज्योतिःशास्त्रके पृ० ११० में यह श्लोक उद्धृत किये हैं किन्तु अर्थके संबन्धमें लिखते हैं कि **(एकंदर वाक्यांचा सर्व भावार्थ नीट समजत नाहीं)** 'इन सब वाक्योंका संमिलित रूपसे भावार्थ ठीक-ठीक समझमें नहीं आता है'। इस कथनसे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने इन श्लोकोंका भावार्थ नहीं समझा और न आजतक किसीने समझनेका प्रयत्न ही किया है।

* स्वर्ग यानी ख स्वस्तिक (स्थलके अक्षांशतुल्य क्रांति) तथा सदा दृश्य रहनेवाले ब्रह्मपदको इसने जीत लिया है। इसलिये उसे अभिजित् कहते हैं **"उभौ लोकौ ब्रह्मणा संजिते मौ तन्नो नक्षत्रमभिजिद्विचष्टाम्" (तै० ब्रा० ३।१२।५)**

† अभिजित् नक्षत्रकी वैदिक ग्रंथोंमें [**"ब्राह्मणो वा अष्टाविंशो नक्षत्राणाम्"** (तै० ब्रा० १।५।३।३) **'यस्मिन्ब्रह्माऽभ्यजयत्सर्वमेतत् × नक्षत्रमभिजित्,** (तै० ब्रा० ३।१।२।४)] अट्ठाईसवाँ नक्षत्र और ब्रह्मा कहा है।

कोष्ठक नंबर ३

स्कंदकी स्थिति

कृत्तिका भुज (९०) के कालमें				विवरण	शकपूर्व २३,१२२ वर्ष		शक पूर्व ५४,६९८ वर्ष
खगोलीय नक्शोंमेंके ययाति पुंजको पुराण ग्रंथकारोंने 'क' कालमें स्कंद नामसे कहा है। उसके क्रांति आदि परिमाण ये हैं—				सारणी व र.प.क्रांति संकेताक्षर	हर्शल ३४१० 'अ'	लवर २६।४५ 'ई'	हानसेन ३०।५५ 'क'
तारोंके भारतीय और ग्रीक नाम	प्रकाश वर्ग	नाक्षत्र भोग	कदंबीय उ० शर	सायन भोग	उत्तर क्रांति	उत्तर क्रांति	उत्तर क्रांति
	प्रति	अं० क०	अं० क०	अं० क०	अं० क०	अं० क०	अं० क०
कृत्तिका नक्षत्र प्लैएडीज़	२·९६	३६ ९	३४ २	९० ०	२८ २	३० ५७	३४ ५७
ययाति (ग्यामा) परसिउस — स्कंदशिर	३·७८	३६ ११	३४ २२	९० २	५८ २२	६१ ५	६५ १७
,, अल्फा परसिउस — स्कंद मध्य	१·९०	३८ ५५	३० १६	९२ ४६	५६ १४	५६ ५८	६१ ८
,, डेल्टा परसिउस — स्कंद चरण	३·१०	४० ५७	२७ १७	९७ १७	५१ १०	५३ ५४	५८ २
अभिजित् (वेगा)	०·१४	२६१ २८	६१ ४४ ५६ ४५	'क'कालीन ३१६ १६	४१ १	३६ १	३२ ४५
सदा दृश्य अक्षांश = (९०—कृत्तिका क्रांति) = क्रांति					६१ ५८	५९ ३	५५ ३

इस कोष्ठकसे स्कंदके ब्रह्मपदारूढ़का और उससे शतपथके स्थलका निश्चय इस प्रकार होता हैं—'अ' कालमें, कृत्तिकाको ख स्वस्तिकमें माननेसे सदा दृश्य क्रांति ६१°५८' से स्कंदके तीनों तारोंकी क्रांकि कम है तथा 'ई' कालमें स्कंदका मध्य और चरणके तारोंकी क्रांति भी सदा दृश्य क्रांति (५९°।३')से कम है। इससे 'अ' काल एवं अक्षांश २८°।२' के स्थलमें किंवा 'ई' काल एवं अक्षांश ३०।५७ के स्थलमें स्कंदकी ब्रह्माके सदा दृश्य प्रदेशमें स्थिति नहीं बनती और न अभिजित् (ब्रह्मा) का ख स्वस्तिक (= स्वर्ग) से पतन ही होता है; किंतु 'क' कालमें स्कंदके (शिर, मंध्य, चरणस्थानीय) तीनों तारे सदा दृश्य ध्रुव प्रदेश ब्रह्मपद-की क्रांति (५५°।३') से उत्तरमें आ जानेसे स्कंदब्रह्मपदारूढ हो गया है और अभिजित् (ब्रह्मा)की क्रांति ३२°।४५' अक्षांश ३४°।५७' से कम हो ज़ानेसे ब्रह्माका पतन हो गया है। इस वास्ते प्रस्तुत घटनाका स्थल •अक्षांश ३५के निकटका प्रदेश और 'क' काल निश्चित होता है।

३१—इस तरह जो अभिजित् **उभौ लोकौ ब्रह्मणा संजितेभौ** स्वर्ग (ख स्वस्तिक) और ब्रह्मपद (सदा· दृश्य ध्रुव)को जीते हुए था। उसका इस 'क' कालमें दोनों लोकसे पतन हो गया है और जो स्कंद [ययातिके ३ तारोंके शर (३४°।२'२) देखो] सदादृश्य पद तो दूर रहा स्वर्गमें भी नहीं पहुँचा वह इस 'क' कालमें स्वर्ग और ब्रह्माके दोनों लोकको जीतकर सदादृश्य ब्रह्मपदपर आरूढ हो गया है। इस वास्ते इस कालको **'कालं त्विमं परं स्कंदब्रह्मणा सह चिंतय'** 'स्कंद ब्रह्माके साथ परस्परमें पदपरिवर्तनका अंतिम काल समझो' ऐसा कहा है। इसमें **'परं'** शब्दसे ध्वनित कर दिया है कि इसी

परम क्रांतिके आगे स्कंद ब्रह्माकी क्रांतिकी विलोमता पूर्ण होकर पूर्व स्थितिपर आनेका आरंभ यहींसे होगया है। इससे कोष्ठकमें लिखी भुजांश ९०° आदि बातें और भी दृढ़ एवं विश्वसनीय निश्चित हो जाती हैं।

३२—ब्राह्मण ग्रंथोंमें (प्रस्तर २० देखो) इसे धनिष्ठा-संपातकाल कहा है और यहाँ भी '**धनिष्ठादि तदा कालो ब्रह्मणा परिकल्पितः**' अयनांश (३०।६'।९") द्वारा धनिष्ठा नक्षत्र घड़ी ५१ पल ४०पर ही वसंतसंपात निश्चित होता है। "इसी प्रकार पहले रोहिणी नक्षत्र बढ़ा था, उसी स्थलपर अब कृत्तिका आयी है" इस कथनसे संपातकी विलोमगति बतायी गयी है। "खस्वस्तिक रूप त्रिदिवमें सात तारोंके पुंजवाली कृत्तिका अग्नितारेके साथ दिखाई देती है।" ऐसी प्रत्यक्ष देखी घटनाको इन्द्रने कहा है। इत्यादि उक्त श्लोकोंकी उपपत्तिसे तथा इसीके पुष्टीकरणमें जैसेः—" **"दिव्यं रूपमरुन्धत्या कर्तुं न शकितं तया"** (वनपर्व २२६। १४) "कृत्तिकाने सप्तर्षि-पत्नियोंका रूप तो धारण कर लिया था किंतु वसिष्ठ-पत्नी अरुन्धतीके दिव्य रूपको धारण न कर सकी थी" इस कथनके अनुसार (कोष्टक २ देखिये) 'क' कालमें मरीचि क्रांतिसे केवल ४८ कला उत्तरमें जानेसे ऋषि-पत्नीतुल्य कृत्तिकाकी क्रांति हो गयी है और वसिष्ठ क्रांतिसे (४°।३।९) कम रह गयी है। इस तरह शतपथमें लिखी घटनाको ही भारतकारने स्पष्टीकरणके रूपमें कहा है। इन सबसे 'क' पंक्तिमें लिखे अक्षांश (३४°।५७') का स्थल तथा शकपूर्व ५४;६९८ वर्षका काल निश्चित होता है और शतपथमें लिखी घटनासे इसकी एकवाक्यता हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि शतपथ ब्राह्मणमें प्रत्यक्ष देखकर कही हुई इस घटनाको भारत एवं पुराणकारोंने उद्धृत किया है। जब यह ज्योतिःशास्त्रसे शुद्ध है, तब यह स्वतः ऐतिहासिक एवं विश्वसनीय सिद्ध हो जाती है।

३३—अब जब इस तरह प्रमाणवाक्योंके अर्थको संगतिको कृत्तिकाके विषुववृत्तीय एवं खस्वस्तिकीय दोनों कालोंसे मिलाकर देखते हैं तो विषुवकालसे बिलकुल ही नहीं मिलती। इतना ही नहीं, बल्कि क्रांतिके अभावकालीन स्थिति यदि कोई मध्यमें आती हो तो उसी वर्षके आरंभ-समाप्तिकालमें अयनगतिद्वारा क्रांतिमें एक कलाका और ९१९ दिनके आगे पीछेमें एक विकलाका अन्तर पड़ जाता है। कृत्तिकोदय क्षितिजपर दृष्टिगोचर (यदि हम अब देखना चाहें तो) हो नहीं सकता। तब बिना देखे-भाले ब्राह्मणग्रंथकार या तत्कालीन और कोई पुराणग्रंथ-कार ऐसी वेधसिद्ध प्रत्यक्ष देखी बातें लिख नहीं सकता। तब इस स्कंदकालीन घटनाके सैकड़ों प्रमाणवाक्य सभी पुराणोंमें उद्धृत कैसे हो सकते हैं?

९—तीन लाख बरस पहलेतकके इतिहासका प्रमाण

३४—कृत्तिकाके क्रान्त्यभावकालमें कृत्तिकाकी अभिजित्के साथ स्पर्धा, उसके बराबरीमें आये बिना एवं अभिजित्के विषुववृत्तसे ढले बिना, बन नहीं सकती और न इस कालमें अभिजित् विषुववृत्तपर ही आ सकता है।

खस्वस्तिक वा स्वर्गलोक, एवं सदादृश्य ध्रुव प्रदेश अर्थात् सुमेरु वा ब्रह्मलोक, ऐसा अर्थ किये बिना स्कंद (ययाति)का दोनों लोकोंको पादाक्रांत करना तथा ब्रह्मा (अभिजित्)का दोनों लोकोंसे पतन होना, हमारे बताये (क) कालके अतिरिक्त आगे पीछे कभी संभवित ही नहीं है।

और खस्वस्तिककालीन कृत्तिकाकी क्रांतिकी स्थितिमें १५ और ३०० और २२,८९० वर्षोंमें क्रमशः विकला कला और एक अंशके अन्तरसे अधिक आगे पीछेके कालमें बढ़ नहीं सकता, अतः उस घटनाके ऊपर हजारों वर्षोंतक जब कि तत्कालीन कई खगोलीय विद्वानोंका दृष्टिपात हुआ है तब यह सब प्रमाणवाक्य कहे गये हैं और सप्तर्षि, अभिजित्, ययाति पुंजोंकी क्रांतिकी इसीमें कुल प्रमाणोंके साथ एकवाक्यता होती है। इतना ही नहीं। बल्कि इसी खगोलीय ऐतिहासिक पद्धतिसे मानवेतिहासकी मर्यादा तीन लाख वर्ष पूर्वतक पहुँच सकती है। क्योंकि वहाँसे तो आज तकका कालानुक्रम हजारों लाखों मंत्र और श्लोकोंके द्वारा निश्चित हो जाता है। इसीलिये इस लेखके आरंभमें "अभी इतिहासकाल अपूर्ण ही है" और "बताये वर्ष कल्पनामात्र हैं" मैंने जो ऐसा कहा है, उसमें अत्युक्ति नहीं है। प्रत्युत सच्ची स्थिति बता देनेके सद्भावसे कहा गया है। अतः इतिहासज्ञ एवं भूगर्भ और भूस्तरशास्त्री वैज्ञानिक विद्वान् इस ओर ध्यान देकर संसारके सामने

[शेषांशके लिये देखो पृ० १४२का अन्त]

कोष्ठक नंबर ४

आजसे तीन लाख वर्षतकके दस-दस हजार वर्षके प्राचीन अयनांश और परम-क्रांति-मान

प्रो० हानसेनके ग्रंथानुसार ज्योतिर्गणित (केतकरोक्त पृष्ठ ८६–८७) में लिखे गणित द्वारा						प्रो० लीव्हेरिआ टेबुल पृ० १०४ और दिग्मीमांसा पृ० ३२ गणितद्वारा		वेदकाल-निर्णय, युगपरिवर्तन, और इन्दौर परिशिष्ट ग्रंथोंमें निश्चित किये हुए ऐतिहासिक ग्रंथोंके नाम
शक-पूर्व वर्ष	अयनांश	अयन वर्ष गति	अयनके मास	अयनके नक्षत्र	रविकी परम क्रांति	रवि परम क्रांति	परम क्रांति की वर्षगति	
काल	° '	"			° '			
२,९८,२००	२६१ ५६ ४५ १७	+१७·५०	मार्गशीर्ष	पूर्वाषाढ	६३ ७	२५ ५२ ०·५	+·४१८०	प्राचीन सामवेदीय मंत्रोंका निर्माण
२,८८,२००	३०७ १३ ३९ २२	१५·२४	माघ	शतभिषा	६१ ४८	२६ ५९ १२·१	·३८८२	
२,७८,२००	३४६ ३५ ३२ ५६	१२·९८	फाल्गुन	उत्तर भाद्रपद	६० २९	२८ १ २५·७	·३५८४	वेद संहिता ग्रंथोंका मंत्रनिर्माणारंभकाल
२'६८,२००	१९ ३१ २६ ३९	१०·७२	चैत्र	भरणी	५९ ९	२८ ५८ ४१·३	·३२८६	
२,५८,२००	४६ १० २० २३	८·४७	वैशाख	रोहिणी	५७ ५०	२९ ५१ ५८·९	·२९८८	देवासुर-संग्राम और यज्ञ पात्राकार रूप देव वर्णन मंत्र
२,४८,२००	६६ ३३ १४ ७	६·२१	”	मृगशिरा	५ ३१	३० ३८ १८·५	·२६९०	
२,३८,२००	८० ४० ७ २३	३·९५ २·२६	ज्येष्ठ	पुनर्वसु	५५ ११	३१ २० ४०·१	·२३९२	अदितिकालका आरंभ
२,२८,२००	८८ ३ २ ६	+१·६९ २*२५	”	”	५३ ५२	३१ ५८ ३·७	·२०९४	दक्षिणावर्त अयन सम्पत्तिकाल
२,१८,२००	९० २९ २	—०·५६ २ २६	”	”	५२ ३३	३२ ३० २९·३	·१७९६	वामावर्त अयन गतिका आरंभकाल
२,०८,२००	८५ २२ ५८	२·८२ २·१६	”	”	५१ १३	३२ ५७ ५६·९	·१४९८	पुनर्वसुद्योतक मंत्र

* अयनका वामावर्त कालका आरंभ शकपूर्व २२०६९९ वर्षमें पुनर्वसु अदिति देवतापर हुआ है । इससे प्राचीन दक्षिणावर्तकाल और अर्वाचीन वामावर्तकाल कहा गया है ।

प्रो० हानसेनके ग्रंथानुसार ज्योतिर्गणित (केतकरोक्त पृष्ठ ८६–८७) में लिखे गणित द्वारा						प्रो० लीव्हेरिआ टेबुल पृ० १०४ और दिग्मीमांसा पृ० ३२ गणितद्वारा		वेदकाल-निर्णय, युगपरिवर्तन, और इन्दौर परिशिष्ट ग्रंथोंमें निश्चित किये हुए ऐतिहासिक ग्रंथोंके नाम
शाक पूर्व वर्ष	अयनांश	अयन वर्ष गति	अयनके		रविकी परम क्रांति	रवि परम क्रांति	परम क्रांति-की वर्षगति	
			मास	नक्षत्र				
१,९८,२००	७४ २४	५·०८	ज्येष्ठ	आर्द्रा	४९ ५४	३३ २० २६·५	·१२००	अदिति कालकी समाप्ति
	५५	२ ७४						
१,८८,२००	५७ ९	७·३४	वैशाख	मृगशिरा	४८ ३५	३३ ३७ ५८·१	·०९०२	यजुर्वेद संहिता
	५१	१ ७८						
१,७८,२००	३३ ३८	९·६०	”	कृत्तिका	४७ १५	३३ ५० ३१·७	·०६०४	तैत्तिरीय संहिता
	४७	२ २५						
१,६८,२००	३ ५१	११·८५	चैत्र	अश्विन	४५ ५६	३३ ५८ ७·३	·०३०६	आरण्यक ग्रंथोंका निर्माण
	४४	२ २६						
१,५८,२००	३२७ ४७	१४·११	माघ	पूर्वा भाद्रपद	४४ ३७	३४ ० ४४·९	+·०००८ A	संहिताकालकी समाप्ति और आगे ब्राह्मण कालारंभ
	४०							
१,४८,२००	८५ २७	१६·३७	पौष	श्रवण	४३ १७	३३ ५८ २४·५	—·०२९०	
	३६							
१,३८,२००	२३६ ५१	१८·६३	कातक	ज्येष्ठा	४१ ५७	३३ ५१ ६·१	·०५८८	
	५३							
१,२८,२००	१८१ ५८	२०·८८	आश्विन	चित्रा	४० ३९	३३ ३८ ४९·७	·०८८६	षड्विंश ब्राह्मण
	२७							
१,१८,२००	१२० ४८	२३·१४	श्रावण	मघा	३९ २०	३३ २१ ३५·३	·११८४	वाजस संहिताका और ऋक् संहिताका परिशिष्ट सूत्र
	२४							
१,०८,२००	२३ २४	२५·४०	वैशाख	मृगशिरा	३८ ०	३२ ५९ २२·९	·१४८२	
	२१							
९८,२००	३३९ ३	२७·६६	फाल्गुन	उत्तरा भाद्रपद	३६ ४१	३२ ३२ १२·४	·१७८०	तांड्य गोपथकाल
	१८							
८८,२००	२५९ ४५	२९·९२	मार्गशीर्ष	पूर्वाषाढ़	३५ २१	३२ ० ४·१	·२०७८	ऐतरेय ब्राह्मण काल
	१४							
७८,२००	१७३ ३१	३२·१७	भाद्रपद	चित्रा	३४ २	३१ २३ ५७·७	·२३७६	तैत्तिरीय ब्राह्मण काल
	१०							

A प्रो०, लेव्हिरिआके संस्कारसे शकपूर्व १,५८,००० वर्षमें परम क्रांतिकी धनगति पूर्ण होकर ३४°।०'।४५" पर ऋण हो गयी है।

दीनानाथ शास्त्री चुलैट।

प्रो० हानसेनके ग्रंथानुसार ज्योतिर्गणित (केतकरोक्त पृष्ठ ८६–८७) में लिखे गणितद्वारा						प्रो० लीब्हेरिआ टेबुल पृ० १०४ और दिग्मीमांसा पृ० ३२ गणित द्वारा		वेदकाल-निर्णय, युगपरिवर्तन, और इन्दौर परिशिष्ट ग्रंथोंमें निश्चित किये हुए ऐतिहासिक ग्रंथोंके नाम
शाक पूर्व वर्ष	अयनांश	अयन वर्ष गति	अयनके		रविकी परम क्रांति	रवि परम क्रांति·	परम क्रांति-की वर्षगति	
			मास	नक्षत्र				
६८,२००	८१ २१	३४·४३	ज्येष्ठ	पुनर्वसु	३२ ४३	३० ४० ५३·३	·२६७४	गोपथ ब्राह्मण काल
	७							
५८,२००	३४२ १४	३६·६९	फाल्गुन	उ० भा०	३१ २३	२९ ५३ ५०·९	·२९७२	शतपथ ब्राह्मण काल
	१०५ ३							
४८,२००	२३७ ११	३८·९५	कार्तिक	ज्येष्ठा	३० ४	२९ १ ५०·५	·३२७०	श्रौतसूत्र कालारंभ
	१११ ५९							
३८,२००	१२५ १२	४१·२०	श्रावण	मघा	२८ ४५	२८ ४ ५२·१	·३५६८	लाट्यायन द्राह्यायन
	११६ ५६							
२८,२००	८ १६	४३·४६	चैत्र	अश्विनी	२७ २५	२७ २ ५५·७	·३८६६	ऋक्प्रातिशाख्य बौधायन सूत्र, वेदांग ज्योतिष
	१२३ ५२							
१८,२००	२४४ २४	४५·७२	मार्गशीर्ष	मूल	२६ ६	२५ ५६ १·३	·४१६४	पारस्करगृह्यसूत्र, रामायण भारत पुराणग्रंथ
	१३० ४८							
श.पू.८,२००	११४ ३६	४७·९७	आषाढ़	आश्लेषा	२४ ४७	२४ ४४ ८·९	·४४६२	ज्योतिष संहिता, सिद्धांत ग्रंथ बौद्धादि संप्रदाय भेद
	१३६ ४५							
शाके १,८००	३३७ ५१	५०·२४	फाल्गुन	उ० भा०	२२ २७	२३ २७ १८·५	·४७६०	वर्तमान काल

इतिहासकालकी सत्य मर्यादाको अंकित करनेमें दत्तचित्त हों और इस परिशोधित ज्योतिःशास्त्रीय पद्धतिसे लाभ उठावें।

३५—उक्त इतिहास संशोधनके लाभके अतिरिक्त इस शोधसे एक दूसरा लाभ यह है कि, इसी तरहके उदाहरण कि जिनमें ७५ हजार, एक लाख और डेढ़ लाख, और दो लाख वर्षोंकी खगोलीय घटना अंकित है, उन्हें बताकर उसके द्वारा रवि-परम-क्रांतिकी चक्रगति निश्चित होती है। और उसके साथ वसंत-संपातका दूसरा चक्र जोड़नेसे हजारों प्रमाणोंकी एकवाक्यता द्वारा तीन लाख वर्षोंका क्रमवार इतिहास हमें मिल सकता है। सर्वसाधारण पाठकोंको भी उसका दिग्दर्शन होनेके लिये और एक कोष्ठक नंबर ४ दे दिया गया है। इसके सिवा इस विषयके शोधोंको जो महोदय देखना चाहें सो हमारे श्रीमन्त राजाधिराज होल्कर साहब बहादुरके इन्दौर पंचांगशोधन कमिटीके रिपोर्टके अयनांश भागके ७३–१२१ विधानोंका एवं हमारे मंडलके बनाये हुए वेदकाल-निर्णय, युगपरिवर्तन, प्रभाकरपंचांग आदिका अवलोकन करें।

गूलरके गुणोंके सम्बन्धमें एक विशिष्ट विद्वानका अनुभव

[ले०—श्रीयुत "विपिनजी" वैद्य]

रामाला बगहा (चम्पारन) निवासी श्री० पं० चन्द्रशेखर मिश्र साहित्य-संसारके जिस प्रकार एक मान्य महानुभाव हैं—कहना अत्युक्ति न होगा, कि—ठीक उसी प्रकारसे आधुनिक आयुर्वेद-जगतके भी असामान्य महिमावान् महापुरुष हैं। गूलर विज्ञानके साधनोंपर उनका ध्यान कैसे गया, इसे भी सुन लीजिये। एक बार वे इक्केसे कहीं जा रहे थे। रास्तेमें उन्हें चोट लगी और उस जगहसे खून बहने लगा, जो रुकता ही नहीं था और सामने पानी भी नहीं था कि जिससे धोते। नौकरसे बोले कि जाओ तुम्हारे सम्मुख जिस चीजका भी पत्ता मिले उसे तोड़ लाओ। वह गया, आगे गूलरका पेड़ उसे देख पड़ा। उसीमेंसे एक टहनी पत्तेवाली तोड़कर वह लाया, उन्हीं पत्तोंका रस निचोड़कर लगाया गया—फिर क्या था खून भी बन्द होने लगा, उसका रंग स्याह पड़ गया तथा देखते देखते कटा हुआ स्थान ठीक सा हो गया। यही प्रारम्भ कथा है। यहाँसे गूलरका चमत्कार पण्डितजीको देख पड़ा। बाद इसके गुणोंका अनुसन्धान करना वयोवृद्ध विद्वान्ने आरम्भ ही तो कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि 'उदुम्बर-सार' का आविष्कार कर आपने चिकित्सा-जगत्को एक नयी देन प्रदान की। जिसके प्रयोग एवं विधि-व्यवहारसे अबतक अनेकों किस्मके भीतरी या बाहरी रोग अच्छे हो चुके हैं। इतना ही नहीं 'गूलर-गुणविकास' नामक एक महान ग्रन्थका भी जन्म हो चुका है, और छप रहा है। उसका एक छोटा एडीशन पूर्व छप चुका था और जिसको विहार और उड़ीसाकी संस्कृत पाठ्य-पुस्तकोंमें स्वीकृत कर लिया गया तथा मालवीयजीने भी हिन्दू विश्वविद्यालयकी कुछ पाठ्य-पुस्तकोंमें स्वीकृत किया। सत्य ही इस पुस्तकको क्या हिन्दी क्या संस्कृत सभी पढ़ाइयोंकी पाठ्य-पुस्तकमें रखना अत्यावश्यक है।

पण्डितजीका कहना है कि जहाँ उनका बनाया 'उदुम्बर सार' न मिले, वहाँ गूलरके ताजे पत्तेसे काम लेवें। वा गूलरके पत्ते पीसकर वटिका बनाकर सुखाकर उससे काम लेवें। यह पत्तोंका योग भी पूरा काम देता है। 'किन्तु किन्हीं-किन्हीं विशेष अवसरोंपर जहाँ इससे पूर्ण काम नहीं हो पाता वहाँ सारके व्यवहारसे हो जाता है। यह गूलरका सत अफीम या शिलाजीतके रूपका होता है। अनुभवकर्त्ताके कथनानुसार संसारमें यदि सौ रोग हैं तो उनमें प्रायः नब्बे रोगोंका यही औषध है और उस अवस्थामें भी आराम करता है जब और दवाएँ जवाब दे देती हैं। इसके अद्वितीय गुण ही के कारण सारे संसारमें प्रचारार्थ मालवीय जी उक्त आविष्कारकको इसके लाभांशमें चतुर्थांश भाग देनेकी शर्तपर हिन्दू विश्व-विद्यालयमें भी इसे तैयार करा रहे हैं।

कहना नहीं होगा कि आविष्कर्ता महोदय गूलरके इतने अनुरक्त बन गये हैं कि गूलरके फलोंकी ही तरकारी वे सदा खाते हैं, गूलरकी ही टहनी फल और पत्तोंका अम्बार लगा रहता है। जिस स्थानपर भी चाहे घरपर या शहरमें जहाँ भी वे टिकते हैं गूलरके दर्शन अवश्य होते हैं।

अब मैं गूलरके उन प्रयोगोंको लिखता हूँ, जो पण्डितजी द्वारा पेश किये गये हैं। इनसे अतीव कल्याण होनेकी आशा है। अच्छा सुनते चलिये। गूलरके ताजे पत्ते मिले तो पत्तोंके ही रसमें उन पत्तोंको खूब घोंट पीसकर बटी बना सुखाकर धर दो और चवन्नी भरसे लगायत रुपये-भरतक जलसे खावें। चाहे तीन तोले पत्तोंको भाँग ऐसा पीसकर चावलके धोअनमें शर्बत बनाकर मिश्री देकर पी जाँय। जलप्रमेहमें मट्ठाके साथ दें, चीनी मिश्री न दें। अतिसार पेचिश; मन्दाग्निमें भी तक्र ही देवें। हैजेमें लाभ न देख पड़े तो हर एक कै और दस्तके बाद थोड़ी-थोड़ी दवा दें। सुजाक स्ट्रिक्चर, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदरमें पिचकारी भी दें। बवासीर पर मलना भी और बत्ती भी देना। फीलपाँवमें खावें और लेप भी बराबर रखें, सम्भव होता उसका इञ्जेक्शन भी देवें।

लगाने वा लेपमें—कुचल जाने, छिल जाने, कट जाने,

पेड़ आदि परसे गिर जानेमें लोहू बहनेमें बीसगुने जलमें घोलकर उदुम्बर सार की पट्टी रखनी--ऊपरसे पान वा रेंड आदिके पत्ते रख कपड़ेसे बाँध देना और उसी जलसे सदा गीला रखना वा दूसरे जलसे भी। पत्ते ताजे मिलें तो उन्हें पीसकर यों ही छोप देना और ऊपर लिखी रीतिसे काम लेना।

गंडमालामें लेप निरन्तर रहे। उदुम्बर-सार भोजनमें भी रहे। यक्ष्माकी गले आदिकी गिल्टियोंपर भी। और और चिकित्सा भी यक्ष्मामें होती रहे। प्लेगकी गिल्टियोंपर भी बराबर लेप रहे। जीभ कटनेमें नई जीभ जमनेमें भी औषधसे भिगोये कपड़ेकी गाँठ जीभके बीच और नयी जीभ पर भी सदा रहे।

आगसे जलनेमें भी योंही लेप, बिच्छी मारनेमें भी, मधु-मक्खी, बर्रे हड्डा आदिके काटनेसे उसका डंक निकालकर, हो सके तो कुछ लोहू भी निकालकर इसकी पट्टी धरें। जलमें घोलकर मलें भी। साँपके काटनेमें दो रुपयेसे चार रुपये भरतक सार पिलाना और डँसे हुए स्थानपरसे सम्भव हो तो तुरंत कुछ लोहू निकालकर उस पर इसी औषधकी पट्टी धर देना।

सराविका, चराव, कारबंकल आदि बिगड़े घावमें तूतियाके जलसे सड़े माँसको रगड़कर निकालकर गूलर पत्र लेपकर पट्टी निरन्तर रक्खे। कालाज्वरके घाव कंकम ओरिस आदिमें भी। भगंदर, सैन्समें दो तीन बार तूतियाके जलकी पिचकारी देकर फिर सूतमें यही औषध लगाकर जहाँ तक घावकी जड़ हो पहुँचानी। साधारण फोड़े फुंसियाँको भी साफकर पीब निकाल सदा औषधकी पट्टी रक्खें।

जहरबाद, मुँह आदि पर विसर्प, लहरवाले झलके, जो होते हैं उनपर भी यही प्रयोग। बच्चोंके जन्मके समय जो मार्ग छिल जाता है, उसमें भी इसीसे धोना पोटली भी रखना और इसे पिलाना भी। अनेक तरहकी वातकी पीड़ामें भी दस गुने जलमें घोलकर आगसे सेक-सेककर मालिश करना, पीछेसे छोपकर पट्टी भी धरना।

फीलपाँव सूजनमें भी इसका उक्त प्रकारसे सदा लेप रहे। खानेको भी दिया जाये। दस्त भी रेड़की जड़ आठ आना भरके साथ यह औषधि खानेसे ठीक रहता है। अब इसका इंजेक्शन भी दिया जाता है—दो रत्ती सारमें और पाँच सीसी जल मिलाकर इंजेक्शन देते हैं।

कुष्ठ, वातरक्त, उकौत, दाद खाजमें गूमा [द्रोणपुष्पी] के पत्ते, कासमर्दके पत्तेके रस चतुर्थांश बकुची वाकुची बीजमें रगड़ लेप करना। घाव होनेपर बकुची न मिलाना, केवल दवा लगाना और पिलाना। श्वेत दागमें भी।

आँख उठना, आँखोंमें चोट, घाव, भयंकर पीड़ा, खाज, फूली, माडा, रोहा, टेटर आदि रोगोंमें रोगीको चित्त सुलाकर आँख नाकके कोनेमें छगुने जलमें उदुम्बर सारको घोलकर आठ दस बून्द टपका देना, ऊपरसे उसी सारके जलमें भिगोये हुए साफ कपड़ेकी पट्टी धर देना। जहाँतक बन पड़े, रोगी औषधको बहने न दे। गूलरके टटके पत्तेके रससे भी तुरन्त लाभ होगा।

नाकके घाव, नाकड़ा, पीनस, लोहू और पीबका गिरना, वैली गिरना, कीड़ा पड़ना इन रोगोंमें बीस गुने पानीमें सारको ढीलाकर सुरुकना और पिचकारी देना, दिनमें दो बार साफ कपड़ेमें दवा देकर बत्ती बना नाकोंमें चढ़ाकर रखना। वा पत्तोंको पानीमें पीस इसका रस सुरुकना।

कानके घाव, पीब गिरना, आदिमें बीस गुने पानीमें सारको घोलकर कानको धोना और रूईके फाहेमें दवा देकर कानके भीतर रखकर ऊपरसे दूसरी रूई दे कपड़ेसे बाँधना।

दाँतसे खूब पीब गिरना, पैरिया, दर्द आदिमें कपड़ेमें सार लपेट बत्ती सा बना होठ और मसूड़ेके बीचमें रखना और चूस चूसकर रस थूकना। मसूड़े और जीभके भीतर भी यों ही बत्ती रखना, इनमें पैरिया रोग अति कठिन है। मुँहमें बत्ती सदा ही निरन्तर रखनी चाहिये।

तालूके घावमें—कपड़ेके दोनों ओर सार लपेट उसकी गाँठ बना तालूके सामने जीभ पर रखना वा ताजे गूलरको ही चबाते रहना, घांटीके बढ़नेमें साँस और कफ आदिके रुकने हिचकीमें भी यों ही औषध मिले कपड़ोंकी गाँठ बनाकर मुँहमें रख रस चूसते जाना कि घांटी आदिमें भी लगता जाय।

कैंसरमें सदा पट्टी रखनी चाहिये और उदुम्बर सार खाना भी चाहिये। गूलर कितना उपकारी है यह तो आपको ज्ञात हो गया होगा। अब एक सामयिक संवाद जो "नवशक्ति" के समाचार स्तम्भमें गूलरके सम्बन्धमें छपा था, देकर इस विषयको समाप्त करता हूँ। उक्त पत्रमें प्रकाशित हुआ है—

ईश्वर और ईथर

(लेखक—स्वामी श्रीहरिशरणानन्दजी वैद्य, अमृतसर)

(गतांकसे सम्मिलित)

ईश्वरका स्वरूप और उसके ज्ञानके आधुनिक साधन

पूर्वकालमें ईश्वरको जिन कारणोंके आधारपर माना गया था उसका संक्षेपमें निर्देश कर दिया है। परन्तु आधुनिक समयमें उक्त सूक्ष्म सत्ताका आविष्कार कैसे हुआ ? अब हम इसकी संक्षेपमें चर्चा करें।

हम सबोंने ईश्वरको जगदाधार माना है, इसीलिये इस विश्वके ग्रह, उपग्रह किसके आधारपर चल रहे हैं इसके सूक्ष्मताकी ओर हमें जानेकी कभी आवश्यकता न दिखाई दी। पर, आधुनिक अनुसन्धानकर्त्ता इस प्रकारके विश्वास-वादी तो थे नहीं, इसीलिये उन्होंने इस बातको जाननेकी चेष्टा की कि ग्रह उपग्रह किसके आधारपर चल रहे हैं ? जब आधुनिक ढंगके अनुसन्धानकर्त्ताओंको इस बातका सही-सही ज्ञान हुआ कि जिस पृथ्वीपर हम सब निवास कर रहे हैं वह प्रतिसेकेण्ड १८ मीलकी गतिसे पश्चिमसे पूरबकी ओर फिर रही है और २३ घंटा ५४ मिनटमें इसका वह ऊपरका छोर जिस स्थानसे चला था वहीं फिर वापस पहुँच जाता है,—जिस प्रकार हमारी पृथ्वी अपने धुरेपर चक्कर काट रही है ठीक इसी प्रकार सूर्य तथा समस्त विश्वके तारागण भी चक्कर काट रहे हैं,—हम पृथ्वीको अचला[१६] कहते थे, जब उन्होंने इसे सचला पाया, यही नहीं, जब उन्होंने समस्त विश्वको चलता देखा, तो उन्हें संशयके लिये अवसर मिला कि यह सब किस आधारपर फिर रहे हैं ? बिना आधारके कोई वस्तु ठहर नहीं सकती। वह कौनसी शेष और निराकार सत्ता है जिसने इतने बड़े-बड़े महानकाय ग्रहोंको थाप रखा है ? सबसे पूर्व इस बातका समाधान सर आइज़ेक न्यूटनने किया। उसने पृथ्वीकी ओर वृक्षसे सेबको गिरता देखकर ईथर नामक एक सर्वव्यापक शक्तिकी कल्पना की, जिसका आकर्षण और निराकरण दो व्यापार उसने मालूम किये। उस समयसे यह बात मानी जाने लगी कि इस [१७]विश्वमें एक ईथर नामक सत्ता व्यापक है जिसके आकर्षण-निराकरण व्यापार विश्वके इन ग्रह, उपग्रहोंको अपने अपने स्थानपर बाँध रखनेका कार्य कर रहे हैं।

---

१६. इस सापेक्षवादके जमानेमें तो धरतीके अचला माननेमें कोई कठिनाई न रही। इस धरतीपर चलती हुई अथवा चल सकनेवाली समस्त वस्तुओंकी अपेक्षा धरती तो अचला है ही। उसका चलना तो और ग्रहोंके सापेक्ष है और उसकी गतिकी नाप भी ग्रहों और नक्षत्रोंसे ही होती है।

१७. "जगत्" और "संसार" शब्द भी गति और संसरणके द्योतक हैं और विश्वके पर्य्याय हैं। अतः हम तो मूलतः सारे विश्वको गतिशील मानते आये हैं। पृथ्वीको अचला मानकर प्रवह वायुकी गतिसे ग्रह नक्षत्रोंको उसके चारों ओर घुमाना भी अपने यहाँके कुछ ज्योतिषीसमुदायका मत रहा है। उसके विरोधी भी रहे हैं। अयनचलन माननेवाले हमारे प्राचीन ज्योतिषी तो आजकलके पाश्चात्य अयन दोलन गतिसे अधिक विकसित विचारके समझे जाने चाहिये।

खबर है कि बङ्गालमें [?] जिलेके सूत्रपुर नामक गाँवमें एक गूलरके पेड़से प्रायः एक मन पानी रोज चार पांच छेदोंसे होकर निरन्तर गिरता रहता है। यह भी खबर है कि उस जलको पीकर असाध्य रोगसे पीड़ित कई रोगी अच्छे हो गये हैं। कहिये, इसको क्या कहा जाय ? इसको ईश्वरका चमत्कार कहा जाय, या गूलरवृक्षका जौहर कहा जाय ? अवश्य ही गूलरके गुणोंमें एकसे-एक जौहर भरे हैं, यही कहना पड़ेगा, जिसकी परीक्षा उक्त पण्डित जी जैसे निस्पृह सरस्वती-सेवकोंद्वारा सर्वथा सुलभ हो गयी। आश्चर्य नहीं कि निकट भविष्यमें गूलर-विज्ञानके कारण कितनी ही आवश्यकताएं पूर्ण होंगी। [प्रभातसे]

जिस समय यह बात अन्य अनुसन्धानकर्त्ताओंके कानों पड़ी उनमेंसे कई विचारवानोंके हृदयमें यह नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि यदि विश्वमें ईथर नामक सत्ताका अस्तित्व स्वीकार कर लें और उसके आकर्षण-निराकरण दो व्यापार मान लें तो यह प्रश्न सामने आता है कि इस ईथर नामक सूक्ष्म सत्ताका आधार कौन सी सत्ता है। क्योंकि बिना आधारके आधेयकी स्थिति हो नहीं सकती। यह प्रश्न बड़े महत्वका समझा गया। ईथरके आकर्षण और निराकरणका व्यापार तृण-मणि, कान्त-पाषाण आदिके द्वारा भी प्रत्यक्ष देखते चले आ रहे हैं। लौह-कणोंको कान्त-पाषाण और छोटे-छोटे तिनकोंको तृण-मणि जब अपनी ओर खींचते हैं, तो इस खिंचावमें काम आनेवाली सत्ताका प्रकट रूप तो ज्ञात नहीं होता, किन्तु उसका कार्य, व्यापार देखकर उस अदृश्य सत्ताके अस्तित्वपर विश्वास होता है। पर इस अदृश्य सत्ताके व्यापारमें यह बात स्पष्ट होती है कि जब कान्त-पाषाण लौह-कणको अपनी ओर खींचता है तो इस खिंचावमें स्थूल लौह-कण उठकर ऊपर चलता है। इस ईथरके आकर्षणकालमें बल या शक्तिका उपयोग अवश्य होता है। जब हम जलमें बहती हुई नौकाको खींचनेकी चेष्टा करते हैं तो इसमें हमें दो बातें स्पष्ट दिखाई देती हैं, एक तो खींचनेके समय शक्तिका उपयोग करना पड़ता है, दूसरे उस शक्तिके या बलके उपयोगार्थ हमें आधारकी भी आवश्यकता होती है। जबतक हमारे पैर पृथ्वीपर दृढ़ताके साथ न टिकें तबतक हम अपनी शारीरिक शक्तिका उपयोग नावके खींचनेमें नहीं कर सकते। ठीक इसी प्रकार जहां आकर्षण नामक एक खींचनेकी शक्ति काम कर रही है उस शक्तिके चलते हुए व्यापारके अर्थ उसको ऐसा आधार चाहिये जो शक्ति प्रवाहको टूटने न दे,—यही नहीं, बल्कि आधार आधेयके लिये उससे कहीं अधिक बलशाली हो, जभी काम चल सकता है।

विश्वमें ग्रह, उपग्रह जो एक दूसरेको परस्पर खींच रहे हैं इस ऐंचातानीमें जितना ईथरकी आकर्षण-शक्ति लगा रही है यह इतनी महान् है कि जिसकी संख्या कूती नहीं जा सकती। हजारों लाखों मीलकी परिधिवाले अनन्त भारवाले ग्रह, उपग्रहोंको ईथर जिस आकर्षण-शक्तिसे अपने-अपने स्थानपर बाँधे हुए है, इस महत् व्यापारके लिये उसका आधार बहुत ही शक्तिशाली होना चाहिये। इस बातकी कल्पना उक्त कारणोंसे उद्भूत हुई।

प्रकाशके लिये आधारकी आवश्यकता

वेदोंके समयसे विद्वानोंकी यह धारणा रही है कि प्रकाश और उत्ताप जो सूर्यसे पृथ्वीतक आता है उसको भेजनेवाला ईश्वर है। वेदमन्त्रोंमें कई स्थलोंपर ऐसे मन्त्र आये हैं जिनमें लिखा है कि ईश्वर हमको प्रकाश और उत्ताप देता है[१८]। इसीलिये उसकी स्तुतिमें काफी मन्त्र कहे गये हैं। पूर्वकालमें प्रकाशके गमना-गमनपर आधाराधेयकी दृष्टिसे ईश्वरको नहीं माना जाता था, प्रत्युत उसे आदिस्रोत कहकर प्रत्येक सुखकर प्राकृतिक पदार्थोंका दाता मानते थे। प्रकाश और उत्ताप वह अपने अनुग्रह, अनुकम्पासे देता है, ऐसा विश्वास किया जाता था। वेदकालके पश्चात् जब दर्शन-कालका प्रभाव बढ़ा उस समय कुछ व्यक्तियोंके विचारोंमें अन्तर भी पड़ गया और उनमेंसे कुछने विश्वास किया कि सूर्य, चन्द्र आदि स्वयम् प्रकाशप्रद हैं और उनमेंसे प्रकाश स्वयं ही गिरता रहता है। उनमेंसे कुछने प्रकाश और उत्तापको वहनशील भी माना। परन्तु, इस ओर उनका ध्यान नहीं गया कि जो वस्तु वहनशील होगी वह बिना आधारके कैसे बह सकती है? जहाँतक हम समझते हैं इसका कारण यह था कि वह ईश्वरको सर्वशक्तिमान् मानते थे, ईश्वरकी सर्वशक्तिमत्ताकी भावनाने उनके विचारोंको कुण्ठित कर दिया। पूर्व-कालमें तो कभी इस बातकी ओर ध्यान नहीं दिया गया था कि कोई वस्तु चल रही है तो उसकी चालको नापा जोखा जाय। पानी कितने वेगसे बह रहा है, हवा कितने वेगसे चल रही है, प्रकाश कितने वेगसे आ रहा है, इसको जाननेकी कभी किसीने चेष्टा की हो इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता[१९]।

---

१८. जहाँ तक मैं जानता हूँ एक मंत्र भी ऐसा नहीं देखा गया है जिसमें लिखा हो कि हमको "ईश्वर" प्रकाश और उत्ताप देता है। लोगोंने सविता, अग्नि, ब्रह्म आदि शब्दोंका अर्थ "ईश्वर" लगाया है। —रा० गौ०

१९. इस तरह नापनेकी रीतियाँ संसारमें कुछ सौ बरसोंसे अधिक पुरानी नहीं हैं। हमारे देशमें तो देश और काल नापनेके

ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमें आकर अनुसन्धानकर्त्ताओंको इस बातका पता चला कि सूर्यसे जो प्रकाश हमतक चलकर आता है, वह एक निश्चित अवधिमें ही पहुँचता है। इस समयमें आकर गणितसे सिद्ध हुआ कि प्रकाशको सूर्यसे हमारी पृथ्वीतक पहुँचनेमें ८ मिनट ८ सेकण्डके लगभग लगते हैं। इस समयमें आकर प्रकाशकी चाल भी नापी गयी। ज्ञात हुआ कि प्रकाशकी चाल १,८६,००० मील प्रति सेकेण्ड है। और यह भी अनुसन्धानसे ज्ञात हुआ कि प्रकाश सदा एक ही सरल रेखामें चला जाता है। जब किसी वस्तुसे टकराता है तो उस समय प्रतिफल न होकर पुनः सरल रेखामें ही लौटता है, या फिरता है। इसकी किरण-रेखामें वक्रता नहीं आती।[२०]

प्रकाशका इस प्रकार एक सरल रेखामें गमन तथा निश्चित चालको नापकर इस बातकी ओर लोगोंका ध्यान गया कि प्रकाशका सरल रेखामें गमन और एक निश्चित समयपर होनेवाली चाल बिना किसी बाधाके नहीं हो सकती। इसकी चालको नियत समय देना उस आधारका काम है जिसपर यह एक सरल सीधी रेखामें चलता है, बिना आधारके यह दोनों बातें सम्भव नहीं। उस समय आधार या माध्यमकी आवश्यकता इसलिये हुई कि जिन विद्वानोंने इसकी गतिको निकाला था उन्होंने इसके रूपाकृतिका भी निर्देश किया था।

न्यूटनने उस समय यह मत स्थिर किया कि प्रकाशमें पदार्थत्व है। प्रकाशरश्मि दीप्तकणिकाओंका समूह है। प्रकाशमें पदार्थत्व मान लेनेपर उसमें तन, घन, मात्रा आदि आकारद्योतक बातोंका समावेश हो जाता है। आकारवान् वस्तु बिना आधारके न तो ठहर सकती है न उसमें गति आदि क्रिया ही सम्भव है, इसीलिये इस विश्वमें प्रकाश और उत्तापको ढोनेवाला कोई आधार अवश्य है, इस बातकी धारणा विद्वानोंमें बढ़ने लगी।

प्रकृतिके लिये आधारकी आवश्यकता

यद्यपि, आर्ष ग्रन्थोंमें सृष्टि-रचनाका क्रम कई प्रकारसे दिया गया है, तथापि सांख्य आदिमें वर्णित सृष्टिक्रम हमें अधिक गहराईतक ले जानेवाला है, जिनमें सृष्टि-रचना-सम्बन्धी नियम और क्रम अधिकाधिक पूर्ण कहे जा सकते हैं। यद्यपि सृष्टिसम्बन्धी विषयपर बहुमत इस बातके पक्षमें है कि सृष्टिका आदिकारण ईश्वर है, उसीने समस्त ब्रह्माण्डोंकी रचना की है तथापि उसके साथ प्रकृतिका कोई स्वतंत्र उपादान कारण मानते हैं, कोई परतन्त्र। कुछ विचारवान् जिस प्रकार ईश्वरको अनादि अनन्त मानते हैं उसी प्रकार प्रकृतिको भी कुछ ईश्वरको ही माननेवाले, प्रकृतिका उसमें तिरोधान कर देते हैं। खैर, हमें यहाँ इस ऊपरके मतभेदसे कोई प्रयोजन नहीं। प्रकृतिसे सृष्टि क्रम जैसे चलता है, इसपर सब एकमत हैं। इसका क्रमोल्लेख "प्रकृतेर्महत् महतोऽहंकारः" "प्रकृतिसे महत् महत्से अहंकारकी रचना हुई" ऐसा सब मानते हैं। किन्तु इस सृष्टि-क्रमको बतानेवाले शास्त्रोंमें इसका स्पष्टीकरण नहीं मिलता कि[२१] प्रकृति क्या है, उसका स्वरूप कैसा है और

जो प्रमाण मिलते हैं उनसे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि वेग और गति नापनेके भी परिमाण रहे होंगे। विमान, सेतुबन्ध आदिकी प्रागैतिहासिक कथाएँ साची हैं कि वेग और गति-विज्ञानके परिमाण रहे होंगे, वह बहुत काल बीतनेसे नष्ट हो गये होंगे। वर्तमानकालके बराबर भूतकालमें कभी उन्नति नहीं हुई, यह मान लेना भी वर्त्तमान विद्वानोंका झूठा मद है। "ईश्वर"के मानने, न मानने या किसी विशेष प्रकारसे माननेके लिये यह जरूरी नहीं है कि हम इस बातकी जाँच करें कि प्राचीन लोग कितने विद्वान् थे या किन किन विद्याओंको जानते थे। वह प्रकाशका वेग भले ही न जानते हों परन्तु मनको उन्होंने सर्वाधिक वेगवान माना है। विज्ञानको अभी यह मालूम करना बाकी है कि मनके वेगकी प्रकाशके वेगके साथ क्या निष्पत्ति है। पच्छाँहकी उन्नतिका मार्ग और है, पूर्वका उससे भिन्न है। पच्छाँहकी चकाचौंधमें हमें पूरबकी अवहेलना न करनी चाहिये। —रा० गौ०

२०. वैज्ञानिक जगत्में यह बात भी सर्ववादिसम्मत नहीं है। ऐंस्टैनवाद तो रेखाकी ऋजुताको ही असिद्ध करता है और यह स्थापित करता है, कि प्रकाशकी किरणें वस्त्वाधिक्यके सान्निध्यमें विशेषतः टेढ़ी हो ही जाती हैं। यह बात आजसे चौदह बरस पहले सूर्य ग्रहणके समय प्रत्यक्ष देखी गयी। —रा० गौ०

२१. जब प्रकृतिको अव्यक्त और अगोचर कहा तब और स्पष्टीकरण कैसे मिल सकता है। प्रकृतिकी परिभाषा ही उसे अस्पष्ट, अव्यक्त और अगोचर बताती है। आज किसी स्पष्ट, व्यक्त और

उसके अव्यक्त अगोचर स्वरूपको किस प्रकार जाना जाता है। केवल 'सत्वरजस्तमसः साम्यावस्था प्रकृतिः' इतना निर्देश है। सत्व रज तम क्या है? इनका स्वरूप क्या है? और इनकी समविषमावस्था कैसे होती है? इसकी परीक्षा क्या है? लक्षण क्या है? कहीं कुछ पता नहीं लगता। इतना भी तो नहीं कि सत्व रजके आकार-प्रकारका ही कोई निर्देश हो। वास्तवमें बात यह थी कि प्रकृतिसे लेकर महत् और अहंकारतक सब अव्यक्त अगोचर सत्ता मानी गयी है। जो प्रकृति उनके लिये अव्यक्त अगोचर रही है, उसका अंगाङ्गी-सत्ताका स्वरूप क्या था, इसको वह वैसे ही ढंगसे समझ पाये थे जैसे ईश्वरको। प्रकृतिके वास्तविक स्वरूप और उसके रूपान्तररूपोंका ज्ञान तो अभी इस सत्तरहवीं शताब्दी-के अन्तमें आकर हुआ जिसका स्पष्ट उल्लेख हम प्रकृति और एलेक्ट्रोन प्रोटोन नामक लेखमें कर चुके हैं। और वहाँ यह भी सिद्ध कर चुके हैं कि अहंतापूर्ण परमाणु जिन सत्, रज प्रपराणुओंके द्वारा बनते हैं उन्हीं प्रपराणुओंके रूपान्तर रूपोंका नाम प्रकृति है।

प्रकृतिके इस समय सत (Proton) रज (Electron) तम (Positron) आदि कई रूपान्तररूप देखे जाते हैं। [२२]यह जितने भी उसके रूपान्तररूप पाये जाते हैं सबके सब प्रदीप्तकणिका रूप हैं। सबके सब कुछ-न-कुछ आकार रखते हैं। उनमें तन, घन, मात्रा, वर्ण, उत्तापादि पदार्थत्व-द्योतक, अस्तित्वद्योतक बातें पायी जाती हैं। प्रयोगोंसे यह भी पता चलता है कि यह सब किसी अदृश्य कारणसे एक रूपसे दूसरे रूपमें भी बदल जाते हैं। प्रकृतिके उक्त अवस्थान्तर रूपोंके साथ सृष्टि रचनात्मक और पदार्थ-बन्धनात्मक महत नामक एक और रूपका भी पता लगता है। प्रकृति अपने इसी रूपकी सहायतासे विकृतिमें आती है और जहाँ भी प्रकृति अपनी किसी भी अवस्था किसी भी रूपमें विद्यमान है वहाँ यह महत् अवश्य पाया जाता है। इसके बिना सृष्टिका क्रम चल नहीं सकता। सृष्टि-रचनामें प्रकृतिकी अवस्थाओंको घनीभूत रूप देनेके लिये इस मध्यवर्ती सत्ताकी सर्वत्र आवश्यकता दिखाई देती है। महत्में भी पदार्थत्व है। इसकी भी प्रपराणुरूप महान् सूक्ष्मकणिकाएँ हैं।

यह निरीक्षणसिद्ध है कि प्रकृतिके रूपान्तररूपोंका विस्तार समस्त ब्रह्माण्डमें हो रहा है। यह विश्वमें अपने साम्य और असाम्य दोनों रूपोंद्वारा व्याप्त और परिपूर्ण

गोचर वस्तुको आप वही प्रकृति ठहरावें तो उसकी परिभाषासे ही इनकार करते हैं। आप नयी परिभाषा बनावें तो किसीको आपसे कोई झगड़ा नहीं।

अपने यहाँ प्रकृतिके व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही रूप बताये हैं। ये दोनों शब्द भी सापेक्ष हैं। मनुष्यकी इन्द्रियोंकी सापेक्षताके अनुसार ही इन शब्दोंका प्रयोग होता आया है। एक चींटीके लिये जो पदार्थ व्यक्त है, हमारे लिये अव्यक्त हो सकता है। उसके लिये जो अव्यक्त है, हमारे लिये व्यक्त हो सकता है। जहाँ अव्यक्त और अगोचर शब्दोंका मनुष्यके लिये प्रयोग होता है वहाँ अन्तः-करणों द्वारा न समझमें आनेवाला अव्यक्त और बाह्य करणों द्वारा न प्रतीत होनेवाला अगोचर होता है। —रा० गौ०

२२. भारतीय दर्शनोंके सृष्टितत्त्वोंका पाश्चात्य हालके आविष्कृत पदार्थ तत्त्वोंसे समन्वय करनेमें उतावली करना ठीक नहीं है। विज्ञान सतत वर्धमान शास्त्र है। अभी छः सात बरसोंके भीतर ही विद्युत्कणोंके छः छः रूप जाने गये। फिर भी खोजका द्वार बन्द नहीं है। मेरी छात्रावस्थामें ही डाल्टनके परमाणु सबसे छोटे थे। सरविलियम क्रुक्सका "प्रोटैल" मूलप्रकृतिका स्थानग्राही था। मेरे देखते ही देखते, परमाणु कहीं पीछे छूट गये। विद्युत्कणोंने उनका स्थान ले लिया। विद्युत्कण हमारे परमाणुओंकी तरह केवल एक ही प्रकारके थे। अब कमसे कम तीन प्रकारके हो गये—धन, ऋण और तटस्थ। विविध संख्याओंमें इन्हींके मेलसे विविध मौलिकोंके परमाणु बने। कल ही इन्हीं विद्युत्कणोंके घटक अधिक सूक्ष्म कणोंका मिल जाना नितान्त असंभव नहीं है। इनसे भी सूक्ष्म कस्मि-काणुका कास्मिकरेजका पता लग ही चुका है। विश्वमें अभी नीहारिकामें निहित कितने सूक्ष्म पदार्थ है, रश्मिमापक यंत्रकी वहाँतक पहुँच नहीं हो सकी है। अतः हमारे दार्शनिकोंको उतावली न करनी चाहिये। विश्वकी रचनामें प्रकृतिकी अव्यक्तता और अगोचरता जहाँतक व्यक्त होती जाती है, वहाँतक उसे व्यक्त और जितनी अव्यक्त रह जाती है उतनीको अव्यक्त माननेमें ही सत्यता है। सत्व, रज, तम प्रकृतिके गुण हैं जो सभी व्यक्त प्रकृतिमें पाये जाते हैं। उनको वस्तु ठहराना उसी दशामें संभव होगा, जब हम उन परमाणुओंतक पहुँचेंगे जो प्रकृतिके अन्तिम अवयव हैं। कौन कह सकता है कि हम अंतिम अवयवोंको जान गये हैं? —रा० गौ०

हो रहे हैं। यह पदार्थत्वपूर्ण सत्ता क्या बिना किसी आधार-के विश्वमें परिपूर्ण हो रही है? यह किसीको भी युक्ति-युक्त नहीं जँच सकती। क्योंकि, इसके अस्तित्वको तो प्रयोगोंसे अच्छी प्रकार देख और जान लिया गया है। यह अब कल्पनाकी वस्तु नहीं रही। जब इसका और इसके व्यापारका स्पष्ट अस्तित्व पाया जाता है तो इस आधेयका आधारभी अवश्य होना चाहिये। क्योंकि बिना आधारके आधेय नहीं।

विद्युत्गतिके लिये आधारकी आवश्यकता

यद्यपि प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुका है[२३] कि विद्युत् प्रकृतिसे भिन्न वस्तु नहीं। उसीके सत, रज, प्रपराणुसमूह सामर्थ्य-शक्तिका संघट्टरूप है, तथापि इस सामर्थ्य-शक्ति संघट्टिका विद्युत बलका भिन्न क्रियात्मक उपयोग आधारकी आवश्यकताको स्पष्टतया सिद्ध कर रहा है। इसीलिये इसकी चर्चा भी अप्रासंगिक न होगी।

तारोंके आधारपर समाचार भेजनेका क्रम तो काफी जीर्ण-शीर्ण हो चुका है। इस उन्नीसवीं शताब्दीके महत्त्व-अपूर्ण अविष्कारोंमें विद्युत संघट्टशक्तिद्वारा अन्तरिक्षमें तरंग उत्पन्न कर १,८६,००० मील प्रति सेकेण्डकी चालसे बिना स्थूल आधारके समाचार भेजनेका नया क्रम निकला है, जिसका प्रचार भारतमें भी काफी हो चुका है।

एक स्थानसे दूसरे स्थानतक अनाधारी समाचारोंका भेजा जाना कैसे सम्भव हुआ? इसका हम संक्षेपमें उल्लेख करेंगे।

एक विशेष शक्तिशाली विद्युतोत्पादक यन्त्र बनाकर उसकी प्रबल धाराको बहाकर एक कुण्डलीद्वारा उसमें विस्फुलिंग उत्पन्न कराया जाता है। यह विस्फुलिंग जब उठता है तो उससे अन्तरिक्षमें इसका कम्परूप विस्तार बनकर वह अन्तरिक्षमें १,८६,००० प्रति सेकेण्डकी गतिसे चारों ओर चल पड़ता है। यदि इस विद्युत्-विस्फुलिंगको ग्रहण करनेवाला कोई यन्त्र कहीं भी लोक-लोकान्तरमें लगा हो वहीं वह विद्युत्-विस्फुलिंग अपना अस्तित्व बताने लगता है। और उसकी छोटी-बड़ी तरंगोंद्वारा जैसा वह वाहक-यन्त्रसे बना था—ग्राहक यन्त्रसे गृहीत हो जाता है। इस सिद्धान्तको विज्ञानविदोंने समझकर उसके तरंगोंमें लम्बाई-छोटाईका अन्तर देनेका क्रम मालूम कर उससे अपने व्यावहारिक संकेत निश्चित कर लिये।

परीक्षाओंसे देखा गया है कि जिस प्रकार मेघोंमें जल हवा के संघट्टसे चपला तडित् प्रकट हो जाती है और वह भयंकर गर्जनाके साथ—उसमें पदार्थत्व होनेके कारण वह पृथ्वीकी ओर आती है, उसमें उस समय लपक या तरंग देखी जाती है, ठीक इसी प्रकार इस विस्फुलिंगो-द्भावक यन्त्रसे उद्भूत विस्फुलिंग अन्तरिक्षमें तरंगित होकर कम्पविस्तारमें लम्बी—मीलों लम्बी—तरंगें बनकर चहुँ ओर बह पड़ता है। यदि सचमुच कोई विश्वमें माध्यम नहीं कोई आधार नहीं, आधार कल्पनामात्र है, तो इस आधेयका सञ्चार कैसे होता। सच बात तो यह है कि इन अनाधारी समाचारोंके उपयोगने विश्वव्यापी आधारकी स्थितिको जितना स्पष्ट कर दिया है और उसकी जितनी आवश्यकता को यह सिद्ध करानेवाला कारण सामने है, इतना अन्य नहीं। संसारके बड़े-बड़े विज्ञानविदोंने मान लिया है कि इस विश्वमें एक महान् सूक्ष्म सत्ता व्यापक परिपूर्ण हो रही है जिसका वैज्ञानिकोंने नाम दिया है ईथर। किसी-किसीकी कल्पना है कि इसी ईथरको लोग ईश्वरके नामसे जानते और मानते चले आ रहे हैं।

---

२३. विश्वमें प्रकृतिसे भिन्न वस्तु कुछ भी नहीं है। यह बात प्रयोग सिद्ध नहीं है। सर्ववादि-सम्मत अवश्य है। विद्युत् भी उसी तरह प्रकृतिसे अभिन्न है। विज्ञानी व्यक्त-अव्यक्त गोचर-अगोचर जो कुछ सत्ता है सबको प्रकृति कहता है, इसलिये नहीं कि उसने प्रयोगोंसे सिद्ध किया है। केवल इसीलिये कि उसने ऐसा मान लिया है। वह यह भी देखता है कि विश्वके अधिकांश व्यापार जहाँ तक वह जान सका है सुव्यवस्थित रीतिसे चलते हैं और उसका विश्वास है कि अबतक जो वह नहीं जान सका है उसमें भी सुव्यवस्था होगी, नियम होंगे। इसी विश्वासपर वह अनेक साधनोंसे अपने ज्ञातृत्वकी परिधिको बढ़ाता जाता है। वह प्रयोगोंसे, परीक्षणसे, निरीक्षणसे जहाँ व्यवस्था देखता है, समानता, विधान और सामंजस्य पाता है, वहाँ विचारपूर्वक सूत्र बना लेता है। यह सूत्र यदि उत्तरोत्तर परीक्षणोंसे बराबर ठीक उतरते जाते हैं तो अंतमें प्रकृतिके निश्चित और स्थायी नियमोंमें गिने जाने लगते हैं। विज्ञानके निकट प्रकृति ही अखिल विश्व है और उसके नियम असंख्य हैं। उनकी खोज ही उसका प्रधान उद्देश्य है। —रा० गौ०

२४. ऐंस्टैनके अनुसार किसी आधारकी आवश्यकता नहीं है। ईथरकी सत्ता असिद्ध है। मैकेल्सन-मोर्लेका प्रसिद्ध प्रयोग ईथरकी सत्ताको असिद्ध कर देता है। आधारका होना भी अनिवार्य्य नहीं समझा जाता। अनेक विज्ञानियोंके निकट आधार—आधेयका पुराना वाद (जिसमें शेष—कमठ—दिग्गज—गाय आदिकी कल्पना की और आज तक तर्कशास्त्रियोंको ग्रसे हुए हैं) निरर्थक समझा जाता है।

इस ईश्वरके गुण और स्वभावकी खोज

योगाभ्यासियों या ब्रह्मज्ञानियोंकी तरह वैज्ञानिकोंने इसे ईश्वर समझकर इसकी खोज नहीं की। प्रत्युत जिस प्रकार हमारे यहां कार्यको देखकर कारणका अनुमान प्रथम करते थे तत्पश्चात् उसके अस्तित्वकी खोज करते थे, वैसे ही इन्होंने भी किया।

सबसे पहिले इन्होंने अणुओंको जाना, तत्पश्चात् अणुओंको खोजते-खोजते परमाणुओंतक पहुँचे और परमाणुओंकी खोजने इन्हें प्रकृतिके रूपान्तररूपोंतक पहुँचाया। प्रकृतिके रूपान्तररूपोंका ज्ञान तथा उसका क्रियात्मक परिचय और आधाराधेयके विचारने इन्हे ईथरतक पहुँचाया। जब यह उस सूक्ष्म सत्ताको आधार आधेयताके कारण जान पाये तो उनमें यह जाननेकी लालसा जागी कि इस सूक्ष्मातिसूक्ष्म सत्ताका रूप, गुण स्वभाव क्या है? जिसके परिणामस्वरूप जो कुछ अबतक जाना गया है निम्न है।

---

२५. इस वाक्यसे यह प्रतीत होगा कि योगाभ्यासियोंने या ब्रह्मज्ञानियोंने (१) इसी ईथरको ईश्वर समझकर इसकी खोज की अथवा (२) इसी ईथरको ईश्वर समझकर इसकी खोज नहीं की। परन्तु दोनों बातें असिद्ध हैं। उन्हें ईथरकी कोई खबर न थी। ईथरकी कल्पना तो पाश्चात्य है। ईथरको ईश्वर समझनेवाली बात बिलकुल नयी सूझ है जिसका श्रेय लेखकको ही हो सकता है। वैज्ञानिकोंने भी, जहाँ तक मुझे मालूम है, ईथरमें अबतक ईश्वरकी कल्पना नहीं की थी।

मेरा ऐसा अनुमान है कि हमारे यहांके पाँच तत्त्वोंका रूप भौतिक पाँचों तत्त्वोंसे मिलता है। पृथ्वी = घन। जल = द्रव। वायु = वायव्य। अग्नि = विद्युत्। आकाश = ईथर। मैं ऐसा तबसे समन्वय करता आया हूँ जबसे विज्ञानका अध्ययन आरंभ किया। अब तक मुझे मत बदलनेका कोई कारण नहीं देख पड़ा। हमारे ऋषियोंने आकाशको कभी ईश्वर नहीं माना।

पच्छाहीं लेखकोंने,—जिनके पूर्वगामी दार्शनिक केवल चार तत्त्व मानते थे और मिट्टी, पानी, आग और हवा इनसे घनत्व, द्रवत्व, तेज और वायुत्व न समझकर पदार्थका भाव लेते थे,—अपने पूर्वजोंके भ्रमका खंडन करके रसायनकी पुस्तकोंमें लिखा कि मिट्टी और जल यौगिक हैं, वायु मिश्रण है और अग्नि वस्तुत्वहीन है। अग्निका पदार्थत्व तो गत पैंतीस वरसोंके भीतर सिद्ध हुआ है। जिस दृष्टिसे उन लेखकोंने खंडन किया, वह ठीक ही थी। परन्तु अपने दार्शनिकोंने जिस दृष्टिसे इन तत्त्वोंको देखा है, वह तो और ही है। उनका खंडन-मंडन कुछ भी नहीं हुआ। मैं जब पढ़ाता था तो अपने छात्रोंको यह भेद समझा देता था। परन्तु समन्वय-पूर्वक शिक्षाका अभाव होनेसे अब तक इस प्रकारके भ्रम बने हुए हैं। —रा० गौ०

आधारता, अखण्डताका ज्ञान—कान्त पाषाण जब लोहेको अपनी ओर खींचता है लोहा कान्त-लोहसे काफी दूर होता है। लोहेमें गुरुता है। भारी वस्तुको उठानेमें जिस प्रकार बल लगता है इसी प्रकार आकर्षण-कालमें भी पदार्थ पूर्ण वस्तुको उठानेमें बल लग रहा है। और जब लोह तथा कान्त लोहमें किसी प्रकारका लगाव नहीं तो ऐसी दशामें आकर्षणका व्यापार-जिसमें खींचनेका गुण है—विना आधारके हो नहीं सकता। विद्वानोंने निश्चित किया कि इस माध्यममें, जिसके द्वारा आकर्षणका व्यापार चलता है, दो गुण अवश्य होने चाहिये।

(१) **आधारता**—कोई भी महान्‌से महान् सूक्ष्म सत्ता आधार जभी बन सकती है, जब उसमें कुछ-न-कुछ सघनता या काठिन्य हो। बिना सघनता या कठिनताके वह कभी आधार नहीं बन सकता। जल द्रव वस्तु है, उसमें काफी सघनता है इसीलिये वह लकड़ी तिनका आदिको धारण कर लेता है। पृथ्वी तो काफी सघन या गाढ़ी है, जभी वह पदार्थपूर्ण विश्वकी आधार हो रही है।

(२) **अखण्डता**—कोई सत्ता आधार तभी बन सकती है, जब उसमें कुछ-न-कुछ अखण्डता हो। अखण्डताका अभिप्राय यह है कि शक्ति या बलका उपयोग होनेके समय उसकी सघनतामें या काठिन्यमें काफी दृढ़ता होनी चाहिये ताकि वह शक्तिकालमें कहीं टूट न जाय। हर स्थानपर आधार शक्तिमान्‌के शक्त्योपयोगकालमें उन दोनोंका सम्बन्ध स्थापित करता है। जिसकी ओरसे शक्ति लगेगी और जिसपर जाकर लगेगी, जबतक शक्ति लगे और जितनी भी लगे उस आधारको उससे टूटना नहीं चाहिये। जिस पदार्थमें अखण्डता, न विच्छेद होनेका गुण, जितनी अधिक होगी वह पदार्थ उतना ही दृढ़ कहलायेगा। यह दृढ़ता जलमें, हवामें उसके यांत्रिक रूपानुसार काफी है। पूर्व-कालमें किसी वस्तुकी आधारता, अखण्डताको सापेक्षित जाननेका यह साधन न हो, किन्तु इस समय तो अनेकों वस्तुओंकी सापेक्ष आधारता तथा अखण्डताको नापा जा सकता है।

एक सूत ($\frac{1}{8}$ इंच) मोटी लौहशलाका कितने बोझ या खिंचावको सहन कर सकती है यह किसी अन्य पदार्थकी अपेक्षासे नापकर बतलाना उसकी आधारता और अखण्डता-को बतलाना है। [क्रमशः]

हिन्दीके द्वारा शिक्षा होती तो वह हरिजन भारतीय फैरडे होता

हरिजन रामदीनकी कुशलता

(लेखक—रामदास गौड़)

१. फैरडे कौन था ?

सवा सौ बरस पहलेकी बात है कि एक रमते लोहारका लड़का सर हम्फ्रे देवीकी प्रयोगशालामें नौकरी खोजते आया। सर हम्फ्रेने उसे शीशियाँ धोनेके कामपर नौकर रख लिया। सर हम्फ्रे भी अंग्रेज थे और वह लड़का भी अंग्रेज था। मालिक और नौकर दिनरात अपनी मातृभाषामें बातचीत करते और मालिककी विद्याका पूरा लाभ यह नौकर उठाता था। धीरे-धीरे बड़ी आसानीसे इस नौकरने मालिककी सारी विद्या अपना ली और स्वयं मालिक-सरीखा विद्वान् हो गया, यहाँतक कि उसके खोजोंकी महत्ता मालिककी खोजोंसे कहीं अधिक हो गयी और आज तो विज्ञानमें पद-पदपर फैरडेको स्मरण किये विना वैज्ञानिक चल ही नहीं सकता। फैरडे इतना बड़ा वैज्ञानिक कैसे हुआ ? उसके पास दिमाग था। मगर यदि उसका मालिक किसी और भाषाद्वारा काम लेता और फैरडे न समझ सकता तो कैसा ही तेज दिमाग होता, क्या कर लेता? फैरडेको अपनी मातृभाषाकी विद्वन्मंडलीमें शीशी धोनेका काम मिला था।

हरिजन रामदीन

विदेशी भाषा द्वारा शिक्षासे दुःखी और दलित भारतकी एक प्रतिमूर्त्ति है।

२. रामदीन कौन है ?

बूढ़ा रामदीन भी शीशी धोनेके कामपर आजसे साठ बरस पहले एक प्रयोगशालामें नियुक्त हुआ। उसके दुर्भाग्यसे, भारतके दुर्भाग्यसे, विज्ञानकी सारी शिक्षा, तबसे लेकर अबतक, विदेशी भाषाद्वारा होती आयी है। रामदीनने शीशी धोनेसे लेकर हाथका सारा काम सीख लिया। वह एक प्रोफेसरसे अच्छा यंत्रोपकरण तैयार कर सकता है, काँच फूँककर अनेक तरहके उपकरण बना सकता है। उसका हाथ अत्यन्त कुशल है। उसके दिमागकी दौड़ उसके जीवनभरकी परिस्थितिके विचारसे बहुत अच्छी है। कहीं अंग्रेजीके बदले हिन्दीमें शिक्षा होती रहती तो यह हरिजन बालक आज कोई प्रसिद्ध खोजी होता। मेरा विश्वास है कि मैकेल फैरडेसे किसी तरह कम न होता। भारतकी अभागी परिस्थिति ऐसी है कि होनहार बिरवे ठमककर रह जाते हैं, ऊँचेसे-ऊँचे दिमागवालेको झुकना और बेतरह नीचे झुकना पड़ता है, और इस भारी राष्ट्रीय हानिका कारण क्या है ? अत्यन्त अप्राकृतिक विदेशी-भाषाद्वारा शिक्षा।
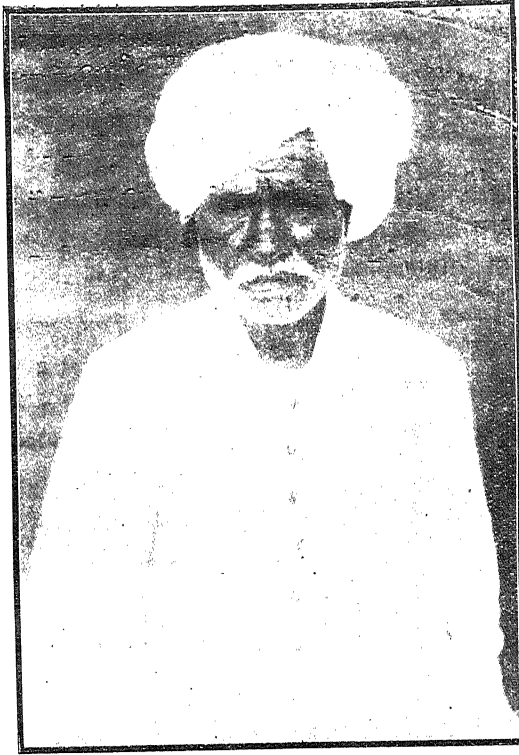
३, हिन्दीने बोस, राय, रमण क्यों नहीं पैदा किया ?

महात्मा गान्धीने इन्दौरके हिन्दी-साहित्यपतिके पदसे अपने भाषणमें यही प्रश्न किया था। यह बड़े महत्वका प्रश्न है। बोस और रायको क्या बँगला भाषाने पैदा किया है ? क्या रमणको द्रविड़ भाषाने पैदा किया है ? कदापि नहीं। बोस, राय, रमण किसी देशी भाषा या साहित्यकी सृष्टि नहीं हैं। ये लोग दिमागवाले हैं। इनको विदेशी भाषा-द्वारा शिक्षावाली प्रतिकूल परिस्थिति भी रोक न सकी। साधन-सम्पन्न होनेसे इन्होंने प्रतिकूल परिस्थितिपर विजय पायी। इनकी अच्छी-से-अच्छी शिक्षा हुई। दोनों बातोंने मिलकर इन्हें ऊँचा उठाया। दीन रामदीनको भी अंग्रेजीकी, और ऊँची, शिक्षा मिलती तो वह भी किसी बोस, राय, रमणसे कम न होता। बोस, राय, रमणने भारतीय देशी भाषाओंमें कौनसी वैज्ञानिक पोथी लिखी ? उनकी विद्याका सबसे स्वादु, मधुर और दर्शनीय फल तो अंग्रेजी भाषाने चखा। हिन्दी बेचारी उनके धनसे मालामाल न हुई, न सही, बंगला, द्राविड़ी आदि ही कौनसा सौगात पा गयीं ? ये लोग तो अपने देशमें रहते भी विदेशीसे हैं। इनका भाषण अंग्रेजीमें ही होता है। इनकी लिखी पोथियाँ, लेख सभी कुछ अंग्रेजीमें हैं। इस मामलेमें किसी अंग्रेजमें और इनमें क्या अन्तर है ? इन्होंने विदेशोंमें भारतका नाम प्रसिद्ध किया है, सही, परन्तु किस बातके लिये ? **भारतका सोना विदेशोंमें भेजनेके लिये। भारतीयोंकी खोजका लाभ विदेशोंको देनेके लिये। यह बात तो ध्रुव सत्य है कि इनकी खोजसे भारतको रत्ती भर लाभ न हुआ।** क्या विदेशी खोजियोंके बारेमें भी यही बात कही जा सकती है ?

यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि अंग्रेजी भाषाद्वारा उन्होंने जो प्राप्त किया ऋणस्वरूप उसे ही वे लौटावें। वे ईमान्दार भारतीय यही कर रहे हैं। उनका दोष नहीं है। वे अपनी देशी भाषाओंके लिये जो कुछ करते हैं वह भी मातृऋण है। विमाताका ऋण चुकाना अधिक महत्त्व रखता है। अतः अंग्रेजीकी ओर उनका ध्यान अधिक है।

४-हरिजन रामदीनसे मेरा पहला परिचय

तैंतीस बरस हुए,—संवत् १९५९ के श्रावणमें मैं म्योर कालिजके थर्ड यिअर क्लासमें भरती हुआ। रसायन-शास्त्र भी मेरा एक विषय था। उन दिनों स्वर्गीय प्रोफेसर हिल विलायतमें विशेषाध्ययन कर रहे थे। स्वर्गीय प्रोफेसर अभयचरण सान्याल पढ़ाते थे। उनके लिये क्लासमें मेजपर प्रयोगोंके लिये सभी यंत्र बड़े सौन्दर्य्यसे पहलेसे सजाये और लगाये रहते थे। वह व्याख्यान देते जाते थे और जरासे इशारेपर एक चपरासी सभी प्रयोग बड़े हस्त-कौशलसे करता जाता था। यह आदमी एक शब्द भी कहता न था परन्तु जिस क्रमसे वह काम करता था उसे देखकर यह निश्चय होता था कि चपरासी प्रोफेसर साहबकी अंग्रेजीकी वक्तृता समझता जाता है और यथावसर प्रमाण-स्वरूप प्रयोग दिखाता जा रहा है। परन्तु वास्तवमें रामदीन अंग्रेजी बिल्कुल नहीं समझता था। उस विषयका व्यावहारिक अभ्यास उसे ऐसा था कि वह प्रयोग दिखानेके क्रममें एक भी भूल नहीं करता था।

५-रामदीन कब नौकर हुआ ?

प्रयाग विश्वविद्यालयके [सं० १९४५] जन्मसे अठारह बरस पहलेकी बात है, जब म्योर सेन्ट्रल कालिजकी अट्टालिकाकी नींवँ भी नहीं पड़ी थी, जब लौदर कैंसिलमें कालिजकी पढ़ाई होती थी, उस समय, शायद संवत् १९२७ में रामदीन नौकर हुआ और प्रयोगशालामें शीशियाँ साफ करनेका काम करने लगा। सात बरस बाद, संवत् १९३४ में उस बृहत् अट्टालिकामें कालिज आया, जहाँका धौरहरा आज भी प्रयागराजका शिरोमुकुट हो रहा है। रामदीनकी नौकरी उस धौरहरेसे भी पुरानी है।

जिन प्रोफेसर अभयचरण सान्यालकी हमने ऊपर चर्चा की है उन्होंने रसायनशास्त्रकी शिक्षा इसी अट्टालिका स्थित लबोरेटरीमें पायी। जब प्रो० सान्याल पढ़ते थे, रामदीनके नौकर हुए सात-आठ बरस हो चुके थे। उन दिनों लवणाम्ल और नोषिकाम्ल प्रयोगशालामें ही बनाना पड़ता था। यह कुल काम रामदीन करता था और साथ ही उस समयके छात्र, स्वयं छात्र सान्याल करते थे, जो

कुछ ही पीछे सहायक अध्यापक हो गये। इन लोगोंके साथ काम करके रामदीनने बहुत कुछ सीखा।

रामदीनने प्रोफेसर सान्यालकी छात्रावस्था देखी। प्रोफेसरी देखी। मैंने प्रोफेसर सान्यालसे पढ़ा। स्वयं बादको वहीं पढ़ाया। आज मेरे पढ़ाये हुए अनेक शिष्य वहाँ प्रोफेसर हैं और उन शिष्योंके शिष्य भी प्रोफेसर हैं। इस तरह बूढ़े रामदीनने प्रोफेसरोंकी पूरी पाँच पीढ़ियाँ देखीं और उससे प्रत्येक पीढ़ीने कुछ न कुछ सीखा है। वह प्रोफेसरोंका निर्म्माता है।

रामदीनका जन्म-संवत् तो ठीक-ठीक नहीं मालूम परन्तु अटकलसे लगभग १९१३ विक्रमी होगा। रामदीनकी आँखें अब बहुत कमजोर हैं। उसकी अवस्था इस समय उन्नासी वर्षके लगभग होगी। फिर भी उस गरीबको पेंशन नहीं दी गयी। कुल बीस रुपये पाता है। अब भी नौकरीमें जुता हुआ है। अब भी वह नित्य गंगा-स्नान करता है। बिना गंगा नहाये भोजन नहीं करता। यह नियम उसके लड़कपनसे चला आ रहा है। स्व० डा० रिचार्डसन एक बार कहते थे कि रासायनिकको शौचाचारमें आदर्श ब्राह्मण होना चाहिये। रामदीन मेहतर जातिका है, परन्तु शौचाचारके नियमोंका पालन वह अनेक ब्राह्मणोंसे अच्छा करता है। इसीलिये उसकी जाति जानते हुए भी भारद्वाजाश्रमके कुएँसे पानी लेनेका, जलकल लगनेसे पहले, उसे सवर्ण हिन्दुओंने पूरा सुभीता दे रखा था और वह सवर्ण हिन्दुओंके पड़ोसमें सदासे रहता आया है।

फैरडेके नुसखेका प्रयोग

फीलपाँव अच्छा किया

एक दिनकी बात है कि पढ़ाते समय कई बार पीड़ाकी तीव्रतासे मेरी आकृति बदली, पसीना हो आया, परन्तु अपना काम मैंने जारी रखा। घंटा ज्योंही पूरा हुआ, लड़के चले गये। रामदीनने तुरन्त पूछा "क्या हुजूरको कहीं दर्द है?" मैंने कहा "हाँ, रामदीन, मेरे बायें पक्खेके भीतर हड्डीमें बड़ा तेज दर्द रहा करता है, मैं रातको सो नहीं सकता।" उसने कहा "तो ज़रा बिजली लगाइये न? यह दर्द भगवानने चाहा तो बहुत जल्द दूर हो जायगा।" मैंने कहा "काम बहुत है, जुटानेमें कुछ देर लगेगी।" वह बोला "कुछ देर नहीं, हुजूर, सब तैयार है।" मैंने आश्चर्य्यसे पूछा कि "तैयार कैसे?" वह बोला "मैं अपने पाँवमें रोज बिजलीके धक्के लेता हूँ। एक महीना पहले धक्का मालूम नहीं होता था, अब मालूम होने लगा है।" वह इतना कहकर छोटा रूमकार्फ-कोइल (उलटी सीधी बिजलीका रूमकार्फवाला छोटा बेठन) उठा लाया। बैटरीसे सम्बद्ध था। मैंने पाव घंटेतक उसके धक्के लिये। दर्द रफूचक्कर हो गया। कई बार इसी क्रियाके दोहरानेसे वह पीड़ा जड़से मिट गयी। रामदीनको भी वह फीलपाँव जहाँतक पहुँचा था वहींतक रहा। फिर बढ़ न सका। यह फैरडेकी ही चीज़ थी, जिसका रामदीनने अनुभव किया था।

रामदीनके व्यावहारिक अनुभव विस्तृत हैं परन्तु ये उसकी अपनी सम्पत्ति हैं। यदि उसकी शिक्षा पुस्तक लिखने योग्य हुई होती तो औरोंको भी उसके अनुभवोंसे लाभ पहुँचता। प्रयोगशालाका तो कोई काम नहीं जो वह कुशलता-पूर्वक सम्पन्न न कर सके।

हिन्दी-द्वारा शिक्षा होती रहती तो रामदीन आज विख्यात प्रोफेसर होकर पेंशन पाता होता और अनेक विद्वान् ब्राह्मण इस हरिजन विद्वान्‌के चरणोंमें बैठकर रसायन-विज्ञान पढ़नेका दम भरते। अपनी भाषामें शिक्षा न होनेसे कितने होनहार फैरडे रामदीनकी तरह अज्ञात और असम्मानित और अविकसित अवस्थामें समाप्त हो गये। रामदीन इस अस्वाभाविक शिक्षासे दुखी और दलित भारतकी एक प्रतिमूर्ति है।

सहयोगी विज्ञान, चयन

१—महामारीकी चिकित्सा

[ले० कविराज र० सिंह, भिषगाचार्य्य]

[१] व्याधिका इतिहास

यह एक व्याधि है जिसमें अचानक शिर-पीड़ा और वमनके साथ ज्वर आता है और साधारणतः ऊरु, कक्ष अथवा ग्रीवाकी लसीकाग्रंथि शोथयुक्त और वेदनान्वित होती है। रोगी शीघ्र ही बलहीन हो जाता है और प्रलाप तथा निद्रानाश होता है। यह बीमारी प्लेग, महामारी और ताऊन नामसे प्रसिद्ध है।

यूरोपमें यह व्याधि १४ वीं शताब्दीमें फैली थी और सबसे पीछे चीनमें फैली, जहाँसे यह रोग भारतवर्षमें पहुँचा। भारतमें पहले पहल प्लेग सन् १६१२ में सम्राट् जहाँगीरके समयमें हुआ था। सन् १८१५ में कच्छ देशमें हुआ और सिंध, गुजराततक फैलकर सन् १८२१ तक रहा। तत्पश्चात् नेपालके पश्चिम कुमायूंकी तराईमें १८२३ में महामारीके नामसे ख्यात हुआ, पुनः इसका आक्रमण राजपूतानेके पाली नगरीमें १८३६में आरम्भ होकर जोधपुर और मेवाड़में दो वर्षतक रहा। इसके बाद कुछ दिन विश्राम लेकर सन् १८९६में बम्बईपर आक्रमण किया और कलकत्ता आदि नगरोंमें होता हुआ समस्त भारतवर्षमें अपना आतंक जमा बैठा। अबतक करोड़ों मनुष्योंको उदरान्तरित करते हुए भी इसकी बुभुक्षाज्वाला शान्त नहीं हुई और प्रतिवर्ष नया आक्रमण करके हजारोंको कालकवलित कर रहा है।

यह बीमारी जाड़ेके अन्त और गर्मीके आरम्भमें अपना जोर लगाती है। मैला-कुचैला स्थान, घना वास, अन्धकारगृह और शुद्ध वायुका अभाव—इसके प्रसारमें सहायक होते हैं। इसका कारण एक कीटाणु है जिसे पेस्टिस कहते हैं। यह केवल अणुवीक्षण यन्त्रसे देखा जाता है। इसका शरीर मोटा और दोनों सिरे गोल होते हैं। यह प्राणियोंके शरीरमें किसी क्षतद्वारा, श्वासद्वारा और सम्भवतः खानपानकी वस्तुओंसे पहुँचता है और रोग पैदा करता है। इसका प्रभाव चूहे, बिल्ली, खरगोश, छोटे शूकर और मनुष्योंपर विशेष पड़ता है। जहाँ यह रोग फैलनेवाला होता है वहाँ पहले चूहे खूब मरते हैं। असलमें यह चूहोंका रोग है और चूहोंके शरीरमें लगकर रहनेवाला पिस्सू इसे पैदा करता है। यह पिस्सू मनुष्योंको काटकर अपने लालाद्वारा रोगका विष पहुँचा देता है। शरीरमें यह विष २ से ५ दिन तक व्यर्थ पड़ा रहता है।

[२] आक्रमणके लक्षण

रोगके आरंभमें एक या दो दिन जो लक्षण होते हैं वे कभी-कभी पहचाने भी नहीं जाते और रोगी कुछ सुस्ती अनुभव करते हुए अपना नियमित जीवन बिताता रहता है। अचानक बड़े जोरका ज्वर होता है जिसमें शिरोवेदना, वमन और रक्तनेत्रता देखी जाती है। दूसरे दिन ज्वर कम हो जाता है और फिर चढ़ता है। रोगकी साधारण दशामें ज्वर २।३ दिनमें भी उतर जाता है पर अधिकतर रोगियोंमें ७ से १२ दिनमें उतरता है। एक रोगिणीको ३ सप्ताह तक ज्वरग्रसित रहकर मरते भी मैंने देखा है। निद्रानाश होता है जिससे रोगीको बड़ा कष्ट होता है। ओष्ठ शोथयुक्त, दाँत मैले, कृष्णाभ या रक्तिमाभ होते हैं। जिह्वा सूजी हुई, मैली, भूरी और शुष्क होती है। रोगी इतनी शक्तिहीनता अनुभव करता है कि अपना हाथ-पैर नहीं सँभाल सकता और उठकर चलनेकी चेष्टा करनेपर शराबियोंकी तरह लड़खड़ाने लगता है। हाथ काँपते हैं, श्रवणशक्ति कम हो जाती है, आवाज थकित होती है और बोल समझमें नहीं आती। अतिसार या कोष्ठबद्धता होती है। मूत्रमें यूरिया, यूरिकाम्ल और लवणोंकी मात्रा कम हो जाती है। रोगी प्रलापग्रस्त होता है और सुस्तीमें स्वप्न भय-सा चौंकता है। प्रतिशत ७८ रोगियोंकी ऊरु, कक्ष

या ग्रीवाग्रन्थि सूज जाती है और वेदना करती है। रोगी आराम होनेवाला होता है तो छठे या दसवें दिनतक लक्षणोंमें कमी होने लगती है परन्तु सूजी हुई ग्रन्थि और बढ़ जाती है और उसमें पीब पैदा हो जाती है जो फूटकर बह जाती है या शस्त्र-क्रियाद्वारा निकाली जाती है। इन्हीं लक्षणोंसे कुछ चिकित्सकोंने इसका नाम ग्रन्थिक सन्निपात (ब्यूबोनिक प्लेग) रखा है पर फुफ्फुसीय (नियोमोनिक), आन्त्रिक [एंटेरिक] और रक्त-विषाक्तीय (सेप्टिसीमिक) प्रकार-के रोगमें कुछ विशेष लक्षण भी होते हैं।

[३] व्याधिके प्रकार

फुफ्फुसीय—इसमें न्युमोनियाके सारे लक्षण ज्वर, कमजोरी, कास, रुधिर-निष्ठीवन, उरोवेदना होती है और श्लेष्मा कीटाणुपूर्ण होता है। इसके रोगी शायद ही बचते हैं।

आन्त्रिक—इसमें कोष्ठबद्धता या अतिसार पाया जाता है और अन्य लक्षण पूर्वोक्त होते हैं। यदि इसमें ग्रन्थि-शोथ न हो तो आन्त्रिक ज्वर [टाइफाइड फीवर] की शंका होती है।

रक्तविषाक्तीय—यह भयानक अवस्था होती है। इसमें आरम्भहीसे कंप, बेचैनी, प्रलाप और संज्ञालोप आदि सांघातिक लक्षण दिखाई देने लगते हैं। या तो रोगके आरंभहीमें रक्तमें विष पहुँच जाता है या अन्य प्रकारके प्लेग ही इस अवस्थाको प्राप्त कर लेते हैं। इसके रोगी नहीं बचते।

यह रोग चूहोंसे फैलता है। अतः चूहोंको यथासंभव घरसे निकाल डालना चाहिये या खुद ही ऐसे स्थानको छोड़ देना चाहिये। आटेमें बैरियम कार्बोनेट मिलाकर गोली बनावे और चूहोंके बिलके पास रख दे। चूहेदानी लगाकर पकड़े। चूहोंके बिलमें थोड़ा-थोड़ा किरासन तेल दे दे। इन उपायोंसे चूहे भाग या मर जाते हैं। जहाँ रोग फैला हो वहाँके मरे हुए चूहोंको किरासन तेल देकर चिमटे-से उठावें और दूर ले जाकर कुछ तृण देकर आग लगा दें। घरोंकी शुद्धि फिनाइल छिड़ककर या किरासिन तेलसे करें, या घरोंको बन्द करके नीमकी लकड़ीपर गंधक जलावें। वायु, जल, स्थान और गृह आदिकी शुद्धिके लिये सुश्रुत कल्पस्थानमें कथित विधियाँ लाभप्रद होती हैं। शरीरपर नित्य ही सरसोंका तेल मालिश करके स्नान करें। पैरोंपर खास करके तेल मलें और स्वच्छ जूते पहन-कर रहें। रोगी और परिचारक अन्य नीरोग लोगोंसे बेलाग रहें। परिचारक भी रोगीके थूक, खखार, मल और मूत्रको सावधानीसे साफ करे और हर समय अपने हाथों और वस्त्र आदिकी शुद्धि रखे। रोगीकी चिकित्सा करनेवालों को, परिचारकों, सम्बन्धियों और पड़ोसियोंको प्लेग-का टीका ले लेना अच्छा है और चाहे इससे जो लाभ होते हों पर इतना तो जरूर है कि विश्वास बढ़ जानेके कारण हृदयमें बल आता है जिससे शरीरकी रोगरोधक शक्ति बढ़ जाती है। आजकल प्लेगप्रतिरोधक गोलियोंके विज्ञापन निकलते हैं पर रोगरहित शरीरमें नित्य औषधियोंका सेवन अनावश्यक और झंझटपूर्ण मालूम होता है। मेरी सम्मतिमें स्वर्णकी कृतघ्नता [रोगाणुनाश-कता] और मुक्ता [मोती] की हृद्बलवर्द्धिनी शक्ति प्रसिद्ध ही है और अच्छा हो यदि एक चावलभर सोनेकी भस्म और दो चावलभर मोती भस्म सप्ताहमें एक बार मधु या घृतसे चाट ली जाय।

[४] चिकित्सा

पहले कह चुका हूँ कि यह रोग प्रधानतः हृदयपर ही आक्रमण करता है। अतः इसकी चिकित्साके लिये हृदयको बल देनेवाली, शक्ति-संरक्षक पथ्य और ओषधिकी व्यवस्था होनी चाहिये। ज्वरहारक और रोगाणुनाशक चिकित्सा करनी चाहिए। ग्रन्थि-शोथपर व्रण-शोथकी विधिसे विम्लापन, अवसेचन और उपनाह आदि कर्म करने चाहिये। अधिक ज्वर बढ़ने, १०३—१०४से ऊपर होनेपर और प्रलाप, बेचैनी आदिकी अवस्थामें मस्तिष्कपर, शीतलताका प्रयोग करना चाहिये।

प्लेगारि रस

सुवर्णघटित मकरध्वज, अनविधे मोती, शुद्ध मीठा विष प्रत्येक १ माशा। आककी जड़की छाल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध कपूर, काली मिरच और सफेद वच प्रत्येक १ तोला। सब-को खूब बारीक चूर्ण करके तुलसीके रसमें घोटकर १—१ रत्तीकी मिरच बराबर गोलियाँ बनावें।

पूर्ण वयस्कको एक गोली और बच्चेको चौथाई या आधी गोली देना चाहिये। यह दवा सप्ताहमें एक या दो बार

जलसे खा लेनेसे प्लेग होनेका डर नहीं रहता। प्लेगके रोगी-को यह दवा ४–४ या ६–६ घण्टेपर तुलसी या पानके रससे देनी चाहिये। यह योग प्लेगके लिये आवश्यक द्रव्योंसे युक्त है और बहुत गुण करता है। कभी-कभी निराश रोगी भी इससे अच्छे हुए हैं।

भूतघ्न धूप

गुग्गुल, खस, वच, धूना, आककी छाल, अगर बुरादा, धूप लकड़ी, सरसों, कपूर, नागरमोथा, विडंग, चन्दन, छरीला, सुगन्धबाला—सब बराबर और सबके वजनके बराबर नीमकी पत्ती लेकर अधकूटा कर ले और घरोंमें आग-पर इसकी धूप जलावे। इससे घरों शुद्ध होती है। प्लेगके कीड़े मरते हैं, ज्वर दूर होता है और प्लेग होनेका डर नहीं रहता। जब पड़ोसमें रोग हो तो रोज ही घरमें इसका धूआँ करें और रोगीके घरमें भी जलावें।

व्रण-शोथका यत्न

व्रण-शोथ (गिल्टी) पर (घिकुवार ग्वारपाठा) घृत-कुमारीके पत्तेको पेटीकी तरफसे छील डाले और उसपर नमक छिड़ककर आगपर सेंके और गरम-गरम बाँधे। दिनरातमें ३–४ पट्टी देनी चाहिये। केवल गरम ईंट या पत्थरद्वारा भी सेंकना उपयोगी है।

शास्त्रोक्त ओषधियाँ

बृहत् कस्तूरीभैरव, मकरध्वज, अभ्रक भस्म और विशुद्ध कस्तूरी आवश्यकतानुसार विचारकर देना चाहिये। जब आंत्रिक ज्वरकी तरह या द्रवातिसारके रूपमें दस्त आते हों तो शार्ङ्गधरोक्त "संजीवनीवटी" मधुके साथ देना चाहिये। इससे पेट शुद्ध और मल गाढ़ा होता है और ज्वर भी आराम होता है। प्रत्येक दस्तके बाद एक गोली दें।

प्रलापहर रस

जायफल, जावित्री, मरिच, रुद्राक्ष, धवँरबरुआ, करंज-की गिरी, स्वर्णमाक्षिक-भस्म, शुद्ध अफीम और शुद्ध मृहार-श्रृंग बराबर लेकर तुलसी और अदरकके रसमें १।१ दिन खरल करके मूँगसी गोलियाँ बना लें। जब रोगी खूब बलवान और शक्तिशाली हो और प्रलाप और वायुमें जोरसे चिल्लाय, मारपीट करे, उठ भागनेकी चेष्टा करे तभी इसमेंसे २।३ मात्रा १।१ घंटेपर उपर्युक्त दोनों स्वरसोंके साथ देना चाहिये। ध्यान रहे, वह कमजोर और क्षीण, सुस्त रोगीको न दिया जाय और लगातार अधिक दवा न दी जाय। विचार कर प्रयोग करनेसे यह अमृतके समान लाभ करता है और बेसमझे हानिकारक भी हो सकता है।

पथ्य

केवल हल्की और सुपाच्य चीजें, दूध, फाड़े हुए दूधका पानी और मिश्री, यवका पानी (बार्लीवाटर-यवागू) और द्राक्षौज (ग्लूकोज) रोगके समय दें और ज्वर दूर होनेपर पटोलयूष, मुद्गयूष, साबुदाना आदि दें।

२—प्लेगसे बचनेके उपाय

[लेखक—हकीम मुहम्मद नफीस सहिसबानी, तबीब लश्कर]

१. सबसे पहले मकानकी सफाई जरूरी है। मकानको साफ रखना चाहिये, दीवारोंपर सफेदी कराये और फिनाइल छिड़के। लोहबान, गन्धक, काफूर, कुन्दूर, नीम, अगर, झाऊ वगैराकी धूनी दे। हो सके तो ऊपरकी मंजिलपर कयाम करें और तमाम फर्श व जमीनपर चूनेको बारीक पिसवाकर बिछवा देना चाहिये।

२. गली कूँचोंमें कूड़ा-करकट जमा न होने दे, कस्बात व देहातकी सफाईका खास तौरपर इन्तजाम होना चाहिये।

३. पानी फिल्टर किया हुआ यानी छाना हुआ जोश देकर और ठंडा करके पीना चाहिये।

४. अपने जिस्मको खूब साफ रखो। हर रोज स्नान करो। हाथ, पाँव और मुँह खास तौरसे अच्छी तरह धोना चाहिये। नीम गन्धक या कारबोलिक साबुन इस्तैमाल करना चाहिये।

५. नंगे पैर न फिरो। मोटी जुर्राब पहनना चाहिये और मोटे कपड़े पहनो।

६. कोई ऐसी रियाजत न करे जिसमें ज्यादा हरकत हो।

७. नफ़तलीन या काफूर और काली मिरच मिलाकर अपने पास रखना चाहिये। जहरमोरा खताई चार रत्ती या नागजीरा दरयाई एक रत्तीकी मिकदारमें रोजाना खाना चाहिये और पपीतेका इस्तेमाल भी इस बीमारीके असरोंसे महफूज रखता है।

८. भूखा प्यासा न रहना चाहिये। सुबहको चाय पानी और उसके साथ अधपके अंडेपर जरा नमक, काली-

मिर्च छिड़ककर खाना बहुत मुफीद है । यह गिजा और दवा दोनोंका काम देती है ।

९. कब्ज न होने दे मगर दस्तोंके शौकमें बदहजमी भी पैदा न होने दे ।

१०. अपने बिस्तर और कपड़ोंको रोजाना दो तीन घंटे धूपमें रखना चाहिये । क्योंकि धूपसे कीड़े मर जाते हैं ।

११. जिस्मको खराश और फुन्सियोंसे बचाना चाहिये।

३–हैजा और उसका प्रतीकार

(ले०-श्री पंडित ख्यालीरामजी द्विवेदी वैद्यराज)

व्याधिसे बचनेके उपाय

यह व्याधि सामान्यतः जलकृमिद्वारा उत्पन्न हुई मानी गई है, अतएव जहाँ तक हो—

१. पीनेका पानी गरमकर ऊँची तिपाईपर ढँककर रख लेना चाहिये ।

२. रहने, सोने, भोजनकी जगह, नाली (गटर), पैखाने आदि साफ़ रखने और फिनाइल छिड़कना चाहिये, घरमें कपूर आदिकी धूप देनी चाहिये ।

३. यह बीमारी अधिकतर गंदगी और मक्खियोंसे फैलती है । इसलिये इनसे पूरा-पूरा बचाव रखना चाहिये ।

४. इसकी रोकके लिये कपूरको हरवक्त सूँघते रहना चाहिये । अर्क कपूर ४–५ बूँद बताशेमें रोज सेवन करते रहना चाहिये ।

५. बाजारकी मिठाई, साग, सब्जी, फल आदि उपयोगमें नहीं लाने चाहिये ।

६. भोजन हल्का, ताजा और कम करना चाहिये तथा रात्रिको भोजन नहीं करना चाहिये ।

७. कपड़े साफ स्वच्छ रखना और उनमें कपूरकी डली रखना चाहिये ।

८. हींग, लहसुन, प्याज तथा नीबूका रस भोजनके साथ खाना चाहिये ।

९. हरी भाजी, ककड़ी, खरबूजा आदि प्रायः पानीमें उत्पन्न होनेवाले पदार्थ जिनमें कि कालराके जल-जन्तु बहुधा रहते हैं कम उपयोगमें लाने चाहिये । उचित तो यह है कि ऐसी वस्तुएँ बिल्कुल ही उपयोगमें न लायी जायँ । यह संसर्गजन्य रोग है । कालराके बीमारकी छुआछूतसे बचना चाहिये । नियमित रूपसे ताजा भोजन करना चाहिये । दिनमें सोना अथवा धूपमें घूमना न चाहिये । अपने भोजनमें कुपथ्य अथवा उपवास न करना चाहिये । तेज जुलाब न लेना चाहिये । एक ही मकानमें कई मनुष्योंको एकत्र होकर न रहना चाहिये । सोनेका मकान हवादार होना चाहिये । बिछौने धूपमें डालने एवं सदा साफ रखने चाहिये । दूधको भी गर्म करके खाना अथवा बीमारी चलती हो तो न खाना भी उचित है । रात्रिमें अधिक भोजन करना या अति जागना न चाहिये । ठण्डे जलसे स्नान न करना एवं खुले शरीर भी न रहना चाहिये ।

हैजा रोगसे ग्रसित मनुष्यके लिये कतिपय सूचनाएँ तथा विशेष उपाय ।

ज्योंही कालराके लक्षण मालूम होने लगें त्योंही किसी वैद्य या डाक्टरकी सहायता लेनी चाहिये । इस बीचमें अजवाइन, वायविडंग, घीमें सेकी हुई हींग, इन्द्रजव, काला जीरा, लहसुन, काली मिर्च, लाल मिर्च, आदिमेंसे कोई एक वस्तु पाव माशा या आधा माशा अनुमानसे जलमें घोंटकर १० या १५ मिनटसे पीना आरंभ कर देना चाहिये अथवा प्याजका रस २ तोले । यदि रोगी उल्टीके साथ दवा निकाल दे तो बार-बार देते ही चले जाना चाहिये जहाँतक कि उल्टी और दस्त बंद न हो जायँ ।

चावलके पानीके सदृश यदि दस्त हो तो उसके रोकनेके लिये सरसोंका प्लास्टर जलमें पीसकर एक घड़ीतक उदरपर रखना चाहिये । अनुभूत विशूचिकाकी वटी इस रोगके लिये विशेष गुणकारी है । इसके बनानेकी रीति । लाल मिर्चके छिलकोंका कपड़छान किया हुआ चूर्ण तोला २, हींग तोला २॥, कपूर २ माशे (भीमसेनी कपूर हो तो और भी अच्छा), अफीम १ माशा, चन्द्रोदय ३ माशे (यदि चन्द्रोदय न मिले तो रससिंदूर या शुद्ध हिंगूल), इन पाँचोंको प्याजके रसमें सोलह पहर घोंटकर मूँगके समान गोलियाँ बनाकर छायामें सुखा ले । जिसको हैजा हुआ है उसे ५–५ मिनटमें एक-एक गोली आगे लिखे हुए

क्वाथके साथ देनेसे पाँच या चार गोलियोंमें ही वमन, दस्त, शरीरका ऐंठना, प्यास, घबराहट आदि विसूचिकाकी शिकायतें दूर हो जायँगी और ९० सैकड़ा रोगी अवश्य बचेंगे।

तृषा-निवारक उपाय

तृषा शीतल जलसे शान्त न होकर अधिक बढ़ती तथा दाह उत्पन्न करती है और शीतल जलसे शान्त नहीं होती।

प्यास और उत्क्लेशमें लौंगका औंटाया हुआ पानी अथवा जायफल या नागरमोथाका क्काथ देना चाहिये। अथवा मंदारकी जड़को उबालकर बनाया हुआ पानी, ऐसे ही ढंगसे आपामार्गकी जड़का बनाया पानी, पीपल वृक्षकी छाल को जलाकर जब निर्धूम कोयले हो जायँ तब लाल-लाल कोयले पानीमें बुझा कर ऐसे पानीको प्यास लगनेपर पिलाना तथा अर्क कपूर या आरोग्यधाराकी ४ बूंदें गुलाब-जलके साथ लेना अथवा अनुभूत तृषाघ्निवटी, नीमकी डालीकी सीकोंके नीचेके मोटे पाँच डंठल, दो काली मिर्च एक माशे जलमें घोटकर गोलियाँ बना लें और प्रति पाँच मिनट दो तोले गुलाब-जलके साथ दे देना चाहिये। प्यास बुझ जाती है।

नीबू-रसमें पुरानी इमलीको मिला कर पिएँ तो विषूचिकाका शोष तथा कफका नाश होता है।

जहाँतक संभव हो पहिले अहिफेन (अफीम) युक्त औषधियोंका उपचार कम करना चाहिये तथा दस्त तुरन्त बंद करनेका उपाय भी कदापि न करना चाहिये।

मूत्र होनेका उपाय

खर्बूमरेके पत्तेका रस १ तोला, कलमीशोरा १ माशा मिलाकर पिलाना चाहिये। अथवा गोखरू, ककड़ीके बीज और जवासा इनके काढ़ेके साथ डेढ माशा कलमीशोरेका चूर्ण मिलाकर पिलाना या (आल) लौकीका उबाला हुआ पानी आधी आधी छटाँक तीन या चार बार पिलाना चाहिये।

जवाखार और शहद मिलाकर पिलानेसे भी पेशाब होता है। जवाखार थोड़ा-थोड़ा पीनेके जलमें मिला देनेसे भी पेशाबके लिये उत्तम लाभ होता है।

बदनमें ऐंठन, बाँयटे तथा वेदनाके उपाय

कड़ू तेल, तारपीनका तेल अथवा कड़ू तेलमें जायफल और ताम्र घिसकर कुनकुना मलना चाहिये। शरीरके शीतल होनेपर या अतिस्वेद (पसीना) पर कायफल और सोंठ भूनी हुई, कुलथी, कौड़ी भस्म, उपलीकी गर्म राख, सीपकी भस्म आदिका गरम-गरम धूरा करना श्रेयस्कर है।

अन्न और विहार

रोगीको भूमिपर न सुलाकर खटियापर सुलाना चाहिये। रोगीके पहननेके, ओढ़ने तथा बिछानेके कपड़े गर्म होने चाहिये। रोगीका मल-मूत्र और कै इत्यादि शीघ्र राख-फिनाइल मिलाकर बहुत दूर फेंकना चाहिये। रोगीकी खटियाके पास कपूर, लोहबान, गुग्गूल, कपूर मिले हुए नीमके पत्ते आदि सुगंधित तथा दूषित वायुनाशक वस्तु जलाना चाहिये। मकानके दरवाज़े चारों ओरसे खुले रहने चाहिये। रोगीके पास अधिक मनुष्य न रहें; केवल रोगीकी व्यवस्था करनेवाले एक-दो मनुष्योंको, अपने शरीरकी रक्षाके नियमोंपर पूरा विचार रखते हुए रोगीके पास रहना उचित है। जैसे, रोगीका मल-मूत्र, वमन आदि फेंकनेके बाद कारबोलिक साबुन तथा अन्य शुद्धिकारक पदार्थसे हाथ धोये बिना, मुख तथा खाने पीनेके पदार्थको न छूना चाहिये तथा श्वासोच्छ्वास बचाकर कार्य करना चाहिये। उपरोक्त सूचनाके अनुसार उबाला हुआ पानी पीना और चार-चार बूँद अर्क-कपूर सेवन करना चाहिये।

रोगीके पथ्यकी व्यवस्था

यदि रोगीको क्षुधा भी लगे तो जहाँतक हो उपवास करना ही उचित है, जबतक रोग पूर्णरूपसे निवृत्त न हो जाय। पथ्य कदापि न देना चाहिये। रोगमुक्त हो जानेपर भी पथ्य बहुत सावधानीसे देना चाहिये। पूर्ण आरोग्यता प्राप्त होनेतक लंघन करना अत्यन्त जरूरी है। जब रोगीको पीला दस्त होने लगे और भूख भी मालूम होने लगे उस समय रोगीको कुछ स्वस्थ समझना चाहिये। परन्तु तो भी खानेको प्रवाही वस्तुएँ देना एवं धीरे-धीरे खुराकमें कुछ-कुछ परिवर्तन करते जाना चाहिये। प्रथम चावलकी काँजी पतला माँड या अरारोट, मूँगकी दालका पानी आवश्यकता हो तो द्राक्षासव अथवा ब्रांडी (मद्य विशेष) भी पथ्यके साथमें

दे सकते हैं। उपरोक्त पथ्य पचनेके अनन्तर खिचड़ी, चावल, दलिया आदि क्रमशः शुरू कर देना चाहिए। पर पूर्ण स्वास्थ्यलाभ न होनेतक गुरुपाकद्रव्य जैसे घी या उससे बनी वस्तु भुना या सेका पदार्थ खाना, स्नान, मैथुन आग या धूपका संताप, व्यायाम तथा अन्यान्य श्रमजनक कार्य न करने चाहिए। --स्वराज्यसे

४—आँवलेका उपयोग

[ले०--पं० वासुदेव सिद्धनाथ, वैद्य]

आँवला बड़े ही उपयोगी वृक्षोंमें है। यह भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र प्राप्त होता है। इसके वृक्ष साधारणतः बहुत ऊँचे बढ़ जाते हैं। इसके पत्ते बारीक-बारीक एवं सुन्दर होते हैं, इसके फलको ही आमला, आमलक आदि कहते हैं।

आमला किंचित् तीखा, सारक, मधुर, कटु, अम्ल एवं शीतवीर्य है तथा जराव्याधिनाशक है, हृदय केशको हितकारी, तथा अरुचि, रक्तपित्त प्रमेह, विष, ज्वर, वमन, आध्मान, बद्धकोष्ठ, शोथ, शोष, क्षय, तृषा, रक्तविकार, एवं त्रिदोषनाशक है।

सूखे आँवलेके भी विशेष गुण हैं, कटु, तिक्त, अम्ल, मधुर, केश्य, अस्थिसंधानक, त्वचाको सुन्दर एवं कोमल बनानेवाला, धातुवर्धक और नेत्रोंको परम लाभकारी है।

आँवलेका भिन्न-भिन्न रोगोंपर उपयोग।

१. शरीर सौन्दर्यवृद्धि—आँवलेका चूर्ण कर उसमें उतने प्रमाणमें ही तिल तेल मिलाकर शरीरपर नित्य मर्दन करना चाहिये।

२. दिव्य देहप्राप्तिके लिये—आमलक तथा असगन्धका समान चूर्ण बनाकर शिशिर ऋतुमें घृत तथा शहदके साथ सेवन करना चाहिये।

३. वार्धक्यनाशक—आमलक बारीक पीसकर स्नानके प्रथम सारे शरीरमें मर्दनकर गरम जलसे स्नान करना चाहिये।

४. वीर्यवृद्धि—आमलोंका रस तथा घृत मिलाकर पीना चाहिये।

५. श्वेतप्रदर—शुष्क आँवलेका चूर्ण कर उसमें शक्कर तथा शहद मिलाकर सेवन करना चाहिये।

६. पित्तरोग—१ सेर आँवले लेकर प्रथम सुईसे टोंचकर, (चारों तरफ) चूनेके नितरे पानीमें दो चार बार डालना चाहिये, इससे अम्लत्व कम हो जाता है, फिर दो सेर उबले हुए पानीमें डालकर निकाल लेना, फिर कपड़ेसे पोंछकर दूसरे दिन मिश्रीकी चार तारकी चाशनी बनाकर उसमें वह आँवले छोड़ देने चाहिये। यह मुरब्बा ४-५ वर्षतक नहीं बिगड़ता एवं पित्त, गरमी, दाह, उष्णतामें तत्काल शांति देता है तथा शक्तिवर्धक है, अनेक रोगोंमें अनुपानरूपमें इसका उपयोग होता है।

७. प्रमेह—आँवलेका रस निकालकर अथवा क्वाथ बनाकर उसमें २ माशा हलदी तथा थोड़ा शहद डालकर सेवन करना चाहिये।

८. नकसीर—सूखे आँवलोंको घीमें सेंककर जलमें पीसकर मस्तकपर लेप करनेसे तत्काल रक्त बंद होता है।

९ वमन तथा श्वास—आँवलेका स्वरस शहद तथा पीपलका चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये।

१०. नेत्रकी जलन—सूखे आँवलोंको तथा तिलको रात्रिमें जलमें भिंगो देना चाहिये, प्रातःकाल पीसकर नेत्र पर लगाना चाहिये, एक घंटे बाद स्नान कर लेना चाहिये।

११. ज्वरके बाद अरुचि--सूखे आँवले, द्राक्षा तथा शक्कर घीमें मिलाकर गोली बनाकर मुखमें रखना चाहिये।

१२. मूत्रकृच्छ--आँवलेका रस, तथा गन्नेका रस मिलाकर पीना चाहिये।

१३. योनिदाह--आमलकके रसमें शक्कर डालकर पीना चाहिये।

१४. मस्तक शूल--आँवलेका चूर्ण घृत शक्करमें मिलाकर चाटना चाहिये।

१५. रक्तातिसार--आँवला रस, शहद, घृत, दूध, मिलाकर पीना चाहिये।

१६. स्वप्न-प्रमेह (दोष)--आँवलेका चूर्ण, गोखरूका चूर्ण २।२ माशा गिलोयका सत्व १ माशा नित्य धारोष्ण दूधमें पीनेसे धातु स्थानकी उष्णता दूर होकर धातु पुष्ट होती है।

१७. आवाज गिरना--आँवलेका चूर्ण ऊष्ण दूधमें मिलाकर पीना चाहिये।

१८. आँवला शुद्ध तैल--आँवलेको कुचलकर ४ सेर

जलमें डाल देना चाहिये। गरम होनेपर उत्तम तिलका तेल १ सेर डाल देना चाहिये। पानी जल जानेपर तैलको छान लेना चाहिये। बाद सुगन्धिके लिये नागरमोथा, जटामांसी, अगर, चन्दन मिला देना चाहिये। इससे शरीर मस्तककी शक्ति तथा कांति बढ़ती है, तथा बाल सफेद नहीं होते।

(ज० प्रतापसे)

५–तुलसीके गुण

[ले० रामनारायण श्रीवास्तव्य, वैद्य, तुनहड़]

भावप्रकाशमें लाला शालिगरामजीने दो प्रकारकी तुलसीको 'रामा' 'श्यामा' के नामसे लिखा है, किन्तु कहीं कहीं पाँच प्रकारकी तुलसीका भी उल्लेख पाया जाता है। रामा और श्यामा दो प्रकारका तुलसी हर स्थानमें पायी जाती है। वनतुलसी हर स्थानमें पायी जाती है। वन तुलसी (बबई) भी तुलसीका ही भेद है, जो बहुतायतसे सब जगह मिलती है।

तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमंजरी।
अपेत राक्षसी गौरी शूलघ्नी देवदुन्दुभिः॥

"निघन्टु"

तुलसीके नाम-तुलसी सुरसा ग्राम्य, सुलभा, बहु-मंजरी, अपेत राक्षसी, गौरी, शूलघ्नी आदि संस्कृत नाम हैं एवं पवित्रा, पावनी, भूतघ्नी, लक्ष्मी, माला, श्रेष्ठा, हरि-प्रिया ये नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं।

ग्राम्या और सुलभा नाम तुलसीके होनेसे यह पूर्णतया प्रकट होता है कि यह प्रत्येक गाँव तथा प्रत्येक घरमें विपुलतासे प्राप्त होती थी। इसीलिये गाँव या घरमें इसे प्राप्त करनेमें कठिनाई नहीं थी। आजकल भले ही मंदिरों, देवालयोंके अतिरिक्त कठिनतासे मिले। कारण यही समझमें आता है कि अधिकांश लोग इसके गुणोंसे अपरिचित हो गये हैं।

शूलघ्नी नामसे यह प्रकट होता है कि यह अपने वायु तथा कृमिनाशक गुणोंसे शूलरोग नाश करनेमें पूर्ण समर्थ है। पावनी एवं भूतघ्नी नामसे यह प्रकट होता है कि रोग कीटाणुओंको और मलेरिया फैलानेवाले मच्छड़ोंको नष्ट करने अथवा भगानेमें अमोघ शक्ति रखती है। ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव भी है।

तुलसी चरपरी, कडुई, अग्निदीपक, हृदयको हितकारी, गरम, दाह एवं पित्तल और कुष्ट, मूत्रकृच्छ, रक्तदोष, पसलीकी पीड़ा, कफ तथा बातको नष्ट करती है।

प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जहाँ तुलसीके वृक्ष अधि-कतासे होते हैं वहाँ पर विषमज्वर (मलेरिया) नहीं होता। होता भी है तो बहुत कम। डाक्टरोंद्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि मच्छड़ मलेरिया ज्वर फैलाते हैं। और इसकी सुगन्धियुत वायुका जहाँ संचार होता है वहाँ पर मच्छड़ भूलकर भी नहीं जाते। इस बातसे विदेशी विद्वान भी पूर्ण सहमत हैं।

अब कुछ अपने अनुभवमें आये हुए तुलसीके प्रधान योग लिखते हैं, जिनके द्वारा पाठक लाभान्वित होकर इसे अवश्य पज्य दृष्टिसे मानेंगे—

१. तुलसीके स्वरसमें तीन दिनतक काली मिर्चोंके चूर्णको खरल करो, पश्चात् गोलियाँ मटर बराबर बनाकर रख लो। यह शीत ज्वर, (मलेरिया) विषम ज्वरकी अव्यर्थ ओषधि होगी। साथ ही उदराग्निको दीप्त करेगी।

२. चायकी भाँति तुलसीकी पत्तियोंकी चाय बनाकर पीनेसे विदेशी चायसे कई गुणी विशेष गुणप्रद है। साथ ही चाय पीनेकी आदत भी बिना किसी कष्टके छूट जाती है।

३. तुलसी, गिलोय, चिरायता नीमकी पत्ती और कन्जेकी मींग इन सबको सम भाग लेकर क्वाथ विधिसे क्वाथ बनाकर पिलानेसे सभी ज्वर एवं जीर्ण ज्वर नाश करनेमें पूर्ण समर्थ है।

४. तुलसीकी जड़का बार बार बिच्छू दंश स्थानपर लेप करना जबतक लेप काला पड़ता रहे। इससे बिच्छू बिलकुल उतर जाता है। इसी पत्रके पुराने लेखसे सर्प दंशित रोगीको जीव दान एक तुलसी स्वरस द्वारा ही मिलना पाया जाता है, सर्पके दंशित रोगीको तुलसीके रसका लेप करना अति उपयोगी है।

५. तुलसीकी पत्ती और एरन्डकी पत्ती काली मिरच तथा थोड़ा सेंधा नमक डालकर पीस ले और गाँठपर बाँधे तो बद कखौरीकी गिल्टियाँ बैठ जाती हैं।

६. (बबई) बनतुलसीके स्वरसमें काली मिरच घिस कर सूंघनेसे आधा शीशीका दर्द काफूर हो जाता है।

इस प्रकार तुलसीमें अनेक गुण हैं। अतः धार्मिक दृष्टि, नहीं नहीं स्वास्थ्य और आरोग्यकी दृष्टिसे भी, घर-घरमें तुलसीके पेड़ होने चाहिये। [ज० प्रतापसे]

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४१ } प्रयाग, सिंहार्क, सं० १९९२ विक्रमी, अगस्त, सन् १९३५ ई० { संख्या ५

स्वस्त्ययन

(साहित्यरत्न पं० भगवतीलाल श्रीवास्तव्य, "पुष्प", काशी)

स्वस्ति-सदन-शुभ, सुख-सम्भव हे !
उदित-उच्च-उत्कट-उद्भव हे !
अकथ अनादि आदि-अनुभव हे !
वन्दे वर-विज्ञान-विभव हे !
प्रकृति-पुरातन-पुण्य-पुरुष हे !
पूत-पवन-पालक-पौरुष हे !
नाशक-कलि-कार्पण्य-कलुष हे !
जय बल-बुधि-विज्ञान-वपुष हे !
काव्य-कला-कल-काव्य-सुकवि हे !
छमा-छोह छिति-छाँह सुछवि हे !
पाला-प्रस्तर-पावक-पवि हे !
नमो विश्व-वैज्ञानिक-रवि हे !

रंग-रूप-रुचि-रमा-रमन हे !
दम्भ-दुराशा-द्रोह-दमन हे !
सूत्रधार पटुशोक-शमन हे !
जय जय जग-विज्ञान-सुमन हे !
ममता-माया-मूर्ति-मृदुल हे !
मोह-मूल-मंगल-मंजुल हे !
धर्म-कर्मके मंजु-मुकुल हे !
जय विज्ञान-विनोद-सुकुल हे !
पावन-प्रेम-पुष्ट-प्रण-बल हे !
विश्व-करण-कारण अविचल हे !
निगमागम-निष्कर्ष-अमल हे !
जय विज्ञान ज्योति निर्मल हे !

हिन्दुओंकी राज्यसंबंधी आदर्श कल्पना

रामराज्य कैसा था ?

(रामदास गौड़)

१—उपक्रम

श्मीरसे कुमारीतक और कटकसे अटकतक, बल्कि ब्रह्मदेश, चम्पा, श्याम, यवद्वीपपुञ्ज आदि दूर देशोंमें भी जहाँतक हिन्दू-संस्कृतिका प्रभाव और विस्तार है, सर्वत्र 'राम-राज्य' शब्द प्रचलित है और यद्यपि उसके वास्तविक भाव और आदर्शको कोई नहीं समझता तथापि इस शब्दसे सार्वजनिक सुखी और धार्मिक जीवनकी पराकाष्ठा तो समझी ही जाती है। इसीके समकक्ष एक शब्द 'सतजुग' भी इसी अर्थमें प्रयुक्त होता है। फिर भी दोनोंमें थोड़ासा अन्तर है। सतयुग कहनेसे सार्वजनिक, धार्मिक और सुखी जीवनवाले कालका बोध होता है, उससे परम कारण काल ही समझा जाता है। परन्तु रामराज्य कहनेसे साथ-ही-साथ उस सार्वजनिक, धार्मिक और सुखी जीवनका परम प्रवर्त्तक शासक या राजा समझा जाता है। सतयुगमें तो जनता स्वयं धर्ममें प्रवृत्त थी, धर्मके चारों चरण इस धरतीपर दृढ़तासे स्थापित थे, ब्रह्माकी सृष्टि ही ऐसी थी। जब स्वभावसे ही 'कृतजुग सब जोगी बिग्यानी' थे तो इसमें प्रवर्त्तककी क्या बड़ाई थी। परन्तु 'राजा कालस्य कारणम्' राजा युगप्रवर्त्तक होता है, अपने सुशासन वा कुशासनसे अच्छे या बुरे युगका बलात् प्रवर्त्तन कर देता है। 'रामराज्य' शब्दका भाव यह है कि भगवान् रामचन्द्रजीके शासनमें हठात् और बलात् सतयुगसे भी अच्छे और आदर्श कालकी प्रवृत्ति हो गयी थी। इसमें युगके प्रवर्त्तककी बड़ाई विशेष रूपसे सम्मिलित है।

यह सतयुग कब था? विज्ञानका विकासवाद तो सतयुग तब मानता है जब मनुष्य मनुष्यता सीख रहा था। उसमें और पशुमें बहुत कम अन्तर हुआ था। परन्तु विकासका यह सिद्धान्त विज्ञानमें अन्तिम शब्द नहीं है। सभ्यताके विकास और ह्रास और पुनः विकास और ह्रासको विज्ञान मानता ही है। बहुत संभव है कि हिन्दू जिस सतयुगकी कल्पना करता है। वह किसी पूर्वकालके सभ्यताके उच्चात्युच्च शिखरपर पहुँचनेकी ही दशाका नाम हो। जो हो, हिन्दुओंकी ऐसी कल्पना निराधार नहीं है कि ऐसा युग कभी अवश्य था। परन्तु वह कब था यह कहना कठिन है। महाभारतमें युधिष्ठिरसे ऋषि लोग रामायणी कथा सुनाते हैं। तो उससे यही बोध होता है कि कथा इतनी पुरानी और भूली-बिसरी हो गयी थी कि युधिष्ठिर भी नहीं जानते थे। अभी पं० दीनानाथ शास्त्रीकी खोजसे पता चलता है कि महाभारतका समर हुए लगभग इक्कीस हजार बरस हुए होंगे। अतः रामराज्यका समय तो आजसे लाखों बरस पहलेका हो सकता है। फिर सतयुग तो रामराज्यसे भी कहीं पुराना है। अतः सतयुगका काल अवश्य ही लाखों बरस पूर्वका काल होगा। वैज्ञानिक भी प्रालेय—कालको कई लाख बरस पूर्वका मानते हैं। अतः महाभारतमें इस प्रकरणमें जिसका उल्लेख है उस सतयुगका काल यदि वस्तुतः कभी था, तो कई लाख बरस पहलेका काल अवश्य होगा।

२—सतयुगी सुराज्य और कुराज्य

सतयुगमें जनताकी क्या व्यवस्था थी, इसका विस्तारसे वर्णन नहीं मिलता। जो कुछ पता चला है वह यही है कि जनतामात्र उस समय धार्मिक थी। सत्य और अहिंसाका राज्य था। जब सभी यही विचार रखते थे कि हमारे चारों ओर सब सुखी रहें 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः' तो कोई व्यक्ति दुखी कैसे रह सकता था? जब सभी सच्चे थे तब छल, कपट, धूर्त्तता आदि दुर्गुण तो होही नहीं सकते थे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर—ये छहों विकार यद्यपि निर्मूल नहीं हो गये थे, तथापि सत्य और अहिंसाकी प्रबलतासे ये जनताको दुखी करनेका कारण नहीं होते थे। इन विकारोंका वहींतक उपयोग था जहाँतक सृष्टिकी प्रवृत्तिमें इनकी नितान्त आवश्यकता थी। प्रत्येक समाज अपनेको एक शरीर समझता था और व्यक्ति उसी समाज-शरीरके संघटक

अङ्ग थे। यही बात थी कि सबसे मुख्य प्रार्थना, वेदोंकी प्राण गायत्री सार्वजनिक प्रार्थना है और यद्यपि व्यक्ति वह प्रार्थना करता है तथापि समाजकी ओरसे ही प्रार्थना करता है। प्रार्थीके बहुवचनका प्रयोग इसी रहस्यका द्योतक है। निदान, सत्ययुगमें समाजमें सर्वांगैकचेतना थी और वह सर्वांगैकता ऐसी व्यापक थी कि व्यक्ति और समाजमें किसी विकारके कारण भी संघर्ष नहीं होता था। यही बात थी कि सतयुगमें मोह और शोक न था। 'तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः। महाभारतमें सतयुगके सम्बन्ध में कहा है—

न च राज्यं न राजासीन्न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम्॥
(शा० प०, राजधर्म ५९। १४)

कृतयुगमें पहले न राज्य था न राजा था, न दण्ड था, न दण्डवाला था। धर्मसे ही सारी प्रजा एक दूसरेकी रक्षा करती थी। भाव यह कि धर्म ही रक्षा करता था। पाप, अपराध, हिंसाके अभावमें दण्डका भी अभाव था। फिर दण्ड देने और पानेकी क्या चर्चा? दण्डकी तो उत्पत्ति ही नहीं हुई थी। बहुत कालतक यही व्यवस्था चली। इस तरहकी परस्पर रक्षाका काम करते हुए बहुत काल बीतनेपर थकान आ गया, जिससे लोकात्मबुद्धि बदलकर देहात्मबुद्धि हो गयी, स्वार्थपरता आ गयी। इससे धर्मका ह्रास हो गया। अब लोभने धर दबाया। इसपर काम भी प्रबल हो गया। इस तरह विकारोंकी प्रबलतासे प्रजामें भाँति-भाँतिके पाप बढ़े। सतयुगका इसी प्रकार ह्रास हुआ। महाभारतमें राजधर्मपर्वमें विस्तारसे वर्णित है कि इसपर किस प्रकार थोड़े-से धर्मात्माओंने पापग्रस्त दुरात्माओंसे पहले असहयोग किया, फिर जब इससे सफलता न हुई तो प्रजापतिसे फरियाद की, ब्रह्माने एक लाख अध्यायोंकी 'दण्डनीति' बनायी, उसे भगवान् शंकरने छोटा करके 'वैशालाक्ष' नामक शास्त्र रचा। इन्द्रने पाँच सहस्र अध्यायोंमें उसीसे 'बाहुदन्तक' रचा, फिर गुरुने 'बार्हस्पत्य' और बार्हस्पत्यसे शुक्राचार्यने 'औशनस' और इसी प्रकार उत्तरोत्तर संक्षेप करके ऋषियोंने दण्डनीति बनायी, फिर 'विरजावतार' लेकर भगवान् विष्णु स्वयं राजा बने। होते-होते इसी परम्परामें राजा पृथु हुए जिन्होंने सतयुगी राज्यका आदर्श स्थापित किया। पृथुने वस्तुतः इस वसुन्धराका उपयोग करना प्रजाको सिखाया और उन्हींके नामसे यह धरती पृथ्वी कहलायी। सतयुगके लिये इतना बहुत था क्योंकि फिर भी सारी प्रजा धर्म-प्रवण थी। आरम्भमें जो कठिनाई हुई वह तो एक ही अवस्थामें रहते-रहते थकानके कारण उत्पन्न हुई थी। राजाकी व्यवस्थामें वह थकानकी अवस्था फिर न आयी। अब शासन और पालन दोनों कार्य सारे समाजके लिये एक ही व्यक्ति करने लगा। समाजके प्रत्येक व्यक्तिके ऊपर जिम्मेदारी न रही। पहले यह जिम्मेदारी बँटी हुई थी, एकको भूलका परिणाम थोड़ेसे ही व्यक्तियोंपर बीतता था। सारा समाज पीड़ा नहीं पाता था। अब सारे समाजकी जिम्मेदारी जब एक व्यक्तिपर आयी तो उसकी भूलसे सारा समाज पीड़ित होने लगा। वेन, रावण, कंस आदिके कुराज्यमें प्रजापीड़नका उदाहरण प्रकट है। [महाभारत शान्तिपर्वके राजधर्मके ५९ वें अध्यायसे लेकर नौ अध्यायोंका यहाँ सार दिया गया है]।

राज्यपद्धतिकी स्थापनाके बाद कुराज्यका पहला उदाहरण वेनका है। उसको ऋषियोंने समाप्त कर दिया और उसके बुरे प्रभावको मिटानेके लिये पृथुकी उत्पत्ति की। यह कथा सतयुगकी ही है। उसके पीछे बहुत कालतक साधारणतया कुराज्यकी शिकायत नहीं सुन पड़ती। त्रेताके आरम्भसे ही रावणके अत्याचारोंने युगपरिवर्त्तनका रूप खड़ा कर दिया। रावणका कुराज्य दिन-पर-दिन बढ़ता ही गया। विश्वविराट्के उरस्में यह कठिन राजरोग इतना बढ़ा कि उसका इलाज ऋषियोंके बूतेके बाहरकी बात हो गयी। रावणराज्य कुराज्यका आदर्श था। उसके अत्याचार बहुत बड़े पैमानेपर हुआ करते थे। उसकी अनीतिके पीछे ज्ञान विज्ञानका असीम बल था। भगवान् रामचन्द्रजीका अवतार इस कुराज्यके विनाश और रामराज्यकी स्थापनाके लिये हुआ।

रामायणोंमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित तो कुल चार-पाँच वर्षोंके ही कुछ थोड़े-से दिनोंके दिये हुए हैं। जन्मादि, विवाह, चित्रकूट-लीला, सीताहरणसे राज्यपर्यन्त ये चार वर्षोंकी ही कथामें सारी रामायण लिखी गयी है। जन्मके वर्षके पीछे किशोरावस्थातकके १४-१५ बरस,

चित्रकूट-निवासके बारह बरस और राज्यके ग्यारह हजार बरसोंकी कथा तो प्रायः कुछ भी नहीं है। भवभूतिने उत्तररामचरितमें भी केवल अन्तिम दिनोंके थोड़े-से चरित दिये हैं। रामायणोंमें भी उत्तर-चरितके अन्तर्गत न्यायके दो-एक उदाहरणमात्र बताये हैं। राज्यका वर्णन किसीने यथेष्ट विस्तारसे नहीं किया है। जैसे योगवाशिष्ठ महा रामायणमें वेदान्तका वर्णन है वैसे ही यदि राम-राज्य-पद्धतिका कुछ विस्तारसे वर्णन होता तो राज धर्मका एक अपूर्व संग्रह मौजूद होता। **ऐसे संग्रहके अभावमें हमें उपलब्ध सामग्रीकी व्याख्यापर ही निर्भर करना पड़ेगा।**

३—राम-राज्यकी तैयारी

ग्यारह हजार* बरसतक रहनेवाले राज्यकी तैयारी बड़ी अपूर्व रीतिसे हुई। जैसा आदर्श राम-राज्य होनेवाला था वैसा ही आदर्श कुराज्य रावणराज्यका होना उसकी पहली और अनिवार्य सामग्री थी। क्रियाका उत्तर प्रतिक्रियाका होना स्वाभाविक है और प्रतिक्रिया भी क्रियाके ही अनुरूप होती है। रावण-राज्य कुराज्यका जैसे नमूना था वैसे ही रावण स्वयं राक्षसोत्तम था। आत्यन्तिक बल, आत्यन्तिक अनीति और भीमरूपताका अपूर्व संयोग ही राक्षसोत्तमता थी। विश्रवा-जैसे तपोधनकी सन्तानकी ऐसी उलटी दशा थी। उसके राज्यमें अत्याचार और हिंसाका परमोग्ररूप विद्यमान था। तीनों लोकोंमें उसका आतंक छाया हुआ था। चराचर पीड़ित थे। बड़े भाईको निकालकर उसका धन-अधिकार सब कुछ हरण-कर तीनों लोकोंको सताकर अपने वशमें कर रखा था। अनेक स्त्रियोंका, अनेक राज्योंका अपहरण किया था। जिनका पालन करना राजाका कर्त्तव्य था रावण-राज्यमें उन्हींका संहार होता था। यज्ञभाग न पानेसे देवता क्षुधाक्षीण बलहीन हो रहे थे। ऋषियोंसे उनके रक्तके रूपमें कर लिया करता था। उससे सभी प्राणी दुखी थे। राक्षस भी उससे भयभीत ही रहते थे। फिर अच्छे प्राणियोंके भयके क्या कहने हैं नौबत यहाँतक पहुँची थी कि देव-सभामें भी कोई रावणके कुराज्यकी चर्चा डरके मारे न कर सकता था, ब्रह्माजी भगवान्‌की स्तुतिमें भी उसका नाम नहीं ले सके और आकाशवाणी भी सांकेतिक भाषामें ही हुई। यह सब वह क्रिया थी जिसकी प्रतिक्रियामें रामावतार हुआ और रावणके कुराज्यका नाश और राम-राज्यकी स्थापना हुई।

प्रतिक्रियाकी तैयारी उग्ररूपमें नहीं हुई। राजा दशरथ साठ हजार बरसके हो चुके थे। सात सौसे ऊपर रानियाँ थीं। शायद विषयोपभोगातिशयसे उनके सन्तान नहीं होती थी। यज्ञके प्रसादसे चार पुत्र हुए। चारों 'शील-रूपगुणधाम' थे। यदि बाल्यावस्थासे सब तरहकी उपयुक्त शिक्षा न होती तो रामराज्यका अनुपम आदर्श देखनेमें न आता। गुरु वसिष्ठकी शिक्षा चौमुखी थी। रूप-यौवन दोनोंकी रक्षाके लिये शरीरके व्यायामसम्बन्धी साधन ब्रह्मचर्य-व्रत, शम, दम, यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान आदिकी शिक्षा भी विद्याके साथ-ही-साथ बड़ी उपयुक्त रीतिसे चारों भाइयोंको समान रूपसे मिली थी। इसके सिवा धनुर्वेदकी विशेष शिक्षा दोनों भाइयोंको विश्वामित्रजीसे मिली थी। इन राजकुमारोंने ब्रह्मचर्यकी गृहीत शिक्षाका जैसा उपयोग किया, विश्वके इतिहासमें उसका जोड़ नहीं मिलता। पुराणोंमें और महाभारतमें भी इस कठिन सुव्यावहारिक ब्रह्मचर्यकी चर्चा और प्रशंसा है। महाभारतमें तो कहा है कि भगवान् रामचन्द्रजीकी प्रजा पूर्णायु भोग करती थी जो एक हजार बरस थी। परन्तु स्वयं भगवान् रामचन्द्रने अपने अनुपम ब्रह्मचर्यके बलसे दस हजार बरससे भी अधिक आयुका उपभोग किया। इस कठिन व्रतके पालनके सामर्थ्यने ही उनसे सभी अद्भुत कर्म कराये। चौदह बरसका ब्रह्मचर्य, वानरोंका संगठन और रावण-जैसे महापराक्रमी राक्षसेश्वरका संहार उनके खेदरहित दस हजार वर्ष धर्म-शासनके सामने किसी गिनतीमें नहीं आता। फिर भी चौदह बरसतक सपत्नीक वनवास और अखण्ड ब्रह्मचर्यपूर्वक तपस्या आगेके राज्यशासनके लिये आरम्भिक अभ्यास था। जो काम चौदह बरसतक आनन्दपूर्वक बिना थके तपस्याके साथ सम्भव हुआ, आगे चलकर दस हजार बरसतक उसका होना सम्भव हो गया। इस 'ब्रह्मचर्येण तपसा' चारों भाइयोंका रूप, यौवन, शील, गुण इतने सुदीर्घ कालतक अक्षुण्ण बना रहा।

ब्रह्मचर्यके इस अनुपम आदर्शके साथ-ही-साथ बल,

* अत्युक्तियोंपर अन्तमें विचार है। यहाँ केवल पौराणिक विवरण है।

विक्रम और शारीरिक सौन्दर्य भी चारों भाइयोंका बे-जोड़ था। चारों जैसे एक ही समयमें जन्मे थे वैसे ही एक ही रङ्ग-रूप और आचरणके भी थे। इनका त्याग तो सर्वोपरि था। वह संसारके इतिहासमें अनुपम हैं। छोटी-मोटी जायदादके लिये भाई भाईकी जानका गाहक हो जाता है, परन्तु भरतजी जो चक्रवर्त्ती राज्यको ठुकरा देते हैं, उसकी उपमा तो विश्वके इतिहासमें कहीं नहीं मिलती। लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी इस त्यागमें सोलहो आने अपने भाईके अनुगामी हैं। इन भाइयोंके निकट इतना बड़ा राज्य खेलनेके गेंदसे अधिक प्रतिष्ठा नहीं रखता था। हर एक समझता था कि राज्य भोगनेकी चीज़ नहीं है। हर एक जानता था कि राज्य बहुत भारी जिम्मेदारी है। राजनीतिके इस महत्त्वपूर्ण ज्ञानका श्रेय वसिष्ठजीको है। वसिष्ठजी कोरे पुरोहित न थे। वह दण्डनीतिके उद्भट विद्वान् थे, एक ही आचार्य थे। वसिष्ठस्मृति उनकी इस विषयमें विशेषज्ञताका प्रमाण है। जो हो, इन राजकुमारोंने राज्यकी जो कीमत समझी थी उसका फल आगे चलकर भगवान् रामचन्द्रजीका अनुपम रामराज्य था।

व्यक्ति-राज्य होनेसे प्रजापर व्यक्ति-राजाका बड़ा प्रभाव पड़ता है। 'यथा राजा तथा प्रजा' राजा जैसा होता है वैसी ही प्रजा भी होती है। व्यक्ति-राज्यमें उस व्यक्तिके चरित्रकी महत्ता इसीलिये है। सारा समाज जब धर्मात्मा था, तब कुछ व्यक्तियोंके पापी होनेसे समाजका दबाव कुछ कालतक उन्हें उभरने नहीं देता था, परन्तु कालके प्रभावसे धीरे-धीरे धर्मका ह्रास हो जाता है। ऐसी दशामें उसका उद्धार करनेके लिये भगवदवतार ही एक उपाय है जिसके द्वारा धर्मका संस्थापन होता है। उस समय व्यक्तिके द्वारा ही समष्टिके लिये उदाहरण और आदर्शकी उद्भावना होती है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

साधारण श्रेष्ठोंका जब जन-समुदायपर यह प्रभाव पड़ता ही है तब उस व्यक्तिका जो इस विश्वका स्रष्टा, भर्त्ता और संहर्त्ता वा परात्पर है कितना पड़ेगा, यह कल्पनाकी बात नहीं है, बल्कि भगवान् रामचन्द्रजीके राज्यसे ही स्पष्ट है। प्रजाका एक-एक आदमी उनके चरितको देखकर उसका अनुकरण करता था। जिस निषादको भगवान्‌ने गले लगाया उसे आते जानकर भरतजी रथका त्याग करके पैदल चलकर मिलते हैं और उसे दण्डवत् करते देख वशिष्ठजी उठाकर छातीसे लगा लेते हैं। धोबी-जैसे अन्त्यजको भी अपने धर्माचरणका ऐसा गर्व होता है कि वह साम्राज्ञीतकको अपने वाग्बाणका लक्ष्य बना देता है और सम्राट् अपनी नीचातिनीच प्रजाका इतना आदर करता है कि महारानीका परित्याग कर देता है। जब दुराचारी सजातीयको कोड़े मरवानेका दण्ड देनेके कारण आजकलका सम्राट् एक राजाको गद्दीसे उतार देता है, तो महारानीको दुर्वाद कहनेवाले धोबीकी जीभ खिंचवा लेना कौन-सी बात थी? अपने पास आनेवाले शत्रुको भी अभयदानकी नीतिका वानरोंपर कैसा प्रभाव पड़ता है? राम और भरतादिकी पारस्परिक गाढ़ प्रीति और एक-दूसरेके लिये राजत्यागतक देखकर विभीषण और सुग्रीव कट-कट जाते हैं और कुटिला कैकेयी अपने कियेपर जीवनभर पछताती है परन्तु अपने पुत्रोंका चरित देख-देख उसकी छाती गज-गजभरकी हो जाती है। राजाका ही व्यक्तित्व ऐसा है, ऐसी बात नहीं है। महारानीका चरित्र भी प्रजाके लिये अनुत्तम है। दासियोंके होते भी—

'निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयेसु अनुसरई॥'

इतना ही नहीं, सासुओंकी सेवा भी अपने हाथोंसे करती थीं, फिर प्रजाजनमें सास-पतोहूका झगड़ा कैसे सुननेमें आ सकता था? प्रजाने देखा था कि आपसमें सदा प्रेमसे रहनेवाली राजमाताओंमें भी कभी सवतिया डाह ऐसा पैदा हो सकता है कि घरको बरबाद कर डाले और यह भी देखा था कि चारों राजकुमार बड़े निष्ठावान्, ब्रह्मचारी और एकपत्नीव्रती हैं। प्रजाके ऊपर इनके कुल-चरित्रका प्रभाव बिना पड़े नहीं रहा। सभी प्रजाजन देखा-देखी एकनारिव्रती और ब्रह्मचर्यपरायण हो गये। इन चारों भाइयोंने आगे चलकर राज्योपभोग करते हुए भी न केवल एकपत्नीव्रतका निर्वाह किया, बल्कि पत्नीके रहते भी तभी सन्तानोत्पत्तिमें प्रवृत्त हुए जब लगभग दस हजार बरस बीत चुके थे। पुत्र भी दो-ही-दो उत्पन्न किये जैसी कि स्मृतियोंकी आज्ञा है। इनकी पत्नियाँ भी उसी तरह पूर्णतया पतिकी अनुगामिनी रहीं। यह राजकुल एड़ीसे

चोटीतक आदर्शचरित था और प्रजाके लिये सर्वथा अनुकरणीय। साथ ही औरोंकी निगाहोंमें इस कुलमेंसे एक भी जहाँ गिरा भगवान् रामचन्द्रने अविलम्ब ही उसे अलग किया। कोमलता इस दरजेकी कि व्याध, निषाद, वानर, पशु, धोबीतकके भी मनको दुखी नहीं करते थे और कठोरता वज्रसे भी अधिक—और वह अपने ही साथ—कि साम्राज्यकी एकमात्र अधीश्वरीतक उससे बच न सकीं। अपने साथ उन्होंने ऐसी कड़ाई बरती और इसीलिये कि प्रजाके साथ कड़ाईकी जरूरत न पड़े, विना कठोरताके ही वह नीति-मार्गपर दृढ़ारूढ़ रहे।

हमने व्यक्ति-चरित्रका यहाँ जरा-सा दिग्दर्शन इसलिये करना चाहा कि व्यक्ति-राज्यमें प्रजापर चरितका अमिट प्रभाव पड़ता है। गोस्वामीजीने विनयके सौवें पदमें बहुत थोड़ेमें भगवानके शील-स्वभावका परिचय दिया है—

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन तनु पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ॥
सिसुपनतें पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम बिधु बदन रिसौहैं सपनेहु लखेउ न काउ॥
खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ॥
सिला साप संताप बिगत भई परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरख हिय चरन छुएको पछिताउ॥
भव धनु-भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ।
छमि अपराध छमाइ पायँ परि, इतौ न अनत समाउ॥
कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गे राउ।
ता कुमातुको मन जोगवत ज्यों निज तनु मरमु कुघाउ॥
कपि सेवाबस भये कनौड़े, कहेउ पवनसुत आउ।
देबेको न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ॥
अपनाये सुग्रीव विभीषन, तिन न तजेउ छल छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ॥
निज करुना करतूति भगतपर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ॥
समुझि-समुझि गुन ग्राम रामके उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पइहै प्रेम पसाउ॥

४—राज्यारोहण

साधारणतया राज्यारोहणपर ही अनेक उपद्रव होते हैं। वह राज्यारोहणका ही अवसर था जब कैकेयीने बाधा डालकर अवधपर विपत्तिका पहाड़ गिरा दिया और रावणके साम्राज्यके संहारकी बुनियाद डाल दी। निर्बल प्रबन्ध पाकर आस-पासके ही राजा अपनी नीयत खोटी कर लेते हैं और अवसर मिलते ही छापा मारते हैं! परन्तु एक ओर एक भारी सम्राट्का श्रीरामचन्द्रजीने सर्वनाश कर डाला था, दूसरी ओर भरतजीके धर्म और तपश्चर्याके शासनसे अयोध्या वास्तविक अयोध्या हो रही थी। भगवान्की नीति ऐसी थी कि कोई शत्रु नहीं हो सकता था। सुग्रीव और विभीषणके लिये स्वयं शत्रुको पराजित करके बड़े-बड़े साम्राज्योंका दान किये आ रहे थे। 'लोलुप भूप भोगके भूखे।' जो राजा स्वयं भोगका भूखा नहीं, जिसने मिलते या मिले हुए राज्यका त्याग किया हो उसके होते कोई उसके ही राज्यकी ओर खोटी नियतसे निहार कैसे सकता था। इसके सिवा त्रैलोक्य तो रावणके उत्पीड़नसे ऐसा सन्तप्त था कि अभी-अभी उसके दम लेनेका अवसर, शान्तिका अवकाश, मिला। सबको अपनी-अपनी सँवार सँभालकी पड़ी थी। उसके सिवा जिसने रावणका संहार किया उसके राज्यारोहणपर तो त्रैलोक्यको दरबारमें आकर अपना-अपना मुजरा अर्ज करना था, बन्दगी बजानी थी, अधीनता स्वीकार करनी थी। रावणके उत्तराधिकारी विभीषण हुए अवश्य, परन्तु विभीषणका उत्तराधिकार केवल लंकातक और राक्षस जातितक सीमित था। रावणने अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंपर अधिकार कर रखा था, परन्तु अब वह अधिकार तो उसके विजेता रामचन्द्रजीके हाथोंमें चला गया। पुष्पक विमानतक तो लौटा दिया गया। विभीषण तो विजेताके ही बनाये हुए राजा थे और भगवान्के ही अधीन थे, अतः राज्यारोहण होते ही त्रैलोक्य-में दुहाई फिर गयी।

बयरु न कर काहू संग कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥

वैरमें हिंसा प्रत्यक्ष है। पूर्ण अहिंसाकी प्रतिष्ठापनासे वैर-भावका लोप हो गया। रागद्वेषके निर्मूलनसे असत्य विचार, असत्य उच्चार और असत्य आचार मिट गये। सत्यकी प्रतिष्ठापना हो गयी। अहिंसा और सत्यने तीनों लोकोंको अभय कर दिया। इसीलिये—

रामराज बैठे त्रय लोका। हरषित भए गए सब सोका॥

भगवान्के चरितका पूरा अनुकरण करनेवाली प्रजा संयम, नियम और सदाचारका तपोमय जीवन बिताने लगी।

(क्रमशः)

पौधोंके रोग और उनका निवारण

पौधोंकी रक्षा हमारे प्राणोंकी रक्षा है।

[साहित्यरत्न पं० भगवतीलाल श्रीवास्तव्य, अध्यापक ग्रामोपयोगी शिक्षा मिडिल स्कूल पिसनहरिया, काशी]

१—सृष्टिगत तारतम्य

सृष्टिगत आदान-प्रदान एवं व्यावहारिक उपादानोंका उपयोग ही उसके परिवर्तन-शील होनेका हेतु है। दृश्य जगत्में उत्थान-पतनका सामंजस्य, वैज्ञानिकोंके हर्षोल्लासका महत्वपूर्ण विषय है। इसमें सन्देह नहीं कि किसीकी अचल एकरूपतामें भीषण क्रान्ति विदित होती है। संसारका यह स्वरूप, उसके प्रतिद्वन्द्वी भावों, विधानों एवं प्रक्रियाओंका फल है। यह तारतम्य संसारकी समस्त वस्तुओंमें पाया जाता है। क्या जड़ क्या चेतन, सभी इन प्रभावोंसे प्रभावान्वित हैं। पौधा, सृष्टिका एक चैतन्य पदार्थ सिद्ध है। इसमें भी सुख-दुःख, आघात-प्रतिघातक व्यापकता सन्निहित है। ये भी नीरोग और रोगी होते रहते हैं।

२—पौधे तथा जगत्के अन्य जीव

संसारकी समस्त वस्तुएँ प्रायः दो अवस्थाओंमें मिलती हैं—प्रथम सजीव दूसरे निर्जीव। चेतनशक्ति ही सजीव वस्तुओंकी मूल है। इनमें मनुष्य पशु, पक्षी तथा वनस्पति (पेड़-पौधे) आदि सजीवकी श्रेणीमें आते हैं। शरीरीके नाते सबमें वृद्धि-क्षीणता, सुख-दुःख, उत्कर्ष-अपकर्ष प्रभृति प्रतिद्वन्द्वी भाव विद्यमान हैं। मनुष्य जगत्के लिए जिस प्रकार उपयोगी विधानोंका उचित उपयोग लाभप्रद तथा उनका दुरुपयोग हानिकर होना अनिवार्य है, ठीक वही अवस्था पौधोंके लिए भी है। "जथा इन्ने तथा उन्ने" तो सोलहो आने कहा जा सकता, यदि इनका मूल भी गमनशील होता, अन्यथा अन्य जीवधारियोंकी भाँति ये भी भोजन करते, भीतरसे बाहरकी ओर बढ़ते, सन्तान उत्पन्न करते, आघातोंका अनुभव करते तथा जातिभेद रखते हैं। इस सादृश्यको सामने रखते हुए इसका अनुमान कर लेना अत्यन्त सुगम है कि पौधोंके रोगी होनेके भी वे ही कारण हो सकते हैं जो अन्य जीवधारियोंके लिए होते हैं। अर्थात् भोजन, पानी, वायुमण्डल, उत्पत्ति-विधान, सामयिक उपकरण तथा ऐसे ही अनेक विषयोंकी अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता ही इन पौधोंके भी रोगग्रसित अथवा नीरोग होनेका कारण है।

३—पौधोंमें रोग लग जानेका कारण

पौधोंका विशेष सम्बन्ध मिट्टीसे होता है। मिट्टीकी अनुपयुक्तता एवं उपयुक्तता पौधोंके रोगग्रसित एवं नीरोग होनेमें अधिकांश सहायक होती है। यदि खेतकी मिट्टी ठीक ढंगसे तय्यार नहीं होती अथवा आवश्यकतासे अधिक गीली या सूखी होती है तो उसमें रोग उत्पन्न करनेवाले अनेक प्रकारके कीड़े-मकोड़े तथा जीवाणु भी होते हैं। पौधोंके बीज भी इनके रोगके विशेष हेतु हुआ करते हैं। अधिकांश रोग पौधोंमें फंगस या दहियासे लगते हैं।

४—फंगस या दहिया क्या है!

फंगस वनस्पति जगत्में एक प्रकारका सूक्ष्म पौधा होता है। उसमें किसी प्रकारका रंग नहीं होता। अन्य पौधोंकी भाँति यह मिट्टी और हवासे अपना भोजन नहीं ले सकता। इसकी ठीक गति मनुष्य जगत्के लुटेरोंकी सी है। यह जीवित या मरे पौधोंसे अपना भोजन लेता है। यह रंग, आकार और बनावटमें विभिन्न होता है। कोई-कोई पौधे तो इतने सूक्ष्म होते हैं कि इनके देखनेके लिए आकारवर्द्धक शीशेकी आवश्यकता पड़ती है।

५—फंगस या दहियाकी उत्पत्ति

इसकी उत्पत्ति प्रायः नमीके कारण होती है। बदली इसकी वृद्धिमें पूर्ण सहायता पहुँचाती है। बरसातमें प्रायः बेकार रक्खी हुई वस्तुओंपर, जो हरे या सफेद रंगकी काई

दिखलाई पड़ती है, यह इसीके कारण उत्पन्न होती है। इसमें टिकुलीके आकारके 'स्पोर' नामके एक अत्यन्त सूक्ष्म रजःकण उत्पन्न होते हैं जो कीड़े, मकोड़े, हवा या मनुष्यों द्वारा एक पौधेसे दूसरे पौधेपर पहुँचते हैं और उपयुक्त स्थान पाकर जम जाते हैं। क्रमानुसार यह एक पौधेसे दूसरे पौधोंपर भी फैलते और उनका रस चूसकर उन्हें रोगी या निर्जीव बना डालते हैं। इसीके कारण गिरवी (रतुआ) और कंडवाके रोग पौधोंमें प्रवेश करते हैं।

६—गिरवी या रतुआ

यह रोग विशेषकर बदलीके दिनोंमें अधिक प्रभाव दिखलाता है। यह अधिकतर गेहूँ और जौमें लगता है। किन्तु जौ गेहूँके अनेक प्रकार ऐसे भी हैं जिनपर इस रोगका प्रभाव नहीं पड़ता। गेहूँ-जौ और तीसी आदिपर लगनेवाले इस रोगका रंग पीला, लाल या भूरा होता है। यह देखते-देखते सारे खेतके पौधोंपर अपना प्रभुत्व जमा लेता है।

७—कंडवा

गिरवीका भाई-बन्द कंडवा नामक रोग भी है, जो इसी फंगससे उत्पन्न होता है। यह जौ, गेहूँ, ज्वार और बाजरेमें विशेष लगता है। फंगसका आक्रमण जिस बीजपर हो जाता है उसमें आटाका तत्व नहीं रह जाता और काला पड़ जाता है। नमी पाकर पौधे बढ़ते अवश्य हैं पर दानोंमें बिलकुल तत्व नहीं होता।

८—निवारणके उपाय

फंगसके बीज प्रायः हलके और सूक्ष्म रूपमें होते हैं। इनका निवास ऋतुके अनुसार भूमिपर अथवा पौधोंपर होता है और मौसिमकी अनुकूलता पाकर ये जमते-बढ़ते और पौधोंको हानि पहुँचाते हैं। यह भी देखनेमें आया है कि ये फंगस पौधेविशेषपर ही अपना प्रभाव दिखलाते और उनके अभावमें दूसरे प्रकारके पौधोंपर उतना आतंक नहीं दिखलाते। ऐसी दशामें रोटेशन अथवा शस्य-परिवर्तन द्वारा इनसे रक्षा हो सकती है। एकही जातिके विशेष प्रकारके बीजोंके बोनेसे भी इसकी दाल नहीं गलने पाती।

गिरवी या कंडवाके लगनेपर पौधेकी पत्तियों या बालोंको तोड़कर जला डालना चाहिए। इन रोगोंसे बचनेके लिए 'फार्मलीन' नामक दवा या 'तूतिया' का उपयोग विशेष लाभदायक होता है। इनका उपयोग बोनेसे पहले बीजोंको धोनेके लिए किया जाता है।

इसी प्रकारका एक रोग आलूमें उत्पन्न होकर उसके पत्तोंको सुखा देता है और वे मुरझाकर गिर पड़ते हैं। इससे आलूकी रक्षा करनेके लिए 'बोर्डो' नामक घोलका उपयोग किया जा सकता है। इससे यह रोग पैदा करनेवाला फंगस मर जाता है।

बोर्डो घोल तैयार करनेकी विधि यह है कि ५० सेर पानीमें तीन पाव पिसा हुआ तूतिया और आध सेर बिना बुझा हुआ चूना घोल दिया जाय।

गिरवी आदि रोगोंको दूर करनेके लिए चूल्हेकी राख भी परम लाभदायक है। इसे उचित मात्रामें पौधोंपर छिड़कते रहना चाहिए। इससे सस्ती दवा दीन कृषकोंके लिए दूसरी नहीं है।

९—रोग पैदा करनेवाले कीड़े-मकोड़े

जीवन-शास्त्रमें अनेक ऐसे कीड़े-मकोड़ेका वर्णन है, जिनसे पौधोंकी रक्षा भी होती है और हानि भी पहुँचती है। हानि पहुँचानेवालोंमेंसे सूँडी, छेदा, अर्र, गिरई, माहो, लाही, भुड़िला, ढोला, दीमक, टिड्डी, घुन, पतिङ्गे, गुबरैले तथा अन्य अनेक प्रकारके कीड़े, विशेष प्रसिद्ध हैं। ये कीड़े भिन्न-भिन्न प्रकारसे पौधोंको हानि पहुँचाते हैं। कुछ तो ऐसे होते हैं जो पौधोंकी पत्तियों, दानों और फलोंको खा जाते हैं और बहुतसे पौधोंकी डंठलमें छेद करके अन्दर घुस जाते हैं और उनका रस चूसकर उन्हें निर्जीव बना देते हैं। ये पौधोंके अन्दर अण्डा भी देते हैं।

१०—बचनेके उपाय

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है फसलोंको हेरफेरकर बोनेसे अधिकांश कीड़ोंका भय जाता रहता है। गर्मीमें जब कि खेत खाली रहते हैं खूब गहराईतक मिट्टी खोद देनेसे भी कीड़े कड़ी धूप खाकर मर जाते हैं। खेतमें ऐसे पौधों या खूँटियोंको न रहने देना चाहिए जिसमें कीड़ोंके अंडा देनेका

भय हो। ऐसी लकड़ियों या खर-कतवारको जला देना ही विशेष लाभप्रद होता है। खेतमें पुरानी ईखकी पत्तियाँ या झाड़-झंखाड़ रखकर जलानेसे भी ऐसे हानिकारक कीड़े मर जाते हैं। कीड़ोंकी संख्या परिमित होनेकी सूरतमें इन्हें छोटी-छोटी जालियोंसे फँसकर भी दूर किया जा सकता है। पौधोंका वह अंश जिनपर कीड़ोंका प्रभाव पड़ा हो, पौधोंसे अलग करके जला देना चाहिए।

लाही, माही, गिरई आदि रोग चूल्हेकी राख छिड़कनेसे भी दूर हो जाते हैं। कीट, पतंगे और गुबरैले आदि रोशनीसे अपने-आप जलकर नष्ट हो जाते हैं। न्यून मात्रामें रहनेसे खेतोंमें दीपक जलाकर इन्हें नष्ट कर देना चाहिए।

दीमक पौधोंका एक प्रसिद्ध शत्रु है। यह नमीके कारण अधिक बढ़ती है। ताज़ा गोबरपर दीमक बहुत शीघ्र एकत्रित होती है। इस प्रकार खेतमें इन्हें एकत्र कर इनका नाश सुगमतासे किया जा सकता है। तीतर आदि पक्षी भी इनके शत्रु हैं। इन्हें पालकर भी इनका विनाश किया जा सकता है। यदि पता लग सके तो इनकी रानीका दूर कर देना ही सबके दूर हो जानेका कारण होगा। बहुधा सिंचाई कर देनेसे भी इनका नाश हो जाता है। नीम या रेंडीकी खलीसे भी दीमक नष्ट हो जाती है। हींगका पानी पौधोंपर छिड़कनेसे दीमकें नहीं लगतीं। फसल कट जानेके बाद खेतकी मिट्टी उलटकर छोड़ देनेसे भी ये कीड़े मर जाते हैं।

टिड्डियोंके भीषण आक्रमणसे तो बचना प्रायः असम्भव होता है, उस समय उनका भगाना ही रक्षाका उपयुक्त साधन है। आग जलानेसे ये भग जाती हैं। हाँ! इनकी जन्मभूमि ढूँढ़कर इनका नाश किया जाय तो कुछ सफलता मिल सकती है। ये प्रायः बलुये स्थानमें रहती हैं। राजपूताना तथा सिन्धके निवासी यदि चाहें तो अधिकांश कृषकोंका भला हो सकता है।

'घुन' एक साधारण कीड़ा है किन्तु असाधारण हानि पहुँचाता है। इससे बचनेके लिए बीजको खूब सुखाते रहना चाहिए। अनाजको ऐसी रीतिसे रखना चाहिए कि बाहरसे नमी न आने पावे। 'नेपथेलीन' रखने अथवा 'कार्बन बाइसलफाइड' अनाजपर छिड़कनेसे अनाजकी पूरी रक्षा हो सकती है। 'कार्बन बाइसलफाइड' एक भभकनेवाली वस्तु है। अतः इसे किसी प्रकारके विशेष ताप या लौसे विशेष रक्षित रखनेकी आवश्यकता है।

११—अन्य प्रकारके रोग-रूप

इनके अतिरिक्त अनेक प्रकारके और भी रोग हैं जो रोग-रूप कहे जा सकते हैं। इसमें मनुष्य, पशु, पक्षी तथा दैवी आपत्तियाँ जैसे पाला, पत्थर और ओले आदि हैं। इनसे रक्षा पानेके लिए संघ-बलकी आवश्यकता है। यह एक आदमीका काम नहीं। चिड़िये तो हँकानेसे दूर हो सकती हैं किन्तु मनुष्यरोग, संघ-बलद्वारा पिट कर ही दुरुस्त हो सकता है। नाना प्रकारके पशु तथा जंगली जानवरोंसे भी रक्षा पानेके लिए सहयोगसे काम लेना चाहिए और पूरी चौकसीके साथ रखवाली करनी चाहिए।

दैवी आपत्तियाँ अर्थात् दैवीरोग आकर हानि अवश्य करते हैं फिर भी चतुर और अनुभवी कृषक मौसिमका रुख देखकर पौधोंकी सिंचाईसे उनसे बच जाता है। सींचे गये पौधोंपर पालेका प्रभाव प्रायः कम होता है। घना धूँआ करनेसे भी पालेका प्रभाव कम हो जाता है।

१२—विशेष

पौधोंको रोगसे बचानेके लिए ऊपर कहे गये नियमोंके अतिरिक्त उसे प्रारम्भसे सावधानीपूर्वक अच्छे बीजसे उत्पन्न करना, आवश्यकतानुसार उपयुक्त मिट्टी पानी देकर रक्षा करना तथा खर-पतवारसे साफ रखना विशेष आवश्यक है। रोग लग जानेपर घबड़ाना न चाहिये और न उद्योगसे मुह मोड़ना चाहिए। एकतासे कृषिमें बड़ी सहायता मिलती है। "थोड़ी खेती अच्छी जोती" को कभी न भूलना चाहिए। सरकारकी असीम कृपासे अनेक प्रकारकी दवाइयाँ दवाखानों या सरकारी फारमोंपर मिलती हैं। सहयोग करके उनका उपयोग करना चाहिए और लाभका भागी बनना चाहिए।

बाजारकी ठगीका भंडाफोड़

(स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, अमृतसर)

नकली चीजोंके भेद और परीक्षा

(गतांकसे सम्मिलित)

सकमूनियां

नानी चिकित्सामें सकमूनियांका व्यवहार काफी है। जिस प्रकार आयुर्वेदमें मृदु रेचनके लिये हरीतकी, त्रिवृत्ता, अमलतासका उपयोग होता है इसी प्रकार यूनानीमें सकमूनियांका आया है। आयुर्वेदमें जिस तरह हरीतकीको अनेक गुणपूर्ण माना है इसी प्रकार यूनानीमें सकमूनियां है। सकमूनियांका उपयोग अनेक रोगोंमें है तथा कम मात्रामें दिये जानेपर कष्टरहित रेचन लाता है इसीसे इसकी उपयोगिताको देखकर अनेक वैद्य भी इसका व्यवहार करने लग पड़े हैं।

भारतमें दिन-प्रतिदिन सकमूनियाँकी माँग बढ़ती जा रही है। सकमूनियां अधिकतर जर्मनीसे आता है। ईरान और मिश्रमें भी होता है। सकमूनियाँका बाजारभाव २॥।), ३) पौण्ड है। फिर भी कभी-कभी नहीं मिलता। एक तो उपयोगी दूसरा मँहगा द्रव्य होनेके कारण नक्कालोंने इसे तय्यार करनेकी सोच-सोचकर कृत्रिम विधि ढूँढ़ ही निकाली।

कृत्रिम सकमूनियां कैसे बनता है?

सूखा सफेद बिरोजा लेकर उसे जलयन्त्रमें पिघलाते हैं। मन्द-मन्द अग्निपर इसीप्रकार पिघला कर काफी देरतक अग्निमें रखते हैं। जब बिरोजेका वर्ण बदलकर कुछ भूरा श्याम हो जाता है तो उसमें सेर पीछे ६ माशे जमालगोटेका तेल डालकर पकाते रहते हैं। जब तेल बिरोजेमें मिलकर एकदिल हो जाता है तो उतारकर उसकी दस-दस तोलेकी बत्ती बनाकर पैकिंग कर बाजारमें बेंच देते हैं। इसपर समस्त लागत कोई ॥=) ॥।) सेरकी आती है इस तरह ३) ४) रु० सेर बेंचकर ग्राहकोंको लूटते हैं।

असली और नकलीकी परीक्षा

असली सकमूनियाँ त्रिवृता वर्गकी एक बेलका गोंद है। जैसे, कंकुष्ठ या रेवन असारा। यह गोंद इस बेलके मूलसे भिन्न किया जाता है। यह पानीमें नहीं घुलता पर स्पिरिटमें घुल जाता है। खानेमें स्वादरहित है, दाँतोंके नीचे चिपकनेवाला है, मुँहमें भी नहीं घुलता, किन्तु पेटमें जाकर घुल जाता है। नकली सकमूनियाँ भी स्वादमें इससे मिलता-जुलता ही होता है, परन्तु मुँहमें कुछ देर रखते ही जयपाल तेलके कारण मुँह और कंठमें जलन होने लगती है और जी बहुत मिचलाता है। यही एक महद् अन्तर है।

कस्तूरी मृगमद या मुश्क

संसारमें कस्तूरी या मृगमद बहुमूल्य वस्तुओंमेंसे है और यह केवल औषधमें ही उपयोगित नहीं होती बल्कि अपनी गन्धविशिष्टताके कारण विलासी रमणियों और विलासी पुरुषोंके लिये मनोमुग्धकारी वस्तु है। शीतकालमें तो अनेक धनी व्यक्ति नित्य ताम्बूलमें रखकर सेवन करते हैं।

तिब्बत, भूटान काश्मीर, हिन्दूकुश आदि हिमाच्छादित पार्वतीय प्रदेशमें रहनेवाले एक जातिविशेष मृगकी नाभिमें कस्तूरी उत्पन्न होती है। वह मृग अपना एक भिन्न ही वंश और जाति रखता है।

हिन्दुस्तानमें जितनी भी कस्तूरी हिमालय प्रान्तसे आती है, निम्नलिखित स्थानोंसे प्रायः आती है। तिब्बतकी दार्जलिंगसे, नैपालसे, भूटानकी अल्मोड़ासे, पित्तीकी रामपुर विसहर और कुल्लूसे, लद्दाख और गिलगितकी काश्मीरसे। इनमेंसे तिब्बतकी कस्तूरी सर्वोत्तम होती है।

उससे हीन भूटानकी और उससे हीन पित्तीकी तथा काश्मीरकी सबसे हीन होती है ।

हम सब जितने भी बड़े व्यापारी हैं, खुली हुई कस्तूरी नहीं लेते, प्रत्युत जिस मृगचर्मसंयुक्त नाभिमें वह होती है, जिसको नापा* कहते हैं, वह नापे खरीदते हैं । नापे या नाभिमें मिलावट नहीं होती । या तो वह नापे बिलकुल असली होते हैं, या कृत्रिम ।

कृत्रिम और असली नापेकी परीक्षा

जितनी भी असली मृगनाभियाँ बाजारमें बिकनेके लिये आती हैं उनमें आधे भागपर ही बाल होते हैं क्योंकि, नापा मृगकी नाभिके भीतर रहता और उसको निकालते समय नाभिस्थलको चीरकर उस नाभि-ग्रन्थिको भिन्न करते हैं तो उसका आधा भाग उदरके भीतर होता है । उस भागकी खाल बिलकुल साफ होती है । उसपर कोई बाल नहीं होते । असली नापेकी आकृति कई प्रकारकी होती है । कोई गोल अण्डाकृति, कोई चिपटे कटोराकृति । कटोराकृतिको कटोरी और गोलको बैजा कहते हैं । यह नापे यदि ताजे हों तो हाथसे दबानेपर पिचक जाते हैं और उन्हें दबाकर यह मालूम किया जा सकता है कि इसमें कितना माल और कितनी खाल है । जो नकली नापे होते हैं वह गोल, कठोर सब तरफसे बालों द्वारा आच्छादित होते हैं । कुछ अधिक दिनके (चार छः मासके) नापे जब पड़े रहते हैं तब उनकी कस्तूरी और त्वचा दोनों सूख जाते हैं । इससे उनको दबानेपर वह या तो दबते ही नहीं या कुछ कम दबते हैं । परन्तु इनकी बनावट नकलीसे सदा भिन्न ही रहती है । सर्वप्रथम कस्तूरीके नापेकी इस प्रकार परीक्षा कर लेनेके पश्चात् कस्तूरी-परीक्षाकी बारी आती है । जो लोग कस्तूरीका व्यापार करते हैं वह प्रथम तो नापेकी रचनाको देखकर ही पहिचान लेते हैं कि यह किस प्रान्तका है । जो इस प्रकार पता न चले तो प्रत्येक व्यापारी दोहरी छतरीके तारको काटकर परखी बना रखते हैं । उस परखीको नापेके भीतर घुमाकर कस्तूरी निकालकर उसके स्वरूपसे मालूम कर लेते हैं कि यह कस्तूरी किस प्रान्तकी है ।

सबसे उत्तम कस्तूरी

सबसे उत्तम कस्तूरीका वर्ण कत्थई होता है । जिस कस्तूरीका वर्ण घुले हुए कत्थे जैसा निकले तथा नाभेके अन्दर कुछ काले श्यामदाने भी हों और उसकी गन्ध तीव्र हो, खानेपर कटुस्वादी और प्रियगन्धी हो वह सर्वोत्तम होती है । तिब्बतकी कस्तूरी प्रायः इसी वर्णकी निकलती है । नैनीताल अल्मोड़ेकी कस्तूरीका वर्ण इससे हल्का होता है, उसमें श्यामता अधिक होती है । रामपुर, बिसहर और कुल्लूकी इससे भी अधिक श्याम होती है । कश्मीरकी कस्तूरी तो श्याम ही होती है ।

कस्तूरीमें क्या-क्या होता है ?

नापा चीरकर जब कस्तूरी निकाली जाती है तो अन्दर कस्तूरीके साथ अधिकतर बारीक-बारीक झिल्लीका मिश्रण होता है और उस झिल्लीके साथ कुछ काली-काली गोलियाँ छोटी-बड़ी कई आकार-प्रकारकी निकलती हैं, जिनको कस्तूरी निकालनेके पश्चात् हलकी हथेलीसे मारकर झिल्लीमें फँसी कस्तूरीको उससे अलग करते हैं तथा उसमेंसे झिल्लीको चुन-चुनकर दूर कर देते हैं । कश्मीरी कस्तूरीमें इस झिल्लीसे भिन्न सिकताका अंश भी काफी मात्रामें पाया जाता है । यद्यपि समस्त नापोंमें सिकता नहीं होती तथापि आधेके लगभग नापेमें सिकताकी मात्रा पायी जाती है । जिस कस्तूरीमें सिकता विद्यमान होती है उसमें वह सफेद सफेद भिन्न ही चमकती रहती है । कश्मीरी कस्तूरी एक तो काली होती है दूसरे उसमें सिकता पायी जाती है, तीसरे गीली अधिक होती है । इसीलिए खोलनेपर हवाके संस्पर्शसे उसमें अमोनियाँ बनने लगता है । इस अमोनियाँकी विद्यमानताके कारण इसकी उग्र गन्ध कस्तूरीकी गन्धको दबा देती है । एक तो यह प्रथम ही मन्द गन्ध होती है, दूसरे अमोनियाँ रही-सही गन्धको मिटाकर उसकी असलियतको भी गँवा देता है । इन्हीं त्रुटियोंके कारण अमृतसरमें अब कोई चार पाँच वर्षसे अच्छे व्यापारी

* नापा = नाफा (फारसी) = नाफ़ (नाभि) का, नाभिवाला ।
—रा० गौ०

इसे नहीं खरीदते। हाँ, नकली कस्तूरी बेंचनेवाले इसे खरीदकर इससे काफी लाभ उठाते हैं।

हाँ, एक बात और भी पाठकोंको ध्यानमें रखनी चाहिए कि तिब्बती कस्तूरी जब नापेसे निकाली जाती है तो उसका वर्ण कत्थई होता है किन्तु उक्त कस्तूरीको जब नापेसे निकाल लें तो उसपर प्रकाश और हवाका काफी प्रभाव पड़ता रहता है। इस कारण एक तो वह मृदु और कत्थई वर्णकी कस्तूरी सूखती चली जाती है दूसरे उसका वर्ण भी श्याम होता चला जाता है। हमने नीली शीशियोंमें भी कस्तूरीको रखकर देखा है, उसमें भी श्यामता पड़ती है। परन्तु अधिक देरमें। इससे ज्ञात हुआ कि इसके वर्णमें प्रकाशद्वारा ही यह परिवर्तन आता है।

कृत्रिम नापे और कस्तूरी कैसे बनते हैं

(१) जो व्यक्ति कस्तूरी मृगका शिकार करते हैं उस मृगकी हाथ-पैरकी कोहनीका चर्म गोलाकार काटकर उसमें उसी समय उस मृगके रक्तमें दानेदार काली मिट्टी जो पहिलेसे बनायी हुई उनके पास होती है, भरकर उसे धागेसे खूब कसकर बाँध देते हैं। कोई-कोई उसी समय यत्किञ्चित् नाभेसे कस्तूरी निकालकर वह भी उक्त कृत्रिम नापेके मुखपर रख देते हैं और बँधा हुआ चर्मभाग इस जोरसे अन्दर दबाते हैं कि उसका कुछ भी हिस्सा बाहर निकला दिखाई नहीं देता। बस, उसको अनजान व्यक्तियोंके हाथ बेचकर उन्हें वह ठग लेते हैं।

(२) अमृतसरसे यह नापे बाहरको बेंचनेके लिये नहीं जाते। प्रत्युत यहाँके व्यापारी खुली हुई कस्तूरी कृत्रिम और मिलावटवाली ही अधिक बेंचते हैं और उसको वह निम्नलिखित रीतिपर तय्यार करते हैं।

जुन्दवेदस्तर नामक प्राणिज द्रव्य जो ऊदबिलावके वृषण होते हैं उन वृषणोंके अन्दरके भागको सुखाकर चूर्ण कर लेते हैं। वह हलका कपिलवर्णका होता है। उसको रंगकर कत्थई बना लेते हैं और उसको लैनोलीनके मिश्रणसे साधारणतः मृदु करके निम्नलिखित कृत्रिम कस्तूरी Musk ambrette, Musk ketone आदि छः सात प्रकारके कस्तूरी गन्ध द्रव्योंमेंसे कोई उचित मात्रामें मिलाकर उसे कस्तूरीके नामसे बेंचते हैं।

(३) कुछ व्यक्ति जुन्दवेदस्तरको तय्यार करके उसमें कश्मीरी कस्तूरी मिलाकर उसे असली कस्तूरीके नामसे बेंच लेते हैं। यह दोनों प्रकारकी कस्तूरी अमृतसरसे अधिक बाहरको जाती है।

कस्तूरीकी परीक्षा

यद्यपि शास्त्रमें लिखा है कि—

करतलजलमध्ये स्थापनीयात् महद्भिः
पुनरपि तदवस्थां चिन्तनीयं मुहूर्त्तम्।
यदि भवति स रक्तं तज्जलं पीतवर्णं
न भवति मृगनाभेर्कृत्रिमोऽयं विकारः॥

इस विधिकी परीक्षासे जुन्दवेदस्तरकी कस्तुरीकी कृत्रिमताका कोई पता नहीं चलता। सम्भव है पूर्वकालमें केवल मृगके रक्तको जमाकर उसकी उससमय कृत्रिम कस्तूरी बनाते हों जिस समय यह परीक्षा ठीक उतरी हो। कालचक्र प्रभावसे नयी-नयी चीजें सामने आयीं, नये-नये बनानेके विधि-विधान निकलने लगे। ऐसी स्थितिमें वह हजारों वर्ष पूर्वकी किसी एक प्रकारकी कृत्रिम कस्तूरीके लिये दी गयी परीक्षा क्या कभी पूर्ण उतर सकती है?

इस समय तो सबसे उत्तम परीक्षा कस्तूरीको खाकर ही की जाती है। असली कस्तूरी विशेष-गन्धपूर्ण होती है तथा मुँहमें डालते ही वह विशेष प्रकारकी कटुता तथा मदपूर्ण गन्धसे मुँहको भर देती है जिससे चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। जुन्दवेस्तरकी बनी कस्तूरी स्वादरहित, फीकी कुछ दाँतोंको चिपकनेवाली गन्धरहित या कुछ मन्द गन्धयुक्त होती है। इसकी यह गन्ध भी कुछ देरमें ही जाती रहती है। असली कस्तूरीको हाथकी अँगुलीसे मला जाय तो दो चार घंटे उसकी गन्ध दूर नहीं होती।

इससे भिन्न एक दो व्यक्ति किसी और पदार्थसे भी कृत्रिम कस्तूरी तय्यार करते हैं जिसके भेदका अभीतक पूरा पता नहीं लगा।

केसर

केसर औषधमें उपयोगित होनेवाली प्राचीन वस्तु है। इससे भिन्न धार्मिक और तान्त्रिक कल्पमें भी काम आती है। इसकी उत्पत्ति सब जगह नहीं होती। पृथ्वीमण्डलके

कुछ ही भागको यह गौरव मिला है कि केसर जैसी महान् गुणकारी द्रव्यको उत्पन्न करें। उनमेंसे भारतमें काश्मीर कष्टवार ही इस योग्य सिद्ध हुए। विदेशमें इसके लिये ईरान तथा स्पेनका कुछ भाग है। चीनके भी कुछ भागमें होता है।

केसर क्या चीज है ?

केसर एक अत्यन्त छोटे क्षुपके फूलका केसर भाग अर्थात् पुष्पके मध्यकी वह पतली पतली·तुरियाँ हैं जिनपर पुंसपराग और रजःपराग सन्तत्योत्पादक सत्ता होती है। इसकी तुरी नीचे मोटी, चिपटी और नोककी ओर पतली होती चली जाती है। प्रत्येक तुरी दो वर्णकी होती है। केसर तुरीका मोटा भाग गहरा रक्त वर्ण होता है। और उसकी फुनगीका भाग, जो बारीक सूत सा होता है, पीला होता है। जिस समय केसरको पुष्पसे भिन्न करते हैं उस समय उसका अग्रभाग जो पीला होता है साथमें रहता है। सूखनेपर वह अत्यन्त पतला होकर टूट जाता है और प्रायः रक्तभागसे भिन्न हो जाता है। मोगरा केसरमें इस भागको चुनचुनकर निकाल देते हैं, केवल तुरी भागको रहने देते हैं। लच्छा केसरमें उक्त आगेका पीला भाग भी विद्यमान होता है।

उत्पत्तिका समय

इसकी फसल इधर जेठ, असाढ़ उधर आश्विन कार्त्तिकमें होती है। अर्थात् केसरका क्षुप वर्षमें दो बार पुष्पित होता है। इनमें आश्विन-कार्त्तिकका केसर वर्णमें तथा गुणोंमें अच्छा होता है।

देश-भेदसे केसरमें विभेद

यद्यपि केसरका क्षुप सब स्थानोंमें एक ही जाति एक ही वर्गका पाया जाता है तथापि देश-काल-परिस्थिति-प्रभावसे, पुष्प और केसरके आकारमें बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है। वह निम्न है।

कश्मीरी केसरके तुरीकी लम्बाई सबसे कम होती है। कष्टवार, महवारके केसरकी तुरी उससे कुछ बड़ी अर्थात् सवाई के करीब होती है। इससे बड़ी तुरी ईरानीकी और उससे बड़ी तुरी स्पेनके केसरकी होती है। स्पेनके केसरकी तुरी कश्मीरी केसरकी तुरीसे दोगुनीतक लम्बी होती है।

इससे भिन्न कश्मीरी केसरका वर्ण अधिक गहरा होता है। इसी कारणसे इसमें कुछ श्यामता आ जाती है। गुणोंमें भी यह अन्य केसरोंकी अपेक्षा अधिक सिद्ध हुआ है। जितना अधिक केसरीन नामक तत्व कश्मीर केसरमें पाया गया है, उतना अन्य केसरमें नहीं। केसरसे निकाली हुई केसरीन नामक तत्व ही ऐसी चीज है जिसके कारण केसरमें अनेक गुण देखे जाते हैं।

असली केसरकी तय्यारी

केसर जिस रूपमें क्षुपसे उतर कर आता है उसी रूपमें नहीं बेचा जाता बल्कि इसको कई भाँतिसे साफ किया और बनाया जाता है। जिसको केसर मोगराके नामसे सम्बोधित करते हैं, वह वास्तवमें केसरके परागका निचला भाग होता है जो पुष्पमुण्डपर लगा होता है। इसके आगेके भागको सूखनेपर झाड़कर अलग कर देते हैं। और अत्यन्त साफ करके इसे विक्रयके लिये बाजारमें भेजते हैं। लच्छा केसरको भी लम्बाईमें एकत्र करके उसपर धागा लपेटकर तुरीको सुरक्षित कर बाँध देते हैं। इस प्रकार उसे उसी रूपमें बेंच देते हैं। प्रायः ईरानी केसर इसी रूपमें बँधा हुआ जाता है। इसे लच्छा या गुच्छा केसर कहते हैं। कष्टवारसे भी थोड़ा बहुत लच्छा केसर आता है परन्तु वह लोग इसको बिना बाँधे ही इसी प्रकार एकत्र कर लेते हैं और इसी रूपमें बेंच देते हैं।

चीनवाले इस प्रकारके केसर नहीं भेजते, वह केसरपर क्षार आदि कई अन्य द्रव्य चढ़ाकर केसरके भारको बढ़ा देते हैं।

वह भार क्यों बढ़ाते हैं ?

यदि वह ऐसा न करें तो उनका केसर देशी केसरकी अपेक्षा महँगा पड़े। उनका माल देशीकी होड़में ठहर नहीं सकता। इसीलिये एक पौण्ड केसरपर एक पौण्डसे लेकर दो पौण्डतक क्षार द्रव्योंका ऐसा कोट चढ़ाते हैं कि जिससे केसरके वर्णमें तो कोई अन्तर नहीं आता। परन्तु उसका वजन बहुत बढ़ जाता है। इसीलिये वह देशी केसरकी अपेक्षा बहुत सस्ता बेंचकर समस्त व्यापारी मण्डलपर अपने केसरका आधिपत्य जमा बैठे हैं।

ऊपरी चमक-दमकके साथ रक्षा

वार्निश

(डा० सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, एफ़० आइ० आई० सी०)

हमारे दैनिक व्यवहारकी चीज़ोंमें वार्निशका भी एक मुख्य स्थान है। मेज़, कुर्सी, अलमारी, किवाड़ों, पलंगोंके पावे और कमरेकी सजावटकी अन्य वस्तुओंकी शोभा इस वार्निशके कारण ही होती है, क़लम और पेन्सिलोंकी लकड़ीपर भी वार्निश लगी होती है।

वार्निश और पेण्टमें भेद है। पेंटका व्यवहार तरह-तरहके रंग देनेमें होता है और ये पेंट बहुधा अकार्बनिक पदार्थ होते हैं। इनका वर्णन हम फिर कभी करेंगे। वस्तुतः वार्निश, लेकर्स (Lacquers) इनेमल (Enamel) और पेण्टों (Paints) में थोड़ा ही थोड़ा अन्तर है। इन सब पदार्थोंके दो उपयोग हैं, एक तो पदार्थोंकी वायु, जल, कीटाणु आदि शत्रुओंसे रक्षा करना और दूसरा, पदार्थोंको शोभा देना।

विलायती और देसी केसरकी परीक्षा

देशी केसरकी एक दो तुरी मुँहमें डालते ही कुछ कटुताके साथ वह अपनी गन्ध और रंग देने लग जाता है। जिस विलायती केसरपर क्षार चढ़ा होता है उसे मुँहमें डालते हैं तो उसका स्वाद क्षारयुक्त कटु लगता है, फिर धीरे-धीरे तुरी फूल उठती है। केसर स्वादकी परीक्षासे अच्छी तरह पहचाना जाता है।

नकली केसर

असली केसर महँगी परन्तु बहुत उपयोगी वस्तु है। इसीलिये नक्कालोंने इसकी अधिक माँग देखकर नकली बनानेकी ठानी। हिन्दोस्तानमें सर्वप्रथम कश्मीरमें इसको नकली बनाकर बेंचनेका प्रयत्न किया गया। कुछ व्यक्ति सर्वप्रथम गुलकेसरी नामक पुष्पकी तुरियोंको निकालकर केसरमें मिलाकर बेंचते रहे। पश्चात् एक और पुष्पकी तुरी जो वर्णमें पीली होती है तथा उसकी पँखड़ी भी दलदार पीली और लाल होती है, उसपर कुछ रंग चढ़ाकर उसे सर्वप्रथम नकली केसरके स्थानपर बेंचने लगे। तत्पश्चात् अमृतसरके व्यापारी उक्त फूल तथा मक्केकी जटासे (जो फलपर लगी होती हैं) रंगकर नकली केसर बनाने लगे। पश्चात् कुछ नक्काल स्यालकोटी कागजको केसरी रंगसे रंगकर उसे सिगरेटका तम्बाकू काटनेकी मशीन मँगाकर उससे तिरछा काटकर हूबहू केसर जैसी नकली तुरी तय्यार करके बाजारमें ले आये। यह कागजका केसर इतना अच्छा रूपरंगमें बना कि असली केसरमें मिला देनेपर सिवाय सूक्ष्मवीक्षण यन्त्रके यों देखकर पहिचाना ही नहीं जा सकता। यह केसर असली केसरमें भी काफी मिलने लगा, तथा स्वतन्त्र नकलीके नामसे भी काफी बिकने लगा।

इस नकली और असली केसरकी पहिचान

नकली और असली दोनों केसर चाहे मिले हों या अलग-अलग हों, इनकी तुरियाँ हथेलीपर रखकर उसपर पानी डालो और जब वह कुछ देरमें भींग जाँय तो उसे पोले पोले अँगुलीसे मलो। कागज पानीमें घुल जायगा। असली केसरकी तुरी इस प्रकारकी रगड़से न तो घुलेगी और न रंगरहित होगी, कागजका रंग भी जाता रहता है तथा इसकी लुगदी बन जाती है। स्वादसे भी इन दोनोंकी अच्छी पहिचान हो जाती है। नकली तुरीका स्वाद रंगकी तीक्ष्ण कटुता लिये गंधरहित होता है। असलीकी कटुता और गन्ध एक साथ ही प्रतीत होती है। इसकी कटुता भी एक विशेष प्रकारकी चरपराहट लिये होती है। (क्रमशः)

सूख जानेवाला अलसीका तेल

वार्निश, पेण्ट या इनेमल इन तीनोंके लिये अलसीका तेल बड़ा उपयोगी माना जाता है, वस्तुतः अधिकतर अन्य-तैलोंमेंसे वह काम सिद्ध न होगा जो कि इस अलसीके तैलसे सिद्ध हो सकता है। यह तैल पीत-भूरे रंगका द्रव पदार्थ है जो अलसीके बीजोंमेंसे निकाला जाता है। इसका व्यवहार तैल-पट (oil-cloth) और नरम साबुन बनानेमें भी किया जाता है, अतः व्यापारकी दृष्टिसे इस तैलका बड़ा ही उपयोग है। अन्य तैलोंके समान यह भी ग्लैसरीन (मधुरिन) और मज्जिकाम्लोंका सम्मेलन है। इसमेंसे चार अम्ल, विशेषतया प्राप्त होते हैं—

५८% समलिनोलेनिकाम्ल (isolinolenic acid)
१३% लिनोलेनिकाम्ल (linolenic acid)
१३% लिनोलिकाम्ल (linolic acid)
४% जैतूनिकाम्ल (oleic acid)

यह सब अम्ल असम्पृक्त हैं अतः वायुमंडलमेंसे ये शीघ्र ही ओषजन ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार ओषिदीकृत होकर यह तैल ठोस कड़ा हो जाता है और तैलकी तरलता मिट जाती है। वार्निश या पेण्टोंके लिये यह गुण बड़ा आवश्यक है। यदि मेज़पर वार्निश लगा देनेके उपरान्त तैल सूखकर कड़ा न पड़े, तो उस वार्निशकी उपयोगिता ही कुछ न रह जाय। सब तैल वायुमेंसे ओषजन इतनी आसानीसे नहीं ग्रहण कर सकते जितना कि अलसीका तैल, इसीलिये अलसीका तैल अन्य तैलोंकी अपेक्षा अधिक उपयोगी है।

ओषजन ग्रहण कर लेनेपर अलसीके तैलसे जो ठोस कड़ा पदार्थ मिलता है, उसका कोई निश्चित रासायनिक रूप नहीं है। ऊपर बताये गये चारों अम्ल भिन्न-भिन्न मात्राओंमें परिस्थितिके अनुसार ओषिदीकृत होंगे, अतः सूखनेपर जो पदार्थ मिलेगा वह भी कोई एक निश्चित पदार्थ न होगा। साधारणतया इस पदार्थको लिनोक्सिन (linoxyn) कहते हैं। वार्निशमें तो अलसीके तैलका ही व्यवहार होता है, पर अन्य कामोंमें जैसे तैलपट तैयार करनेमें ठोस अलसीका तैल अर्थात् लिनोक्सिनका भी उपयोग होता है, अतः यह पदार्थ भी अनेक विधियों-द्वारा व्यापारिक मात्रामें तैयार किया जाता है।

तापक्रम १८०°तक कर देनेसे अलसीका तैल और भी जल्दी ठोस पड़ जाता है, पर इसके ठोस होनेमें कुछ 'शोषक' (Driers) पदार्थ बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। ये पदार्थ तैलके ओषिदीकृत होनेमें उत्प्रेरकका काम करते हैं। धातुओंके ओषिद बहुत ही अच्छे शोषक हैं। कुछ शोषकोंके नाम ये हैं—

१. लिथार्ज (सीस ओषिद)

२. रेड लेड।

३. सीस-सिरकेत, या सीस लिनोलियेट, सीस ओलियेट।

४. मांगनीज़के टंकेत, कर्बनेत, द्विओषिद, गन्धेत, ओलियेत, काष्ठेत आदि लवण।

तारपीनका तैल मिला देनेसे भी अलसीका तैल जल्दी सूखने लगता है।

तैलकी वार्निश

अलसीके तैलमें तरह-तरहकी रालें (resin) मिला देनेसे वार्निश तैयार हो जाती है। पर ये रालें साधारणतया तैलमें नहीं घुलती हैं। अतः रालको ताँबेकी डेगचियोंमें गरम करके पिघला लेते हैं। तैलको अलग २६०°के तापक्रमतक गरम करते हैं और फिर खूब तेजीसे चलाते हुए दोनोंको मिला देते हैं। तापक्रम इस समय भी २६०° का ही रखना चाहिये, जबतक दोनोंके मिश्रणसे स्वच्छ वार्निश न तैयार हो जाय। इसको फिर ठंडा कर लेते हैं। इस तरह बड़ी गाढ़ी वार्निश तैयार हो जाती है। इसमें इच्छानुसार तारपीनका तैल मिलाकर बन्द बर्तनोंमें बहुत समय तकके लिये रखा जा सकता है। जब कभी वार्निशको और तरल करना हो, तारपीनके तैलके साथ ही मिलाकर घोटना चाहिये।

वार्निश तैयार करनेमें विशेष चतुराई इस बातमें है कि गरम करके राल कितनी स्वच्छतासे पिघलायी जा सकती है। रालके ठीक द्रव हो जानेपर ही यह तैलसे हिलमिल सकेगी। बिना पिघले हुए रालके टुकड़े वार्निशको खराब कर देंगे,

और जिस चीज़पर वार्निश लगायी जायगी उसपर "फूला" उठ आवेंगे।

रालोंको पिघलाते समय और तैलको साथ मिलाते समय तापक्रमका भी ध्यान रखना आवश्यक है। यदि तापक्रम कम हो जायगा, तो राल ठीक पिघलेगी नहीं और मिलाते समय ढोके बँध जावेंगे। पर यदि तापक्रम बहुत अधिक हो जाय तो वार्निश काली पड़कर खराब हो जावेगी। वार्निशमें हलका पीलापन होना ही उचित है।

कुछ मुख्य रालें

वार्निशके लिये अनेक रालोंका व्यवहार होता है। राल और गोंद दोनों ही पेड़ों या पौधोंसे निकले हुए पदार्थ हैं। पर गोंद तो पानीमें अधिकांश घुल जाते हैं, और घुलकर चिपचिपाहटवाला पदार्थ देते हैं, इनके जलीय घोलमें मद्य डाल देनेसे अवक्षेप आ जाता है पर इसके विपरीत रालें पानीमें अनघुल हैं, पर मद्य, बानजावीन, तारपीन आदि कार्बनिक द्रवोंमें ये घुल जाती है। इनमें एक खास चमक और दरदरापन होता है। कुछ रालें, गरम करके जबतक पिघला न ली जायँ कार्बनिक द्रवोंमें भी नहीं घुलती हैं। मुख्य रालें ये हैं।

१. एम्बर राल—यह अति प्रसिद्ध सामान्य राल है। यह समुद्रके किनारे, या बहुत सी खानोंके पास भी पायी जाती है। पर देवदारकी जातिके वृक्षोंमेंसे किसी समय अधिक निकलती थी। अब तो असली एम्बर-राल दुष्प्राप्य हो गयी है, और मिलती भी है तो अन्य घटिया रालोंके साथ मिली हुई।

२. बैनजोइन राल—इसको लोग कभी-कभी गोंद भी समझ बैठते हैं पर ऊपर दिये गये लक्षणोंके हिसाबसे यह राल ही है। सुमन्त्राद्वीपमें पाये जानेवाले "स्टाइरेक्स बैनजोइन" वृक्षमेंसे प्रतिवृक्ष प्रतिवर्ष १½ सेरके हिसाबसे निकलती है। पहले कुछ वर्षोंमें तो पीली नरम राल निकलती है पर बादको इसमेंसे कड़ी और काली राल निकलने लगती है जो वार्निशके अयोग्य है। जगह-जगहकी बैनजोइन राल पृथक् पृथक् गुणोंवाली है। स्यामकी राल दरदरी और तीव्र गन्धवाली होती है।

३. कोपल राल—कई तरहकी कोपल रालें बिकने आती हैं, और वार्निशोंमें इनका ही अधिक उपयोग होता है। मेनीला-कोपल नरम होती है। सीरा-लेओने (Sierra Leone) और (Pebble) पेबेलकी कोपलें सख्त और चमकदार होती हैं। जावाकी कोपल दूधिया रंगकी होती है।

४. डामर राल—भारत और ईस्ट-इंडीजमें डामर राल विशेष पायी जाती हैं।

५. ड्रैगन्स ब्लड (राक्षसी रुधिर)—जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है इस रालमें लाल रंग होता है। पूर्वीय एशियामें प्राप्त ड्रैगन-वृक्षमे यह पायी जाती है, और वार्निशोंको लालरंग देनेमें इसका उपयोग किया जाता है। **गैम्बोज** राल भी रंग देनेके काममें लायी जाती है। इसमें हलका पीला रंग होता है।

६. लाख—सबसे अधिक प्रसिद्ध राल तो लाख है। तरह-तरहसे शुद्धकी गयी लाखें व्यवहारमें आती हैं। अन्य रालों और लाखमें मुख्य भेद तो इतना ही है कि अन्य रालें तो पेड़ोंसे प्राप्त होती हैं पर लाख विशेष कीड़ोंसे जिनका नाम टकेरडिया-लैक्का (tachardia lacca) है मिलती है। लाखमेंसे रंग अलग करके शुद्धतासे धोकर बादको पिघला देनेसे शैलाक अर्थात् चपड़ा बन जाता है। इसका उपयोग वार्निशोंमें बहुत होता है।

७. मैस्टिक राल—भूमध्यसागरके तटपर होनेवाले लेण्टिस्क पेड़ोंमेंसे यह राल निकलती है। इसका उपयोग चित्रोंकी वार्निश तैयार करनेमें किया जाता है।

इनेमेल

यह भी एक प्रकारकी तैलवार्निश है जिनमें दस्त-ओषिद (जिंक ऑक्साइड) या वेनेशियन रेड, घोंटकर मिला दिया जाता है। एस्फाल्ट मिलाकर काला इनेमेल तैयार किया जाता है।

स्पिरिट वार्निश

शुद्ध चपड़ा इस कामके लिये बड़ा उपयोगी है। बाज़ारमें चपड़ा काफी सस्ता मिलता भी है। चपड़ेको मिथिलेटेड स्पिरिटमें भिगोकर कुछ घंटे रख छोड़ना चाहिये।

प्राचीनका अर्वाचीनसे समन्वयकी चेष्टा

त्रिदोष और विज्ञान

[वैद्यवर श्रीगणपतिचन्द्रकेला, अलीगढ़]

त्रिदोष आयुर्वेदका आधार है। शरीरका समस्त व्यापार, प्रत्येक विकार और यावन्मात्र चराचर तथा द्रव्यौषधोंका विभाजन, वात, पित्त, कफ, इनके आधारपर ही वर्णित है। १०–२० या १००–२०० वर्ष ही नहीं सहस्रों और युग-युगांतरोंसे इसी सिद्धांतका अटल अनुसरण करते हुए वैद्यवरोंने कोटि कोटि प्राणियोंका जीवन और स्वास्थ्य बचाया है। आज भी इस पद्धतिके अनुयायी चमत्कार दिखा रहे हैं।

यूनानी चिकित्साके सिद्धांत भी लगभग इसीके अनुवर्त्ती हैं। सौदा, सफ़रा और बलग़मका राज्य उस पद्धतिमें भी अखण्ड है। साथ ही उस प्रणालीकी अन्य बातें भी मिलती जुलती ही हैं।

डाक्टरी चिकित्सामें त्रिदोष-वादको क्या आसन प्राप्त है यह बात विद्वन्मण्डलीमें चल रही है। कुछ लोगोंका कहना है—"चिकित्साके मूल तत्व उस पद्धतिमें भी यही हैं।" दूसरे विद्वानोंकी धारणा इसके विपरीत है। उनमें कुछ तो संयमपूर्वक विचार कर रहे हैं, और कुछ सज्जन अनायास ही घोषणा कर देते हैं कि "त्रिदोषवाद निराधार है, अवैज्ञानिक और अताई है, शरीरका आधार न वातपर है न पित्त या कफपर, और शास्त्रोंमें इनके जो गुण कर्म वर्णित हैं वे भी कहीं देखनेमें नहीं आते।"

संभव है कि उनकी यह धारणा साधार हो और यह भी संभव है कि वात, पित्त, कफ क्या है, इसतक उनकी न अन्तर्दृष्टि पहुँची हो, न यांत्रिक। अतः यहाँ संक्षेपमें इसका कुछ विचार करेंगे।

शरीरयन्त्र बहुत ही पेंचीदा है इसमें संदेह नहीं। इसका भार संभालने और दृढ़ रखनेको हड्डियाँ हैं। शरीरको सुन्दर बनानेको मांस-पेशियाँ हैं जिनके सिकुड़ने और फैलनेसे तमाम अङ्ग गति करते हैं। इन पेशियोंके समान ही त्वचा आदि कई अन्य चीजें भी मिलकर यह शरीर बना है। और वे सब बहुत सूक्ष्म, छोटी-बड़ी सेलों Cells जीवकोषोंसे बनी हुई हैं। इन सेलोंका कार्य–क्षम रहना ही 'जीवन' है और उनका पोषण यथा-विधि होते रहना ही 'देह धारण' है। शरीरकी 'संज्ञा-' और 'क्रिया'–वहा नाड़ियाँ (Nerves) इन सेलोंको चलाती हुई ही सब कार्य कराती हैं। कहीं इनसे विचार कराती हैं, कहीं दया या क्रोध उपजवाती हैं। कहीं आहार ग्रहण कराती और कहीं मलविसर्जन कराती हैं।

ऐसा करनेसे यह स्पिरिटमें घुल जावेगा। जिस लकड़ीपर वार्निश करनी हो उसे ग्लासपेपर या सैण्डपेपर, बलुआ कागज, या रेगमालसे रगड़कर चिकना कर लो और फिर स्पिरिट-में घुले हुए चपड़ेसे इसपर वार्निश कर दो। स्पिरिट उड़न-शील है, अतः यह फौरन सूख जायगी और अच्छी वार्निश हो जावेगी। डाटदार या ढक्कनदार बर्तनमें घोल तैयार होगा। आगसे गरम करनेमें आग लग जानेकी आशंका है।

नाइट्रो सेल्यूलोज़ वार्निश

इस वार्निश या (Lacquer) लेकरका उपयोग लोहेकी चीजोंपर वार्निश करनेमें होता है जिनमें सोखने-वाले छेदोंका अभाव होता है। नाइट्रो-सेल्यूलोज़को (एमाइल एसीटेट) केलील सिरकेमें घोलते हैं और उचित रंग भी डाल देते हैं।

पानीकी वार्निश

गोंद या सरेस पानीमें घोलकर जो वार्निश तैयार की जायगी उसे पानीकी वार्निश कहेंगे। यह पानीके असरको नहीं सह सकेगी, यद्यपि वायुके असरसे पदार्थ सुरक्षित रहेगा। पानीमें तैयार की हुई सरेसकी वार्निशमें यदि लाल-पोटाश (पोटाश डाइक्रोमेट) लाल कसीस मिला दिया जाय, तो इस वार्निशपर पानीका अधिक असर न होगा।

इन सेलोंका पालन और शोधन करनेवाला "रक्त" है। यह पार्सल-ऐक्सप्रैसकी तरह समस्त शरीरमें हर समय दौड़ता रहता है—और दो प्रधान कार्य इसके द्वारा होते हैं—एक भाग "लसीका"के रूपमें समस्त सेलोंको तत्व पहुँचाता, उनके मल हरकर चैन देता और शरीरके रोग-विषोंकी ज्वाला शांत करता है। दूसरा भाग रक्तकी ऊष्माके रूपमें प्रत्येक अङ्गको न्यूनाधिक गर्म रखता और जोश देता है। ओषजनसे रक्तको मिलाती हुई यह ऊष्मा ही सब शरीरको क्रियाशील बनाये रखती है, यही यकृतमें रक्तमल पित्तके साथ आकर भोजन पचाती है—और यही ऊष्मा त्वचातक पहुँच शरीर ठंडा हो जानेसे बचाती है। इतनी बातें तो सब लोग देखते, सुनते समझते और मानते ही हैं।

अब यह विचारना है कि शरीरको चलाने, तपाने और चैन देनेवाले इन तीन प्रधान आधारोंके—नाड़ी मण्डल, रक्त-रस और लसीकाके—ज्ञानसे आर्षनिर्देश, वात, पित्त, कफको समझनेमें कहाँतक सहायता मिलती है?

वातके गुण कर्मोंमें वर्णन आता है कि—"यह प्रत्येक प्रकारकी शारीरिक क्रियाओंका प्रवर्त्तक है, उत्कर्ष शक्तिका नियन्ता है, मानसिक शक्तियोंका प्रणेता है, सारी इन्द्रियोंका द्योतक है, इन्द्रियजन्य विषयका मनसे संबंध करानेवाला है, शरीरस्थ धातुओंको क्रममें बाँधनेवाला है, शरीरके संधि बंधनोंको ताने हुए है, वाणीका देनेवाला है अर्थात् बिना वायुके हम शब्दोच्चारण नहीं कर सकते हैं। शब्द और स्पर्श यह दोनों उसकी प्रकृति हैं, श्रोत्र और स्पर्श इसके मूल हैं अर्थात् इसका बोध होता है। हर्ष और उत्साह इसकी योनि हैं।"

वैज्ञानिक शरीरशास्त्रमें—Nervous system नर्वससिस्टम नाड़ीमण्डलमें वे अङ्ग और क्रियायें आती हैं जहाँसे समस्त शरीरकी क्रिया प्रवर्त्तित होती हैं (जैसे Corpus striatum कौर्पस स्ट्रायटम), जहाँसे मानसिक शक्ति उपजती हैं (जैसे—gyrus चक्रांग-समूह), जहाँसे सारी इन्द्रियाँ अर्थात् ज्ञानवाहिनी और कर्मकारिणी शक्तियाँ प्रगट होती हैं (जैसे Nerve Centres नाड़ीकेन्द्र) और जो इन्द्रियजन्य विषयोंका मन वा मस्तिष्कको बोध कराते हैं (जैसे Pthalamus opticus थैलेमस औप्टीकस आदि); जो शरीरस्थ धातुओंको क्रममें बाँधते हैं; हृदय आदि चलानेवाले नाड़ी-चक्र (जैसे Plexus प्लैक्सस); जो शरीरके संधि बन्धनोंको ताने हुए हैं, और वाणी उत्पन्न करते हैं (जैसे Vocal cords स्वर-रज्जु आदि सभी स्नायु-कंडराओंको कसने—ढीला करनेवाली nerves नाडियाँ)। स्पर्श-ज्ञान और उसी प्रकार श्रवण आदि ज्ञानोंकी वेदना यह नाड़ीमंडल ही अनुभव करता है। हर्ष और उत्साहसे इनमें शक्ति और स्फूर्त्ति आ जाती है, तथा उसके विपरीत निरंतर चिंता, शोक, भय, निराशासे क्षीणता (नर्वस डिप्रैशन) हो ही जाता है अर्थात् आजकल जिस इन्द्रिय व्यापारकी मस्तिष्क और नाड़ीमण्डलके नामसे लिखा जाता है वह आयुर्वेदमें "वात" के गुण कर्मोंमें है।

इतना ही नहीं, अकुपित "वायु अग्निको बढ़ानेवाला है, दोषोंको सुखानेवाला है, मलको बाहर निकलनेवाला है, शरीरके स्थूल और सूक्ष्म स्रोतोंको स्वच्छ रखनेवाला है गर्भस्थ बालककी आकृतिको बनानेवाला है, आयुको स्थिर रखनेवाला है।"

शरीरको अग्नि अर्थात् ऊष्मा दो प्रकारसे मिलती है—वायुसे फेफड़ोंद्वारा और आहार रससे पाचन-क्रियाद्वारा और यह निर्विवाद है कि फेफड़ोंका संकोच-प्रसार तथा आँतोंकी जलौका जैसी गति (नर्वस सिस्टम) वात-संस्थान का ही काम है। प्रत्येक 'सेल' से दोष संचय करके हृदयमें ला चुकनेपर भी उन दोषोंका शोषण वायु फेफड़ेमें ही करती है—जिसका चलना नाड़ी मण्डलका कार्य है। ये ही गुद-संकोचनी पेशी (Sphincter ani) ही नलियोंको सिकोड़ या शिथिल करके मल निकालती हैं और ऐसे ही मूत्र-कफादि निकलते हैं। शरीरके संपूर्ण स्रोत जब रुद्ध होते हैं तब उनमेंसे बेचैनीकी संवेदना उठकर, उनका संचालन होकर साफ़ हो जाना इसी वात-संस्थानका काम है। गर्भमें बालक भी स्वस्थ मस्तिष्क और प्रसन्नेन्द्रिय रहनेसे ही स्वस्थ बनता है, अन्यथा हमारे मनोविकारोंके अनुसार ही आकृति बिगड़ना भी स्पष्ट ही है और ये प्रसन्नता या विषादके भावोंको लेजानेवाली वायु (नाडियाँ) ही हैं। इसकी उक्त क्रियाओंके बिना आयु स्थिर नहीं रह सकती, यह तो प्रकट ही है।

कुपित वायुके कार्य भी विचारणीय हैं—"तब यह अनेक व्याधियाँ खड़ी करता है, बल वर्ण और आयुको नष्ट कर देता है, मनको उन्मादित (उन्मत्त) करता है, इन्द्रियोंको नष्ट करता है, गर्भको गिरा देता है तथा उसकी बनती हुई आकृतिको बिगाड़ देता है और प्रसवकालमें अति विलंब करता है अर्थात् प्रसवको रोक देता है। रोगीपर भय, शोक, मोह, दीनता, प्रलापादि उपद्रव उत्पन्न कर देता है तथा (श्वास-प्रश्वासगति) प्राणोंका अवरोध करता है।" कहना नहीं होगा कि ये सब बातें, वात-संस्थानके विकारसे होती हैं जिसे आजकल वात-नाड़ीमण्डल या नर्वस-सिस्टम (Nervous system) कहते हैं।

प्रश्न यह रह जाता है कि "वायु तो वह हवा है जिसे हम श्वासमें लेते छोड़ते हैं, फिर यह तो दूसरीही वस्तु ठहरी।" परन्तु यह हमारे विचारनेकी कमी है। 'वायु' शब्द यौगिक है—उसके अर्थ—जिन जिन द्रव्योंमें न्यूनाधिक घटें वे सब वायु कहलाते हैं। जैसे ओषजन और नोषजनका शुद्ध मिश्रण भी वायु है; और किन्ही अन्य गैसोंका भी वायु जैसा स्पर्श-गुणवाला अतरल मिश्रण वायु या वायव्य ही कहलाता है। इसी प्रकार स्पर्श-जन्य एवं सब ज्ञानोंको वहन करनेवाली शक्ति वायु (वात) ही कही गयी और उसका तमाम संस्थान 'वात संस्थान' या संक्षेपमें 'वात' कहलाया, यह स्वाभाविक ही है। वात-नाड़ियोंका संबंध भी प्रायः इतना घनिष्ट है कि एक स्थानकी वात (नाड़ियां) कुपित (विकृत) होनेसे सब शरीरमें संवेदना आन्दोलन और प्रभाव होने लगता है। इसीसे अलग अलग नाड़ियोंका नाम न रख कर किसी भी वेदनाको वातप्रकोप (नर्वस डिसऔर्डर Nervous disorder) कहा जासकता है। इसके परिणामसे छटपटाना, भ्रम देखना या भ्रांत सुनना, उन्माद और प्रलाप होना स्वाभाविक ही है। अधिक असर हो तो गर्भधारिणी नसें शिथिल होकर गर्भस्राव आदि हो जाना भी संभव है। अतएव हमारे नर्वससिस्टमके समस्त कार्य 'वात' के अन्तर्गत हुए। कुछ और भी काम हैं जिन्हें हमारे वैज्ञानिक आविष्कार आगे चलकर प्रकट करेंगे जो 'वात' के अधीन ही हैं।

दूसरी चीज है 'पित्त' जिसके गुण कर्मोंमें आता है कि—"शरीर के अन्दर ताप वितरण करना, शीतसे रक्षा करना, अन्नादिकोंको पचाना, त्वचा आदिको रङ्गीन बनाना और नेत्रोंको दर्शन-क्षमता देना 'पित्त'का काम है। "साधारणतः तो जो हरे पीले द्रव वमनमें निकलते हैं उन्हींको पित्त कहते हैं और शायद वह पाचनमें भी सहायता देता हो पर उपरोक्त सब काम तो उसी पित्तके नहीं मालूम पड़ते।

रक्त समस्त शरीरमें प्रतिक्षण सञ्चार करता है और उसके पीले तरल रक्तरस Serum सीरममें श्वास-वायुसे ली हुई ओषजन रहती है। यकृतमें सञ्चित मधुर तत्वसे जो ऊष्मा पैदा हुई हो वह भी 'कोलेस्टरीन' Kolesterine जैसे गर्मरसके रूपमें इसी (Serum) रक्तरसमें रहती है और सब शरीरमें पहुँचती है।

इसप्रकार 'रक्तरस' शरीरके प्रत्येक अणु और अङ्गको शक्तिमयी ऊष्मा पहुँचाता है। उनके दोषों (मल गैसों) को शोषण करवाता है। उपवृक्कोंका (Adrenalin ऐड्रिनेलिन) रस क्लोमका (Pancreatic juice) रस आदि उत्तेजक सभी रस इस 'सीरम'में मिलकर शरीरके भिन्न भिन्न अवयवोंको जोश देते हैं, बल उभारते हैं, निर्भय और निश्शङ्क बना देते हैं। इसी रसकी न्यूनतासे मनुष्य निस्तेज, निरुत्साह और शिथिल हो रहता है। यही ऊष्मा अन्य (Bile) रक्त-मलके साथ यकृतमें छँटकर-पक्वाशयमें आहाररस पचाती है और यही ऊष्मावाला 'पीताभ' तरल (Serum) नेत्रोंमें अक्षिगोलकके अन्दर रहता हुआ प्रकाश वहन करता है। त्वचा इसीसे ताप पाकर बाहरी शीतका सामना करती है, शीतकर विष-विकारोंको मारती रहती है, पसीनेके रूपमें इसका मल निकालती है और इसके रङ्गसे रंजित रहती है, इससे सिद्ध है कि आयुर्वेदमें 'पित्त'के जो गुण कर्म बतलाये हैं उनको आजकल हम रक्तरस और (Leucocytes) श्वेताणुओंके काम कहकर मानते हैं।

रक्तरसमें पीत वर्ण और ऊष्णता होनेके कारण 'पित्त'के स्वरूपसे बहुत मिलता है। रक्तरस समस्त शरीर-चारी होनेपर भी यकृत, प्लीहा, अक्षिगोलक, त्वचा और हृदयकी मांसपेशियोंमें अधिक ठहरता है, उधर यही पित्तके भी स्थान बताये हैं इसलिये शरीरके दूसरे प्रधान आधार रक्तरसपर, Serum सीरम और उसमें रहनेवाले श्वेताणु समूह

पर ध्यान देनेसे 'पित्त'को बहुत कुछ समझा जा सकता है।

रक्तरस Serum सीरमके अलावा रक्तमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु 'फाइब्रिन-जनक' रहती है जो शरीर भरमें जीव-कोष बनाने तथा उनकी टूट-फूट और क्षीणताको पुनः भरनेमें काम आती है। इससे समस्त शरीरका निर्माण और पालन होता कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। रक्तकी रेलमेंसे, यह फाइब्रिनजनक केशिकाओंकी दीवारमें होकर रिसता और जीवकोषोंके आसपास भर जाता है। यह Lymph लिम्फ अर्थात् "लसीका" कहलाता है। इस लसीकामें डूबी हुई 'सेलें' अपनी आवश्यक सामग्री ग्रहण कर लेती हैं और उससे नई सेलोंका निर्माण करती हैं। अपना मल-विकार वे इसी लसीकामें विसर्जन करती हैं जिसे लेकर यह अलग नलियोंसे लौटता हुआ महालसीका-वहाद्वारा ग्रीवाके पास रक्तमें आ मिलता है। यह श्वेत पिच्छिल लसीका रक्तके अन्तर्गत रक्तकणोंका सहयोग लेते हुए—शरीरको नवीन सामग्री देता है, बल बनाये रखता है, हृदयकी पेशियोंको श्रम-रहित (तर्पित) करता है, मुख आमाशय और अंत्र आदिमें लाला (Saliva) और (Gastric juice) जठररसमें रहकर गर्म भोजन तथा पाचक पित्तकी ऊष्मासे इन अङ्गोंकी रक्षा करता है। मस्तिष्कमें सबसे अधिक प्रवीण जीवाणुओंका निर्माण पोषण और श्रमहरण करता है। और सब सन्धिस्थलोंमें भी इसका संचय रहता है। शरीरपर किसी भी विषका आक्रमण हो, कोई जीवजन्तु काँटे या किसी फोड़ेपर हानिकारी वस्तु लग जावे तो उसका विष इसी लसीकाद्वारा शमन किया जाता है। तब इसपर अधिक कार्यभार आ पड़नेसे उनकी ग्रन्थियाँ सूज उठती हैं जिसे गिल्टी निकलना कहते हैं। कर्णमूलके नीचे तथा जाँघ और बगलके संधिस्थलोंमें ये ग्रंथियाँ (Lymphatic Glands लिम्फेटिक ग्लैंड्स) रहती हैं, और प्लेग, फोड़े या चोट आदिके कारण इनका सूजना सर्वविदित ही है। बस यह 'लिम्फ' (Lymph = लसीका) तथा उसके गुण-कर्म हमारे सामने श्लेष्म-चित्र चित्रित कर देते हैं और यह वास्तवमें है भी शरीरका एक प्रधान आधार।

रक्तरस (Serum=पित्त) और लसीका (Lymph= कफ) मिलकर ही रक्त बना है। अतः उसे पृथक्, चौथा दोष, माननेकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

तो क्या! जो हरा पीला द्रव वमनमें निकलता है उसका पित्तसे कोई सम्बन्ध नहीं है, या जो कफ खखारमें निकलता है वह कफ ही नहीं? ये प्रश्न और उठते हैं। बात यह है कि पित्तकी ऊष्मायुक्त जो 'कोलेस्टेरीन' आदि वस्तुएँ यकृत रक्तमेंसे छाँटकर अलग करता है वे (Gall-bladder = गौलब्लैडर) पित्ताशयमें संचित होती हैं। आहारपाचनके समय वे आहाररसमें आ मिलती हैं। आमाशय, पक्काशय या आँन्तोंकी अधिक उत्तेजनासे जब वे तत्व प्रतिलोम (विपरीतगामी) होकर मुखसे निकलते हैं तो तीव्र ऊष्माके कारण दाह आदि करते हैं। उनमें पित्त-का संयोग रहता ही है इसीसे उसे 'पित्त' कहते हैं।

इसी प्रकार फुफ्फुसमेंसे निकलनेवाले कफकी बात है। फुफ्फुस करोड़ों वायु-कोषोंका भण्डार है। प्रत्येक वायुकोषमें श्वास लेनेपर शुद्ध वायु जाती है जिसमें ओषजन अधिक होती है। उस (थैली) कोषकी दीवारमें रक्तकी, केशसे भी बारीक नलिकायें (Caplllaries=कैपीलेरीज), छायी रहती हैं। उन नलिकाओंकी दीवार बहुत सूक्ष्म छेदोंवाली झिल्लीकी बनी हुई है। रक्त जब उनमें होकर गुजरता है तब वायु-कोषमेंसे 'ओषजन' रक्तरसमें जा मिलती है और रक्तस्थित लसीकामेंसे कर्बन (कार्बन डायोक्साइड) वायुमें आ मिलती है जो शरीरकी सेलोंने मलरूप त्यागा था। रक्त तेजीसे दौड़े तो रक्त नलिकाकी दीवारोंमेंसे तरल लसीका नहीं रिसने पाता, मगर जब शीत या अन्य किसी विकारसे फुफ्फुसमें रक्त-सञ्चारका वेग कुछ भी मन्द पड़ता है तो रक्तमेंसे तरल, झिल्लीके पार, रिसने लगता है और वायुकोषमें आ जाता है। वहाँसे कर्बन द्वयोषिद युक्त वायु जब निःश्वासमें बाहर निकलती है तो वह श्लेष्मल लसीका भी बाहरको चलती है। निकलते-निकलते ज्यों-ज्यों अनेक वायु-कोषोंको नालियाँ आकर मिलाती हैं त्यों-त्यों उन सबसे, या उनमेंसे "रोगाक्रान्त" वायु-कोषोंसे, आता हुआ यह लसीका मिल मिलकर थक्कासा बन जाता है। न्यूनाधिकता और शरीरदशाके अनुसार वह पतला, झागदार या गाढ़ा गट्टासा बनकर श्वासनलियोंमें जमा होता और प्रयत्न करने पर बाहर निकल जाता है। यह लोकमें कफ कहा जाता

है और वास्तवमें है भी कफ, श्लेष्म-लसीकाका ही अंश, पर यह ख़ारिज किया हुआ वह भाग है जो अब शरीरोपयोगी नहीं, अपितु कार्यमें बाधा देनेवाला है। कुशल वैद्य उसका जितना अ-विकारी अंश पुनः पतला होकर रक्त नलियोंमें सोखा जा सके उसे पुनः रक्तमें वापिस करा दें, शेष निकाल दें, चाहे सब।

इस प्रकार वात-पित्त-कफका स्थूल रूप तो नर्वस सिस्टम, रक्तरस और लसीका सामने आया। परन्तु इनका सूक्ष्म रूप भी है। जैसे नेट्रम-म्यूर (नमक) या सिलिका (रेत) जैसी अत्यन्त हीनप्रभाव चीजोंकी सूक्ष्म-शक्ति होमियोपैथिक पद्धतिसे उभारनेपर, उनका प्रभाव बहुत विचित्र हो जाता है जो १-१ मासतक ठहरता है, वैसे ही प्रत्येक वस्तुमें स्थूल रूप और गुणके अलावा उसकी सूक्ष्म शक्तियाँ भी होती हैं और वे भी कम महत्व-की नहीं होती।

वातसंस्थानकी नाड़ियोंको हम आँखोंसे देख सकते हैं और उनमें विद्युत्-संचार करके पहिचान सकते हैं। रक्त-को ज़रा देर रखनेसे उसमेंसे पीला रक्तरस अलग निकाल सकते हैं और उसका विश्लेषण करके निश्चय भी कर सकते हैं। रक्त-रसके अलावा बचे लसीकासे शीघ्रही फाइब्रिनका थक्का जमते देख सकते हैं और जीवित शरीरमें भी पा सकते हैं। परंतु इन चीजोंके अन्दर जो सूक्ष्म-शक्तियाँ अन्तर्निहित हैं उन्हें देखने या अनुभव करनेवाले यंत्र अभी हमारे सामने नहीं हैं। यह अवश्य है। इन वात पित्त कफ की सूक्ष्म शक्तिके कार्योंमेंसे क्रमशः Metabolism (मैटाबोलिज़्म = शक्तिसंचार), Catabolism (कैटा-बोलिज़्म = विनाश) और Anabolism (ऐनाबोलिज़्म= रचना या निर्माण) ये सबकी जानकारीमें आ गये हैं।

शरीरके तन्तुओंका नवीन निर्माण और पालन करने-वाली प्रसादनी शक्ति, कफ अर्थात् 'ऐनाबोलिज़्म' है। उनका शोधन और निर्जीव या विकारी तत्वोंका विनाश होना पित्त अर्थात् 'कैटाबोलिज़्म' है और इन दोनोंका ही शासनकर्त्ता तत्व 'मैटाबोलिज़्म' 'वात' में हैं। कहा भी है—

'पित्तः पंगुः कफः पंगुः पङ्गवो मलधातवः"
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥

संक्षेपमें यहाँ इतना ही संकेत लिखा जा सका है। और अब जो त्रुटियाँ रह गयी हों उनकी सूचना और सुधार विद्व-द्वरोंकी कृपापर आश्रित है।

अबतक जिन्होंने नवीन वैज्ञानिक शोधोंपर विचार नहीं किया वे डाक्टर भी अपने रोगियोंकी चिकित्सा करते समय त्रितत्व ध्यानमें रखते ही थे—अर्थात् रोग और रोगी-की प्रकृति (Temperament) Nerves (नर्वस = वातिक) है, या Bilious (बिलियस = पैत्तिक) अथवा Phlegmatic (फ्लेगमेटिक = श्लेष्मिक)। पर तबतक वे त्रिदोषके स्थूलपरसे ही परिचित थे। आविष्कारोंने सिद्ध कर दिया है कि आकार और विचारसे भी रोगका सम्बन्ध अवश्य होता है। नर्वस प्रकृतिका व्यक्ति हिस्टीरिया, उन्माद, पक्षाघात आदिका अधिक आखेट होता है जो 'वात' रोग हैं। इसी प्रकार फ्लेगमैटिक प्रकृतिका रोगी मेदो-वृद्धि निर्बुद्धि आदि कफ रोगोंकी ओर झुकता है। इन बातोंका विचार नये ही क्या पुराने डाक्टरी ग्रन्थोंमें भी है। परन्तु अब तो यहाँतक जाना जा चुका है कि कुछ (gyrus = चक्राङ्गों) वातस्थानका औपरेशन करके मनुष्यके विचार बदले जा सकते हैं, पित्तरस (Adrenalin या Pancreatin) बढ़ाकर काम क्रोध और जोश उभारा जा सकता है, इसी प्रकार लसीकारोधक 'पिट्युइटरी' (Pituitary) आदि ग्रन्थियाँ प्रभावित करके मनुष्यको भारी-भरकम, थुलथुल, आलसी, पुरुषत्व-हीन, और शान्त भी बना सकते हैं जो कि कफ-वृद्धिके चिन्ह हैं। आशा है कि बढ़ते-बढ़ते विज्ञान-विटपकी यह शाखा त्रिदोष तरुवरसे ही आ मिलेगी और दोनों अद्वैत हो लोकहित करेंगे।

ईश्वर और ईथर

[स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, अमृतसर]

[शेषांश]

आधारता अखण्डताकी नाप
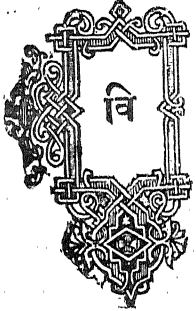
विश्वमें ईथरके आकर्षण-निराकरण-व्यापार देखे जाते हैं। विद्युतधाराके आसपासभी इसका अस्तित्व पाया जाता है। इसलिये ईथर नामक कोई बलशाली सत्ता है, ऐसा मानना पड़ता है। इससे भिन्न हम यह भी नित्य देखते हैं कि सूर्यसे धरतीतक प्रकाश और गर्मी आती रहती है। यह तो हुई नैसर्गिक बातें। मानव-प्राणीने इस समय अनाधारी (बेतार) समाचारोंके प्राप्त करनेका जो साधन ढूँढ़ निकाला है इसके अहर्निश उपयोगसे दिखाई देता है कि हमारी भेजी विद्युत तरंगें इच्छित स्थानोंपर पहुंचती हैं। इन सबके कार्यव्यापारको देखकर यह मानना पड़ता है कि इस विश्वमें कोई सूक्ष्मसे सूक्ष्म किन्तु महान्से महान् शक्ति-शाली व्यापक और परिपूर्ण आधार है। यदि कोई आधार न माना जाय तो आकर्षण-निराकरणका, व्यापार प्रकाश और उत्तापका सूर्यसे हमतक आना तथा इच्छित विद्युत् तरंगोंका स्थानान्तरित करने आदिका व्यापार सम्भावित नहीं[1]। क्योंकि बिना आधारके विश्वका कोई भी व्यापार चलता दिखाई नहीं देता। स्थूलसे स्थूल और सूक्ष्मसे सूक्ष्म समस्त पदार्थरूप सत्तावान् वस्तुएँ किसी न किसी आधार पर ही अपना व्यापार कर रही हैं। इसी प्रकार प्रकृति, महत, विद्युत्, प्रकाश आदि सत्ताएँ भी अवश्य किसी आधारपर ही अपना व्यापार चला रही हैं, यह निश्चित बात है। इसीलिये इसको प्रयोगोंसे जाननेकी चेष्टा होने लगी। जिन-जिन विद्वानोंने प्रकाशकी गतिको नापा सबके सब इस परिणामपर पहुँचे कि प्रकाशकी ठीक चाल १,८६,४०० मील प्रति सेकेण्ड है। इसमें जरा भी अन्तर नहीं। इस प्रकाशको सूर्यलोकसे चलकर पृथ्वीसे टकरानेमें ८ मिनिट ८ सेकेण्ड लगते हैं। इसमें भी कोई फरक नहीं पड़ता। वह विचारने लगे कि इस प्रकाशकी निश्चित गति-का कारण क्या? उन्हें खोज करते-करते पता लगा कि किसी पदार्थकी गतिमें उसकी चालको निश्चित करनेवाली उस पदार्थकी आधारता, अखण्डताकी बाधा होती है जिस-पर वह पदार्थ चल रहा हो। प्रकाशकी निश्चित गति भी विश्व-व्यापि पदार्थकी आधारता, अखण्डताकी निष्पत्तिपर अवलम्बित है। क्योंकि चल पदार्थकी गतिका समयसे दृढ़ सम्बन्ध होता है। इसीलिये जब हम किसी चल वस्तुके समयको जानना चाहें तो हमें इसका पता तबतक नहीं लग सकता जबतक हम उस चल वस्तुके अवरोधी पदार्थकी आधारता और अखण्डताको न जान लें। किसी भी चल वस्तुकी गति कालका निश्चय आधारकी आधारता अखण्डताकी नापसे ही हो सकता है। क्योंकि सदा ही आधारके इन्हीं दोनों गुणोंकी निष्पत्तिसे आधेयकी गति-समयका पूर्ण सम्बन्ध रहता है।

यदि माध्यमकी लचक (elasticity) और घनत्व (density) ज्ञात हो तो उसमें लहरकी गति निम्न समीकरण द्वारा ज्ञात हो सकती है—

$$ग = \sqrt{\frac{ल}{घ}}$$

यदि ग गति हो, ल लचक और घ घनत्व। ईथरके

---

१. आधार वा माध्यमकी आवश्यकता तरंगोंकी गतिके लिये तो होती है, परन्तु वैज्ञानिकोंका एक बड़ा प्रबल पक्ष विद्युत्कण-वादी है। वह प्रकाश और उत्तापके कणोंका ही अस्तित्व मानता है। कणोंद्वारा ही आकर्षण और निराकरणको भी सिद्ध करता है। उसके निकट ईथरके अस्तित्वकी कल्पना व्यर्थ है। वह कहता है, कि न अन्धेको न्यौतो और न दोको खिलाना पड़े। तरंग मानोगे तो माध्यम भी तरंगरूपी अंधेको टेकानेके लिये चाहिये। कण-वादमें कोई झगड़ा नहीं। ईथर कोरी कल्पना है, कण तो कोरी कल्पना नहीं है। अतः कण-वाद ही ठीक है। रा० गौ०

सम्बन्धमें यदि इसकी आधारता (जिसे लचकका स्थानापन्न समझा जा सकता है) आ हो और अखण्डता (जो घनत्वकी स्थानापन्न होगी) अ हो, तो प्रकाशकी गति ईथरमें निम्न समीकरणद्वारा सूचित की जा सकेगी—

$$ग = \sqrt{\frac{आ}{अ}}$$

इस समीकरणसे ईथरका घनत्व (अखंडता) ५×१०^{-१८} के लगभग निकलता है यदि प्रकाशका वेग ३×१०^{८} मीटर प्रति सैकण्ड या ३×१०^{१०} सैण्टीमीटर प्रति सैकण्ड माना जाय और लचक $१०^{३}$ के लगभग हो।

इसी हिसाबके अनुसार लार्ड केल्विनने यह कहा कि यदि ऐसा घड़ा लिया जाय जिसमें बीस घड़े पानी आता हो तो, समस्त संसारके ईथरको संग्रह करने पर २×१०^{-१०} घड़ा ही भरेगा, क्योंकि ईथरका घनत्व बहुत ही कम है।

फौलादकी लचक ७.७×१०^{११} होती है। इसकी तुलनामें ईथरकी लचक (आधारता) उतनी ही कम होगी जितनी कि एक घड़े जलमें १ रत्ती मीठा डालनेसे जलमें लचकका अन्तर पड़ता है। उस घोलमें यदि रेतके कण छोड़े जाँय तो उस घोलकी आधारता अखण्डताको बाधकता न होनेके बराबर है। साधारण बुद्धि विचारके प्राणि तो इसके अस्तित्वको ही नहीं मान सकते। फिर उसकी आधारता अखण्डता भी कुछ होगी यह उनके लिये असम्भवसी बात है। किन्तु यह बात नहीं है। इस १ रत्ती चीनीके घोलसे भी कुछ-कुछ आधारता अखण्डता बनी, ऐसा मानना पड़ता है।

जगद्व्यापि आधारमें पदार्थत्व

ऐसा कभी हो नहीं सकता कि जिस जगद्व्यापि सत्तामें आधारता-अखण्डताके दो गुण सिद्ध होते हैं वह सत्ता-मात्रिक न हो। चाहे उसकी मात्रा भौतिक मात्राओंसे कितनी भी अतीत क्यों न हो, फिर भी कुछ न कुछ अस्तित्वात्मक लक्षण अवश्य मिलना चाहिये। इस बातको सबसे पूर्व मैण्डलीफ नामक विज्ञानविद्ने "ईथरका रासायनिक रूप" नामक पुस्तकमें बड़ी सूक्ष्मताके साथ गणितद्वारा सिद्ध किया है कि इस जगत्व्यापि आधार ईथरकी परामात्रा ०.१७ है। अर्थात् भौतिक मात्रिक नामसे शून्यकी ओर जाकर कहीं शतांशके पीछे १७ निकलते हैं। हम इसको मात्रा-परामात्रा कह सकते हैं। इसीलिये तो हमारे यहाँ इस सूक्ष्मताकी ओर "अणोरणीयान् महतो महीयान्" यह संकेत ले जाता है। यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि महान् सूक्ष्मताकी सीमा नहीं होती अर्थात् अन्तकी सूक्ष्मता महानतासे मिल जाती है। ऐसी सूक्ष्मता और महानता दोनों ही व्यापकताके रूपमें बदल जाती है और दोनों ही असीम होनेके कारण अनन्तके विशेषणमें आ जाती है। ऐसी सूक्ष्मताको साकार भी नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि मैण्डलीफके इस मात्रिकताका पश्चात् समर्थन नहीं है, तथापि उक्त कथन असत्य है, यह भी किसीने नहीं सिद्ध किया। यह तो प्रायोगिक कसौटी है। जब इसके विपरीत कोई प्रायोगिक प्रमाण रक्खेगा उस समय इसपर विचार किया जायगा।

ईथर और आकाश

जबसे प्रकृति, महत्, प्रकाश, विद्युत्-तरंग आदिके लिये आधारकी आवश्यकताको देखकर ईथरनामक सत्ताकी खोजकी गयी[२] और इस बातकी चर्चा जब हमारे देशमें भी फैली तो कितने ही लेखकोंने इस ईथरका पर्यायरूप आकाशको मान लिया। आज भी कई वैज्ञानिक शब्दकोषोंमें ईथरकी परिभाषा आकाश दिया है। मेरे विचारमें यह भ्रममूलक धारणा है।

दर्शन ग्रन्थोंमें आकाश नामक तत्वपर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। और समस्त दर्शन ग्रन्थ इस बातमें एकमत हैं कि आकाशमें शब्दनामक एकही गुण है। आकाश शब्दका आधार माना गया है। प्रकृति महत् प्रकाशादि का नहीं। इस समय तो प्रयोगोंसे शब्द भी किसी ऐसी सत्ताका गुण सिद्ध नहीं होता जो सर्वव्यापी हो। शब्द

---

२. ईथरके संबन्धमें खोज शब्द-प्रयोग करने लायक काम तो अब हो रहा है, जब कि उसकी काल्पनिक सत्ता भी खतरेमें पड़ी हुई है। मैकेलसन और मोरलेके प्रसिद्ध प्रयोगको ही हम ईथरकी खोजका पहला प्रयत्न कह सकते हैं। मेंडलेफ आदिने जो कुछ इस सम्बन्धमें किया वह सब तो अप्रत्यक्ष निष्कर्ष और कल्पनाकी कोटिसे बाहर नहीं जाता।

हवामें आघातका परिणाम है, वह प्रयोगोंसे दिखाया जा सकता है।[३]

कोई भी दार्शनिक या वैज्ञानिक आकाशका अस्तित्व और उसके गुण स्वभावकी व्याख्या किसी पक्षके अनुसार जबतक नहीं कर सकता, तबतक उसे इस ईथर नामक सत्तासे सन्तुष्ट होनेका कोई अधिकार नहीं।[४]

मालूम होता है आकाश और ईथरको एक बतानेकी भ्रान्तिका प्रचार सबसे प्रथम थियोसोफिस्टोंके द्वारा हुआ। उन्होंने अपने मतसे ईथर सुपर-ईथर (?) आदिकी जो कल्पना की है, उसका पर्य्याय उन्होंने हिन्दीमें आकाशसे किया है। इन्हींसे यह भ्रामक धारणा अन्योंमें फैली। खैर! जो भी हो, अनेकोंके हृदयमें ईथरकी आकाशसे तुलना जँची है और वह कहते हैं कि जो गुण ईथरमें बताये गये हैं वह आकाशमें घटित होते हैं। उनमेंसे एक योग्य डाक्टर साहबका कथन है कि "साधारणतः आकाशका एकमात्र गुण शब्द माना गया है, पर आधुनिक पद्धतिमें आकाश शब्दका वाहक न माना जाकर प्रकाशका वाहक माना गया है। पर, अब तो रेडियोके प्रयोगोंके कारण हमारा ईथर (आकाश) शब्दका भी वाहक हो गया है। वस्तुतः यह तो विद्युत्-चुम्बकीय तरंगोंका वाहक है चाहे वे तरंगें प्रकाशकी हों, चाहे शब्दकी। ऐसी अवस्थामें ईथरके सम्पूर्ण गुण हमारे आकाशमें विद्यमान हैं।"[५]

डाक्टर साहबके इस कथनमें हमें तो दार्शनिक पक्षसे आकाशकी ईथरके किसी गुणसे कोई तुलना नहीं मिलती। आकाशको हमारे यहाँ कहीं भी प्रकाशका वाहक नहीं माना गया। हाँ, ईश्वरको अवश्य ही बताया गया है कि वह हम सबोंको प्रकाशका देनेवाला। देखो ऋग्वेदके अनेक मन्त्र*। दूसरे आप कहते हैं कि रेडियोके प्रयोगोंके कारण हमारा ईथर शब्दका भी वाहक हो गया। आपका यह कथन अत्यन्त ही भ्रमपूर्ण है। रेडियोके द्वारा जो कुछ शाब्दिकरूप एक स्थानसे चलकर दूसरे स्थानतक पहुँचता है वह शब्दरूपमें नहीं जाता। प्रत्युत् शब्दग्राहक यन्त्रके साथ जो दूसरा विद्युत-चुम्बकीय-तरङ्ग-प्रेषक लगा रहता है वह शब्दको विद्युत्-चुम्बकीय तरङ्गोंमें बदल देता है। वह विद्युत्-चुम्बकीय तरङ्गें फिर ईथरमें गमन करती हैं और अन्य स्थानोंके ग्राहक रेडियो यन्त्रमें पहुँचकर वहाँ वह तरगें फिर शब्दके रूपमें बदलकर हमें सुनाई देती हैं। यदि हमने शब्दको विद्युत् तरंगोंमें बदलने और विद्युत्-चुम्बकीय तरंगोंको शब्दके रूपमें बदलनेका साधन प्राप्त कर लिया है तो इसका अर्थ यह नहीं कि ईथर शब्दका वाहक बन गया है। इस प्रकार एक विज्ञानविद् डाक्टरका कथन निष्पक्ष नहीं।[६]

---

३. हमारे कानोंपर एक निश्चित प्रकार और सीमाके भीतर होनेवाली लहरोंका जो प्रभाव पड़ता है उसे ही शब्द कहते हैं। यह लहरें चाहे हवाके द्वारा हमारे कानके परदेपर पहुँचें चाहे, लकड़ी या धरती या किसी अन्य वस्तुके सम्पर्कसे। अधिकांश हवाके द्वारा ही शब्दके पहुँचनेके कारण ऐसा समझ लिया गया है कि शब्दका आधार हवाकी ही लहरें हैं। वस्तुतः उन लहरोंका कानसे सम्बन्ध होना आवश्यक है। एक सेकंडमें उतने ही स्पन्दनवाली लहरें किसी भी पदार्थके अणुओंमें पैदा हो सकती हैं। लहरें तो किसी आघातका प्रत्याघात ही हैं। परन्तु आघातका प्रभाव अणुओंपर सीधे ही पड़ता है और ईथरकी मध्यस्थता उसमें कोई भाग नहीं लेती इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। प्रकाश, उत्ताप, विद्युत् चुम्बकत्व आदिकी सूक्ष्म लहरोंके लिये ही तो ईथर जैसे मध्यस्थकी कल्पना करनी पड़ी। अब तो सूक्ष्म नहीं, प्रत्युत मीलों लंबी स्थूल लहरोंका भी अस्तित्व मालूम हो चुका है। यदि ईथर है तो वह सभी तरहकी लहरोंका आधार है और यदि हमारे श्रवणेन्द्रियकी क्षमता निःसीम हो जाय तो प्रकाश और विद्युतकी सूक्ष्म लहरें भी शब्द होकर सुन पड़ें। अतः यह कहना कि आकाश केवल शब्दका वाहक है, और वह ईथरसे अभिन्न है, तनिक भी असंगत वा अयुक्त नहीं है।

४. अधिकार तो बहुत कम देखा जाता है। समन्वयके लिये ऊटपटांग तुलना करनेवाले भी हैं। उनके अधिकारपर आपत्ति करनेके लिये कौन न्यायालय है?

५. आजकल अधिकांश प्रचलित मत यह है कि प्रकाश दोनों तरहसे उत्पन्न होता है, तरंगोंसे भी और ज्योतिःकणोंसे भी। तयंगआ वासक तो ईथर है, परन्तु कणोंके लिये वाहककी आवश्यकता नहीं। अतः कणोंवाले प्रकाशका वाहक आकाश नहीं है। वह तरंगोंका वाहक अवश्य है, फिर चाहे यह लहरें हमारी इन्द्रियोंके लिये शब्द बनें या रूप बनें। शेषके लिये देखिये पूर्व टिप्पणी ५।

* "ईश्वर" शब्दका ही वेदोंमें पता नहीं। अर्थ विवादग्रस्त है। रा. गौ.

६. प्रेषक कोई मनुष्य होता है जो हवाकी लहरें पैदा कर सकता है। यही लहरें ईथरकी लहरोंमें परिणतकी जाती हैं। फिर

ज्ञात होता है ईश्वरीय श्रद्धा उनके अन्तस्तलको अपनी विचारशून्य भावनाओंसे ढके हुए है, जभी सत्यताके ऊपर परदा डाला जा रहा है[७]। आगे चलकर आपने सर जेम्स जोन्सकी निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृतकर यह बतानेकी चेष्टा की है कि अब ईथर भी वैज्ञानिक जगत्‌में कल्पनामात्र रह गया है। यथा—

"It is, in brief, that the ethers and their undulations, the waves which form the universe, are in all probability fictitious. This is not to say that they have no existence at all; they exist in our minds, or we should not be discussing them; and something must exist outside our minds to put this or any other concept into our minds, to this we may temporarily assign the name "reality." But we shall find that this reality is something very different from what the scientist of fifty years ago meant by ethers, undulations and waves, so much so that judged by his standards and speaking his language for a moment, the ethers and their waves are not realities at all."

अन्तमें आप कहते हैं, इस प्रकार ईथर भी कुछ कम पहेली नहीं है। यहाँपर सर जेम्सजोन्सके कथनका वैसा ही महत्त्व है जैसा हमारे आप्त वाक्योंका। इन्होंने अपने कथनमें बिना किसी युक्तिके ही यह कह डाला है कि ईथर अब वैज्ञानिक जगत्‌में कल्पनामात्र रह गया है।[८] उन्हें चाहिये था कि इसके आधार या अखण्डताके गुणोंका खण्डन कर यह सिद्ध करते कि इस विश्वमें प्रकृति, महत्, प्रकाशादिके वहनार्थ अब आधारकी आवश्यकता इन कारणोंसे जाती रही[८]। अब अनेक सूक्ष्म पदार्थ आधारको छोड़कर आधेय बनते पाये जाते हैं और इनमें यह विशेषता है, इत्यादि। इससे भिन्न डाक्टर आइन्स्टाइनने अपेक्षावाद नामक एक ऐसे क्रान्तिकारी सिद्धान्तको जन्म दिया है जिसने अनेक भौतिक और गणितके सर्वमान्य सिद्धान्तोंको समूल नष्ट कर डाला है। उन्होंने भी ईथर नामक सर्वव्यापक सत्ताको माननेसे इन्कार किया है। वह कहते हैं कि ईथरका आकर्षण-निराकरण-व्यापार एकदेशीय है, सर्वदेशीय नहीं। ग्रहोंका परस्पर आकर्षण ईथर बलकी स्थितिसे नहीं है। न अन्तरिक्षमें समस्त ब्रह्माण्डमें ईथर-बल व्यापक है। प्रत्युत् वह वहीं पाया जाता है जहाँ पदार्थ है।

हम यहाँपर इस विषयकी कोई मीमांसा करना नहीं चाहते। डाक्टर साहब सर्वदेशी महत् सत्ताको न मानकर एकदेशी ही मानते रहें। हमारे विचारोंको उनके इस सिद्धान्तसे भी पुष्टि ही मिलती है।

आपने सिद्ध किया है कि जहाँ-जहाँ पदार्थ होगा वहाँसे होकर या उस पदार्थके समीपसे होकर प्रकाश-रेखाएँ गुजर रहीं हों तो पदार्थस्थ स्थानपर वह कभी सीधी नहीं चलतीं बल्कि पदार्थकी ओर कुछ झुककर वहाँसे

ग्राहक यंत्रमें उन ईथरकी लहरोंको वायुकी लहरोंमें फिरसे बदल दिया जाता है। हमारे कानका परदा हवाकी लहरोंको ही ग्रहण करनेका यंत्र है। यदि वही परदा ग्राहक यंत्रवाला होता तो इस दोबारा लहर बदलनेकी जरूरत न पड़ती। इसी तरह हमारा उच्चार-यंत्र हवामें ही शब्दाघात कर सकता है। यदि उसमें ईथरपर शब्दाघात करनेकी क्षमता होती तो हवाकी लहरोंको ईथरकी लहरोंमें बदलनेका कोई काम न था। डाक्टर साहबने पक्षपात नहीं किया। ठीक ही बतलाया है। रा०गौ०

७. यह कथन एक विद्वान्‌के प्रति अन्याय है और वैयक्तिक आक्षेप है।

पूर्वापर अंशोंको देखनेसे उक्त कथन युक्तियुक्त प्रतीत होगा। ईथर तो वस्तुतः कल्पनामात्र है। कोई वैज्ञानिक उसे इतसे अधिक नहीं समझता। और यही ठीक भी है। रूप देखकर हम जैसे आँखकी इन्द्रियसे गम्य मानते हैं उसी तरह बाह्य अनुभवों और गणितके सहारे कल्पना करके हम मनस् इन्द्रियसे गम्य मानते हैं। जैसे बाह्य गोचर जगत् वस्तुतः हमारी इन्द्रियोंपर उसकी प्रतिक्रियाका फल है उसी तरह सूक्ष्म जगत् हमारे मनस् इन्द्रियपर प्रतिक्रियाका फल है। उद्धरणमें समंजस बात कही गयी है।

८. प्रकृति और महत् तो आपके समन्वय जनित तत्त्व हैं। अवतरण-लेखक क्या जाने। प्रकाश, विद्युत् आदिके लिये आधारकी आवश्यकता नहीं रहीं। कणवादने आधार-आधेयका झगड़ा मिटा दिया।

महत् यदि ईथरसे अभिन्न है तो वह तो स्वयं आधार है।

आगे जाती हैं। उन्होंने इस झुकावको जो कुछ गणित द्वारा बताया, वह प्रयोगोंसे भी सिद्ध हो चुका है। आप कहते हैं कि जहाँ-जहाँ पदार्थ होगा वहाँ-वहाँ ईथरके आकर्षण-बलके कारण वह विश्वव्यापी ईथर पदार्थकी ओर सदा खिंचा रहता है, उसमें वक्रता बनी रहती है।

इसीलिये उस ईथरका आधेय प्रकाश भी ईथरकी वक्रता-के साथ ही वहाँसे झुककर निकलता है। इनके इन विचारों-से ईथर या ईश्वरकी आधारता और अखण्डताकी प्रबल पुष्टि होती है, न कि उसका खण्डन। इससे भिन्न मैकेलसन और मोर्ले नामक संसारप्रसिद्ध विज्ञानविदोंने एक नयी बात बतलायी है कि ईथर भी पश्चिमसे पूरबकी ओर जल-प्रवाहवत् बह रहा है। जब कि इतने बड़े-बड़े विज्ञान-धुरन्धर पण्डित ईथरके गुणस्वभावोंको जाननेकी चेष्टामें लगे हैं, वहां कुछ धार्मिक भावनाओंके वशीभूत व्यक्तियोंक बिना प्रमाणके यह कहना कि ईथर भी अब कल्पनामात्र रह गया है सिवाय अपना परिहास करानेके और कुछ नहीं।[९]

हमने तो जहाँतक विचारा है हमारे दार्शनिक ईश्वर और आधुनिक ईथरमें न केवल नाममें ही समानता है प्रत्युत इसके गुण-स्वभावमें भी समानता पायी जाती है। जो-जो विशेषण निराकार ईश्वरके लिये हमारे यहाँ दिये गये हैं वह सब विशेषणकी तद्रूपता ईथरमें पायी जाती है। यथा, जिस प्रकार ईश्वर निर्विकार, निर्लेप, निरंजन है उसी प्रकार ईथर भी है। जिस प्रकार विश्वव्यापक परिपूर्ण अनन्त ईश्वर है उसी प्रकार ईथर है। जिस तरह अखण्ड, एकरस, अक्षर, अविनाशी ईश्वर माना जाता है उसी तरह प्रयोगोंसे ईथर भी सिद्ध होता है।[१०]

९. हमारी समझमें नहीं आया कि यहाँ किस द्वारसे धार्मिक भावनाका प्रवेश हुआ।

१०. यह तुलना बहुत सुन्दर है, परन्तु किन प्रयोगोंसे सिद्ध होता है? मुझे तो कोई प्रयोग नहीं मालूम। हाँ, प्रकाश आदिके लिये प्रयोगोंकी व्याख्याके समर्थनमें ईथरकी कल्पना जरूर अनिवार्य होती है। अतः प्रयोगसिद्ध होना स्वयं इस सांग रूपकतामें बाधक है। जैसे ईथर प्रयोग सिद्ध नहीं है, वैसे ही ईश्वर भी प्रयोग-सिद्ध नहीं है। यह एक समता और मिल जाती है।

इस तुलनासे स्पष्ट है कि ईश्वरवादियोंके ईश्वर और इस ईथर में बहुत कुछ समानता है। ईथरके सभी गुण ईश्वरमें पाये जाते हैं। परन्तु ईश्वरके सभी गुण ईथरमें नहीं पाये जाते। यह बात अन्तमें स्वीकार की गयी है।

जिस प्रकार जगदाधार अखण्ड, अनादि, नित्य सत्ता ईश्वरकी पायी जाती है, उसी प्रकार ईथरकी भी सिद्ध होती है।

हाँ, कुछ ऐसे भी विशेषण ईश्वरमें माने गये हैं जो ईथरमें नहीं मिलते। यथा—ईश्वर सत् चित आनन्द-स्वरूप है, सर्व शक्तिमान है, न्यायकारी है, दयालु है इत्यादि।

ईश्वर सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु है या नहीं इत्यादि काल्पनिक बातोंपर हम जड़ और चेतन नामक लेखमें इसकी मीमांसा करेंगे। वहाँ पाठकोंको इसकी परीक्षा होगी कि वास्तवमें क्या बात है।

[लेखकके सृष्टि-रचना-शास्त्रके एक परिच्छेदका संक्षिप्त]

उपसंहार

योग्य लेखकने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि वैज्ञानिकोंका ईथर और ईश्वरवादियोंका ईश्वर अभिन्न हैं। मैं भी ईश्वरवादियोंमें हूँ। परन्तु उन ईश्वरवादियोंमें हूँ जो सत्तामात्रको ईश्वर मानते हैं। यदि ईथरकी सत्ता है तो वह ईश्वरसे अभिन्न है। परन्तु ईथर ही ईश्वर है और जल, वायु, तेज आदि ईश्वर नहीं हैं, ऐसा नहीं मानता। तथोक्त वैज्ञानिक प्रयोगोंद्वारा ईश्वरकी सिद्धि नहीं हो सकती। ईथरकी भी प्रयोगोंद्वारा सिद्धि नहीं हुई है। परन्तु कोई नहीं कह सकता कि भविष्यमें ईथरकी प्रयोगोंद्वारा सिद्धि न हो सकेगी।

ईश्वरकी कल्पना बड़ी पुरानी है। कल्पना इसीलिये कि जो सभी ईश्वरवादी ईश्वरको एक ही तरहपर नहीं मानते। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"वाले प्रसिद्ध महावाक्यकी व्याख्या भी लोग विविध-रीतिसे करते हैं। मेरे विचारमें गोचर-अगोचर, व्यक्त-अव्यक्त सत्तामात्र ब्रह्म है। उसके प्रकृति और पुरुष दो रूप हैं जो व्यक्त और अव्यक्त सत्ताके भेदसे चार रूप हुए। प्रकृतिसे जड़ जगत्का और पुरुषसे चेतन जगत्का विकास है। यदि ब्रह्म और ईश्वर अभिन्न है तो पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार, महत् सभी ईश्वर है। ईथर भी ईश्वर है।

साहित्य-विश्लेषण

[समालोचनार्थ दो दो प्रतियां आनी चाहियें। एक ही प्रति आनेसे समालोचनमें बहुत विलंब संभव है। रा० गौ०]

आयुर्वेदसंहिता अर्थात् वैदिकायुर्वेद संग्रह— लेखक पं० रामगोपाल शास्त्री वैद्यभूषण। प्रकाशक—सुधाकर औषधालय, चैम्बरलैन रोड, लाहौर, २० × ३० डबल क्राउन आठ-पेजी पृष्ट ७३ से ८३ तक, मूल्य लिखा नहीं। यह उक्त पुस्तकका द्वितीय पुष्प है जो क्रमसे लक्ष्मीपत्रिकामें निकला है। उसीको आपने पुस्तकके रूपमें संकलित किया है।

पं० रामगोपाल शास्त्रीजीने इस पुस्तकके प्राक्कथनमें लिखा है "बीस वर्ष वेदाध्ययन और सात वर्ष आयुर्वेदाध्ययन तथा चिकित्सासे मुझे अनुभव हुआ है कि संहिता भाग इतर वैदिक साहित्यमें आयुर्वेद सम्बन्धी ऐसे ऐसे अमूल्य रत्न छिपे पड़े हैं जिनके प्रादुर्भावसे प्राचीन आचार्योंमें श्रद्धा उत्पन्न होगी और सामयिक वैद्यवृन्दका गौरव बढ़ेगा।"

इस पुस्तकमें अथर्ववेदसे लेकर ३० के लगभग वेद-मन्त्र दिये गये हैं। इन समस्त वेदमन्त्रोंके मन्त्रार्थ भावार्थ सहित जो कुछ आपने दिये हैं पढ़ डाले, एकबार नहीं, बल्कि दो बार अच्छी तरह ध्यानसे पढ़ा। इन मन्त्रोंमें दिये रोग, निदान, औषधोपचार आदिपर काफी विचार भी किया, आपके दिये मन्त्रार्थ और शब्दार्थमें इस बातको खोजनेकी चेष्टा की गयी कि इसमेंसे कोई हमें ऐसी महत्वकी छिपी हुई या न जानी हुई बात (छिपा रत्न) मिले जिससे हमें अपनी चिकित्सामें सफलता प्राप्त हो। पर हमें तो कोई भी नजर न आयी।

इन मन्त्रोंमें ज्वरकी प्रशंसा है, प्रार्थना है, निवारणके मंत्र हैं। जान पड़ता है निवारणमें मंत्रसे ही काम चल जाता होगा। परन्तु "परोपदेशकुशलाः विद्यन्ते बहवो जनाः" वेद मन्त्रोंके ज्ञाता और उसकी शक्तिपर विश्वास रखनेवाले शास्त्रीजीके सुधाकर औषधालयमें जाकर देखिये तो दवाइयोंका न जाने कितना आडम्बर मिलेगा। इसे देखकर कोई व्यक्ति यह कभी नहीं विश्वास कर सकता कि शास्त्रीजी वेदके इस अमूल्य रत्नको प्राप्तकर उसपर श्रद्धा रखते होंगे। जो व्यक्ति अपनी वाक्शक्तिसे भूत भगा सकता हो उसे दण्ड उठानेकी क्या आवश्यकता। अथर्ववेदको चिकित्साकाल और रोगविज्ञानका उद्गम-समय मानकर इसको आविष्कार का महत्व दें तो इसमें कुछ भी अनौचित्य नहीं है। पर हम यह कहें कि अथर्ववेदमें आयुर्वेदका संक्षिप्त रूपमें

सत्ता गोचर नहीं है उसके सम्बन्धमें कल्पना ही हो सकती है। "बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्" ज्ञेयकी कल्पनाका ही द्योतक है। अथर्ववेदीय तैत्तिरीय उपनिषत्‌की तीसरी भृगुवल्लीमें भृगुने अपने पिता वरुणसे ब्रह्मज्ञानको जिज्ञासा की। उसने अन्न, प्राण, चक्षुष, कान, मन और वचनको साधन बताकर ब्रह्मकी यों परिभाषा की।

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशंतीति तद्विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्मेति॥"

भाव यह कि भूतमात्रकी सृष्टि पालन और संहार करनेवाला ही ब्रह्म है, उसीको जाननेका प्रयत्न कर। उसने तपस्या की। पहले अन्नको ब्रह्म समझा, फिर प्राणको ब्रह्म समझा, फिर विज्ञानको ब्रह्म समझा, फिर अन्तमें आनन्दको ब्रह्म समझा, और उसीमें ठहर गया। विज्ञानके मंगलाचरणके पूर्व इसी प्रकरणका अवतरण रहा करता है। विज्ञानकी जगह ईथर शब्द बदलकर हम अपने मित्र स्वामीजीके विषयमें कह सकते हैं—

ईथरं ब्रह्मेति व्यजानात्। ईथराद्ध्येव सर्वाणि भूतानि जायन्ते। ईथरेण जातानि जीवन्ति। ईथरं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।"

स्वामीजी ईथरको ब्रह्म मानकर उसीपर ठहर गये हैं। परन्तु विज्ञान सततवर्धमाना विद्या होनेके कारण कलको जब किसी सूपर ईथरका पता लगाले, तब? उस समय वारुणी भृगुकी तरह फिर समन्वयरूपी तपस्या करके स्वामीजी सूपर ईथरको ईश्वरसे अभिन्न मानने लगेंगे। इस तरहके समन्वयमें महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी भूल प्रत्यक्ष है। स्वामीजी ईश्वरको मानते हैं। परन्तु एक पक्ष ऐसा भी है जो ईश्वर और धर्मको मानता ही नहीं। इस पक्षपर भी हम शीघ्र ही विचार करेंगे। —रा० गौ०

रहस्य भरा है और यही मानकर महत्त्व दिया जाय तो हम जबतक कमसे कम अपने क्रियात्मक विज्ञानमें इसकी सचाईको प्रमाणित न कर लें; तबतक कोई महत्त्व देनेके लिए तैयार नहीं। हाँ, आर्यसमाज या सनातनधर्मकी दुनिया ही और है, उनके विचार निराले हैं। वह धार्मिक-विचारसे जैसा चाहे विश्वास बनाये रक्खें। विज्ञानवादी उसमें बाधक नहीं हो सकते। —हरिशरणानन्द

आहार, संयम और स्वास्थ्य,—प्रकाशक कायस्थ पाठशाला प्रेस, प्रयाग। प्रथम संस्करण, १९३४, मूल्य १॥)। डबलक्रौन १६ पेजीके १७+३०५=३२२ पृष्ठ। सचित्र। छपाई सफाई उत्तम।

पुस्तकका विषय नाम ही से स्पष्ट है। इसके लेखक हैं श्रीयुत भगवतीप्रसादजी बी० ए०, एल–एल० बी०। लेखक डाक्टर नहीं है। पुस्तक दीर्घ अनुभव और गम्भीर अध्ययनके आधारपर लिखी गयी है। सारी पुस्तकमें कुल छत्तीस अध्याय हैं। यथास्थान ब्रह्मचर्य, व्यायाम और विचार-शक्ति आदि विषयोंपर भी प्रकाश डाला गया है। पर, सारी पुस्तकमें आहारसम्बन्धी विवेचनाकी ही प्रधानता है। खाद्य पदार्थोंका बड़ा ही सुन्दर और वैज्ञानिक वर्णन है। आधुनिक विषय छहों विटामिनोंपर भी स्वतन्त्र रूपसे छः अध्याय लिखे गये हैं, जिनसे भोजन-सम्बन्धी बहुत सी कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं। दूध और मांसकी तुलनामें लेखकने वैज्ञानिक प्रयोगोंके आधारपर दूधको मांस से अधिक उपयोगी सिद्ध किया है। यद्यपि पुस्तक वैज्ञानिक है पर इस ढंगसे लिखी गयी है कि लोग आसानीसे समझ सकते हैं। भाषा साधारणतः अच्छी है। कहीं-कहीं व्याकरणकी भूलें रह गयी हैं पर वे भ्रमात्मक नहीं हैं। 'रोग और प्रकृतिके अनुसार भोजनका चुनाव' इस पुस्तककी जान है। पुस्तक पठनीय और प्रत्येक गृहस्थके कामकी चीज है। —ब्र०-बि० गौड़

अन्तिम आकांक्षा—प्रकाशक, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी। प्रथमवार १९९१। डबलक्रौन १६ पेजीके १८५+५ =१९० पृष्ठ। सुन्दर ऐंटिक कागजपर साफ छपी। सुन्दर जिल्द बँधी। मूल्य १॥)।

पुस्तकके लेखक हैं साहित्य-प्रसिद्ध कविवर श्रीसियारामशरणजी गुप्त। पुस्तकमें हरिनाथजीके नौकर रामलालके जीवनकी विशद गाथा है। मनुष्य अपने जीवनके अन्तिम मनोभावोंके अनुसार किस प्रकार पुनर्जन्म धारण करता है, विज्ञ पाठकोंसे पुस्तकका यह लाक्षणिक अंग छिपा नहीं रह सकता। इस पहलूका चित्रण बड़ी ही योग्यताके साथ स्वाभाविक ढंगपर किया गया है। उपन्यास सामाजिक है। अतः सामाजिक अनाचारोंका समावेश भी है। सचरित्रता गरीबोंकी नहीं धनिकोंकी चीज है, बड़प्पन जातिमें है कर्ममें नहीं, शूद्र मनुष्यत्वकी सीमाके बाहर है—आदि दुर्भावोंका सुंदर चित्रण बन पड़ा है। पुस्तकमें देशकी सामान्य जीवन-पद्धतिका ही चित्रण है, योरोपीय सभ्यताके साँचेमें ढले हुए समुदायका नहीं। देशके असली सामाजिक और गार्हस्थ्य जीवनके सुंदर चित्रोंको छोड़कर विदेशी भावों और रीतियोंको चित्रित करनेवाले उपन्यासकारोंके लिये यह कहानी उचित मार्ग दिखाती है। रनियाके प्रति रामलालके हृदयमें उदात्त और कोमल भावोंका स्फुरण न दिखाना इस पुस्तकमें कलंकसा लगता है, क्योंकि साधारणतया यही आशा की जाती है। परन्तु रामलाल जैसी अनोखी प्रकृतिके मनुष्य भी होते ही हैं। यह अपूर्व चित्रण है। सूक्तियाँ बड़ी ही सुंदर और भावमय हैं। भाषा परिमार्जित और ठोस है। पुस्तक पठनीय और अपने ढंगकी एक ही है। गुप्तजी जैसे सफल और ऊँचे दरजेके कवि हैं वैसे ही उपन्यासकार भी हैं। ब्र० बि० गौड़

पंचदशी—(अद्वैत वेदान्तका सर्वमान्य ग्रंथ)। मूल लेखक श्रीविद्यारण्यस्वामी, भाषान्तरकार तथा व्याख्याकार पंडित रामावतार विद्याभास्कर। संवत् १९९१। मूल्य २॥=)। सजिल्द। डबलक्रौन १६ पेजीके १८+५६६+१३८=७२२ पृष्ठ। कागज छपाई सफाई उत्तम। प्रकाशक पं० कृष्णकुमार शर्म्मा, पो० रतनगढ़, (बिजनौर यू० पी०)। मुद्रक श्रीदेवचन्द्र विशारद, हिन्दी भवन प्रेस, लाहौर। प्रकाशकके सिवा "हिन्दी भवन, अनारकली, लाहौर" तथा "मेहरचन्द लक्ष्मणदास, सैयद मिट्ठा बाजार, लाहौर" से भी प्राप्य।

यह अद्वैत वेदान्तका चोटीका ग्रंथ है। भारतके चारों कोनोंमें इसकी ख्याति है। शांकर अद्वैत सिद्धान्तकी सिद्धि इसमें पन्द्रह प्रकरणोंमें की गयी है, इसीलिये इसका नाम **पंचदशी** है। तत्त्वविवेक, पंचभूतविवेक, पंचकोषविवेक,

सहयोगी-विज्ञान

१—वैज्ञानिक सहयोगी

बंगलाकी **'प्रकृति'** द्विमासिक कलकत्तेसे, उर्दूकी **"रोशनी"** मासिक लाहौरसे, हिन्दीका **"विज्ञानसागर"** मासिक दिल्लीसे, हिन्दीकी **"शिक्षण-पत्रिका"** मासिक इन्दौरसे, हिन्दीका **"कल्पवृक्ष"** मासिक उज्जयिनीसे, हिन्दीका **'भूगोल'** मासिक प्रयागसे, हिन्दीका **'जीवन-सन्देश'** मासिक मुजफ्फरपुरसे, हिन्दीका **'आचार्य धन्वन्तरि'** मासिक दिल्लीसे, हिन्दीका **'आयुर्वेद संदेश'** मासिक लाहौरसे, गुजरातीका **'वैद्यकल्पतरु'** मासिक अहमदाबादसे,—समागत स्वागत।

हम **विज्ञानसागर** और **आचार्य धन्वन्तरि** अपने दो नये सहयोगियोंका जो दोनों दिल्लीसे पधारा करते हैं सहर्ष स्वागत करते हैं।

"विज्ञान-सागर"का आकार-प्रकार, उद्देश्य, पृष्ठ संख्या, वार्षिक मूल्य और प्रति अंकका मूल्य भी सब कुछ "विज्ञान" का ही है। शरीर-शास्त्रपर सुबोध सचित्र लेख इसकी विशेषता जान पड़ती है। इसके सम्पादक वैद्यवर पं० गजानन्द शर्मा, एम० ए० हैं। लेख सभी सुन्दर, सुबोध और चुने हुए एवं पठनीय होते हैं। परन्तु सम्पादकके कलमसे बहुत कम सामग्री दृष्टिगोचर होती है। चौथी संख्यामें पहला लेख "खाद और उसकी उपयोगिता" का चुनाव समीचीन है। परन्तु किसी असावधानतासे ("विज्ञान" से उद्धृत) यह स्वीकृति छूट गयी है। "विज्ञान" सरिता है और यह "सागर" ठहरा "जिमि सरिता सागर पहँ जाहीं। यद्यपि ताहि कामना नाहीं।" "विज्ञान"के लेखका सागरमें जाकर मिलना तो स्वाभाविक क्रिया है, परन्तु सागर भी उद्गमको नष्ट नहीं करता। अस्तु। हम अपने प्रिय सहयोगीकी सच्चे मनसे हितकामना करते हैं और भगवान्से मनाते हैं कि अर्थ-हीनतारूपी अगस्त्यसे इसकी रक्षा करते रहें।

जिससे सागर प्रकट हो सकता है, उसीसे भगवान् धन्वन्तरि भी प्रकट हों तो आश्चर्य ही क्या? **आचार्य धन्वन्तरि"** का आकार भी "विज्ञान"का ही है। प्रत्येक अंकमें ३२ पृष्ठ होते हैं। वार्षिक मूल्य २॥) है। एक अंकका।)।

द्वैतविवेक, महावाक्यविवेक, चित्रदीप, तृप्तिदीप, कूटस्थ-दीप, ध्यानदीप, नाटकदीप, ब्रह्मानन्दमें योगानन्द, ब्रह्मानन्दमें आत्मानन्द, ब्रह्मानन्दमें अद्वैतानन्द, ब्रह्मानन्दमें विद्यानन्द, ब्रह्मानन्दमें विषयानन्द ये पन्द्रह प्रकरण हैं। हिन्दीमें अबतक इस ग्रन्थ-रत्नका ऐसा सुन्दर व्याख्या-संवलित अनुवाद नहीं छपा था। इसके व्याख्याकार हैं **पंडित रामावतारजी विद्याभास्कर। बोधसार** का व्याख्यासंवलित भाषानुवाद निकालकर आप प्रसिद्धि पा चुके हैं। ऐसे गंभीराशय ग्रंथोंको समझानेका अधिकार भी होना चाहिये। इसके योग्य व्याख्याकारने इसे अच्युत मुनिजीसे विधिवत् पढ़ा और फिर इक्कीस बरसतक बराबर आद्योपान्त मनन किया। आपने जीवनको भी तदनुरूप बनाकर, पूरी तपस्या करके, गुरुदत्त ज्ञानको बारबार अनुभवकी कसौटीपर कसा। गोस्वामीजीने जैसे लिखा कि "भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे हिय प्रबोध जेहि होई।" विद्याभास्करजीने भी यह व्याख्या इसीलिये की है कि इसका गंभीराशय चित्तपर दृढ़तापूर्वक अंकित हो जाय। "स्वान्तःसुखाय" लिखते हुए भी लेखकने हिन्दी पाठकोंके साथ, तत्वज्ञानको मुक्तहस्त लुटाकर, भारी उपकार किया है। अद्वैतवादपर यह ग्रंथ अद्वितीय है। इसको वारंबार पढ़नेसे मन नहीं ऊबता, किन्तु इसका विषय सदा ताजा बना रहता है। मूलसे कहीं अधिक मूल्यवान अन्तके १३८ पृष्ठ हैं। इसमें पंचदशीके प्रत्येक प्रकरणका भावपूर्ण सार दिया गया है। इसे पहले पढ़कर तब मूल पढ़े तो मानों पाठकको इस गंभीराशय ग्रंथको खोलनेकी कुंजी मिल जाती है।

ऐसे अनमोल और प्रामाणिक ग्रंथको सर्वसुलभ कर देनेमें ग्रंथकारने अपनी तपस्याके उपयुक्त त्याग भी किया है। इसके दाम केवल २॥=) रखे हैं। वेदान्तप्रेमियोंको चाहिये कि इस सुलभतासे पूरा लाभ उठावें। रा० गौ०

यह पत्र आयुर्वेद एवं यूनानी तिब्बी कालेज, दिल्लीकी आयुर्वेदिक संभाषा परिषत्की ओरसे निकलता है। इसके प्रधान संपादक हैं वहींके प्रोफेसर भिषगाचार्य्य श्री उपेन्द्र-नाथदास तीर्थ। पत्रके नामसे कोई न समझे कि प्राचीन आयुर्वेदने इस पत्रमें एक प्राचीरसा बनाकर अपनेको सीमित कर रखा है। उद्देश्य उदार जान पड़ते हैं। इस पत्रमें खाद्योज (विटामीन) और (Blood Pressure) रक्त चापपर भी लेख हैं। यह हकीम अजमलखां जैसे उदार-चेताकी स्थापित संस्थाका पत्र है। इसे उदार होना ही चाहिये। युगकी आवश्यकता भी इसी मार्गपर चलनेको विवश करती है। हम इसकी हृदयसे सफलता चाहते हैं।

रा० गौ०

हिन्दी शिक्षण-पत्रिका—फुलिस्केप आठपेजीपर साधारण कापीके आकारके १६ पृष्ठोंमें यह पत्रिका अक्तूबर सन् १९३४से महीने-महीने निकल रही है। इसका वार्षिक मूल्य एक रुपया मात्र है। इसके प्रधान सम्पादक हैं शिक्षा-विज्ञानके जन्मजात अधिकारी गिजूभाई और तारा बहन। गुजरातीमें यह पत्रिका अलग निकलती है। हिन्दी-की पत्रिकाका सम्पादन श्री काशिनाथ त्रिवेदी करते हैं। इसमें आदिसे अन्ततक छोटे बच्चोंके शिक्षकोंके लिये अनमोल बातें रहा करती हैं। प्रत्येक शिक्षकको इसे पढ़कर लाभ उठाना चाहिये। म्युनिसिपलिटियोंको चाहिये कि हर प्राइमरी स्कूलको इसकी एक-एक प्रति खरीदकर दें। हिन्दीका सौभाग्य है कि ऐसी उत्तम शिक्षण पत्रिका भी हिन्दीमें निकलती है।

रा० गौ०

२—साहित्यिक सहयोगी

दैनिक **"हिन्दी मिलाप"** लाहौर से।

साप्ताहिक **"प्रताप"** कानपुरसे, **"नवशक्ति"** पटनेसे, **"विकास"** सहारनपुरसे, **"हिन्दुस्तान"** प्रयागसे, **"सनातनधर्म"** काशीसे, **"आर्य्यमित्र"** आगरेसे।

पाक्षिक **"मदारी"** प्रयागसे, **"खुदाकी राहपर"** काशीसे, **बाल-संदेश** दिल्लीसे।

मासिक **"सुधा"** लखनऊसे, **"विशाल भारत"** कलकत्तेसे, **"वीणा"** इन्दौरसे, **"चाँद"** इलाहाबादसे, **"काव्य-कलाधर"** कलकत्तेसे, **"गंगा"** भागलपुरसे, **"आदर्श"** हरद्वारसे, **"इस्लाम"** कानपुरसे, **"हंस"** काशीसे, **"युगान्तर"** लाहौरसे, **"उषा"** दिल्लीसे, **"प्रेमपत्र"** इलाहाबादसे, **"बालक"** दरभंगेसे, **"हिन्दी प्रचारक"** मदराससे, **"आर्यमहिला"** काशीसे, **"सम्मेलन पत्रिका"** प्रयागसे।

सब समागत स्वागत।

३—सहयोगियोंकी वैज्ञानिक सामग्री

हम चाहते थे कि प्रतिमास अपने सहयोगियोंकी वैज्ञानिक सामग्रीकी आलोचना करते रहें, परन्तु स्थाना-भावके सिवा और कई कारणोंसे भी ऐसा करनेमें हमने अपनेको असमर्थ पाया। वीस बरस पहले जब **"विज्ञान"** के जीवनका आरम्भ हुआ था, सामयिक पत्रोंमें वैज्ञानिक लेख बहुत कम निकला करते थे। अब तो वैज्ञानिक लेख दिये बिना कोई पत्र अपनेको पूर्ण नहीं समझता। दैनिकोंमें भी प्रायः सभी कुछ न कुछ ऐसी सामग्री देते हैं। लाहौरका **"हिन्दी मिलाप"** जो पंजाब प्रान्तमें हिन्दीका प्रचार करनेमें अन्यतम और अनुत्तम दैनिक है, प्रायः अपने प्रत्येक सातमें कमसे कम पाँच अंकोंमें तो अवश्य ही कोई न कोई अच्छा वैज्ञानिक लेख देता है। इस बातमें वह अपने और सभी दैनिक सहयोगियोंसे बढ़ा हुआ है। साप्ताहिकोंमें खँडवाका **"हिन्दी-स्वराज्य"** और कानपुरका **"प्रताप"** भी कोई न कोई वैज्ञानिक लेख या टिप्पणी आदिका देना अपनी विशेषता बनाये हुए हैं। ग्वालियरका **"जयाजी-प्रताप"** इस बातमें इन दोनोंकी अच्छी स्पर्धा करता है। वैज्ञानिक लेखोंकी अधिकतामें तो कभी-कभी उपर्युक्त दोनोंसे बढ़ा दीखता है। खँडवाका **"कर्म्मवीर"** तो शुद्ध साहित्यिक एवं प्रौढ़ राजनीतिक पत्र है। वैज्ञानिक लेखोंको वह भी अधिक स्थान दिया करे तो अच्छा हो। सहयोगी **"विकास"** सहारनपुरसे कुछ कम दम-खमसे नहीं निकलता। वह भी कोई न कोई ठोस और उपयोगी वैज्ञानिक अर्थशास्त्रीय या राजनीतिक लेख अवश्य देता है। उसकी साप्ताहिक डायरी हमको बहुत पसन्द आती है। सम्पादकीय अग्रलेख भी बड़े गंभीर और विचार-पूर्ण होते हैं। **"नवशक्ति"** का ढंग बहुत कुछ प्रतापसे मिलता जुलता है। खेद है कि **गरीबी** सम्बन्धी लेख-

माला वह जारी न रख सकी। "**हिन्दुस्तान**" भी प्रयागसे बड़ी धूमधामसे निकल रहा है। इसमें वैज्ञानिक लेख कभी कभी रहते हैं, परन्तु साहित्य और समालोचना इसकी विशेषता जान पड़ती है। समालोचनाएँ मारकेकी और प्रत्यालोचनाओंकी उत्तेजिका होती हैं।

"**मदारी**" को बन्दर नचाने और डुगडुगी बजानेसे कहाँ फ़ुरसत कि विज्ञानकी ओर ध्यान दे। "**खुदाकी राहपर**" खैराती खाँकी भी मदारीकी तरह पखवारे पखवारे फेरी हुआ करती है। लेखक लोग विज्ञानका कीमती सिक्का इनकी झोलीमें नहीं डालते। फिर भी जो टुकड़े माँग-जाँचकर लाते हैं उसीमें नोन मिर्च लगाकर स्वादिष्ट बना पाठकोंकी दावत करते हैं। इतना ही क्या कम है।

मासिकोंमें "**गंगा**" वैज्ञानिक लेख सबसे अधिक देती है। उसने तो **विज्ञानांक** ही निकाला था। उसकी धारामें ज्ञान-गंगाके साथ विज्ञान-जमुना भी मिली रहा करती है। खेद है कि उसमें इधर क्षीणता दृष्टिगोचर हो रही है। "गंगा" के बाद वैज्ञानिक लेखोंकी अधिकतामें "**विशालभारत**" और "**वीणा**" का नम्बर है। नीर-क्षीर-विवेकशील, "**हंस**" भी कभी-कभी विज्ञानके मोती चुगता है।

"**इसलाम**" मुहम्मदी मतका प्रचारक मासिक कानपुरसे थोड़े दिनोंसे निकलने लगा है। धर्म्म प्रचारके ही दृष्टिसे सही, नागरी अक्षरोंमें हिन्दीद्वारा इसलाम संस्कृतिसे भी हिन्दी पाठक परिचित हो जायँ यह अच्छा है। यह सन्तोषकी बात है कि "इसलाम" की नीति उदार है और अन्य सम्प्रदायोंपर आक्रमणका भाव नहीं है। हम तो यह चाहते हैं कि उदारताकी सीमा यहीं न बँध जाय। समन्वय और मेलकी ओर बढ़े। हिन्दुत्व और इसलाम दोनोंकी खूबियाँ मिलायी जायँ और दिखायी जायँ, चाहे इससे दोनोंका साम्प्रदायिक प्रचार भले ही घटकर उदार विश्व-व्यापी धर्म्मका प्रचार क्यों न हो जाय। हम अपने सहयोगीका हृदयसे स्वागत करते हैं।

"**काव्य-कलाधर**" का उदय कलकत्तेसे हुआ है। इसकी मन्द मधुर शीतल ज्योत्स्नामें काव्यकी पुरानी शैलीका आनन्द है। इसमें कोमल परिहासकी मिठास भी है, गभीर समीक्षा भी है और मनोरंजनकी प्रचुर सामग्री रहती है। जहाँ इसकी चटकीली चाँदनी है, वहाँ "छाया" का अभाव होना अचरजकी बात नहीं है। परन्तु हम तो दोनोंका मेल चाहते हैं। यद्यपि हम स्वयं चाँदनीके ही प्रेमी हैं, तथापि हिन्दीके कुछ पाठक जो छायापर ही फिदा हैं, "यथा......" उनके लिये भी कुछ छायावादी कविता रहा करे तो अच्छा है। हम सहयोगीको हृदयसे बधाई देते हैं।

"**आदर्श**" कहानी प्रधान साहित्यिक मासिक पत्र हरद्वारसे निकलता है। आकार विज्ञानका ही है। ४० पृष्ठ रहते हैं। वार्षिक मूल्य २)। इसके सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक सभी कुछ पं० रामचन्द्र शर्म्मा हैं। ऐसे अच्छे और सस्ते कहानीमय मासिकपत्रके निकालनेके लिये हम शर्म्माजीको हृदयसे बधाई देते हैं। इस पत्रकी विशेषता है "हमारा मासिक कहानी साहित्य" वाला आलोचनात्मक स्तंभ। इस स्तंभकी समालोचना रुचिपूर्ण, निष्पक्ष और न्याय्य हुआ करती है। इस स्तंभने "आदर्श" को अपने नामके अनुकूल बना दिया है। कहानियोंके अतिरिक्त लेख भी उच्च कोटिके ठोस और पठनीय होते हैं। एक धारावाही उपन्यास भी चलता रहता है। हमारे कहानीप्रधान मासिकोंमें यह पत्र अपना विशिष्ट स्थान रखता है। रा० गौ०

युगान्तर—लाहौरसे यह पत्र श्रीसन्तरामजीके सम्पादकत्वमें चार बरसोंसे निकल रहा है। इसका उद्देश्य इसके नामसे ही सूचित होता है। समाजकी रूढ़ियोंको ध्वस्त करके युगान्तर उपस्थित करना इसके एक-एक लेखसे प्रकट है। यह सामाजिक प्रश्नोंपर विचार करनेवाला एक ही निर्भीक पत्र है। इसने अपने चौथे वर्षके अन्तमें महापुरुषांक निकाला है। यह विशेषांक नवयुवकोंमें उद्योग और अध्यवसायका मंत्र फूँकनेवाला है। उनके सामने अच्छेसे अच्छे और ऊँचेसे ऊँचा आदर्श रखता है। युगान्तरके पृष्ठोंमें वैज्ञानिक लेख भी उत्तम कोटिके रहते हैं। यह सामाजिक पत्र अवश्य पठनीय है और इसके विचार मनन करने योग्य होते हैं।

रा० गौ०

४—टिप्पणियाँ

(१) उड़ती-नगरी

हिन्दू पुराणोंमें लिखा है कि एक असुरने विमानोंके तीन नगर आकाशमें रच रखे थे। वह उन्हीं नगरोंका

शासक था। ये नगर उड़ते-फिरते थे। धरती परके लोगोंको सहज ही नष्ट कर देते, लूट लेते और मनमानी करते थे। भगवान शंकरने इन्हें एक ही बाणसे नष्ट कर दिया। अभी तक यह कथा किसी प्राकृतिक घटनाका रूपक समझी जाती थी। विज्ञान इसे ऐतिहासिक तथ्य प्रमाणित करनेमें यत्नशील जान पड़ता है।

चार महीने होते हैं कि रूसका एक भीमकाय हवाई जहाज "मैक्सिम गोर्की" एक छोटे वायुयानसे टकरानेके कारण गिर पड़ा और नष्ट हो गया।

इसके ग्यारह कर्म्मचारी और छत्तीस यात्री भी मर गये। यह वायुयान २० वीं सदीका एक आश्चर्य था। इसमें ८ एञ्जिन थे। यह इसीलिये बना था कि सोवियट सरकार अपना प्रचार-कार्य जोरोंसे कर सके। ठीक सालभर पहले यह बनकर तैयार हुआ था। इसमें एक छापाखाना था जिसमें उसी प्रकारकी रोटरी मशीन थी जिससे आजकलके प्रसिद्ध दैनिक छापे जाते हैं। बेतारके तारसे समाचार पा हवामें ही एक समाचार पत्रका सम्पादन होता था और वह छापकर बाँट दिया जाता था। ८००० पर्चे प्रति घंटे छापे जा सकते थे। आकाशसे चित्र लिये जाते थे और वायुयान-पर ही उनके ब्लाक बना कुछ ही घंटे बाद वे अखबारमें छापे जा सकते थे। इसमें एक टॉकी मशीन भी थी। गाँवोंमें उतरकर अथवा हवामें उड़ते हुए टॉकी फिल्म प्रचार अथवा मनोरंजनके लिये दिखाये जा सकते थे। स्वयं हवाई जहाज के भीतर एक हॉल था जहाँ तमाशा हो सकता था। बेतार का यन्त्र तथा (व्हाउड स्पीकर) तारोच्चार भी था जिसके द्वारा हवामें आधे मील ऊपरसे व्याख्यान, घोषणा, गाना आदि पृथ्वीपरकी जनताको सुनाये जा सकते थे। सोवियट सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये इस आकाशवाणीका अत्यधि उपयोग किया जाता था।

जहाजके एक भागमें स्थित यात्रीको दूसरे यात्रीसे बात-चीत करनेके लिये चलकर जाना न पड़ता था। कमरेमें बैठे-बैठे आटोमैटिक टेलीफोनद्वारा बातचीत हो सकती थी।

एक भागमें एक चाय घर और पुस्तकालय भी यात्रियों-के उपयोगके लिये बना था।

(२) विनाशकारी किरणें

यह जहाज तो टकराकर नष्ट हो गया। परन्तु आजकल कई देशोंमें मृत्युकिरणोंकी खोज हो रही है। यह किरणें जिन मोटरों, वायुयानों, गाड़ियों आदि पर पड़ती हैं उनकी गति नष्ट हो जाती है। शरीरधारियोंके ऊपर पड़ती है, तो उन्हें कुछ गरमी मालूम होती है, फिर वह धीरे धीरे बेहोश होकर मर जाते हैं। इस किरणका आविष्कार अभी आरंभिक अवस्थामें है। इसका विकास हो रहा है। परीक्षाएँ जारी हैं। संभव है कि लीग-आफ-नेशंस आगे चलकर लड़ाई रोकने के लिये उसी तरह काममें लावे जैसे भगवान् शंकरने एक बाणसे त्रिपुरको नष्ट कर दिया था, या जैसे अपनी तीसरी आँखकी ज्योतिः किरणोंसे कामदेवको भस्म कर दिया था, या महर्षि कपिलने अपनी तेज तर्रार निगाहें फेरकर राजा सगरके साठ हजार पुत्रोंको राखका ढेर कर दिया था।

(३) अपने आप उड़नेवाला विमान

अब वायुयानको किरणोंद्वारा नष्ट किया जा सकेगा तो क्या वायुयानोंका उड़ना ही बन्द हो जायगा? नहीं। मनुष्य अपनी रक्षाका तो उपाय कर ही लेगा। लड़ाईके समयमें वह विना मनुष्यका बिमान चलाकर बम बरसावेगा। उसका **बेतारके तारद्वारा संचालन और नियन्त्रण होगा।** यह समाचार प्रकाशित हुआ है कि ब्रिटेनमें ऐसेही नये ढंगका हवाई जहाज बना है। जिसका नाम 'क्वीन बी' (रानी मक्खी) है। यह बिना चालकके चलाया जा सकेगा और निशानेबाजीके काममें लाया जायगा। इसका संचालन रेडियोद्वारा होता है। इसकी गति १०० मील प्रति घण्टेसे अधिक है, १० हजार फुटसे ऊपर उड़ता है और बेतारकेन्द्रमें गतिनिर्द्धारक यन्त्रका बटन दबानेमात्रसे सब तरहका उड़ान दिखा सकता है। पर संचालन केन्द्रसे १० मीलके घेरेमें ही उड़ सकता है।

शाही सेनामें इस प्रकारके कुछ हवाई जहाज कई महीनेसे काममें लाये जा रहे हैं, पर जन-साधारणपर यह बात कुछ ही हफ्ते पहले प्रकट हुई है। वायुविभागने "मैंचेस्टर गार्जियन"के एक संवाददातासे कहा है कि ये हवाई जहाज कई महीनेसे सफलतापूर्वक उड़ाये जाते रहे हैं और तोपखानेवालोंके लिये चांदमारीका काम देते रहे हैं। इसका गतिनिर्द्धारण इतना ठीक किया जा सकता है कि जहाज बिना किसी चालकके और जहांतक उसका

५—चयन

१—मरनेके ग्यारह साल बाद सशरीर घर आ गया

पटनेके एक रायबहादुरका विचित्र अनुभव

पटना १२ जुलाई—पटनाके अवसर-प्राप्त सरकारी वकील रायबहादुर विनोदबिहारी मजुमदारने गत ७ जुलाई-को बांकीपुरके सर-ज्वाला-थियोसोफिकल-हालमें भाषण करते हुए कहा कि गत मार्चमें मेरे पोतेकी सगाई पड़ी। संस्कारके समय लड़केका पिता जो सन् २४ में इस लोककी लीला समाप्त कर गया था, साक्षात् प्रकट हुआ। उसके साथ छः व्यक्ति और थे जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं देखा था। ये सातों व्यक्ति मण्डलमें आकर लड़कीके इर्द-गिर्द बैठ गये। और संस्कारमें भाग लिया। उस समय मेरे अलावा सारा परिवार, अनेक मित्र और बहुत सी स्त्रियाँ भी मौजूद थीं। लड़केने अपनी माताको भी पुकारा। वह मण्डपके दूसरी ओर बैठी थी। वह बड़ा ही हृदयग्राही दृश्य था। सबकी आँखोंमें आँसू आ गए। रायबहादुरका कण्ठ रुँध गया और उन्होंने बोलना बन्द कर दिया। प्रधान श्री आर० के० शरणने इस घटनाकी थियोसोफिकल दृष्टिकोणसे व्याख्या की। चौ० रघुनन्दन प्रसादसिंहने उसका हिन्दीमें उलथा किया।

२—ठोस पैट्रोलका आविष्कार

आगसे जलाये बिना नहीं जलेगा

लण्डन १४ जुलाई—न्यूयार्क यूनीवर्सिटीके स्कूल आफ एरोनौटिक्समें ठोस पेट्रोलका प्रदर्शन किया गया जिसकी कि मोटरों और हवाई जहाजोंके लिए बड़ी आवश्यकता थी। जब इसपर फटनेवाली ४ रैफिलकी गोलियाँ बड़े निकटसे चलायी गयीं तो यह तब भी न फटा। यह लाल रंगका गाढ़ा

पेट्रोल चले संचालनकेन्द्रके इर्द गिर्द एक नियत सीमाके अन्दर उड़ सकता है। और फिर जहां उतरना हो ठीक वहीं उतारा भी जा सकता है। समुद्रमें जहाजपरसे भी वह उड़ाया जा सकता है। इस तरहके जहाज निशाने-बाजीके कामके लिये तैयार किये गये हैं और उनपर उनके कल पुरजोंके सिवा और कुछ नहीं रहता।

जिन ऊँचाइयोंपर मनुष्यके जानेमें जोखिम है, वहाँ सहजमें यंत्र भेजकर अन्तरिक्ष-परीक्षा की जा सकती है। यदि पर्य्याप्त धन, शक्ति और बुद्धि लगायी जाय तो कभी अन्य ग्रहोंपर भी राकेटोंका भेजना और लौटा मँगाना संभव हो जायगा। रा० गौ०

४—बेतारकी खबर जो पकड़ी न जा सके

एक जर्म्मन वैज्ञानिकने दशांशमिति-लहरोंके द्वारा खबर भेजनेकी पद्धति निकाली है। १८ महीनेके प्रयोगों और परीक्षाओंके बाद जर्मन शिल्पविशारद इस तरंगको सन्देश भेजनेके काममें ला सके हैं। कहा जाता है कि इस तरंगमें कई बेजोड़ गुण हैं। वह किसी विशेष लक्ष्य-की ओर भेजी जा सकती है। वर्षा, कुहरे आदि वायुमण्डल की गड़बड़से उसमें रुकावट नहीं पड़ सकती और इस तरंगके द्वारा दो केन्द्रोंके बीच आने-जानेवाले सन्देशोंको कोई तीसरा पकड़ नहीं सकता। एक जर्मन इञ्जीनियरने रायटरके प्रतिनिधिसे कहा है कि युद्धकालमें यह नयी विद्युत्तरंग समाचार भेजनेके लिये बड़े कामकी साबित होगी।

२४ जूनको बर्लिनके पास एक झीलपर इस बातका प्रयोग करके दिखाया गया कि यह तरंग किस तरह ज्योति खम्भों और जहाजचालकों अथवा कुहरेमें पड़े हुए वायु-यानोंके पथप्रदर्शनके लिये काममें लायी जा सकती है। जहाज या वायुयानपर एक दिशाबोधक यन्त्र रख देनेसे उन्हें केवल किरणद्वारा निर्दिष्ट दिशामें चलाते रहनेसे ही काम चल जायगा।

५—दूरदर्शनी ग्रामोफोन

रेडियोद्वारा चित्र भेजना तो कबका संभव हो चुका है। अब ऐसा आविष्कार हुआ है कि कोई दृश्य और उसके शब्द एक चिपटे प्लेटपर अंकित कर लिये जाते हैं। इन्हें ग्रामोफोनकी तरह टेलीविज़न यंत्रपर लगानेसे परदेपर यह दृश्य देख पड़ेंगे और शब्द सुन पड़ेंगे। ग्रामोफोनसे केवल शब्द सुन पड़ते हैं पर यहाँ दृश्य भी दीखेंगे। रा० गौ०

शरबत सा है। यह डाक्टर एडोल्फ़ प्रशियनके अनुभवका परिणाम है जो कि १९१९से एक ऐसे ईंधनकी खोज कर रहे थे जो बिना किसी भयके सभी स्थानोंमें रखा जा सके और जबतक वास्तविकमें आग न लगायी जाय जल न सके। आविष्कारकने इसका एक ढेला एक गर्म प्लेटपर रखा जिसके नीचे गैसकी एक जैट बड़ी तेज जल रही थी। यह बिलकुल न बदला और इसके किनारे भली भांति काटे जा सकते थे। जब इसको दियासलाईसे जलाया गया तो यह मुँहके फूँकनेसे ही बुझ गया। आविष्कारकका कहना है कि बड़े एंजिनोंमें इसका प्रयोग करनेसे चाहे खर्च अधिक पड़े परन्तु छोटे एंजिनोंमे यह कम खर्च होगा। आविष्कारकका यह कहना है कि यह बड़ाही लाभदायक होगा और बिना किसी भयके सभी जगह रखा जा सकेगा तथा घरेलू प्रयोगमें भी लाया जा सकेगा। इस नये ईन्धनपर थोड़ी मात्रामें साधारण पेट्रोलसे लगभग दो पैसे प्रति गैलन अधिक खर्च आयेगा परन्तु अधिक मात्रामें सम्भव है कि इसपर एक आना और डेढ़ आना प्रति गैलन कम खर्चा आवेगा क्योंकि इसके लिए टैक्सी नलों तथा अन्य ऐसी वस्तुओंकी आवश्यकता न होगी।

३-मधु-मेह और देशी दवा

मधु-मेह बड़ा भयानक रोग है। इसमें पेट बिगड़ जानेसे मूत्रसे शर्करा जाने लगती है, और शरीरमें नये रक्त-का बनना-छनना कम हो जाता है जिससे रोगीका शरीर विषाक्त बन जाता है। मधु-मेहके रोगीको जरा-सी फुन्सी भी घातक हो जाती है। पाश्चात्य डाक्टरोंने कई औषधि-योंका आविष्कार किया है पर रामबाण ओषधि एक भी सिद्ध नहीं हुई। 'इंसुलीन'के इन्जेक्शनसे क्षणिक लाभ होता दिखाई देता है। जबतक पिचकारी दी जाती है, शर्कराकी मात्रा कम होती दीखती है—ज्योंही पिचकारी बन्द की कि वह अधिक मात्रामें जाने लगती है। 'आयुर्वेद'में मधु-मेहकी बड़ी सस्ती और सरल चिकित्सा बतलायी गयी है। **बेलकी पत्तीके दो तोले रसमें एक तोला शहद मिलाकर सुबह-शाम रोगी पिये तो उसकी शर्कराकी मात्रा घटकर कुछ महीनोंमें 'शून्य' हो जायगी।** वैद्यकी सलाहसे 'रस' की मात्रा बढ़ायी भी जा सकती है। एक सज्जन जो मधु-मेहसे पीड़ित थे, पैरमें घाव हो जानेसे बड़े व्याकुल थे। डाक्टरोंने अनेक इलाज किये, मगर कारगर न हुए। तब डाक्टरने उन्हें पैर कटवा डालनेकी सलाह दी। परन्तु उन्होंने एक वैद्यकी सलाहसे बेलकी पत्तियोंका रसही पीना शुरू किया। कुछही दिनोंमें घाव सूखने लगा और पेशाबमें शर्कराकी मात्रामें आश्चर्यजनक कमी हो गयी। यह सस्ती औषधि है। इसका प्रयोग होना चाहिये।

—स्वराज्यसे।

४-भूकम्पकी उत्पत्तिके कारण और इतिहास

भूकम्पकी उत्पत्ति और इतिहासपर श्रीयुत परेशचन्द्र सेन गुप्तका लेख आनन्द-बाजार-पत्रिका-में प्रकाशित हुआ है। प्रतापने उसका अनुवाद दिया है। हम उससे आवश्यक अंश यहाँ देते हैं—

जब यह देखा गया कि जिन देशोंमें ज्वालामुखी नहीं है और वहाँ भी भूकम्प आते हैं तो विद्वानोंने उसका दूसरा कारण ढूँढ़नेकी चेष्टा की। उन्नीसवीं सदीके अन्तमें इस सम्बन्धमें विशेष रूपसे गवेषणाएँ हुईं। जापानके आचार्य मिलनेने इस विषयमें काफी खोज की है। सम्भवतः यंगने १८०७ ई०में सर्वप्रथम इस बातका पता लगाया था कि जिस प्रकार वायुमें तरंगोंके रूपमें शब्द एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँचते हैं उसी प्रकार भूकम्प भी एक स्थानसे उत्पन्न होकर तरंग बनकर दूरतक फैल जाता है। आयर-लैंडके आचार्य मैलेटने भी गणितकी सहायतासे इस मतका समर्थन किया है।

हल्के और साधारण भूकम्पोंकी उत्पत्ति भूमितलसे बहुत नीचे नहीं होती, परन्तु भयंकर भूकम्प प्रायः पृथ्वीके केन्द्रस्थलसे उत्पन्न होते हैं।

पृथ्वी ऊपरसे जितनी ठोस और कठोर मालूम होती है वास्तवमें उसकी बनावट वैसी नहीं है। भूगर्भमें बड़े बड़े और गहरे गड्ढे मौजूद हैं और पहाड़ोंके वे टुकड़े एक दूसरेसे सहारा लेकर खड़े हैं। ज्वालामुखीके फटनेके साथ साथ जिस प्रकार जमीनमें कम्पन पैदा होती है उसी प्रकार जमीनके अन्दर इन गड्ढोंकी मिट्टी धँस जानेसे जमीन काँपने लगती है। इन कम्पनोंकी मात्रा गड्ढोंके आकार या अवस्थितिके ऊपर निर्भर करती है। हल्के भूकम्पोंका

पता नहीं लगने पाता परन्तु प्रबल कम्पनोंसे पृथ्वीतलपर प्रलयकाण्ड हो जाते हैं।

यह ऊपर बताया जा चुका है कि जमीनके अन्दर पहाड़ोंके खण्ड एक दूसरेसे सटकर अवस्थित रहते हैं। जब ये असमान दबावसे एकाएक अपने स्थानसे गिर पड़ते हैं उसी समय भूकम्पकी उत्पत्ति होती है।

मेनलेसिन डी बेलोरने यह सिद्ध किया है कि प्रशान्त महासागर और भूमध्य सागरके मध्यवर्ती देश भूकम्प प्रधान हैं। आचार्य्य जिनसका कहना है कि पृथ्वीका आकार दोनों ध्रुवोंपर कुछ चिपटा है परन्तु अब भीतरके दबावसे यह चिपटापन दूर होकर उसका आकार बिल्कुल गोल होने लगा है। इसका फल यह हुआ है कि पृथ्वीके गातपर एक कमज़ोर बेल्ट या पेटी उत्पन्न हो गयी है। इसी पेटीको 'बेलोरकी भूकम्प-प्रवण पेटी' कहते हैं ? इस पेटीपर प्रायः भूकम्प आया करते हैं।

यह भूकम्प-प्रवण पेटी भूमध्य-सागर टर्की, ईरान, हिमालयके पाद-देशसे होती हुई बर्मा और आस्ट्रेलियाको गयी है। इसकी दूसरी शाखा प्रशान्त महासागरसे होती हुई उत्तर और दक्षिण अमेरिकाके पश्चिमतटके किनारे चली गयी है। इस पेटीपर पृथ्वीके दो खास पहाड़ आल्प्स और हिमालय अवस्थित हैं। भूतत्वके विद्वानोंका कहना है कि ये दोनों पहाड़ अन्य पहाड़ोंकी तुलनामें आधुनिक हैं। और इनकी बनावट अभी पूरी नहीं हुई है। हिमालयकी अब भी वृद्धि हो रही है। इसके भीतर ही भीतर दबाव पड़नेसे जमीन धँसती रहती है और भूकम्पकी उत्पत्ति होती है।

भूकम्प कई प्रकारसे आ सकते हैं। कुछ भूकम्प सीधे ऊपरको (vertically) आते हैं, कुछ समानान्तर रूपसे (horizontally) और कुछ चक्करके साथ (rotary) आते हैं। प्रथम प्रकारके भूकम्पसे पृथ्वीतल भयंकर वेगसे हिलने लगता है और उसके कारण बड़े बड़े भारी पदार्थ भी ऊपरको उछल सकते हैं। सन् १७९७ ई०में इस प्रकारका भूकम्प दक्षिण अमेरिकाके रियोबम्बा नामक स्थानमें आया था। साधारणतः भूकम्प समानान्तर रूपसे आया करते हैं, और इनकी तरंगें एक ही ओर दौड़ा करती हैं। चक्करदार भूकम्पसे जमीनमें चक्कर उत्पन्न होते हैं। भूकम्पके साथ तरह-तरहके शब्द सुनाई पड़ते हैं।

सच तो यह है कि भूकम्प इस संसारमें नित्यकी ष्वि. है। विद्वानोंकी अनुमतिके अनुसार सन् १८४३से १८७२ तक संसारमें १७२४९ भूकम्प आये। अर्थात् प्रतिवर्ष औसतन ५७५ भूकम्प आये। जापान या आसाम प्रान्तमें जिस प्रकार भूकम्पके धक्के आया करते हैं उनको देखते हुए उपर्युक्त संख्यामें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है।

संसारमें आजतक जितने भूकम्प आये हैं और उनसे जितने व्यक्तियोंका निधन हुआ है उसकी एक तालिका नीचे दी जाती है:—

सन्	देश	मृत्यु-संख्या
१७५५	लिसबन	६०,०००
१७८३	कैलाब्रिया	३०,०००
१८५७	नेपल्स	१,२३,०००
१८९१	जापान	९६,९६०
१८९६	जापान	२९,०००
१९०८	मेलिना	१,००,०००
१९०५	इटली	३०,०००
१९२०	चीन	१–२ लाख
१९२३	जापान	१,४२,०००

भारतवर्षमें कई बार भयंकर भूकम्प आये, जिनमें भयंकरताकी दृष्टिसे बिहारका पिछला भूकम्प विशेष रूपसे उल्लेख-योग्य है। परन्तु क्वेटाके भूकम्पके आगे बिहारका भूकम्प भी हल्का जान पड़ने लगा। जलवायु-शास्त्र वेत्ताओंके कथनानुसार इस भूकम्पका उत्पत्ति-स्थान अफगानिस्तान है। अभी इस सम्बन्धमें और भी अनुसन्धान होता रहेगा। भूकम्पका पता सिस्मोग्राफ या सिस्मोमीटर यन्त्रसे लगाया जाता है। इस यन्त्रमें एक सुई लगी होती है जो कागजपर भूमिका कम्पन बता देती है। इन्हीं अंकित कम्पनोंकी सहायतासे वैज्ञानिक भूकम्पकी स्थिति, परिमाण और दिशाका निर्णय करते हैं।

मनुष्य विज्ञानकी सहायतासे निरन्तर प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहा है। कभी कभी इस चेष्टामें उसे प्रकृतिकी ओरसे भयंकर हमले सहने पड़ते हैं। परन्तु मनुष्य फिर नये उत्साहसे अपना अनुसन्धान आरम्भ करता है। शायद एक दिन ऐसा आवेगा जब विज्ञानकी सहायतासे मनुष्यजाति भूकम्पसे आत्मरक्षाके कुछ उपाय ढूँढ़ निकालेगी।

५—सफेद बाल काले करो

(पं० शिवचन्द्र वैद्य, हरद्वार)

१२ वर्षकी अवस्थासे लेकर २० वर्षके लाखों जवान आजकल बूढ़े देखे जाते हैं। छोटे छोटे बालक स्कूल-कालेजोंमें सिरके सफेद बालोंको देखकर रो रहे हैं और उनके माता-पिता कालेजके गुरु प्रोफेसर किंकर्त्तव्यविमूढ हैं। कोई इलाज नहीं करते।

इसका मुख्य कारण जहाँ ब्रह्मचर्य आदिका अभाव है, वहाँ भोजनमें नमककी अधिकता भी एक प्रधान कारण है। आजकल नमक-मिर्चका बहुत दौरदौरा है। नमकीन चाट भल्ले पकौड़े तथा खौंचेके अन्य अन्धाधुन्ध लाल मिर्चके मिले हुए पदार्थोंके खानपानसे बाल सफेद होते हैं।

अधिक नमक, खटाई, गुड, तेल, लाल मिर्चका व्यवहार पित्तको बढ़ाकर बल क्षीण करके शिरकी त्वचामें घुसकर छोटी उम्रमें ही बाल सफेद कर देता है। नवयुवक उपर्युक्त वस्तुओंसे नफरत करके छुट्टियोंमें हमारे निम्नलिखित प्रयोगको करें जिससे १ मासमें ही फिरसे बाल काले हो जायँगे।

लिसोढ़ा १ तोला, गुलबनफशा ६ माशा, बहेड़ेका छिलका ६ माशा, बीदाना १ तोला, मिसरी ४ तोला। सबको कुचलकर डेढ़-पाव पानीमें पकाकर जब १० तोला शेष रहे प्रातःकाल पी लेवें। दूध-चावल खावें। नमक एक मासतक त्याग देवें।

६—तुलसी अनेक रोगोंकी दवा

कविराज सुखरामप्रसाद बी० एस० सी० ने पटनेके अंग्रेजी अखबार 'सर्चलाइट'में तुलसीके गुणपर एक लेख लिखा है जिसका मुख्य अंश हम यहाँ देते हैं—

यह प्रयोग सिद्ध है कि अगर तुलसीका रस शरीरमें चुपड़ लिया जाय तो मच्छड़ कभी पास नहीं आते। इस विषयपर सर जार्ज बर्डवुडका लिखा हुआ यह विवरण दर्शनीय है—

"बम्बईमें जब विक्टोरिया गार्डन [चिड़ियाखाना] और अलबर्ट म्यूजियम (अजायबघर) बनाया गया उस समय जो आदमी वहाँ काम करते थे मलेरिया ज्वरसे बहुत कष्ट पाते थे। वहांके हिन्दू मैनेजरके कहनेपर बगीचे भरमें तुलसीके पेड़ और उसी तरहकी सुगंध देनेवाले दूसरे पेड़ जो मिले लगा दिये। इससे मच्छड़ोंका उपद्रव एकदम घट गया और उन लोगोंमेंसे ज्वर तो बिलकुल ही गायब होगया जो उस बगीचेमें रहते थे या काम करनेके लिये ठहरे हुए थे।"

शाही मलेरिया-सम्मेलनने भी निश्चय किया है कि तुलसी मलेरियाके लिये अच्छी दवा है। आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें भी तुलसीका रस मलेरिया बुखारकी उत्तम ओषधि बताया है। शार्ङ्गधरमें लिखा है कि तुलसीके पत्तेका रस अगर काली मिर्चके चूर्णके साथ लिया जाय तो मलेरिया ज्वर दूर हो जाता है।

मलेरियाके सिवा दूसरे अनेक रोगोंके लिये भी तुलसी उपयोगी दवा है। उसके पत्तेका रस नीबूके रसमें मिलाकर दाद और खुजलीपर लगाया जाता है। इससे चमड़ा मुलायम हो जाता है, चेहरेके काले दाग मिट जाते हैं और उसकी खूबसूरती बढ़ जाती है। यह सफेद कोढ़की भी अच्छी दवा है। सूखी पत्तीका सफूफ बनाकर नाकके रोगमें सुंघनीके तौरपर इस्तेमाल करते हैं। पत्तेका रस कानमें डालनेसे कानका दर्द अच्छा हो जाता है। पत्तोंके काढ़ेसे बच्चोंके पेटकी बीमारी दूर हो जाती है। ताजा रस इलायचीका थोड़ा सा चूर्ण मिलाकर देनेसे सब तरहकी कै रुक जाती है। एक तोला ताजा रस एक माशा काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर सबेरे लेनेसे किसी प्रकारका मलेरिया ज्वर नहीं होता। कहा जाता है कि तुलसी साँप काटनेकी भी दवा है। साँप काटनेके बादही तुलसीके कुछ पत्ते खाने चाहिये और उसकी जड़ मक्खनमें घिसकर साँप काटनेकी जगहपर लेप करना चाहिये। जब लेपका रंग सफेदसे काला हो जाय तब उसे बदल देना चाहिये। कहते हैं कि इस तरह सारा विष निकल जाता है।

तुलसी सर्दी और खाँसीके लिये बहुत अच्छी दवा है। पत्तोंका काढ़ा, चीनी और थोड़ा गायका दूध मिला देनेसे चायका काम देता है और उससे थकावट दूर हो सकती है तथा सर्दी और खाँसीसे बचाव हो सकता है। नीचे लिखा नुसखा कुकुरखाँसीके लिये बहुत बढ़िया दवा है, मैं स्वयं अपने कितनेही रोगियोंपर इसे आजमा चुका हूँ—

तुलसीकी मंजरी, बच, पीपल, मुलेठी, यह चारों आधा-आधा तोला और चीनी ढाई तोला लेकर सबको आध

सेर पानीमें पकावे और आध पाव काढ़ा रह जाय तो उतार ले। बच्चोंको दिनमें छः बार एक एक चम्मच दे।

तुलसीके बीजमें भी बड़ा भारी गुण है। वह वीर्यको गाढ़ा करता और बढ़ाता है। आजकल बहुतसे युवक धातु-सम्बन्धी रोगोंसे पीड़ित रहते हैं और अन्तमें नपुंसक हो जाते हैं। जो लोग अपना इलाज प्रवीण वैद्योंसे नहीं करा सकते या कीमती दवाएँ नहीं खरीद सकते उनके लिये एक सीधा सादा नुसखा दिया जाता है जिसे मैं अपने अनेक रोगियोंपर अच्छी तरह आजमा चुका हूँ--

तुलसीके बीजका चूर्ण १८ ग्रेन और पुराना गुड़ ३६ ग्रेन। दोनोंको मिलाले और सुबह शाम गायका ताजा और खालिस दूधके साथ खाय। यह दवा अगर लगातार कुछ दिन खायी जाय तो निश्चय फायदा करेगी बशर्ते कि आदमी संयम, सादगी और पतिव्रतासे रहे। तुलसीकी जड़ पानीके साथ खानेसे धातु गिरनेकी बीमारी अच्छी हो जाती है।

आश्चर्य नहीं कि इन्हीं सब गुणोंके कारण तुलसी हिन्दुओंमें इतनी मान्य हुई हो। हरएक आदमीको अपने घरके पास तुलसीका पेड़ लगाना चाहिये क्योंकि इसकी महँकसे हवा साफ होती है और यह पेड़ भी कितनीही बीमारियोंमें इस्तेमाल किया जा सकता है।

७-आजकलके विश्वामित्र लूथर बरबैंक

[पं० गोपीवल्लभ उपाध्याय]

भारतवर्षमें नारियल और भैंस इन दो चीजोंको देखकर लोग अनायास ही प्रतिसृष्टि निर्माण करनेवाले विश्वामित्रका स्मरण करने लग जाते हैं। क्योंकि पौराणिक प्रमाणके अनुसार ब्रह्मदेवसे स्पर्धा करनेके लिये राजर्षि विश्वामित्रने प्रतिसृष्टि निर्माण की थी। इस कथाका रहस्य वैज्ञानिक दृष्टिसे भले ही किसी अन्य रूपमें प्रकट किया जा सकता हो, किन्तु विश्वामित्रकी कठिन तपस्या और उनके ब्रह्मर्षिपद प्राप्त करनेकी घटनाको असत्य नहीं ठहराया जा सकता। अर्थात् जहाँ भी कोई अद्भुत या अपूर्व वस्तु दिखाई देती है, अनायास ही विश्वामित्रका स्मरण होने लगता है। किन्तु इस बीसवीं शताब्दिमें एक दो नहीं, ऐसे बीसियों विश्वामित्र पैदा हो गये हैं, जो अपनी अद्भुत कृतियोंद्वारा महर्षि विश्वामित्रकी अलौकिकता को सामान्य सिद्ध कर रहे हैं।

नयी दुनिया अथवा पाताल-लोक, अमेरिकाका कृषि-शास्त्र-विशेषज्ञ लूथर बरबैंक आधुनिक विज्ञान-युगका सर्वश्रेष्ठ विश्वामित्र माना जाता है। इस महापुरुषने कृषिशास्त्र में इतनी अद्भुत क्रान्ति कर दिखायी है कि यदि इसे दूसरा ब्रह्मदेव भी कह दिया जाय तो अनुचित न होगा। अपनी इस सफलताका रहस्य प्रगट करते हुए लूथरने लिखा है कि—"मेरी समस्त खोज एवं आविष्कारोंका आरंभ आलूके बीज प्राप्त होनेके दिनसे हुआ। आज मेरे नामसे आलूकी जो जाति प्रसिद्ध है वह इन्हीं बीजोंके कारण। अमेरिकामें बहुत बड़े परिमाणमें आलूकी खेती होती थी, किन्तु वे बहुत ही छोटे और लाल रंगके होते थे तथा अधिक दिनोंतक टिक नहीं सकते थे। इसलिए उनसे बड़ा और सफेद रंगका अधिक दिनोंतक न बिगड़नेवाला आलू तैयार करनेके लिए आलूके पौधोंपर अलग-अलग जातिकी कलमें बाँधना शुरू किया। किन्तु उनमें फूल आनेपर भी बीज पैदा न हो सके। इस प्रयोगकी अवस्थामें ही मुझे उपर्युक्त प्रकारके बीजोंका एक गुच्छा हाथ लगा, उस समय मेरी बिलकुल ही वही दशा हुई जो किसी ज्योतिषीको नवीन ग्रहका पता लगनेपर होती है।

आलुओंका बड़ा प्रयोग

"यह बात नहीं है कि आलुओंके बीजका गुच्छा इससे पहले किसीको प्राप्त न हो सका हो, किन्तु फिर भी वह बहुत ही कम मिलता था और लोग उसका उपयोग करना भी प्रायः नहीं जानते थे। पर मैंने जब उस बीजको बोकर देखा तो तेईस बीजोंसे पूरे तेईस ही पौधे उत्पन्न हुए। अर्थात् एक भी बीज नष्ट न हुआ। और वे सब पौधे मामूली पौधोंसे दूसरी तरहके तथा मजबूत दिखाई देते थे। फिर भी मैंने उनमेंसे चुने हुए दो पौधोंको वहाँसे निकाल रक बड़ी ही सावधानीके साथ अपने 'बरबैंक' नामक आलूकी नयी जाति निर्माण की। मेरे सारे प्रयत्नोंका आरम्भ इसी खोजके कारण हुआ। क्योंकि इस आविष्कारके कारण जहाँ मेरी ख्याति बढ़ी, वहीं मुझे द्रव्य भी यथेष्ट मिला। उसी समयसे मैंने अपने विषयमें तो यह विश्वास कर लिया कि यदि कोई व्यक्ति अपनी बुद्धिके आधारपर प्राकृतिक जीवन-सृष्टिमें भी कोई प्रयोग करके देखना चाहे तो उसे सफलता मिल

सकती है। साथ ही प्रकृति उसमें, बाधा न डालकर, सहायता ही करती है। उसी अवसरमें डार्विनकी 'डिव्हेरिएशन आफ एनिमल एण्ड प्लेन्ट्स अण्डर डोमिस्टिकेशन नामकी पुस्तकमें मेरे पढ़नेमें आयी। इस पुस्तकमें मेरी प्रतिभाको अपूर्व स्फूर्ति मिली। क्योंकि डार्विनका सिद्धान्त यह था कि प्राणियों अथवा वनस्पतियोंमें परिवर्तन या विभिन्न जातियाँ निर्माण करनेके लिये 'क्रास-ब्रीडिंग' या विजातियोंकी कलमें बाँधनेसे सफलता प्राप्त हो सकती है और इस प्रकार हम चाहे जिस जातिके गुणधर्म किसी विशेष जातिमें लाकर उन्हें स्थायी बना सकते हैं। सन् १८७५ ई०में जब कि मैं २६ वर्षका था, केलिफोर्निया गया। उस समय मेरे साथ अपने तैयार किये हुए बरबैंक जातिके केवल दस ही आलू थे। किन्तु उन्हींके कारण वहाँ मेरा भाग्योदय हुआ। वह इस प्रकार था:—

सफलताका रहस्य

केलिफोर्निया पहुँचकर जैसेही मैंने निश्चय किया कि बहुत बड़े परिमाणमें अपने इन आलुओंकी पैदावार की जाय, ठीक उसी अवसरमें मैंने सुना कि एक ग्राहकको 'प्रून' जातिके बीस-हजार पौधोंकी आवश्यकता है। किन्तु उसकी शर्त यह थी कि ये पौधे उसे नौ-महीनेकी अवधिमें मिल जाने चाहिये। पर दैवयोगसे कोई भी नर्सरी या डिपोवाला उसकी माँग पूरी न कर सका। अतः मुझसे इस विषयमें पूछा गया। किन्तु मेरा मन यह विश्वास दिला रहा था कि इस माँगकी पूर्ति की जा सकती है। फलतः पूरे २४ घण्टे विचार करनेके बाद मैंने उसे इकरारनामा लिख दिया। इसके बाद "शुभस्य शीघ्रम्"के अनुसार मैंने बादामके पौधे लगाये। क्योंकि मेरे प्रयोगमें सबसे अधिक बलवान और जल्दी पैदा होनेवाले वृक्षोंकी आवश्यकता थी। मैंने बीस-हमार बादामके पौधोंपर जरदालूकी (प्रूनकी) कलमें बाँध दीं किन्तु उस समय मुझे यह ध्यान रखना था कि बादामके पौधे भी नष्ट न हों और उनके जीवन-रस द्वारा 'प्रून' की कलमोंको पूरा-पूरा पोपण मिल सके। इसलिये मैंने बादामके पौधोंके सिरे बिलकुल ही न तोड़कर जहाँ-के-तहाँ लटकते हुए छोड़ दिये। इस तरह वे सिरे भी नष्ट न होने पाये और 'प्रून' की कलमोंको भी यथेष्ट पोपण मिलने लगा। इस प्रयोगमें आशातीत सफलता प्राप्त हुई और कुछही दिनोंमें मैंने बादामके बगीचेमें 'प्रून' के पौधे तैयार कर लिये। इस प्रकार निश्चित समयके पहलेही 'प्रून'के १९५०० पौधे तैयार देखकर वह खरीदार आश्चर्य चकित रह गया। उसे यह भ्रम होने लगा कि मैंने जादूका तो कोई प्रयोग नहीं कर दिखाया है! उसने प्रसन्नता-पूर्वक निश्चित रुपया मुझे दिया और पौधोंको वह ले गया, किन्तु उसी दिनसे मेरे लिए बहुत बड़े पैमानेपर इस प्रकारके प्रयोग करनेका मार्ग खुल गया। मैंने एक साथ विभिन्न जातियोंके दस दस-हजार प्रयोग आरम्भ कर दिये और बारह कक्षोंकी एक क्यारी-में मैंने पाँच-सौ प्रकारके फल तैयार कर दिखाये। इसी प्रकार मैंने गुलाब, इरिस और 'ग्लेडियालस्'की भी विभिन्न आठ-हजार जातियाँ तैयार कर दिखायी हैं।

विश्वामित्री फल-फूल

किसी समय मैंने पौधोंके लिए एक एकड़ जमीन जमीन खरीदी। सन् १८८३में मेरे पास ८ एकड़ जमीन हो गयी। किंतु आगे चलकर जब मुझे इस धन्धेसे उपराम हो गया, तब मैंने दूकानदारी छोड़कर अपना पूरा समय ही प्रयोग करनेमें बिताना आरंभ किया। फलतः सन् १८९३में मैंने एक चमत्कार करके भी दिखला दिया। वह इस प्रकार कि उस वर्ष मैंने अपने यहाँके बीज पौधोंका एक सूचीपत्र छपवाया और उसके मुखपृष्ठपर लिखा कि 'आजतक सृष्टिमें कभी उत्पन्न न हुए हों, इस प्रकारके फल-फूलके बीज-पौधे हमारे यहाँ मिल सकते हैं।' उस सूचीपत्रमें मैंने बिलकुल ही नयी और ताज़ी तैयार की हुई जातियोंके पौधे, फल और फूलके विषयमें पूरी-पूरी जानकारी लिख दी थी।

मेरी इस खोजके कारण चारों ओर अजीब हलचल पैदा हो गयी। किसीको भी उसमें सचाई न जान पड़ी। जो लोग इस व्यवसायके मर्मज्ञ थे, वे भी मुझे धूर्त और मायाचारी मानने लगे। कुछ लोगोंने ईर्ष्यावश मुझे पाखंडी और मेरे प्रयोगोंको धार्मिक दृष्टिसे भ्रष्ट एवं अग्राह्य बताना भी आरंभ कर दिया। साथ ही "ब्रह्मदेवके पिता" कह कर मेरा मज़ाक भी उड़ाया जाने लगा। जब बीज-पौधोंका एक व्यापारी उस सूचीपत्रको देखकर मेरे यहाँसे माल खरीदने आया तो कई लोगोंने मेरी भरपेट निन्दा करके उस खरीदारको ही पागल बना दिया। किंतु जब

मैंने उस व्यापारीको साथ ले जाकर प्रत्यक्ष ही अपनी वाटिकामें सब पौधे दिखलाये तो वह इतना प्रसन्न हुआ कि केवल सात ही पौधे चुनकर उसका मूल्य उसने छः-हजार डालरके रूपमें दे डाला !! उसी दिनसे वह मेरा स्थायी खरीदार बन गया।

चुनावकी चतुराई

यह बात मैं अभिमान-पूर्वक कह सकता हूँ कि एक विषयमें मुझे अन्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा विशेष सिद्धि प्राप्त हुई है वह यह है कि कलम बाँधते समय मैं जो चुनाव करता हूँ वह अचूक होता है। मेरी घ्राणेन्द्रिय की शक्ति भी इतनी तीव्र एवं सूक्ष्मग्राही है कि, मेरे जितना किसीको सन्देहतक नहीं हो सकता। उस समय मैं अच्छी या बुरी बासका भेद तत्काल बतला सकता हूँ। मैं जिन-जिन कलमोंको चुनता हूँ उनके गलेमें चिन्ह-स्वरूप एक गलपट्टा या नेकटाई बाँध देता हूँ और बाकी बचे हुए पौधोंको निकम्मा होनेसे मैं उखाड़कर फेंक देता हूँ।

"मेरी परीक्षाके अचूक होनेका एक ही उदाहरण मैं यहाँ देना चाहता हूँ। एक बार मेरे बगीचेमें प्लम पौधोंकी छटनी हो रही थी। उस समय वहाँ पूरे पैंतीस-हजार पौधे थे। उसी अवसरपर वहाँ प्रसिद्ध कृषिशास्त्रज्ञ जज श्री लेब आ पहुँचे। उन्होंने मेरी आज्ञासे उखाड़े हुए निकम्मे पौधोंका बहुत बड़ा ढेर देखकर कहा कि 'अपनी विशेषज्ञताके अभिमानमें इतने बढ़िया पौधोंको उखाड़ डालनेमें क्या कोई विशेषता है ?' किन्तु इसपर अप्रसन्न न होते हुए मैंने शांति-पूर्वक कहा कि 'मैं बहस नहीं करता, किन्तु इस ढेरमेंसे आप जो चाहें, उन दस-पाँचको ले जाइये और लगाकर देखिये। यदि उनमें फल आ जायँ तो मुझसे कहिये।' यह सुन जज साहबने मेरे द्वारा निकम्मी बतलायी हुई छः और मेरे द्वारा चुनी हुई छः इस प्रकार बारह कलमें ले जाकर अलग-अलग अपने बगीचेमें लगवायीं। इसके पाँच वर्ष बाद उन्होंने इस आशयका पत्र भेजा कि 'तुम्हारी छटनी सचमुच ही ठीक सिद्ध हुई। बागबानीके विशेषज्ञ होनेके विषयके मेरे अभिमानको तुमने एकदम चूर कर दिया। यदि पाँच वर्ष पूर्व कोई मुझसे यह कहता कि मैं केवल देखकर ही तुम्हारे पौधोंके विषयमें भविष्यकी कुछ बातें कह सकता हूँ, तो मुझे कभी उसपर विश्वास न होता और अवश्य ही मैं उसे पागल करार देता। किन्तु अब मुझे पूर्ण रूपसे आपकी विशेषज्ञताका कायल होना पड़ता है। आपके चुने हुए पौधोंके फल प्रतिवर्ष बढ़ते जा रहे हैं और इतने बढ़िया एवं पुष्ट तथा सुस्वादु होते हैं कि उनकी बराबरी कोई दूसरे फल नहीं कर सकते।'

"सारांश, कलमोंकी छटनी करनेके विषयमें जो अमोघ ईश्वरदत्त शक्ति मुझमें है, वही मुझे सफलता प्रदान करनेमें प्रधान रूपसे कारणीभूत हुई है। मेरे प्रयोगसे पहिले बाजारमें बिकनेवाले प्लम् छोटे होते थे, उनका स्वाद भी खट्टा था और बाहर दूर देशोंमें भेजनेके लिए वे निरुपयोगी सिद्ध होते थे। किन्तु अब मैंने उनके इन सब दोषोंको दूर कर दिया है। साथ ही उसकी गुठली या बीजके बड़े होनेकी बाधा भी दूर कर दी हैं। आजका प्लम् बाजारमें देखकर पिछले प्लमूकी बातका स्मरण दिलानेसे लोग नाक-भौं सिकोड़ने लग जाते हैं।"

लूथर बरबैंककी इस अनुभव-पूर्ण वाणीसे क्या इस देशके कृषि शास्त्रज्ञ या बड़े-बड़े कृषि-विशारद कुछ स्फूर्ति प्राप्त कर सकते हैं ? भारत जैसे कृषि प्रधान देशमें यदि वे लोग चाहें तो इतनी सरलतासे और थोड़े ही परिश्रमसे कृषिविद्या एवं बागबानीमें विविध प्रयोगों-द्वारा अद्भुत सफलता प्राप्त कर सकते हैं, जो उन विदेशियोंको बहुत कुछ खर्च करनेपर भी प्राप्त नहीं हो सकती। भारतको भूमि उर्वरा होनेके साथ ही उसे प्रत्येक ऋतुके अनुकूल वातावरण एवं जल-वायुकी जो ईश्वरदत्त सुविधा प्राप्त है, वह संसारके अन्य किसी भी देशको नहीं है। आवश्यकता है केवल दृढ़ता और लगनके साथ इस कार्यमें जुटनेकी ! देखें परमात्मा भारतके इन प्रेमियोंको कब वह सुबुद्धि प्रदान करता है। (संकलित)

८—पपीते के गुण

यद्यपि पपीते बाजार में अंगूर, सेब आदिकी अपेक्षा बहुत सस्ते बिकते हैं, फिर भी वे गुणोंमें अन्य फलोंकी अपेक्षा कई गुने अधिक हैं। पपीतेमें शरीर-पोषणके तत्व (विटामिन) प्रायः अन्य सब फलोंसे अधिक होते हैं। विटामिन ए० जी दूध-दही, मक्खन, हरे शाक आदिमें पाया जाता है। पपीतेमें भी अच्छे परि-माणमें होता है, मक्खनकी अपेक्षा पपीतेमें विटामिन ए०

आधा होता है। इसके अतिरिक्त विटामिन बी सी और डी भी उसमें काफी परिमाणमें होते हैं। कई डाक्टरोंका मत है कि यदि बालकोंको स्वतंत्रतापूर्वक पपीते खानेको दिये जाँय तो अगली पीढ़ीके स्वास्थ्य और ऊंचाईमें काफी वृद्धि हो और १०० वर्षतक जीवित रहनेवालोंकी भी संख्या बहुत बढ़ जाय। (संकलित)

९—सर्प और सर्प-दंश जहरीले सांपोंकी पहिचान और चिकित्सा

अफ्रीकामें लहसुनके उपयोगसे साँपके काटेको अच्छा किया जाता है। रायचूरसे एक व्यक्तिने प्रकाशित कराया है कि जैसे ही साँप काटे मज़बूत रस्सीसे कटे हुए स्थानसे कुछ ऊपर बाँध दो जिससे रक्तमें ज़हर प्रवेश न कर सके। प्रत्येक तीन-चार मिनिटपर रोगीको एक चम्मच 'सिरका' देते रहना चाहिये। जब दर्द बन्द हो जाय तो 'सिरका' बन्द किया जा सकता है। उसी समय शरीर-भरमें 'सिरके'की ज़ोरोंसे मालिश भी की जानी चाहिये। विशेषकर घावपर खूब मालिश होनी चाहिए। इस तरहकी मालिश कुछ समयतक होती रहना आवश्यक है। यदि जहर खूब चढ़ा मालूम हो और रोगी 'बेहोश होने' लगे तो उसे जबतक प्रति मिनिट चम्मचभर 'सिरका' देते रहना चाहिये। इससे सर्पदंशसे शरीरकी जो गर्मी कम होने लगती है, वह न होगी और शरीरकी गर्मी बनी रहेगी। कभी-कभी 'रोगी'को होशमें लानेके लिये एक शीशी 'सिरका' भी खर्च हो सकता है। जब रोगीको पेटमें असह्य जलन प्रतीत होने लगे तो 'सिरकेकी खुराक' कमकर दी जानी चाहिये। सर्पदंशका यह इलाज सस्ता और सीधा है। डाक्टरोंको इसे आजमाना चाहिये।

देहातोंमें सर्पके काटनेपर केवल झाड़फूँकमें ही नहीं रह जाना चाहिये। नजदीकसे-नजदीक अस्पतालमें रोगीको शीघ्र ले जाना चाहिये! सर्पके काटते ही मजबूत रस्सीसे काटे हुए स्थानके ऊपरी भागको बाँध देना चाहिये। तभी आगेके इलाज कारगर हो सकते हैं।

यहाँ यह भी बतला देना आवश्यक है कि यदि साँपके काटे व्यक्तिको अस्पताल ले जाना संभव न हो तो उसके वस्त्र ढीले करके आरामसे लिटा देना अच्छा है और बीच-बीचमें सिरका या, जहाँ वह भी उपलब्ध न हो वहाँ, गरम दूध, गरम शोरबा आदि एक दो घूट प्रति दो चार मिनिटपर पिलाते रहना चाहिये। रोगीको शांतिके स्थानमें ही विश्राम करने देना चाहिये। उसके कानोंमें ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाना इसकी आँखोंमें मिर्च आदि भरना मूर्खता ही है। पट्टी बाँधनेके संबंधमें एक बात और विचारणीय है। सर्प, ज्योंही काटनेके स्थानमें अपना विष प्रवेश करता है त्योंही वह रक्तमें दौड़ने लगता है। अतएव काटते ही उसी क्षण पट्टी बाँधनेसे कुछ लाभ संभव है। पर ज़रासी देर हो जानेपर तो पट्टी भी बेकाम हो जाती है। सभी साँप विषैले नहीं होते। कई साँपोंके काटनेका इलाज तो केवल मनको झाड़ फूकसे बहलानेसे भी अच्छा हो जाता है क्योंकि उसमें विष रहता ही नहीं। विषैले साँपकी चिकित्सा बड़ी सावधानीसेकी जानी चाहिये। विषैले सांप मि० डब्ल्यू वार्कलेके कथनानुसार 'गजभरकी लम्बाईके भी नहीं होते', वे कुंडलिनी मारकर ही काट सकते हैं। उनके काटे हुए स्थानमें दो गहरे छेद होते हैं जिनमें एक-दो खूनके बूँद भी छलछला उठते हैं। इन्जेक्शनकी सुईके समान वह व्यक्तिके शरीरमें विषका प्रवेश अपने दाँतोंको गड़ा कर करता है। इन दांतोंके सहारे साँपके विषकी थैली अपना खजाना (विष) लुटाती है। यह थैली जब एक बार खाली हो जाती है तो उसे भरनेके लिये पर्याप्त समय भी लगता है। अतः रोगीका इलाज करते वक्त यह भी देखना होता है कि काटनेवाले सर्पकी विषकी थैली खाली थी अथवा भरी। यदि विष ज्यादा मात्रामें शरीरमें प्रविष्ट हो चुकता है तो रोगी का बचना जरा कठिन हो जाता है। पर कई बार तो 'रोगी' भय ही में बेहोश हो जाता और मर जाता है। किन्तु सच बात तो यह है कि कई साँपोंकी जातियाँ ऐसी हैं जिनका काटा हुआ व्यक्ति मरता ही नहीं। बिना विषके साँपोंके काटे हुएकी पहचान यह है कि काटे हुए स्थान पर चार लाइनोंमें स्पष्ट छोटे छोटे छिद्र दिखलाई देते हैं और सारे घावमेंसे रक्तकी बूंदे छलक पड़ती हैं। इन बिना जहरके काटे सांपोंका इलाज यही है कि काटे हुए स्थान पर घावको साफ करके पोटेशियम-पर-मैगनैट आदि दवा भर दी जानी चाहिये।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४१ } प्रयाग, कन्यार्क, सं० १९९२ विक्रमी, सितम्बर, सन् १९३५ ई० { संख्या ६

मंगलाचरण

ॐनमो भगवते गणेशाय। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्व-
मसि। त्वमेव केवलं कर्त्ताऽसि। त्वमेव केवलं
धर्त्ताऽसि। त्वमेव केवलं हर्त्ताऽसि। त्वमेव सर्वं
खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्।
ऋतं वच्मि। सत्यं वच्मि। अवत्वं माम्।
अव वक्तारम्। अव श्रोतारम्। अव दातारम्।
अव धातारम्। ॐभगवते गणेशाय नमः।

डाक्टर गणेशप्रसादका वंश और जन्म

[बाबू रामइकबाललाल श्रीवास्तव्य, एम० ए०, एल० टी०, असिस्टेन्ट मास्टर ए० वी० हाईस्कूल, बलिया]
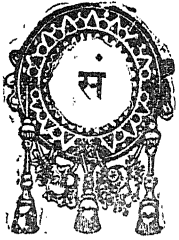
संसार-प्रसिद्ध भारतके सर्वोत्कृष्ट गणितज्ञके जन्म-स्थान होनेका गौरव युक्त प्रान्तके सबसे छोटे नगर बलियाको प्राप्त हुआ था। गणेशप्रसादजीके प्रपितामहके पिता मुन्शी सुमिरनलाल कानूनगो पुरानी बस्तीके मोहल्ला सतिबाड़ाके निवासी थे। आप वजीरापुर, नाऊपाली, जलालपुर मखदुमहींके जमींदार थे। मुन्शी सुमिरनलालके दो पुत्र मुन्शी दूधनाथ और बाबू देवीप्रसाद कानूनगो थे। मुन्शी दूधनाथके दो पुत्र महताबलाल और रामरक्षालाल थे। महताबलालके एकमात्र पुत्र मुन्शी रामगोपाललाल प्रसिद्ध कानूनगो थे और इस प्रसिद्ध कानूनगो घरानेके आप अन्तिम कानूनगो थे। वह बहुत ही चतुर और हाजिर-जवाब थे। अवसर मिलनेपर वह अपने अफ्सरोंका भी उत्तर दिये बिना नहीं रहते थे। कहा जाता है कि एक बार कोई कलक्टर उनके कामोंकी जाँच करने उनके हलकेमें गया। वे अपने प्रसिद्ध पुत्रकी तरह बहुत ही काले और कुरूप थे। कलक्टरने उनकी बुद्धिमानी और कामकी चतुरतासे प्रसन्न हो उनकी ओर देखकर कहा—"कानूनगो साहब, आप अक्लमन्दीके बाजारमें तो बहुत घूमे, परन्तु खुबसूरतीके बाजारमें आप क्यों नहीं गये?" उन्होने तुरन्त उत्तर दिया, "हूजूर, जब मैं अक्लमन्दीके बाजारमें घूम ही रहा था कि खूबसूरतीका बाजार उठ गया।"

कानूनगो साहबकी पहली शादी शाहाबादके कायस्थोंके प्रसिद्ध गाँव मुरारपट्टीके निवासी मुन्शी रामजियावनलाल मुखतारकी पुत्रीसे हुआ था। इन्हींसे गणेशप्रसादका जन्म संवत् १९३३की अगहन मासकी अमावस्याको हुआ था। गणेशप्रसाद जब सात वर्षके हुए तो उनकी माताका देहान्त हो गया। उनके पिताजीका दूसरा विवाह श्रीपालपुर जिला बलियाके निवासी बाबू महादेवप्रसाद वकीलकी पुत्रीसे हुआ। इस विवाहसे तीन पुत्र रघुनन्दनप्रसाद, उमाशंकर और रमाशंकर हुए जिनमें बाबू रघुनन्दनप्रसाद और बाबू उमाशंकर डाक्टर गणेशप्रसादसे पहले ही इस लोकसे विदा हो चुके थे।

बहुत बड़े जमींदार तथा कानूनगोके पुत्र होनेके कारण गणेशप्रसादका विवाह अधिक समयतक न रुक सका। उनकी शादी नौ वर्षकी अवस्थामें लोदीपुर जिला शाहाबादके वकील मुन्शी डोमनलालकी पुत्री नन्दकुमारीसे हुआ था। इनका वैवाहिक जीवन बहुत ही सूक्ष्म रहा। सोलह वर्षकी अवस्थामें प्रथम तथा अन्तिम संतान कृष्णकुमारीका जन्म हुआ और कुछ ही कालके बाद कृष्णकुमारी मातृहीन हो गयी। इस समय गणेशप्रसाद म्योर-कॉलजमें एम० ए०में गणित पढ़ रहे थे।

डाक्टर साहबको गणितसे इतना प्रेम हो चुका था कि दूसरे विवाहका भावभी उनके हृदयमें अंकुरित नहीं हुआ। डाक्टर साहब कृष्णकुमारीको बहुत ही प्यार करते थे; परन्तु वह भी अधिक दिनोंतक उनके गणितके अध्ययनमें बाधक न रही। सोलह वर्षकी अवस्थामें अपनी माताके लोकको चली गयी। डाक्टर साहबने उसकी स्मृतिमें कलकत्ता विश्वविद्यालयमें कृष्णकुमारी पारितोषिक प्रत्येक वर्ष दिये जानेके लिए कुछ रुपया जमा कर दिया है।

गणेशप्रसादकी बाल्यावस्थामें कोई विशेषता नहीं थी। इनकी पढ़ाई बलिया जिला स्कूलमें आरम्भ हुई। पाँचवें क्लासमें वे फेल हो गये थे। अंग्रेजी मिडिलकी परीक्षा जो उस समय शिक्षा-विभागकी ओरसे होती थी, द्वितीय श्रेणीमें पास किया था, नाइन्थ क्लासमें ये प्रथम हुए और गवर्नमेंट हाईस्कूल बलियासे प्रथम श्रेणीमें एंट्रेंस पास हुए। यद्यपि स्कूलमें वे विशेष प्रतिभाशाली नहीं नजर पड़े तो भी पढ़नेमें ये अधिक परिश्रम करते थे। खेल कूदमें रुचि न थी और यही कारण था कि विद्यार्थी-जीवनमें इनका स्वास्थ्य असन्तोषजनक रहा। स्कूल छोड़नेके बाद म्योर सेन्ट्रल कालेजमें भर्ती हुए और कालेजहीमें समयके सदुपयोगका ऐसा अच्छा अभ्यास किया कि इनके सहपाठियोंने इनके

परिश्रम और अध्ययनको देखकर इनको डाक्टर साहब अथवा फिलासफरकी पदवीसे भूषित किया। कालेजमें दिन-पर-दिन उन्नति करते गये, और विश्वविद्यालयकी सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणीमें पास की।

गणितमें एम० ए० पास करनेके बाद इन्होंने प्रयाग-विश्वविद्यालयके गणितमें डाक्टरीकी परीक्षा देनेको आज्ञा माँगी। उस समय इसके लिए केवल परीक्षा हीकी योजना थी; परन्तु अभीतक उसमें कोई बैठा नहीं था और न उसके लिए कोर्स ही बना था। कई बार प्रार्थना-पत्र वापिस आनेके पश्चात् दिसम्बर अथवा जनवरीके महीनेमें परीक्षामें बैठनेके लिए आज्ञा मिली। परीक्षा मार्चमें हुई और वे तृतीय श्रेणीमें डी० एस-सी० पास हुए। प्रयाग-विश्वविद्यालयसे यह डिग्री पहले-पहल इन्हींको मिली।

× × ×

आजसे पैंतीस-छत्तीस वर्ष पहले जिस समय डाक्टर गणेशप्रसाद स्टेटस्कालर-शिप लेकर विलायत पढ़ने जानेवाले थे, जातपाँतका बन्धन उतना कमजोर न था जितना इस समय है। समुद्र-यात्रासे लोग जाति-भ्रष्ट हो जाते थे। कायस्थ जाति जो अन्य जातियोंकी अपेक्षा समाजके बन्धनको तोड़कर समयके साथ चलनेमें प्रत्येक कालमें अग्रगण्य रही है, वह भी उस समय इस दोषसे बची न न थी। उस समयतक उत्तरी भारतके केवल दो कायस्थ मुंशी रौशनलाल बैरिस्टर और पटनाके बाबू सच्चिदानन्द सिनहा विलायत हो आये थे, और दोनों सज्जन बिरादरीसे खारिज थे। जब गणेशप्रसादके विलायत जानेका समय हुआ तो उनके पिताको बड़ी चिन्ता हुई।

वे गणेशप्रसादको विलायत भेजना चाहते थे, परन्तु साथ-ही-साथ जातिच्युति होना स्वीकार न था। बलिया शहरके रईसों तथा अपने मित्रोंकी सलाहसे कायस्थ-बिरादरीकी एक सभा की। उस सभासे मुंशी रामगोपालसिंहने अपने लड़केको विलायत भेजनेकी आज्ञा माँगी। पहले तो सभा इनके प्रतिकूल मालूम पड़ती थी, परन्तु मुन्शी नवाबलाल वकील (अब रायसाहब)की इस दलीलसे कि गणेशप्रसाद विद्योपार्जनके निमित्त विलायत जा रहे हैं, विद्याभ्यासके लिए ब्रह्मचारी जहाँ चाहे जा सकता है, उसमें कोई दोष नहीं, उस समय तो सभाने विलायत जानेकी इजाज़त दे दी। और आशा दिलायी कि विलायतसे वापस आनेपर गणेशप्रसाद बिरादरीमें रह सकेंगे। जब वे विलायतसे वापस आये तो बलियाकी कायस्थ-बिरादरीमें फिर सनसनी फैली। उनके पिताजीने अपने मौजे जलालपुरमें जो शहर बलियासे एक मील पश्चिम तरफ है, ब्राह्मणों तथा कायस्थ-बिरादरीके भोजनका प्रबन्ध कराया। खेदके साथ लिखना पड़ता है कि एक भी ब्राह्मण तथा कायस्थ सम्मिलित नहीं हुआ और सब सामान खराब हो गया। तब उसके बाद दावतका प्रबन्ध बलिया शहरमें किया गया। इस बार भी ब्राह्मण सम्मिलित नहीं हुए, परन्तु बाबू तुलसीदयाल वकील, (जो पहले कायस्थ पाठशालाके हेड-मास्टर भी थे और जो डाक्टर गणेशप्रसादके रिश्तेदार भी थे) और मुंशी नवाबलाल वकीलके प्रयत्नसे कुछ कायस्थ इस दावतमें सम्मिलित हुए। परन्तु दूसरे दिनसे इन लोगोंका भी हुक्का बन्द हो गया। परन्तु समय इतना बलवान है कि धीरे-धीरे यह भाव मिटता गया और अन्तमें सभी बिरादरी में शामिल हो गये। फिर भी बिरादरीके इस बरताव का, जो उसने शुरूमें किया, डाक्टर साहबके जीवनपर अमिट प्रभाव पड़ा। इतनेपर भी वह बिरादरीसे रुष्ट कभी नहीं हुए। उन्होंने बराबर उसकी इज्जत की। उसकी खातिर रवा रखी। गरीब भाइयों की परवरिश की। अपने रिश्तेदारोंके साथ सदा बड़ी मेहरबानीका बरताव किया। यह कहना कठिन है कि इन झगड़ोंके कारण उनका बलियाके लिए प्रेम किसी प्रकारसे न्यून हो गया था, क्योंकि यहाँके ए० वी० हाईस्कूलके लिए बहुत-सा धन देनेके लिए तैयार थे। परन्तु स्कूलकी व्यवस्थापक समिति रुपया देनेकी उनकी शर्तोंको स्वीकार न कर सकी। वे अपनी माताकी स्मृतिमें एक अच्छा-सा मकान तथा लड़कियोंके लिए एक स्कूल बनवाना चाहते थे। परन्तु इस अभागे नगरमें एक भी ऐसा व्यक्ति न निकला जो डाक्डर साहबकी ओरसे इन सबके बनवानेके प्रबन्धका भार अपने सिरपर लेता। अन्तमें डाक्टर साहबने बलियासे हाई स्कूलमें प्रथम आनेवाली लड़कीको स्कालरशिप देनेके लिए कुछ रुपया गवर्नमेण्टके पास जमा करके ही सन्तोष किया। बलियाके नौजवान देशभक्तोंको यह जानकर अवश्य दुख होगा, परन्तु 'अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।'

स्वर्गीय डाक्टर गणेशप्रसादका वंशवृक्ष
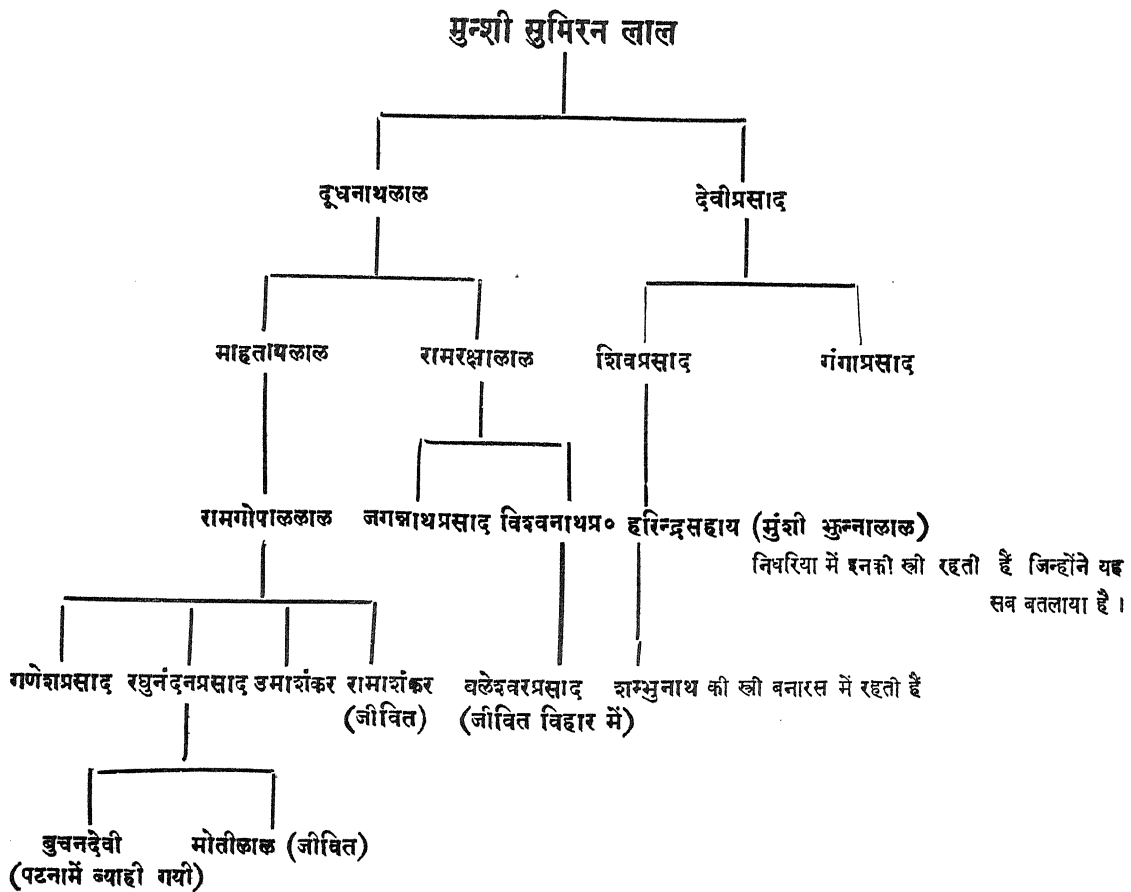
जब स्कूलमें पढ़ते थे

[पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, हेडमास्टर, रायबरेली]

[मेरे परम मित्र और प्रिय शिष्य पं० महावीरप्रसादजी श्रीवास्तव्य बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद, बलियाके गवर्नमेंट हाईस्कूलमें हेडमास्टर थे। अभी हालमें रायबरेलीकी हेडमास्टरीपर बदल गये हैं। उन्होंने डाक्टर साहबके स्कालर्स रजिस्टरकी नकल भेजी है, जो मैं नीचे देता हूँ। हेडमास्टर साहबने अपनी टिप्पणी भी नीचे दी है, जो पठनीय है। रा० गौ०]

Ganesh Prasad, son of B. Ram Gopal, Zemindar, Ballia.

Date of admission, 13—10—84.

Age at the time of admission, 8 years.

Admission to Class	VI	13—10—84	Promotion to higher class	1—5—86
,,	V	1—5—86	,,	1—5—87
,,	IV	1—5—87	,,	2—7—88
,,	III	2—7—88	,,	1—7—89
,,	II	1—7—89	,,	1—4—90
,,	I	1—4—90		

Attendance in class	III	210 days	out of	211 days.
,,	II	182 ,,	,,	182 ,,
,,	I	197 ,,	,,	202 ,,

Remarks of the Headmaster:—

(1) Very good, very intelligent, industrious, promising.

Sd. R. N. Sinha 7—7—91

(2) Passed the Entrance Examination of the Allahabad University in the 1st. division with a Govt. Scholarship of Rs 8/- per month. The conduct continues to be very good and praiseworthy. I have a very high opinion of him.

Sd. R. N. Sinha 7—7—91.

इस लेखसे पता चलता है कि डाक्टर गणेशप्रसाद ८वर्षकी आयुमें स्कूलमें पहले-पहल उस समय छठी कक्षामें अथवा आजकलकी पाँचवीं कक्षामें प्रविष्ट हुए थे। इसके पहले वह घर-ही पढ़ते रहे होंगे और शायद पाँचवीं कक्षाके लिए पर्याप्त शिक्षा न पा सके होंगे। इसीलिए उनको इस कक्षामें दो वर्षतक रहना पड़ा था। परन्तु इसके बाद वह बराबर प्रत्येक कक्षामें उत्तीर्ण होते गये और १५ वर्षसे कम आयुमें ही इन्ट्रेंसकी परीक्षा प्रथम श्रेणीमें छात्रवृत्तिके साथ पास की। हेडमास्टर बाबू रामनारायणसिंहजीकी सम्मतिमें वह प्रशंसा-योग्य छात्र थे।

परिश्रम करते हुए भी उनका स्वास्थ बहुत अच्छा रहा होगा क्योंकि तीनों ऊँची कक्षाओंमें उनकी उपस्थिति आश्चर्य-जनक है। तीसरी कक्षामें केवल १दिनका नागा हुआ और १ली कक्षामें ५दिनका। दूसरी कक्षामें नागा ही नहीं हुआ। इससे सिद्ध होता है कि विद्यार्थी-जीवनमें भी वह नियमपूर्वक रहते थे और भोजन आदिमें भी सदा मितभोजी रहे होंगे जैसा कि अध्यापन-कालमें थे।

— महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य

जब कालेजमें थे

[मुंशी ईश्वरशरण साहब, बी० ए०, एल-एल० बी०]

डाक्टर गणेशप्रसादकी मेरी जान-पहचान पैंतालीस बरस की थी। हम दोनों म्योर कालेजमें साथ ही पढ़ते थे। वे मुझसे बरस-दो बरस आगे थे। जब मैं पहले-पहल म्योर-कालेजके फर्स्ट-इअर-क्लासमें भरती हुआ, तो सुना कि एक अद्भुत छात्र भारद्वाजाश्रमके पासवाले पुराने बोर्डिंग हौसमें रहता है जो पढ़नेके सिवा दूसरा काम जानता ही नहीं। मेरा स्वभाव मिलनसार था। मैं लड़कोंमें मिलकर खेल-कूद बहस-मुबाहिसा आदि सामाजिक मनबहलाव पसन्द करता था। इसलिए घोंटू लड़कोंको मैं क्यों पसन्द करने लगा। मैं बोलक्कड़ था और वे चुपचाप काम करनेवाले थे। वह भी ऐसे लड़कोंको पसन्द नहीं करते थे जिनका काम था स्पीच देना, स्पीच दिलवाना, सभा करना, संगठन करना और कालेजके और सभी उत्सवों-तमाशोंमें दिलचस्पी लेना। बस, इसीलिए एक ही संस्थामें रहते हुए भी हम दोनों एक दूसरेसे दूर-दूर ही रहते थे।

दादाभाई नौरोजी पार्लिमेंटके मेंबर हो जानेके बाद उन्हीं दिनों इलाहाबाद आये। हमारे दलने उनके सम्मानमें छात्रोंका एक प्रदर्शन किया। उनके आगमनसे कालेजमें हलचल मच गयी। गणेशप्रसाद भी सर्वथा अप्रभावित न रहे। मैंने सुना कि स्वर्गीय प्रोफेसर मरेसे गणेशप्रसाद ने कहा था—"दादाभाईकी सूरत-शकलमें क्या रखा है ?" इसपर मेरे बदनमें तो आग लग गयी और उनसे इस मामलेमें खासी बहस हो गयी होती, परन्तु मैंने देखा कि सब छात्रोंके साथ आप भी प्रदर्शनमें मौजूद हैं। दूसरे दिन मैंने उन्हें बधाई दी और वह केवल मुस्कुरा दिये। मैं समझता हूँ, कि धन्यवाद देनेमें समय नष्ट करना उन्होंने आवश्यक न समझा।

घण्टा बजा नहीं और गणेशप्रसाद होस्टेलसे क्लासकी ओर दौड़ते दीखते थे। छुट्टीके घण्टेके बजतेही छतरी लेकर होस्टेलकी ओर भागते दीखते थे। एक मिनिट भी खोना या बरबाद करना उन्हें मंजूर न था।

एफ़० ए०की परीक्षा होनेके चार महीने पहले दिसम्बरमें ही यह खबर फैल गयी, कि गणेशप्रसादने अपने कोर्सकी एक-एक किताब चालीस-चालीस बार पढ़ डाली है। वह कालेजमें पढ़ते ही थे कि चारों ओर और-और कालेजोंमें उनका नाम मशहूर हो चुका था और कुतूहलवश उन्हें देखनेको बाहरके छात्र आया करते थे। परन्तु वह किसीसे बोलते न थे। अपने काम-से-काम। कोई जरूरी बात पूछी जाती तो वह जवाब दे देते थे। उनके पास शुद्ध कुतूहलके प्रश्नोंका उत्तर देनेको समय न था। हर मिनटकी कीमत थी। खोनेको एक न था।

उन्हीं दिनोंकी बात है कि आप एक बार रेलगाड़ी में बैठे-बैठे पढ़नेमें इतने मग्न थे कि दिन-दहाड़े उनका सारा असबाब एक आदमी लेकर चलता हो गया और उन्हें पता न लगा।

वह स्वयं मुझसे कहते थे कि "मैंने लंडनका वही भाग देखा है जो स्टेशन और इंडिया आफिसके बीचमें है। केम्ब्रिजसे मैं लंडन केवल इसलिए आता था कि मैं सरकारी छात्र-वृत्ति पाता था और कामसे आना-जाना पड़ता था।"

उन्होंने स्वयं मुझसे कहा है कि एक बार किसी बादशाही उत्सवमें मैं बुलाया गया था, परन्तु अपने कई प्रोफेसरोंके साथही साथ मैंने भी उसमें सम्मिलित होनेसे सम्मानपूर्वक इनकार कर दिया।

उनका सन्तोष और विद्याप्रेम इस दरजेका था कि जब वे विलायतसे लौटे और यहाँ स्वदेशमें छोटे लाटसे मिले तो उन्होंने उनसे यही अभिलाषा प्रकट की कि "मुझे ऐसी नौकरी चाहिए कि पुस्तकें खरीदकर स्वच्छन्दतासे पढ़ सकूँ और गणित-सम्बन्धी गवेषणाएँ कर सकूँ। मैं अधिक धन

PROFESSOR GANESH PRASAD ABROAD

[Dr. S. C. Bagchi, M. A., LL. D., Principal, University Law College, Calcutta.]

I came to know Dr. Ganesh Prasad for the first time at Cambrige in the autumn of 1901. He had gone there as an advanced student of mathematics in 1899 with a Government of India stipend. I found immediately afterwards that he had already established a reputation as a mathematician of great ability among the students and teachers at Cambridge. I recall a summer evening some thirty-four years back when late Mr. Knapman, a contemporary of Dr. Prasad, remarked to me in conversation that Dr. Prasad was a keen mathematician of a very high order. While he was preparing for his Cambridge degree, one of his teachers, the famous Dr. Hobson, made him read papers before the Cambridge Philosophical Society and the London Mathematical Society. Mathematics was his element and in it, as was apparent to every one who knew him intimately, he lived, moved and had his being. While at Cambridge he used to correspond with his teachers in India and the letters gave details of what mathematical lectures he was attending and what papers he was writing. I remember seeing one of his letters to late Mr. Homersham Cox wherein he wrote that Elliptic Functions and Spherical Harmonics were engaging his attention at that time and that he was deeply immersed in the study of a special problem, the solution of which was later on published in the *Messenger of Mathematics.* In that paper he pointed out a mistake of Cayley. In fact he manifested early in his career the power of going to the root of a mathematical problem. He had a peculiar aptitude for "spotting" the weak points in mathematical reasoning. From his student days onwards he pointed out the mistakes of many other mathematicians and thereby made them his lifelong friends with a few exceptions, for the generality of mathematicians worthy of the name are seekers after truth and do not profess infallibility. Only recently he pointed out to a French mathematician, Professor Lebesgue, that a well-known theorem known as Lebesgue's criterion was not strictly formulated in the

---

नहीं चाहता। अन्यथा, मुझे भय है कि मैं अपनी पसन्दका काम न कर सकूँगा बल्कि धनके जालमें फँस जाऊँगा।"

डाक्टर साहबको उनकी ही पसन्दके अनुसार गवर्नमेंटने केवल ढाई-सौ रुपये मासिककी प्रोफेसरी आरंभमें दी।

एक छोटी-सी घटना मैं कभी भूल नहीं सकता। वह एडमेस्टन-रोडपर रहते थे। महामना मालवीयजीके साथ मैं उनके यहाँ गया। हम लोग उनके पढ़नेके कमरेमें चले गये और बातें करने लगे। एक या दो मिनिट मुश्किलसे गुजरे होंगे, कि वह बोले—"क्षमा कीजिए। कृपया मेरे बैठकमें चलिए। मैं अपने पढ़नेके कमरेके वातावरणको विशुद्ध रखना चाहता हूँ।"

वह आदर्श विद्यार्थी थे। उनका जीवन बेतरह सादा था और बड़ी कड़ाईके संयमका था। घोर परिश्रम करनेकी उनकी अद्भुत शक्ति एक दैवी घटना थी। वह बड़े सच्चे और स्नेही मित्र थे। अपने मित्रोंकी वह घोरसे-घोर विपत्तिमें सहायता करते थे। कोई बात उनके लिए उठा न रखते थे। वे इतने भारी विद्वान् थे, कि कोई विश्वविद्यालय उन्हें अपना मुख्याधिष्ठाता बनाकर गर्वसे अपना सिर ऊँचा कर सकता था। खेद है, कि उन्होंने इसका अवसर न दिया और इतने शीघ्र चले गये, कि जो लोग उनका सम्मान करनेको उत्सुक थे, हाथ मलते ही रह गये।

form first given to it by the author. Professor Lebesgue admitted his oversight and corrected it in the light of Professor Prasad's remarks.

After taking his Cambridge degree Dr. Prasad went to Gottingen and read with men like Klein, Hilbert and Sommerfeld. He was singularly fortunate in his teachers and he had the singularly happy gift of making the most of their teachings Hobson, Forsyth, Larmor, Thomson and Baker at Cambridge Klein, Hilbert, Sommerfeld, and Cantor at Gottingen, instructed and inspired him. He used to tell in conversations with his friends how these great mathematicians tackled the special problems in their own domains and what a great benefit it was to come in contact with original minds in different branches of mathematics pure and applied. The society of these front rank men was an education in itself. Once at a soiree at Gottingen he met Cantor who came forward to him—a tall upright man of over seventy in full intellectual vigour-and introduced himself by *Ich bin Georg Cantor* ("I am Georg Cantor" just as much as to say "I am not yet a spent force") In later life the elites of mathematics throughout the world received Dr. Prasad as their peer. When the Hardinge chair in Calcutta was vacant a famous Cambridge mathematician recommended Dr. Prasad as the person best qualified to fill the post and the great Sir Asutosh Mukerji, himself a splendid mathematician at once recalled Dr. Prasad from Benares Hindu University. (I say re-called because Dr. Prasad was Ghosh Professor of Applied Mathematics in Calcutta before).

In Calcutta his mathematical activity knew no bounds. Besides his formal academic works he was busy with informal mathematical works as the second President of the Calcutta Mathematical Society (Sir Asutosh Mukerji was the first President). Dr. Prasad had great organising capacity and he might have been famous as a public man if he liked, but he chose the peaceful life of a scholar. He was, it is true, for one term a member of the U.P. Legislative Council but he gave up political activities at the earliest opportunity—the Queen of Sciences had already claimed his full allegience.

As a teacher of mathematics he was singularly successful. He inspired those who worked under him with genuine love for mathematics, the original works of his pupils bear tear testimony to the master's powers.

Dr. Prasad led, as I have remarked elsewhere, the life of an ideal Indian sage, he carried the great weight of his learning as lightly as possible without the least touch of vanity. He was nothing if not polite, an embodiment of the maxim — **विद्या ददाति विनयं** — knowledge is humility.

शिक्षार्थ विदेशमें

[डाक्टर एस्० सी० बागची, प्रिंसिपल लॉकालेज कलकत्ता]

संवत् १९५८की शरद्‌ऋतुमें पहले-पहल केम्ब्रिजमें मैं डाक्टर गणेशप्रसादसे परिचित हुआ। वह वहाँ संवत् १९५६में गणितके ऊँचे दरजेके विद्यार्थी बनकर गये थे। उन्हें भारत-सरकारने विशेष छात्रवृत्ति दी थी। शीघ्र ही मुझे यह मालूम हो गया कि केम्ब्रिजके शिक्षकोंमें और शिक्षितोंमें वे एक बड़े योग्य गणितज्ञकी हैसियतसे प्रसिद्ध और लब्धप्रतिष्ठ हो चुके थे। कोई चौंतीस बरस पहलेकी बात है, विलायतकी मनोहर गरमीकी ऋतुमें एक दिन शामको डाक्टर गणेशप्रसादके सहकालीन स्वर्गीय श्रीक्षापमानने बातों-बातोंमें मुझसे कहा कि डाक्टर गणेशप्रसाद बड़े ऊँचे दरजेके गंभीर गणितशास्त्री हैं। जब वह केम्ब्रिजकी डिग्रीके लिए तैयारी कर रहे थे, तभी उनके एक अध्यापक प्रख्यात डाक्टर हाब्सनने केम्ब्रिज फिलासाफिकल सोसाइटी और लंडन मैथेमेटिकल सोसाइटीके सामने उनसे खोज-सम्बन्धी निबन्ध पढ़वाये। गणित तो उनका जीवन और प्राण था और जो लोग उन्हें अच्छी तरह जानते थे, उन्हें खूब मालूम था कि उनका उठना, बैठना, सोना, साँस लेना सबकुछ गणित ही था। जब वे केम्ब्रिजमें थे तो भारतमें अपने अध्यापकोंसे बराबर पत्रव्यवहार रखते थे। इन पत्रोंमें वह विस्तारसे वर्णन करते थे कि वहाँ किन-किन-विषयोंपर किन-किनके क्या व्याख्यान हो रहे हैं, जिनमें वे जाते थे, और वे स्वयं खोजसम्बन्धी क्या-क्या निबन्ध लिख रहे थे। मुझे याद है कि उनकी एक चिट्ठी मैंने स्वर्गीय प्रोफेसर होमर्सहाम काक्सके नाम लिखी देखी थी। मुझे याद है कि उन्होंने लिखा था कि "आजकल मेरा ध्यान (Elliptic Functions) दैर्घ्य-फलों और (Spherical Harmonics) गोलीय हरात्मकों पर लगा हुआ है और मैं एक विशेष समस्याके सुलझानेमें एकदम व्यस्त हूँ।" इस समस्याका स्पष्टीकरण

और सुलझाव कुछ काल पीछे Messenger of Mathematics मेसेंजर आफ् मेथेमेटिक्स नामक पत्रमें छपा। इस निबन्धमें उन्होंने श्रीकेलेकी एक भूल दिखायी थी। बात यह थी कि अपने गणितशास्त्रीय जीवनके आरंभमें ही गणितकी किसी गूढ़ समस्याकी जड़तक पहुँचनेका सामर्थ्य उन्होंने प्रत्यक्ष दिखलाया। गणित-सम्बन्धी तर्कमें जहाँ कहीं भूल छिपी होती थी उसको तुरन्त पकड़ लेनेका उनमें एक विशेष गुण था। अपनी छात्रावस्थासे लेकर अन्ततक उन्होंने बराबर बड़े बड़े गणिताचार्यों की भूलें दिखायीं और उन्हें इस तरह अपना जीवनपर्यन्त मित्र बना लिया। इस बातके बहुत थोड़े ही अपवाद हैं, क्योंकि गणिताचार्यों में अधिकांश,—जिन्हें गणिताचार्य्य कहा जा सकता है,—सत्यके खोजी होते हैं और अपनेको भूल-चूकसे परे नहीं समझते। हालकी ही बात है कि एक फ्रांसीसी गणिताचार्य्य (Professor Lebesgue) लेबेस्गको उन्होंने यह बतलायाकि आपके नामसे प्रसिद्ध प्रमेयोपपाद्य "लेबेस्ग का प्रतिमान" (Lebesgue's Criterion) जिस-तरह व्यक्त किया जाता है, ठीक उसी रूपमें नहीं किया जाता जो आपने उसे आरंभमें दिया था। गणिताचार्य्य लेबेस्गने अपनी भूल स्वीकार की और डा० गणेशप्रसादके कथनानुसार उसका संशोधन किया।

केम्ब्रिजकी डिग्री लेकर डाक्टर गणेशप्रसाद जर्मनीके गटिंगेन नगरके विद्यापीठमें जाकर क्लैन, हिल्बर्ट और ज़ोमरफेल्ड सरीखे गणिताचार्योंके पास गणितका परिशीलन करने लगे। डाक्टर गणेशप्रसादका अपूर्व भाग्य यह था कि उन्हें केम्ब्रिजमें हाब्सन, फार्सिथ, लारमर, टामसन और बेकर-सरीखे गणितके प्रकाण्ड विद्वान् शिक्षक मिले और गटिंगेनमें उन्हें क्लैन, हिल्बर्ट जोमरफेल्ड और कान्टोरने पढ़ाया और उनके हृदयको गवेषणात्मक कामोंके लिए अनुप्राणित किया। डाक्टर गणेशप्रसादकी पात्रता भी अप्रतिम थी। उनमें ऐसी अपूर्व प्रतिभा थी, कि वे अपने आचार्यों की

शिक्षाका भरपूर लाभ उठा सकते थे। अपने मित्रोंसे बात-चीतमें वह बतलाया करते थे कि किस-किस प्रकारसे ये गणिताचार्य अपने-अपने क्षेत्रकी विशिष्ट समस्याओंको सुलझाया करते हैं और शुद्ध और प्रयुक्त गणितकी विविध-शाखाओंके मौलिक विचारवाले विद्वानोंके सम्पर्क और सत्संगमें कितना भारी लाभ है। इन अग्रणी विद्वानोंका सत्संग ही एक भारी शिक्षा थी। एक दिन शामके प्रेम-सम्मिलनमें गटिंगेनमें डाक्टर गणेशप्रसाद भी सम्मिलित थे। वहाँ कान्टोरसे भेंट हुई। कान्टोर था तो सत्तर बरससे अधिक का बूढ़ा, परन्तु लम्बा-तड़ंगा था, हट्टा-कट्टा और मानसिक शक्तिके पूर्ण-यौवनसे ओत-प्रोत। उसने इन्हें अपना परिचय स्वयं जर्म्मन भाषामें 'इख् बिन् ग्यार्ग कान्टोर' [मैं ही ग्यार्ग कान्टोर हूँ] कहकर दिया। इस कथनमें यह ध्वनि थी कि देखो मेरे यौवनके ह्रासके साथ शक्तिका ह्रास नहीं हुआ है। [डा० गणेशप्रसादके इस परिचयके ढंगसे स्पष्ट है कि डा० गणेशप्रसादका यश कांटोर तक पहुँच चुका था और गुरुके मनमें अपने भावी शिष्यके प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी। रा०गौ०] बादके जीवनमें तो उनका ऐसा यश फैला कि संसारके विश्वविख्यात प्रमुख गणिताचार्योंने उन्हें अपना सम-कक्ष माननेमें अपनेको गौरवान्वित समझा। जब कलकत्तेमें हार्डिञ्जकी गद्दी की स्थापना हुई, तो केम्ब्रिजके एक प्रसिद्ध गणिताचार्य्यने लिखा कि इस गद्दीके लिये डा० गणेश-प्रसादसे बढ़कर विद्वान् मिल नहीं सकता। महान् सर आशुतोष मुखोपाध्याय स्वयं एक अच्छे गणितशास्त्री थे। उन्होंने तुरन्त डा० गणेशप्रसादको बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालयसे वापस बुला लिया। मैं 'वापस' इसलिये कहता हूँ, कि कलकत्तेमें ही वे पहले घोषकी गद्दीपर गणिताचार्य्य रह चुके थे।

कलकत्तेमें तो उनकी गणित-सम्बन्धी क्रियाशीलता निःसीम थी। वह विश्वविद्यालयके जाब्तेका पूरा काम करनेपर कलकत्ता-गणित-परिषद्के दूसरे सभापतिकी हैसि-यतसे बे-जाब्तेके काममें व्यस्त रहा करते थे। [पहले सभा-पति सर आशुतोष थे।] डाक्टर गणेशप्रसादमें संगठनकी अच्छी योग्यता थी। वह चाहते, तो सार्वजनिक नेताओंमें भी प्रसिद्ध हो जाते, परन्तु उन्हें विद्वान्का शान्त जीवन ही अधिक पसन्द था। यह तो सच है, कि एक बार वह हिन्दप्रान्तकी धारा-सभाके सदस्य हो गये थे। परन्तु जितनी जल्दी हो सका उन्होंने राजनैतिक काम छोड़ दिया। विज्ञानोंके राजा गणितशास्त्रकी उनमें पूरी और दृढ़ भक्ति थी।

गणितके आचार्य्य तो वह एक ही थे। उनकी शिक्षण-सफलता अनूठी थी। उनके अधीन जो काम करते थे उनके मनमें गणितके प्रति सच्चा प्रेम उत्पन्न कर देना इन्हींका काम था। इस आचार्य्यकी अद्भुत शक्तियोंका पता उसके शिष्योंके मौलिक गवेषणात्मक कार्मोंसे चलता है। [जिनमेंसे अधिकांशमें शिष्योंने स्पष्ट शब्दोंमें अपने आचार्य्यके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकटकी है। रा० गौ०]

जैसा मैंने अन्यत्र कहा है, डाक्टर गणेशप्रसादकी जीवनी आदर्श भारतीय ऋषिकी जीवनी थी। अपनी अपार विद्याके भारी भारको वह बड़ी आसानीसे वहन करते थे। ऐसी महत्ताके होते अभिमान तो उन्हें छू नहीं गया था। वह शिष्टतासे ओतप्रोत भरे थे और 'विद्यांददाति विनयं' वाली उक्तिके वे साक्षात् मूर्त्ति थे।

म्योर कालेजमें प्रोफेसर

(१)

[श्री पं० चन्द्रबलीराय, एम्० ए०, यू० पी० सी० एस्०, डिप्टी कमिश्नर, बहेराइच]

म्योर कालेजमें होमरशम काक्स गणितके आचार्य थे। डाक्टर-साहबपर विशेष कृपा और प्रेम रखते थे। बी० ए०, एम० ए०, डी० एस-सी०के लिए गणित होमरशम काक्सहीने इनको पढ़ाया। प्रयाग-विश्वविद्यालयमें डी० एस० सी०की डिग्री गणितमें लेनेवाले यह प्रथम छात्र थे। इसके लिए एक निराला और नवीन प्रश्न हुआ और उसका उत्तर देना ज़रूरी था। उसके उत्तरमें इन्होंने बड़ी योग्यता दिखलायी। उन दिनों केवल एक स्टेट स्कालरशिप पाँचों यूनीवर्सिटियोंमें बारी-बारीसे हर पाँचवें साल मिलती थी। डी० एस-सी० पास करनेके बाद उनको स्टेट स्कालरशिप मिली। केम्ब्रिज यूनीवर्सिटीमें तीन बरसतक पढ़ा। जब-जब छुट्टी मिलती थी, तो सीधे गटिंगन यूनीवर्सिटी जो जर्मनीमें है, चले जाते थे और वहीं विद्या पढ़ते थे। यह बड़े संयमी थे। रुपया जमा करके यूरोपकी सैरके बदले विद्याध्ययन करते थे। बड़ी मेहनतसे केम्ब्रिजमें (Properties of heat and constitution of matter) निबन्ध तापके गुण और परमाणुओंपर उसका 'असर' इस विषयपर एक गवेषणात्मक निबन्ध लिखा।

इस निबन्धको उन्होंने केम्ब्रिजके प्रख्यात गणिताचार्योंको दिखाया। यह इतना गूढ़ था, कि उनके निगाहमें जँचा नहीं। डाक्टर साहब अपने धुनके पक्के थे। अपनी गटिंगनकी यात्रामें उन्होंने डाक्टर क्लाइनको दिखलाया। एक महीनेकी जाँच-परतालके बाद उन्होंने उत्तर दिया, कि आपका प्रश्न और उत्तर निर्विवाद सही है। उसको डाक्टर क्लैनने गटिंगनके जर्नलमें छपवाकर उनका विशेष सम्मान किया।

तीन बरसके बाद केम्ब्रिजसे लौटनेपर म्योर सेन्ट्रल कालेजमें सेक्रेटरी आफ़ स्टेटके आज्ञानुसार गणितके एडीशनल प्रोफेसर नियुक्त होकर आये। उस समय उनके गुरु होमरशम काक्स प्रोफेसर थे। मैं उस साल सेकंड डी० एस-सी० के लिए तैयारी कर रहा था। दोनों महाशयोंसे पढ़नेका सौभाग्य मुझे मिला। अँग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, इटैलियन भाषामें जितनी उच्च गणितकी किताबें डाक्टर साहबने पढ़ी थीं, सबका जिक्र होने लगा। बहुत उत्साह बढ़ा। उन दिनों प्रोफेसर होमरशम काक्स इलाहाबाद पबलिक लाइब्रेरीके सेक्रेटरी थे। दस-बारह हज़ार रूपयेमें उच्च गणितकी और मिश्र गणितकी किताबें मंगायी गयीं। गुरु काक्स साहबने साल भरके भीतर सबको पढ़ डाला।

साल ही भरके भीतर महामहोपाध्याय गुरुवर पं० सुधाकर द्विवेदीजीने क्वींसकालेज बनारसके गणितकी प्रोफ़ेसरीसे पेंशन ली। डाक्टर गणेशप्रसाद क्वींस कालेजके प्रोफ़ेसर होकर बनारस गये।

डाक्टर साहबके पढ़ाये हुए सैकड़ों आचार्य भारतवर्षमें प्रसिद्ध हैं। वह सदाचार, साहस, परिश्रम, संयमकी मूर्त्ति थे, और अनुशासन और आचार्यत्वके अनुपम आदर्श थे। उन्होंने हज़ारों विद्यार्थियोंको गणित पढ़ाया। उनके अध्यवसायके सम्बन्धमें इतना कहना काफी है कि पारसाल १०७ विद्यार्थियोंको उच्च-गणित पढ़ा रहे थे। जिसका मतलब यह है कि १०७ को अलग-अलग बतलाते थे। साथही उच्च-गणित की खोजके काममें स्वयं लगे रहते थे। बहुत सी किताबें भी लिखीं जिन्हें इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस, इटली जापान और अमेरिकाके आचार्योंको भेजा करते थे और उनके बदलेमें इनके पास अपनी किताबें भेजते थे। अपनी लड़कीकी यादगारमें बलियामें लड़कियोंका एक हाईस्कूल खोलनेका दृढ़ विचार किया। ५०,०००) खर्च करनेका इरादा किया, और मैकेंजी साहब डाइरेक्टरसे मशविरा किया। कोई मुनासिब जगह न मिलनेसे इरादा बदल दिया और २५,०००) में एक ट्रस्ट कायम किया जिसके सूदसे कई स्कालरशिपें मिलती हैं।

म्योर कालेजमें प्रोफेसर

(२)

[प्रोफेसर काशीदत्त पांडे, एम० ए० अमरावती]

मुझे डाक्टरसाहबके पास कालेजमें शिक्षा ग्रहण करनेका सौभाग्य संवत १९६१में हुआ था जब मैंने मैट्रिक्यूलेशन पास किया था। इसी वर्ष डाक्टर साहब विलायतसे लौटकर आये थे और पहिलेपहल म्योर कालेजमें गणितके एक उपाध्याय नियत हुए थे। उनके गुरु गणितके आचार्य्य स्वर्गीय प्रोफेसर होमार्सहाम काक्स और सहायक प्रोफेसर उमेशचन्द्र घोष (अब रायबहादुर) भी जो पेंशनर हैं और अभी मौजूद हैं, उस समय म्योर कालेजमें पढ़ाते थे। उस साल म्योर कालेज १८ जौलाईको खुला था। उन दिनों गणितके इंटर मीजिएटमें दो विभाग थे। कालेज खुलनेके थोड़े दिन बाद ही डाक्टर गणेशप्रसादजी विलायतसे आये और हम लोगोंको ज्ञात हुआ, कि वह हम लोगोंको त्रिकोणमिति पढ़ावेंगे। हमारी कक्षाके दो भाग किये गये। जब एक भाग डाक्टर साहबके पास त्रिकोणमिति पढ़ने जाता था उस समय दूसरा भाग काक्स साहबके पास शंकुज्यामिति पढ़ने जाता था। मुझे डाक्टर साहबकी एक बातका भली-भाँति स्मरण है। उनकी गाड़ी कालेजके पुस्तकालयके सामने ठीक ग्यारह बजे आया करती थी और वहाँसे वह एक प्रकारसे दौड़ते हुए अपने कमरेको जाया करते थे। अगर लड़कोंकी भीड़ बराण्डेमें अधिक होती थी, तो वह उस भीड़के पीछे एकदम खड़े हो जाया करते थे। इसी प्रकार अपना काम समाप्त करके वह फिर दौड़कर अपनी गाड़ीके लिए जाते थे। विलायतसे लौटनेके बाद जैसे सब लोग स्वभावमें बहुत मृदु, बातचीतमें मधुर, परन्तु मितभाषी, हुआ करते हैं वैसे ही वह थे। डाक्टर साहबके पढ़ानेकी शैली जैसे स्कूलके लड़कोंको पढ़ानेकी हुआ करती है वैसी थी, उस समय आजकलकी कालेजकी शिक्षाकी बू नहीं थी। दूसरी बात यह थी, कि विषयके इतिहासका उल्लेख साथ-ही-साथ कर दिया करते थे। इतने वर्षों बाद मैं किसी विशेष घटनाओंका स्मरण नहीं कर सकता, इतनी ही याद है, कि उस वर्षभर वह म्योर कालेजमें रहे। संवत १९६२ में क्वींसकालेज बनारसको उनकी बदली हो गयी।

मुझे उसके बाद उनका छात्र होनेका सौभाग्य तो प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु अवसर पाकर दर्शन अवश्य कर लिया करता था। प्रथम दस या बारह वर्ष उनके दर्शन बड़े कठिनाईसे हुआ करते थे। वह बहुत कम मिलते थे और मिलते भी थे, तो अधिक बात-चीत नहीं करते थे। परन्तु अपने छात्रोंका स्मरण उनको अच्छा रहता था। संवत् १९७१में जब वह कलकत्ता-विश्वविद्यालयको पहले-पहल गये तब मैं उनसे मिला था, उनको मेरा अच्छा स्मरण था। इसके पश्चात् तो वह बहुत ही मिलनसार हो गये थे। संवत् १९७१की गर्मीकी छुट्टीमें उनके पास लगभग एक महीने रहा, उस समय वह कहा करते थे, कि अब लोगोंको आश्चर्य होता है, कि डाक्टर गणेशप्रसादमें ऐसा परिवर्तन क्यों हो गया है। जब वह युक्तप्रान्तीय धारा-सभाके मेंबर हुए तब तो दुनियादारीके व्यवहारमें अत्यन्त ही निपुण थे और उसके बाद भी लौकिक व्यवहारका पालन ठीकसे करते रहे।

संवत् १९७१में वह कलकत्ते गये और वहाँसे तीन या चार वर्षके बाद हिंदू-विश्वविद्यालयके प्रोफेसर होकर काशी

पढ़ानेका काम छोड़नेपर उनका विचार गाजीपुरमें रहनेका था। दो बँगले खरीदे और एक मकान ऐसा बनवाया जिसमें दीमक न लगें और उसमें अपनी किताबोंको रखनेका विचार था। सारनाथके करीब बनारसमें भी एक बाग खरीदा और वहाँ भी कुटी बनाकर जीवन व्यतीत करनेका विचार करते थे। किन्तु "मेरे मन कछु और है करताके कछु और" चलती रेलसे पिस जानेसे बाल बाल बच गये। इसके बाद ईश्वरमें इनको और विश्वास दृढ़ हो गया।

दूरसे देखनेवालोंके धुँधले चित्र

[रामदास गौड़]

(१) छात्रोंका आदर्श

वत् १९५९की शरत् ऋतुके अन्तके लगभग मैं भारद्वाज-आश्रमके पास ओल्ड-बोर्डिंग हौसमें रहने लगा। वहाँकी एक विशेष परंपरा थी। म्योर कालेजसे निकलनेवाले उच्च कक्षाओंके छात्रोंका वह आवास रह चुका था। डा० गणेशप्रसाद, बा० जगत्प्रसाद, बाबू पन्नालाल वहींसे निकले थे। डा० गणेशप्रसादका नाम सबसे पहले आता था। उनके पढ़नेकी प्रशंसा सबको कंठ थी। उन्हें पढ़नेसे ही काम था। दुनियाकी और किसी बातसे मतलब न था। मेरे समयके अच्छे छात्र उन्हींका आदर्श अपने सामने रखते थे और उनके पदचिह्नपर चलनेमें ओल्ड-हौसकी परम्पराकी रक्षा समझते थे। प्रयागके छात्र-समुदायमें डा० गणेशप्रसादका नाम अबतक गूँज रहा था, यद्यपि उन्हें ओल्ड-हौस छोड़े चार बरससे अधिक हो चुके थे।

• • •

(२) 'खब्ती, रूखे-फीके'

'ये तो अजब आदमी मालूम होते हैं !'

'खब्ती हैं, खब्ती, और क्या !'

'नहीं भाई ! विलायतसे आये हैं, कुछ पालिसी होगी।'

जितने मुँह उतनी बातें। बोर्डिंग-हौसके एक कमरेमें कई होनहार ग्रेजुएट बैठे डा० गणेशप्रसादके कल शामके बरतावपर टीका-टिप्पणी कर रहे थे।

संवत् १९६१की जुलाईका महीना था। उस साल प्लेगके कारण परीक्षाएँ टलकर जुलाईमें हुई थीं। बी० ए०की परीक्षाके चार-पाँच दिन पहलेकी बात थी। डा० गणेशप्रसाद विलायतसे लौट आये थे, और हमारे उसी म्योर-कालिजमें गणितके प्रोफेसर हुए थे, जहाँ पहले उन्होंने पढ़ा था। एक ही कालेजके नाते हम लोगोंने उनके साथ एक शामको सहभोज किया। परन्तु यद्यपि जलपानके लिए मिठाइयाँ फलादि ही थे, तथापि वे हम लोगोंके साथ नहीं बैठे और न हम लोगोंसे मिले-जुले। बिलकुल घड़ीके अनुसार ठीक वक्त पर आये। हमारी डिबेटिंग सोसैटीके मंत्रीजीने स्वागत किया। उन्होंने उनसे जरा चन्द सेकेंड बातें कीं फिर बिना किसीसे मिले-जुले सीधे एक कोनेमें मेजके पास बैठकर कुछ अँगूर खाये, फिर चल दिये। मानो वहाँ कोई था ही नहीं। लोगोंने विनती की, अनुरोध किया, आग्रह किया कि सबके साथ बैठें, परन्तु उन्होंने किसीकी न सुनी। बड़ी बेरुखीसे पेश आये। हममेंसे प्रायः सभी उनके कालेज छोड़नेके बादके छात्र थे। ऐसे विद्वान् सह-विद्या-

---

लौट आये। हिंदू-विश्वविद्यालयसे उनका संबंध संवत् १९७९ में छूटा और उसी साल फिर वह कलकत्ता-विश्वविद्यालय चले गये। सर आशुतोष मुकर्जी उनका बड़ा सम्मान करते थे। मुझसे वह कहा करतेथे कि सर आशुतोष बड़े दरियादिल आदमी हैं। बनारस मैथमैटिकल सोसाइटीकी जड़ बुनियाद डा० गणेशप्रसादकी ही डाली हुई है और वह उसके आजीवन सभापति रहे। मेरी उनकी अंतिम भेंट अगहन संवत् १९८७में हुई थी जब वह बनारस अखिल-एशिया-शिक्षा-सम्मेलनके समयपर आये थे। उनके छात्र सब जगह फैले हुए हैं और अपने जीवनके अंतिम दिनोंमें तो अपने छात्रोंको हर प्रकारकी सहायता देना वह अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे।

क्योंसे सभी परिचयके लिए उत्सुक थे। परन्तु इस मौके-पर सभी निराश हो गये। किसीने न समझा कि इस बेरुखीका सबब क्या है। ऊपर लिखी बातें, और इसी तरहकी और बातें हम लोगोंमें होती रहीं। सबके जीमें यह बात जम गयी कि अजीब ख़ब्ती आदमी हैं। 'आखिर काक्स साहबके ही शिष्य तो ठहरे!' कोई यह न समझा कि उनका ऐसा व्यवहार क्यों था?

• • •

(३) स्वाभिमान। तपस्याकी दृढ़ प्रतिज्ञा

घर पहुँचते ही विलायतसे लौटनेपर बिरादरीमें झगड़ा उठा। पिताने प्रायश्चित्तका बन्दोबस्त किया। हवन हुआ-कथा हुई। ब्राह्मण विद्वानोंने भक्ष्याभक्ष्य-दोष-निवारणार्थ पञ्चगव्य प्राशनका प्रस्ताव किया। डाक्टर साहबने दृढ़ता-पूर्वक इनकार किया। जिसने सिगरेटतक मुँहसे न लगाया, घर रहते भी मांस-मदिरा न छुई, जो स्त्रीके मरनेके बादसे यहींसे अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करता रहा, वह जब केवल विद्याके लिए विलायत जाये और वहाँ भी दृढ़ता-पूर्वक इन व्रतोंका पालन करे, तो उसे पञ्चगव्य प्राशनकी आवश्यकता क्या है। पण्डितोंने आग्रह किया कि शुद्ध रहते भी प्राशनमें हर्ज क्या है? "भारी हर्ज है और वह हर्ज है कि मानों मुझे अपना ही विश्वास नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता।"

विलायत जानेसे पहले भी पिताने समाजमें चर्चाकी थी। कुछ ननु-नचके बाद स्वीकृति मिल गयी थी। इनके विलायतसे लौटनेपर समाजमें लोगोंकी विविध धारणाएँ आड़े आयीं। प्रायश्चित्तमें पंचगव्यवाली बात कोई विशेष महत्त्व न रखती थी। हिन्दुओंका एक भारी-समुदाय तो इतना कट्टर था, कि पञ्चगव्य तो क्या अग्नि परीक्षा लेकर भी शुद्ध न मानता। इन्हींमेंसे अनेक ऐसे दम्भी थे, कि कानूनगो साहबके सामने हाँ-हाँ करके शरीक होनेको तैयार हो गये और आश्वासन दिया, कि सभी शरीक होंगे। ब्रह्मभोजका आयोजन किया गया; परन्तु झूठे दम्भियोंने ऐन वक्तपर धोखा दिया। कोई न आया।

बिरादरीके भोजका भी ऐसा ही हाल हुआ। ठीक समयपर अनेक लोग बीमार हो गये, जरूरी काममें फँस गये। न आ सके।

बहुत दिनोंतक इसकी चर्चा रही। कुछने उन्हें शुद्ध माना, कुछने अशुद्ध। स्वयं अपना विवाह तो नहीं करना था। परन्तु बेटी कृष्णकुमारीका तो ब्याह एक दिन करना ही था। बिरादरीके बन्धनसे छूटना तो तत्काल सम्भव न था, इसलिए जो अशुद्ध मानते थे उनका ख्याल करना लाजिमी था, परन्तु स्वाभिमानकी रक्षा करके, उसे खोकर नहीं। उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया, कि अपने कामसे-काम रखूँगा। समाजमें, बिरादरी, ग़ैरबिरादरी, किसीसे कोई सम्बन्ध न रखूँगा।

साथ ही यह भी निश्चय किया, कि मैं शिरकतके लिए हठ करके कुछ हितैषियोंको ही क्यों खराब करूँ, जो शरीक हो चुके थे, प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो गये।

डाक्टर साहबने किसीके साथ बैठकर खाना ही त्याग दिया, चाहे वह फल ही क्यों न हो। साथ ही यह निश्चय किया, कि लड़की जबतक ब्याही न जाय तबतक समाजसे अलग ही रहूँगा; परन्तु संयमसे रहूँगा। मेरी शिरकतसे कोई अपवित्र भी न होगा और यदि समाज कभी मुझे शरीक करना चाहे तो उसे आपत्ति भी न हो। क्योंकि घोर तपस्याके बलसे दृढ़ ब्रह्मचर्यव्रत, एकान्तवास, संयम और शुद्धाचरणसे समाजको जीत लूँगा। सबके मुँह बन्द हो जायँगे। जब कन्याका विवाह हो जायगा, तब देखी जायगी, समाज से तब बेरुखी न रखूँगा, आज जो ऐंठे हुए हैं, वह तब सीधे हो जायँगे। इसी इरादेसे उन्होंने अपना बरताव समाजसे अत्यन्त रूखा, निरा फीका, रखा। देशी-विदेशी बड़ा-छोटा किसीसे मिलना-जुलना रवा न रखा।

इसी घटनाके बाद उनको बलियासे सीधे प्रयाग आकर जुलाईमें प्रोफेसरीका चार्ज लेना पड़ा। हम लोग जो उस समय परीक्षा दे रहे थे और वह लड़के जो पढ़ रहे थे, सबने मिलकर उन्हें पार्टी दी थी। उस भोजमें उन्होंने जो बेरुखी दिखायी उसे हम लोगोंने उनका खब्तीपन समझा। परन्तु वह उनकी दृढ़ नीति थी जो हम लोगोंकी समझसे बहुत दूर थी।

• • •

क्वींस कालेज काशीमें

[प्रोफेसर चन्द्रीप्रसाद, एम्० ए०, बी० एस-सी०,* काशी]

हमारा उनसे सम्बन्ध

सन् १९०४की बात है। डाक्टर साहब म्योर कालेजमें प्रोफेसर थे। मैंने उसी साल डिग्री ली थी। उच्च गणित पढ़नेके शौकसे मैं प्रयाग गया। वहाँ डाक्टर साहबके गुरु काक्स साहब भी पढ़ाते थे। वह गणितमें ऐसे डूबे रहते थे कि दुनियाकी सभी बातोंसे उनकी पूरी बेपरवाई प्रसिद्ध थी। बोर्ड साफ करनेको झाड़न आँखोंके सामने नहीं है तो उन्हें कोटके आस्तीनसे ही बोर्ड पोंछ लेनेमें कोई तकल्लुफ न था, चाहे कफके बटन इसी क्रियामें निकलकर दराजेमें उछलकर गिर जायँ, तो भी क्या परवा। यह तो ऊपरी बातें थीं। उस समय मुझे इतनी गणित नहीं आती थी कि मैं प्रोफेसरोंके ज्ञानकी अटकल लगा सकूँ। डाक्टर गणेशप्रसाद तब पक्के प्रोफेसर हो चुके थे। परन्तु उच्चगणित सीखनेवाला तब एक ही छात्र उनके पास था। वह थे पं० चन्द्रबलीराय, एम्० ए० जो आजकल बहराइचमें डिप्टी कमिश्नर हैं। मैंने उन्हींके पास वह नोट देखे जो उन्होंने डाक्टर गणेशप्रसादके लेक्चरसे लिख लिये थे। ये नोट वास्तविक चल-मीमांसा के फलोंपर थे। उस समय किसी छपी पुस्तकमें किसी

*प्रोफेसर साहबसे पाई हुयी सूचनाओंके आधारपर लिखित। रा०गौ०

(४) बेमुरव्वत। दीनदुनिया किसीके न रहे!

जब प्रयागमें रहते थे, तबकी ही बात है। एक सज्जन मिलने आये। चपरासीने उनकी इत्तिला की। पुछवाया "क्या काम है।" निवेदन किया "केवल दो मिनिटके लिये मिलना चाहता हूँ।"

चपरासी लिवा ले गया।

आगन्तुकने अपना हाल कहा। सिफारिश चाही।

उत्तर मिला "खेद है, मैं आपसे परिचित नहीं हूँ। जिन्होंने आपके लिये लिखा है, वह मेरे मित्र हैं, सही, परन्तु मुझे माफ कीजिये, मैं बिना जाने कुछ नहीं लिख सकता। आपके दो मिनिट हो गये। अब मेरे कामका हर्ज होगा।" इतना कहकर तुरन्त उठ खड़े हुए हाथ मिलाया। आगन्तुकको जाना पड़ा। बाहर गये तो जिसके साथ आये थे उससे बोले "कमालकी बेमुरव्वती है! ये तो दीनदुनिया किसी कामके न रहे। चलो, इनसे कुछ नहीं होनेका।

(५) परले सिरेके कंजूस

"साहब नौकरोंका बड़ा ख्याल रखते हैं, पहली तारीख आयी और तलब चुकता कर दिया।"

"काम भी क्या लेते हैं? अरे, बहुत हुआ चिट्ठी भेजी। उनके भाई, माताजी आदिका काम अलबत्त करते हैं। उनका काम ही क्या है? कुरसियाँ लाकर रख देना। कभी कपड़े उठाकर दे देना। नहीं तो, वह दिनरात पढ़ने-लिखनेमें लगे रहते हैं। अपने कमरेमें झाड़ूतक नहीं लगाने देते। कमरा बन्द रखते हैं।"

"अरे, बिछौनातक तो नहीं है!"

"और खाते ही क्या हैं? दिनरातमें एक बार चार पूरियाँ बाजारसे मँगवाकर खा लेते हैं, बस।"

"तो इतनी तनखाह पाते हैं, करते क्या हैं?"

"बंकमें जमा करते हैं।"

"तो कंजूस हैं, कंजूस! और क्या, इतना कमाते हैं पर लोभके मारे न खा सकते हैं और न पहिन सकते। अरे, किस जिंदगीके लिए बटोरते हैं, न जोरू न जाता!"

"नहीं भाई! बिटिया है न! उसे बहुत चाहते हैं, उसीको सब देंगे।"

"पत्थर देंगे। जब अपने पेटभर खा नहीं सकते तो बिटियाको क्या देंगे!"

भाषामें इस विषयपर कोई अध्याय नहीं पाया जाता था। दो साल पीछे इसी विषयपर डाक्टर गणेशप्रसादके विलायती गुरु डा० हाब्सनकी लिखी पोथी पहलेपहल इसी विषयपर छपी। यह इस विषयका पहला और एकमात्र ग्रंथ था, इसीलिए न तो उत्तम क्रमसे था और न संग्रहसे अधिक मूल्य रखता था। डा० गणेशप्रसादने इस विषयका अच्छा अध्ययन किया था और सम्भवतः अच्छी पुस्तक निकाल सकते थे परन्तु डा० हाब्सन निकालनेवाले थे, इस लिए इन्होंने अपनी पुस्तक नहीं छपवायी।

अगले ही वर्ष डाक्टर साहब क्वींसकालेजमें प्रोफेसर हो गये। मौक़ा मिल गया और हिन्दूकालेजके प्रो० लक्ष्मीनारायण और मैं, इन दो आदमियोंने इस मौकेसे लाभ उठाया। हम दोनों गणित पढ़नेको उनकी सेवामें उपस्थित हुए, क्योंकि हमको उच्च गणितका शौक था और यह स्वर्ण अवसर बड़े भाग्यसे ही उपस्थित हुआ था। दुर्भाग्यसे डाक्टर साहब ही गणितके एकमात्र प्रोफेसर थे और चारों दर्जोंको नित्य चार घंटे पढ़ाना पड़ता था। इतने अधिक परिश्रम के बाद प्रिंसिपल वेनिस डाक्टर साहबको और श्रम नहीं करने देना चाहते थे। वह मुश्किलसे इस बातपर राजी हुए कि डाक्टर साहब कालेजके घंटोंके अतिरिक्त अगर पढ़ा दें तो उसे कालिजके ही कामोंमें गिन लिया जायगा। वह डाक्टर साहबसे कालिजमें दस बजेसे दो बजेतक काम लेते थे। दो बजे वह छुट्टी पाकर घर चले जाते थे। हम लोगोंको डाक्टर साहब दस बजेके पहले सबेरे ही पढ़ाने लगे। हमलोग उस समयके डी० एस-सी०का कोर्स पढ़ने लगे।

• • •

(२) उनका घरपर मिलना

वह जब प्रयागसे काशी आनेको थे तभी उन्होंने प्रिंसिपल वेनिसको लिख दिया था कि मेरे लिए किरायेपर एक अच्छा-सा बँगला ठीक कर दीजिए। उन्होंने खजुरीमें एक अच्छा लम्बा-चौड़ा बाग और बँगला इनके लिए भाड़ेपर ले लिया था। यह बाबू कल्याणदासकी कोठी थी जो कालेजसे वायव्य दिशामें एक मीलपर थी। हम दोनों उनके सबसे उच्च कक्षाके विशेष छात्र थे, फिर भी जब चाहे तब जाने और मिलनेका सुभीता हमें भी न था। हमारे लिए नित्यकी पूर्व-नियुक्ति थी। ठीक नियुक्त समयके पाँच मिनटके भीतर पहुँचना अनिवार्य था। इससे पहले पहुँचते तो बैठनेको स्थान न मिलता। ठीक पाँच मिनट रह जाते तो उनकी आज्ञाके अनुसार उनका नौकर बरामदे में कुरसी लेकर मौजूद होता, और आधा मिनिट बाकी रह जाता तब उनके कमरेमें लिवा ले जाता। वह बैठे मिलते थे। एक छोटी सी मेज होती थी और उसके सामने एक खाली कुरसी होती थी और मेजपर एक खुली जेबी घड़ी भी होती थी। वह केवल शिक्षा और विद्यालय-सम्बन्धी बातचीत करते थे। चाहे कड़ेसे कड़ा जाड़ा पड़ता हो या मूसलाधार पानी ही क्यों न बरसता हो, उनके इस नियुक्त काल-क्रममें या कार्य्यक्रममें कोई अन्तर नहीं पड़ता था।

जब प्रयागमें थे तब खास-खास लोगोंसे कभी-कभी मिल भी लेते थे, परन्तु काशीमें आकर उनके नियम अधिक कड़े हो गये। लिखकर पूर्व-नियुक्ति करा लेनेवाला ही ठीक समयपर आकर मिल सकता था।

साधारण आने-जानेवालोंसे मिलनेका नियम ही न था। एक तो बँगलेके सभी दरवाजे बन्द रहते थे। शायद एक किसी कमरेकी खिड़कियाँ खुली रहती थीं जिसमें आप स्वयं रहते थे। बाकी सब ऐसा बन्द रहता था मानों बँगला खाली है। दूसरे, कहीं कोई आदमी देख नहीं पड़ता था। एक नौकर था जो अपने शागिर्द पेशेवाली किसी कोठरीमें रहता था। बिना पूर्व-नियुक्तिके कोई आता भी तो सन्नाटा पाता। खोजकर आदमी तक पहुँचता भी तो उसे जो आदेश मिला रहता था उसके अनुसार उत्तर दे देता था। "डाक्टर साहब गणितके ही कामसे मिलते हैं, और उसके लिए भी तब मिलते हैं जब पहलेसे समय आदि ठहरा लिया जाता है। और किसी काममें आपका और अपना समय बरबाद न करेंगे। आपका हठ वृथा है" इतने उत्तर पर भी विशेष आग्रह होनेपर ही नौकर डाक्टर साहबके पास कार्ड ले जाता था। डाक्टर साहब बड़ी कठिनाईसे दो-एक मिनिट देते थे। मिलनेवाला मिलकर भी प्रसन्न नहीं होता था और न मिलनेपर भी निराश ही लौट जाता था। कई बड़े प्रतिष्ठित मिलनेवाले निराश गये। डाक्टर साहब इस रूखेपनके लिए बदनाम हो गये।

(३) उनकी पढ़ाईका ढंग

वह ठीक नौ बजे कालेज पहुँचकर डी० एस्-सी० क्लास-को पढ़ाते थे। ज्योंही दस बजते थे, वह कालेजके वर्गोंको पढ़ानेमें व्यस्त हो जाते थे। ठीक दो बजे अर्थात् चार घंटे बाद उन्हें छुट्टी मिल जाती थी। उनके सभी घंटे लगातार रखे गये थे। वह जिस दरजे को पढ़ाते थे उसके हर विद्यार्थीपर अलग-अलग ध्यान देते थे और सो भी इस हदतक कि हरएक लड़का दरजेमें घंटेभर कसकर काम करके थक जाता था। प्रत्येक विद्यार्थी अध्यापकसे इतनी दैनिक शिक्षा पा जाता था कि परीक्षामें एक भी गणितमें अनुत्तीर्ण नहीं होता था। कोई लड़का दरजेमें ध्यान दिये विना या घर पर दिये हुए सवालोंको लगाये विना रह नहीं सकता था, क्योंकि यह अद्भुत शिक्षक ऐसे दोषको सह नहीं सकता था। काले तख्तेपर डाक्टर साहब अधिक समय नहीं लगाते थे। वह अधिक समय मेजोंकी कतारोंके बीचमें घूम-घूमकर हर लड़केका काम देखनेमें लगाते थे और हरएकके कामपर टीका-टिप्पणी करते, समझाते, राह बताते और तैयारीकी कमीपर नसीहत करते चलते थे। छात्र अपने शिक्षकसे डरते थे और पिछड़ा हुआ लड़का हमेशा आगे बढ़नेकी कोशिश करता था कि साथवालोंमें मेरी हँसी न हो जाय। काला तखता बढ़ाकर इतना बड़ा कर दिया गया कि घंटे भरमें डाक्टर साहब जो कुछ लिखते थे वह सब अँट जाय, क्योंकि घंटेके भीतरका लिखा काम डाक्टर साहब शायद ही कभी मिटाते थे। उन दिनों घंटा पूरे साठ मिनिटोंका होता था और काफी सामग्री लिखी जाती थी। डाक्टर साहब बारीक तो लिखते थे, परन्तु अक्षर और अंक स्पष्ट हुआ करते थे और लिखनेमें उतावली कभी नहीं करते थे, चाहे बोर्डपर लिखें और चाहे कागजपर।

(४) उनके संयमके शिकंजेमें उनके सेवक

वह दो घोड़ोंसे जुती हुई बन्द गाड़ीमें कालेज आया करते थे। कभी संयोगसे गाड़ीवालेको देर हो गयी तो डाक्टर साहब कुबड़ी उठाकर पैदल चल देते थे और अपने छोटे-छोटे मगर तेज कदमोंसे ठीक समयपर कालेज निश्चय ही पहुँच जाते। दाहने हाथमें कुबड़ी होती थी। दख सीधे सामनेकी ओर होता था, अपनेसे चन्द गज दूरतक मार्गभर देखते थे, इसका ख़याल न था कि मेरी ओर कोई देखता है या कौन देखता है। गाड़ीवालेको ऐसे समयपर हाजिर होना पड़ता था कि यदि उसके आनेमें देर हो जाय तो डाक्टर साहब कालेज पैदल अवश्य पहुँच सकें। अतः गाड़ीवाला वक्तसे बहुत पहले आकर तैयार रहता था। वह अपने निश्चित समयपर ही सवार होते थे। गाड़ीवालेको जब कभी भूलसे देर हो जाती तो बेचारा अपनी कमाई और नौकरी दोनोंसे हाथ धो बैठता था, क्योंकि डाक्टर साहबके नियममें किसी हालतमें फेरफार नहीं हो सकता था। लौटती बेर तो नौकर गाड़ी लेकर समयपर कालेजमें पहलेसे मौजूद रहता था। इस बातमें तो कोई कठिनाई थी ही नहीं।

डाक्टर साहब एक प्याला चाय, सेरभर दूध और कुछ बिस्कुट खाकर कालेज पहुँचते थे और किसी भोजनकी उन्हें आवश्यकता न थी और न रसोई, बरतन रसोइयाँ आदिकी जरूरत थी। नौकर अपने कमरेमें दूध उबाल देता था। उसे काम बहुत कम था, परन्तु उसे दिनरात तनहाईकी क़ैद सी थी। बीच-बीचमें खास जरूरतके समयके सिवा और कभी उसे बँगलेमें प्रवेश करनेकी आज्ञा न थी। कमरोंकी झाड़-पोंछ भी रोज नहीं होती थी। शायद हफ़्ते-दो-हफ़्तेमें ही उसकी बारी आती थी। नौकरका खास काम यह था, कि वह किसी आदमी या जानवरको हातेके अन्दर न घुसने दे और खासकर खयाल रखे, कि तरकारी, दूध, कण्डा, मिट्टी आदि बेचनेवाली या अन्य कोई स्त्री कदापि हातेके अन्दर न आने पावे। इस नौकरको गाड़ी भी लाना और कालेजसे डाक्टर साहबको लाना और फिर बाजारसे गरम पूरियाँ लाना पड़ता था। एक खास हलवाई निश्चित समय-पर उनके लिए खास तौरपर उसी समय पूरियाँ निकालता था और नौकर लाकर चायवाली मेजपर उनके सामने दोना और एक प्याले भर पानी रख देता था। इससे ज्यादा उन्हें किसी चीजकी जरूरत नहीं होती थी। इस भोजनके बाद वह कुछ देर आराम जरूर करते थे। उनकी यह आदत आदिसे अन्ततक रही। नौकरको इतनेसे अधिक काम न था। पर नियमसे काम करना था। जरा सी भी चूक सही नहीं जाती थी। उसे काम तो इतना ही था, पर उसकी

हाजिरी जबरदस्त थी। वह अकेला रहता था। उससे बातचीत करनेवाला कोई प्राणी हातेमें न था। मालिकको उससे बात करनेकी भी फुरसत न रहती थी। उसके लिए इस बँगलेके शागिर्दपेशेमें यह कैद तनहाई थी।

(५) उनका निजी सामान

इनका निजी सामान अत्यन्त थोड़ा था। रसोई, चौके, चूल्हे, बरतन आदिकी जरूरत न थी। बँगलेमें कमरे खाली पड़े रहते थे। सामान या सजावटका नामोनिशान न था। [इनके गुरु प्रोफेसर काक्सके बँगलेका भी यही हाल था। गरमियोंमें नंगे बदन एक पतलून पहने एक नंगे कमरेमें पढ़ते देख पड़ते थे।] बेसजे नंगे कमरे बन्द रहते थे। इनके नंगेपनका हाल किसीको मालूम न था।

परन्तु वह स्वयं जिस कमरेमें रहते थे उसकी ही सजावट क्या थी? किताबोंकी एक आलमारी, एक चारपाई, किताबोंसे भरे कुछ बक्स और लम्पके बदले मोमबत्ती। मोमबत्तीके लिए भी कोई दीवट आदि न था। चारपाईपर भी फैलाये हुए अखबार बिस्तरका काम देते थे और किताबें तकियेका। चारपाई कई महीने तक कसी भी नहीं जाती थी और यह सब हो कैसे? नौकर को तो नियुक्त समयोंके अतिरिक्त बँगलेमें कदम रखनेकी इजाजत न थी।

शामको भी दूध और सूखे मेवे, अधिकतर बादाम खा लेते थे। इसलिए शामके खानेका सामान भी संक्षिप्त ही था।

यह क्रम पहले छः बरसों तक चला। यह बड़े संयमकी और तपस्याकी जीवनी थी जिसमें उन्होंने अधिकांश उच्च गणितकी कुछ पाठ्य पुस्तकें लिखीं, जैसे चलम कलन और चलराशिकलन।

(६) पुत्री-वियोग। घोरमानसिक परिवर्तन

वह इस तरह अकेले ही रहते थे।

जब उनकी लड़की इतनी बड़ी हो गयी कि उन्होंने समझा कि अब विवाह कर देनेके योग्य हो गयी है, तब उसे अपने पास बुला लिया। खेद है कि वह आयी तो बहुत दिनोंतक साथ रहनेको न आयी। कुछ ही महीनोंमें वह बीमार हो गयी। सिविल सर्जनने देखा तो बतलाया, कि यह उग्र प्रकारका राजयक्ष्मा रोग है। डाक्टर साहबने बड़ी दौड़-धूपकी की, सब तरहके इलाजसे काम लिया; पर सब व्यर्थ था। वह लड़की एक पखवारे ही बीमार रहकर चल बसी। डाक्टर साहबका यह पुत्री-वियोग उनके जीवनमें घोर मानसिक परिवर्त्तनका कारण हुआ।

इस घटनासे पहले उनके कठोर संयम और घोर तपस्याके आवरणके भीतर एक कोमल अभिलाषा छिपी हुई थी। वह अपनी पुत्रीका विवाह एक सुयोग्य लड़केसे करना चाहते थे। उनके अच्छे-अच्छे शिष्य थे। वह सुयोग्य लड़केकी खोज कर रहे थे। मेरा उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध था, तो भी वह अपनी स्वाभाविक सतर्कतासे इस सम्बन्धमें मुझसे बात-चीत करते थे। उस समय इस प्रश्नकी गंभीरता और महत्त्वको न समझ सका था। इस दुर्घटनाके बाद वह बहुत दिनोंतक ऐसे शोकमग्न रहे कि उनका पढ़ना-लिखना छूट-सा गया, उन कामों में उन्हें तनिकभी रस न रहा, जीवन कटु हो गया। इस अवस्थासे निकलनेमें कई महीने लगे; परन्तु उनका आपा अब बदल-सा गया। अब पहलेके डाक्टर गणेशप्रसाद न रहे।

उनका एकान्तवास अब प्रायः समाप्त हो गया। अब वह बहुत तरहके मनुष्योंसे विविध विषयोंपर बातचीत भी करने लगे। फिर भी सिवाय कालेज जानेके और किसी कामसे वह घर छोड़कर कहीं जाते न थे। व्यायामके लिए उनका समय नियुक्त था, जब कि हातेके भीतर ही तेजकदमी के साथ वह चक्कर लगा लेते थे। कलकत्तेके गणित-संसारसे अब अन्होंने घनिष्ट सम्पर्क कर लिया। संवत् १९६७में उन्होंने वहाँकी परिषत् में एक निबन्ध पढ़ा, संवत् १९६९में दूसरा पढ़ा। फिर कलकत्ते से इतना प्रेम बढ़ा कि वहाँके वाइस-चांसलर सर आशुतोष मुखोपाध्यायने उन्हें अपने यहाँके नवस्थापित सायंसकालेजमें प्रयुक्त-गणितके आचार्य्यकी सर रासबिहारी घोषवाली गद्दीपर विराजनेको उन्हें राजी कर लिया और संवत् १९७१में ही वह काशीसे कलकत्ते चले गये।

(७) उनका कालेजका जीवन

जब क्वींस कालेजमें थे, तब एम्० ए०के लिए और दो छात्र उन्होंने स्वीकार कर लिये थे। यह थे, अबके प्रोफेसर

नलिनीनाथ बोस और प्रोफेसर हरिप्रसन्न बनरजी। इन दोनोंने यहीं से एम्० ए०की डिग्री ली।

उनका कालेज का जीवन यहाँ विशेष प्रकार का था। यहाँ उस समयकी दो-एक घटनाएँ उल्लेख्य हैं। वह कालेजमें एक मिनिट बेकार नहीं रहते थे। जब उन्हें बरबस फुरसतका घंटा या समय मिल जाता तो उस समय वह अपने किसी उच्च कक्षाके छात्रको बुला लेते थे। युनिवर्सिटीकी परीक्षाओंके दिनोंमें जब वह निरीक्षक बनाये जाते थे, वह बराबर सतर्कतासे टहलते रहते थे। प्रायः दिनमें दो बार तीन-तीन घंटेके परचे होते थे, बीचमें घंटेभर का अवकाश होता था। इस घंटेमें वह अपने किसी उच्च-कक्षाके छात्रको बुलाकर किसी जर्म्मन, फ्रेंच या इटालियन पुस्तकसे गणितका विषय उलथा करके सुनाया करते थे। इस तरह खाली घंटेका सदुपयोग हो जाता था। उनका इन विदेशी भाषाओंका ज्ञान ऐसा अच्छा था कि पुस्तक आँखके सामने होती थी और वह उलथा ही पढ़ते जाते थे।

परीक्षागृहमें यह साधारण नियम था कि जो प्रोफ़ेसर जिस कमरेका अध्यक्ष होता था, उस कमरेकी उत्तर पुस्तकें केन्द्रीय अध्यक्षके पास बारी-बारीसे लाता था। परन्तु डाक्टर साहब अपनी बारीकी प्रतीक्षामें ठहरते न थे। वह अपनी एकत्रित उत्तर-पुस्तकोंका विवरण एक कागजपर लिखकर बंडलके ऊपर बाँध देते थे और केन्द्राध्यक्षके सामने उसे छोड़ देते थे और अपना टोप उठाकर अपने कामसे अपने कमरेमें चले जाते थे।

एक दिनकी बात है कि प्रिंसिपल ठीक उस समय मौजूद न थे जिस समय प्रश्न-पत्र बाँटे जाते हैं। उनका स्थान बिना पूर्वनियुक्तिके ही एक विलायती प्रोफेसरने ले लिया था। डाक्टर साहब ठीक समयपर आये और बिना उनसे पूछे प्रश्न-पत्रकी अपनी नियत संख्या ले ली और अपने कमरेमें बाँटने लगे। विलायती प्रोफेसरको यह बुरा लगा। उसने एक और प्रोफेसरको रोकनेके लिए भेजा। डाक्टर गणेशप्रसादने एक न सुनी। उन्होंने सब परचे बाँट दिये। प्रिंसिपलके आनेपर उस विलायती प्रोफेसरने बाकायदा रिपोर्टकी, परन्तु डाक्टर वेनिसने दोनोंकी बात सुननेसे इनकार किया।

प्रिंसिपल इतने कृपालु थे कि काम पड़नेपर डाक्टर साहबको अपने कमरेमें नहीं बुलाते थे। स्वयं उनके कमरेके द्वारके पास जाकर खड़े होते तो डाक्टर साहब स्वयं अपने कमरेसे बाहर निकल आते और उनसे बातचीत कर लेते।

एक बार पुस्तकाध्यक्षने डाक्टर साहबके किसी छात्रकी अभद्रताकी शिकायत प्रिंसिपलसे की। प्रिंसिपलने मामला डाक्टर साहबके पास भेजा। यद्यपि डाक्टर साहब अपने छात्रका पुस्तकाध्यक्षकी अपेक्षा अधिक विश्वास करते थे तथापि उन्होंने कहा—अच्छा, मैं इस विषयकी जाँच करूँगा। उन्होंने पुस्तकाध्यक्षको बुलाया और उसकी शिकायत विस्तार पूर्वक सुनी। उन्हें पता लग गया कि शिकायत उसके भावमात्रपर अवलम्बित है।

डाक्टर साहब स्वावलम्बनकी मूर्त्ति थे। किसीसे सहायता चाहना तो दूर रहा, वह मिलती हुई सहायताको अस्वीकार कर देते थे। एक दिनकी बात है कि घोर वर्षाके कारण कालेज बन्द हो गया और उनकी किराये की गाड़ी भी चली गयी थी। उनके पास छतरी भी न थी; परन्तु वह बेकार वहाँ ठहरे रहना गवारा न कर सके। पानी मूसलाधार बरस रहा था; परन्तु इसकी परवा न करके वह अपनी स्वाभाविक द्रुतगतिसे चल पड़े। वह सड़कसे गुजर ही रहे थे कि एक विलायती प्रोफेसर गाड़ीपर सवार उधरसे निकला। उसने इन्हें देखकर गाड़ी रोकवा दी और इन्हें गाड़ीमें बुलाया। डाक्टर साहबने उसे धन्यवाद दिया और पानीसे बचनेके लिए भी गाड़ीमें सवार हो जानेसे इनकार कर दिया।

एक बार प्रिंसिपलकी अनुपस्थितिमें एक विलायती प्रोफेसरने एक नया टैमटेबिल डाक्टर साहबके लिए नियत किया। डाक्टर साहबने अपने छात्रोंसे कह दिया कि मैं पुराने टैमटेबिलके अनुसार पढ़ाऊँगा। जब प्रिंसिपल आये तो डाक्टर साहबने अपनी लिखी कैफियत उनके सामने रख दी और पुराना ही टैमटेबिल कायम रहा।

(८) उनका पारिवारिक जीवन

बनारसकी नौकरीके कुछ ही बरसोंके अन्दर एक बार उनके पिता उनसे मिलने आये। मैंने सुना है कि उन्हें भी कुछ देर कमरेसे बाहर इन्तजार करना पड़ा, क्योंकि डाक्टर साहब अध्ययनमें डूबे थे। उनसे जब पिताके आनेका समा-

बार कहा गया, तो वह इतने व्यस्त थे कि उस कामको समेटनेमें भी उन्हें कुछ देर लगी ही। वह तुरन्त दौड़कर बाहर नहीं निकले और न उनके पिता ही बेतकल्लुफीसे अन्दर घुस गये, जैसा कि साधारण घरोंमें होता है। इस घटनाके कुछ ही काल पीछे पिताका देहावसान हो गया। उस समय डाक्टर साहब बलिया गये थे। उनके मुँडे हुए सिर और मूँछ आदिसे ही पता लगा कि उनके पिताकी मृत्यु हुई होगी।

डाक्टर साहबके तीन विमात्र भाई थे। इनमें जो सबसे बड़ा था वह कालेजमें पढ़नेके लिए डाक्टर साहबके पास आया। डाक्टर साहबने उसे अपने पास रख लिया। परन्तु तीन बरस रहकर भी वह एफ० ए० पास न कर सका। अतः उसका पढ़ना बन्द हो गया। उसका विवाह कर दिया गया। वह बलिया जाकर अपने पैतृक घरमें रहने लगा। दूसरा भाई उमाशंकर भी आकर बाद को एफ़० ए० में पढ़ने लगा। तीनों भाइयोंमें यही सबसे तेज था। दुर्भाग्यसे इसे हैजा हो गया। डाक्टर साहबने बड़ी दौड़-धूप की, पर वह बच न सका। इस भाईकी मृत्युपर ही यहाँ पहले-पहल डाक्टर साहब धोती-पहने देखे गये। कोई बीस बरससे, जबसे विलायत गये, डा० साहबने धोती नहीं पहनी थी। कुछ बरसों बाद तीनोंमें सबसे बड़े भाईका भी हैजेसे ही देहान्त हो गया। उनके एक लड़की थी और एक लड़का। यही एक मात्र डा० साहबकी भतीजी और भतीजे थे। इन दोनोंकी माँ तो बापसे छः महीने पहले ही मर चुकी थी। तीसरे भाई रामाशंकरका दिमाग ठीक न था, इसलिए इनकी शिक्षा स्कूलमें नहीं हुई। घर ही इनकी साधारणतया अच्छी शिक्षा हुई। इस भाई और दोनों बच्चोंके साथ-साथ डाक्टर साहबकी विमाता पिछले बारह बरसोंसे बनारसमें ही रहती थीं। डाक्टर साहबने कलकत्तेकी नौकरी तो कर ली थी, परन्तु बनारस कभी न छोड़ा। उनका एक बँगला बनारसमें किरायेपर बराबर बना रहता था। उनकी विमाता बच्चोंके साथ यहाँ रहकर काशीवास कर रही थीं। डा० साहब कभी-कभी आते रहते थे।

भतीजी बड़ी हुई। उसके माता-पिता मर चुके थे। डाक्टर साहबने बड़े धूमधामसे उसका विवाह स्वर्गीय सर ज्वालाप्रसाद पटना हाइकोर्टके जजके भतीजेसे कर दिया। इस विवाहमें डाक्टर साहबने बड़े हौसलेके साथ बड़ा ख़र्च किया। इस विवाहके अवसरपर डाक्टर साहबको अपनी इच्छा और स्वभावके विरुद्ध तपस्याके ढंगवाले जीवनको विवश हो कुछ कालके लिए बदलना पड़ा था।

अपनी मृत्युसे दोही बरस पहले डाक्टर साहबने अपने सबसे छोटे भाईका विवाह एक दरिद्र प्रतिष्ठित परिवारमें कर दिया। विवाहके कुछ ही दिनों पीछे उनकी बूढ़ी विमाताका हैजेसे देहान्त हो गया। डाक्टर साहब उन दिनों कलकत्तेमें पूर्व-निश्चित कार्य्य में व्यस्त थे, इससे विमाताकी मृत्युके अवसर पर न आ सके। इसका उनके हृदयमें बड़ा पछतावा रहा।

वह अपने भतीजे मोतीलालजीके लिये बड़े-बड़े हौसले रखते थे। वह उनकी मृत्युके बाद अब एफ० ए० क्लासमें पढ़ता है।

इसी प्रकार यद्यपि वह अपनी आकस्मिक मृत्युकी बात नहीं जानते थे, तो भी अपने परिवार सम्बन्धी बहुत आवश्यक काम कर ही गये।

उनके मनमें क्या-क्या हौसले थे, यह अब कहना बेकार है। प्रोफेसरीसे अवकाश ग्रहण करके उनका विचार था कि काशीमें ही एक निजी प्रेस स्थापित करें। उसमें अपनी गणित-सम्बन्धी पुस्तकें छपाकर प्रकाशित करें हिन्दीमें गणितके ग्रन्थोंका निर्माण करें और सस्ते दामोंपर उन्हें सुलभ कराकर हिन्दीद्वारा शिक्षामें पूर्ण योग दें। बनारसकी गणित-परिषत् उनकी स्थापित की हुई संस्था थी, उसे सब तरह समृद्ध और संसारमें खोजोंके लिये प्रख्यात करें। प्रयागकी विज्ञानपरिषत् और विज्ञान मासिक-पत्र वह बहुत समुन्नत दशामें देखनेका निश्चय रखते थे। वह अपने संचित धनको शिक्षाके प्रचार और विशेषतः गणितके विकासके कामोंमें लगाना चाहते थे; परन्तु

'मेरे मनमें और है, करताके कुछ और।'

वह चले गये और हौसले भी उन्हीं के साथ गये!

क्वींस कालेज काशीमें

(२)

[प्रो० क्षेत्रपद चट्टोपाध्याय, एम्० एस्-सी०, प्रयाग]
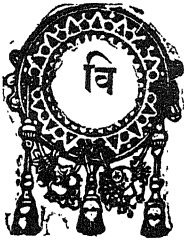
विज्ञान-जगत‌्का एक उज्ज्वल सितारा, गणित-विद्या-विशारदोंका शिरोमणि, अकाल ही अस्तमित हो गया। यह अचानक देहावसान मित्र और शिष्य-मण्डलीपर वज्रपातसा हुआ है।

तीस बरस पहलेकी बात है, कि इन पंक्तियोंके लेखकको इस महानुपुरुषके चरणोंमें बैठकर शिक्षा पानेका गौरव प्राप्त था। जब मैं स्कूलमें पढ़ता था तभी दिवंगत आचार्यप्रवर क्वींस कालेजमें गणितकी गद्दीपर विराजमान हुए। तब भी उनके पाण्डित्यकी ख्याति संसार में फैल चुकी थी। हम लोगोंने सुना कि गणितके एक विश्वविख्यात विद्वान् इस कालेजमें पढ़ाने आये हैं। कुतूहल था। उत्सुकता थी। उनकी भारी विद्वत्ताका आतंक था। डर-डरकर इधर-उधर झाँककर हमलोग उनको देखने लगे और उनकी चर्चा करने लगे। हम मूर्ख लड़के, उनके महत्त्वको क्या समझें? उनका समयपालन और विद्यामें एकान्त निष्ठा हमलोगोंके लिए अद्भुत बात थी।

दूसरे साल कालेजमें प्रविष्ट हुआ। उनके चरणोंमें बैठकर सीखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। तब उनको थोड़ा-थोड़ा पहचानने लगा। उनका पाण्डित्य, शिक्षा देनेका ढंग और शिष्योंपर स्नेह और आन्तरिकता देखकर आश्चर्य होता था। आचार्यप्रवर पढ़ानेमें भी अपने आपेका उत्सर्ग कर देते थे। एक ओर तो शिशुकी तरह कोमल थे, दूसरी ओर व्रतों के पालन और संयममें असामान्य दृढ़ताके साथ बड़े-बड़े तपोधनोंको मात करते थे। समयकी निष्ठा ऐसी थी कि अपने कामके क्रममें कभी एक मिनिटका फरक नहीं होने देतेथे। उनकी गाड़ीका आना समयनिर्देशक था, दूरसे देखते ही हमलोग जान जाते थे कि अब घन्टा बजने वाला ही है। गाड़ीसे उतरकर एकदम सीधे क्लासमें आते थे, कभी किसीकी ओर ताकते भी नहीं थे। शानके साथ उतरना या शानके साथ चलना, उनमें नहीं था। समयको अति मूल्यवान् समझते थे और उसका एक सेकंड भी भरसक बरबाद नहीं होने देतेथे। गुरुजी वेषभूषामें भी एकदम ऋषिके ऐसे थे, कभी देखतेभी नहीं थे कि बदनपर किस तरहका कपड़ा है। कर्त्तव्यनिष्ठा दृढ़ थी। कई बार देखा गया कि तार आया, परन्तु जबतक क्लासका काम खतम नहीं हुआ आपने उसको खोला भी नहीं। शिष्योंसे भी समयसे ही हिसाब खतम करनेका अभ्यास करवा लेतेथे। बोर्डपर प्रश्न लिख देते थे, साथ ही उसको कितने मिनिटों के भीतर खतम करना पड़ेगा, यह भी लिख देते थे। इससे प्रश्नको शीघ्र करनेका हम लोगोंको अच्छा अभ्यास हो जाता था।

सुनकर कौन नहीं आश्चर्य करेगा कि फर्स्ट इयरसे लेकर डी०एस-सी० तक नौ क्लास आचार्यदेव खुद अकेले पढ़ाते थे। इसलिये उनका पढ़ाना दससे दो बजेतक तो चलता ही था, परन्तु प्रातःकाल और रातमें भी अपने मकानमें क्लास लेते थे। डी० एस्-सी०के छात्र आपके घर जाकर सवेरे और शाम आपके साथ गवेषणामें लगे रहते थे। स्वावलम्बन इस दरजेका था कि इतना अधिक काम होते हुए भी कभी किसी सहायक अध्यापककी माँग नहीं की। सहायता माँगना तो दूर रहा, मिलती हुई भी स्वीकार करना स्वाभिमानके विपरीत समझते थे। पढ़ानेमें तो ऐसा रस था कि कभी थकावट उन्हें मालूम नहीं होती थी। एक समय लाट साहब कालेज देखने आये थे। गुरुजीका पढ़ानेका प्रबन्ध सुनकर उन्होंने पूछा कि आप एक सहायक अध्यापक क्यों नहीं माँगते। आपने जवाब दिया कि आवश्यकता नहीं है।

गुरुजी अपने शिष्योंको बहुत प्यार करते थे। सज़ा देनेका उनका एक मजेदार तरीका था, वह यह था कि कसूर करनेवाला लड़का क्लासमें रहते हुए भी अनुपस्थित माना

आदर्श आचार्य्य और तपोधन

[प्रो० राजकिशोर, एम्० एस-सी०, गवर्नमेन्ट कालेज, अजमेर]

अगस्त सन् १९१४ का पहला दिन था। मैं अपनी स्कूल लीविंग परीक्षामें उत्तीर्ण हो स्थानीय क्वीन्स कालेजकी इन्टरमीडीयेट कक्षामें भरती हुआ था। मैं उस दिन देर करके कालेज गया था। उसी दिन वहीं आपसे मेरी प्रथम भेंट हुई थी। आप उस समय उस कालेजमें गणितशास्त्रके प्रोफेसर थे। पहलेही दिन दरजेमें जातेही आपने कहा—"I suppose you have been admitted. Please tell me your name, division and the examination which you have passed and the school from which you are coming." इन तीनों प्रश्नोंका उत्तर मैंने भी एक साथ ही दिया। मुझसे फिर उन्होंने कभी इन प्रश्नोंको न पूछा, लेकिन मेरा उत्तर सदैव उन्हें याद रहा। मैंने देखा कि सारे लड़कोंके साथ यही हाल था और सबसे उन्होंने प्रथम प्रश्न दरजेमें आतेही यही किये थे। वे सदा हरएकका नाम लेकर पुकारते थे और आवश्यकतानुसार जब किसीको डाटने या फटकारनेकी आवश्यकता पड़ती थी, तो उस दिन पूछी गयी बातोंका प्रयोग कक्षामें बिना किसी हिचिकके करते थे और कहते—"देखिये, अमुक व्यक्तिने परीक्षा तो प्रथम श्रेणीमें पास की, पर उसे कुछ आता-जाता नहीं। मालूम नहीं परीक्षकने कैसे इन्हें इतने नम्बर दे दिये।" हम लोग इस स्मरणशक्तिपर दंग रह जाते थे, कि डाक्टर साहब इतने लड़कोंके नाम इत्यादि एकही बार एक साथ बतानेपर कैसे याद रखते थे।

क्वीन्स कालेजकी बात तो छोटी रही। इस अगाध स्मरण-शक्तिका आश्चर्यजनक नमूना सेन्ट्रल हिन्दूकालेज-में देखनेको मिला, जब कि आप वहाँके प्रिन्सिपल थे। जाता था और उसके साथ बातचीत बन्द रहती थी। रहने-पर भी अनुपस्थित समझे जानेसे उस लड़केके मनमें बड़ी छटपटी मालूम होती थी। दो ही एक बार यह दंड भुगत-कर वह अपना स्वभाव सुधार लेता था। मैंने उनको कभी डाँटते या रिपोर्ट करते या कठिन सजा देते नहीं देखा है। छात्रोंके लिए उनका हृदय बड़ा कोमल था।

आचार्यजीका दिमाग गज़बका था। गणितकी कोई शाखा ऐसी नहीं थी, जिसमें वह पारदर्शी नहीं थे, और गणितका इतिहास तो उनको कण्ठस्थ था। गणितका विषय पढ़ाते हुए वह उस विषयके प्रवर्तकका नाम और उसका इतिहास भी बतला देते थे। उनसे एक बार भी जिससे परिचय हो जाता था, उसका रूप, नाम, धाम और सब विव-रण आचार्यजीको आजीवन स्मरण रहता था। उनकी स्मृति अद्भुत थी। भेंट होनेपर उन लोगोंका कुशल पूछते थे। हरेककी हरेक बात उनको याद रहती थी। किसीको कभी भूलते न थे।

अपने काममें वह तन्मय रहते थे और दूसरी ओर ध्यान देना कर्त्तव्यच्युति समझते थे। आप जब विलायतमें थे, उस समय सम्राट् एडवर्ड महोदयके राज्याभिषेकका महो-त्सव था। बुलायेजानेपर भी आपने जाना अस्वीकार किया। एक दिन बड़ाभारी प्रोसेशन था। गुरुजीका घर ऐसी जगह था कि खिड़की खोलनेसे उस प्रोसेशनको देखा जा सकता था। उस प्रोसेशनको देखनेके लिए देश-विदेश के लाखों मनुष्य जमा हुए थे। उनके काममें विघ्न न पड़े इसलिये खिड़की बन्द करके आप पुस्तकोंमें मग्न रहे।

गुरुवर भारी कर्म्मयोगी थे। कर्म्म करते-ही-करते आपका महाप्रयाण हुआ। भगवान्‌की दिव्य विभूतियाँही ऐसी गति पाती हैं।

कालेजमें उस समय करीब १००० के छात्र थे। जब लड़के कालेजमें भरती होते थे, आप उनको अपने कमरेमें बुलाते और उनके आवेदन-पत्रपर जो कुछ लिखा होता था, उसे पढ़कर लड़केसे कुछ दो-चार और बातें उसके घर तथा रहनेके स्थान इत्यादिके बारेमें पूछते और अपने हाथसे उसके भरती होनेकी आज्ञा लिखते थे। इन सब कामोंमें दो मिनिटके करीब समय लगता था। पर फिर कभी जब वह लड़का मिलता था और उन्हें प्रणाम करता था, तो आप उसका नाम लेकर उत्तर देते थे। यही हाल उनका कालेज के प्रत्येक विद्यार्थीके साथ था, चाहे वह फर्स्ट इयरका बाहरका आया नया छात्र हो, या विश्वविद्यालयके ऊँचेसे ऊँचे खोजी वर्गका। कभी-कभी जब वह किसी छात्रके घरके और लोगोंका हाल नाम लेकर पूछते और उसके घरकी आर्थिक दशाकी विवेचना करते, तो लोग दंग रह जाते थे कि वे बातें जो डाक्टर साहबने उनके कालेजके प्रथम दिवसके केवल प्रवेशकालकी भीड़में पूछी थीं, कैसे याद रहती हैं। क्वीन्स कालेजमें आप इन्टरमीडीयेट और बी० एस-सी दोनो ही कक्षाओंको पढ़ाते थे। आप कालेज पैदल ही आते थे और बहुत तेज़ चलते थे। आपका कार्य प्रतिदिन ११ बजे आरम्भ होता था और ३ बजे समाप्त। आप इस तरह रोज़ चार घंटे काम करते थे। और फर्स्ट इयरसे लेकर फोर्थ इयर तक और किसी-किसी साल एम्० ए०का भी काम अकेलेही करते थे। आपके कार्यक्रमका विवरण एक अनोखा, लेकिन गणितशास्त्रके लिये बहुत ही उपयोगी था। आप एक प्रश्न ब्लैकबोर्डपर दरजे को करनेके लिये लिख देते थे। विद्यार्थी प्रश्न करके अपनी कापियोंको उनके सामने रख आते फिर अपने नियत स्थानपर शान्त जा बैठते थे। जब सारी कापियाँ उनके पास पहुँच जातीं, तो वे एक-एक का निरीक्षण करते थे। वे केवल 'उत्तर' ही पढ़कर नहीं छोड़ देते थे। यदि प्रश्न ठीक हल किया निकला, तबतो कापी वापस कर दिया करते नहीं तो अपनी दाहने हाथकी ओर, जिधर कुछ स्थान इसी के लिये खाली रक्खा जाता था, कापीको यह कह कर फेंक देते थे कि "अमुक व्यक्ति वहाँ जाकर अपनी गलतीको ठीक करे।" मैंने देखा इसका प्रभाव विद्यार्थियों पर बहुत ही अच्छा पड़ता था और वे जो कुछभी अपनी कापीमें लिखते, बहुत समझबूझ कर लिखते थे और स्वयं अपनी कठिनाईको दूर करनेका प्रयत्न करते थे। इससे उनमें स्वावलंबनकी आदत पड़ती थी। इसी बीचमें आप लड़कोंको नसीहत की बहुतसी बातें भी सुनाते जाते। समय-समयपर आप छात्रोंसे ब्लैक-बोर्डपर भी प्रश्न करवाते, जिससे उनकी झिझक दूर हो। इस प्रकार आप एक घंटेके समयमें प्रतिदिन चार, पाँच प्रश्न करवाते और अपने इंगलैण्ड, जर्मनी तथा अन्य देशोंके गणितज्ञोंका अनुभव भी बताते जाते थे। सदा वे ऐसी बात करनेकी चेष्टा करते थे, जिससे छात्रोंकी गणित-शास्त्रकी ओर रुचि बढ़े और नसीहत मिले। चलते समय वे घरके लिये चार या पाँच प्रश्न दे दिया करते थे, जिनके करनेमें एक या दो घंटे समय लगा करता था। उनका प्रभाव ऐसा था कि किसी प्रश्न विशेषको विद्यार्थी कठिन कहकर छोड़नेका साहस ही न करता था, वरन् उसे हल करनेकी हार्दिक चेष्टा करता था। फल यह होता था कि करीब-करीब सभी सारे प्रश्न हल कर-के ले जाते थे। दूसरे दिन उनके कमरेमें जानेके पहले अगर समय मिलता, तो वे एक बार उन प्रश्नोंको फिरसे देख लेते थे, जिसमें यदि वे बुलाकर बोर्डपर प्रश्नको हल करनेको कहें तो लज्जित न होना पड़े। इस प्रकार वे लड़कोंके ऊपर ऐसा प्रभाव डालते कि उनके अंतःकरणमें स्वयमेव अपनी उन्नतिकी प्रबल इच्छा जाग्रत होती। किसीको घण्टा पूरा होनेके पहले बाहर निकलनेकी, कमरेके अन्दर पेन्सिल इत्यादि बनानेकी अथवा आपसमें वार्तालाप करनेकी अथवा उनकी किसी बातपर हँसनेकी—चाहे वे स्वयं ही क्यों न हँस पड़ें—पूरी मनाही थी। आपका आदर्श इस देशके पुराने आचार्य तथा कुलपतियोंका-सा था, जिनके सामने छात्रोंको सदैव नियमानुसार ही कार्य करना पड़ता था।

अभी आपके ऐसे अध्यापक पानेका श्रेय हमलोगोंको केवल डेढ़ ही महीने मिला था, कि आप सर रासबिहारी-घोष—प्रोफेसर आफ़ अप्लाइड मेथेमेटिक्स होकर कलकत्ता विश्वविद्यालयको चले गये और मेरा उनसे साढ़े तीन वर्षके लिये सम्बन्ध छूट गया।

• • •

सन् १९१८ में आप काशी-विश्वविद्यालयके सेन्ट्रल हिन्दूकालेजके प्रिन्सिपल नियुक्त हुए। उसी वर्ष मैंने क्वीन्स कालेजमें बी० एस-सी० परीक्षा भी पास की। प्रोफेसर

चण्डीप्रसादजीके अनुरोधसे मैं उनसे मिला। उनके गणित-प्रेमका मेरे ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैं क्वीन्स कालेजके रसायन-विज्ञानके डिमौन्स्ट्रेटरका पद, जिसे मि० मरेल स्वयं मुझे दे रहे थे, छोड़कर गणित विषय लेकर एम्० एस-सी कक्षामें पढ़नेको प्रवृत्त हो गया। मेरे ही ऊपर नहीं, बल्कि उनका यह प्रभाव मेरे और भी साथियोंपर पड़ा था। जो उनसे मिलने गया उसने ही गणित विषय लिया। फलस्वरूप दस छात्र केवल गणित-विभागमें तथा एक-एक दो-दो विज्ञानके अन्यान्य विभागमें पढ़नेको गये। गणितके लिए अभीतक किसी एक विद्यालयमें पढ़नेके लिए इतनी क्या इसकी आधी संख्या भी नहीं हुई थी। गणितशास्त्रकी अध्यापन-प्रणालीका इन्होंने इस कालेजमें संगठन किया। 'अनुसन्धान तथा विद्याकी उन्नति' यह दो प्रत्येक विश्वविद्यालयके परम कर्तव्य हैं। डाक्टर साहबने इन दोनोंको वहाँ प्रतिष्ठापित किया। काशी विश्वविद्यालयमें आते ही आपने ७५) मासिककी दो छात्रवृत्तियाँ अपने गणित-सम्बन्धी अनुसन्धानके लिए स्थापित करायीं। गणितकी विशेष उन्नति तथा उसके अनुसन्धानके लिए आपने "बनारस मेथमेटिकल सोसाइटी नामकी एक अलग परिषत्‌की स्थापना की। यह संस्था आजतक जीवित है। आशा है उनके शिष्य तथा भक्त इसे संगठित रखने तथा उनके उचित स्मारकका रूप इसे प्रदान करनेका अवश्य ही उचित प्रयत्न करेंगे।

हिन्दू कालेजके प्रिंसिपलके पदपर रहते समय आपको ६बजेसे रात्रिके ७-८ बजेतक लगातार उपस्थित रहना पड़ता था और विश्वविद्यालयकी विविध समितियों और संस्थाओंके (जैसे सेनेट, फेकेल्टी, काउन्सिल, इत्यादि) अधिवेशनके दिन १०-११ बजे राततक घर जाना मामूलीसी बात रहती थी। इतना कठिन परिश्रम करनेसे उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और वह बीमार रहने लगे, पर उनके कार्य-क्रममें ज़राभी फर्क नहीं पड़ा।

एक दिनकी बातहै कि आप ठीक समयपर आकर मेरी कक्षामें रोजकी तरह लेक्चर देने लगे। उसके समाप्त करने पर कुछ इधर-उधर की बातें करते हुए आपने कहा कि, 'आज मुझे १०१° के उपर ज्वर है।' इसके पहले आपका कार्य कक्षामें इस ढंगसे हुआ था कि किसीको यह अनुमान भी न हुआ कि डाक्टर साहबको इतना ज्वर हो सकता है। अपनेको ये इतने संयमसे रखते थे कि उनकी असली शारीरिक दशाका सच्चा परिचय मिलना असम्भव सा था। हम लोगोंके कुछ दिनोंकी छुट्टी लेकर आराम करनेकी और उचित औषधि सेवनके अनुरोध करनेपर आपने उत्तर दिया था कि, "यह सम्भव नहीं। मैं अपने कामसे हट नहीं सकता।" पठन-पाठनका कार्य तो मेरे लिये टानिक का कार्य करता है। दर्जेमें आनेसे मेरी तबीयत बहल जाती है। प्रिंसिपलीके कामकी बात तो दूसरी ही है, लेकिन जबतक मैं उस पदपर रहूँगा इसी तरीकेसे काम करूँगा।" यह स्मरण रखना चाहिये कि डाक्टर साहब आनरेरी प्रिंसिपल थे। वेतन उन्हें केवल विश्वविद्यालयके गणितशास्त्रके आचार्य्यका ही मिलता था प्रिंसीपलीके लिये वे एक पैसा भी न पाते थे। यह केवल आपकी कर्तव्य-परायणताही थी, जो कि कार्यमें लगे रहने को प्रोत्साहित करती थी। आखिर शरीर कबतक इतना कठिन परिश्रम सहन कर सकता था। विवश होकर डेढ़ वर्ष बाद आपको प्रिंसिपली का पद छोड़ना पड़ा। इसके बाद आप केवल गणित-विभागके प्रधान आचार्य्य ही रहे। पर विश्वविद्यालयके संचालनके लिये आपकी रायकी आवश्यकता विश्वविद्यालयकी प्रत्येक समितियोंमें पड़ती थी। १९२३ में विश्वविद्यालय के प्रबन्धकर्ताओं से कुछ मन-मुटाव होनेसे यह पदभी त्याग दिया। उस समयसे अपने अन्तिम दिनों तक आप कलकत्ता-विश्वविद्यालयमें हार्डिञ्ज प्रोफेसर आफ़ हायर मेथमेटिक्स रहे।

डाक्टर साहका जीवन बहुतही सादा था। आप कहा करते थे कि मेरे खानेमें कुल दो आने पैसे खर्च होते हैं। खानेके लिए आपको केवल रोटी * और एक तरकारी विशेषतः आलूकी आवश्यकता थी। जब कभी बाहर जाते तो रोटीका स्थान पूड़ी ग्रहण कर लेती थी। सभा-समितियों की बैठकके दिन आप दिनका खाना बिलकुलही टाल दिया करते थे। दालका खाना बहुत पहलेही आपने अपनी बीमारी के कारण छोड़ दिया था। चारपाईपर केवल आपको एक कंबल, एक चादर और एक छोटा-सा तकिया चाहता था। गरमीके दिनोंमें अखबारके पन्ने बिस्तरका स्थान ग्रहण

---

* इधर छः सात वर्षोंका ही यह हाल है। आपने क्रममें कुछ परिवर्त्तन कर दिया था। —रा० गौ०

कर लिया करते थे। जाड़ेमें ओढ़नेके लिये एक कम्बल काफी था। कलकत्तेमें आप सोनेके लिए एक तार की बुनी चारपाई और वही कम्बल काममें लाते थे। साधारण मनुष्यका तो उसपर सोना कठिन था। सन् १९२९में जब आप बीमार पड़े, मैं भी कलकत्तेमें था। इस समय बड़ी मुश्किलसे आपने एक सुतलीकी बुनी चारपाईका प्रयोग करना स्वीकार किया, परन्तु एक साधारण गद्देका इस्तेमाल उस समयभी त्याज्य ही रहा। अपने शिष्योंके अविरल अनुरोधपर भी आपने उसका उपयोग करना स्वीकार नहीं किया। स्पष्टवादी तो आप इतने थे, कि कितनेही बार लोगोंसे इसके कारण आपसे झगड़ा हो गया था। जो काम आप अपने ऊपर लेते उसे पूरा करनेका पूरा प्रयत्न करते थे, चाहे आपको कितना ही कठिन परिश्रम क्यों न करना पड़े। इलाहाबाद, आगरा प्रभृति विश्वविद्यालयोंकी बैठकोंमें पेश होनेवाले प्रस्तावोंकी इतनी तैयारी करके जाते थे कि प्रतिवादीको इनका सामना करना असाध्य-सा रहता। लोगोंका कहना था कि जिस कार्य्यको डाक्टर साहबने अपना लिया है, उसमें सफलता होना तो निश्चय ही है। इनकी कार्रवाइयोंमें वे इतने त्यागसे काम करते थे कि किसीको यह लांछन देनेकी हिम्मत नहीं पड़ी कि उसमें उनका निजी स्वार्थ है। एक बार विरोधियोंने उनके सामने नहीं, परन्तु पीठ-पीछे कहा था, कि "डाक्टर साहब भत्तेके लालचसे कलकत्तेसे इतनी दूर केवल (Executive Council) इक्ज़ीक्यूटिव काउन्सिलकी मीटिंगसमें सम्मिलित होनेको आते हैं।' इसका उत्तर आपने आगरा विश्वविद्यालयके सेनेटकी एक बैठकमें अपने वक्तव्य में यह दिया था, मैं विश्वविद्यालय की बैठक में सम्मिलित होनेके लिये आता तो हूँ कलकत्तेसे, परन्तु रेलका किराया केवल बनारससे लेता हूँ। ऐसा करनेमें मुझे अपनी जेबसे कुछ और खर्च करना पड़ता है। इन बैठकोंमें मैं अपने मतलबसे नहीं, वरं विश्वविद्यालयकी सेवाकी भावनासे सम्मिलित होता हूँ।' यह उत्तर सुनकर विरोधियोंको फिर कभी ऐसा कलंक लगानेकी हिम्मत न पड़ी। आगरा विश्वविद्यालयसे आपने परीक्षकके नाते पारिश्रमिक कभी नहीं लिया। वरन् इसके बदले आप समय-समयपर कलकत्ता, काशी, प्रयाग, आगरा इत्यादि विश्वविद्यालयोंको यथाशक्ति आर्थिक

सहायता देते रहे हैं। विद्यार्थियोंके आप परम मित्र थे। आप घरपर एक कमीज और एक पैजामा या पतलून पहने हुए अधिकतर पाये जाते थे। आप कहा करते थे कि "गरीब विद्यार्थी जब मेरे यहाँ आते हैं और मुझे इस मुफलिसीकी हालतमें देखते हैं, तो उनको पूर्ण विश्वास हो जाता है, कि यह हमारेही ऐसे हैं और हमारी अवश्य मदद करेंगे।" निःसन्देह विद्यार्थियोंको उनके ऊपर पूर्ण रूपसे भरोसा था। काशी विश्वविद्यालय छोड़नेपर जब उनका उससे कुछ भी सम्बन्ध न रहा, तब भी विद्यार्थी सहायताके लिये उनके पास आया करते थे। अपने शिष्योंकी सहायताके लिए आप सदैव तत्पर रहा करते थे। उनका कहना था कि "मेरे परम मित्र मेरे शिष्य रहे हैं।" क्या आश्चर्य था जब कि शिष्य भी उनके लिए वैसा ही कहते थे और समय पड़नेपर उनसे अपनी बात कहनेमें ज़रा भी न हिचकिचाते थे!

आपकी पत्नीका देहान्त आपकी इंगलैण्ड-यात्राके पहलेही हो गया था। विलायतसे लौटनेपर लोगोंके बहुत अनुरोध करनेपर भी आपने पुनर्विवाह नहीं किया। अपनी चरित्र-रक्षाके लिये आपने अपना जीवन बहुत ही कठिन रूपसे नियमबद्ध किया था। अपने अन्तिम दिनोंमें आप कहा करते थे कि अब मैं पचासके उपर हो गया, अब बचे हुए दिन निबाहना मुश्किल नहीं है। पहले मैं कामक्रोध लोभसे बिलकुल दूर रहनेके लिये और संयमके लिये अपने चारों ओर एक प्रकारका किला बनाया करता था। कोई स्त्री मेरे बँगलेके फाटक के अन्दर नहीं आ सकती थी। समाजसे मुझे अपना संबंन्ध तोड़ देना पड़ा था। लोगोंके यहाँ आना-जाना एक प्रकारसे बिलकुल बन्द था। कोई रिश्तेदार मेरे यहाँ आकर रहता तो मेरे सामने कठिन समस्या आ पड़ती थी, इसीसे लोग मुझे अ-मिलनसार तथा घमंडी भी कहने लगे थे, पर वास्तवमें मेरे ऐसे स्वरूपका कारण दूसरा ही था।

डाक्टर साहबकी एकमात्र कन्याका देहान्त भी सन् १९१२में ही हो गया था। इससे उनके हृदयमें और भी विरति आ गयी थी। वह कहा करते थे—"मेरे ऊपर जितना ही दुःख पड़ा, मेरा प्रेम गणितसे उतना ही बढ़ता गया।" गणितमें इस देशमें स्वतंत्र अनुसन्धान करनेवाले पिछले तीन सौ बरसोंके बाद आप पहले ही व्यक्ति थे। गणित-

पाससे देखी हुई साफ़ तस्वीर

[रामदास गौड़]

(१) इस रूखे-फीके हृदयका एक गुप्त कोना

प्यारी पुत्री कृष्णकुमारी उनके अतीत वैवाहिक जीवनकी मधुर मनोज्ञ स्मृति थी, उनकी स्वर्गवासिनी प्यारी पत्नीकी एकमात्र स्नेहमय चिह्न थी। पारिवारिक जीवनकी यह एकमात्र आधार डाक्टर साहबके सारे मनोरथोंको मिट्टीमें मिलाती हुई और उन्हें वियोगके अथाह सागरमें डुबोती हुई अन्तको प्रकृतिकी गोदमें चली गयी। वह सचमुच उसीके लिये इतना धन इकट्ठा करनेवाले थे कि सिद्धान्त-विहीन क्रूर समाजसे सारे झगड़ोंके होते हुए भी वह उत्तमसे-उत्तम पुत्र अपनी पुत्रीके लिए चुन सकें और उसे खर्चीलीसे-खर्चीली शिक्षा देकर नामी विद्वान् बना सकें।

बिटियाको वह सचमुच कुछ न दे सके और वह चली गयी। पीछेसे उसके नामसे वृत्तिके लिए कलकत्ता-विश्व-विद्यालयमें बहुत रुपये दिये, उसके नामपर पुस्तक समर्पण की, उसकी स्मृतिमें छात्राओंकी वृत्तिके लिए बहुत धन दिया, परन्तु जो हौसला था इन बातोंसे कहाँ पूरा होता है! वह तो उसके साथ ही मर गया!

(२) अद्भुत परिवर्त्तन

लड़कीके मरनेके बाद उनके व्यवहारमें अद्भुत परि-वर्त्तन हो गया।

वह हद दरजेके मिलनसार हो गये। वह रूखा फीका-पन एकाएकी रफूचक्कर हो गया। वह अपने मित्रों और नातेदारोंसे जा-जाकर मिलने लगे। उनकी कुशल पूछने लगे। दावतोंमें जाने लगे और अपने स्वाभाविक संयमके साथ शरीक होने लगे। शिष्टाचार और सौम्यताके तो वह मूर्त्ति हो गये। लोगोंके दुःख-सुखमें शरीक होना उन्होंने अपना नियम बना लिया। जो कोई उनके पास किसी मत-लबसे जाता था, निराश नहीं लौटता था। कोरा जवाब नहीं मिलता था। कुछ-न-कुछ सहायता मिल ही जाती थी। अब दानके लिए उनकी थैली खुली मिलती थी। देश-काल-पात्रकी उपयुक्तताका विचार करके खुले हाथों दान देने लगे। अब वह देनेमें कंजूस नहीं रहे। हाँ, अपने खाने-पहिरनेमें वह अब भी कम-से-कम खर्च करते थे।* वह जितनी मुरव्वत रवा रखने लगे, मुश्किलसे कोई बर्त्त सकता। वह अब बेमुरव्वत नहीं थे। अब वे लोगोंसे मिलते थे, तो वक्त का सख्तीसे खयाल न करते थे। किसी-किसीसे तो बातें करनेको इतने उत्सुक रहते थे कि अक्सर रोक लेते थे, जाने न देते थे। अब हदसे ज्यादा मुरव्वत और मिलनसारी थी। जिन लोगोंने दूरसे देखकर उन्हें खब्ती कहा था उन्हें अपना मत बदलना पड़ा। उन्होंने देखा कि रूखे फीके-पनका, कंजूसीका बेमुरव्वतीका, जिदका, ऊपरसे उन्होंने एक लबादा डाल रखा था जिसे उन्होंने अब उतार फेंका और अपने असली सौम्यता, मिलनसारी, शिष्टता, उदारता, ऋजुता आदि सद्गुण-सम्पन्न रूपमें दीखने लगे। उनका अबतकका बाहरी अशिष्ट बरताव वास्तवमें एक परदा था जिसके भीतर जानबूझकर किसी विशेष उद्देश्यसे उन्होंने अपनेको छिपा रखा था। जब वह उद्देश्य न रहा,

---

संसारमें भारतका मस्तक ऊपर उठानेवाले अर्वाचीन कालके आप पहले महान्-आत्मा थे। आपके गणित-ज्ञानका लोहा युरोपीय गणिताचार्य्य मान गये थे। ऐसे महान् पुरुषकी अकस्मात् मृत्युसे सारा देश शोकाकुल हो गया है। ईश्वर उस महान्-आत्माको शान्ति दे तथा वैसेही सपूतोंसे भारत माँ की गोद भरे। एवमस्तु।

* इधर सात-आठ बरसोंसे वह दूध लेने लगे थे, रोटी खाने लगे थे और जीवन-क्रममें कुछ फेरफार किया था, उसका रहस्य भी यही था। —रा० गौ०

तो उस परदेको फाड़ फेंका और अपने असली रूपमें आ गये। इनके बारेमें दूरसे देखकर जिन-जिनने अपना मत निर्धारण किया था कितनी भारी भूलकी थी, इनमेंसे अनेक कैसे भारी भ्रममें आज भी सम्भवतः पड़े हुए होंगे!

इस भ्रान्तिके जो लोग शिकार हुए थे उनमेंसे अनेक अकारण ही उनसे बुरा मानने लगे और ऐसे लोगोंने व्यर्थ ही उनका विरोध करके बहुधा अपनेको असफलताका पात्र बनाया। डाक्टर गणेशप्रसाद जो कुछ कहते थे ठोस प्रमाणके साथ ही कहते थे। अप्रामाणिक बात कह बैठना उन्होंने सीखा ही न था। जो द्वेषभावसे ही विरोध करते थे वह जोशमें इस धैर्यकी बातको भूल जाते थे, उनका विरोध इसीलिए कभी उनके सामने चल न सकता था। मुँहकी खाकर और भी जलते थे और द्वेषकी मात्रा और भी बढ़ जाती थी। इतने महान् परिवर्त्तन पर भी हृदयके अन्तःस्तलमें उस पुत्रीके वियोगकी वेदना बनी रही। इसका प्रमाण उनकी पुस्तक "स्फीरिकल हारमोनिक्स"में मिलता है जो हालमें ही छपी है। पहला भाग १९३०में और दूसरा १९३२में छपा। दोनोंमें अपनी प्यारी पुत्रीके नाम उन्होंने इस प्रकार समर्पण किया है—

> **DEDICATED**
> TO THE MEMORY
> OF
> MY DAUGHTER
> **KRISHNAKUMARI DEBI**
> **1896-1912**
>
> GANESH PRASAD.

(३) अद्भुत धैर्य्य और सहनशीलता

जब वह हिन्दू-विश्वविद्यालयमें प्रिंसिपल थे उस समय की बात थी। ऐसे ही किसी उसकानेवाले द्वेषीके प्रभावमें आकर एक नवयुवक प्रोफेसरने उनका अपमान किया। वह क्रोधमें भरा उनके कमरेमें घुस आया और गालियाँ देने लगा—"तुम ऐसे हो, वैसे हो," इत्यादि। परन्तु इसपर बिना किसी क्षोभके डाक्टर साहब कहते गये—"जी नहीं, यह गलत है। आप पछतायेंगे, क्योंकि आप जो कहते हैं उसको प्रमाण-सिद्ध नहीं कर सकते।"

सचमुच पीछे उसे बहुत पछताना पड़ा और उन गालियोंके लिए वह सदैव उनसे लज्जित रहता था। वह डाक्टर साहबका बड़ा मित्र हो गया और उसने अपना उसकाया जाना उनसे स्वीकार किया।

(४) क्या वह उजड्ड और मुँहफट थे?

सरकारी नौकर जिनका नाम गज़टके प्रथम भागमें छपा करता है, विशेष नियमोंसे आबद्ध हैं।

डाक्टर गणेशप्रसाद जब प्रोफेसर नियुक्त हुए तो इसी नियम के अनुसार उन्हें सालमें एक बार कमिश्नरसे मिलना आवश्यक था, वह इस नियमकी पाबन्दी करते थे, परन्तु साहब-सलामतके बाद वह कहते थे कि "महाशय, मुझे आपसे कोई काम नहीं है। मैं तो आपसे इसीलिए मिलने आया कि यह नियम बना हुआ है। बस! अब मैं जाऊँ?" इतनी बातमें मुलाकात खतम हो जाती थी। इसमें मुश्किल से कुछ सेकण्ड लगते थे। इसे कोई उनका उजड्डपन भलेही कह ले, परन्तु यह उनकी निर्भीकता थी, जो यह कहलाती थी कि यह नियम युनिवर्सिटी के विद्वान् आचार्य्यों के लिए कितना निरर्थक है। वस्तुतः कमिश्नरको प्रोफेसरोंसे क्या काम?

एक बार एक सभा थी जिसमें शिक्षा-विभागके एक परमोच्च कर्म्मचारीने कोई अनर्गल बात कह डाली। डाक्टर साहब भी उस सभाके सदस्य रूपमें मौजूद थे। उन्होंने अपनी वक्तृतामें कहा कि "श्री........ने यह बड़ी बेवकूफीकी बात कही है।" इसपर कहनेवाले कर्म्मचारीने अध्यक्षसे अपीलकी कि "डाक्टर साहबने मुझे गाली दी। ये अपने शब्द वापस लें।' डाक्टरसाहबने शब्द वापस लेनेसे साफ इनकार किया और अध्यक्षको उत्तर दिया कि विषयान्तर न हो तो मैं श्री........की बेवकूफ़ी इसी समय सिद्ध कर दूँ,

जैसे कि मैं किसी गणितके तथ्यको सिद्ध करता हूँ।" कोई ऐसी बातोंपर उन्हें मुँहफट कह सकता है, परन्तु उनके चरित्रकी गहराईतक निगाह डालें तो पता चलेगा कि वह सत्यवादी थे, दृढ़निश्चयी थे और परले सिरेके निर्भीक थे। उनका निशाना अचूक पड़ता था। वह परिहास-प्रिय थे और बड़ी सूक्ष्म विधिसे चुटकियाँ लेना जानते थे।

(५) सूक्ष्म परिहास। वह ज़िद्दी न थे

भतीजीका ब्याह था। सर ज्वालाप्रसाद जैसे समधीका मुकाबला था। उन्होंने किसी काममें जल्दी की और मुहूर्त्तके पहले ही उसके किये जानेका आग्रह किया। लड़कीवालोंकी ओरकी कुछ आवश्यक रस्में होनी थीं। डाक्टर साहबने कहा कि "ज्योतिषीने अमुक मुहूर्त्त बतलाया है। अभी उसके आनेमें इतनी देर है, जरा और तअम्मुल कीजिए।" जज साहब अधीर हो बोले "ज्योतिषी मूर्ख है, यह काम अभी होना चाहिए।" डाक्टरसाहब बोले "जनाब बिलकुल बजा फरमाते हैं, जज लोग तो सभी कुछ जानते हैं, उन्हें तो दुनियाकी सभी बातोंका ज्ञान होता है, ज्योतिषी तो एक मामूली चीज है" और फौरन् अपने लोगोंको ताकीद की कि जजसाहबका हुक्म बजा लाया जाय।

(६) समयकी पाबन्दी

आरम्भमें मैंने डाक्टर साहबको दूर-दूरसे देखा था। पहले-पहल उस सहभोजमें देखा जो म्योर कालेजमें उनके स्वागतमें दिया गया था जिसकी चर्चा मैं अन्यत्र कर चुका हूँ। फिर उनको अनेक बार अनेक अवसरोंपर देखनेका संयोग हुआ। साहब-सलामत हुई। हम दोनों एक दूसरेको जान चुके थे, परन्तु कोई प्रयोजन न था कि मिलता। मैं स्वयं बहुत मिलने-जुलनेवाला आदमी न था और सुना था कि डाक्टर साहब भी मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते, फिर मिलना क्यों हो।

फिर भी देखता था कि डाक्टरसाहब जिस किसी कामसे कहीं भी जाते हैं तो दाहने-बायें किसी तरफ उनकी निगाह नहीं जाती। वह सीधी निगाह उसी मार्गपर और उसी कमरेपर रखते हैं जहाँ जाना है। वह किसीसे सलामके इच्छुक न थे। श्रीजेनिंग्स इसी म्योर कालेजमें थे तो दहने-बायें इधर-उधर गौरसे देखते, सिंहावलोकन करते चलते थे कि कौन-कौन मुझे सलाम करता और कौन नहीं। हातेके अन्तमें खड़े चपरासीसे भी बुलाकर जवाब तलब करते थे कि तुमने मुझे सलाम क्यों नहीं किया? सलामका रोग प्रोफेसरोंमें विशेष रूपसे हो सकता है, क्योंकि उनका वास्ता हजारों बन्दना करनेवाले शिष्योंसे पड़ता रहता है। डाक्टर साहब इस छूतवाले रोगसे बचे हुए थे।

डाक्टर साहब वक्तकी ठीक कीमत जानते थे। वह अपना एक मिनिट भी बरबाद नहीं होने देते थे। उनके सारे काम मिनिटोंमें विभक्त होते थे। यदि इधर-उधर ध्यान देते तो समय बरबाद होता। उन्हें सारे जीवन कभी किसीने खेल-तमाशेमें नहीं देखा। सामने तमाशा हो रहा है और आप बहुत तेज कदम बिना इधर-उधर देखे उसी ओरसे गुजर रहे हैं मानों कुछ भी नहीं हो रहा है।

क्रीसकालेजके मैदानमें टूर्नामेंट हो रहा था। मैं भी वहाँ मौजूद था। देखा कि डाक्टर साहब तेजीसे उधरसे गुजर रहे हैं। उसी समय वेनिस साहब जो फील्डमें मौजूद थे, किसी जरूरी बातको उनसे कहनेके लिए लपके और "वन् मोमेंट, डाक्टर! वन् मोमेंट, !" (अर्थात् "डाक्टर साहब जरा सुन लीजिये। डाक्टर साहब, ज़रा सुनलीजिये) कहते हुए उनके पीछे दौड़ पड़े। प्रिंसिपलकी आवाज़ सुनकर डाक्टर साहब लौटे और कुछ सेकंड ही बात करके अपना रास्ता लिया। उनके निकट मानों टूर्नामेंट हो ही नहीं रहा था।

(७) सादा संयमी जीवन

बाहर कोट, हैट, पैंट, नेकटाई, कालर आदिसे लैस, फीटन या टैक्सीपर सवार, देखकर कोई कैसे समझ सकता था कि इस साहेबी फ़ैशनके अन्दर एक शुद्ध संयमी ब्रह्मचारी छिपा हुआ है। बाहरी वेशभूषा उनके पद और वेतनके अनुकूल थी। सर प्रफुल्लचन्द्ररायकी तरह छोटी धोती और फटा कोट न था, और न ढीली चारपाईके झिलँगेके अन्दर वह आराम करते थे। सर प्रफुल्लचन्द्ररायकी इस सादगीको सभी देख सकते हैं, परन्तु डा० गणेशप्रसादकी सादगी, संयम और ब्रह्मचर्य्यका जीवन सार्वजनिक आँखोंसे ओझल था। उसे वेही जान सकते थे जो उन्हें निजी अवसरोंपर उनके घर जाकर पाससे देखते थे। घराऊ कपड़े

न थे। बिछौना, तकिया, मसहरी कुछ नहीं। सामानके नाते कुछ कुरसियाँ, एक दो मेजें, किताबें और अलमारियाँ, बस इतना ही सामान था। चौबीस घंटेमें एक बार पूरियां और आलूकी तरकारी बस यही भोजन था। चपरासी और नौकर दो दो। खिदमतगार एक भी नहीं। पूरियाँ बाजारसे आती थीं। बदनकी मालिशकी जरूरत न थी। खास कमरेमें झाड़ू पड़नेका काम नहीं। चौका-बासनकी, रसोई पकानेकी जरूरत नहीं। फिर खिदमतगार और रसोइयेका क्या काम। चपरासी था जो चीठियां लाने पहुँचाने, अर्थात् डाक आदिका कामकर देता था। कलके नीचे नहा लेनेमें नौकरकी जरूरत क्या? गरज कि इतना सादा जीवन था, इतनी कम जरूरतें थीं, कि पाससे देखनेवालेको आश्चर्य्यमें डूब जाना पड़ता था। पूछनेपर कहा भी करते थे कि "मैं तो ब्रह्मचारी हूँ, मुझे इससे ज्यादा नहीं चाहिए?" पान, तमाखू,-सिगरेट या किसी तरहका व्यसन जीवनभर पास न फटका।

इधर कुछ बरसोंसे पूरियोंके बदले रोटी-शाक खाने लगे थे। एक रसोइया भी रख लिया था और चायके नामसे दूधमें जरासी चाय मिलाकर पिया करते थे। यह परिवर्त्तन बुढ़ापेके स्वागतमें उन्होंने कर लिये। उन्हें अपने ब्रह्मचर्य्यका और दिमागका भारी भरोसा था।

(८) अपने छात्रोंपर उनकी ममता

यों तो अपने शिष्योंपर सदासे उनकी स्नेह-दृष्टि रहती थी, तो भी कृष्णकुमारीके मर जानेके बाद उनकी ममता अपने शिष्योंसे बढ़ गयी। वे अपने शिष्योंको बेटोंसे अधिक मानते थे, फिर वे चाहे हिन्दुस्तानी हों चाहे बंगाली, हिन्दू हों चाहे मुसलमान, ब्राह्मण हों चाहे शूद्र। उनके निकट सबकी जाति बराबर थी और सबसे बड़ी जातिका और सबसे बड़ा वही था जो उच्च गणितमें मन लगाये हुए था, जो खोजके काममें लगा था। उसके लिए छात्रवृत्तियाँ दिलानेकी वह जी-तोड़ कोशिश करते थे, उसके लिए नौकरियाँ खोजते थे, खोजकी सामग्री प्रस्तुत करते थे। गरज कि गणितके छात्र ही उनके लिए सब कुछ थे। उनके छात्र सारे भारतमें फैले हुए हैं और प्रायः सभी विश्वविद्यालयोंमें हैं। अन्त समय भी वह १०७ उच्चगणितके छात्रोंको शिक्षा दे रहे थे।

जब वह हिन्दूविश्वविद्यालयमें थे, उनसे द्वेष करनेवालों ने यह बात फैलायी कि वह कायस्थ जातिका पक्ष करते हैं और एकाध छात्रोंको जिन्हें वृत्ति मिलती थी, कायस्थ बतलाया, परन्तु जब यह निश्चय हो गया कि वे वृत्तिधारी कायस्थ न थे, तो लांछना लगानेवालोंको लज्जित होना पड़ा।

(९) हिन्दू-विश्वविद्यालयमें उनका प्रभाव

हिन्दू-विश्वविद्यालयमें उन्हें अत्यन्त निकटसे देखनेका मुझे सुअवसर मिला। वहाँके कोर्टमें, कौंसिलमें, सिंडिकेटमें, सिनेटमें, फैकल्टियोंमें उनका स्थान सर्वत्र था और इसीलिए था कि समुचित रीतिसे कार्य्य-संचालनमें उनके दिमागकी भारी जरूरत थी। पूर्ण परिशीलनसे दृढ़ीकृत सत्य और यथार्थ विचार और निर्भीक वाक्पटु वक्तृत्वके कारण उनके अनुयायी अधिक थे, परन्तु कुछ लोग उनकी इतनी भारी योग्यता और सहजनायकताको सह नहीं सकते थे। वह मौके-बे-मौके उनके विरोधमें ही अपने गौरवकी रक्षा मानते थे, परन्तु प्रायः सर्वत्र मुँहकी खाते थे। इस प्रकारके विरोधियोंकी वहाँ एक गुट बन गयी थी, इस तरहकी गुटने स्वभावसे ही उनके अनुयायियोंको उनके पक्षमें दृढ़कर दिया। इस प्रकार जबतक वह हिन्दू-विश्वविद्यालयमें थे, उनका प्रभाव बड़ा प्रबल था और उस समयके वाइस-चांसेलर सर शिवस्वामी ऐयरतक उनके इस भारी प्रभावके कारण उनसे बेतरह ईर्षा करते थे।

(१०) हिन्दीमें वक्तृता

हिन्दू-विश्वविद्यालयकी सभा-समितियोंमें भी डाक्टर साहब, सबकी तरह अंग्रेज़ीमें ही स्पीच देते थे। मैंने देखा कि इन सभाओंमें बहुधा ऐसे विद्वान् भी सम्मिलित होते हैं, जो अंग्रेज़ी समझ नहीं सकते। साथ ही हिन्दू-विश्वविद्यालयमें विशेषतः अंग्रेजी छोड़ हिन्दीमें बोलना कोई महापातक न होता। मैंने डाक्टर साहबसे इस वैषम्य की ओर ध्यान दिलाया। उन्होंने मेरे मतका समर्थन किया, परन्तु वह बोले—"मैं तो व्याख्यान देने लायक हिन्दी जानता ही नहीं, परन्तु कोशिश करूँगा। तुम इसे आरम्भ करो। मैं तुम्हारा साथ दूँगा।"

सर शिवस्वामीने उपाधिदानोत्सवके समयकी सारी

विधियाँ, मदरासके अनुकरणमें, अंग्रेजीमें रखी थीं। सीनेटमें वह पास होनेवाली थीं। अंग्रेज़ीकी जगह संस्कृत और हिन्दीको, और विदेशी रीतियोंकी जगह स्वदेशी रीतियोंको, स्थान देनेके लिए मैंने सर शिवस्वामीके विरोधमें प्रस्तावकी सूचना दी थी। जब मैं हिन्दीमें बोलने लगा तो इस सभाकी जीवनीमें मैंने नयी बात की। पूज्य मालवीयजीने कहा कि अंग्रेज़ीमें बोलो, सर शिवस्वामी हिन्दी न समझेंगे। मैंने अन्तमें अंग्रेज़ीमें सारांश कह देनेका वादा किया और सारी बातें हिन्दीमें कहीं। इस दिन उस सभामें डाक्टर साहबने पहले-पहल हिन्दीमें ही बोलकर मेरा समर्थन किया। फिर तो यह नियम सा हो गया कि जिस सभामें अंग्रेजी न जाननेवाला एक भी विद्वान् होता था उसमें वह हिन्दीमें ही बोलते थे। अन्तमें हिन्दी न जाननेवालोंकी खातिर अंग्रेजीमें भी अभिप्राय कह देते थे।

(११) हिन्दीकी हिमायत

हिन्दू-विश्वविद्यालयमें हिन्दीके अनुरागकी यह दशा थी कि जब हिन्दीका पहला अध्यापक रखा गया तो उसे प्रोफेसर कहनेमें लोग हिचकते थे और हिन्दीको इस योग्य नहीं समझते थे कि उसका अध्यापक प्रोफेसर कहा जाय और उसका साहित्य किसी डिग्रीकी उपाधिके योग्य भी समझा जाय। डाक्टर साहब कौंसिलमें अध्यापकके सम्मान्य पदके संबन्धमें खूब लड़े। जब संवत् १९७८में विश्वविद्यालयकी रिफार्म कमिटी बैठी तो उसमें डाक्टर साहबने फिर जी-जानसे इस बातका समर्थन किया कि ऊँचेसे ऊँचे दरजेतककी पढ़ाई अपनी हिन्दी भाषामें हो। उन्होंने संसारके अन्य सभी विश्वविद्यालयोंके प्रमाण दिये और दिखाया कि परायी भाषामें शिक्षा अस्वाभाविक, विषम, हानिकर और अपमानजनक है। उस सभामें गुजराती, मराठी, बंगला आदि भारतीय अन्य भाषाओंके बोलनेवाले आचार्य्योंने भी डाक्टर साहबका दृढ़ समर्थन किया था। ऐसे विषम अवसरपर अंग्रेजी माध्यमकी डूबती नैयाको उबार लेनेका श्रेय उस अवसरके सभापति पूज्य मालवीयजीको है। उन्होंने कहा कि धीरे-धीरे सब सुधार करेंगे। अभी यह मन्तव्य प्रवेशिका परीक्षाके लिये रहेगा, फिर दो-दो बरसमें ऊंचे उठाते हुए छः बरसमें ही सर्वत्र हिन्दीमें ही पढ़ाई होने लगेगी।

तबसे छः बरस दो बार बीत गये और उसका तीसरा चक्कर भी आधा हो चला। परन्तु हिन्दीके माध्यमकी गाड़ी एक कदम भी आगे न बढ़ी।

डाक्टर साहब हृदयसे हिन्दीके हितैषी थे। जहाँकहीं मौका मिलता था वहाँ चूकते नथे। परन्तु उनका ऐकान्तिक विषय था गणित और वह कहा करते थे कि हिन्दीका मैंने अध्ययन नहीं किया है। गणितके कामसे छुट्टी लेकर हिन्दी अवश्य पढ़ूँगा।

(१२) सभाके लिए उनकी तैयारी

वह जिस सभामें भाग लेते थे उसके कार्य्यक्रमपर पहलेसे पूरी तैयारी करके आते थे। हिन्दू-विश्वविद्यालयके विविध परिषदोंमें मुझे इस बातका पूर्ण परिचय मिला है। एक बार मैंने उनसे कहा कि परीक्षार्थी बहुधा एक ही विषयमें अनुत्तीर्ण होते हैं, परन्तु उन्हें फिर सालभर सभी विषयोंमें परिश्रम करना पड़ता है, यह उनके साथ अन्याय है और श्रम, धन, स्वास्थ्य और जीवनका अपव्यय है। मैं चाहता हूँ कि कम्पार्टमेंटल परीक्षाकी प्रथा चला दी जाय। डाक्टर साहबका छात्रवत्सल हृदय इस प्रस्तावके साथ पहलेसे ही था वह बोले 'तुम्हीं इस प्रस्तावको क्यों नहीं उठाते। मैं पूरा समर्थन करूँगा।' मैंने कहा—शौकसे; मगर मेरे पास साधन कहाँ है? तैयारी करा दीजिए, तो मैं जरूर ऐसी सूचना भेजूँ।' यह बातें उनके घरपर हो रही थीं। उन्होंने इसके उत्तरमें मेरे सामने सैडलर-कमीशनकी चार-पाँच मोटी-मोटी जिल्दें लाकर रख दीं और बोले 'इसमें आपको सब मसाला मिलेगा।'

मैं पुस्तकें उठा लाया। खूब पढ़ा। भारतीय विद्वानोंकी सैडलर कमीशनके सामने गवाहियाँ थीं और कम्पार्टमेंटल परीक्षाके सम्बन्धकी प्रायः सारी बातें मौजूद थीं। मैंने प्रस्तावकी सूचना दे दी और आवश्यक अवतरणके लिए एक-दो जिल्दें सीनेटके उस अधिवेशनमें लेता गया। मैंने प्रस्ताव भी उपस्थित किया। डाक्टर साहबने समर्थनमें जो वक्तृता दी उसे सुनकर मैं दंग रह गया। पुस्तकें मेरे पास थीं, परन्तु

उनके अनेक अंश डाक्टर साहबके दिमागसे निकल रहे थे। बात यह थी कि डाक्टर साहबने इस विषयका पहलेसे अध्ययन कर रखा था, और उपयुक्त अवसरकी ताकमें थे। उन्हें काम करना था, श्रेय नहीं लेना था। जब मैंने चर्चा छेड़ी तो उन्होंने तुरन्त सामग्री मुझे दे दी।

युनिवर्सिटीका शासन और संचालन वह बीसों बरससे बराबर कर रहे थे। संसारकी प्रमुख युनिवर्सिटियोंका उन्हें विस्तृत ज्ञान था। वे उच्च शिक्षा विषयके उतने ही गंभीर और विशेष जानकार थे जैसे गणितके। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि कम्पार्टमेंटल पद्धतिसे परीक्षा लेनेकी प्रथा जो हिन्दू-विश्वविद्यालयमें इस मन्तव्यद्वारा सन् १९२१से प्रचलित हुई पीछेसे अन्य विश्वविद्यालयोंमें भी चल गयी। इससे छात्र-समुदायकी कितनी भलाई हुई, कहनेकी आवश्यकता नहीं।

(१३) अवैतनिक घोर परिश्रम

अवैतनिक काम लोग संस्थाओंमें बड़ी उतावलीसे स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु परिश्रमसे जी चुराते हैं। कार्य्यालयमें आकर कम समय देते हैं। फिर भी उन्हें अन्तमें भूरि-भूरि धन्यवाद देनेकी रीति चली आयी है। डाक्टर साहब दो बरसतक सेंट्रल हिन्दूकालेजके अवैतनिक प्रिंसिपल रहे। तनख्वाह प्रोफ़ेसरीकी ही लेते थे। परन्तु उसका काम सप्ताह में शायद २४ घंटोंसे अधिक न था। प्रिंसिपलका काम वे सबेरे ६बजेसे शामके छः बजेतक अर्थात् १० घंटे रोज अथवा ६० घंटे प्रतिसप्ताह करते थे। इसपर भी शामको छः बजेके बादसे कोई-न-कोई समिति, परिषद् आदिकी बैठक रहती थी जिसमें सम्मिलित होना डाक्टर साहब आवश्यक समझते थे। अतः कभी-कभी ग्यारह बजे रातको वह घर जाते और फिर तड़के छः बजे मौजूद हो जाते!

इसी कार्य्यव्यस्तताके बीच वह गणित भी पढ़ाते, गवेषणाके कामोंके आदेश देते, स्वयं गवेषणात्मक काम करते और दोपहर बाद एक बार बाजारकी गिनी हुई पूरियाँ भी खा लेते थे। बस, चौबीस घंटोंमे यही उनका भोजन था, और रातको चारपांच घंटे स्टेटसमैन अखबारसे सजे लोहेके पलंगपर विश्राम।

अवैतनिक काम वह इतने मनोयोगसे करते थे कि कोई यह न समझ सकता था, कि इस घोर परिश्रमके लिए वह एक पाई वेतन नहीं लेते।

और वह बारह घण्टे क्यों ठहरते थे? यह भी समझनेकी बात है। हिन्दू-विश्वविद्यालय उस समय कमच्छेवाली हिन्दू कालेजकी इमारतमें था। विश्वविद्यालयका शिक्षात्मक प्रसार पूरा हो चुका था, परन्तु इमारत उतनी ही थी। युनिवर्सिटीका प्रबन्ध-विभाग, रजिस्ट्रारका दफ्तर, ट्रेनिंग-कालेज, पुस्तकालय, विज्ञानकी चारों प्रयोगशालाएँ, वैद्यक-विभाग, धर्म्म-विज्ञान-महाविद्यालय, प्राच्यमहाविद्यालय, रणवीर-संस्कृत-पाठशाला, हिन्दू-कालीजिएट-स्कूल और युनिवर्सिटीके विविध अधिवेशनोंके कमरे और एक हजार छात्रोंके लिए छात्रावास सब ही कमच्छेमें थे। केवल इंजीनियरी-कालेज नगवामें था। सबकी पढ़ाई यदि एक ही समयमें होती तो सभी कहाँ अटते। डाक्टर साहबने अपने शासनमें पढ़ाईके समयके दो विभाग कर दिये और ऐसा टैमटेबिल बनाया कि कुछ भाग साढ़े छः बजेसे ग्यारह बजेतक पढ़ता था और कुछ साढ़े ग्यारह बजेसे साढ़े चार बजे तक पढ़ता था। किसी प्रोफेसर या छात्रको न तो दो बार आना पड़ता था और न नियत घण्टोंसे अधिक पढ़ाना या पढ़ना पड़ता था। जिस समय किसी औरको सुभीता न था उसी समय डा० साहब अपने उच्च गणितका काम करते थे। परन्तु स्वयं सबेरे छः बजेसे शामको छः बजेतक इसलिए रहते थे कि दोनों समयोंके प्रबन्धके वेही जिम्मेदार थे, सब प्रोफेसरों और छात्रोंको उनसे कोई-न-कोई काम पड़ता था और बिना उनके चल न सकता था। अपने परिश्रमको घटानेके लिए वे वैस-प्रिंसिपल नियुक्त करा सकते थे, परन्तु जो दूसरोंके लिये बहुत दुस्सह और दुर्भर बात मालूम होती थी, वह डा० साहबके लिए साधारण बात थी। दिनभरके घोर श्रमके बाद जब रातकी सभाओंमें वह उपस्थित होते थे तो वैसे ही ताजेदम, वैसे ही खुशदिल, वैसे ही हाजिर जवाब, वैसे ही तैयार, रहते थे मानों अभी घरसे चले आ रहे हों। उनमें थकानका कोई लक्षण देख नहीं पड़ता था। यह उनकी तपस्या थी, ब्रह्मवर्च्चस् था जो उनके शरीरको थकान अनुभव नहीं करने देता था। दूसरा कोई इस तरह एक सप्ताहसे अधिक कदापि काम न कर सकता, और एक सप्ताह भी इस तरह श्रम करके जरूर बीमार पड़ जाता।

(१४) अद्भुत और कठिन तपस्या

एक दिन मुझे अत्यावश्यक कामसे मिलना था। फोर्थ-यिअरके गणितके घण्टेके बाद उन्हें अवकाश था। ठीक घण्टा बजनेके कुछ पहले मैं मार्गमें जाकर खड़ा हो गया। समय होते ही वह क्लाससे निकले चेहरा लाल था, परन्तु मेरी ओर मुस्कराते हुए बढ़े, जैसी कि आदत थी, सरगर्मीसे हाथ मिलाया। हाथ बहुत गरम था। डाक्टर साहबको तेज बुखार चढ़ा हुआ था। मैंने कहा 'डाक्टर साहब, आपका हाथ बहुत गरम है। आपको १०४° अंशका ज्वर होगा।' बोले 'हाँ, ज्वर तो सवेरेसे है, परन्तु देखिए, पढ़ाकर आ रहा हूँ। कोई हर्ज नहीं।' तेज बुखारमें उन्होंने साधारण दशाकी तरह सोलह घंटे काम किया। खाया कुछ नहीं। ज्वर भाग गया।

एक बार देखा कि छुट्टीके घंटेमें अपने कमरेमें पूरियोंके बदले बेलका मुरब्बा धो-धोकर खा रहे हैं। पूछनेपर मालूम हुआ, कि पेटमें आँवकी कुछ शिकायत है, पूरियाँ बन्द करके बेलके मुरब्बेपर गुजर कर रहे हैं। चार-पाँच दिन केवल बेलके मुरब्बेपर रहनेसे पेट ठीक हो गया और फिर वही गिनी पूरियाँ और आलूकी तरकारीका क्रम चला। इन दिनों वह सब मिलाकर नित्य सोलह घंटे काम करते थे। थकानका नाम न था। एकबार मैंने कहा—"डाक्टर साहब, इतने घोर परिश्रमसे स्वास्थ्य बिगड़ जायगा।" बोले—"मुझे इतना काम करनेकी आदत है। कोई हानि नहीं।" दूसरा प्रोफेसर होता तो आठ घंटे रोज भी छः महीने काम करके लम्बी छुट्टी लेता, परन्तु इनका सोलह घंटे रोजका यह घोर परिश्रम दो बरसतक एक रस चला। उन्होंने कभी छुट्टी न ली।

तेल घी आदि स्निग्ध भोजन वह कभी न करते थे। इधर कई बरसोंसे दूध लेने लगे थे।

वह ब्रह्मचर्य पालनके लिए ही रूखे-सूखे भोजन करते थे, घोर मानसिक परिश्रममें संलग्न रहते थे और बिना बिस्तरके लोहेके पलंगपर सोते थे। इस घोर तपस्याका बाहरवालोंको पता न था। वह अपने इस प्रकारके जीवनको प्रगट नहीं करना चाहते थे। अन्तरङ्ग मित्र और उनके परम प्रिय शिष्य ही उनकी इस तपस्याको जानते थे।

ब्रह्मचर्य पालन करनेवालोंको संयम उनसे सीखना चाहिये। चिकनी चुपड़ी पौष्टिक चीजें खानेसे वीर्य्य बढ़ता है, कामवासना जोर करती है। जब उपवास करनेवाले तपस्वी विश्वामित्र आदि महर्षि इससे बच न सके तो घी दूध आदि पौष्टिक भोजन करनेवाला ब्रह्मचर्य्यका पालन क्या करेगा! फिर मानसिक परिश्रमका अधिक्य कामवासनाका विरोधी है। गद्दे-तकियेका इस्तेमाल और आरामतलबी कामवासनाका आकर्षक है। डाक्टर साहबने इन दोनोंका जीवनभर त्याग किया। कभी किसी स्त्रीसे बातचीत नहीं की। समाजमें जहाँ परदा नहीं है और स्त्रियाँ बेखटके मिलती-जुलती हैं, वहाँ कभी डाक्टर साहब जाते न थे। इनके जीवनमें स्त्री-मात्रका काम न था। माता और सौतेले भाई और उनका परिवार यही उनके अपने रह गये थे। जो कुछ उनका खर्च होता था, इन्हींके लिए। अपने खाने पहिरनेमें और अपने आरामके लिए उनका खर्च प्रायः उतना ही था जितना किसी साधु फकीरका हो सकता था।

(१५) अद्भुत धैर्य्य और सहनशीलता

डाक्टर साहब को गुस्सेमें मैंने कभी नहीं देखा। उनके नौकरोंका भी कहना है कि वह क्रोध बहुत कम करते थे। उनमें धैर्य्य अद्भुत था। भतीजीके विवाह में, अनेक अव-सरोंपर जहाँ वर-पक्षके लोग बात-बातपर लड़नेके लिए कारण ढूँढ़ते थे, वहाँ डाक्टर साहबकी शान्त वृत्ति सबपर विजयिनी होती थी। नासमझ झगड़ालू डाक्टर साहबकी अप्रतिष्ठाकी इच्छासे कमरेमें घुस आये, गालियाँ दीं। डाक्टर साहबने शान्त भावसे सुना, मानों किसीकी स्पीच सुन रहे हों, बहुत ही शान्त और उचित उत्तर दिया। अपना धैर्य्य न खोया। बादको अपमानकारीको पछताना पड़ा।

धैर्य्यका अद्भुत प्रमाण उस समय मिला जब वह प्लैटफार्म और फुटबोर्डके बीचमें गिर गये। तुरन्त प्लैटफार्म की दीवारसे चिपक गये हाथ प्लैटफार्मपर फैला दिये। इतने दुबले थे कि गाड़ी कुछ दूर चली गयी और इन्हें खरोंच भी न लगा। ऐसे कुअवसरपर धीर-से-धीर घबराकर पिस जाता। हम तो इसे उनका अद्भुत धैर्य्य ही कहते हैं, परन्तु उन्होंने कहा कि यह मेरा धैर्य्य न था, बलिक ईश्वरकी ओरसे मेरी रक्षा थी। उसी दिनसे राम-नामका जप करने लगे।

(१६) उनके धर्म्म-सम्बन्धी विचार

गणितमें वह इतने व्यस्त रहते थे कि धार्मिक पुस्तकोंके अध्ययनका उन्हें कभी समय नहीं मिलता था। फिर भी उन्होंने विविध धर्म्मोंके ग्रंथोंको पढ़ा था। उनसे इन विषयोंपर बातचीत जब कभी हुई, उनके गम्भीर ज्ञानका पता लगा। फिर भी उपासनाके सम्बन्धमें उनका मत था कि मनुष्य अपना कर्त्तव्य पालन करे, और किसी तरहका बुरा काम न करे, यही सर्वोत्तम प्रकारकी उपासना है।

मैंने अपने घर राम, लक्ष्मण, सीताकी मूर्त्तियोंकी स्थापना की और अन्य मित्रोंकी तरह डाक्टर साहबको भी निमंत्रण दिया। डाक्टर साहब पधारे। दर्शन किये। प्रसाद लिया। उस समय तो नहीं, परन्तु इसके बाद फिर भेंट हुई तो कहने लगे—"तुम वैज्ञानिक हो, तुमने मूर्त्तियोंकी स्थापना की है, तो अवश्य खूब समझ-बूझकर।" डाक्टर साहबको मेरे अनुभवोंकी कथा नहीं मालूम थी। मैंने उनका वर्णन किया। फिर भी वह कहने लगे कि "क्या ईश्वरकी सबसे उत्तम उपासना तुम कर्त्तव्यपालन नहीं समझते?" मैंने कहा—"जरूर। वह तो है ही, परन्तु मेरी भूख इतनेसे नहीं मिटती। पूर्णतया कर्त्तव्यपालनमें मैं असमर्थ हूँ, इसीलिए उस त्रुटिकी इस विधिसे पूर्त्ति करता हूँ।" यह बातें दस बरस पहले हुई थीं, जब रेलवे दुर्घटनासे वह कटते-कटते बचे, उसके बाद मैंने देखा, कि जेबमें माला पड़ी रहती है। अपने चपरासीसे भजन गवाकर सुनते हैं और स्वयं राम-राम जपते हैं। फिर उपासनाके सम्बन्धमें चर्चा उठी तो एक बार कहने लगे—"हमारे संकटके समय जो भगवान हमें नहीं भूलता, अपने सुखके समय उसे हम याद न करें, तो हमारी नालायकी है।" उस घटनाके बाद वह अक्सर अपने मित्रोंसे बातों-बातोंमें ईश्वर विषयक प्रश्न कर बैठते थे और व्याख्यानोंमें भी जहाँ बेमौका न होता वह भगवान्‌की चर्चा करनेमें नहीं चूकते थे।

(१७) अद्भुत धारणा

उनके विशाल और अगाध ज्ञानकी कुंजी उनकी विलक्षण स्मृति थी। एक बार पढ़ना या सुनना उनके लिए काफी था। संसारमें जितनी बड़ी-बड़ी गणितकी संस्थाएँ थीं, प्रायः सबसे सम्बन्ध था और सभी जगहोंकी रिपोर्ट वह मँगवाते और पढ़ते थे। उसके सिवा पुरानी और नयी खोजोंके सभी पत्र उन्होंने पढ़े और देखे थे और प्रमुख प्रकाशकोंको उनकी आज्ञा थी कि गणितकी खोज-सम्बन्धी चाहे जो पत्र छपे उनके पास अवश्य भेजें। वह गणितका अगाध और अपरिमित ज्ञान उस केशविहीन दिमागमें छिपाये हुए थे जिसका रक्ताधिक्य ही उनकी मृत्युका कारण हुआ। इसका सहज परिणाम यह था कि जब कभी कोई छात्र कोई नयी बात खोजकर ले आता तो वह तुरन्त बतला देते कि अमुकने यह खोज पहलेसे कर रखी है। अथवा यह कि तुम्हारा यह काम बिलकुल नया है। अपने छात्रोंको नयी खोजोंमें लगानेमें उनकी यह अद्भुत स्मृति बड़ा काम देती थी। यों तो वह जर्म्मन, फ्रेंच, इटालियन, और अंग्रेजी जानते ही थे, तो भी किसी युरोपीय भाषामें गणितविषयक लेख क्यों न हो वह समझ लेते थे। और एक बार पढ़कर वह उसे अपने दिमागके अद्भुत संग्रहालयमें सुरक्षित कर लेते थे। गणित तो उनका विशेष विषय था और-और विषयोंमें भी जहाँ उन्हें दिलचस्पी होती थी वह पढ़कर पूरी तैयारी कर लेते थे। हिन्दू-विश्वविद्यालयमें जब थे तो उसके कानूनसे लेकर समस्त नियमावली उन्हें इतनी उपस्थित रहती थी कि मजाल क्या कि नियम भंग हो और हो तो उनकी पैनी निगाहसे बच जाय। वह जब कभी किसी विषयपर बोलते थे उसकी तहतक उसपर विचार करके कहते थे। और काम पड़नेपर जबानी लंबे-लंबे अंकोंकी चर्चा कर देते थे। इतनेपर भी शालीनता-पूर्वक कहते थे कि मैं गलत कहता होऊँ तो मेरा संशोधन कर दीजिएगा।

और तो और, उनकी प्रिंसिपलीके समय एक हज़ारके लगभग छात्र रहे होंगे। वह हरएकको व्यक्तिशः जानते थे। राहमें मिलनेपर नामसे सम्बोधन करके उससे उसके पिता भाई आदिकी कुशल पूछते थे और उसकी पढ़ाईके सम्बन्धमें विस्तारसे प्रश्न करके उसे चकित कर देते थे। लड़केके मनमें यह अंकित हो जाता था कि इन्हें मुझसे खास दिलचस्पी है, और होती भी थी। अनेक दीन छात्रोंको उनसे गुप्तसहायता मिलती थी। अतः उनका हाल जानना उनके लिए आवश्यक भी था। बीसों बरस पीछे मिलनेपर भी जिसे

एक बार भी देखा था उसे पहचान लेते थे और उस भेटकी सारी बातें कह देते थे।

१८—उनकी दानशीलता

पुत्रीके मरनेके बाद देखा गया कि वह मुक्तहस्त दान करते हैं। कोई समुचित पात्र उनके यहाँसे निराश नहीं आता था। वह बिना माँगे भी संस्थाओंको दान करते थे। विज्ञानपरिषत् भी उनसे लाभान्वित हो चुकी है। हिन्दू-विश्वविद्यालय, कलकत्ता-विश्वविद्यालय और शायद और भी विश्वविद्यालयोंको उन्होंने दान दिये। दीन-दुःखी छात्रोंकी सब तरहकी सहायता करनेको वह तैयार रहते थे। बलिया में बालिकाओंकी शिक्षाके लिए उन्होंने बाईस हजार रुपये जमा कर दिए।

विद्यादानके तो वह सदासे वीर थे। वह यह नहीं देखते थे कि छात्र कहांका है, किसका है। यदि छात्र सुयोग्य पात्र है तो वह कहींसे भी आवे किसी जाति वा देशका क्यों नहो बड़ी उदारतासे उसकी सहायता करते थे और बतलानेमें तनिक भी संकोच नहीं करते थे। अपना अमूल्य समय विद्यार्थीके लिए निकालते थे और उसे ठीक मार्गपर लगा देते थे। यही बात थी कि उनके शिष्य विविध विद्यालयोंके छात्र थे।

१९—उनसे अन्तिम भेट

वह जब कभी काशी आते थे अपने मित्रोंसे अवश्य मिलते थे। पहली मार्चकी शामको वह पधारे। मैं उनकी ही आज्ञासे उनकी लिखी गणितज्ञोंकी जीवनीका अनुवाद कर रहा था। वह उसका समर्पण अपने माता-पिताको करना चाहते थे। उन्होंने बहुत दिन हुए यह इच्छा प्रकट की थी कि समर्पण पद्योंमें हो। कई बार उसके लिए तकाजे कर चुके थे। इस बार मैंने दो सोरठे लिख रखे थे। उन्हें सुनाया। उन्होंने बहुत पसन्द किया। उसकी नकल लेकर रख लिया। मैंने कहा—'डाक्टर साहब, मेरी एक प्रार्थना है। आपने बड़े-बड़े गणितज्ञों की जीवनी लिखी। मैं उस ग्रन्थका अनुवादक हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपकी जीवनी लिख डालूँ। उसकी सामग्री प्रस्तुत करने में भी आपको सहायता करनी पड़ेगी। बोले—'जल्दी क्या है ?' मैंने कहा,—मैंतो अपने जीवनका भरोसा क्षणभरके लियेभी नहीं करता, जो करना है, उसे पूरा कर रखूँ।' इसपर कहने लगे—'तुम तो संयमसे रहते हो, अभी बीस बरस जीओगे। और मैं भी जल्दी मरनेवाला नहीं हूँ। और जीवनी तो मैं अपनी स्वयं तीसरी जिल्दके अन्तमें दूँगा। उसीका अनुवाद हो जायगा, तुमको सामग्री जुटानी न पड़ेगी।' डाक्टर साहब नहीं जानते थे कि पूरे आठ अहोरात्र बादही इसी घड़ी मृत्युका परवाना मिलेगा। और संयमका जीवन ! उफ् ! डाक्टर साहब सरीखा संयमका जीवन किसका होगा ? हाँ, इस संयमके जीवनने, उस निर्लिप्त अकलुषित ब्रह्मचर्य्यने, उनको और पचीस बरस न जिलाया, जैसी कि उनकी अपनी अभिलाषा थी !

डाक्टर साहबको जैसा मैंने देखा

[डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

'ब्रह्मचर्य और अस्वादव्रतके बीच अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता है वह अपने प्रत्येक कार्यमें संयमसे काम लेगा, और सदा नम्र बनकर रहेगा।' —गांधी

"एक इनसे भी बढ़कर गणितज्ञ है!"

"कौन?"

"डाक्टर गनेसी!* क्या तुमने उनका नाम आजतक नहीं सुना?"

"मैंने तो नहीं सुना था।"

"वाह! डाक्टर गनेसीके मुक़ाबलेमें, भारतवर्षमें क्या, संसारमें भी कोई गणितज्ञ न होगा।"

ये बातें मुझमें और मेरे अध्यापकमें उस समय हुईं जब डाक्टर ज़िआउद्दीन अहमद साहब गोरखपुरके गवर्मेण्ट जुबली हाई स्कूलमें "फ़रदर मेथिमेटिक्स"के प्रैक्टिकल परीक्षक होकर आये थे। उन दिनों मैं १५—१६ वर्षका था। हम सब छात्रोंने डाक्टर ज़िआउद्दीन अहमद साहबके स्वागतके लिए बड़ी-बड़ी तैयारियाँकी थीं। उनकी प्रशंसामें हेडमास्टर और अन्य मास्टरोंने बड़ी-बड़ी स्पीचें दीं, जिनसे हम सब नववयस्क छात्रोंकी धारणा हो गयी कि इनसे बढ़कर दुनियाँमें कोई गणितज्ञ न होगा।

परन्तु स्पीचोंके बाद यह सुनकर कि एक इनसे भी बढ़कर गणितज्ञ इसी प्रान्तमें है हम सबके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उस गणितज्ञका नाम मैंने उस दिन पहले-पहल सुना और तभीसे डाक्टर साहबके प्रति मेरे हृदयमें भक्ति उत्पन्न हो गयी। उनके दर्शनकी भी लालसा बड़ी ज़बरदस्त हो गयी। विशेषकर जब यह पता चला कि वे बनारसमें ही हैं, जहाँका मैं भी रहनेवाला था और जहाँ मैं अकसर आया-जाया करता था। उस दिन मुझे क्या पता था कि एक दिन मुझे उनको अपना गुरु माननेका सौभाग्य प्राप्त होगा!

पता नहीं क्यों लोग अकसर डाक्टर साहबको डाक्टर गनेसी कहा करते थे।

* डाक्टर साहबको बचपनमें उनके माता-पिता **'गनेसी'** या **'गनेसी-बाबू'** कहते थे। उनकी सौतेली माता भी, जिनको मरे अभी दो बरस भी पूरे नहीं हुए, अबतक उन्हें 'गनेसी' ही कहती थीं। इसलिए इन्हें लोग **डाक्टर गनेसी** भी कहा करते थे। —रा० गौ०

प्रथम दर्शन

जब मैं इंटरमीडियेटमें पहुँचा—मैं उस समय गोरखपुरके सेंट ऐंड्र्यूज़ कालेजका छात्र था—तो मैंने एक दिन अपने गणित-अध्यापककी मेज़पर डाक्टर साहेबकी बनायी "डिफ़रेंशियल कैलकुलस" नामकी पुस्तक पड़ी देखी। पन्ने उलटे तो उसमें विचित्र शकलें दिखलाई पड़ीं। इंटरमीडियेटतक तो सरल रेखा, वृत्त, दीर्घवृत्त, परवलय और अति-परवलयहीतकसे परिचय हम लोगोंको कराया गया था। परंतु मैंने इस पुस्तकमें हृदयके आकारके, और कुंडली मारे सर्पके आकारके, और न जाने अन्य कितने आकारके, वक्र देखे। उस समय मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि एक हिंदुस्तानीभी इतना बड़ा पंडित हो सकता है कि इतने कठिन विषयपर पुस्तक लिख सके—मैंने उस समयतक उच्च गणितपर अन्य कोई हिंदुस्तानीकी लिखी पुस्तकें नहीं देखी थी। इंटरमीडियेटकी हमारी सब पाठ्य पुस्तकें अँग्रज़ोंकी लिखी थीं। अपने अध्यापकसे जो मैंने बात छेड़ी तो और भी बहुतसी विचित्र बातें सुननेमें आयीं। डाक्टर गनेशप्रसाद ठीक समयपर कालेज पहुँचते हैं, न एक-मिनिट पहले न एक मिनिट देर। फ़िटनपर चलते हैं। गाड़ीसे उतरते ही दौड़ते हुए अपने कमरेमें चले जाते हैं। किसीसे बात नहीं करते। एक मिनिट भी समय नष्ट नहीं करते। इत्यादि। मेरे अध्यापकने कहा कि परीक्षा देने क्वींसकालेज, बनारस, तो तुम जा ही रहे हो। उनको

अवश्य देखना। मैंने भी ठान लिया कि ऐसा अवश्य करूँगा। जबमैं १९१४के मार्च या अप्रैलमें इंटरमीडिएट परीक्षा देने बनारस पहुँचा तो डाक्टर साहबके दर्शनको—क्षणिक और सो भी दूरसे—प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ।

प्रथम भेंट

मैंने बी० एस-सी० सेंट्रल हिंदूकालेज, बनारससे पास किया। वहीं एम० एस-सी०के लिए गणित पढ़ा। फ़ाइनल परीक्षा मार्च १९१८में होनेवाली थी। इसी बीचमें ख़बर मिली कि हिंदू-विश्वविद्यालयकी स्वीकृति सरकारसे आ गयी। परीक्षाएँ हमलोगोंको इलाहबाद यूनिवर्सिटीमें देनेके बदले काशी-विश्वविद्यालयमें देनी होंगी। यह भी पता चला कि समयाभावके कारण परीक्षाएँ मार्चके बदले जुलाईमें होंगी। खैर, यह तो अपने हाथमें नहीं था कि परीक्षाएँ इलाहाबादहीमें दें। इसलिए जुलाईतक उन सब बातोंको स्मरण रखनेका लगातार परिश्रम करना पड़ा जिनसे मार्चमें परीक्षा देनेके बाद छुट्टी मिल जाती। इस बीचमें मेरा नामिनेशन डिप्टी कलेक्टरीके लिए हो गया। जुलाईमें, परीक्षा तिथिसे चार दिन पूर्व, मैं नैनीतालमें इंटरव्यूके लिए बुलाया गया। इसी बीचमें मैंने फ़िनैंस डिपार्टमेंटकी कांपीटिटिव परीक्षामें शरीक होनेकी स्वीकृति भी प्राप्त कर ली। चूँकि मैं बी० एस-सी०में सर्वप्रथम हुआ था, इसलिए मेरे अध्यापकोंको बहुत आशा थी कि मैं फ़िनैंस डिपार्टमेंटमें चुन लिया जाऊँगा। परन्तु जुलाईके पहले ही डाक्टर साहेबकी नियुक्ति सेंट्रल हिंदू कालेजके प्रिंसिपल और काशी-विश्वविद्यालयके गणिताचार्यके पदोंपर हो गयी। कालेज खुलते ही उन्होंने मुझे बुला भेजा और मुझसे बहुत देरतक बातें कीं।

यही डाक्टर साहेबसे मेरी पहली भेंट थी।

डाक्टर साहबने मुझे समझाया कि डिप्टीकलेक्टरीमें क्या रक्खा है। रोज़ कलेक्टरकी डाँट सुननी पड़ती है। अपने अंतःकरणके विरुद्ध अकसर काम करना पड़ता है। फिर, डिप्टी कलेक्टरोंके पास कुछ धन नहीं बचता। यह भी कहा कि "मैंने पचास हज़ार रुपया बैंकमें जमा कर लिया है, यद्यपि थोड़े ही दिनोंसे मुझे अच्छा वेतन मिल रहा है। भला किसी डिप्टी कलेक्टर के पास इतना धन जमा हो सकता है! और फिनैंस डिपार्टमेंटमें ही क्या रखा है। अकाउंटैंट-जनरल और क्लार्कमें अंतर ही क्या है? अकाउंटैंट जनरल भी क्लार्क ही है, केवल वेतनभर अच्छा है। प्रोफ़ेसरीसे बढ़कर कोई उद्यम नहीं। गणितमें खोज करनेसे जो ख्याति मिलेगी वह न तो डिप्टी कलेक्टरीमें और न फिनैंस डिपार्टमेंटमें मिल सकती है। यदि तुम गणितको ही अपना जीवन समर्पित करो तो तुम्हें कभी पछताना न पड़ेगा। ७५) मासिककी छात्रवृत्ति भी दिला देंगे,. परंतु यह प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी, तुम डिप्टी-कलेक्टरीके लिए इंटरव्यूमें न जाओगे और न फिनैंसकी परीक्षाओंमें बैठोगे।"

मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। जिस महान् पुरुषके बारेमें मैंने इतनी बातें सुनी थीं उन्हींकी मातहतीमें मैं गणितका अध्ययन कर सकूँगा, उसमें नयी बातें निकाल सकूँगा, पीछे गणितका आचार्य बन सकूँगा, इससे बढ़कर क्या चाहिए था। मैंने तुरन्त प्रतिज्ञा की। घरवालोंसे कह दिया कि डिप्टी कलेक्टरीके लिए परीक्षासे चार दिन पहले इंटरव्यूमें जाना पड़ेगा। बीचमें घुड़सवारीकी सर्टिफ़िकेट भी लेनी पड़ेगी। समय कम है। घुड़सवारीके पीछे पड़ें तो हो सकता है। इधर हाथ-पैर भी टूटे, उधर डिप्टी कलेक्टरी भी न मिले और ऊपरसे परीक्षा भी बिगड़ जाय। फिर, डिप्टी कलेक्टरी मुझे विशेष अच्छी भी नहीं जँचती। इस प्रकार तो डिप्टी कलेक्टरीसे जान छुड़ायी। फिनैंसके लिए मैंने कह दिया कि उसका क्या ठिकाना? भारतवर्षके अच्छेसे-अच्छे लड़के उसमें परीक्षा देते हैं। केवल तीन-चार लिये जाते हैं। क्या पता उसमें आ सकेंगे या नहीं? इधर गणितकी असिस्टेंट-प्रोफ़ेसरीका मिल जाना एक प्रकारसे निश्चय है। पिताजी मेरी इच्छा देखकर राजी हो गये। फिर क्या बाधा थी! मैं बी० एस-सी०की परीक्षा देनेके बादसे ही डाक्टर साहेबका शिष्य हो गया और मैं आज निश्चयरूपसे कह सकता हूँ कि डाक्टर साहबकी बात माननेके कारण कभी मुझे पछताना नहीं पड़ा।

प्रिंसिपल

१९१८की जुलाईसे लेकर अन्तिम तिथितक डाक्टर

साहब और मेरे बीच गुरु और शिष्यका सम्बन्ध बना रहा। डाक्टर साहब उन दिनों नये-नये प्रिंसिपल हुए थे और उधर विश्वविद्यायल नया-नया खुला था। वे बहुत काम करते थे। जगहकी कमी के कारण उन्होंने आज्ञा दी कि सवेरेसे शामतक कालेज लगेगा। कुछ प्रोफेसर सबेरे पढ़ाते थे। कुछ मध्याह्न बाद। परन्तु डाक्टर साहब सबेरे ६ बजेसे शामके ६ बजे तक काममें डटे रहा करते थे। बीचमें मुश्किलसे कुछ मिनिट अपनी पूड़ी और आलूकी तरकारी खानेके लिए निकाल लेते थे। उन दिनों नये विश्वविद्यालयके प्रबन्ध-सम्बन्धी पचासों प्रश्न नित्य उठते थे और इसलिए कार्उसिल इत्यादिकी बैठकें अकसर हुआ करती थीं। वे साधारणतः संध्यासमय आरम्भ होकर नौ-साढ़े नौ बजे राततक (कभी-कभी तो ११ बजे राततक) हुआ करती थीं। डाक्टर साहब उन सब बैठकोंमें सम्मिलित होते थे, और अपनी आदतके मुताबिक इन सबोंकी कार्यवाहीमें पूरा सहयोग देते थे। परन्तु इन दिनोंभी गणितका अध्ययन उनका जारी रहा। अपने रिसर्च-विद्यार्थियोंकी सहायता या देख-भाल तो किया ही करते थे, इसके ऊपरसे अपने अनुसंधानोंको भी उन्होंने जारी रक्खा। उन्हीं दिनों उन्होंने बनारस मैथेमैटिकल सोसायटीकी भी स्थापना की, जैसे-जैसे मेरा उनसे सम्बन्ध घनिष्ठ होता गया, तैसे-तैसे उनके-प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गयी। आश्चर्य भी बढ़ता गया। मैंने उनके बराबर परिश्रम करनेवाला—उनका आधा भी परिश्रम करनेवाला—नहीं देखा।

अद्‌भुत उत्साह

जब मैं १९२८में, सहायक प्रोफेसरके पदपर काशी विश्वविद्यालयमें नियुक्त हुआ तब डाक्टर साहबने मुझे सलाह दी कि जबतक कि चारपाई छोड़ना असम्भव न हो जाय तबतक पढ़ानेमें नागा न करना चाहिए। डाक्टर साहब स्वयं सदा ऐसा ही किया करते थे। यथासंभव अपने क्लासों को बिना पढ़ाये कभी नहीं छोड़ते थे। सरमें दर्द हो, चाहे बुखार चढ़ा हो, जबतक उनमें खड़े होनेकी शक्ति रहती थी वे पढ़ाते अवश्य थे।

पढ़ाना क्या, जिस कामका करना वे ठान लेते थे, उसे करही डालते थे। मीटिंग आदिमें भी वे बहुत ही कम अनुपस्थित होते थे।

एक बारकी बात है, जब विश्वविद्यालय अपने नये मकानोंमें नगवापर उठकर चला गया था, प्रिंस आफ़ वेल्स आनेवाले थे। डाक्टर साहब तब भी अपने पुराने बँगले में अर्दली बाज़ारके पास रहा करते थे। वहाँसे विश्वविद्यालय पाँच मील (या शायद अधिक) दूर पड़ता था। गर्म खबर थी कि प्रिंस आफ वेल्सके आनेके दिन जबरदस्त हड़ताल होगी। कोई सवारी न मिलेगी। डाक्टर साहब ने इस दिन भी सदाकी तरह विश्वविद्यालयमें पहुँचना आवश्यक समझा, जब उनको पता चला कि हड़तालके कारण शायद सवारी न मिलेगी तब उन्होंने तुरन्त उपाय सोच लिया। वे एक दिन पहलेहीसे विश्वविद्यालय पहुँच गये। रात उन्होंने मैथेमैटिकल सोसायटीकी कोठरीमें काटी। सोनेका प्रबन्ध तो वहाँ कुछ था नहीं। एक सँकरा-सा कोच लोगोंके बैठनेके लिए अवश्य था। उसीपर लेट रहे!

इससे भी अच्छा दृष्टान्त कलकत्तेका है। कलकत्ता मैथेमैटिकल सोसाइटीकी मीटिंग होनेवाली थी। ऐन मौक़ेपर ऐसे ज़ोरोंका पानी आया कि बाहर निकलना कठिन हो गया, परंतु डाक्टर साहबने कोई परवा न की। टैक्सी ली और चल पड़े। पानी इतना गिरा कि सड़कें जलमय हो गयीं। टैक्सी आगे न बढ़ सकी। वापस होकर दूसरे रास्तेसे टैक्सी चली। यह रास्ता इतना नीचा नहीं था। परन्तु कुछ दूर आगे बढ़नेपर यह रास्ता भी पानीसे डूबा हुआ मिला। डाक्टर साहबने टैक्सी वालेसे कहा बढ़ा ले चलो, इनाम देंगे। पानीको चीरते टैक्सी चली, परन्तु कहाँ तक जाती! आगे जाकर पानीमें कुछ भागके डूब जानेके कारण इंजन बंद हो गया। साथके शिष्योंने समझाया कि आखिर मैथेमैटिकल सोसाइटीमें दूसरा कोई तो पहुँचा न होगा, मीटिंग होगी कैसे? घर लौट चलना चाहिए, परंतु डा० साहबको भला ऐसी-वैसी बाधाएँ रोक सकती थीं! उन्होंने फिटन मँगाया और पानीको पार करते हुए वे सोसाइटीमें पहुँच ही गये। वहाँसे फिटन भेजकर अन्य सदस्योंको बुलाया और मीटिंग कर ही डाली!

स्मरणशक्ति

डाक्टर साहबकी स्मरणशक्ति अद्भुत थी। जब वे सेंट्रल हिन्दू कालेजके प्रिंसिपल थे तब उन्हें प्रायः सभी विद्यार्थियोंके (उनकी संख्या १०००से अधिक थी) नाम ही नहीं, उनके बारेमें कई एक ब्योरे याद रहते थे। कौन कहाँसे आया, किस श्रेणीमें पास किया, पिताका क्या नाम है, इत्यादि, ऐसे ब्योरे भी याद रहते थे। और सबसे आश्चर्य-जनक बात तो यह है कि केवल एक बार ऐसे ब्योरोंको सुन लेनेपर उन्हें यह सब बातें याद रह जाती थीं। भरती होते समय ऐसी बातें वे अकसर लड़कोंसे कर लिया करते थे। महीनों बाद यदि कभी उस लड़केसे भेंट हो गयी तो पूछ बैठे "मिस्टर फलाँ! आपके पिता श्री०—अच्छे तो हैं न ? आपने तो अमुक विषय लिया है न ? खूब पढ़ाई कर रहे हैं या नहीं ? अच्छा, आपने तो इंटरमीडियेट द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण किया था। अबकी बार बी० ए०में अवश्य प्रथम श्रेणी लाइए।" लड़का आश्चर्य-चकित हो जाता था। वह तो यही समझता था कि उस दिन भरती होते समय इतने लड़कोंकी भीड़में डाक्टर साहबने मुझे एक बार देखा था। शायद अब वे मुझे पहचानते भी न होंगे।

डाक्टर साहबकी यह अद्भुत स्मरणशक्ति अंततक बनी रही। स्वर्गवासके एक दिन पहले जब डाक्टर साहब आगरे जा रहे थे तब मैं भी उन्हें स्टेशनतक पहुँचाने गया था। वहाँ एक वकील साहब और डाक्टर साहबकी अचानक भेंट हो गयी। वकील साहब पूछने लगे—

"आप मुझे पहचानते हैं न ?"

"अवश्य !"—डाक्टर साहबने तुरंत उत्तर दिया— "आपका शुभनाम......है। आपको सन्......में हम लोगोंने आगरेमें परीक्षक नियुक्त किया था। यह तो बतलाइए, आपके चचा साहब श्रीयुत...कैसे हैं ? इत्यादि।"

डाक्टर साहबके देहान्तके कुछ दिनों बाद इन वकील साहबसे मुझसे भेंट हुई। इनको बड़ा धक्का लगा। "आश्चर्यजनक स्मरणशक्ति उनकी थी। स्वभाव भी कैसा था ! मुझे तो उस दिन यही जान पड़ता था कि डाक्टर साहब मेरे बड़े अत्यंत निकट संबंधी थे।" कहकर वे शोक मचाने लगे। ऐसा ही अनुभव सैकड़ोंका—कदाचित् हज़ारोंका—

सरलतम जीवन

था। डाक्टर साहब इतनी सादगीसे रहते थे कि उनको ऋषि कहना अनुचित न होगा। गरमीके कारण जब अन्य लोग विक्षिप्त-से होजाते थे उस समय भी डाक्टर साहब गणित-संबंधी अपने कठिनतम अनुसंधानोंको जारी रखते थे। उनको पंखेकी भी आदत नहीं थी। प्रोफ़ेसरों और अन्य कर्मचारियोंमें पहाड़ोंपर गरमी बितानेका फ़ैशन उनको छू भी नहीं गया था। कोई भी गरमी उन्होंने पहाड़पर नहीं बितायी। मसहरी भी कभी नहीं लगाते थे। कपड़े भी इनेगिने ही साथ रखते थे। कलकत्तेसे लेकर अलीगढ़-तक अनेक विश्वविद्यालयोंके विभिन्न समितियोंके सदस्य होनेके कारण उन्हें अकसर रेलमें चलना पड़ता था। अमूल्य समयका रेलमें बैठे-बैठे भी वे उपयोग कर सकें, इस खयालसे वे चलते तो थे सदा सेकंड क्लासमें, परंतु अस-बाब उनका थर्ड क्लासवालोंसे भी कम रहता था। एक या दो कंबल, इतनी ही चादरें और एक तकिया, बस इतने ही सामानकी गठरी उनका असबाब होता था। हाँ साथ में पुस्तक और काग़ज़-पत्रसे भरा हुआ एक हैंडबेग या छोटासा ट्रंक भी अवश्य रहा करता था। नौकर कभी भी साथ नहीं ले चलते थे। अकसर वे लगातार कई रातों को ट्रेनमें और दिनोंको विश्वविद्यालयोंकी परिषदों में बिताया करते थे। दूसरा कोई होता तो इस घोर परिश्रमसे अवश्य बीमार पड़ जाता, परन्तु डाक्टरसाहबकी सहनशक्ति भी अनोखी ही थी।

मैंने उनसे एक बार बहुत ज़िद की, कि आप एक नौकर अपने साथ हमेशा रक्खा करें। बिना नौकरके आपको बहुत कठिनाई पड़ती है। थोड़ा-सा तो आप भोजन करते हैं। वह भी यात्रामें आपको समयसे नहीं मिलता। यदि अच्छा नौकर आपको न मिलता हो तो मैं अपना नौकर दूँ जो अत्यन्त विश्वसनीय और कर्तव्यपरायण है। उन्होंने इनकार कर दिया, कहा—"बाबू गोरखप्रसादजी, आप नहीं समझ सकते कि मेरे साथ कोई नौकर रह नहीं सकता। रहेगा तो वह मर जायगा।" फिर बोले—"बहुत दिनों की बात है, तब मैं हालहीमें विदेशसे लौटा था। रातके कोई २ बजेका समय था। मैं रिसर्चमें मग्न था। एक

पुस्तककी आवश्यकता पड़ी। मैंने नौकरको हुक्म दिया कि अमुक नम्बरकी पुस्तक उठा लाओ। मैंने एक नौकर इसीलिए रख लिया था। परन्तु रात अधिक होनेके कारण शायद वह ऊँघने लगा था। बेचारा चटपट उठा, पर शायद नींदमें नम्बर उसने ठीक नहीं सुना, या तुरन्त उस नम्बरकी पुस्तकको ढूँढ़ नहीं पाया। उसे पुस्तक लानेमें देर होने लगी। मुझे क्रोध आ गया। उठा और जाकर उसे एक घूँसा लगाया, परन्तु पीछे मुझे बहुत ग्लानि आयी। मैंने सोचा कि मैं यदि स्वयं रात-रातभर जागूँ तो कोई बात नहीं है, परन्तु मुझको क्या अधिकार है, कि मैं दूसरोंकी इस तरहसे जान लूँ। उसी दिनसे मैंने निश्चय किया, कि चौका-बरतन-पानी, या रसोई, या चिट्ठी-पत्रीके कार्योंके अतिरिक्त अन्य किसी कामके लिए नौकर न रक्खूँगा। व्यक्तिगत 'खिदमतगार' कभी न रक्खूँगा। वर्षों मैंने इस प्रणको निबाहा है। अब भी जबतक निबह सकेगा इसे निबाहूँगा। आप ज़िद न करें।" मैं निरुत्तर हो गया।

गर्मीके दिनोंमें जब कंबल बिछानेसे तकलीफ होती थी तब डाक्टर साहब पुराने अख़बार बिछाकर उसीपर एक चादर डालकर सो रहते थे। शायद कभी-कभी चादर भी न रहती थी! चारपाई पहलेकी थी, इसीलिए वह लोहेकी, कमानीदार, और अंग्रेजी ढंगकी थी। वह तारसे बिनी थी, इसीसे उसपर अख़बार बिछानेकी आवश्यकता पड़ती थी, नहीं तो शायद उसपर केवल एक चादर बिछा कर ही सो रहते।

डाक्टर साहबके घर कोई लैम्प नहीं था। मोमबत्ती ही वे पसन्द करते थे। कुरसियोंके हत्थोंपर अक्सर मोमबत्तियों का पिघला मोम, या उनके अन्ततक जलते रह जानेके कारण जलने के दाग पड़े रहते थे!

कुछ लोग समझेंगे कि डाक्टर साहब कंजूसी के कारण ऐसा करते थे। परन्तु मेरी रायमें सादगी ही मुख्य कारण था। पैसा बच जानेपर उसे बैंकमें वे अवश्य जमा कर देते थे, क्योंकि धनके सद्‌उपयोग करनेके उनके बड़े अच्छे-अच्छे स्कीम थे। २२,००० (बाइस हज़ार) रुपए उन्होंने बलियामें कन्या-पाठशाला स्थापित करनेके लिये दिया ही था। दो लाख रुपयाके लगभग वे अन्य शिक्षा-सम्बन्धी कार्योंमें व्यय करना चाहते थे। मुझसे ब्योरेवार बात हुई थी। परन्तु उनकी मृत्यु इतनी अचानक हुई कि उनकी यह अभिलाषा पूरी न हुई।

भोजन

डाक्टर साहब विलायतसे लौट आनेपर बहुत वर्षों तक केवल पूड़ी तरकारी खाकर रहते थे। इसमें एक रहस्य था। डाक्टर साहबकी स्त्रीका देहांत उसी समय होगया जब वे एम० ए०के विद्यार्थी थे। परीक्षाके कुछ ही दिन पहले यह दुर्घटना हुई थी। इस सम्बन्धसे एक पुत्री मात्र हुई, डाक्टर साहब उसीके कारण फिर अपनी जातिमें ले लिये जानेके बहुत इच्छुक थे। परन्तु उन दिनों विलायतसे लौटा कायस्थ जातिच्युत कर दिया जाता था। डाक्टर साहबने जातिमें लिये जानेकी पहली निष्फल चेष्टाका वर्णन मुझसे ऐसे हृदयग्राही शब्दोंमें किया था, कि आज भी मुझे ऐसा जान पड़ता है जैसे मैं वहाँ उस समय उपस्थित ही रहा हूँ। डाक्टर साहबके सभी रिश्तेदार उनको जातिमें लेनेके लिए राज़ी थे। दावत दी गयी। सब रिश्तेदार निमन्त्रित किये गये। सबके लिए भोजन बना, परन्तु ठीक उसी दिन किसीके पेटमें दर्द हो गया, किसीको बुखार आ गया। किसीके सिरमें ज़ोरसे दर्द होने लगा। किसीके घर अत्यावश्यक कार्य आ पड़ा। किसीका बाहर जाना अनिवार्य हो गया। जो दो-चार आये भी वे भी वहाँकी रंगत देखकर खिसक गये। बहुत बहुत कोशिशें की गयीं कि लोग आयें। जब किसी औरके सम्मिलित होनेकी आशा न रही तब बचे-खुचे लोगोंने कहा कि दूसरोंकी राह देखना अब व्यर्थ है। चलिए हमीं लोग आपके साथ भोजमें बैठें।

डाक्टर साहब स्नानकर खड़ाऊँ पहन, साथ चले। सोच रहे थे कि क्या करना चाहिए। केवल उनके पिता और मामा साथ रह गये थे। भोजनालयके दरवाज़ेतक पहुँच गये। तब डाक्टर साहबने अपना कर्तव्य निश्चयकर लिया। उन्होंने अपने मामा और पिताके साथ खानेसे इनकार कर दिया। विलायतसे लौटनेके बाद इनके साथ भोजन अभीतक उन्होंने नहीं किया था। आज भी नहीं किया। कह दिया कि आपलोग तो हमारा साथ सदा ही देंगे। परन्तु अपने साथ आपलोगोंको भोजन कराकर आप लोगोंको भी जाति-च्युत मैं क्यों कराऊँ।

यद्यपि उस दिन डाक्टर साहब जातिमें नहीं लिये जा सके, तो भी वे जानते थे, कि यदि वे प्रचलित हिन्दू-धर्मके अनुसार नियमपूर्वक रहेंगे, तो जातिमें वे ले ही लिये जायँगे। परन्तु कच्ची रसोईमें झंझट यह रहता है कि यदि महराज चार दिन न आये तो मुशकिल हो जाय। डाक्टर साहबको भला यह कब पसंद हो सकता था, कि वे दूसरोंके आश्रित रहें। सोचा कि, क्या पूड़ी ही खाकर मैं नहीं रह सकता। पूड़ी तो बराबर बाज़ारसे मँगायी जा सकती है। रुचनेकी कोई बात ही न थी। वे तो ऋषि थे। हाँ, पचना चाहिए। उमर जवानी की थी। स्वास्थ्य अच्छा था। पूड़ी निरन्तर खानेपर भी स्वास्थ्य बना रहा। बस, लगातार बीस वर्ष केवल पूड़ी ही खाकर बिता दिया। अधिक आयु होनेपर स्वास्थ्य यह भार न सहन कर सका। पेटमें दर्द होने लगा। एक-बार बड़ी तकलीफ़ हुई। डाक्टरोंने पूड़ी छुड़ा दी, तबसे रोटी-तरकारी खाने लगे। जब अपने शिष्योंके घर कभी ठहरते थे—इलाहाबादमें जब आते थे तब मेरे घर या मेरे मित्र डा० बद्रीनाथप्रसादके घर ठहरते थे और इसलिए मुझे इसे देखनेका अच्छा अवसर मिलता था—तब वे अधिकतर रोटी-तरकारी ही खाते थे। थोड़ी-बहुत दूसरी चीज़ें भी सम्मानार्थ चख लेते थे। परन्तु कभी भी मैंने उनमें वह चाव स्वादिष्ट भोजन करनेका नहीं देखा, जो साधारण मनुष्योंमें होता है। इसीसे कहना पड़ता है, कि वे ऋषि-तुल्य संयमी थे। सोते भी वे चार ही पाँच घंटे थे।

शिष्योंके प्रति प्रेम

डाक्टर साहब अपने शिष्योंको बहुत प्यार करते थे, विशेषकर उनको जो गणितमें अनुसंधान किया करते थे। उनकी लड़कीका देहान्त हो ही गया था। और कोई संतान थी ही नहीं। हमी लोगोंको वे अपना पुत्र मानते थे। हम लोगोंकी आर्थिक अथवा मानसिक उन्नतिके लिए वे कोई बात उठा नहीं रखते थे। हम शिष्यगण भी उनको पिता तुल्य ही मानते थे। हम लोगोंको तो यह इतना स्वाभाविक जान पड़ता था कि इसमें कभी कोई विशेषता ही नहीं दिखलाई पड़ी। परंतु कदाचित् औरोंको इसमें कोई बड़ी आश्चर्यजनक और प्रशंसनीय वस्तु दिखलाई पड़ती थी। डाक्टर साहबके देहांतके बाद जो शोक-सभा प्रयागमें हुई उसमें पंडित हृदयनाथ कुंजरू और पंडित इक़बाल नारायण गुर्टू दोनोंने इसका विशेष उल्लेख किया।*

डाक्टर साहब एम० ए० और एम० एस-सी०के गणितवाले गरीब विद्यार्थियोंकी सहायता अकसर अपने पाससे किया करते थे। कई एकको वे छात्रवृत्तियाँ देते थे।

अध्ययन

अपने शिष्योंकी दृष्टिमें डाक्टर साहब साक्षात् विद्याकी मूर्ति थे। उनसे चार मिनट बात करनेपर उत्साह दूना हो जाता था। उनके संकेतसे टेढ़े-से-टेढ़े प्रश्नोंपर विजय प्राप्त करनेके नये मार्ग सूझ जाते थे। वे गणितके अगाध पंडित तो थे ही। साथ ही उन्होंने अनेक विषयोंका गहरा अध्ययन किया था। वे कहा करते थे कि पहले वे इतिहास बहुत पढ़ा करते थे। "कुछ महान् गणितज्ञ" का उनका लिखना शायद इसी इतिहास-प्रेम का परिणाम था। पीछे वे उपन्यास और विशेष कर छोटी कहानियाँ बहुत पढ़ा करते थे। अँग्रेज़ीकी कहानी वाली मासिक पत्रिकाओं में विशेष रुचि थी। जरमनकी पुस्तकें भी वे बहुत पढ़ते थे।

वक्ता

डाक्टर साहब बात करनेमें भी बहुत चतुर थे। जो कोई उनसे मिलने जाता खुश होकर लौटता। यह १९१८के बादकी बात है। पहले तो—जैसा मैंने डाक्टर साहबके मुखसे ही सुना है—वे अपने शिष्योंको छोड़कर और किसीसे भी मिलना पसंद नहीं करते थे। बड़े-बड़े लोग उनसे मिलने आये और उन्होंने उनसे मिलना अस्वीकार कर दिया। वे व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहते थे। परंतु प्रिंसिपलीके समयसे वे बहुतही मिलनसार हो गये थे। छोटे बड़े सभीसे जो कोई भी उनके घर पहुँच जाता, वे बात कर लिया करते थे। हाँ, तब भी वे अपने शिष्योंको छोड़ दूसरोंको कुछ जल्द ही बिदा किया करते थे।

उनकी बातोंके सुननेमें कुछ विशेष आनंद आता था। हास्यरसका भी काफ़ी पुट रहता था। विश्वविद्यालयोंके

(अपूर्ण)

* 'दि लीडर', शुक्रवार, १३मार्च १९३५, पृ०५

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०।३।५॥

प्रयागकी विज्ञान-परिषदका मुखपत्र

जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४२

तुलार्कसे मीनार्कतक

संवत् १९९२

प्रधान सम्पादक—रामदास गौड़, एम्० ए०

विशेष सम्पादक

गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी, (गणित और भौतिक-विज्ञान) स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)
रामशरणदास, डी० एस्-सी०, (जीव-विज्ञान) श्रीचरण वर्मा, एम्० एस्-सी०, (जंतु-विज्ञान)
श्रीरंजन, डी० एस्-सी०, (उद्भिज्ज-विज्ञान) सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, (रसायन-विज्ञान)

प्रकाशक

विज्ञान-परिषत्, प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

विज्ञान, भाग ४२

आयुर्वेद

उद्योग-व्यवसायांकका क्षेमांक २०७

औद्योगिक

कृषिविज्ञान

गणित-ज्यौतिष

भौतिक विज्ञान

रसायन विज्ञान

विविध प्रसंग

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४२ } प्रयाग, तुलाऽर्क, सं० १९९२ अक्टूबर, १९३५ ई० { संख्या १

डाक्टर साहबको जैसा मैंने देखा

[डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

(गतांकसे सम्मिलित)

परिषदों और समितियोंमें भी अपने व्यंग्यसे वे लोगोंको अकसर हँसाया करते थे और साथ ही काम निकाल लेते थे। वक्ता तो वे ऐसे चतुर थे कि अकसर अन्य सब लोगोंके आरंभमें प्रतिकूल रहनेपर भी अंतमें उनका प्रस्ताव पास हो जाया करता था। कई एक परिषदोंमें मुझे डाक्टर साहबके साथ काम करनेका अवसर मिला। मैंने देखा कि कई एक विश्वविद्यालयोंके कार्उसिलोंके सदस्य होनेके कारण, और साथ ही उस विलक्षण स्मरणशक्तिके कारण जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, उनका वक्तव्य विशेष रूपसे लाभदायक होता था। जिस किसी भी सभा, सोसाइटी या कार्उसिलमें वे जाते थे वहाँ चुपचाप बैठकर तमाशा वे नहीं देख सकते थे। उसकी कार्यवाहीमें पूरा भाग लेते थे।

उनके अत्यन्त शक्तिशाली होनेके कारण उनसे कुछ लोग द्वेष भी रखते थे, परन्तु अधिकांश लोग उनसे केवल स्वार्थवश ही रुष्ट होते थे।

मरते दमतक वे दूसरोंकी भलाई कर गये। फालिज मारनेके दो ही मिनट पहले उन्होंने कृषि-कालेजके दो विद्यार्थियोंको जिनकी हाज़िरीमें कुछ कमी पड़ती थी, परीक्षाओंमें सम्मिलित होनेकी अनुमति दिलायी थी!

• • •

दोष? दोष किसमें नहीं होता। केवल ईश्वर ही निर्दोष होता है। परन्तु जो दोषारोपण डाक्टर साहबपर उनके विरोधी करते थे वे साधारणतः निर्मूल ही होते थे। जिसे कुछ लोग उनकी कंजूसी कहते थे वह वस्तुतः उनकी सादगी थी। जिसे वे घमण्ड कहते थे वह स्वावलम्ब था। जिसे वे ज़िद कहते थे वह उनकी दृढ़ता थी, जिसे वे रूखापन कहते थे वह खरापन था। अकर्मण्य व्यक्तिकी न कोई प्रशंसा करता है न उससे कोई ईर्ष्या। डाक्टर साहब तो कर्मण्यताकी सजीव मूर्ति थे। कुछका उनसे द्वेष रखना स्वाभाविक था, परन्तु जहाँ एक उनसे द्वेष रखता, वहाँ सैकड़ों उनके लिए जान देनेको तैयार थे जहाँ एक उनकी बुराई करता था, वहाँ हज़ारों उनका गुन गाते थे।

हिन्दू-विश्वविद्यालयका आदर्श कुलपति

[श्री सत्यजीवन वर्म्मा, एम० ए०]

एक सुखद स्मृति

आज उसे बीते सोलह वर्षसे कुछ ऊपर हो चले, परन्तु उसकी स्मृति इसी भाँति सजीव है मानो कलकी घटना हो। सन् १९ की बात है। उस समय हिन्दू-विश्व-विद्यालयकी स्थापना हुए कुछ ही दिन हुए थे। मैं काशीके क्वींस कालेजमें पढ़ता था, परन्तु मेरी इच्छा यही रहती कि इसे छोड़कर कब हिन्दू-विश्वविद्यालयमें भरती हो जाऊँ। पिताजीसे आग्रह भी करता था, रूठता भी था, झगड़ता भी था। पर वे केवल 'घर से बहुत दूर है'का भय दिखाकर मुझे चुप कर दिया करते थे। इसी बीच उनसे और स्वर्गीय डाक्टर गणेशप्रसादजीसे परिचय हो गया और घनिष्ठ परिचय हुआ जिसे मित्रता और आत्मीयताकी सीमाको छूती हुई कह सकते हैं। वे प्रायः संध्यासमय डाक्टर साहबके बँगलेपर मिलने जाया करते। उस समय डाक्टर साहब काशीके कण्टूनमेंटमें रहा करते थे। यह मेरे मकानसे अधिक दूर न था। लौटकर पिताजी प्रायः उनकी बातें मुझे सुनाया करते। मुझे भी अब इसके बहाने हिन्दू-कालेजमें भरती होनेकी अभिलाषा पूर्ण करनेकी बात सूझी। मैंने एक दिन आखिर पिताजीको राज़ी कर लिया और यह सुझाकर कि डाक्टर साहब जैसे प्रिंसिपलकी अध्यक्षतामें छात्र-जीवन व्यतीत करना कैसे सौभाग्यका अवसर होगा। बात काम कर गयी और मुझे पिताजी एक दिन संध्या-समय डाक्टर साहबसे मिलाने ले चले। उस समय मैं इण्टरमीडिएट पास कर चुका था, बी० ए०में भरती होनेकी बात सोचा करता था। इसलिए डाक्टर साहबसे परामर्श कर पिताजीने मेरे लिये 'विषय' निश्चय करना उचित भी समझा था।

हम दोनों पिता-पुत्र काशीकी ऊँची-नीची धूलभरी सड़कोंसे होते हुए रेलवे लाइन पार कर कन्टूनमेन्टकी ओर बढ़े। चारों ओर गोरोंके बैरक थे। बीचमें जेठमें तपता हुआ सूखी मुर्झाई दूबसे ढका हुआ मैदान था। कहीं कहीं दो-एक वृक्ष मानों तपस्वियोंकी भाँति सड़कके किनारे ध्यान लगाये खड़े थे। मेरी सरस-कल्पनाको ये दृश्य आघात पहुँचा रहे थे। मैंने अन्तमें पूछ ही डाला—"लाला, क्या डाक्टर साहब इस बीहड़ जगहमें रहते हैं? यहाँ तो कोई ऐसा बंगला नहीं दीखता जो उनके रहने योग्य हो।"

पिताजी अपना, मोटा सोंटा खटखटाते जाने किन विचारोंमें मग्न आगे-आगे चल रहे थे। उन्होंने मानों सुना ही नहीं, मैंने कुछ दूर चलकर फिर पूछा—"अब कितना चलना है?"

"कितना चलना है—दुर पागल! अरे वह क्या सामने इमलीकी ओटमें वह बंगला"—उन्होंने पिताकी भाँति कहकर अपने डण्डेसे लक्ष्यकर बताया। बंगला तो दिखाई पड़ा पर वह नहीं, जिसकी रूपरेखा मेरी कल्पनाने अंकित की थी। अतः मैंने यही समझा कि कहीं उसके आगे है। वे आगे बढ़े और मैं निश्चिन्त पीछे-पीछे चला, मानो अभी मंजिल दूरतककी है।

एकाएक वे मुड़े और एक टूटे हुए अधखुले फाटकके भीतर दाखिल हुए। सामने खपरैलकी छाजनका, शृंगारहीन, सुनसान, लम्बे बरामदोंवाला बँगला, चौड़े सहनसे घिरा हुआ खड़ा था। संध्याकी छाया उस सघन सहनके उस दूरस्थ कोनेमें खड़े इमली वृक्षसे धीरे-धीरे नीचे उतरने लगी थी, जिसके तले एक छोटी मेज़के चारों ओर कुछ बेंतकी कुरसियाँ पड़ी थीं। हम लोग वहींपर जा बैठे। डाक्टर साहब उस समय कदाचित् उठकर किसी कामसे भीतर गये थे।

हमलोग बैठे ही थे कि उधरसे सफेद कमीज और पतलून पहने, एक छोटे कदके सज्जन आते हुए दीख पड़े। पिताजीने उठकर अभिवादन किया। मैंने भी अनुकरणमें चुपचाप हाथ जोड़ दिये। मुझे क्या पता था कि सामने खड़ा, प्रशस्त ललाटवाला, सीधेसादे परिधानमें आवेष्टित

पुरुष ही जगत्-विख्यात गणितज्ञ, और हिन्दू-विश्वविद्यालयके आर्ट्स कालेजका प्रधान डाक्टर गणेशप्रसाद, हैं। मेरी कल्पनाको यह दूसरा आघात मिला। गवर्नमेन्ट कालेजमें, अँग्रेज़ अध्यापकोंके संसर्गमें रहकर मेरा आदर्श यदि एक भारतीय विद्वान् और हिन्दू-कालेजके प्रधान अध्यापकके दर्शन मात्रसे चूर-चूर हो जाय तो यह आश्चर्यकी बात नहीं थी। परन्तु उस समय मैंने कुछ और ही समझा था। पर बात धीरे-धीरे ही समझमें आयी।

बातें होने लगीं, मानों सुधाकी वर्षा हो रही थी। कितने प्रेमसे डाक्टर साहब सारी बातें पूछ रहे थे। मेरी तो क्षण ही भरमें हिम्मत खुल गयी और मैं मानों अपने पितासे बातें कर रहा था। कितना समझा-समझाकर वे मुझे बी० ए०के पाठ्यक्रमके विषयमें बतलाते थे। उसी समय मैंने निश्चय कर लिया कि पढ़ूँगा, तो हिन्दू-कालेजमें चाहे मुझे कितना ही दूर पैदल क्यों न आना-जाना पड़े।

गरमीकी छुट्टियोंके पश्चात् मैं कालेजमें भरती होने पहुँचा। उस समय हिन्दू कालेज कमक्षापर था। विश्वविद्यालयकी इमारतोंकी तय्यारी हो रही थी। डाक्टर साहब ऊँघते हुए कुलीके डुलाये हुए पंखेके नीचे, विद्यार्थियों, अध्यापकों, क्लर्कोंसे घिरे काम कर रहे थे। इसे देख मेरी आँखें खुल गयीं। कहाँ वह क्वीन्स कालेजका गोरा प्रिन्सिपल जिसके सजे हुए कमरेमें एकाएक किसी हिन्दुस्तानी अध्यापकका प्रवेश नहीं—हम छात्रोंकी कौन पूछे,—कहाँ यहाँ १२०० छात्रोंवाले कालेजके प्रधानका यह साधारण, छोटासा कमरा और उसमें इस गरमीमें इस बेतकल्लुफीकी भीड़भाड़! इसे देख मेरी श्रद्धा हिन्दू-कालेजपर अटल हो उठी। मेरी आँखोंके सामने संस्कृत-साहित्यमें पढ़े प्राचीन-कालके गुरुकुल और गुरु-शिष्योंका वर्णन 'साक्षात्' होने लगा। मेरा हृदय गद्गद हो गया। मैंने अपनेको धन्य समझा जो ऐसे शिक्षालयमें स्थान पाने जा रहा था। मैं कमरेके दरवाजेसे टिका इसकी प्रतीक्षा कर रहा था कि भीड़ हटे तो आवेदन-पत्र लेकर उपस्थित होऊँ। मैं संकल्प-विकल्पमें था कि डाक्टर साहब इतने दिनों बाद मुझे पहचानेंगे भी? मेरे-जैसे कितने छात्र उन्हें नित्य घेरे रहते हैं। किस-किसको वे पहचानते फिरेंगे। पिताजीपर मुझे कुछ झल्लाहट भी आ रही थी, कि उन्होंने एक 'परिचय-पत्र' भी न लिख दिया। मैं इसी उलझनमें पड़ा कुछ निश्चित होकर खड़ा हो गया। जैसे किसीने पुकारा था। मैंने इधर-उधर देखा, मेरे कानोंमें डाक्टर साहबकी स्पष्ट आवाज़ पड़ी—"कम ऑन मिस्टर सत्यजीवन वर्मा, आई एम फ्रि नाउ!" मैंने प्रवेशकर प्रसन्नता और नम्रतासे अभिवादन किया, जैसे किसीने अपने कृपालु वयोवृद्ध आत्मीयका दर्शन पाकर सन्तोष प्राप्त किया हो। संक्षेपमें बातें हुईं। मैं छुट्टी पाकर घर लौटा। मारे प्रसन्नताके सिरपर पैर रखकर घर पहुँचना चाहता था। कालेजसे पूरे दो मीलका पैदल आना-जाना उस दिन जैसे कुछ जान ही न पड़ा। हिन्दू-कालेजके छात्रावस्थाकी यह पहली विशेषता थी। आज भी जब वे दिन स्मरण आते हैं तो जीमें आता है, कि फिर वहीं जाकर पुनः विद्यारम्भ करूँ। पर हा! वे डाक्टर साहब कहाँ मिलेंगे और उनकी बातें सुननेका सौभाग्य अब कहाँ मिलेगा!

कालेजके बरामदोंमें आते-जाते जब कभी उन्हें प्रणाम करनेका अवसर मिला। उत्तरमें वही चिरपरिचित प्रसन्नतासे उमड़ी हुई मुस्कराहट, वही प्रेमभरा उत्तर—वही 'मिस्टर सत्यजीवन वर्म्मा वेरी ग्लेड टू सी यू।' यह कभी जान ही न पड़ा कि ये यहाँके प्रिंसिपल हैं—अथवा एक भारी कुटुम्बके 'कुलपति'। कुलपति—की क्या परिभाषा होगी? जो व्यक्ति अपने १२०० छात्रोंमें प्रत्येकका नामस्मरण रखता हो, जो एक-एकको पहचानता हो, जिसके हृदयमें एक-एकके लिए सद्भाव, सहृदयता, सहानुभूति और प्रेम अहर्निशि निस्सृत रहते हों—उसे यदि कुलपति न कहेंगे तो फिर उसके लिए कोई इससे भी अच्छा दूसरा शब्द ढूँढना पड़ेगा।

अपने इस अल्प जीवनमें अनेक अध्यापकोंसे संबंध हुआ-छात्रावस्था और उसके पश्चात् भी—पर कदाचित् ही किसीमें वह गुरुभाव, वह छात्रप्रेम, वह वात्सल्य, वह निष्कपटता, वह दत्तचित्तता दिखाई पड़ी हो। यदि हम कह दें कि उसका आभास भी नहीं मिला तो हम निश्चय किसीके साथ अन्याय नहीं कर रहे हैं। पिताजीकी मित्रताके कारण डाक्टर साहबकी विशेष कृपा मुझपर रहती थी। उसी कृपाके कारण मैं अपनी शिक्षा समाप्त कर सका। उनके उपकारोंको भूलना इतना आसान नहीं। प्रयाग

गणितका आदर्श शिक्षक

[श्री मक्खनलाल, एम० एस-सी०, एल० टी०]

इन दिनों मैं आगरा कालेजसे बी० एस-सी०की परीक्षा दे चुका था। डाक्टर गणेशप्रसादकी ख्यातिसे परिचित हो चुका था। इससे मैंने गणित अध्ययन करनेका निश्चय उनसे किया। गर्मीकी छुट्टियोंमें ही मैंने डाक्टर साहबसे पत्रव्यवहार किया। डाक्टर साहब तो गणितके उपासक थे ही। किसी भी मनुष्यको उसकी झूठी-सच्ची जरा सी भी आराधना करते देख उनका हृदय विह्वल हो उठता था और वे उसकी यथासम्भव सहायता करनेके लिए तैयार हो जाते थे। जैसे ही उनके पास मेरा पत्र पहुँचा, उन्होंने तुरन्त अपने योग्य शिष्य तथा सहकारी प्रो० गोरखप्रसादसे पत्र का उत्तर दिलवाया और साथ ही बड़ी प्रसन्नता भी प्रगट की। घरवाले घरसे दूर बनारस जाकर मेरे पढ़नेके विरुद्ध थे। परन्तु डाक्टरसाहबका पत्र मिलनेपर मुझे ऐसा प्रोत्साहन मिला कि मैंने घरवालोंकी इच्छाकी अवहेलना करके उनके पास जानेका निश्चय कर लिया।

जौलाई सन् १९२२को मैं हिन्दू-विश्वविद्यालय पहुँच गया। वहाँपर एक विद्यार्थीके पास अपना सामान रखकर विशाल इमारतोंके बीच गणित-विभागको खोजने लगा। जब उसका पता चल गया, तब मैं उसके सामने बरामदे में इधर-उधर टहलने लगा। सामने कमरेमें तीन-चार व्यक्ति बैठे हुए थे। उनमेंसे एकने मुझे देखा। मस्तक ऊँचा, नेत्र-विशाल, सर नंगा, चेहरा तेजस्वी तथा रंग साँवला था। वे सज्जन बाहर निकले और जैसे ही उन्होंने मेरी ओर देखा, मेरा मस्तक आपसे आप झुक गया। उन्होंने फौरन् ही मुझसे पूछा—"क्या तुम डाक्टर गणेशप्रसादसे मिलना चाहते हो?" मैंने कहा हाँ। ज्योंही उनको मेरा नाम मालूम हुआ, उन्होंने मेरा सारा क़िस्सा जो मेरे पत्रके द्वारा उन्हें मालूम हो गया था, कह सुनाया। मुझे अन्दर ले जाकर बिठाया और अपने सहवर्गियोंसे परिचय कराया। फिर कुशल-क्षेम पूछकर मेरे लिए तुरन्त ही होस्टेलमें एक कमरेके लिए प्रबन्ध करा दिया। वे स्वयं डाक्टर गणेशप्रसाद थे। इसके बाद डाक्टर साहब प्रायः हर रोज़ ही पूछ लिया करते थे कि तुमको किसी प्रकारका कोई कष्ट तो नहीं है? इन बातोंसे प्रगट होता है डाक्टर साहबका हृदय कितना कोमल था। वह अपने विद्यार्थियोंके हितकी कितनी चिन्ता करते थे और किसी भी गणित प्रेमीसे मिलनेके लिए कितने उत्सुक रहते थे। न अपने उच्च पदका ही विचार करते थे और न उन्हें किसी प्रकारके दिखावका ही खयाल रहता था। कमरेसे बाहर निकल आये और आगन्तुकको साथ लेकर वार्तालाप करने लगे।

यह तो मेरी उनसे पहली भेंट थी। जब डाक्टर साहबसे खूब हिल-मिल गया और कक्षाका कार्य भी अपनी नियमित रीतिसे चलने लगा तब मुझे मालूम हुआ कि मेरा पहला विचार कि एम० ए०में मेहनत कम रहेगी, सर्वथा निर्मूल प्रमाणित हुआ। मैं दंग रह गया जब यह अनुभव करने लगा कि इतना तो मिडिलचियोंसे भी काम नहीं लिया जाता। डाक्टर साहब जो घरपर करनेके लिए काम देते थे

आनेपर उनके कभी-कभी दर्शन मिलते थे—पर जब कभी मिले इसी भाँति, उसी प्रकार घरकी एक एक बात, एक-एक प्राणीका समाचार पूछा, इसी तरह समझा-समझाकर बड़े-बूढ़ेकी तरह सब बातें कीं।

ये सब स्मृतियाँ पुनर्जीवित होकर मनकी कैसी दशा कर देती हैं। उनके लिए तो जबतक ये जीवित हैं, डाक्टर साहब भी अमर हैं। ठीक ही है—

मरते सभी हैं पर कहानी महापुरुषोंकी ही अमर रहती है।

ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

प्रयाग वि०वि० और सं० प्रा० लेजिस्लेटिव कौंसिलमें

(सर शफाअत अहमदखाँ, एल्-एल्० डी०)

मैं यह कभी भूल नहीं सकता कि डाक्टर गणेशप्रसाद बड़े भारी आदमी थे, वाद-विवादमें उनकी क्षमता असाधारण थी और परमात्माने उन्हें शक्तिशालिनी बुद्धि दी थी। स्वभावमें परले सिरेकी सादगी थी, ऐशो-आरामसे उन्हें गोया नफरत थी। विद्वत्तामें वह एक ही थे और प्राचीन महर्षिका-सा उनका जीवन था और परिश्रम तो वह दिन-रात करते थे। वह घोर परिश्रमी थे, जितने परिश्रमी मेरे देखनेमें आये हैं, उनमें उनका नम्बर अव्वल था। मैंने सुना है, कि वह पाँच बजे तड़केसे ग्यारह बजे राततक काम करते रहते थे।

पहले-पहल इनकी भेट मुझसे पुराने प्रयाग विश्वविद्यालयके सेनेटके एक अधिवेशनमें सन् १९२१में हुई। सर क्लाड डेलाफास सभाध्यक्ष थे और उस अधिवेशनमें विश्वविद्यालयके पुनः संगठनके प्रस्तावपर वाद विवाद छिड़ा हुआ था। उन दिनों डा० गणेशप्रसाद सेनेटके प्रधान वक्ताओंमें हुआ करते थे। उनकी तेज़ी, उनका चौकन्नापन, उनका विशाल ज्ञान और विविध प्रस्तावों र उनकी गम्भीर और विस्तृत जानकारी देखकर मैं तो दंग रह गया। उन दिनों मुझे बहुत कम लोग जानते थे, इसलिये वाद-विवाद की गरमागरमीमें यह महान् पुरुष मेरी ओर ध्यान भी नहीं देता था। उस दिनसे अन्ततक मैंने देखा कि प्रयाग-विश्वविद्यालयके वह बड़े कर्मण्य सदस्य रहे। जब विश्वविद्यालय विधान कौंसिलमें स्वीकृत हो गया, तो परिवर्त्तनकालमें मुझे अनेक कमीटियोंमें उनके साथ सदस्य नियुक्त किया गया और मैं बिल्कुल सचाईके साथ यह कह सकता हूँ कि जितना काम कि कार्य्य-समितिने अगले पाँच बरसोंमें भी न कर पाया होगा उससे अधिक काम हम लोगोंने पहले छः महीनोंमें कर डाला था। बात यह है कि अप्रैल १९२१ से जनवरी १९२२तकके समयके अन्दर ही विश्वविद्यालयकी सारी बुनियादी बातें पक्की हो गयीं। मुझे अगणित मंडलियोंमें सम्मिलित होने और काम करनेका सौभाग्य प्राप्त था। यह मंडलियाँ साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक और शिक्षण-सम्बन्धी थीं। मैं यह मुक्तकंठसे कह सकता हूँ कि विश्वविद्यालयकी पुनारचनाके अवसरपर जितनी कठिन और विकट समस्याएँ उपस्थित थीं उतनी मुझे तो कभी किसी मंडलीमें देखनेमें नहीं आयीं। मँझधारमें पड़ी संगठनकी नावको खेकर पार ले जानेका श्रेय इस समय केवल उन्हीं महापुरुषको था। डाक्टर साहब का साथ मुझे सन १९२२के आरम्भसे मिला और तबसे चार बरसतक तो बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। वह बड़े सच्चे सहायक और सन्मित्र थे और अपने मित्रोंकी पूरी सहायता करनेमें कभी न चूकते थे। कार्य-समितिमें वह बहुत बड़े कार्यकर्त्ता थे। मेरे ये पूज्य मित्र जितनी गहराईसे तथ्योंको समझते थे और समय पड़नेपर जैसी कुशाग्रबुद्धिसे मामलोंको सुलझा लेते थे, दूसरा कोई न कर सकता था। जब कौंसिलमें भयानक झगड़े उठ खड़े होते थे, उस समय उनकी वक्तृताएँ ऐसी मजेदार होती थीं कि सुनते ही बनता था। वह कठिनाईसे कभी नहीं घबराते थे और भारी-भारी कठिनाइयोंके बीच निर्भय भावसे अकेले ही वह अपने मित्रोंकी ओरसे लड़ा करते थे। कभी कभी कार्यसमितिके अधिवेशन तमाशेके होते थे और विश्वविद्यालयके महत्वके प्रश्नोंपर जब बँधे नियमित और विवाद होते थे तब तो डाक्टर गणेशप्रसादका तेज और प्रताप पूर्ण प्रखरतासे देख पड़ता था। आक्रमणका उत्तर उनकेसे कौशलसे तो कोई दे ही न सकता था, और कड़ेसे कड़े हमलेपर भी किसीने उन्हें क्रोध करते तो देखा ही नहीं। उनके मित्रोंकी मंडली बहुत बड़ी थी और सभी तरहकी ऊँच-नीच अवस्थामें वह मित्रता निबाहते थे। अपने सच्चे मित्रोंको वह कभी जोखिममें न छोड़ते थे। मेरे देखनेमें उनका बहादुर और विजयी

लड़नेवाला आजतक देखनेमें नहीं आया। मैं स्वयं लड़नेमें रस लेता हूँ अतः मुझे तो उनका ढंग बहुत ही उत्तम दीखता था। मेरा तो विश्वास है कि उनका साहस और उनकी धृति ये दो गुण ऐसे थे जो उनके मित्रोंके हृदयमें स्थान किये हुए थे।

सन् १९२३में वह लेजिसलेटिव कौंसिलमें भेजे गये और मुझे तीन बरसतक वहाँ भी उनके सत्संगका सौभाग्य रहा। वह कौंसिलमें भी स्वतंत्र सदस्य हुए और बराबर स्वतंत्र ही रहे। वह आदर्श नीतिमान् थे, परलेसिरेके दियानतदार थे। उनकी स्वतंत्रता हद दरजेकी थी। उनकी योग्यता अप्रतिम थी। इन्हीं गुणोंसे कौंसिलका हर एक सदस्य उनकी बड़ी इज्जत करता था। कौंसिलके सामने जो शिक्षासम्बन्धी विकट समस्याएं आयीं उनपर उनकी वक्तृताएं उनके जीवनमें प्रायः उत्तम और मारकेकी और बड़ी ओजस्विनी कहा जा सकती हैं। सन् १९२४ और १९२५में मैंने गांवोंके अनिवार्य्य प्राथमिक शिक्षापर जो दो प्रस्ताव उपस्थित किये थे उन्हें स्वीकार करानेमें डाक्टर साहबने ठोस सहायता की थी। उन्हींकी सहायताका फल था कि सन् १९२६में इन मन्तव्योंके आधारपर कानून बन गया। पर व्यवस्थापिका सभामें उनका प्रधान काम तो आगरा-विश्वविद्यालय-समितिमें था। यह बड़ी ही मजबूत कमीटी थी, क्योंकि इसमें इस प्रान्तोंके सबसे तेज और सबसे भारी शिक्षा-विज्ञानके विशेषज्ञ चुन-चुनकर रखे गये थे। आगरा विश्वविद्यालय समितिकी रिपोर्टकी तैयारीमें भीतर ही-भीतर कितने विस्तारसे जाँच हुई और कितनी लम्बी-लम्बी बहसें हुईं इसका पता सर्व-साधारणको कहाँसे हो सकता है। निस्सन्देह डाक्टर साहब इस समितिके वास्तविक काम करनेवाले सदस्योंके सिरमौर थे और उस समितिके विवादोंमें वह संसारके विश्वविद्यालयोंके संगठन और शासनकी अपनी गम्भीर और अप्रतिम जानकारीसे लोगोंको चौंधिया देते थे। सन् १९२६में आगरा विश्वविद्यालयका विधान कानून बन गया। इसमें डा० गणेशप्रसादका प्रयत्न उनकी योग्यता और परिश्रम ही प्रधान साधक थे।

हम दोनोंमें सभी विषयोंमें मतैक्य न था और कौंसिलके सामने अनेक प्रश्न ऐसे होते थे, जिनके सम्बन्धमें हम दोनोंमें मतभेद था। फिर भी हमारी मित्रतामें कभी भेद न आया। और मतभेद होते भी हम दोनों घनिष्ठ मित्र थे। मुझे तो ऐसा लगता है कि इस प्रान्तने अपने एक सर्वोत्तम शिक्षा-विशेषज्ञको और भारतके विश्वविद्यालयोंने अपने एक अन्ताराष्ट्रिय ख्यातिके महाविद्वान्‌को खो दिया। हमारी हानि तो ऐसी भारी हुई, कि उसकी पूर्त्ति कभी सम्भव नहीं है। डाक्टर साहब स्वयं नहीं जानते थे कि मैं इतनी जल्दी मर जाऊँगा। पिछले मार्चके महीनेमें इलाहाबादकी अकेडेमिक कौंसिलमें मैं उनके पासही बैठा था और उन्हें सलाह दी कि आप आराम कीजिये और अतिश्रमसे बचिये। उन्होंने हाथके इशारेके साथ इस विचारका ही तिरस्कार किया और मुझे विश्वास दिलाया कि मैं पूर्णतया स्वस्थ और निरोग हूँ। मुझे तो उनके स्वास्थ्यके बारेमें सन्देह था और मैंने उनसे ऐसा प्रकट भी किया। तब उन्होंने अगले दस बरसोंका कार्य्यक्रम बतलाया जिसमें तरह-तरहके भारी और महत्वके काम थे जिनमें अमानुषीय कर्मण्यताकी आवश्यकता थी। और यह आवश्कता पूरी करनेवाला कसा हुआ, ठोस परिश्रम करनेवाला साठ बरसका यह सज्जन था। एक बजे दिनको वह सभासे उठे और दूसरे दिन सवेरे आगरे पहुँचे। जब मैंने लीडरमें पढ़ा कि डाक्टर साहबको दिमागमें रक्तस्राव हो गया है और वह बीमार हैं, तो मैं चकित रह गया। उन्होंने अपने कर्त्तव्यपर अपनेको बलिदान कर दिया। वह अन्ततक लड़ते ही रहे। अन्तमें इन्होंने कुछ विद्यार्थियोंकी हिमायत की और सफल ही रहे। उनकी मृत्यु बड़ी दुःखदायी और अचानक हुई। इतनी ही सान्त्वनाकी बात है कि बहुत दिनोंकी घुलाने वाली बीमारी और पीड़ाका दुःसह कष्ट उन्हें नहीं हो पाया।

जीवनके घोर परिश्रमके बाद उन्हें यही अन्तिम विश्राम मिला। परमात्मा उन्हें शान्ति दे।

विज्ञानपरिषत् और स्वर्गीय डाक्टर गणेशप्रसाद

[प्रो० सालिगराम भार्गव, एम्० एस्-सी०, मंत्री, विज्ञानपरिषत्, प्रयाग]

डाक्टर साहबको आज स्वर्गीय लिखते हुए मनको अपार क्लेश होता है। जबसे हमने कालेजमें पढ़ना आरम्भ किया तबसे बराबर सुनते आये कि डाक्टर साहब बड़े भारी गणितज्ञ हैं। परन्तु परिचय बहुत पीछे हुआ। विज्ञान परिषद्की स्थापनाके कुछ ही दिनों बाद डा० गणेशप्रसाद उसके माननीय आजन्म सदस्य चुन लिये गये और तभी परिचयका साधन आरम्भ हुआ क्योंकि, मैं ही तब भी उसका मन्त्री था और परिषद्की ओरसे पत्र व्यवहार करता रहता था। ८ नवम्बर १९१६को तीसरे वार्षिक अधिवेशनके अवसर पर डा० साहबका व्याख्यान प्रयाग विश्वविद्यालयके सेनैट हालमें उपाधि वितरणके संस्कारके पीछे सर (अब लार्ड) जेम्स स्कार्जी मेस्टनके सभापतित्वमें हुआ। हिन्दीमें गणित जैसे नीरस विषयपर यह पहला सुबोध व्याख्यान था और परिषत्के ही लिये नहीं बल्कि भारतीय विद्वज्जनकी दुनियाके लिये बिलकुल नयी बात थी। व्याख्यानके अवसरपर उनमें से बहुतसे सज्जन उपस्थित थे, जो उपाधि वितरणके अवसर पर आये थे, मेस्टन साहबने अन्तमें कहाकि हमको यहाँ आज सायंकालमें आनेसे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ, यद्यपि डा० गणेशप्रसादके कथनानुसार उनके व्याख्यानका आरंभिक अंश मामूली आसान चीज़ न थी तथापि उनका व्याख्यान मनोरंजक हुआ।

इस व्याख्यानका सारांश "विज्ञान"में छपा था और इसी अंकमें अन्यत्र पाठकोंके लिये हम फिरसे उद्धृत करते हैं।

पिछले वर्ष डाक्टर गणेशप्रसादने एक व्याख्यान, परिषद्के वार्षिक अधिवेशनके अवसर पर डा० नारायणप्रसाद अष्ठानाके सभापतित्वमें दिया। इसका विषय था 'गणितकी गवेषणाओंमें देशी भाषाका प्रयोग।' इसमें उन्होंने दिखाया था कि किस प्रकार संसारभरमें देशी भाषाओंपर विद्वानोंकी ममता है। दूसरा व्याख्यान "गणितज्ञोंके जीवन" पर सर शाह मोहम्मद सुलेमान, चीफ जस्टिस प्रयाग हाईकोर्टके सभापतित्वमें दिया। डाक्टर साहब सदैव कहा करते थे कि मुझे हिन्दी तो आती ही नहीं, परन्तु बोलनेके समय अवश्य ही ऐसी भाषा बोलते थे कि जो शुद्ध होती थी और विषय और शैलीका चुनाव ऐसा होता था कि लोगोंकी समझमें भी आ जाती थी और रोचक भी होती थी। डाक्टर साहबका सम्बन्ध परिषद्से बराबर रहा और अन्त

स्वर्गीय डा० गणेशप्रसाद

घोर परिश्रमवाला अत्यन्त सादा जीवन

[डाक्टर व्रजमोहन महरोत्रा, एम० ए०, पी-एच० डी०, हिन्दू-विश्वविद्यालय]

डाक्टर गणेशप्रसाद केवल गणितज्ञ ही न थे। उन्होंने बहुत-से विद्यार्थियोंके लिए पथ-प्रदर्शकका काम किया है। उनके उठ जानेसे गणित-संसारको ऐसी क्षति पहुँची है जो पूरी होनी बहुत ही कठिन है। उनका जीवन अथक परिश्रमका ज्वलन्त उदाहरण है। ५९ वर्षकी अवस्थामें उतना परिश्रम कर सकते थे जितना हमारे जैसे दो नौजवान मिलकर नहीं कर सकते। प्रतिवर्ष बीस हज़ार मीलसे अधिक सफर करते थे फिर भी सदैव तरोताजा बने रहते थे। उनके जीवनमें ऐसे अनेकों अवसर आये जब उन्होंने ८०० मीलका सफर करनेके बाद घण्टों किसी कमिटीकी बैठकमें भाग लिया है। बहुधा ऐसा हुआ है, कि वह कलकत्तेसे सन्ध्याके ४ बजेकी गाड़ीसे चले, अगले दिन दोपहरके १ बजे आगरा फोर्ट पहुँचे और ताँगा लेकर सीधे यूनिवर्सिटीके दफ्तर पहुँचे, वहाँ तीन-चार घण्टे किसी 'बैठक'के वाद-विवादमें भाग लिया। वहाँसे निबटकर सीधे स्टेशन पहुँचे और सन्ध्याके ९ बजेकी गाड़ीसे चलकर अगले दिन सन्ध्याके छः बजे कलकत्ते पहुँच गये! आराम लेना तो वह जानते ही न थे। वह लगातार कई-कई रात सफ़र करते रहते थे और थकनेका नाम न लेते थे। इतना परिश्रम करते हुए भी रातको दो-ढाई घण्टेसे अधिक कभी न सोते थे! जितना परिश्रम उन्होंने किया, यदि उसीके हिसाबसे आराम भी किया होता तो कदाचित् उनकी आयु इससे कहीं अधिक होती। एक दफ़ा डाक्टर साहब कलकत्तेसे आगरे जानेवाले थे। हम-लोग यह विचार कर रहे थे कि जिस दिन डाक्टर साहब आगरेसे लौटकर आयें उसी दिन किसी उपयुक्त समय Calcutta Mathematical Society कलकत्ता गणितपरिषत्‌की बैठक की जाय। डाक्टर साहब बोले—"मैं इतवारकी सन्ध्याको ५$\frac{1}{2}$ बजेकी गाड़ीसे आऊँगा। टैक्सीमें दस मिनटमें घर पहुँच जाऊँगा। वहाँ असबाब रखकर ही चलदूँगा और दस मिनटमें कालेज आजाऊँगा। इसलिए ५ बजकर ५० मिनटपर 'बैठक' हो सकती है! उनके ध्यानमें यह बात कभी न आती थी कि सफरके पश्चात् आराम लेकर थकन मिटाना भी एक आवश्यक कार्य है!

डाक्टर साहब 'सरल जीवन और उच्च विचार'के प्रत्यक्ष उदाहरण थे। उन्होंने अपनी आवश्यकताओंको न्यूनताकी चरम सीमापर पहुँचा दिया था। उनके भोजनमें केवल तीन वस्तुएँ रहती थीं। रोटी, एक तरकारी और पानी, इससे अधिक सरल 'सूची' तो सोचना भी कठिन है। जब उनको एक ही दिनमें कई बैठकोंमें उपस्थित होना होता था, तब वह बिना आहार ही रह जाते थे। वह कहा करते थे कि मैं ख़ाली पेट रहते अधिक परिश्रम कर सकता हूँ। कलकत्तेमें जो मकान उन्होंने किरायेपर ले रक्खा था, उसमें चार कमरे थे। परन्तु वह उनमेंसे केवल एकको काममें

समय वह उसके सभापति थे। यद्यपि वह माननीय सदस्य थे, तथापि अपनी इच्छासे वह समय-समयपर परिषत् की धनसे भी सहायता करते थे।

उसकी कौंसिलकी बैठकमें उपस्थित होनेके लिये आगरेसे लौटकर प्रयाग आनेवाले थे और आगरेके लिये रवाना होते समय मुझसे उन्होंने कहा था कि वे तो अभी पचीस बरस और जियेंगे। इस कथनसे यह विदित होता है कि वे जो कुछ भी काम करते थे उसे जी तोड़कर करते

थे। उनका विचार ऐसा नहीं था कि इस कामके करनेसे क्या लाभ, क्योंकि थोड़े दिन ही तो इस संसारमें रहना है। कलकत्तेसे आगरेतक लम्बी यात्रा किया करते थे। रास्तेमें कई जगह कार्यवश जाया करते थे। हर स्थानपर निश्चित समयपर पहुँचते थे, चाहे रातको चलना पड़े चाहे दिन को। उनको अपने शरीरके कष्टका इतना ख़याल नहीं रहता था, जितना अपने कर्त्तव्य का।

लाते थे। शेष तीनों कमरे ख़ाली पड़े रहते थे, क्योंकि उनके पास इतना सामान ही कहाँ था जो उनमें रखते! डाक्टर साहब सदैव इतने व्यस्त रहते थे कि उनको अपने सामानकी सफाईके लिए भी अवकाश नहीं मिलता था। उनके कमरेमें बहुत संक्षिप्त-सा सामान रहता था। एक पलंग जिसपर दैनिक-पत्र स्टेट्स्मैनकी प्रतियाँ पड़ी रहती थीं—उसपर सिरहानेकी तरफ़ कुछ पुस्तकें जो तकियेका काम देती थीं, एक मेज़, दो तीन कुर्सियाँ, आधे दर्जन पुराने कपड़े जो एक टूटे हुए सूटकेसमें पड़े रहते थे और थोड़ी-सी कापियाँ और किताबें जो कमरेके एक कोनेमें कूड़ेके ढेरकी तरह पड़ी रहती थीं। जब मैं पहलेपहल कलकत्तेमें उनके मकानमें गया तो मैंने देखा कि खाली कमरोंमेंसे एकमें बीचो-बीच रद्दी कागज़ोंका एक ढेर पड़ा हुआ था। महीने-पर-महीना बीतता गया। हर दफ़ा मैंने उस ढेरमें वृद्धि ही पायी। यहाँतक कि अन्त समय आ गया परन्तु उस कूड़ेके उठनेकी नौबत न आयी! पाठकोंको जानकर आश्चर्य होगा कि डाक्टर साहब बहुत-सी ऐसी वस्तुओंके बिना कैसे काम चलाते थे जो आजकल किसी भी नवयुवकके लिए अत्यन्त आवश्यक समझी जाती हैं। वर्षोंसे डाक्टर साहब बिना घड़ीके काम चलाते थे। कलकत्तेमें उनके घरके सामने एक घण्टाघर था। उनका सारा कार्यक्रम उसीके अनुसार चलता था। बिजलीके पंखेका तो ज़िक्र ही क्या, डाक्टर साहब दो पैसे वाला हाथका पंखा भी कभी नहीं रखते थे! न उनके पास मच्छरदानी थी, न कंघा, न शीशा, न साबुन, न तैल!

डाक्टर साहबका कोई निजी कुटुम्ब तो था नहीं। जब वह बीस वर्षके थे तभी उनकी स्त्रीका देहान्त हो गया था। उनकी एकमात्र पुत्री भी कुछ वर्ष बाद ही इस क्षणिक संसारको छोड़कर चल दी थी। डाक्टर साहबने दूसरा विवाह नहीं किया। वह अपने विद्यार्थियोंको अपने बच्चोंकी तरह प्यार करते थे। सुनते हैं कुछ वर्षों पूर्वतक तो उनका यह स्वभाव था कि किसी विद्यार्थीको ५ मिनटसे अधिक नहीं देते थे। परन्तु पिछले ५ वर्षों में तो—जब कि इन पंक्तियोंके लेखकको उनके सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था—कोई दिन ऐसा नहीं जाता था जब वह दो-तीन घण्टे हमलोगोंके (विद्यार्थियोंके) साथ न व्यतीत करते हों। डाक्टर साहबका हृदय बहुत निर्मल था। वह अपने विषय की कोई भी बात—छोटीसे छोटी अथवा बड़ीसे बड़ी—कदाचित् ही किसीसे छिपाते हों। संसारका कोई विषय ऐसा न होगा जिसपर वह हम लोगोंसे बातें न करते हों। कभी अपने घरेलू मामलोंका ज़िक्र, कभी रिश्तेदारके विवाहका ज़िक्र, कभी गणितका, कभी ताजमहलका, कभी पेरिसकी मीनारका, कभी पश्चिमी सभ्यताका और कभी रोटी-दालतकका! डाक्टर साहब कलकत्तेसे आगरे जा रहे हैं। रास्तेमें एक दिनके लिए बनारस रुकेंगे। उनके कुछ विद्यार्थी उनसे बनारस में आकर मिलेंगे। उनके कुछ भक्त इलाहाबाद स्टेशनपर मिलेंगे, कुछ कानपुर स्टेशनपर मिलेंगे—यदि उनसे दो ही मिनट बात करनेका अवसर मिले—और कुछ लोग आगरे में आकर मिलेंगे। बिना विद्यार्थियोंसे मिले उन्हें चैन नहीं पड़ता था।

जो व्यक्ति उनसे नीतिसम्बन्धी विषयोंमें सहमत नहीं थे, वह भी उनके गुणोंकी हृदयसे सराहना करते थे। उनकी ज्ञान संचयकी पिपासा, उनकी गणितके लिए अनन्य भक्ति, उनकी संलग्नताको कौन नहीं जानता?

भगवान्‌की लीला अज्ञेय है। मृत्युसे एक ही दिन पहिले उनके एक मित्रने उनसे कहा था—"डाक्टर साहब! आप अपनी अवस्थासे कहीं अधिक स्वस्थ मालूम देते हैं। आप तो अस्सी-नब्बेकी अवस्थातक पहुँचेंगे।" डाक्टर साहबने उत्तर दिया—कोई आश्चर्य नहीं जो मैं अस्सी-नब्बे वर्षकी अवस्थातक जीऊँ।" अगले दिन आगरेमें उस प्राण-घातक "बैठक"में जानेसे पहले उन्होंने एक मित्रसे कहा था—"मैं अपने जीवनके अन्तिम दिन आगरेमें बिताऊँगा, परन्तु मैं मरना काशीमें ही चाहता हूँ।" जब डाक्टर साहब ऐसा कह रहे थे, लीलामयी भावी उनकी खिल्ली उड़ा रही थी, क्योंकि इस बातचीतके कुछ ही घण्टे पश्चात् डाक्टर साहबने अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। डाक्टर साहब आयुभर अथक परिश्रम करते रहे, और काम करते करते उन्होंने शरीर छोड़ा।

आराम लेनेका अवकाश तो अब मिला है।

कलकत्तेमें उनसे समागम

[डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०, प्रयाग]

डाक्टर गणेशप्रसादजीका नाम तो मैं अपने बचपनसे ही सुनता आया था। मुझे याद है, कि सन् १९१८में जब मैं प्रयाग आकर कायस्थ-पाठशालामें पढ़ने लगा और स्थानीय आर्य-कुमार-सभामें आना-जाना हुआ, तो वहाँ कायस्थ-पाठशाला-कालेजके विद्यार्थियोंसे डाक्टर साहबकी विशेषताओंके बारेमें बहुत कुछ सुना करता। यह तो लोकप्रसिद्ध था, कि डाक्टर साहब संसारके इने-गिने सात-आठ गणितज्ञोंमेंसे हैं; पर इसका मुझे ठीक पता नहीं है, कि इस तुलनात्मक धारणाका आधार क्या था? हाँ यह बात सुनी अवश्य जाती थी, कि एकबार किसी परीक्षा-विशेषमें संसारके प्रसिद्ध गणितज्ञोंको कुछ प्रश्न दिये गये, और उन इनेगिने व्यक्तियोंमें से डाक्टर साहब अवश्य एक थे जिन्होंने कुछ प्रश्न हल करनेमें सफलता पायी। अब तो मैं समझता हूँ कि यह बचपनकी सामान्य जनतामें फैली हुई किम्वदन्ती मात्र थी।

एक बात और गणेशप्रसादजीके सम्बन्धमें सुननेमें आती थी, वह यह कि प्रतिवर्ष उनके मस्तिष्कके प्राप्त करनेके लिए जीववेत्ताओं द्वारा मूल्य घोषित किया जाता है। खबर यह थी कि डाक्टर साहबके मस्तिष्कको शरीरवेत्ता एक रहस्य समझते हैं, और इनकी यह उत्कट अभिलाषा है कि इनकी मृत्युके उपरान्त इनका मस्तिष्क किसी अजायबघरमें रखा जाय और वहाँ इसकी परीक्षा भी की जाय। यह भी एक ऐसी किम्वदन्ती थी जो मेरे बचपनके समय स्कूलके ही नहीं, प्रत्युत कालेजके भी कुछ ऐसे विद्यार्थियोंमें प्रचलित थी, जिनका सम्पर्क कदाचित् ही डा० गणेशप्रसादजीसे रहा हो।

तीसरी जनश्रुतिमें कुछ अधिक सत्यता थी। वह थी डाक्टर साहबके नीरस पर नियमित व्यवहारपर। कहा जाता है कि उनके समस्त कार्मोंके लिए समय निश्चित था, और उनके पालनमें उनकी दृढ़ता इतनी कठोर थी कि इन्होंने एक अवसरपर अपने कमरेमें बिना आज्ञा अपने पिताके भी आ जानेपर आपत्ति उठायी थी। सम्भव है कि यह घटना लोकश्रुति ही मात्र हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि उनके जीवनमें एक समय ऐसा अवश्य आया था जब कि उन्होंने क्रूरतम दृढ़ता और नियमशीलतासे काम लिया। *

सबसे पहला व्याख्यान मैंने डा० गणेशप्रसादका प्रयाग-विश्वविद्यालमें सम्भवतः १९२५में वैयरस्ट्रेटसपर सुना था। इसमें सन्देह नहीं कि डा० गणेशप्रसाद उन व्यक्तियोंमेंसे थे जिन्होंने गणितज्ञोंके जीवनमें आनन्दका अनुभव किया था, आजकल हमारे विश्वविद्यालयोंमें गणित-विषय बड़ी नीरसताके साथ पढ़ाया जाता है। गणितके इतिहासके सम्बन्धमें उपेक्षा अबतक बनी हुई है। पर डा० गणेशप्रसाद इस बातका अनुभव करते थे कि विद्यार्थियोंको गणितके अनेक प्रश्नोंको हल करवा देनेकी अपेक्षा यह अधिक उचित है कि उनकी प्रवृत्ति गणित विषयकी ओर अग्रसर होजाय और इस शुष्क विषयमें वे सरसता का अनुभव करने लगें। गणितज्ञकी जीवनियाँ भी डा० गणेशप्रसाद ने इसी उद्देश्य से लिखी थीं और वे बहुधा सामान्य जनतामें गणित के इतिहासपर व्याख्यान दिया करते थे।

जबसे डा० गणेशप्रसाद विज्ञान-परिषद्के सभापति हुए थे, तबसे मेरा उनसे अधिक घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था। मुझे जो विशेष बात पसन्द आयी थी, वह यह कि वे प्रयागमें न रहते हुए भी विज्ञान-परिषद्की कौंसिलके अधिवेशनोंमें सम्मिलित होनेके लिए उत्सुक रहते और अधिकतर सभी बैठकोंमें वे उपस्थित रहे। यदि और कोई होता तो परिषद्की बैठकोंके लिए इतनी दूरसे न आता।

मैं कलकत्तेमें पहलीबार २४ मई १९३४को डा० गणेश-

---

* जनश्रुति कितने विकृत रूप धर लेती है, यह कथा इस बातका एक उदाहरण है। इसका शुद्धरूप पाठक प्रो० चन्द्रीप्रसादके लेखमें पढ़ चुके हैं। —रा० गौ०

प्रसादसे उनके घरपर मिला। मेरे साथ नागपुर-विश्वविद्यालयके गणितके अध्यापक श्रीमान् शास्त्री महोदय भी थे। डा० साहबकी सादगीके विषयमें सुन तो बहुत कुछ रखा था, पर आज हमलोगोंको उनके घरेलू जीवनका कुछ परिचय प्राप्त हुआ, प्रातःकाल था, हमलोग कारपोरेशन स्ट्रीटमें समवायमैंशन्समें खोजते हुए पहुँचे। ऊपरके एक फ्लैटमें डा० साहबने कुछ कमरे ले रखे थे। बुलानेसे पूर्व हमलोगोंने दर्वाज़ेमेंसे झाँका तो कमरा कुछ तितर-बितर पाया। एक चारपाईपर कुछ पुरानी पुस्तकें और अन्य सामान भी लदा हुआ देखा, हम लोगोंको ऐसा विश्वास हुआ, कि शायद डा० साहबने यह मकान छोड़ दिया है और इसीलिए यह सब अव्यवस्था है। निराश होनेपर भी साहस करके दर्वाज़ा खटखटाया और आवाज़ दी, तो देखते क्या हैं, कि डाक्टर साहब स्वयं दरवाज़ेको खोलने आ गये हैं और उन्होंने बड़े हर्षसे हम लोगोंका स्वागत किया, कुर्सीपर बैठनेपर उत्सुकतापूर्ण नेत्रोंसे जो इधर-उधर देखा, तो फिर धीरे-धीरे विश्वास करना ही पड़ा कि उनके कमरोंकी अव्यवस्थित अवस्था ही उनके जीवनकी स्वाभाविकता है।

डा० साहबने अपनी दैनिक चर्चा हमलोगोंको बतायी। आप प्रातः कृत्योंसे निवृत्त होकर चायके उपरान्त गणितके कामके लिए अपने एकान्त कमरेमें बैठ जाते थे, और इस काममें वे १ बजेतक लगे रहते थे, उस समय उनका नौकर होटलसे उनके लिए भोजन लाता था। भोजन करके वे कुछ काल विश्राम करते थे और फिर उनका वह समय था कि जब उनके विश्वविद्यालयके विद्यार्थी उनके पास आकर गणितके विषयोंपर परामर्श लिया करते थे। इन विद्यार्थियोंसे डा० साहब सबेरे नहीं मिलते थे। इस बातमें वे दृढ़ थे! पर हाँ हमलोगोंने उनका प्रातःकाल ही गपशपमें बितवा दिया। उन्होंने हमारे साथ खरबूजे और आमकी कुछ फाँकें खायीं, और इसके उपरान्त उन्होंने कहा कि वे अब १ बजेका भोजन न करेंगे। अस्तु, यह दैनिक चर्चा गर्मीकी छुट्टियोंकी थी। उन्होंने हमें अपने कमरे दिखाये, बड़े शौक़से प्रथम भारतीय गणित कान्फ्रेंसका चित्र, जो कदाचित् एकमात्र उनके कमरेकी शोभा था, बड़ी भावुकतासे दिखाया। कमरेकी अव्यवस्थित एकान्तता ही उसकी सजावट थी।

उन्होंने गणितज्ञोंकी जो जीवनियाँ प्रकाशित की थीं, उनसे उनकी एक आलमारी भरी पड़ी थी, उन्होंने हमें स्वयं उस ग्रन्थसे परिचय कराया, और उसका विज्ञापन दिया। डा० गणेशप्रसाद वस्तुतः न केवल पुस्तकके लेखक थे, प्रत्युत दुर्भाग्यवश उसके बेचने आदिका प्रबन्ध भी उन्हें ही करना पड़ता था, हमारे देशमें उच्च श्रेणीके लेखकोंकी भी ऐसी शोचनीय अवस्था है।

डा० साहब उन दिनों गणितकी एक बड़ी महत्वपूर्ण जर्मन भाषाकी ग्रन्थमालाका सम्पादन कर रहे थे। ये विशद् ग्रन्थ किसी जर्मन महोदयके लिखे हुए थे, और थोड़ा-थोड़ा करके वह डा० गणेशप्रसादके पास सम्पादन और संशोधनके लिए भेजता जाता था। डा० साहब बड़ी सावधानीसे इसका सम्पादन कर रहे थे। मैं समझता हूँ कि ऐसा सौभाग्य शायद ही किसी भारतीयको मिला हो कि उसे जर्मनीके प्रसिद्ध ग्रन्थकारकी बृहद् पुस्तकके सम्पादनका भार सौंपा गया हो। डा० विभूतिभूषण आदि सहयोगियोंके आग्रहपर डा० साहबने इस ग्रन्थके सम्पादनका भार उठाना स्वीकार किया था। मालूम नहीं, कि इस ग्रन्थके सम्पादनकी अब क्या व्यवस्था होगी क्योंकि संभवतः अभी काम समाप्त न होने पाया था।

एम० ए० के विद्यार्थियोंको प्रतिवर्ष डा० साहब कुछ विशेष व्याख्यान देते थे। इसके सम्बन्धमें जो बात मुझे अच्छी लगी वह यह थी कि वे व्याख्यानोंको सुस्पष्ट अक्षरोंमें विस्तारपूर्वक लेखबद्ध कर लेते थे। उन्होंने मुझे अपनी कई कापियाँ (रजिस्टर रूपमें) दिखायीं। उनका विचार इनको प्रकाशित करनेका था, और इसीलिए बड़े परिश्रमसे उन्होंने इन्हें सुन्दर अक्षरोंमें लेखबद्ध करके सुरक्षित रखा था।

१९जून १९३४ कलकत्तेकी 'इण्डियन एसोसियेशन आव् कल्टिवेशन आव् सायन्सके जीवनमें महत्वका दिन था। इस दिनके त्रैवार्षिक अधिवेशनमें इस एसोसियेशनमेंसे बंगालियोंने येनकेन प्रकारेण भीषण रूपमें प्रोफेसर सर चन्द्रशेखर वेंकट रामनको अलग कर दिया, और व्यवस्थाका भार अपने हाथमें लिया। डा० गणेशप्रसाद इस एसोसियेशनके ट्रस्टी और उपसभापति थे। यह पहला अवसर था जब कि डा० गणेशप्रसादने प्रो० रामन्का विरोध किया, और

प्रतिभाशाली आचार्यके जीवनकी विचित्रताएं

[डा० अवधेशनारायण सिंह, डी० एस्‌-सी०, लखनऊ]
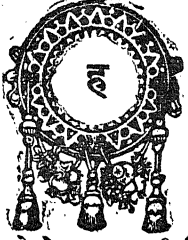
रएक प्रतिभावान् पुरुषमें कुछ-न-कुछ विचित्रताएँ होती हैं। स्वर्गीय डाक्टर गणेशप्रसाद जैसे अद्भुत प्रतिभासम्पन्न थे वैसी ही उनमें अनेक विचित्रताएँ भी थीं। जो लोग कभी-कभी इनके संसर्गमें आते वे प्रायः उनकी विचित्रताओंको देख आश्चर्यचकित हो जाते। उनका बड़प्पन और उनके बात-चीत, रहन-सहन तथा व्यवहारका असामंजस्य उनकी समझमें नहीं आता, परन्तु जैसे पहले कहा जा चुका है प्रतिभा और विचित्रताएँ दोनों साथ-साथ चलती हैं। ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं हैं।

प्रायः सभी महापुरुषोंके बारेमें सुना जाता है, कि वे अपने समयका दुरुपयोग नहीं होने देते थे, लेकिन डाक्टर साहबको जितना समयका ख्याल था वह शायद ही किसीको होगा।

महायुद्धके पहलेकी बात है। डाक्टर साहब बनारसके क्वीन्स कालेजमें गणितके प्रोफेसर थे। मैं उस समय क्वीन्स कालेजियेट स्कूलमें विद्यार्थी था। उनका बंगला मेरे रास्तेमें पड़ता था। अक्सर मैंने उनको अपने बँगलेसे कालेजकी तरफ जाते देखा है। उनके चलनेका तरीका विचित्र था। वे बराबर एक सीधी रेखामें चलते और अपनी छड़ीको ज़मीनपर इस प्रकार टेकते थे मानों वे सेकंडोंकी गिनती कर रहे हों। ज्योंही वह कालेजके भीतर घुसते १०का घंटा बजा करता था। उनकी समयकी पाबन्दी इतनी प्रसिद्ध हो गयी थी कि कहा जाता है, घंटा बजानेवाला चपरासी उठकर हालके भीतर घड़ी देखने नहीं जाता था। वह जहाँ डाक्टर साहबको कालेजके भीतर पदार्पण करते देखता, उठकर घंटा बजा देता। यह मेरा डाक्टर साहबका प्रथम संस्मरण है। इस समयतक डाक्टर साहबसे मेरा साक्षात् नहीं हुआ था। मैं अन्य

प्रो० रामन्‌को इस बातकी आशा भी न थी। वस्तुतः उस मीटिंगमें बड़ी कुटिल एवं दूषित नीतियोंका अवलम्बन किया गया था, और वर्तमान वायसचैन्सलर डा० श्यामाप्रसाद मुकुरजी, डा० मेघनाथ शाहा आदि व्यक्तियोंने डा० गणेशप्रसादको षड्यन्त्रमें फँसा लिया था और इस बातके कुछ और भी न कहने योग्य आन्तरिक कारण थे। अकस्मात् इण्डियन ऐसोसियेशनका इतिहास ही परिवर्तित हो गया। डा०गणेशप्रसादजीने परिस्थितियोंसे लाचार होकर प्रो० रामन्‌का विरोध मौन रूपसे किया अवश्य, पर इससे उन्हें आन्तरिक वेदना ही हुई। उस दिनकी हुल्लड़बाजीके अधिवेशनमें वे बिलकुल मौन और शान्त रहे। २१जून १९३४को मैं जब इनसे मिला तो उन्हें उस दिनके सम्पूर्ण कृत्योंपर परिताप प्रकट करते ही पाया। हाँ, यह ठीक है कि वे प्रो० रामन्‌की आपाधापीसे कुछ असन्तुष्ट अवश्य थे। भारतके प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंका कुत्सित दृश्य जो मैंने उस अधिवेशनमें देखा, उसकी याद करते हुए आज भी मेरा दिल काँप उठता है। इण्डियन ऐसोसियेशनका नया चुनाव हुआ और डा० गणेशप्रसाद फिर भी उपसभापति ही रहे। अन्त समय में भी उन्होंने वंग वासियोंका साथ न छोड़ा।* वे वस्तुतः सर आशुतोष मुकुर्जीके बड़े भक्त थे और उन्हें वे "Prince amongst Bengalis" कहते थे। अस्तु, डा० गणेशप्रसादका चित्र अब तो स्वप्नवत् नेत्रोंके सामने रह गया है।

---

* यद्यपि बङ्गालियोंका-प्रान्तीयता-भक्त एक बड़ा भारी दल सदा उनका विरोधी रहा। डाक्टर साहब अपने विषयमें अद्वितीय न होते तो कलकत्तेमें वह पूरे सालभर भी न रह पाते। घोर प्रान्तीयताके वातावरणमें वह केवल अपने दिमागके बलसे बने हुए थे। वह सन् १९३६ में अवकाश ग्रहण करनेवाले थे। —रा० गौ०

विद्यार्थियोंकी तरह आश्चर्य तथा भय मिश्रित श्रद्धाकी भावनासे उन्हें देखा करता था। वे इस समय किसीसे ज्यादा मिलते-जुलते नहीं थे। उनको अपनी पुस्तकों और विद्यार्थियोंसे काम था।

मेरा डाक्टर साहबसे पहिला साक्षात् सन् १९१८में हुआ जब मैं अपने मित्र श्री प्यारेमोहनके साथ बनारस हिन्दू-युनिवर्सिटीकी इण्टरमीडियेट कक्षामें भर्ती होने गया। उस समय डाक्टर साहब हिन्दूकालेजके प्रिन्सिपल थे, परन्तु मेरा उनका घनिष्ट सम्बन्ध १९२४से शुरू हुआ जब मैंने उनकी संरक्षकतामें गणितमें अन्वेषणका काम शुरू किया। उस समय डाक्टर साहब काउंसिलके मेम्बर भी थे। उनके ऊपर और भी अनेक प्रकारके भार थे। पर इतना काम रहते हुए उनका ध्यान हमेशा गणितकी तरफ लगा रहता था। उनको गणितमें खोजसे बड़ा प्रेम था और अपने शिष्योंको पुत्रकी तरह मानते थे।

यद्यपि उनका समय काउंसिलके काममें बहुत कुछ लग जाता था फिर भी इसी बीचमें उन्होंने ऑन दी फण्डामेण्टल थिअरम आव दी इण्टीग्रल कैलकुलस (On the fundamental theorem of the Integral Calculus) विषयक कई महत्वपूर्ण लेख लिखे।

डाक्टर साहब धुनके बड़े पक्के थे। जिस काममें लगते थे उसको अधूरा छोड़ना नहीं पसन्द करते थे। १९२४में जब मैंने उनके अधीन रिसर्चका काम शुरू किया उन्होंने एक गणितसमस्या (Problem) हल करनेके लिये दिया। इसी समस्यापर तीन बड़े गणितज्ञोंने इसके पूर्व काम किया था, परन्तु उन्हें केवल आंशिक सफलता मिली थी। डाक्टर साहब चाहते थे कि इस समस्याको पूर्णतया हल कर दूँ। मैंने क़रीब दो महीनेतक उस समस्याको हल करनेका यत्न किया, परन्तु कुछ भी सफलता प्राप्त न हुई। अन्तमें मैंने एक दिन डाक्टर साहबसे कहा—'मुझे अबतक इस समस्याको हल करनेका कोई तरीक़ा नहीं सूझा। आप कैसे उम्मीद करते हैं कि जिस समस्याको तीन बड़े-बड़े गणितज्ञ हल नहीं कर सके उसे मैं सुलझा सकूँगा।'

उन्होंने उत्तर दिया—'सूझ (Inspiration) केवल बड़े ही लोगोंको थोड़े होती है। कभी-कभी छोटे लोगोंको भी बहुत महत्वपूर्ण सूझ होती है।' ये वाक्य मुझे अब तक नहीं भूले। उन्होंने इन वाक्योंको इतने दृढ़ विश्वास से कहा कि मनपर उनका बड़ा असर हुआ और मैं द्विगुणित उत्साहसे उस समस्याको सुलझानेमें लग गया और अन्तमें मैंने उसको हल ही कर लिया। डाक्टर गणेशप्रसादमें अपने शिष्योंको उत्साहित करनेकी विशेष शक्ति थी। मैंने किसी ऐसे गुरुको नहीं देखा है, जो अपने शिष्योंको अपने उदाहरण और उपदेशसे इस भाँति सफलताकी ओर अग्रसर कर सके!

अभी मैंने उनके धुनके पक्के होनेकी बात कही है। इस सम्बन्धमें मुझे एक घटनाका स्मरण हो आता है। १९२८के मई महीनेकी बात है। मैं उस समय कलकत्तेमें डाक्टर साहबके मकान २०, समवाय मैन्शन्स, कारपोरेशन स्ट्रीटमें ठहरा हुआ था। कलकत्ता मैथेमेटिकल सोसायटीकी मीटिंग होनेवाली थी। नियत समयके दो घण्टे पहले बड़े जोरकी वर्षा हुई। पानी ज्योंही बन्द हुआ, डाक्टर साहबने मुझसे मीटिङ्गमें चलनेके लिए कहा। मीटिङ्ग सर्क्यूलर रोडपर सोसायटीके मकानमें होनेवाली थी। हमलोगोंने एक टैक्सी की। किन्तु वर्षाके कारण सड़कोंपर इतना अधिक पानी इकट्ठा हो गया था, कि टैक्सीवालेने थोड़ी दूर जानेके बाद आगे जानेसे इनकार कर दिया। उसने कहा—आगे जानेसे इञ्जनमें पानी भर जायगा और वह बन्द हो जायगा। इसपर डाक्टर साहबने एक फिटन गाड़ी की। फिटन गाड़ीको रास्ता बतानेका भार डाक्टर साहबने अपने ऊपर लिया। एक जगह सड़कमें बहुत पानी था। गद्दीके नीचेतक पानी आ गया हमलोग पैर ऊपरकर गद्दीपर बैठे रहे। लड़के आस-पास छोटी-छोटी नावें लेकर खे रहे थे। फिटनवालेने इस वक्त आगे बढ़नेसे इनकारकर दिया। किन्तु डाक्टर साहबको मीटिङ्गमें पहुँचनेकी धुन लगी हुई थी। उन्होंने फिटनवालेसे कहा—जो तुम रुपया माँगोगे वह मैं तुम्हें दूँगा, लेकिन तुम्हें सरक्यूलर रोड चलना ही होगा। अन्तमें फिटनवालेको उनकी ज़िदके आगे सिर नवाना पड़ा और वह आगे बढ़ा। जब हमलोग मीटिङ्गके स्थानपर पहुँचे तो हमें केवल एक सज्जन मिले, जो स्यालदह स्टेशनसे उतर कर वहाँ पहुँच पाये थे। लेकिन डाक्टर साहब मीटिङ्ग करने पर तुले हुए थे। उन्होंने चपरासीको भेजकर सुकिया स्ट्रीटसे डाक्टर विभूतिभूषणदत्तको बुलवाया। डाक्टर दत्त बड़ी

कठिनाईसे एक रिकशापर चढ़कर पहुँचे। दो सज्जन इसी प्रकार और बुलाये गये और मीटिङ्ग हुई।

१९२७से लेकर १९३४तक प्रत्येक वर्ष गर्मीकी छुट्टियोंमें मैं डाक्टर साहबके साथ कलकत्तेमें उन्हींके मकानमें रहा करता था। उन दिनों रोज़ शामको घंटा या दो घंटेतक इधर-उधरकी बातें हुआ करती थीं। उस समय वे गणितकी बातें नहीं करते थे। वे अपने मित्रोंकी, घरकी, अपने विद्यार्थी अवस्थाकी, समाचार-पत्रोंके लेख आदि विविध विषयोंपर बातें करते थे। उस समय वे बिलकुल भूल जाते कि वे गणितशास्त्रके डाक्टर हैं। उस समयकी उनकी सरलता मुझे अबतक नहीं भूलती। उनमें बालकोंकी तरह एक लौकिक स्वाभाविकता रहती थी।

उनकी किताबें और काग़ज़-पत्र उनके टेबुलपर या जमीनपर इधर-उधर बिखरे रहा करते, परन्तु वे नौकरको अपने कमरेकी सफाई नहीं करने देते थे। मैंने कई बार उनसे कहा कि डाक्टर साहब, आपका कमरा अस्तव्यस्त दशामें है, इसे नौकरको साफ कर लेने दीजिये। उन्होंने उत्तर दिया—'बाबू साहब—वे मुझे बाबू साहब कहके पुकारा करते थे—आप नहीं समझते। अगर मैं नौकरको इस कमरे में घुसने दूँ तो यदि जरूरत पड़नेपर जो किताब या कागज तलाश करना चाहूँ, वह मुझे नहीं मिलेगा।' मैं चुप रह गया। कुछ दिनों बाद उन्होंने किसी मित्रको लिखा कि तुमने एक पिछले पत्रमें ऐसा लिखा था। उस मित्रने इस बातसे इनकार कर दिया, इसके बाद कई दिनों तक वह उस पत्रको खोजते रहे। एक दिन यकायक वह मेरे कमरेमें आये और कहने लगे'—बाबू साहब, इसी वास्ते मैं नौकरको अपने कमरेमें नहीं घुसने देता। देखिये, वह पत्र मिल गया। अगर मैं नौकरको कमरा साफ करने देता, तो यह पत्र कभी नहीं मिलता। यह मेरा strong point है। उस समय वे वैसे ही प्रसन्न थे, जैसे एक बालक कोई खिलौना पाकर प्रसन्न होता है। उस समय उनका सहज बालवत् विह्वल हो जाना मुझे अबतक स्मरण है।

जैसा पहिले कह चुका हूँ डाक्टर साहबको रिसर्चके कामसे बड़ा प्रेम था। उनका जो शिष्य रिसर्च नहीं करता उससे वे बड़े असन्तुष्ट रहा करते थे। उनको इस बातकी शिकायत थी कि उनके अनेक शिष्य नौकरी मिलजाने पर रिसर्चका काम छोड़ देते हैं। डाक्टर साहब गणितशास्त्रके सच्चे प्रेमी थे और इसमें कोई अत्युक्ति न होगी यदि मैं यह कहूँ कि हमारे देशमें जो कुछ गणितशास्त्रमें खोज हो रही है, उसका अधिकतर श्रेय डाक्टर साहब के व्यक्तित्वको है। जब मुझे डी० एस-सी की डिगरी मिल गयी थी उसके बादकी बात है। डाक्टर साहब लखनऊ आये थे। उन्होंने मुझसे कहा—"बाबू साहब, मैं पटनेसे आता हूँ। वहाँ मेरी भतीजीने मुझसे कहा कि मेरे शिष्य नौकरी मिलने पर रिसर्चका काम छोड़ देते हैं। अभाग्यवश यह बात बहुत अंशोंमें सच है। क्या तुम भी अब डी० एस-सी० और नौकरी मिलनेके बाद रिसर्चका काम छोड़ दोगे?'"

जब मैंने उनसे वादा किया कि मैं रिसर्चका काम नहीं छोड़ूँगा, तो वे बहुत प्रसन्न हुए। और इस वचनकी पूर्ति में इन्होंने मेरी सहायता भी बहुत की। वे मुझे गर्मीकी छुट्टियोंमें कलकत्ता आनेके लिये बड़ा आग्रह करते और कलकत्तेमें मैं उन्हींके मकानमें ठहरा करता था। डाक्टर साहबके साथ इतने दिनोंतक इस प्रकार रहनेका बहुत कम शिष्योंको अवसर मिला है, क्योंकि वह बहुत बड़े एकान्तप्रेमी थे।

डाक्टर साहब बड़े स्वाभिमानी और स्वातंत्र्य-प्रिय व्यक्ति थे। वे मुझसे बराबर कहा करते थे—'मनुष्यको कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिससे वह अपने आपको छोटा और हीन समझने लगे। जब मैं गवर्नमेंटसर्विसमें था तो नियमानुसार सालमें एकबार कमिश्नरसे मुझे मिलने जाना पड़ता था। मैं कमिश्नरके पास जाता और उनसे साफ-साफ ये बातें कहता—'नियमानुसार मैं आपसे मिलने आया हूँ। मुझे और कुछ नहीं कहना है। क्या मैं जा सकता हूँ?' मेरा यह नियम था कि यदि और कहीं कमिश्नर से मुलाकात होती, तो मैं पहले उन्हें कभी नमस्कार नहीं करता।"*

* शुरू-शुरू नौकरीकी एक घटना यहाँ उल्लेख्य है। आप नैनीतालमें गरमीकी छुट्टियोंमें खासतौरपर किसी कामसे संयुक्तप्रान्तके उस समयके छोटे लाट सर जेम्स-डिग्स-लाटूशसे मिलने गये। समागम अच्छा नहीं हुआ। लाट साहब इस विद्वान्के स्वाभिमानको ठेस लगानेवाली बात कह बैठे। ये उनसे नाराज होकर उठ आये। फिर कभी किसी लाटसे जाकर मिलनेका नाम न लिया। इतना ही नहीं।

वह हृदय-भेदी समाचार

[पं० रामधरमिश्र, एम्०ए०, लेक्चरर, विश्वविद्यालय, लखनऊ]

क्टर साहब अभीतक नहीं आये!'

'गाड़ी लेट हो गयी होगी, आते होंगे!'

लगभग दो घंटे बाद—

'दस बज गये, गाड़ी साढ़े सात बजे आती है, अभीतक आये नहीं!'

'मालूम होता है कानपुरमें रुक गये और अब शायद ११ बजेकी गाड़ीसे आवें।'

'लिखा तो सबेरेकी ही गाड़ीसे आनेको था!'

'लिखा तो था, सम्भव है आगरेमें गाड़ी न पकड़ पाये हों।'

'यह कैसे मान लें?'

इसके दो घंटे बाद—

'अब १२ भी बज गये अभीतक आये नहीं।'

'जान पड़ता है सीधे बनारस चले गये नहीं तो अब तक आ जाते।'

'यह कैसे हो सकता है? जब यहाँ आनेको लिखा है तो आयेंगे ज़रूर।'

'आनेको तो सबेरेकी ही गाड़ीसे लिखा था?'

'यही तो समझमें नहीं आता कि अब आनेको लिखा है तो आये क्यों नहीं। गाड़ी इतनी लेट भी तो नहीं हुआ करती।'

१५ मिनट बाद—

'बाबूजी! बाबूजी! डाक्टर साहबको कल शामको

उनकी स्मरण-शक्ति बड़ी अद्भुत थी, जिसको कभी एक बार देख लेते उसका नाम दस वर्षोंके बाद भी नहीं भूल सकते। मुझे अच्छी तरह स्मरण है। उन्होंने मुझसे एक दिन कहा—"बाबू साहब, मेरी स्मरण-शक्ति जो इतनी अच्छी है उसमें एक बड़ी भारी बुराई भी है। जिन लोगोंने मेरा नुकसान पहुँचाया है या मेरे साथ दुर्व्यवहार किया है उनको मैं भूल नहीं सकता। परन्तु मुझमें अब धीरे-धीरे बहुत परिवर्तन हो गया है। अब मुझे थोड़े दिन और जीवित रहना है। मेरी यह हार्दिक इच्छा है, कि जो कुछ लोगोंने मेरे साथ बुराइयाँ की हैं उन सभोंको मैं भूल जाऊँ।"

उसके दूसरे ही दिन आप नैनीतालकी सड़कपर घोड़ेपर सवार चले जा रहे थे। सामनेसे पैदल टहलते हुए लाट साहब दिखाई पड़े। डाक्टर साहबने उनकी ओरसे निगाह फेर ली और सवार ही ऐसे उदासीन भावसे निकल गये, मानों कुछ हुआ ही नहीं। लाट साहबको अपने मातहतसे साधारणतया मिलनेवाला सम्मान न मिला। वह घोड़े परसे उतरकर उन्हें सलाम करते, यह तो दूर रहा, उन्होंने उनकी तरफ देखा भी नहीं, और बराबरीका अभिवादन भी न किया। —रा० गौ०

मैंने डाक्टर साहबको इन विचारोंको कार्यरूपमे परिणत करते देखा है। बहुत-से लोग जो उनके घोर विरोधी थे। उनकी समय पड़नेपर उन्होंने बड़ी सहायता की। डाक्टर साहब अपने अन्तिम समयमें बड़े परिवर्त्तित व्यक्ति थे, अध्ययन-अध्यापनके समयमें उन्होंने अपने कुल परिवारको बिलकुल भुला दिया था। परन्तु मरनेके कुछ वर्षों से पहले उन्होंने अपने दो भाइयोंके सुखके लिये जो कुछ कर सकते थे वह किया। अपने छोटे भाईकी पुत्रीको शादी जस्टिस सर ज्वालाप्रसादके भतीजेके साथ बड़े धूमधामसे की। उसमें उन्होने बहुत खर्च भी किया। अपने भतीजेकी शिक्षाका प्रबन्ध किया।

डाक्टर साहबकी इधर धर्मकी ओर बड़ी अभिरुचि हो चली थी। वे अपने प्रिय शिष्य डाक्टर विभूति-भूषणदत्तसे, जिन्होंने वैराग्य धारणकर लिया है, बराबर कहा करते, कि हार्डिज प्रोफेसरी छोड़नेके बाद मैं भी संन्यास धारण करूँगा।

परन्तु वह तो वस्तुतः हृदयसे अपनी छात्रावस्थासे संन्यासी थे। उन्हें वैराग्यका रूप धारण करनेकी जरूरत न थी। उन्हें तो निष्काम कर्म्म करते हुए शरीर त्यागना था!

लकवा मार गया, यह देखिए 'लीडर'में निकला है।'

ऊपरकी बातचीत लखनऊके एक प्रोफेसर जिनके यहाँ डाक्टर साहब हमेशा ठहरते थे और उनके पुत्रके बीचमें हुई थी। डाक्टर साहबने इन्हें चार दिन पहले सूचना भेज दी थी कि वे १० मार्चको सबेरे लखनऊ पहुँचेंगे। डाक्टर साहब अपने प्रोग्रामके इतने पक्के थे, कि मृत्यु ही उसमें कुछ परिवर्तन ला सकी। यदि वे जीवित रहते तो १० मार्चकी प्रातःकाल लखनऊ अवश्य पहुँचते। उनके जीवनकी सबसे विशेष बात यही थी, कि अपने समयके बड़े पाबन्द और अपनी बातके बड़े पक्के थे। एक-एक मिनटका ध्यान रखते थे। यह कहना कठिन है, कि उन्हें गणितसे अधिक प्रेम था या अपने समयसे। लेकिन इतना निश्चय है, कि जिन लोगोंका गणितसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं था उनसे बातचीत करनेमें डाक्टर साहबको मानसिक कष्ट होता था। पढ़ने-लिखने और अपने काममें इतने व्यस्त रहते थे, कि भाई-भतीजोंसे भी हफ़्तों बात नहीं होती थी।

× × ×

कलकत्तेके समवाय मैन्शन्सकी चौथी मंज़िलपर एक फ्लैटमें ठिगने क़दके कोई हिन्दुस्तानी रहते थे। अड़ोस-पड़ोसमें किसीसे उनसे बातचीत नहीं होती थी। शामको कभी-कभी एक-दो व्यक्ति उनके पास आया करते लेकिन किसीने कभी किसी स्त्रीको उस फ्लैटमें जाते नहीं देखा। अन्दर जानेसे दिखाई पड़ा, दो कमरे बिलकुल खाली हैं। एक कमरेमें तीन अलमारियाँ और दो तख़्त किताबों और धूलसे भरे हैं। चौथे कमरेमें किताबोंकी दो अलमारियाँ, एक लोहेका पलंग जिसपर नाममात्रको बिछौना पड़ा है, एक मेज़, एक बकस, एक सूटकेस, एक अटैची, कुछ कपड़े और दो-तीन कुर्सियाँ हैं। बरामदेमें भी तीन-चार कुर्सियाँ हैं। एक कुर्सी ख़ाली है बाक़ी सबपर किताबें रक्खी हैं। एक छोटीसी कोठरी है जिसमें नौकरका सामान है। इधर-उधर ताज़े अखबारोंके कागज बिखरे हैं। बस इतना ही सामान था। हाँ, रसोईखानेमें चार-पाँच बर्तन और गुस्ल-खानेमें एक बाल्टी और एक गिलास थी।

यह है डा० गणेशप्रसादका २० समवाय मैन्शन्स कारपोरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता जिसका सवासौ रुपया किराया था और जिसका एक कमरा भी डाक्टर साहबके लिये बड़ा था। हाँ, उसके बरामदेमें एक सिरेसे दूसरे सिरेतक चक्कर लगाकर वे घूमनेकी क्रिया कर लिया करते थे और यह बात तबकी है जब वे कलकत्ता यूनीवर्सिटीके गणितके सबसे बड़े प्रोफेसर थे। न बिजलीकी रोशनी थी न पंखा। १५ रुपये मासिकपर श्रीनिवास नामका एक बंगाली नौकर था जो खाना बनानेके सिवाय उनकी डाक और लाइब्रेरीसे उनके लिए किताबें ले आया करता। किताबें लाना उसके लिए ज़्यादः ज़रूरी था, भोजन बनाना कम। अक्सर किताबें लानेमें देर हो जानेसे डाक्टर साहबको एक-दो बजे खाना मिलता था और खाना भी क्या? अपने विद्यार्थियोंकी खातिरमें उनके पैसे ज़्यादा खर्च होते थे, अपने भोजन-पर कम।

हाँ, तो कई वर्ष कलकत्तेमें रहनेके बाद भी डाक्टर साहबने वहाँ क्या-क्या देखा? कार्यवश एक स्थानसे दूसरे स्थान जानेमें टैक्सीवाला जिन-जिन सड़कोंपर ले गया बस वे सड़कें ही उन्होंने देखी थीं, लेकिन देखीं ऐसी कि उनके नाम और नकशा आप कभी भी उनसे पूछ ले सकते थे।

'डाक्टर साहब! आपने 'विक्टोरिया मेमोरियल' देखा है?'

'मैंने कभी 'ताज' भी नहीं देखा।'

आये दिन आगरे जानेपर भी जिस शख़्सने कभी 'ताज' नहीं देखा क्योंकि उसके पास समय नहीं होता था, वह कलकत्तेमें एकान्तवास करके दिन-रात पढ़ने-लिखनेमें व्यस्त रहकर केवल उन्हीं लोगोंसे मिले जिन्हें गणितसे कुछ प्रेम हो, तो क्या आश्चर्य!

× × ×

"Panditji! Will you kill your Principal?" * कहते हुए श्रीविभूतिभूषणदत्त (जो अब हिन्दू-गणित-शास्त्रके इतिहासज्ञ डा० विभूतिभूषण-दत्तके नामसे विख्यात हैं) काशी-विश्व-विद्यालयके जन्म-दाता और सर्वेसर्वा पं० मदनमोहन मालवीयके कमरेमें घुसे। बात यह थी कि कालेजमें कमरोंकी कमी थी, और समझमें नहीं आ रहा था कि कालेज कैसे चले। डाक्टर गणेशप्रसादजीने जो विश्वविद्यालयके सर्वप्रथम प्रिंसि-पल थे 'शिफ्ट सिस्टम'से काम चलानेकी स्कीम पेश

* "पंडितजी! क्या आप अपने प्रिंसिपलके प्राण ले लेंगे?"

की। दिनभर पढ़ाई होती थी बीचमें केवल आध घंटेका अवकाश होता था। डाक्टर साहब ६ बजे सबेरे अपने घरसे फ़िटनपर चलते, पौने सात बजेकी प्रार्थनामें नियमपूर्वक सम्मिलित होते और रात्रिको कहीं आठ नौ-बजे फ़ुरसत पाते। यद्यपि कालेजकी पढ़ाई ४—४-३०पर समाप्त हो जाती थी। उस आध घंटेके अवकाशमें वे अपने साथ लाई हुई गिनी-गिनाई पूड़ियाँ आलूकी सूखी तरकारीके साथ खा लिया करते। एक छोटेसे कमरेमें उनका दफ़्तर था जिसमें एक मेज़ और तीन-चार मामूली कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। जब कभी उन्हें थकावट मालूम होती एक दूसरी कुर्सीपर पैर रखकर तनिक विश्राम कर लेते। डा० दत्त जो कलकत्तेसे डाक्टर साहबके पास रिसर्च करने आये हुए थे, उनके कठोर परिश्रमको देखकर अपनेको रोक न सके और मालवीयजीके पास गये।

डाक्टर साहबको विश्राम देनेका कोई उपाय ही न था, केवल इतना किया जा सकता था कि एक-दो आराम कुर्सियाँ, सोफ़ा, तख़्त वग़ैरह उनके कमरेमें रख दिये जायँ। कमसे कम पीठ सीधी करनेके साधन तो हों चाहे समय न हो। मालवीयजी ने इस कामके लिए तुरन्त ४०० रुपयेके ख़र्चकी इजाज़त देदी।

उन्हीं दिनोंकी बात है जब साधारण जनताको डाक्टर साहबकी असाधारण स्मरण शक्तिका परिचय मिला। विश्व-विद्यालयके आर्ट्स कालेजमें लगभग एक हज़ार विद्यार्थी पढ़ते थे। कालेजमें नाम लिखानेके समय प्रत्येक विद्यार्थीके लिए प्रिंसिपलसे मिलना अनिवार्य था। बस इतनाही सम्पर्क यथेष्ट था कि बादको जब कभी उनको कोई विद्यार्थी मिलता तो वे उसका नाम लेकर उसके घर आदिकी कुशल पूछते। यों तो जो विद्यार्थी उनके पास रिसर्च करते थे वे जानते हैं कि गणितके किसी भी विषयपर किसने कब-कब किस-किस जनरलमें लेख लिखे हैं इसकी वे जीवित 'इन्साइक्लोपीडिया' थे।

Calcutta
3. 3. '35
My dear Mr. Misra, I am glad to learn from your letter that the marriage ceremonies have been happily ended. I leave Calcutta on the 5th in the night, reach Patna on the 6th, Benares on the 7th, Alld. on the 8th, Agra on the 9th. On my return journey from Agra I may be at Lucknow for a few hrs. on the 10th.

× × ×

Calcutta
3-3- '35

My dear Mr. Misra,

.........I leave calcutta on the 5th. in the night, reach Patna on the 6th., Benares on the 7th., Alld. on the 8th., Agra on the 9th. On my return journey from Agra, I may be at Lucknow for a few hrs. on the 10th.......

With kind regards

Yours sincerely

G. PRASAD.

पहुँचूँगा। आगरेसे लौटते हुए १०को कुछ घन्टोंके लिए शायद मैं लखनऊमें भी ठहरूँ।...........

स्नेह

आपका

जी० प्रसाद

यह पत्र उन्होंने अपनी मृत्युसे ६दिन पहिले ५८वर्षसे कुछ ऊपरकी अवस्थामें लिखा था। इस प्रकारका सफ़र उनके जीवनमें बहुधा हुआ करता था। रेलके सफ़रमें भी अपना काम किया करते। हाँ, वृद्धावस्थामें भोजन करनेके बाद उन्हें विश्राम करनेकी आवश्यकता होने लगी थी, इसीसे लखनऊ, आगरा वग़ैरहकी कमेटियोंकी बैठकोंमें भूखे पेट

INDIA POST CARD

WRITING SPACE

I suggest that you should meet me at Benares and then we shall decide on the date of your return to Ld. My leave begins on the 5th March & expires after a month.
With kind regards
Yours sincerely
G. Prasad

LUCKNOW DELY. 4 MAR. ADDRESS

POSTAGE HALF 1/2A ANNA

Ram Dhar Misra, Esq. M.A.,
15, Hewett Road,
Lucknow (U.P.)
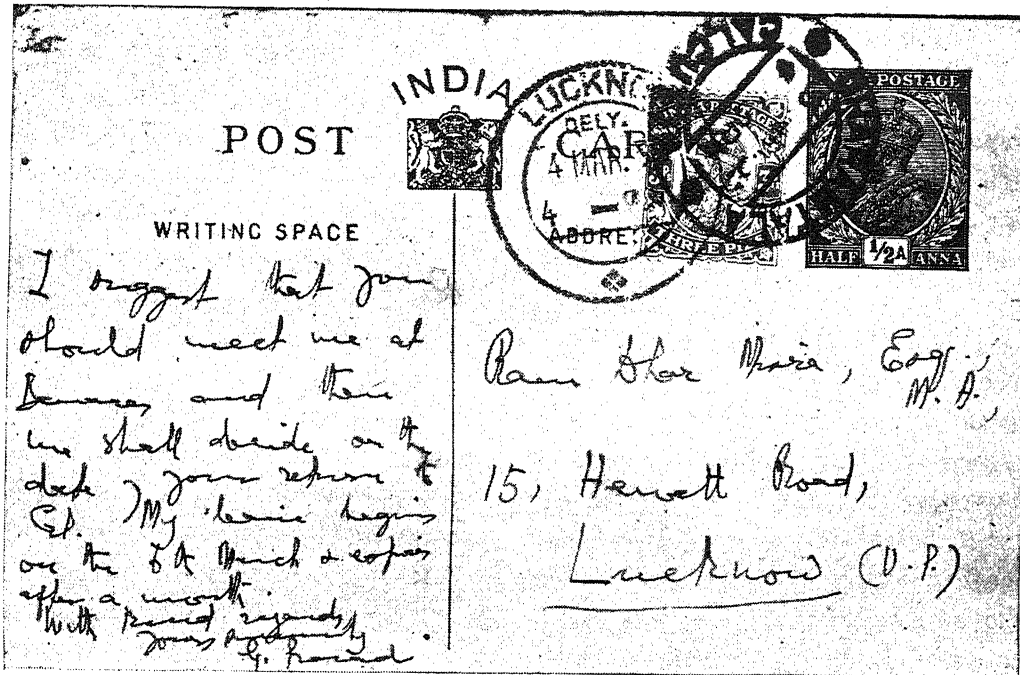
कलकत्ता,
३-३-३५

प्रिय मिश्रजी,

............मैं कलकत्तेसे ५वीं रात्रिको चलकर ६को पटना, ७को बनारस, ८को इलाहाबाद और ९को आगरा

ही जाते और प्रत्येक बैठककी समाप्तितक उसमें योग देते। जिस कमेटीके मेम्बर होते उसमें शामिल होना अपना कर्तव्य समझते। भोजनके बाद विश्राम न मिलनेसे कुछ बीमारसे पड़ जाते। ९मार्चको आगरा यूनीवर्सिटीकी मीटिंगमें खाना खाकर ही गये थे, ऐसा होटलवाला कहता है।

सम्भव है यही बात हो।..............लेकिन हफ़्तों सफर करनेके बाद भी आते तो अपने नियमित प्रोग्राममें कोई अन्तर न आने देते।

× × ×

"हलो, पंडितजी ! आप कब निकले ?" कहते हुए ५७वर्षके वृद्ध डा० गणेशप्रसाद बनारसकी लालकोठीमें बरामदेसे फाटककी ओर लपके। जबतक मैं साइकिलसे उतर फाटक खोलकर अन्दर घुसूं तबतक डा० साहबने आकर दाहिना हाथ झकझोर दिया और हाथ पकड़े-पकड़े अन्दर ले चले। वे छोटे बड़े सभीसे हाथ मिलाते थे और हाथ मिलानेकी भी उनकी कई श्रेणियाँ थीं तथा भिन्न-भिन्न प्रकारसे 'शेक हैन्ड' हुआ करते थे। अस्तु।

ढाई घण्टेकी निरन्तर बात-चीत करनेके बाद उन्होंने कहा—'३५०) की एक पोस्ट निकली है, अर्ज़ी भेज दो मैं पूरा प्रयत्न कर दूँगा।' मैंने धन्यवाद देकर कहा—'डाक्टर साहब ! अभी तो नहीं कर सकूँगा।' एक घण्टा इधर-उधरकी बातचीत होते-होते उन्होंने पूछ दिया कि रिसर्च करनेकी भी कुछ हवस मनमें बाक़ी है। मुझे इस प्रश्नकी आशा नहीं थी, फिर भी साहस करके उत्तर दिया कि अभी तो आन्दोलन चल ही रहा है। वे प्रसन्न होकर बोले—'खैर, जब फ़ुरसत मिले चले आना, You are always welcome.* और वास्तवमें अवज्ञा-आन्दोलन स्थगित होनेपर जब मैं उनके पास फिरसे रिसर्च करने गया तो उनका इतना स्नेह और आदर पाया जितना जीवनमें किसीसे नहीं पाया। कभी-कभी कहा करते कि मैं तो अब वृद्ध हो गया, जीवनक्रम स्वभावानुसार चल रहा है, अपनी आदतें बदल नहीं सकूँगा। महात्माजीके भक्त थे आपने हरिजन आन्दोलनके सम्बन्धमें महात्माजी जब काशी आनेको थे, तब डा० साहबने बिना माँगे हुए १०१) थैलीके लिए भेजे थे। कपड़ोंमें पक्के स्वदेशी थे। कोई ला देनेवाला होता था तो खद्दरका भी बड़े शौक़से प्रयोग करते थे।

• • •

डाक्टर साहबके स्वभावकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि बड़े स्वतन्त्र प्रकृतिके थे। जिस बातको ठीक समझते उससे उन्हें कोई प्रलोभन, कोई दबाव डिगा नहीं सकता था। एक बार किसी कार्यवश नैनीतालमें लाटूशसे जो इस प्रान्तके 'लेफ्टिनेन्टगवर्नर' थे † मिलने गये। वह कुछ बुरी तरह पेश आया ; इनके स्वाभिमानको धक्का पहुँचा। आपके वहाँ से चले आनेके बाद लाटूश साहब मोटरपर कहीं गये। डा० साहब घोड़ेपर चढ़े चले आते थे कि उन्होंने देखा सामनेसे लाटूश साहब पैदल चले आ रहे हैं। न तो वे घोड़ेपरसे उतरे न सलाम किया। 'लेफ्टनेन्ट गवर्नर' का चेहरा तमतमा उठा और डा० साहबकी तरफ घूरते रहे। विशेषता यह थी कि डाक्टर साहब उस समय सरकारी नौकरीमें मामूली असिस्टेंट प्रोफेसर थे।

• • •

लखनऊ-यूनिवर्सिटीके प्रोफेसर डा० लक्ष्मीनारायणके बँगलेमें एक अँगरेज़ घुसा और उसने किसीसे पूछा कि क्या डा० गणेशप्रसाद यहाँ ठहरे हुए हैं ? जब डाक्टर साहबकी इजाज़तसे वह इनके पास लाया गया तो "हलो मिस्टर मैकेंज़ी" कहकर उसका स्वागत किया गया। यह थे इस प्रान्तके 'डिरेक्टर आव् एजुकेशन'। डाक्टर साहबने ढाई हज़ार रुपयेके नोट एक लिफ़ाफ़ेमें रखकर उन्हें देते हुए कहा, अब साढ़े बाइस हजार रुपया हो गया और लड़कियोंको दस-दस रुपयेके वज़ीफे मिल जायँगे। स्कूलकी लड़कियोंके वज़ीफेके लिये बीस हज़ार देनेके बाद जब उन्हें यह मालूम हुआ कि वजीफे १०-१० रुपयेसे कमके रहेंगे तो ढाई हज़ार रुपया और दे दिया।

डा० साहब न मालूम कितने विद्यार्थियोंको सहायता दिया करते थे। विद्यार्थियोंको ही नहीं अन्य ग़रीबोंको भी, लेकिन इस प्रकारका दान सब गुप्त होता था।

× × ×

'डाक्टर साहब ! आपको चेतावनी मिल गयी है अब कुछ भगवद्-भजन किया कीजिए। कहीं इस प्रकार रेलके नीचे पड़कर आजतक कोई बचा है ?' संन्यासी डा० विभूतिभूषणदत्तने बड़े गम्भीर स्वरमें कहा।

साढ़े तीन वर्ष पहिलेकी बात है। रात्रिको ढाई बजेकी एक्सप्रेससे डा० साहब आगरेसे बनारस पहुँचे। उतरनेमें ज़रा देर हो गई कि गाड़ी चल दी। सतर्कता पूर्वक उतरनेमें, ठिगने क़दके आदमी, पैर ज़मीनमें नहीं लगा। गाड़ीकी

* "तुम चले आना तुम्हारे लिए दरवाज़ा हमेशा खुला रहेगा।"

† उन दिनों यहाँ गवर्नर नहीं होता था।

रफ़्तार बढ़ी। एक हाथमें रेलका डन्डा, दूसरेमें छड़ी, एक पैर रेलके पावदानपर और दूसरा पैर ज़मीनकी खोजमें। जब प्लैटफ़ार्मपर पैर पहुँचा तो दूसरा पैर संभालनेमें गड़-बड़ रहा कि निर्बल शिथिल हाथसे रेल छूट गई और वे नीचे आ गिरे। नीचे कहाँ? रेल और प्लेटफ़ार्मके बीचमें। जब जंजीर खींचकर गाड़ी रोकी गई और डा० साहब बाहर निकाले गये तो उन्होंने ईश्वरको धन्यवाद दिया और घर चल दिये। कहते थे ईश्वरको अभी और जीवित रखना मंजूर था नहीं तो ऐसी जगहसे अछूता निकल आनेके और क्या मानी हैं। ईश्वरभक्त गणेशप्रसाद धर्मरत भी हो गए। रात्रिके अंधेरेमें यदि आप देख सकते तो उन्हें माला फेरते देख लेते। तुलसीदासकी रामायण भी पढ़वाकर सुनते थे।

× × ×

डाक्टर साहब विलायतसे लौटकर आए तो इनके पिताजीने प्रायश्चित कराके एक प्रीति भोज दिया। नव-युवक-दलने जिसके नेता आजके राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद थे भोजन किया लेकिन कुछ वृद्धोंने नहीं। डा० साहब दहल गए। उसके बाद रहन-सहनमें वे किसी कट्टर कायस्थसे कम न थे। उनकी एकमात्र सन्तान आठ वर्षकी लड़की परदेमें रहने लगी। चौदह वर्षकी आयुमें वह बेचारी क्षय रोगमें समाजकी रूढ़ियोंकी भेंट चढ़ गयी। डाक्टर साहबने यह भी सहा लेकिन उनके हृदयमें जो वेदना, जो कलक, जो आग भर गयी उसका अनुमान बिरले ही कर सके होंगे। अपनी पुत्रीकी स्मृतिमें 'कलकत्ता मैथमेटिकल सोसाइटी' को १४००) रुपया देकर हिन्दू गणित शास्त्रकी इतिहास संबन्धी खोजकेलिए 'कृष्णकुमारी-स्वर्ण-पदक'की स्थापना करके उन्हें कुछ शान्ति मिली थी।

× × ×

'नैशनल इंस्टिट्यूट आव साइंसेज़ आव इंडिया'का विधान बनानेकेलिए कमेटीकी मीटिंग हो रही थी। डा० साहब उसमें सभापति थे। एक मेम्बरने बिलकुल ग़लत बातपर बहस करना शुरू कर दी। डा० साहबने बड़ी सहूलियतसे उन्हें समझाना चाहा पर वे न माने। जब वोट लिए गए तो उन सदस्य महोदयको दूसरा वोट भी न मिला। इसपर टिप्पणी करते हुए डा० साहबने एक बार कहा था कि अब हम बहुत शान्त हो गये हैं, अपनी युवावस्थामें बड़ी जल्दी उत्तेजित हो जाते थे। पूछनेपर कि इसका क्या मतलब कहने लगे यही कि गलत बातको क़तई बर्दाश्त न करना, ज़ोरसे बोल देना, किसीकी परवाह न करना। उनके इस स्वभावने उनके कई विरोधी भी बना दिये। वे भी जिससे एक बार ख़फ़ा हो जाते उसे क्षमा नहीं कर पाते थे। लेकिन वृद्धावस्थामें उनके स्वभावमें कुछ परिवर्तन आ गया था। अपनी ग़लती होती तो स्वयं क्षमाप्रार्थी हो जाते। फिर भी बड़े ज़िद्दी थे उनकी ज़िद ही तो थी कि बनारस न छोड़ सके।

× × ×

"सुनो भाई। 'पायोनीयर' में ख़बर आयी है कि डाक्टर गणेशप्रसाद आगरेमें बहुत सख्त बीमार हैं, लकवा मार गया है।" कहते हुए डा० अवधेशनारायण सिंह ९मार्चकी रात्रिको दस बजे मेरे कमरेमें घुसे। कुछही देर पहिले उन्हें यह समाचार मिला था जिसे लेकर तांगेपर बैठकर मेरे यहाँ पहुँचे। बस तुरन्त निश्चय हुआ। सबेरेकी गाड़ीसे आगरा चल दिये।

"तुम्हें कब खबर मिली" कहते हुए डा० गोरखप्रसाद-ने कानपुर स्टेशनपर हम लोगोंका स्वागत किया। पटनेसे डा० गणेशप्रसादकी भतीजी और उनके पति बाबू परशुराम प्रसाद ऐडवोकेट बनारससे प्रो० चंडीप्रसाद, डा० साहबका भतीजा मोती बाबू, और डा० साहबका नौकर, इलाहाबादसे डा० गोरखप्रसाद तथा डा०बद्रीनाथप्रसाद उसी एक्सप्रेससे दौड़े चले, आ रहे थे जिसपर हम लोगोंको कानपुरमें सवार होना था। जिसको जहाँ ख़बर मिली वह वहाँसे तुरन्त चल दिया। मार्गभर डा० साहबके विषयमें ही बातचीत होती रही। किसीने भी यह संदेह प्रकट नहीं किया कि हम लोगोंके पहुँचनेतक डा० साहब शायद न रहें। किसीको पता न था कि कल रात्रिको ७बजेही वे इस संसारसे चल दिए। आगरा फोर्ट पहुँचे। वहाँ दुःखद समाचार मिला। 'ताज'के निकटके घाटपर उनका शव रक्खा था। आगरा यूनीवर्सिटीके रजिस्ट्रार पं० श्यामसुन्दर शर्माने उनके किये जो हो सका सब किया। छः छः डाक्टर बुलाए, इधर-उधर तार दिए, अस्पताल पहुँचाया। शवका जलूस बनाकर घाट लाये। वहाँ बैठे-बैठे दिनभर प्रतीक्षा करते रहे कि बनारस-इलाहाबादसे कोई आ जाय।

डाक्टर गणेशप्रसादजी की अन्तिम घड़ियाँ

[श्रीमान् पंडित श्यामसुन्दर शर्म्मा, एम्. ए., रजिस्ट्रार, आगरा-विश्वविद्यालय]

विद्वत्समाजको डाक्टर गणेशप्रसादजीका परिचय देना मानों सूर्यको दीपकसे दिखाना है। और मेरी जैसी बल-बुद्धिके व्यक्तिके लिए तो—जो गणितशास्त्रका एक अक्षर भी न जाने—यह कार्य दुष्कर ही नहीं वरन असम्भव सा प्रतीत होता है। डाक्टर साहबका देहावसान आगरेमें हुआ था और उनके उपासकोंमेंसे केवल मैं ही उस समय वहाँ मौजूद था। इसलिए "विज्ञान"के सम्पादक महोदय, मेरे प्रिय मित्र श्री रामदासजी गौड़ने मुझे यह आज्ञा दी है कि स्वर्गीय डाक्टर साहबके अन्त समयका हाल "विज्ञान"के पाठकोंके सम्मुख मैं उपस्थित करूँ। तदनुसार यह टूटे-फूटे शब्द आप लोगोंकी सेवामें समर्पित है।

आगरा-विश्वविद्यालयसे डाक्टर साहबका नाता बड़ा पुराना था, बल्कि यों कहना चाहिए कि इस विश्वविद्या-

डा० साहबका १५ वर्षका भतीजा ज़िद करने लगा, शवको बनारस ले जायंगे। उनका वृद्ध नौकर रो दिया "हम इन्हें यहाँ नहीं जलाने देंगे।"
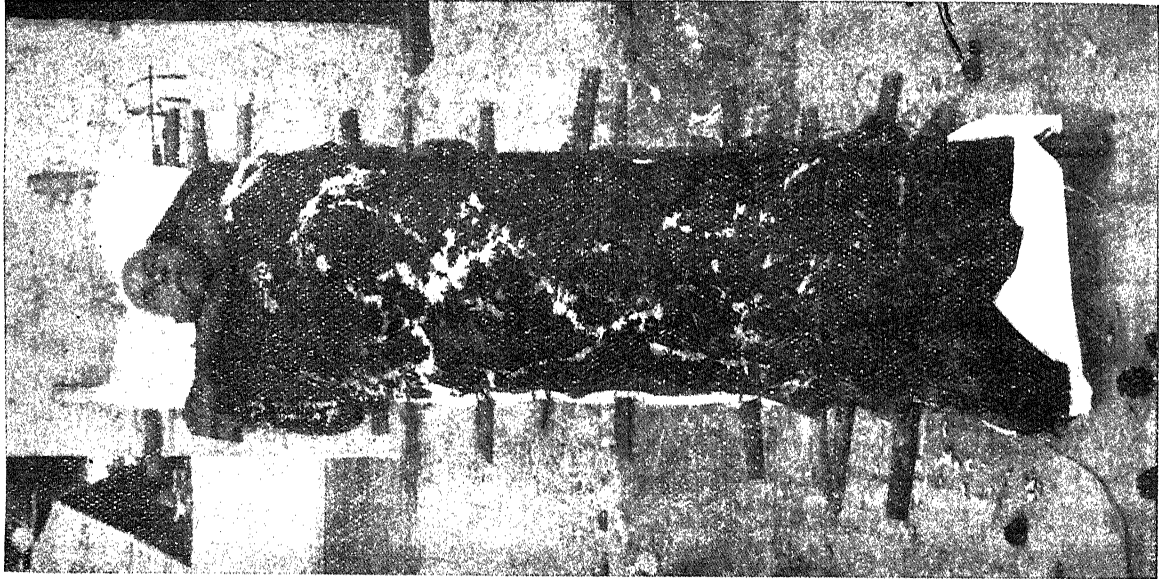
डा० साहबकी धर्मपत्नी जब वे विलायत नहीं गये थे तभी स्वर्ग सिधार गयीं थीं। उनके कोई लड़का नहीं था। एक लड़की थी वह भी नहीं रही। अपने शिष्योंसे कहा करते तुम्हीं लोग हमारे लड़के हो। विधिका बिधान, उनकी अन्त्येष्टि क्रियामें उनके बहुतसे लड़के पहुँच गये थे।

तीसरे दिन सबने सुना डाक्टर गणेशप्रसाद अब इस संसारमें नहीं हैं। सबने समझा देशका सबसे बड़ा गणितज्ञ उठ गया, सादगीकी एक मूर्ति चली गयी, स्वाभिमानकी सजीवता नष्ट हो गयी, प्रान्तका एक रत्न खो गया। लेकिन भारतीयताके गौरवपर मर मिटनेवाला, सत्यका पुजारी, देशका लाल, एकमहान आत्मा, विद्यार्थियोंका आदर्श, अनन्तकी गोदमें विश्राम लेने चला गया, यह कितनोंने जाना? इसका उत्तर समय देगा।

लयकी नींव डालनेवालोंमेंसे डाक्टर साहब भी एक प्रधान पुरुष थे। सन् १९२५में जब प्रान्तीय लेजिसलेटिव कौन्सिलने आगरा-विश्वविद्यालयको स्थापित किये जानेके प्रश्नपर विचार करनेके लिये एक कमेटी नियुक्त की, डाक्टर साहब उस समय लेजिसलेटिव कौन्सिलके मेम्बर थे, और कौन्सिलकी ओर से उक्त कमेटीके भी मेम्बर चुने गये थे। कमेटीकी रिपोर्टमें आपका बहुत कुछ हाथ था और जब आगरा-युनिवर्सिटी-एक्टके पास होजाने पर सन् १९२७में युनिवर्सिटीके प्रथम सिनेटका चुनाव हुआ तब डाक्टर साहब रजिस्टर्ड ग्रेज्युएटोंकी ओर से सिनेटके मेम्बर चुने गये, और सिनेटसे एकजीक्यूटिव कौन्सिलके मेम्बर चुने गये। तबसे अन्त समयतक अर्थात् ९ मार्च सन् १९३५तक एक वर्ष छोड़कर डाक्टर साहब बराबर सिनेट और कौन्सिलके मेम्बर बने रहे। सन् १९२९में आप बोर्ड आफ इन्सपेक्शनके मेम्बर कौन्सिलकी ओर से नियत किये गये और सन १९३३ तक इस परिषत्के भी मेम्बर रहे। नवम्बर सन् १९३३में आप फेकल्टी आफ़ साइन्सके भी सदस्य चुने गये थे। परन्तु इस परिषत्की एकही मीटिङ्गमें आप उपस्थित रहे। इसके अतिरिक्त समयपर बीसियों ही कमेटियोंके सदस्य निर्वाचित किये गये। कई कालेजोंका निरीक्षण बोर्ड-आफ़ इन्सपेक्शनकी ओरसे आपने समय-समयपर किया। जबसे आगरा युनिवर्सिटीकी परिक्षाएँ स्थापित हुईं, बी. ए, बी. एस-सी. और एम. ए., एम. एस-सी.की परीक्षाओंमें गणितके विषयके प्रश्नपत्रोंका संशोधन निरन्तर प्रतिवर्ष आप ही करते थे। २, ३ वर्षतक एम. ए, एम. एस सी० के परीक्षक भी आप रहे थे।

कमेटियों और कौन्सिलोंपर काम करनेवालोंने अवश्य अनुभव किया होगा कि प्रत्येक सदस्य कमेटीके कार्यके लिए पूरी तैयरी करके नहीं लाता। कुछ लोग शायद पूरा अजेन्डा और तत्सम्बन्धी रिपोर्ट पढ़ ही नहीं पाते। बहुतसे पढ़ लेते हैं तो उन सबपर उतना विचार नहीं करते। कमेटीमें जैसी और लोगोंकी राय होती देखी अपनी भी उसीमें मिला दी! परन्तु डाक्टर साहबके लिए यह कोई नहीं कह सकता। अपने निजी पढ़ने लिखने रिसर्च आदि कार्य को छोड़कर, उनको कितना काम बाहर का रहता था यह सबही जानते हैं। किसी-किसी समय तो डाक्टर साहबको कार्यभारके मारे एक-एक दो-दो दिनतक नहा खानेका अवकाश भी नहीं मिल पाता था। अवस्थाके धर्म और अत्यधिक परिश्रमके कारण शरीर भी कुछ जवाब ही देता जाता था। कभी बुखार तो कभी सरदी तो कभी कुछ बने रहने लगे थे। परन्तु उनके मानसिक बलने और उनके सादा जीवनने सब शारीरिक कठिनाइयोंको जीत रक्खा था। डाक्टर साहबको मैं सन१९१८से जानने लगा था और इस अरसेमें काशी विश्वविद्यालयमें और आगरा-विश्वविद्यालयमें तो—करीब आठ वर्ष—मेरा डाक्टर साहबके साथ अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध रहा था। परन्तु मैंने एक दिन भी यह नहीं देखा कि डाक्टर साहब किसी भी कमेटीमें बिना पूरी तैयारी किये आये हों। तैयारी ही नहीं बल्कि कमेटीमें आनेसे पहिले वे प्रत्येक विषयपर पूरा विचार करके अपना निश्चय भी कर लिया करते थे। यह कभी-कभी बुरा भी होता था, क्योंकि डाक्टर साहब जैसे दृढ़ निश्चयवाले व्यक्तिके लिए फिर अपने निश्चयको बदलना कुछ कठिन भी हो जाता था। परन्तु इतना तो अवश्य कहना पड़ेगा कि कमेटीमें कोई भी सदस्य डाक्टर साहबसे अधिक तयारी करके नहीं आता था। इस तैयारीके साथ यदि आप डाक्टर साहबकी अनुपम योग्यता, असीम परिश्रम असाधारण स्मृति, विलक्षण अनुभव और अद्भुत वाक्चातुरीको मिला लें तो इसमें क्या आश्चर्य था कि जो बात वे चाहते थे कमेटीमें वही हो जाती थीं। जब कोई महत्वका प्रश्न उपस्थित होता तो लोग पूछा करते थे कि डाक्टर साहबकी क्या राय होगी अथवा जब किसी मामलेमें दो दल हो जाते तो लोग समझ लेते थे कि जीत उसी दलकी होगी कि जिसके साथ डाक्टर साहब रहेंगे।

परंतु इस बार-जीतमें डाक्टर साहबका निजा कोई स्वार्थ कभी नहीं हुआ करता था और न वे इन प्रश्नोंको कभी निजी हानि-लाभकी दृष्टिसे देखा करते थे। आर्थिक लाभकी तो स्वयं उनको इस युनिवर्सिटीमें कभी कोई इच्छा ही न थी। जब-जब वे परीक्षक हुए उन्होंने कभी परीक्षा-शुल्क स्वीकार न किया। और भी परीक्षा सम्बन्धी विशेष कार्य्य यदि उनको सौंपा जाता था तो कभी वे शुल्क स्वीकार न करते थे। अकसर वे कलकत्तेसे यहाँ आते थे परन्तु नियमानुसार बनारससे आगरेतकका किरायाही उन्हें मिलता था। प्रश्नपत्रोंके

संशोधनके कार्यके लिए नियमानुसार वे कलकत्तेसे भी आगरे तकका किराया ले सकते थे, परन्तु उन्होंने कभी ऐसा न किया। कलकत्तेसे आगरे तकका किराया चार्ज अवश्य कर लेते थे परन्तु बनारससे कलकत्ते तकका किराया वापस युनिवर्सिटीको दान दे दिया करते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने दो सुवर्ण पदकोंका भी मूल्य (२४००) रुपयेके ३½ फी सदीके कागज) युनिवर्सिटीको दान दिया था। यह दोनों पदक उनकी पुत्री कृष्णाकुमारीके नामसे हैं। एकका नाम कृष्णाकुमारी देवी (सुवर्ण) पदक है जो प्रतिवर्ष आर्ट्स और साइंस की फैकल्टियोंकी परीक्षाओंमें मिलाकर सबसे अधिक नम्बर पानेवाले छात्रको मिलता है। यह पदक अबतक सात बार (सन् १९२८से सन् १९३४तक वितीर्ण किया जा चुका है। दूसरे पदकका नाम कृष्णाकुमारी देवी मेथ मेटिक्स (सुवर्ण) पदक है जो एम०ए० और एम०एस-सी० के अन्तिम वर्षकी (फाइनल) परीक्षामें उत्तीर्ण होने वाले प्रथम छात्रको मिलता है, यदि उसके नम्बर ६० फी सदीसे कम न हों। यह पदक अबतक ६ बार (सन् १९२९ से १९३५ तक) मिल चुका है। डाक्टर साहबका इरादा युनिवर्सिटीको कुछ और भी देनेका था परन्तु दैवगति विचित्र है। वे विचार ही करते रहे कि उनकी संसार-यात्रा ही समाप्त हो गया।

अस्तु यह तो रही आर्थिक लाभकी बात। कमेटीमें सर्वदा उनका ध्येय यही रहता था कि युनिवर्सिटीके गौरव शिक्षाके सिद्धान्त और न्यायकी हानि कभी न होनी चाहिए। चाहे कमेटीमें कोई भी बैठा क्यों न हो, वे किसी बातको सच्चा समझकर उस विषयपर आरूढ़ हो जाते थे तो अत्यन्त निर्भीक रूपसे अपनी बातका प्रतिपादन किया करते थे। ऐसे अवसरोंपर वे अकसर कह भी दिया करते थे कि "गणेशप्रसाद सिवा भगवान्के किसीसे नहीं डरता।" और वास्तवमें ऐसा ही था भी। वे इन मामलोंमें अत्यन्त बेपरवाह थे। कोई उनकी बात सुनकर प्रसन्न होगा या अप्रसन्न, इसका उनको कुछ भी ध्यान न रहता था। मुझे खूब याद है कि कम-से-कम एक दो बार उन्होंके दमसे छात्रोंका जीवन ही परिवर्त्तित हो गया है। एक छात्र एम० ए०में द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुआ था। कुछ दिनों बाद यह मालूम हुआ कि उसके साथ अन्याय हुआ। बस फिर क्या ठिकाना था। डाक्टर साहब उस छात्रको जानते भी न थे। परन्तु न्याय पक्षको लेकर लड़ पड़े और उस छात्रको प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण कराकर माना। इसपर कुछ लोग उनसे नाराज़ भी हुए, परन्तु उनकी इसकी कुछ परवाह न थी। एक-दो बार मुझे याद है, कि सभापतिका गौरव रखनेके लिए वे कौन्सिलमें लड़ पड़े थे और यह उन्हींका दम था कि कौन्सिलके अधिकांश मेम्बरोंके खिलाफ होते हुए भी वे अपने सिद्धान्त पक्षसे न हटे और उस बातको वैसे ही करा लिया जैसा कि वे चाहते थे। इसका यह अर्थ नहीं है, कि वे सर्वदा सभापतिकी रायमें ही अपनी राय मिला दिया करते थे। वे अकसर खूब कड़ी-कड़ी बातें सभापतिको सुना दिया करते थे कि जो बातें कहनेका साहस शायद कोई न करता था, परन्तु युनिवर्सिटीका गौरव और युनिवर्सिटीके नियमानुसार जिसको सभापति बना दिया उसका गौरव बनाये रखना सर्वदा उनका ध्येय रहता था।

गोस्वामीजीके कथनानुसार यद्यपि—"कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहिं सो तस फल चाखा॥ कर्मका नियम विकट और निरपेक्ष है। यद्यपि भगवान समभावसे प्राणिमात्रके हृदयमें विराजमान हैं और राग-द्वेष रहित भी हैं तथापि भक्तोंके हेतु सम-विषम विहार करते हैं। उसी प्रकार डाक्टर साहबका भी—जिन्हें मैं भगवद् विभूति मानता हूँ—अपने शिष्योंके साथ व्यवहार होता था। न्यायपक्षपर होते हुए भी डाक्टर साहबके जो शिष्य थे अथवा जो उनकी दयाके भाजन थे उनपर डाक्टर साहबका स्नेह विशेष रहता था और उनके अपराधोंको वे क्षमा भी कर दिया करते थे। क्षमा ही क्या, वे उनके स्वार्थको अपना स्वार्थ समझकर सदैव उनके योगक्षेमके उपायोंमें चिन्तित रहते थे और उनको किसी प्रकार हानि न पहुँचे इसकी चेष्टा किया करते थे। उत्तर भारतमें कितने नवयुवक होंगे कि जो उनकी चरणसेवा करनेसे इस समय बड़े अच्छे-अच्छे पदोंपर हैं और जिनका जीवन डाक्टर साहबका बनाया हुआ है। मैं अपने जीवनको भी ऐसा ही समझता हूँ और यद्यपि मैंने कभी उनसे गणित नहीं पढ़ा था, तब भी बहुत सी बातोंमें वे मेरे गुरु थे और मेरे जीवनके बनानेवालोंमेंसे वे भी एक महापुरुष थे। डाक्टर साहबको अपने शिष्योंके लिए बहुत ही प्रेम था, वे उनके गौरवको अपना गौरव मानते थे और

आवश्यकता होनेपर उनके लिए आगमें भी कूद पड़ते थे। यह बात अक्षरशः सत्य है। उनका अपने मित्रोंके साथ भी यही हाल था। मैंने सुना है, कि डाक्टर साहब अपने पूर्व जीवनमें बड़े रूखे व्यक्ति थे, परन्तु सन् १९१८से तो—जबसे मैं उनके सम्पर्कमें आया—मुझे इसका अनुभव नहीं हुआ। डाक्टर साहबका स्वभाव बहुत कुछ बदल गया था। जिसके साथ एकबार उनकी मैत्री हो गयी उसको वे निभाते थे। यों तो मैत्री उनकी बड़े आदमियोंसे थी, परन्तु मेरा अनुभव ऐसा हुआ, कि वे अपनेसे छोटोंकी सर्वदा बड़ाई किया करते थे। उनके समाजमें अधिक प्रसन्न रहते थे। जो कुछ डाक्टर साहबसे बनता, उतनी वे अपने मित्रोंकी सहायता कर देते, परन्तु कभी प्रत्युपकारका, बदलेमें किसी भी प्रकारकी सहायताका उनको खयाल भी नहीं रहता था। और वास्तवमें उनका जीवन ही साधुओंकी तरह इस प्रकारका था कि कभी उनको दूसरे से किसी प्रकारकी सहायताकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। आगरेमें जब वे आते तो आगरा होटलमें ठहरते थे और उस होटलके मैनेजर मिस्टर ए० सी० दत्तसे उनका मैत्रीभाव हो गया था। आगरेमें इतने परिचित व्यक्ति होते हुए भी उन्होंने कभी किसीका आतिथ्य स्वीकार नहीं किया। वही आगरा होटल, वही दत्त बाबू और वही डाक्टर साहब, आदिसे अन्ततक मैंने उनको वहीं देखा। इस प्रकार का समरस उनकी बहुत-सी बातोंमें था कि जो महापुरुष का एक लक्षण है।

डाक्टर साहबने काफ़ी धन संचय किया था, परन्तु यह सब धन बड़ी मेहनत और नितान्त शुक्ल उपायों द्वारा संग्रहीत था। इस धनके संचयका कारण भी उनका सादा जीवन था। वे बहुत थोड़ेमें गुज़र कर सकते थे। बाहरकी वेष-भूषा और कोट-पेन्ट-हैट होते हुए भी उनका जीवन बहुत सरल था। उनको तड़क-भड़क पसन्द न थी। एक जूतेका जोड़ा और एक कोट कई वर्षों चला करता था। और वास्तवमें यह ठीक भी है, किसी व्यक्तिका—विशेषतः डाक्टर साहब जैसे व्यक्तिका—बड़ापन या छोटपन वेष-भूषा से नहीं जाँचा जाना चाहिये। जाँचकी कसौटी मेरी समझ से तो यह होनी चाहिये कि कोई व्यक्ति अपनी कमाईका कितना हिस्सा अपने आपपर खर्च करता है और कितना हिस्सा और दूसरोंपर। जो अपने ही निजके रहन-सहन में, वेष-भूषामें सैकड़ों-हजारों रुपये खर्च करता है, उसके पास दूसरोंके देनेके लिये, चाहे वे स्वजन हों अथवा इतर, बचेगा क्या? इस दृष्टिसे यदि देखा जाय, तो अपनी कमाई का शतांश भी शायद डाक्टर साहबने अपने ऊपर खर्च नहीं किया, परन्तु अपने स्वजनोंपर और दूसरे धर्म कार्योंमें—शिक्षाके कार्योंमें—उन्होंने हज़ारों ही रुपया दिया। लगभग सब ही सम्पत्ति वे इन्हीं कार्योंमें दे जाते, परन्तु भगवानकी इच्छा ही ऐसी थी। वे अपनी विल भी नहीं लिख पाये और जीवन-यात्रा समाप्त हो गयी।

डाक्टर साहब ईश्वर-भक्त भी थे, उनका भगवत्सत्ता में बड़ा विश्वास था। बाहरसे देखनेवालोंको चाहे यह मालूम न होता हो, परन्तु जो उनके घनिष्ट सम्बन्धमें आते थे, उन्हें यह अवश्य मालूम हो जाता था। इसी प्रकार सनातन धर्म और वर्णाश्रम धर्ममें भी उनकी श्रद्धा थी। ब्राह्मणोंका वे बड़ा आदर करते थे। कभी-कभी यह बात अपने मुँहसे भी कह देते थे।

उनको अपने पदके गौरव रखनेका भी ख़याल रहता था। और यह ख़याल कभी कभी विचित्र ढंग भी ले लेता था। सेन्ट्रल हिन्दू कालेज बनारसके जब डाक्टर साहब प्रिंसिपल थे तब डाक्टर साहब जोड़ीकी गाड़ीमें बैठा करते थे। यह गाड़ी किरायेकी थी। डाक्टर साहब प्रातः ६॥ बजे कालेज-में आते और सायं ७ बजे वापस घर लौटते। इस समयमें गाड़ीसे कोई काम नहीं लेते थे। परन्तु गाड़ीवालेको सख़्त हिदायत थी कि गाड़ीमें दूसरी सवारी न बिठलावे, गाड़ीको किराये पर न चलावे।

डाक्टर साहब कभी मनीबेग अपने पास नहीं रखते थे। एक बार मुझे याद है कि डाक्टर साहबके पास एक पचास रुपयेका नोट था। जेबसे गिर न जावे या रातको रेलमें चोरी न हो जावे, इसलिये जूतेमें उस नोटको रखकर रेलमें जूते पहने ही सो गये। प्रातःकाल आगरे पहुँचे। सीधे आगरा होटलमें चले गये। जूता उतार दिया। नोटकी बात भूल गये। युनिवर्सिटीमें आ गये। यहाँ आकर नोट सँभाला तो नोट जूतेमें नहीं था। किसीसे नहीं कहा। वापस आगरा होटल गये। वहाँ कमरेमें इधर-उधर देखा, तो नोट एक जगह पड़ा मिला। चुपचाप नोट लेकर युनिवर्सिटी चले

आये। तब यह सब हाल मुझसे कहा और हंसने भी लगे। सफ़रमें उनके साथ रुपया बहुत कम रहता था। उनका खर्च ही नियमित था। अन्त समयमें उनकी जेबमें साढ़े ग्यारह आनेके पैसे और एक सेकेण्ड क्लासका वापसी टिकट बनारसका मिला था।

जो भी हो मनुष्य गुण-दोषोंका पुतला है। किसीमें न गुण ही गुण होते हैं न दोष ही दोष। परन्तु इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि डाक्टर साहबमें गुणोंकी मात्रा कहीं अधिक थी। कितनी ही बातोंमें वे आदर्श पुरुष थे। उनके एकही गुणको लेकर यदि कोई व्यक्ति उसपर अमल करे, तो अवश्य संसार में ऊँचा उठ सकता है, दूसरोंको भी ऊँचा उठा सकता है। सबही लोग डाक्टर साहबकी बातोंकी ही ताईद करते हैं, ऐसा नहीं था। उनका विरोध करनेवालोंकी भी संख्या बहुत थी और संसारमें ऐसा होता ही है। परन्तु इसमें कोई भी संशय नहीं है कि सब लोग उनका सम्मान और उनकी योग्यता और अनुभवके सामने सिर झुकाते थे। यदि कोई किसी बातमें उनका विरोधी भी था, तो विरोध करते समय उनसे डरता अवश्य था और उसके भी हृदयमें उनके गुणोंके लिये जगह अवश्य थी। यह बात होना कठिन है।

मैंने जैसा डाक्टर साहबको देखा और मेरा अनुभव जैसा उनका हुआ मैंने "विज्ञान" के पाठकोंको निवेदन किया। उनकी बहुत-सी बातें विशेषतः उनकी विद्यासम्बन्धी बातें और घरकी बातोंसे मेरी जानकारी विशेष नहीं है। अतएव इन विषयोंमें डाक्टर साहबका परिचय दूसरे सज्जन आपके सामने उपस्थित करेंगे।

इस महापुरुषका देहावसान ता० ९ मार्च सन्-१९३५को सायंकालके ७॥ बजे आगरेके टामसन हास्पिटलमें हुआ। उस दिन आगरा युनिवर्सिटीकी कौन्सिलकी मीटिंग दिनके ११ बजेसे थी। डाक्टर साहब इलाहाबादसे ८ मार्चको सायंकालमें रवाना होकर ९ मार्चको यहाँ आगरे प्रातःकाल पहुँचे और जैसा उनका नियम था वही आगरा होटलमें दत्तबाबूके पास ठहरे। इलाहाबादमें उनकी तबीयत बहुत ठीक थी। रास्तेमें डाक्टर नारायणप्रसादजी अष्ठाना और वे साथ थे। डाक्टर अष्ठानाजी भी इलाहाबादसे यहीं आगरे कौन्सिलकी मीटिङ्गके लिये आये थे। डाक्टर अष्ठानाजीसे मालूम हुआ कि रेलमें डाक्टर साहबने कुछ मठरी वगैरह अपने पाससे निकालकर खायी थी। परन्तु जाहिरमें उसका कोई बुरा असर नहीं पड़ा था। आगरा-होटलमें डाक्टर साहबने शौचादिसे निवृत्त होकर स्नान किया और तदनन्तर खाना भी खाया। फिर हिवेटपार्कमें युनिवर्सिटीके नये दफतर (सिनेट हाउस)में जहाँ मीटिंग थी करीब पौने ग्यारहके आ गये। होटलमें दत्तबाबूसे बड़ी अच्छी तरह बातचीत करते रहे। यह भी कहते रहे कि अब मेरी तबीयत बिलकुल ठीक है। रास्तेमें प्रोफेसर एल० पी० माथुरके यहाँ मिलने गये। यहाँ युनिवर्सिटीके दफतर में आकर स्टाफके लोगोंसे मिले। सीढ़ी चढ़ते वक्त अलबत्ता उन्होंने यह कहा कि "भाई अब मैं बूढ़ा हो चला। सीढ़ी चढ़नेमें कुछ तकलीफ होती है।" परन्तु रोजकी तरह ऊपर मीटिंगके कमरेमें चले गये। मैं उस समय ऊपर ही था। बरामदेमें उनसे मिला और मैंने प्रणाम किया। बड़े प्रेमसे मेरा हाथ पकड़कर बड़ी देरतक कुशल-क्षेम पूछते रहे। इसी प्रकार सबही लोगोंसे मिले। उस समय वे बिलकुल अपनी स्वाभाविक अवस्थामें मालूम होते थे। कोई विशेष बात नहीं थी।

इतनेमें ११ बज गये और मीटिंग आरम्भ हो गयी। डाक्टर साहबकी कुरसी बिलकुल मेरे सामने थी और उनके बराबर डाक्टर नारायणप्रसादजी अष्ठाना थे। मीटिंगमें डाक्टर साहबने १बजेतक बराबर वैसे ही कार्य किया, प्रत्येक विषयपर उसी प्रकार बोलते रहे जैसे वे हमेशा बोलते थे। उस दिन भी परोपकारका लक्ष्य उनके सामने रहा। अग्रीकलचरल कालेजके दो छात्रोंका विषय उपस्थित था, इन लोगोंको बी० एस-सी० फ़ोर्थईयर क्लासमें किसी कारणसे देरसे प्रोमोशन मिला था। अतएव सन् १९३५की परीक्षाके लिए यह अपनी परसेन्टेज पूरी न कर पाये थे। प्रश्न यह था कि कौन्सिल इन लड़कोंके साथ कुछ रिआयत करके इनकी परसेंटेज पूरी करके इन लड़कोंको सन् १९३५की परीक्षामें बैठने दे या नहीं डाक्टर साहबका सहज स्वभाव था कि वे ऐसी बातोंमें छात्रोंकी मदद करें। तदनुसार उन्होंने इस बातपर खूब ज़ोर दिया कि यह दोनों छात्र विशेषरूपसे परीक्षामें सम्मिलित कर लिये जावें। बहुत वाद-विवाद होनेके बाद इन दोनों छात्रोंको परीक्षामें बैठनेकी अनुमति डाक्टर साहबने दिलवा ही दी। इस विषयपर उनको दो-तीन बार बोलना

पड़ा था। उस दिन परीक्षकोंकी नियुक्तिका प्रश्न भी कौन्सिलके सामने था। सदैवकी भाँति डाक्टर साहबने अपने लिये कोई परीक्षाका कार्य नहीं लिया, परन्तु अपने एक मित्रकी नियुक्तिके विषयमें लड़ पड़े और खूब ज़ोर दिया कि इनकी नियुक्ति अवश्य होनी चाहिए। संयोगवश इस प्रश्नपर इनकी एकबार हार हो गयी। परन्तु वे इन बातोंकी कब परवाह करते थे। पाँच ही सात मिनिट बाद जब उसी विषयके सन् १९३६के लिए परीक्षक नियुक्त करनेकी पारी-आयी, डाक्टर साहबने उनको परीक्षक करा ही दिया। इस विषयपर भी उनको तीन-चार बार बोलना पड़ा था और वाद-विवादमें कुछ थोड़ीसी गरमी भी आ गयी थी। परन्तु यह बातें भी मीटिङ्गमें उनके लिये साधारण सी ही थीं। इसमें कोई विशेष बात न थी, रोज़ही ऐसा हुआ करता था। इस समय एक बजकर दस-पाँच मिनिट हो चुके थे। अपने मित्रकी नियुक्ति होनेके बाद डाक्टर सहब कुरसीपर बैठ गये। कौन्सिलका एजेन्डा उनके हाथमें था और कुरसीके तकियेसे अपना सर लगाये हुए बहुत ही अच्छी हालतमें प्रतीत होते थे। ऐसा अवश्य जान पड़ता था कि वाद-विवादमें कुछ श्रम हुआ है। इधर कौन्सिल कुछ और काम करने लगी।

अब करीब डेढ़ बज गया। साधारणतया दो बजे कौन्सिल 'टी'के लिये उठ जाती है। उसदिन भी किचलू हालमें 'टी'का प्रबन्ध किया जा रहा था और यही खयाल था कि दो-चार बातोंपर बहस होनेके कारण कुछ समय अधिक लग गया है। मामूली-मामूली काम शीघ्रतासे निकाल दें तो फिर 'टी' के लिये विश्राम लें। मैं भी जल्दी-जल्दी अपनी प्रोसी-डिंगसबुकके पन्ने उलट-उलटकर कौन्सिलको सुना रहा था और प्रत्येक विषयपर कौन्सिलके आर्डर नोट कराता जाता था, इस अरसेमें मैंने डाक्टर साहबकी ओर एक बार अवश्य देखा था। डाक्टर साहबकी आखें बंद थी, खडा एजेन्डा उनके हाथमें था, उनका सर कुरसीके तकियेसे लगा हुआ था। मुझे ऐसा मालुम हुआ कि बोलनेमें कुछ परिश्रम होनेके कारण अथवा रातको रेलके सफरकी थकानके कारण और साथ ही कौन्सिलमें उस समय कोई महत्वका प्रश्न न होनेके कारण, डाक्टर साहब कुछ विश्राम ले रहे हैं। मैंने एकबार देखा और फिर अपने कार्यमें लग गया। डाक्टर अष्ठाना साहब भी उनके बराबर ही बैठे हुए थे, परन्तु उनको भी कोई बात मालूम न हुई। वे मेरी ओर देख रहे थे। इतनेमें एकाएक मिस्टर कल्याण-मल बापना (जो डाक्टर साहबके बायें हाथकी लाइनमें बैठे हुए थे) बोल उठे "डाक्टर साहब, डाक्टर साहब।" साथ ही मिस्टर एल० सी० धारीवाल (जो मिस्टर बाप-नाके बराबर बैठे हुए थे) चिल्ला उठे "देखो डाक्टर साहबको क्या हो गया!" तब तो सब ही लोगोंकी निगाह डाक्टर साहबपर जा पड़ी। डाक्टर अष्ठानाजी खड़े हो गये और भी लोग पास आ गये। मैंने देखा, कि डाक्टर साहब उसी तरह कुरसीके तकियेपर सर रक्खे और आँखें बन्द किये बैठे थे, एजेण्डा फिर भी उनके हाथमें थी और उनके मुँहसे पीले-पीले रंगका गाढ़ा-गाढ़ा पानी निकल रहा था। इसी हालतको देखकर मिस्टर बापना और मिस्टर धारीवाल बोल उठे थे। मीटिङ्ग बन्द हो गयी। फौरन् पानी मँगवाया गया, डाक्टर साहबको आवाज़ दी, परन्तु वे बोले नहीं। आँखें खोलीं और फिर बन्द कर लीं। खयाल हुआ, कि गरमीका चक्कर इनको आ गया है। उनकी कुरसीके ऊपर पंखा चल रहा था। फिर भी दो आदमी तौलिये भिगोकर हवा झलने लगे। उनका मुँह धोया। कुछ और पीला-पीला और अबकी बार कुछ अधिक गाढ़ा पानी उलटीके रूपमें और ज़्यादः तादादमें उनके मुँहसे निकला। तब तो बड़ी चिन्ता हो गयी। डाक्टर साहबको दो आदमियोंने कुरसीपरसे उठाकर बराबरवाले कमरेमें पलंगपर लिटा दिया। सरपर पानी डाला। भीगा तौलिया रक्खा। हवा करते रहे। उनका कोट, वेस्ट, जूता और मोजे उतार दिये गये। डाक्टरोंको बुलानेके लिए मोटर दौड़ायी गयी। उधर बरफ लेनेके लिए आदमी दौड़ गये। उस समय डाक्टर अष्ठाना साहबने यह कहा था, कि रातको रेलगाड़ीमें कुछ मठरी वगैरः इन्होंने खायीं थी, मुझे खयाल हुआ कि शायद उसीका कुछ बुरा असर हुआ है।

इतनेमें सबसे पहले डाक्टर कैप्टेन के० पी० बागची साहब M. B., B. S, I. M. S. (Retired) मेरी मोटरमें आये। उनसे कुछ हाल कहलवा दिया गया था इसलिए वे अपने साथ रक्तकी गतिके नापनेका यन्त्र भी लेते आये थे। यन्त्र लगाया गया। डाक्टर साहबने कहा कि रक्तकी गति २२०यन्त्रमें आती है। बीमारी बहुत भया-

नक मालूम होती है। इनको योंही लेटे रहने दिया जावे। वे डाक्टर जी०एन०व्यास, एम०बी०,को लेकर अभी वापस आते हैं। इसपर सबलोगोंकी घबड़ाहट और बढ़ गयी। फौरन् सिविल सर्जन साहब कर्नल रहमानको टेलीफोनसे इत्तिला दी गयी। उन्होंने कहा कि वे मेजर गुप्त साहबको अस्पतालसे भेज रहे हैं। कोई दस ही मिनटमें मेजर गुप्त भी मय एक मेडिकल कालेजके छात्रके दफ्तरमें आ पहुँचे। थोड़ी देर बाद कैप्टेन बागची भी डाक्टर व्यासको लेकर आ गये। फिर यंत्र लगाया गया। तब भी रक्तकी गति उतनी ही थी। हम लोगोंने बहुत कुछ पूछा, परन्तु डाक्टरोंने कहा कि इसका कुछ इलाज ही उनके यहाँ नहीं है। इनको इसी प्रकार लेटे रहने दिया जावे और बरफ सरपर रक्खी रहने दी जावे।

इस अरसेमें डाक्टरोंके आनेके पहिले हमलोगोंने डाक्टर साहबको आवाजें दीं। एक दफा पलंगपर लेटे हुए उन्होंने आँखें खोली थीं लेकिन जबानसे कुछ बोल न सके। उनका दाहना अंग बिलकुल शिथिल पड़ा हुआ था। परन्तु बायाँ हाथ बार-बार उठकर उनके सरपर जाता था। शायद वे उस समय अन्तःसंज्ञ थे और उनके सिरमें पीड़ा थी। डाक्टरोंने भी यह निदान किया था कि सिरमें रक्तकी कोई नाड़ी खुल गयी है उससे रक्त बह रहा है। उनका कहना था कि यदि रक्त निकलकर कान, नाक अथवा मुँहके द्वारा बाहर आ जावे तो ज्यादह अच्छा है, वरना धीरे-धीरे यह रक्त उनके ब्रेनको भिगो देगा। मृत्यु हो जावेगी। डाक्टरोंके यह कहनेपर कि इस बीमारीकी उनके पास कोई दवा ही नहीं है, हमने एक अनुभवी होमियोपैथको भी बुलाया। परन्तु उन्होंने भी देखकर निराशाजनक ही उत्तर दिया। एक खुराक दवा अलबत्ता उन्होंने हमको दी परन्तु वह भी डाक्टर साहबके गलेमें उतर न पायी।

इन सब बातोंसे घबराहट और भी बढ़ गयी। डाक्टर लोग सबही मौजूद थे और उनकी राय थी कि इनको अस्पतालमें भेज दिया जावे। हमलोग यह सोचते थे कि रास्तेमें झटके लगेंगे। यह यहीं रहें। और न जाने क्यों मुझे तो यही विश्वास होरहा था कि डाक्टर साहब थोड़ी देरमें ठीक हो जावेंगे, अस्तु! फिर यह निश्चय हुआ कि सिविल सर्जन साहबको भी बुला ही लिया जावे। आगरा-कालेजके प्रिन्सिपल मिस्टर एफ० जे० फील्डम स्वयं अपनी मोटर लेकर गये। थोड़ी देरमें सिविल सर्जन साहब कर्नल रहमान भी आ गये। उन्होंने भी सब देखभाल कर यही राय क़ायम की कि यह बीमारी असाध्य है। डाक्टर साहब बच नहीं सकते परन्तु यह अवस्था एक-दो रोज़ भी यों ही बनी रह सकती है। अच्छा यही है कि इनको अस्पतालमें भेजा जावे। वहाँ जैसा उपचार हो सकेगा दफ्तरमें नहीं हो सकता। इस बातको सुनकर सबही लोगोंको बड़ी निराशा हुई। अस्तु, अस्पताल ले जानेकी तैयारी की गयी। वहाँसे स्ट्रेचर लानेके लिए टेलीफोन किया गया। और डाक्टर तो चले गये किन्तु मेजर गुप्त साहब और उनके छात्र रह गये। इस समय ढाई बजे थे।

डाक्टर भट्टानाजीने कहा कि डाक्टर साहबके घरके लोगोंको फौरन् इत्तिला दे देनी चाहिए। मैं जानता था कि बनारसमें डाक्टर साहबके भाई स्वयं बीमारसे हैं। इनको तार देनेसे क्या होगा? मुझे उनका नाम भी मालूम नहीं। इसी उधेड़-बुनमें सबसे पहिले मुझे डाक्टर गोरखप्रसाद-जीका नाम याद आया। तुरन्त उनको इलाहाबाद तार भेजा। साथ ही बनारस भी डाक्टर साहबके घरके पतेसे तार भेजा। यह तार न मालूम कब पहुँचेंगे? लोग अपनी जगहोंपर होंगे भी कि नहीं? इत्तिला अवश्य होनी चाहिए। तब क्या किया जावे? तीन बज चुके थे। ध्यान आया कि बनारस और इलाहाबाद युनिवर्सिटीमें टेलीफ़ोन से इत्तिला दी जावे। तुरन्त ट्रङ्क-कालके लिए फोन किया गया। इलाहाबादसे कोई जवाब नहीं आया, परन्तु बनारस युनिवर्सिटीके दफ्तरमें टेलीफ़ोनसे इत्तिला दी गयी और यह भी प्रार्थना की गयी कि इसकी सूचना डाक्टर साहबके घरपर तुरन्त दे दी जावे।

करीब सवा तीन बजे अस्पतालसे स्ट्रेचर आया। इसके पहिये निकलवाये गये। ऊपर कमरेमें लेजाकर डाक्टर साहबको इसपर लिटा दिया गया। स्ट्रेचर नीचे लाया गया और तब आदमियोंके कन्धेपर स्ट्रेचरको रवाना किया गया। डाक्टर साहबके सरपर तौलियेमें लपेटकर बरफ़ रख दी गयी। एक आदमी साथ-साथ छाता लिये गया। करीब साढ़े तीन बजे डाक्टर साहब सिनेट हाउससे रवाना हुए। मेजर गुप्त भी मेरी कारमें बैठकर अस्पतालके लिए रवाना हो गये ताकि कमरे

आदिका समुचित प्रबन्ध पहिले जाकर कर लें । अस्पतालमें पहुँचनेपर डाक्टर साहबको एक कमरेमें लिटा दिया गया। कपड़े उतार दिये गये और समयोचित सबही उपचार किया जाने लगा ।

हमलोग भी साढ़े चार बजे अस्पताल पहुँचे । दरयाफ्त करनेपर मालूम हुआ कि डाक्टर साहबका वही हाल है। अस्पतालके उपचारसे कोई लाभ नहीं हो रहा है। मृत्यु निःसन्देह होगी। परन्तु किस समय ? यह नहीं कहा जा-सकता । हमलोगोंने निश्चय किया कि पारी-पारीसे एक स्टाफ़का मेम्बर और एक चपरासी अस्पतालमें बने रहेंगे। न जाने किस समय क्या आवश्यकता आ पड़े । इसके लिए अस्पतालवालोंसे विशेष रूपसे इजाज़त लेनी पड़ी । ड्यूटी बाँध दी गयी । पहिलेपहल बाबू हितकारीसिंहजी सेठ असिस्टेन्ट रजिस्ट्रारकी ड्यूटी रातको ९ बजेतक रही, यह बेचारे दिनभरसे ही परेशान थे। बड़ी दौड़-धूप करनी पड़ी थी। तब भी इन्होंने रातभर रहना स्वीकार किया था। उस समय प्रश्न हमलोगोंके सामने यह था कि ज्योंही डाक्टर साहबकी मृत्यु हुई अस्पतालके नियमके अनुसार उनके शवको लोग मुर्दाघरमें रखवा देंगे। हमलोग इसको अच्छा नहीं समझते थे। समय लगभग सायंकालके ६ बजेका था, परन्तु सिविल सर्जन साहब संध्याके राउण्डके लिए अस्पतालमें नहीं आये थे। उन्होंने कह दिया था, कि वे स्वयं अस्पतालमें डाक्टर साहबको देखेंगे और सब प्रकारका समुचित प्रबन्ध पूरी तरहपर करा देंगे। उनके भी आनेका इन्तजार करना था ताकि मृत्युके बाद शव कहाँ रहे इसका भी निर्धारण हो जावे। इन सब बातोंके तय करनेके लिए ही असिस्टेण्ट रजिस्ट्रार महोदय ९ बजेतक रहना चाहते थे। अस्तु मैं उन्हें, दफ्तरके एक दूसरे क्लर्क और दो चपरासियोंको छोड़कर शौचादिसे निवृत्त होनेके लिए करीब ६॥ बजे अस्पतालसे घर आ गया। विचार था, कि रातको ८॥ बजे एकबार अस्पताल फिर जाऊँगा। अस्पताल भी कह आया था कि यदि कोई विशेष बात इस अरसेमें हो तो दफ्तरमें टेलीफोन द्वारा सूचना कर दी जावे और दफ्तरमें भी प्रबन्ध कर दिया था, कि टेलीफोन आते ही तुरन्त घरपर मुझे सूचित करें।

सन्ध्याके साढ़े-सात बज गये तबतक भी अस्पतालसे कोई सूचना न मिली। विचार हुआ, कि मैं ही स्वयं दफ्तर चलकर टेलीफोनवालेसे पूछूँ । मैं दफ्तर आया । मालूम हुआ कि अस्पतालसे अभीतक कोई विशेष सूचना नहीं आयी है। मैं अनेक प्रकारके विचारोंमें मग्न हुआ इधर-उधर घूमने लगा। इतनेमें करीब आठ बजे मेरा अर्दली बड़ी तेज़ीसे बाइसिकिलपर दौड़ता हुआ मेरे पास आया और सूचना दी कि साढ़े सात बजे अस्पतालमें डाक्टर साहबने शरीर छोड़ दिया। असिस्टेण्ट रजिस्ट्रार साहब भी मेरे पास आ रहे हैं। थोड़ी देरमें ही बाबू हितकारीसिंहजी भी ताँगेमें वहीं आ पहुँचे। उनके साथ हमारे स्टफके एक मेम्बर मिस्टर महेशस्वरूप भी थे । इनकी ड्यूटी तो अस्पतालमें ९ बजे बाद आनेकी थी और यह प्रबन्ध करके ही मैं इनको सायं ६ बजे अस्पतालमें छोड़ आया था। परन्तु यह बेचारे घर-पर भोजनादिके लिए भी नहीं गये थे। वहीं अस्पतालहीमें बैठे रहे थे, कि डाक्टर साहबकी मृत्यु हो गयी थी । बाबू हितकारीसिंहजीसे पूछनेपर मालूम हुआ कि मेरे आनेके बाद सिविल सर्जन साहब अस्पताल गये । उन्होंने बड़ी सहानुभूति दिखलायी और यह भी प्रबन्ध कर गए कि यदि रात्रिमें डाक्टर साहबकी मृत्यु हो जावे तो उनका शव मुर्दाघरमें न भेजा जावे, किन्तु एक दूसरे ब्लाकके कमरेमें रख दिया जावे । तदनुसार दूसरे कमरेमें शव रखवा दिया गया है। और रातको रहनेके लिए दफ्तरका एक चपरासी तैनात कर दिया गया है।

अब प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि कल क्या करना। अस्पतालसे लौटते हुए सायंकालहीमें मैंने स्वयं आगरा-कालेज और सेन्टजान्स कालेजमें जाकर १०,५ आदमियोंको डाक्टर साहबकी बीमारीकी सूचना अवश्य दे दी थी। परन्तु मृत्युकी सूचना देना तो आवश्यक था वरनः चलावेका प्रबन्ध कैसे हो ? उधर अस्पतालवालोंने कह दिया था कि प्रातः ८ बजेसे अधिक शवके उठानेमें देर न होने पावे। आगरेका बाजार प्रातः जल्दी नहीं खुलता । सामान भी लेना हो सो सब इसी समय रातहीको संग्रह किया जावे। डाक्टर साहबकी बिरादरीका क्या रिवाज है सो भी मालूम नहीं। वे प्रतिष्ठित पुरुष थे । उनकी बिरादरीके रस्म-रिवाजके अनुसार काम न हो तब भी बुरा है। ये रस्म-रिवाज किससे मालूम हो ? पिण्डदान कौन करे ? इत्यादि इत्यादि बातें सब

दिमागमें चक्कर खाने लगीं। रातके साढ़े आठसे भी अधिक समय हो चुका था। यही विचार हुआ कि सबसे पहिले उनकी बिरादरीके किसी व्यक्तिसे मिलकर रस्म-रिवाजका हाल दरयाफ्त करूँ। यह निश्चय होनेपर जिस ताँगेमें बाबू-हितकारीसिंहजी और बाबू महेशस्वरूप आये थे उसीमें मैं भी बैठ गया, बाइसिकिलवालेको साथ लिया और प्रोफेसर लक्ष्मीप्रसादजी माथुरके मकानपर पहुँचा। दुर्भाग्यवश वे मकानपर न थे। इनके छोटे भाईको डाक्टर साहबकी मृत्युका समाचार देकर और प्रातःकाल अस्पतालमें शीघ्रही आनेके लिए कहकर लौट पड़ा। स्मरण आया कि पीपल-मंडी कायस्थोंका मुहल्ला है। यहाँ दो-चार परिचित व्यक्ति भी हैं। रास्तेमें बाबू हितकारीसिंहजीको उनकी इच्छाके विरुद्ध भी उनके मकानपर विश्राम लेनेके लिए उतार दिया और मैं बाबू महेशस्वरूपको लेकर पीपलमंडी पहुँचा। वहाँ हमारे यहाँके दफ्तरके एक क्लर्क बाबू उमाप्रसाद रहते हैं। उनसे मिला। उनके साथ जाकर मुहल्लेके लोगोंको इत्तिला दी। अन्त्येष्टि क्रियाका रस्म-रिवाज दरियाफ्त किया। सब लोगोंकी राय रही कि बिरादरीकी पूरी प्रथा बरती जावे और यदि डाक्टर साहबके कुटुम्बी आ जावें तो ठीकही है वरना पंच लकड़ी दे दी जावे। तदनन्तर नाईको बुलाकर प्रातः बिरादरीके सब लोगोंको इत्तिला देनेके लिये कहकर मैं बाजार गया, रातके ग्यारह बजनेवाले थे। बाजार बन्द हो रहा था। अस्तु एक दूकानसे ज़रीन दुशाला लिया। और ऐसा सामान चंदन, घी वगैरहः जो प्रातः जल्दी नहीं मिल सकता था, उसी समय खरीदा गया और इस सब सामानको कफ़नवालेकी दूकानपर रख दिया गया कि प्रातःकाल बाला-बाला अस्पतालमें चला जावे। बाबू कुँवरप्रसादके सुपुर्द यह सब इन्तजाम करके और प्रातः सब लोगोंको लेकर शीघ्र अस्पताल पहुँच जानेके लिये कहकर मैं घर आया। इस समय करीब १२ बजे थे।

दूसरे दिन रविवार था। कालेजोंकी छुट्टी थी। सब लोगोंको सात बजेके पहले इत्तिला देना सम्भव न था। अस्तु सबेरे पाँच ही बजे उठकर चपरासियोंको कालेजोंमें चिट्ठी लिखकर इत्तिला देनेको भेजा। मैं स्वयं साढ़े छः बजेके करीब अस्पताल पहुँचा। बाबू कुँवरप्रसाद और पीपलमण्डीके १०-१५ लोग पहुँच चुके थे। कुछलोग आ भी रहे थे। परन्तु कालेजोंके लोग न आ पये थे। चिन्ता हुआ कि छुट्टीके कारण शायद इत्तिला न मिली हो। अस्तु मैं स्वयं दोनों कालेजोंमें गया वहाँ प्रिन्सिपलों और वार्डरोंको इत्तिला दी। तब बोर्डिङ्ग हाउसोंमें जाकर लड़कोंको सूचना दी। सब लोगोंसे शीघ्र अस्पताल जानेके लिये कह-कर लौटते समय रास्तेमें जिन प्रोफेसरोंके मकान थे उनको सूचित कियाऔर अस्पतालमें साढ़े-सात बजे लौट आया। उस समय तक और बहुतसे आदमी इकट्ठे हो चुके थे। अस्पतालवालोंसे शवका चार्ज लेनेकी कार्यवाही की गयी। इसमें करीब आध घण्टा लगा। तब बिरादरीके सज्जन कमरेके अन्दर गये और शवको स्नान वगैरहः कराकर अर्थीपर रक्खा और बाहर लाये उस समय अस्पतालमें बड़ी भीड़ हो गयी थी। कालेजोंके भी बहुतसे प्रोफेसर और विद्यार्थी आ चुके थे। सब लोग डाक्टर साहबके अन्तिम दर्शनके लिये अत्यन्त उत्सुक थे इसलिये शवको थोड़ी देर कमरेके बाहर रख दिया गया। सबलोगोंको सूचना न होने पर भी लगभग अढ़ाई-तीन सौ आदमी इकट्ठे हो चुके थे। आठ बजे हमलोग सबको लेकर अस्पतालसे स्मशानघाटकी ओर रवाना हुए।

रास्तेमें बहुतसे लोग और साथ हो लिये। सबलोगोंकी जबानपर डाक्टर साहबका नाम था। सबलोग उनके गुणोंकी प्रशंसा और इस प्रकार अचानक उनकी मृत्यु हो जानेपर बड़ा अफसोस करते चले जाते थे। साथ जानेवालोंमेंसे प्रत्येक व्यक्ति उनकी अर्थीसे कन्धा लगानेकी चेष्टा करता था। बाजारमें डाक्टर साहबकी अर्थीको देखनेके लिये जगह-जगहपर भीड़ इकट्ठी हो रही थी। उस समय प्रतीत हो रहा था, कि जीवनकालमें ही नहीं वरन् मृत्यु हो जाने-पर भी डाक्टर साहबके लिये लोगोंके हृदयमें बड़ा स्थान था। नियमानुसार स्थान-स्थानपर पिण्डदान किया गया। अन्तमें हमलोग साढ़े दस बजेके करीब स्मशान-घाटपर पहुँचे। मैंने निश्चय कर लिया था, कि पूरबसे दिनके डेढ़बजेआगरे पहुँचने वाली गाड़ीकी प्रतीक्षा करूँगा। इस गाड़ीसे भी यदि डाक्टर साहबके सम्बन्धियोंमेंसे कोई न आ सका तो मैं शव दाह कर दूँगा। इसलिये घाटपर पहुँचनेपर मैंने सबलोगों को यह बात समझा दी और धन्यवादपूर्वक बिदा किया। हम लोग दस बारह आदमी रह गये। फोटोग्राफ़रको पूर्व सूचना दे दी थी। वह भी घाटपर आ गये थे। वहां शवका एक फोटो ले लिया गया। तब शवको एक किनारे रखकर हम

गाड़ीकी प्रतीक्षा करने लगे। आगरे होटलके मैनेजर श्रीयुत दत्त महाशयको डाक्टर साहबकी बीमारीकी सूचना मिलतेही यह बेचारे तुरन्त युनिवर्सिटी आफिस दौड़े आये थे और तब से हमी लोगोंके साथ दौड़-भागमें थे। रविवारको प्रातःकाल स्टेशनपर भी गये थे। शायद डाक्टर साहबके सम्बन्धी लोग आते हों। परन्तु बेचारे निराश होकर लौट आये थे। अब भी स्टेशन जानेका भार आपहीने लिया और ठीक समय पर मोटर लेकर आगरा फोर्टके स्टेशनपर पहुँच गये।

डेढ़बजेकी गाड़ीसे डाक्टर साहबकी भतीजी, उनके पति, और बच्चे, डाक्टरके भतीजे मोती बाबू और डाक्टर साहब का पुराना सेवक नन्दू तथा प्रोफेसर चंडीप्रसादजी डाक्टर गोरखप्रसादजी, डाक्टर बदरीनाथप्रसादजी, बाबू अवधेशनारायणजी और पं० रामाज्ञाजी द्विवेदी सब लोग आगरे पहुँचे। दत्त बाबू तुरन्त इनको फोर्ट स्टेशनसे श्मशान घाटपर लिवा ले गये। मुझे भी बड़ा सन्तोष हुआ कि शवका दाह न किया सो अच्छा ही हुआ। डाक्टर साहबके अन्तिम दर्शन इन लोगोंको भी हो गये। डाक्टर साहबकी भतीजी देखतेही दौड़कर शवसे लिपट गयीं। उसका करुण क्रंदन सुनकर हृदय विदीर्ण होता था। दस-पन्द्रह मिनटतक यह दृश्य बना रहा। अन्तमें सब लोगोंके समझानेपर डाक्टर साहबकी भतीजी और उनके बच्चोंको एक ओर छायामें लेजाकर बिठलाया और तब यह विचार हुआ कि शव को काशी ले जाया जावे या आगरेमें ही दाह किया जावे। शव उस समयतक कुछ खराब हो चुका था और यह संभव न था कि उसे काशी ले जाया जावे। इसलिये यही विचार स्थिर रहा कि शव-दाह यहीं आगरेमें किया जावे और फूल गंगा-प्रवाहके लिए काशी ले जाये जावें।

तब तो चिता चुननेकी तैयारीकी गयी और लगभग अढ़ाईबजे शवको चितापर रक्खा गया और मोतीबाबूके हाथ से दाहकर्म कराया गया फिर रातभर वही करुण-क्रंदन और वही हृदय-विदारक दृश्य देखनेमें आया। थोड़ीही देरमें चिताको ज्वालाओंने ढक लिया और शव दीखता रह गया। हमलोग वहाँसे हटकर एक किनारे बैठ गये और कपाल संस्कारके समयकी प्रतीक्षा करने लगे। इधर यह विचार होने लगा, कि डाक्टर साहबका जो सामान आगरेमें है, उसको क्या किया जावे। डाक्टर साहबका चशमा, उनकी छड़ी, साढ़े ग्यारह आनेके पैसे और एक रिटर्न सेकिण्ड क्लासका टिकट मैंने मोतीबाबू और डाक्टर गोरखप्रसादजीके हवाले किये। होटलके सामानके विषयमें यह तै पाया कि दाह-संस्कारके बाद सब लोग आगरा होटल जावें। वहाँ सबकी उपस्थितिमें दत्तबाबू डाक्टर साहबके सामानकी एक फेहरिस्त तैयार करा लें। इसकी एक प्रति मोतीबाबू और डाक्टर साहबकी भतीजीके पति अपने साथ ले जावें। दूसरी प्रति दत्तबाबूके पास रहे और सामान भी उन्हींकी सिपुर्दगीमें बिलकुल छोड़ दिया जावे। डाक्टर साहबका हेल्थ सार्टिफिकट मैं लेकर प्रो० चण्डीप्रसादजीके पास भेज दूँ। करीब चार बज चुके थे। इतनेमें कपाल तैयार हो गया। मोतीबाबूके हाथसेही कपाल-संस्कार भी कराया गया। तब फूल चुननेकी प्रतीक्षा करते रहे। पाँच बजे डाक्टर साहबकी देह भस्मावशेष रह गयी थी। हम लोग फूल चुनने लगे। सब लोग रातहीकी गाड़ीसे अपने-अपने स्थानोंपर लौट-जानेका विचार कर चुके थे। गाड़ीमें देर न हो जावे इस लिये कुछ लोगोंको दत्तबाबूके साथ आगरा होटलमें सामान की फेहरिस्त तैयार करानेके लिये रवाना कर दिया गया। हम लोग यमुनाजीसे पानी लालाकर शव-दाहके स्थानको ठंडा करने लगे और फूल चुनने लगे। पंडित रामाज्ञाजी द्विवेदीके साथ एक फोटोका केमरा था। उन्होंने शवदाहके दो फोटो भी लिये। करीब ६बजे स्थानको बिलकुल ठंडाकर के, और भस्मको जमुनाजीके प्रवाहमें बहाकर फूल नन्दूके सुपुर्द कर हमलोग घरकी ओर लौटे। फोर्टके पास पहुँचकर कुछ लोग आगरा होटल चले गये, कुछ शहरकी ओर। मैं भी विचार-मग्न घरकी ओर चल दिया। जो व्यक्ति कल शेरकी तरह दहाड़ता था, वह कहां गया? कल मैं जिनको डाक्टर साहब कहकर पुकार रहा था, वे अब कहां हैं? क्या उन्हें अथवा किसी औरको कभी स्वप्नमें भी खयाल हो सकता था कि डाक्टर साहब आगरेमें कौन्सिलकी मीटिङ्गके लिये आवेंगे और यहीं कालके ग्रास बन जावेंगे? वाह री भगवानकी माया! वाह रे खेल! वाह री भगवानकी दया! जिसके कारण अन्त समयमें मुझे उनकी यत्किञ्चित सेवा करनेका सौभाग्य मिला। क्या ही अच्छा होता यदि डाक्टर साहब अच्छे होकर बनारस जाते। परन्तु भगवानकी इच्छा प्रबल है। वह जो चाहता है, सो होता है।

डाक्टर गणेशप्रसाद एक आदर्श आचार्य्य थे

उनसे मिली हुई कुछ शिक्षाएँ

[रामदास गौड़]

"Is it not the chief disgrace in the world, not to be a unit, not to be reckoned one character, —not to yield that peculiar fruit which each man was created to bear, but to be reckoned in the gross, in the hundred or the thousand of the party, the section to which we belong, and our opinion predicted geographically as the north or the south?" —*Emerson.*

क्टर गणेशप्रसादके चरणोंमें बैठकर गणितकी शिक्षा पानेका सौभाग्य तो मुझे प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु हिन्दू विश्वविद्यालयमें उनसे घनिष्ट सम्पर्कके सुअवसरसे मैंने अनेक अनमोल शिक्षाएँ पायीं, जिनके लिये मैं उनको सदा अपना गुरु मानता रहा। यहाँ मैं विज्ञानके पाठकोंको उन थोड़ी-सी बातोंसे परिचित कराना चाहता हूँ।

डाक्टर गणेशप्रसाद जन्मजात आचार्य्य थे। उन्होंने अपना आचरण दूसरोंके अनुकरणके लिये नहीं बनाया था। उनका संयम उनका स्वभाव था। वह अपने संयम और आचरणकी दृढ़ताको प्रकट नहीं करना चाहते थे। परन्तु जीवनके साधारण व्यवहारोंमें वे खुल पड़ते थे। छिपना असम्भव था। उनके संयमका भारी अंग था समय-पालन। इसे वह व्यवहारमें तभी छिपा सकते जब वह संसारसे विरक्त होकर बिल्कुल एकान्त-सेवन करते होते। परन्तु वह जनककी तरह संसारमें भी संलग्न थे और विरागी भी थे। इसीलिये समय-पालनवाले संयमको वह छिपा न सकते थे। संसार-यात्रा भी वह समय-पालनसे अलग न कर सकते थे।

वह प्रायः एक बार ही आहार करते थे और वह भी अत्यन्त सादा होता था। इधर बुढ़ापेके कुछ बरसोंसे वह दो बार भोजन करने लगे थे, परन्तु अत्यन्त सादा। रोटी और तरकारी उनका भोजन पर्य्याप्त होता था, शरीर-यात्राके लिये जितना चाहिये उतना ही होता था, न कम न अधिक। यह बात वह बिना किसीपर प्रकट किये कर सकते थे। कपड़े भी वह बहुत थोड़े पहनते थे, जितनेकी पदके अनुसार आवश्यकता पड़ती थी। घरपर घराऊँ जोड़े न थे। रसोईकी सामग्री न थी। कोई संग्रह न था सिवाय पुस्तकोंके। यह था ब्रह्मचारीका जीवन जो सर्वसाधरणसे छिपा था।

वह स्त्रियोंसे दूर रहते थे। कभी उनका ध्यान न हो इस लिये वह ऐसी पुस्तकें भी न पढ़ते थे। वह सदा गणितमें डूबे रहते थे, मानसिकवृत्ति सदा गवेषणामें लिप्त रहती थी। अतः वह पूर्णतया ब्रह्मचर्य्यपालनमें रत थे।

वह स्वावलम्बी थे और स्वावलम्बनका उन्हें पूरा और सच्चा अभिमान था। वह किसीकी सहायता लेते न थे मिलती हुई भी लेते न थे। वह नौकर कभी साथ न ले चलते थे। खिदमतगारकी जरूरत न थी।*

---

*मिलती हुई सहायता अस्वीकार करनेका उदाहरण प्रोफेसर चन्दीप्रसादके लेखमें पाठक पढ़ चुके हैं। बिना सहायताके अपनी मुस्तैदीसे काम निकालनेका एक और उदाहरण लीजिये।

कोई पचीस बरसके लगभग हुए कि गणितके प्रसिद्ध विद्वान, डाक्टर साहबके गुरु, प्रोफेसर फारसैथ भारतमें आये और बनारस छावनीसे उनके गुजरनेकी खबर मिली। डाक्टर साहबने गुरुका सम्मान करना चाहा। वह प्रिंसिपलसे कहकर विशेष प्रबन्ध एवं समारोह कर सकते थे। परन्तु स्वावलम्बनकी मूर्ति डाक्टर साहब इतने झुकनेवाले न थे। उन्होंने अपने शिष्योंको आदेश दिया। उनके आठ-दस ग्रेजुएट शिष्य गौन आदिसे आच्छादित हो डाक्टर साहबके साथ स्टेशनपर मौजूद हो गये। प्रोफेसर फारसैथका स्वागत-सत्कार किया, माला पहनायी। इसमें अंग्रेज प्रिंसिपलको कोई श्रेय न मिला। डाक्टर साहब अपने गुरुके सम्मानके लिये भी किसीकी मददका अपनेको मोहताज नहीं बनाते थे।—रा० गौ०

ये आचरण साधारणतया लोगोंकी आँखोंसे ओझल थे, परन्तु घनिष्ट सम्बन्धवाले जानते थे। उनके चरित्रपर डाक्टर साहबके जीवनका अमिट प्रभाव पड़ता था।

वह निर्भीक थे और सत्यवादी थे। इन दो गुणोंके कारण उनकी सदा विजय हुआ करती थी।

वह घोर परिश्रमी थे, अतः जो काम हाथोंमें लेते थे, पूरा कर छोड़ते थे।

उनकी आँखें पूरी नहीं खुलती थीं। ऊपरी पलकसे आधीके लगभग ढकी रहती थीं। नीचेकी ओर ही प्रायः रहती थीं। चलते हुए अपने सामने कुछ गजोंसे अधिक दूर नहीं जाती थीं। आँखोंके इस्तेमालकी उनकी विधि वैज्ञानिक थी।

उनका ध्यान एकाग्र रहता था। अतः उनके सभी काम व्यवस्थित और नियमित होते थे।

ये सब गुण उनके शिष्यों और अनुयायियोंके लिए आदर्श रूप थे। इनका अनुकरण करनेके लिए स्वभावसे ही इच्छा होती थी।

आचार्य्य वही है जिसके आचरण शिष्यके लिए अनुकरणीय हों। जो केवल मौखिक उपदेश न करता हो, वरन् कर दिखाता हो। डाक्टर साहब कर दिखाते थे। आचरणके सम्बन्धमें डाक्टर साहब किसीको बहुत कम उपदेश देते थे, परन्तु अपने घनिष्ट सम्बन्धवालोंको वह बात बताते थे जिससे जीवनका मार्ग निष्कंटक हो जा सकता है, जिसे गाँठ बाँधकर जीवन-भर लाभ हो सकता है।

वह कभी धर्म-सम्बन्धी बातें न करते थे, परन्तु उन्होंने प्रायः सभी धर्मोंका अनुशीलन किया था और सबके प्रति उनके विचार उदार थे। यह बातें मुझे विशेष रूपसे उनसे पूछनेसे मालूम हुईं।

उनके विचारमें धार्मिकता और धर्म और मोक्ष सम्बन्धी ज्ञान किसीका इजारा न था। वह जब प्रिन्सिपल थे तब उन्होंने कई व्याख्यान ईश्वर और भक्ति सम्बन्धी व्याख्यान ऐसोंसे दिलवाये थे, जो कट्टर समाजमें ब्राह्मण वा इस कार्यके अधिकारी नहीं समझे जाते थे, यद्यपि इसी मतभेदपर श्रद्धेय डाक्टर भगवान्‌दासजीने वहाँके धर्मके प्रोफेसरका अवैतनिक पद छोड़ दिया था।

वह आस्तिक थे और सनातनी विचारके हिन्दू थे, परन्तु स्वयं सन्ध्या-पूजा उपासना आदि पहले नहीं करते थे। इस सम्बन्धमें उनका मत बहुत स्पष्ट रूपसे एक बार बातचीतमें मालूम हुआ। "भरसक दूसरोंकी भलाई हर तरहपर करते रहना और अनीतिक आचरणसे दूर रहते हुए कर्त्तव्योंका ठीक तौरसे पालन करते रहना ही मनुष्यको उचित है। ईश्वरकी प्रार्थना, उपासना, पूजा, स्मरण, भजन, इससे अधिक करनेकी जरूरत क्या है?" इस विचारसे वह और किसी प्रकारकी उपासना नहीं करते थे। गीताका "स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य" यही उनका सिद्धान्त बना रहा।

जब रेलगाड़ीसे कटते-कटते बचे तबसे उन्होंने स्मरण भजन भी अत्यन्त आवश्यक समझा और जेबमें जपमाला बराबर पड़ी रहती थी। रातको सोनेके पहले, बीच बीचमें, बड़े तड़के, अन्धेरे वक्तोंमें माला फेरते थे। उनका एक ब्राह्मण चपरासी था, उससे भजन गवाते थे और प्रेमसे सुनते थे।

"सभायां वा प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समंजसम्"

वह जिस सभा के सदस्य होते थे उसके अधिवेशनोंमें नियमसे उपस्थित रहना और काम करना वह अनिवार्य समझते थे। लोग साधारणतया सदस्य नाम-मात्रके लिए हो जाते हैं, उपस्थित रहना और काम करना आवश्यक नहीं समझते। डाक्टर साहब किसी सभाके सदस्य तभी होना स्वीकार करते थे जब उसमें काम करना उन्हें मंजूर होता था। विज्ञान-परिषत्‌की कौन्सिलकी बैठकमें उपस्थित होने और काम करनेके लिए उन्हें कलकत्तेसे इलाहाबाद आना पड़ता था, तब भी अपने कार्य-क्रममें वह उसे विशेष स्थान देते थे और किसी अधिवेशनमें उपस्थित न रह सकनेपर पछताते थे और भरसक अवश्य उपस्थित होते थे।

जब मैं हिन्दू विश्वविद्यालयमें था तब बहुधा उनसे सलाह लिया करता था और उनके उपदेशोंसे लाभान्वित भी होता था। वह कहा करते थे, कि अपने व्यक्तित्वको स्वतन्त्र और सुरक्षित रखो, 'प्रिज़र्व योर इण्डिविज्युअलिटी।' स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें उनके विचार निजी थे। असहयोग आन्दोलनमें सम्मिलित होते समय मैंने उनसे सलाह नहीं ली। "किसीका अनुयायी बनना अपने व्यक्ति-

त्वको नष्ट करना है, किसी दलबन्दीमें शामिल होना अपने व्यक्तित्वको खोना है।" अतः वह आन्दोलनमें शामिल होकर व्यक्तित्व खो बैठनेकी सलाह कदापि न देते। हिन्दू विश्वविद्यालय छोड़नेके पहले इस सम्बन्धमें बातचीत करनेको मैं और सेठ जमनालालजी उनके यहाँ एक बार गये थे। इन्होंने सेठजीकी बातें आदर और प्रेमसे सुनीं और बहुत शिष्टतापूर्वक इन्होंने उत्तर दिया, कि "यह बातें मुझे मालूम हैं, मेरी अनुकम्पा आपके साथ है, परन्तु मैं असहयोग नहीं करूँगा, मुझे क्षमा कीजिए।" वह दलबन्दीसे बराबर बचते थे। अपनेको अलग रखते थे। कौन्सिलमें जाकर भी बराबर स्वतन्त्र रहे। असहयोग-आन्दोलनसे और खद्दरसे सहानुभूति थी। स्वदेशी तो पहलेसे ही धारण करते थे, उस समयसे खद्दर भी धारण करने लगे। एक बार मेरे यहाँ खद्दरकी चर्चापर बोले कि "मेरी माता खद्दर पहननेपर राजी नहीं होतीं। तुम्हारे घरकी स्त्रियाँ उन्हें समझावें तो शायद राजी हो जायँ।" वह अन्तमें कलकत्तेमें विज्ञानके इण्डियन असोसिएशनमें बंगालियोंके दलमें धोखेसे फँस गये, जिसके लिए वह पीछेसे बहुत पछताये। उनकी सभी बातोंमें "अपने व्यक्तित्वको मत खोओ" यही लक्ष्य बराबर काम करता रहा।

विज्ञान-हस्तामलकमें और वैज्ञानिकोंके साथ-साथ उनकी जीवनी भी देनेका मैं निश्चय कर चुका था। अतः उनसे मैंने प्रार्थनाकी कि अपने देशके नवयुवकोंको आप कोई सन्देश दें, तो बहुत अच्छा हो। उन्होंने उस संदेशका प्रयोजन जाना तो ग्रंथके सम्बन्धमें कई आवश्यक परामर्श दिये और अपना सन्देश भी दिया। सन्देशथा "अपना लक्ष्य ऊँचा रखो।" यह सन्देश भी उस महान् आत्माके अनुकूल ही है। वह स्वयं अपना लक्ष्य सदा ऊँचा रखते थे और इस ऊँचाईमें अपने व्यक्तित्वकी रक्षा भी शामिल थी। लक्ष्य ऊँचा रखनेवाला तो अवश्य ही अपने व्यक्तित्वकी रक्षा करेगा।

गणितके आचार्यकी हैसियतसे डाक्टर साहबकी गिनती जहाँ संसारके पाँच-छः चुने विद्वानोंमें थी वहाँ चरित्रके सम्बन्धमें वह एक ही थे। वह दरजनों, कोड़ियोंमें गिने जानेवाले महापुरुषोंमें भी न थे।

उनका अन्त भी विलक्षण ही रीतिसे हुआ। वह अपने मनके काममें संलग्न थे। कुछ छात्रोंका उपकार करके एजेंडापेपर लिये आगेका काम देख रहे थे। शुद्ध कर्त्तव्यका ध्यान था। सदस्यताके काममें लगे हुए थे। ठीक ऐसेही समयमें, काम करते-करते, इस जगत्से प्रयाणका परवाना आ गया। एजेंडापेपर तो और लोगोंके देखनेमें उनके हाथमें था, परन्तु वास्तवमें मौतका परवाना वह अपने अन्तर्दृष्टिसे देख रहे थे। उन्होंने कई बार कहा था कि बंगालियोंका एक बड़ा दल कलकत्तेमें मेरा विरोधी है। माडर्नरिव्यूमें कईबार विरोधमें टीकाएँ भी हो चुकी थीं। बंगालियोंकी प्रांतीयता प्रसिद्ध है। फिर भी डाक्टर साहबका अनुपम दिमाग उनकी अमानुषिक मेधाशक्ति, उनके स्थानकी रक्षा करती रहती थी। वह अक्सर बायें हाथकी उँगलियोंसे अपने मस्तिष्ककी ओर इशारा करके कहते थे कि बस इसीके बलपर 'योर सर्वेण्ट इज़ इन्वलनरेबुल",—"बस इसी दिमागकी बदौलत आपका यह सेवक सुरक्षित है"—और यह बात कितनी सच्ची थी! अन्तमें दिमागकी रक्तवाहिनीके फटकनेसेही वह मौतके काबूमें आ सके। दिमाग सही रहते डाक्टर गणेशप्रसादको मौत भी जीत न सकती थी। उन्हें अपने दिमागका बड़ा दिमाग था—इसमें जराभी शक नहीं। उनके दिमागने एक आज्ञाकारी दासकी तरह अन्ततक काम दिया। यह सच्चा सेवक न मालूम कितना बोझ ढो रहा था, अपनी ताक़त भर काम कर रहा था। शायद अन्तमें बोझसे उसकी कमर टूट गयी, वह निर्जीव हो गिर पड़ा,—तब जाकर मौतका बस चला।

यह कोई निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि उन्हें पीड़ा हुई या नहीं हुई, या हुई तो कैसी हुई। वह शुरूसे ही बेहोश रहे और फिर होशमें आये ही नहीं। बेहोशीमें पीड़ा तो मालूम नहीं होती। अतः यह कहा जा सकता है कि उन्हें पीड़ा नहीं हुई होगी और शायद उनकी मौतसे उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ। उनकी धारणा जबरदस्त थी। वह होशभर भूलते न थे। बेहोशी ही उनकी उस भूलकी दशा थी जिसने उनकी चेतनाको अन्तमें आच्छादित करके सारे जीवन उनके पास न-आने-पानेका भारी बदला लिया। वह एकबारगी उस भूल और महानिद्राकी दशामें चले गये जिसके बाद उनकी इस जगत्की अद्भुत और दृढ़ धारणा और चौकन्नी जागरूकता लौट न सकी। पं० श्यामसुन्दर शर्म्मा लिखते

हैं कि उनका बायां हाथ बार बार उठकर सिरकी तरफ जाता था, जिससे सिरकी पीड़ा सूचित होती है। होती हो। यह भी सूचना हो सकती है कि मेरा वही मस्तिष्क आज जवाब दे रहा है जिसका मुझे इतना दिमाग था। यह शरीर अन्ततः वह यंत्र है जिसकी शक्ति और जीवनी परिमित है। उससे जब पूरा काम लिया जा चुका तब उसे छोड़ना ही पड़ता है। शायद कुछ संयमसे कामलेते तो यही यंत्र और पचीसों बरसतक काम देता। डाक्टर साहब अपनी शक्तिकी अटकलमें चूक गये। उन्होंने अगर जीवनके हिसाबमें यही एक ही और भारी भूल की जिससे ऐसा अनमोल जीवन इतने शीघ्र समाप्त हो गया।

यह आचार्य्य अपनी मृत्युसे भी हमें भारी शिक्षा दे गया। हमें अपनी शारीरिक शक्तियोंका प्रयोग समझ बूझकर बड़े संयमसे करना चाहिए। अत्यधिक काम लेकर थका डालनेसे अपने जीवनकी हानि संभव है। डाक्टर गणेशप्रसाद इस प्रकार जीतेजी भी आचार्य्य रहे और मरनेपर भी आचार्य्यत्व स्थिर रखा।

उनकी गणित-सम्बन्धी गवेषणाएँ बहुत हैं। उनकी पुस्तकें भी अनेक छप चुकी हैं। उनके कई काम अपूर्व रहे। उनका मनसूबा था कि अवकाश ग्रहण करके अपना छापाखाना खोलूँगा। उसमें स्वयं प्रकाशक होकर हिन्दीमें उच्च गणितकी पुस्तकें निकालूँगा। अब तो यह मंसूबा उनके साथ ही मर गया। हिन्दीमें गणिताचार्य्योंकी जीवनी अपने ग्रंथोंके आधारपर मुझसे लिखवा रहे थे। एक भाग मैं समाप्त कर चुका था। समर्पणके लिए उन्होंने बड़े आग्रहसे मुझसे दो सोरठे लिखवाये थे और अन्तिम भेटमें पहली मार्चको वह मुझसे ले भी गये। सोरठे यह थे—

> पूज्य चरन प्रिय तात, रामरामगोपाल सिंह
> सिय सी स्नेही मात, जूठनदेवी पद युगल।
> सुमिरि उभय कर जोरि, विनय विहित अरपन करौं॥
> छमिय लरिकई मोरि, बालक लघु कृति लीजिये।

अंग्रेजीमें "सम ग्रेट म्यथम्यटिशन्स आव् दि नैन्टीन्थ सेंटचूरी" की दोनों जिल्दें उन्होंने माता-पिताको समर्पित की हैं। तीसरी छप रही थी। अपूर्ण है। मैं आशा करता हूँ कि उनके छात्रगण उसे तो अवश्य ही पूरा छपवा डालेंगे। उनका एक महत्वका गवेषणात्मक निबन्ध तो "न्यशनल् इंस्टिट्यूट आव् सायंसेज़" प्रकाशित करेगा ही।

उनका एक महत्वका ग्रंथ तैयार था और किसी छापेखानेको छापनेके लिये दे दिया गया था। यह ग्रंथ था "ए ट्रीटिज़ आन् डिफ्रेंस इक्वेशन्स" (A Treatise on Difference Equations)। इस ग्रंथके तैयार होनेकी और छपनेको दिये जानेकी बात तो स्वयं डाक्टर साहबसे मालूम है, परन्तु यह पता नहीं कि किस छापेखानेको यह पुस्तक दी गयी है। यह बात प्रकाशित करने योग्य इस लिये है कि यह विषय अभीतक अछूता है, इसपर प्रामाणिक ग्रंथ यही था। ऐसे अनमोल मौलिक ग्रंथकी सहजमें चोरी हो सकती है। कोई विद्वान् इसे अपनी कृति सहजमें ही बनाकर डाक्टर साहबकी अनमोल प्रतिभा और अद्भुत परिश्रमकी चोरी कर सकता है। उनके छात्रोंको चाहिए कि सजग रहें और उस ग्रंथका पता लगाकर ही दम लें।

उनकी कई पुस्तकोंकी रूपरेखा उनकी हाथके लिखे नोटोंमें मौजूद है, जिन्हें पूरा करना सहज नहीं है। इनमेंसे एक है 'On the Summation of Infinite Series of Legendre's Functions having Non-integral Parameters.' इसकी कुछ सामग्री नोटोंके रूपमें है, कुछके स्थान छूटे हुए हैं। सम्भव है अलग कागजों पर कुछ काम हुआ हो और उनके रद्दी-सरीखे कागजोंके अन्दर पड़े हों। क्या कोई योग्य शिष्य इनका उद्धार करेगा?

डाक्टर साहब जब विदेशमें थे तब विशेष रूपसे प्रोफेसर काक्सको लम्बे-लम्बे पत्र लिखते थे। इनमें उन बड़ी-बड़ी समस्याओंकी चर्चा रहती थी जिनके सुलझानेमें विदेशोंके आचार्य्य और वे स्वयं रस लेते थे। वे पत्र अब कहाँ मिलेंगे? प्रोफेसर काक्सकी कागजी सम्पत्ति किस पुस्तकागारकी शोभा बढ़ा रही है? क्या वह कहींसे मिल सकती है! डाक्टर साहब और प्रोफेसर काक्सकी भी जीवनीकी प्रचुर सामग्री इन रद्दी कागजके टुकड़ोंमें निहित है और मिल सकें तो भावी जीवनीकारके लिए ये अतुल सम्पत्ति हों। क्या इनकी उपलब्धि कभी हो सकेगी? इन पत्रोंसे डाक्टर साहबके चरित्रकी अनमोल अन्तःसाक्षी मिल सकेगी।

श्रद्धाञ्जलियाँ

प्रयाग विश्वविद्यालयके भूतपूर्व वैसचांसिलर महामहोपाध्याय श्रीमान् पंडित गङ्गानाथ झा, M. A., D. Litt., लिखते हैं—

डाक्टर गणेशप्रसादजी से मेरा परिचय जिस दिन वे विलायतसे आकर म्योर कालेजमें गणिताध्यापक हुए उसी दिन हुआ और तबसे आजीवन बना रहा। उनकी कृपा मेरे ऊपर बराबर बनी रही। और विश्वविद्यालयोंमें भी कभी-कभी मतभेद होनेपर भी उस कृपामें कभी त्रुटि नहीं हुई। ऐसे मेधाशाली पुरुष अपने शास्त्रमें तन्मय कमी लोग होते हैं जैसे डाक्टर साहब थे। मित्र हो तो ऐसा ही हो। पर वृद्ध होनेपर ये सब भलाइयाँ बुराईमें परिणत होती हैं—

यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान्।
तावदेव विलिख्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः॥

(२)

हिन्दू विश्वविद्यालयके भूतपूर्व रजिस्ट्रार तथा वर्त्तमान वैस-प्रिंसिपल श्रीमान् प्रोफेसर श्यामाचरण दे, M. A. लिखते हैं—

I consider it a great privilege to contribute a few lines in memory of my late lamented friend, colleague and contemporary, Dr. Ganesh Prasad. He was one of those great souls of India whom our motherland can be well proud of. As a mathematician, Dr. Ganesh Prasad's position was almost unique. I know hardly of any one who could teach as well as guide research work in so many different branches of Mathematics as Dr. Ganesh Prasad could. He was a great scholar and excellent teacher As a man, he possessed unlimited energy, wonderful memory, extraordinary love for his pupils and uncommonly keen sense of duty. Whatever he undertook in his life he did thoroughly. He was a perfect ascetic. His life was so simple that it will not be an exaggeration to say that he was "Plain Life and High Thinking" incarnate.

2 - 8 - 35 S. C. De.

(३)

प्रयाग विश्वविद्यालयके रसायनाचार्य्य एवं विज्ञान-परिषत्के वर्त्तमान सभापति डाक्टर नीलरतन-धर, डी. एस्-सी लिखते हैं।

In the Science Congress week in January last I met Dr. Ganesh Prasad for the last time on the lawn of the University College of Science, Calcutta. There was a big party of Ladies and Gentlemen sitting on chairs and taking their tea on the invitation of the Vice-Chancellor of the Calcutta University. Dr. Ganesh Prasad in his usual way was going round, meeting and shaking hands vigorously with his friends. When he saw me he rushed towards me and caught hold of my right hand and said "You don't believe in God". I retorted "Why, doctor" ? and the answer was "Because you believe that life is a chemical process", My response was "It is not inconsistent to believe in God and also that life is a chemical process". This talk shows the inner nature of the man, intelectually keen and vigorous in habits, probably far too vigorous for our mortal existence. It is not easy to meet such a man and that is why our loss is so great at his sudden death.

N. R. Dhar

(४)

हैदराबाद उसमानिया-विश्वविद्यालयके गणितके उपाचार्य्य श्री रजीउद्दीन सिद्दीकी साहब, एम्. ए., लिखते हैं—

The news of Dr. Ganesh Prasad's sudden and unexpected death came in the nature of a severe shock to us, the more so as only two or three days previous to it we had received from him the question papers he had set for our university examinations. I had seen him at Calcutta at the time of the last Science Congress session, and I thought that he looked somewhat exhausted. He told me he had caught a cold, and was keeping warm as a precautionery measure. Certainly, no one had the least premonition that the end was so near. However, there is nothing left for us now but to mourn his loss.

I had met him for the first time at the Bangalore session of the Indian Science Congress, when he was President of the Mathematics-Physics section. He showed much interest in my work and gave me an account of the work in which he was himself engaged at that time. He was very much pleased to learn that I was at the Osmania University, and told me very often that he had a great sympathy and admiration for the work that the Osmania University was doing. Sometime ago when I had an offer from other universities, he strongly insisted on my refusing them, reminding me that my place was here in Hyderabad. He always had the interest of the Osmania University at his heart, and was never tired of repeating that the university has a great future before it.

He was invaluable to us as an examiner for M. A., B. A., and B. E. Examinations, being one of the very few mathematicians of repute well-versed in Urdu. In this respect at least his loss is irreparable to us, There is no immediate prospect of his place being filled up. Even though he had his hands full of all sorts of urgent work, he was always willing to set question papers, and value answer books for the Osmania University. He himself told me that he had to refuse the examinership of many other universities for want of time, but he made an exception of the Osmania University. He was ready to help us in every other way in his power. For instance, just a week before his death, I had a letter from him promising to draw up a list of advanced modern books on pure mathematics for our reference library.

He always made it a point of befriending young people and encouraging them in their work. While still at Bangalore, and only a day or two after our first meeting, he very characteristically invited me to Calcutta, and extracted a promise from me that I would stay with him. I was hesitating at first lest I put him to a lot of inconvenience. A few months later when I sent him a telegram from Lahore informing him of my visit to Calcutta, he was staying at Benares, and came all the way to Calcutta to fix me up, even though he had to go back the same evening. His house was always open to his friends and students, and his sincerity can only be appreciated by those who have enjoyed his hospitality.

He himself led a very simple life, and used to tell me that he was a Brahmachari and needed nothing but the bare necessities for existence. He had given up all he possessed and earned to educational institutions.

In this connection he often spoke of the Caliph Omar who is well-known for his in-

अँग्रेजीके "हूज़हू"में डाक्टर साहबके सम्बन्धमें नोट

PRASAD GANESH, M. A. (CANTAB), D. Sc, Life-President, Benares Mathematical Society; President of the Calcutta Mathematical Society, and Hardinge Professor of Higher Mathematics in Calcutta University; **Born** Ballia, Agra Province, India, 15th November 1876. **Education**: Ballia; Allahabad; Cambridge; Gottingen. B. A (Allahabad,) with first class honours in Mathematics, 1895; M. A. (Allahabad, Calcutta) 1896; D. Sc. (Allahabad) 1898; Government of India Scholar at the Universities of Cambridge and Gottingen 1899-1904; B. A. (as advanced Student of Christ-College) 1901; temporary additional Professor of Mathematics, Muir Central College, Allahabad, 1904-5; Professor of Mathematics, Queen's College, Benares, 1905-14; Fellow Allahabad University, 1908-22 University Professor, Calcutta, 1914-18; University Professor, (1918-23) and Dean of the Faculty of Science (1921-23) in Benares Hindu University; Member of the Court, Hindu University, and Member of its Senate and Council 1917-23; Member of the Court, Executive and Academic Councils, and Facutly of Science Allahabad University, 1923-32; Member of of the Legislative Council of the United Provinces Allahabad University, 1924-27; Vice President of the Indian Association for the Advancement of Science Calcutta, 1924. Fellow of the Calcutta University, 1924, Member of the Senate and Executive Council of the Agra University, 1927-33; President of the Mathematical and Physical Section of the Indian Science Congress of 1932.

Foundation Fellow and Member of the Council of the National Institute of Science of India, 1935, Died at Agra suddenly of cerebral haemorrhage on 9th, March, 1935.

PUBLICATIONS

Constitution of Matter and Analytical Theories of Heat, 1903;

Text-books of Differential and Integral Calculus 1909 & 1910;

Mathematical Research in the last Twenty Years, 1923;

The Place of Partial Differential Equations in Mathematical Physics, 1924;

An Introduction to the Theory of Elliptic Functions and Higher Transcendentals, 1928;

Lectures on recent researches in the theory of Fourier Series, 1928;

---

tegrity and his simple life. Dr. Ganesh Prasad had a great sympathy for the religion and culture of Islam. His knowledge of Muslim history and tradition was really amazing. He knew the Persian and the Urdu languages and literature very well, and had a couplet from the famous Persian poets ready for every occasion.

Others who have known him longer and more intimataly are better qualified than myself to speak of his mathematical achievements, of his noble character, of the plain life he lived and of the sacrifices he made for others.

Truly, he was a great man, and a great Savant !!

30-7-35.

Raziuddin Siddiqi,
Professor of Mathematics.

Research Papers and Books published by Dr. Ganesh Prasad

[Gorakh Prasad]

1. Research or Historical Papers.

1. On the potentials of ellipsoids of variable densities, **Messenger of Mathematics**, Vol. 30, pp. 8-15, 1900.

2. Constitution of matter and analytical theories of heat, **Gottingen Abhandlungen**, Vol. 2, Number 4. 67 Pages, 4to, 1903.

3. Uber der Begriff der Krummungslinien, **Gottingen Nachrichten**, pp. 201-204, 1904.

4. Uber die Hilbertschen Satze in der Theorie der Flachen konstanter Gaussscher Krummung, **Mathematische Annalen**, Vol. 61, pp. 203-210, 1905.

5. Uber eine Klasse von nichtanalytischen Flachen konstanter positiver Gaussscher Krummung, **Mathematische Annalen**, Vol. 64, pp. 136-141, 1907.

6, On the foundations of the theory of surfaces, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Vol. 1, pp. 131-133, 1909.

7. On a non-analytical potential function **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Vol. 1, pp. 39-41, 1909.

8 Uber das Gaussscher Verfahren fur die Zerlegung einer ganzen homogenen Function in Kugelfunctionen, **Mathematische Annalen**, Vol 72, pp. 435-436, 1911.

9. On the present state of the theory of Fourier series, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Vol. 2 (i), pp. 17-24, 1914.

10. On some recent researches relating to the expansibility of functions in infinite series, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Vol. 2 (ii), pp. 3-9, 1914.

11. On the existence of mean differential coefficient of a continuous function, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**,

---

A Treatise on Spherical Harmonics and the Functions of Bessel and Lame, in two parts, 1930 and 1932 ;

Lectures on recent researches on the mean value theorem of the differential calculus 1931 ; Some Great Mathematicians of the Nineteenth Century ; their Lives and their Works in three volumes, Volume I, 1933, Volume II, 1934 ; Volume III (incomplete at death). Introduction to the Modern Theory of Difference Equations, 1934 ; The fundamental theorems of the theory of functions of a complex variable, discussed critically and historically, (not yet published); various papers in the Messenger of Mathematics ; Mathematical Annalen, Philosophical Magazine, Rendiconti del Circolo Mathematics di Palermo, Proceedings of the Benares Mathematical Society, Bulletin of the Calcutta Mathematical Socitey. Bulletin of the American Mathematical Society ; Tohoku Mathematical Journal and Crelles Journal.

Vol. 3. pp. 53-54. 1914.

12. From Fourier to Poincare, A Century of Progress of Applied Mathematics, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society,** Vol. 3, pp. 1-4, 1915.

13. Expansion of an arbitrary function in a series of spherical harmonics, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society,** Vol. 2, pp. 1-2, 1915.

14. Failure of Poisson's equation for certain volume distributions, **Philosophical Magazine,** (sixth series), Vol. 34, pp. 138-142, 1917.

15. On a peculiarity of the normal component of the attraction due to certain surface distributions, **Philosophical Magazine** (sixth series) Vol. 36, pp. 475-476, 1918.

16. On the Newtonian potential due to a surface distribution having a discontinuity of the second kind, **Rendiconti Circolo Matem di Palermo,** Vol. 42, pp. 125-127, 1917.

17. On mathematical research in the last twenty years. **Proceedings of the Benares Mathematical Society,** Vol. 2, pp. 32-42, 1920.

18. On the potential of a double layer whose strength has a discontinuity of the second kind. **Proceedings of the Benares Mathematical Society,** Vol. 2, pp. 32-42, 1920. (?)

19. Weierstrass, **Proceedings of the Benares Mathematical Society,** Vol. 5, pp. 35-42, 1923.

20. A brief history of the exact solution of the general equation of the fifth or higher degree, **Proceedings of the Benares Mathematical Society,** Vol. 6, pp. 40-50, 1924.

21. On the fundamental theorem of the Integral Calculus, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society,** Vol. 5, pp 57-68, 1925.

22. Weierstrass, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society,** Vol. 15, pp.111-118, 1925.

23. Sir Asutosh Mukerji, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society.** Vol. 15, pp. 51-56, 1925.

24. On the fundmantal theorem of the Integral Calculus, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society,** Vol. 16, pp. 1-8, 1926.

25. On the fundamental theorem of the Integral Calculus for Lebesgue integral. **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society,** Vol. 16, pp. 109-116, 1926.

26. On the fundamental theorem of the Integral calculus for an integral having an infinite discontinuity of the second kind, **Proceedings of the Benares Mathematical Society,** Vol. 7-8, pp. 55 59, 1926.

27. On Thomae's criterion, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society,** Vol. 18, pp. 1-4, 1927.

28. On the differentiability of a certain type of integral function, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society,** Vol. 18, pp 77-86, 1927.

29. On the summability (C 1) of Fourier series of a function at a point where the function has a discontinuity of the second kind, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society,** Vol. 18, pp. 151-158, 1927.

30. On the summability (C 1) of the Legendre series of a function at a point where the function has a discontinuity of the second kind, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society.** Vol. 18, pp. 177-184, 1927.

31. On Rolle's function (H) as multiple function, **Proceedings of the Benares Mathematical Society,** Vol. 10, pp. 1-9, 1928.

32. On the nature of ($\mapsto$) in the mean value theorem of differential calculus, **Bulletin of the American Mathematical Society,** Vol. 34, p. 261, 1928.

33. On the existence of the mixed differential coefficient of a repeated integral, **Rendiconti Circolo Matem. di Palermo**, Vol 52, pp. 175-184, 1928.

34. On the failure of Lebesgue's criterion of the summability (C 1) of the Fourier series of a function, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Vol. 19, pp. 1-12, 1928.

35. On the failure of Lebesgue's criterion of the summability (C 2) of the Fourier series of a function, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society** Vol. 19, pp. 24-28, 1928.

36. On the summability (C 1) of the Fourier series of a function, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**. Vol. 19, pp 51-58, 1928.

37. On the summability (C 1) of the derived series of the Fourier series of an indefinite integral, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Vol. 19, pp. 95-100, 1928.

38. On the strong summability (C 1) of the Fourier series of a function, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Vol 19, pp. 127-134, 1928.

✓39. On the function in the mean-value theorem of the Differential Calculus, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Commemoration Volume, 1929.

✓40. On the differentiability of the integral-function, **Crelle's Journal**, Vol. 160, 1929.

41. On Rolle's function as multiple-valued function, **Proceedings of the Benares Mathematical Society**, Vol. 10, 1929.

42. On the Zeros of Weierstrass's non-differential function, **Proceedings of the Benares Mathematical Society**, Vol. 11, 1930.

43. On the nature of the mean-value theorem of the Differential Calculus, **Bulletin of the American Mathematical society**, Vol. 36. 1930.

✓44. On the summation of infinite series of Legendre's functions, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Vol. 22, 1930.

✓45. On the determination of f (h) corresponding to a given Rolle's function (h) when it is multiple-valued, **Proceedings of the Benares Mathematical Society**, Vol. 12, 1931.

✓46. On non-orthogonal system of Legendre's functions, **Proceedings of the Benares Mathematical Society**, Vol. 12, 1931.

✓47. On the summation of infinite series of Legendre's function, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Vol. 23, 1931.

✓48. On Rolle's function in the mean-value theorem for the case of a nowhere differentiable f' (x), **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Vol. 23, 1931.

✓49. On the differentiability of the indefinite integral and certain summability criteria ; Address delivered in 1932 to the Mathematical and Physical Section of the Science Congress.

✓50. On Lebesgue's integral mean-value for a function having a discontinuity of the second kind, **Proceedings of the Benares Mathematical Society**, Vol. 14, 1933.

51. On Lebesgue's absolute integral mean-value for a function having a discontinuity of the second kind, Special Memorial Volume of the **Tohoku Mathematical Journal** in honour of Prof. Hayashi, pp. 147-150, 1933.

√52. Hobson, Presidential address on the life and work of the late Prof. Hobson, **Bulletin of the Calcutta Mathematical Society**, Vol. 25, 1933.

2. Books.

1. Text-book on Differential Calculus, 1909.
2. Text-book on Integral Calculus, 1910.
3. The place of Partial Differential Equations in Mathematical Physics, 1924.
4. An introduction to the theory of elliptic functions & higher transcendentals, 1928.
5. Lectures on recent researches in the theory of Fourier Series, 1928.
6. A Treatise on Spherical Harmonics and the functions of Bessel and Lame(in 2 parts), 1930, 1932.
7. Lectures on Recent Researches on the Mean-Value Theorem of the Differential Calculus, 1931.
8. Some Great Mathematicians of the Ninteenth century—their lives and their works Vol. I 1932, Vol. II 1934.
9. Introduction to the modern theory of Difference Equations, 1934.
10. The Fundamental Theorems of the theory of Functions of a complex variable discussed critically & historically, [Was in the press at the time of his death.]
11. He was engaged in writing the third volume of **Some Great Mathematicians of the Ninteenth Century** at the time of his death.

संशोधन

पृष्ठ २०८ भाग ४१के पहले कालममें २४वीं पंक्तिमें "*bfn*" की जगह "*bin*" पढ़िये ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४२ } प्रयाग, वृश्चिकार्क, सं० १९९२ । नवम्बर, १९३५ ई० { संख्या २

मंगलाचरण

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्म्माय दृष्टये ॥
यजु० ४०।१५ ॥

सत्यका मुख स्वर्णमय पात्रसे ढका हुआ है। हे (सत्यके) पोषण करने वाले (प्रभु!) सत्य धर्मको देख पड़नेके लिए तू उसे उघाड़ दे।

चीनीके कारखानोंसे बचे शीरेका खेतीमें उपयोग

[डा० नीलरत्नधर, डी. एस. सी., आई. ई. एस०]

ठारहवीं शताब्दीके मध्यसे इस बातका पता लगाया जा रहा था कि धूप एवं कृत्रिम प्रकाशका पौधोंके विकास और स्वास्थ्यपर क्या प्रभाव पड़ता है। सन् १७७१ में डच चिकित्सक इंजनहाउसने यह मालूम किया कि हवाका कर्बनद्विओषिद जलसे संयुक्त होकर धूपकी सहायतासे पौधोंमें भोजन उत्पन्न करता है। वही भोजन जिसका निर्माण पौधोंमें होता है, पशुओंके भी काम आता है। पशु इस भोजनको फिर कर्बनद्विओषिद और जलमें विभाजित कर देते हैं और प्रक्रियामें उत्पन्न 'सामर्थ्य' द्वारा प्राणी जीवनचर्य्याके समस्त कार्य करते हैं। प्राणियों द्वारा विमुक्त कर्बनद्विओषिद और जलका पौधे फिर धूप की विद्यमानतामें उपयोग करते हैं। ये दोनों प्रक्रियाएं निम्न रासायनिक समीकरण-द्वारा व्यक्त की जा सकती हैं।

$६कओ_२ + ६उ_२ओ + स \rightleftharpoons ६क_६उ_{१२}ओ_६$ ये दोनों प्रक्रियायें साथ-साथ होती रहती हैं और इसीलिये वायुमंडलमें कर्बनद्विओषिद और ओषजनकी निष्पत्ति स्थिर रहती है।

इंजनहाउसके उपरान्त अनेक बनस्पतिवेत्ताओं, शरीरवेत्ताओं, रसायनज्ञों और कृषिविशारदोंने धूप और प्रकाशका पौधोंके जीवनपर क्या प्रभाव पड़ता है, यह समझानेका यत्न किया, और अनेक अन्वेषण किये गये, और अब हमारी यह धारणा पक्की हो गयी है कि पौधोंपर धूपका प्रभाव बड़े ही महत्वका है।

यही नहीं, आजकल तो प्रकाशका पशुओं और मनुष्योंके जीवनपर प्रभावका भी अध्ययन वैज्ञानिक पद्धतियोंसे किया जा रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि रिकेट, कैन्सर, और इसी प्रकारके अन्य रोग गर्म देशोंमें शीत-प्रधान देशोंकी अपेक्षा कहीं कम होते हैं, चाहे इन देशोंके निवासियोंका भोजन अन्योंकी अपेक्षा कम गुणवान ही क्यों न हो। इस बातको अब सभी मानने लगे हैं कि रिकेट, कैन्सर और अन्य रोग भी प्रकाशकी सहायतासे दूर किये जा सकते हैं। पर भूमिकी अवस्थापर प्रकाशका क्या प्रभाव पड़ता है, इसका वैज्ञानिक अनुशीलन अभीतक नहीं किया जा सका है।

भारत और मिश्रके किसानोंने अपने अनुभवसे बहुत दिनोंसे यह जान रखा था कि सूर्यकी तीव्र धूप भूमिके लिये बहुत उपयुक्त है, और इन दोनों देशोंमें मिट्टीको धूप दिलानेकी प्रथा बहुत दिनोंसे प्रचलित थी और अबतक प्रचलित है।

मिट्टीकी अवस्थाको प्रकाश किस प्रकार सुधारता है? इस प्रश्नका वैज्ञानिक-समाधान करनेके लिये प्रयाग-विश्वविद्यालयकी रासायनिक प्रयोगशालाओंमें बहुत से प्रयोग किये गये हैं, और यह पता चलाया गया है कि मिट्टीमें नोषजन-चक्रके नियमित करनेमें प्रकाशका अत्यन्त महत्वपूर्ण हाथ है।

कृषि सम्बन्धी भारती 'रायल कमीशन'ने १९२८में अपनी रिपोर्टमें लिखा था कि भारतीय भूमि नोषजन यौगिकमें निर्धन है, और इस देशमें खादका प्रश्न नोषजन की कमीका प्रश्न है। यह तो निर्विवाद बात है कि पौधोंके स्वस्थ विकासके लिये नोषजन संयुक्त पदार्थोंको भूमिको प्राप्त होना नितान्त आवश्यक है। जिस प्रकार प्राणियोंकी शरीररक्षाके लिए नोषजनिक पदार्थोंकी आवश्यकता है। उसी प्रकार पौधोंके लिए भी नोषजनिक भोजन आवश्यक है। सीधे ही वायुमें नोषजन मुक्त अवस्थामें रहता है और अधि-कांश पौधे सीधेही नोषजन वायुसे प्राप्त करनेके लिये प्रयोग करते हैं, उन्हें तो नोषजनके यौगिक चाहिये, यूरोप और संसारके अन्य उन्नत देशोंमें भूमिको खादके रूपमें अमोनियम लवण, यूरिआ, नोषेत, श्यामाभिद आदि यौगिक दिये जाते हैं। ये सब यौगिक भूमिमें अमोनियम लवणोंमें परिणत हो जाते हैं। आजकल संसारके देशोंमें इस बातमें प्रतिद्वन्द्विता हो रही है कि कौन-सा देश हाबर-बोश

(Haber-Bosch) और ओस्टवाल्ड विधियोंकी सहायतासे अधिक अमोनियम लवण और नोषिकाम्ल (शोरेका-तेज़ाब) तैयार कर सकता है। जैसे किसी समय गन्धकाम्ल की मात्रा किसी देशकी सम्पन्नताका परिचायक थी, उसी प्रकार आज-कल नोषजन यौगिकोंका बनाना देशकी अवस्थाका सूचक है। अमोनियम लवण मिला देनेसे भूमिकी उपजशक्ति बहुत बढ़ जाती है। और कहीं-कहीं तो दुगुनी भी हो जाती है। उदाहरणतः, बेलजियम की भूमि प्रति बीघा भारतकी अपेक्षा दुगुना गेहूँ उत्पन्न करती है।

हमारे देशमें कोई ऐसा भी कारख़ाना नहीं है जो वायुके, नोषजनका उपयोग करके नोषजनिक यौगिक तैयार करे और इसीलिये स्वभावत: हमें विदेशोंमें तैयार किये गये अमोनियम लवणोंका सहारा लेना पड़ता है। पर हमारे यहाँके किसानोंकी आर्थिक स्थिति इतनी शोचनीय है कि वे विदेशमें आये हुए तेज़ दामोंके अमोनियम लवणोंको नहीं खरीद सकते हैं। अधिकतर उन्हें गोबर, तेलकी खली, और घास-फूसपर खादके लिए निर्भर रहना पड़ता है। इन सब पदार्थोंमें पोटीनके समान नोषजनके संकीर्ण यौगिक विद्यमान रहते हैं। खादके रूपमें मिट्टीमें मिल जानेपर ये अमोनियम लवणोंमें परिणत हो जाते हैं। अमोनियम लवण फिर मिट्टीमें स्थित वायुके ओषजनसे संयुक्त होकर 'नोषित' (नाइट्राइट) यौगिक बनाते हैं। ये नोषित फिर और ओषजनसे संयुक्त होकर 'नोषित' (नाइट्रेट)में परिणत हो जाते हैं, और वस्तुतः ये नोषेत ही पौधोंका भोजन हैं। पौधे भूमिमेंसे नोषेतोंका ग्रहण करके अपने शरीरके प्रोटीन पदार्थोंका निर्माण करते हैं। पौधे अमोनियम लवणोंको तो बहुत ही कम और नोषितोंको तो बिलकुल नहीं ग्रहण करते हैं। पौधोंके शरीरमें शर्करा नशास्ता आदिके समान कर्बोदेत पदार्थ तो होते ही हैं। ये पदार्थ नोषितोंसे संयुक्त होकर अमिनो-अम्ल बनाते हैं जिनसे बादको प्रोटीन बनते हैं। हमारी प्रयोगशालामें किये गये प्रयोगोंसे पता चला है कि कांचके बर्तनोंमें धूपकी सहायतासे कर्बोदेत और नोषित यौगिक (पर अमोनियम लवण नहीं) अमिनोअम्लोंमें परिणत हो जाते हैं।

अधिकतर यह विश्वास किया जाता है कि प्रोटीनोंसे अमोनियम लवणोंका बनना, और फिर इन लवणोंको नोषितोंमें परिवर्तित होना और अन्तमें नोषितोंका नोषेतोंमें ओषदीकृत होना ऐसी रासायनिक प्रक्रियाएँ हैं जो कीटाणुओंद्वारा प्रेरित होती हैं। पर हमारे प्रयोगोंसे यह भली प्रकार प्रकट हो गया है कि कीटाणुओंके नितान्त अभावमें भी प्रोटीन अमोनियम लवणोंमें और ये लवण क्रमशः नोषितों और नोषेतोंमें वायु और प्रकाशकी सहायतासे परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रयोगफलसे यह स्पष्ट है कि प्रकाशका भूमिपर क्यों हितकर प्रभाव पड़ता है। यह इसीलिये है कि पौधोंको नोषेतोंकी आवश्यकता होती है, और प्रकाश अमोनियम लवणोंको नोषेतोंमें परिणत करनेमें बड़ा सहायक होता है। हमारी इस धारणाका समर्थन जीलोट हिल्स, इंगलैण्डके 'एग्रिकल्चरल रिसर्च स्टेशनमें कार्य्य करनेवाले डा० ए. एस. कोरबेट महोदयने, एवं हवाई यूनीवर्सिटीके डा० ओ. एन. एलेन, लायलपुरके डा० सरकरिया और डा० फ़ज़लउद्दीन आदि महोदयोंने भी किया है। यह भी मनोरंजक बात है कि शीतोष्ण प्रदेशोंमें तो भूमिके बैक्टीरिया २५° पर अधिकतम सफलतासे कार्य्य करते हैं, पर हमारे यहांकी भूमिमें इनकी अधिकतम कार्य्य संचालिनीशक्ति २५° पर नहीं प्रत्युत ३५° पर है। अतः उष्णप्रदेशस्थ मनुष्योंके समान उष्ण देशोंके बैक्टीरिया भी अधिक तापक्रमपर कार्य्य करनेके अभ्यासी होते हैं। पूसा, प्रयाग, लायलपुर और मिश्र देशमें किये गये प्रयोगोंसे स्पष्ट है कि अप्रेल, मई और जून मासोंमें ९ इंच गहराईतक भी भूमिका तापक्रम ५०° से अधिक भी हो जाता है। इस ताप-क्रम पर बहुतसे बैक्टीरिया तो मर ही जाते हैं अथवा निष्क्रियहो जाते हैं, और इसीलिये डा० कोरबेटका कथन है कि मलाया द्वीपकी मिटटीमें इंगलैडके रोथेम्सटेडकी अपेक्षा बैक्टीरिया बहुत कम हैं। अतः यह आश्चर्यकी ही बात है कि यद्यपि गर्मीकी ऋतुमें बैक्टीरियोंकी संख्या और शक्ति तो घट जाती है, तथापि भूमिमें इसी ऋतुमें ही अधिकतम नोषेत उपस्थित रहता है। इस प्रश्नका समाधान तभी हो सकता है जब कि हम यह मानें कि बैक्टीरियोंकी अपेक्षा सूर्य्यका प्रकाश भूमिमें नोषेतोंके बनानेमें अधिक प्रबल है।

व्यापारकी दृष्टिसे 'शीरा'के उपयोगका प्रश्न आज-कल अधिक महत्वका हो गया है। चीनीके कारखानोंकी

उत्तरोत्तर अभिवृद्धिके कारण शीरा बहुत ही अधिक मात्रा-में बन रहा है, ऐसा अनुमान है कि हमारे देशमें चीनीके कारखानोंमें प्रति वर्ष ५,००,००० टन सीरा निकलता है। आजकल सबकी-सभी यह मात्रा व्यर्थ बरबाद जा रही है। भारतीय कारखानोंके सम्मुख इसके उपयोग करनेका प्रश्न बड़े भयंकर रूपमें प्रस्तुत हो रहा है।

प्रयाग विश्वविद्यालयकी रसायनशालामें किये गये प्रयोगोंसे हमारी यह धारणा निश्चित हो गयी है कि यदि खेतोंमें चीनीके कारखानोंका यह शीरा छोड़ दिया जाय और फिर खेतोंको भली प्रकार जोता जाय तो, मिट्टीमें नोषेतों और अमोनियम लवणोंकी मात्रा बढ़ जाती है और यह तो निश्चित है कि इन पदार्थोंकी मात्राका बढ़ना पौधोंके लिए अति हितकर है। यह तो सभी जानते हैं कि शीरामें ३० से ३६%तक शर्कराएँ होती हैं। अब यह प्रश्न है कि शर्करामय पदार्थोंके मिला देनेसे भूमिमें नोषजनीय पदार्थोंकी मात्रा किस प्रकार बढ़ जाती है? जिस प्रकार प्राणियोंके शरीरमें शर्कराओं और ओषजनके संयोगपर जो शक्ति विसर्जित होती है उसका उपयोग प्राणी करते हैं, उसी प्रकार भूमिमें भी शर्कराओंके ओषिदीकरण पर जो शक्ति निकलती है उसका उपयोग भूमिमें स्थित नोषजन और ओषजनके संयुक्त करनेमें होता है, और इस प्रकार नोषत बन जाते हैं। वायुसे नोषेत बननेमें सामर्थ्यकी आवश्यकता होती है और मिट्टीको यह सामर्थ्य शीरामें विद्यमान कर्बोदेतोंके ओषिदीकरणसे प्राप्त होती है। शीरा मिट्टीमें मिलानेसे जो नोषेत बनते हैं उनकी फिर कर्बोदेतोंसे प्रक्रिया होती है और अमो-नियम लवण और कुछ अमिनो-अम्लभी बन जाते हैं। जब शीरा मिट्टीमें मिला दिया जाता है तो परीक्षा करने पर पता चलता है कि भली प्रकार जोतनेके उपरान्त इसमें अमोनियम लवणोंकी मात्रा बढ़ जाती है। ये अमोनियम लवण वायुकी सहायतासे प्रकाशकी विद्यमानतामें नोषेतोंमें परिणत हो जाते हैं। यही कारण है कि खादके रूपमें शीराका उपयोग करनेसे भूमिमें नोषेतोंकी मात्रा बढ़ जाती है।

हमारी प्रयोगशालाके प्रयोगोंसे यह पता चला है कि प्रति एकड़ भूमिमें ९० से २७० मन शीरा पानी मिलाकर छोड़नेसे धान, गेहूँ, और गन्नेकी उपज बढ़ जाती है। बोनेके समयसे २-३ मास पूर्व भूमिमें शीरा मिलाना चाहिए और मिलानेके बाद भूमिको भली प्रकार जोतना चाहिए। बीज बोनेके उपरान्त शीरा मिलानेसे कुछ अधिक लाभ नहीं होता। गवर्नमेंट फार्म शाहजहाँपुरमें किये गये प्रयोगोंसे विदित हुआ है कि गन्ना बोनेसे पूर्व भूमिमें शीरा मिलानेसे गन्नाकी उपज लगभग ३६% बढ़ जाती है; पर गन्ना उपजाने के उपरान्त शीरा मिलानेसे उपजमें कुछ भी वृद्धि नहीं होती है।

लेखकके निरीक्षणमें शीराका खादके रूपमें उपयोग आजकल आसाम, बिहार, संयुक्त प्रान्त, बंगाल और मद्रासके खेतोंमें किया जा रहा है। लेखक जावाके गन्नेके खेतोंमें भी शीराका उपयोग करवा रहा है और अधिकतर इसके उपयोगसे उपजमें वृद्धि पायी जा रही है।

बहुतसे लोगोंको सीराके उपयोगमें नोषजनके स्थापनमें सफलता नहीं मिली है। इसका कारण यह है कि भूमि भली प्रकार जोती नहीं गयी और इसलिए उसे वायु और प्रकाश समुचित मात्रामें न मिल सका। जब वायु ठीक न मिल सकी, तो नोषजन नोषेत आदि यौगिकोंमें परिणत न हो सका। नोषजन यौगिकोंके बननेके लिए सामर्थ्यकी आवश्यकता है और यह सामर्थ्य शीरामें विद्यमान कर्बोदेतोंके ओषिदीकरणमें प्राप्त हो रही है। यदि वायुकी कमीके कारण ओषिदीकरण ठीक न हो पाया, तो नोषजन यौगिक भी कम बनेंगे।

संसारके परमोत्तम हितैषी पास्ट्यूरके मार्गका अनुसरण करते हुए उसके शिष्य विनोग्राड्स्की आदि व्यक्तियोंने यह धारणा बना ली थी कि मिट्टीमें नोषजनका स्थापन केवल बैक्टीरिया-द्वारा हो सकता है। पर लेखक और उसके सह-योगी डा० चण्डीचरण पालित, डा० अक्षयकुमार भट्टा-चार्य्य, डा० गोपालराव, श्री नृपेन्द्रनाथ विश्वास, एम०एस-सी०, श्री संतप्रसाद टण्डन एम०एस-सी०, श्री सुशील कुमार मुकर्जी और श्री ई० वी० शेषाचार्य, एम० एस-सी०के प्रयोगों-से यह स्पष्ट होगया है कि बैक्टीरियाके नितान्त अभावमें भी नोषजनका स्थापन हो सकता है, अर्थात् भूमिको अमोनियम लवण मिल सकते हैं। यदि धूप अच्छी हो और लोह, टिटे-

नम्, मांगनीज़, ताम्र आदिके लवण उत्प्रेरकके रूपमें विद्यमान हों।

५० ग्राम मिट्टी २०० अंश तापक्रम तक २½ घंटे गरम कर ली गयी और उसके बैक्टीरिया इस प्रकार मार डाले गये। इसमें अब बैक्टीरिया विहीन २ ग्राम गन्नेकी शक्करका घोल मिलाया गया और कार्टज़की कुप्पीमें रखकर १५० घंटेतक धूपमें रखा गया। ऐसा करने पर इसमें अमोनियकल नोषजनकी मात्रा ०.००१५५% से ०.००५६% प्रतिशत हो गयी। इसी प्रकारके अन्य प्रयोग भी किये गये। बड़ी-बड़ी रकाबियोंमें शीरा और मिट्टी मिलाकर धूपमें रखनेसे नोषजनमें एक हदतक वृद्धि पायी गयी है, जब मिट्टीको भली प्रकार गोड़कर वायुमें प्रभावित कर दिया जाता है तो नोषजनकी मात्रा और भी बढ़ जाती है। पर यदि धूपमें आवश्यकसे अधिक समयतक मिट्टीको रखा जाय तो नोषजनकी मात्रा फिर कम होने लगती है, क्योंकि फिर अमोनियम नोषितके समान अस्थायी यौगिक बनने लगता है। ऐसी मिट्टीमें भी जिसमें बैक्टीरिया विद्यमान हों, यदि शर्करा मिलाकर एक बर्तन धूपमें रखा जाय और दूसरा अंधेरेमें तो यदि नोषजनका स्थापन एकमात्र बैक्टीरियाके कारण होता, तो दोनोंमें अमोनिया बराबर मिलता, पर प्रयोग-द्वारा यह पाया गया है कि अमोनिया प्रकाशमें रखे हुए बर्तनमें अधिक है। इससे स्पष्ट है कि नोषजनका स्थापन बैक्टीरियाके ही कारण नहीं होता, प्रत्युत प्रकाशका भी इसमें महत्वपूर्ण हाथ है। हम कह चुके हैं कि बैक्टीरियोंके प्रभावमें भी शर्कराओंकी विद्यमानतामें नोषजनका स्थापन हो सकता है। उष्ण प्रदेशोंमें जहाँ सौभाग्य से धूप अधिक होती है, नोषजनका स्थापन न केवल बैक्टीरियोंके कारण होता है प्रत्युत शर्करामय पदार्थोंकी विद्यमानतामें यह प्रकाशके भी कारण होता है। इसीलिए शीरा मिला देनेसे भूमिकी नोषजन स्थापक शक्ति बढ़ जाती है।

प्रयोगोंद्वारा यह पता लगाया गया है कि शीरा मिला देने पर भूमिमें अमोनियाकी मात्रा बहुधा तिगुनी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया है कि शीरा मिला देनेपर भूमि के नोषजनिक पदार्थ नष्ट भी कम होते है। मिट्टीमेंसे नोषजनिक पदार्थ कुछ न कुछ बिभाजित होते ही रहते हैं, पर जब शीरा मिला देते हैं तो ये अधिक स्थायी हो जाते हैं। इस प्रकार शीरेका एक उपयोग यह भी है कि यह भूमिमें स्थित नोषजनिक पदार्थोंकी रक्षा करता है।

रसेलकी 'Soil condition and plant growth' नामक पुस्तकमें लिखा है कि 'स्टेशन एग्रोनोमिक (Station agronomique) में और मोरेशसके श्री एबेलकी अपनी जमींदारीमें यह देखा गया है कि मिट्टीमें शीरा मिला दिया जाय तो गन्नेकी उपजमें वृद्धि हो जाती है, और यही बात एण्टीग्वामें भी पायी गयी है। हवाईमें श्रीमान् (Peck) पेकने और वृटिश शासनमें हेरिसनने इसके विरुद्ध यह मालूम किया है कि शीरा मिला देने से भूमिमें नोषेतोंकी मात्रा बहुत कम हो जाती है...ऐसे प्रदेशोंमें जहाँ हवामें नमी अधिक होती है मिट्टीमें नोषजनकी मात्रा आरम्भसे ही बहुधा अधिक होती है, और इस कारण यदि मात्रामें थोड़ी कमी या वृद्धि हो तो उसका ठीक-ठीक मालूम करना बहुत कठिन है, और साथ ही साथ एक कठिनाई यह भी रहती है कि नोषजनकी कमी हवाके नोषजन-स्थापन द्वारा पूरी भी हो जाती है। इसके विपरीत गरम शुष्क प्रदेशोंमें कुछ जमीनोंमें जहाँ नोषजनकी मात्रा बहुत कम होती है, इस प्रकारकी खोज आसानीसे स्थिरकी जा सकती है।' एम० ए० वैक्समनकी 'Microbiology of soils'में भी ऐसे ही विचार प्रगट किये गये हैं, तात्पर्य यह है कि ये लेखक शीराके उपयोगके सम्बन्धमें कोई स्थिर विचार प्रकट न कर पाये हैं।

यह भी उल्लेखनीय बात है कि पहलेके भूमि विज्ञान पर कार्य करने वाले व्यक्तियोंने मिट्टीमें शर्करादिके समान पदार्थ मिला देनेके उपरान्त केवल सम्पूर्ण नोषजनकी मात्रा ही निकाली थी, और ऐसा करनेपर उन्हें शर्करा मिलानेसे पूर्व और बादकी सम्पूर्ण नोषजनकी मात्रामें जब कोई अन्तर न मिला, तो उन्हें इस बातमें सन्देह हो गया कि शर्करा मिला देनेसे नोषजनका स्थापन होता है या नहीं। हमने अपने प्रयोगोंमें सम्पूर्ण नोषजनके अतिरिक्त 'प्राप्य नोषजन' (Available Nitrogen) अर्थात् अमोनियम और नोषेत नोषजनकी भी मात्रा निकाली है। और हमें यह पता चला है कि शर्करादिक सामर्थ्यवान पदार्थोंके

मिला देनेसे इस 'प्राप्य नोषजन' की मात्रा बढ़ जाती है। अतः यदि मिट्टीमें शीरा मिला दिया जाय तो मिट्टीके नोषजनका अपव्यय भी कम होगा और नोषजन स्थापित भी हो जायगा, इस प्रकार मिट्टीमें नोषजनमात्रा बढ़ जावेगी।

मिट्टीके नोषजनमें वृद्धि करनेके लिए शीराका निम्न प्रकार प्रयोग करना चाहिए—

१—प्रति एकड़ भूमिके लिए ९० मन शीरा पानीकी उचित मात्रा मिलाकर एक रस भूमि पर फैला दो।

२—शीरा मिला देनेके बाद प्रति सप्ताह एक बार मिट्टी को गोड़ दो, जिससे हरबार ऊपरकी मिट्टी नीचे, और नीचेकी ऊपर आ जावे। प्रयोग सफल होनेके लिए बार-बार गोड़ना परमावश्यक है।

३—सीरा मिला देनेके बाद जितनी बार पानीकी सिंचाईकी जा सकेगी, उतना ही अच्छा होगा।

४—वायुका ओषजन सीराकी शर्कराओंसे संयुक्त हो जाता है और इस ओषदीकरणकी प्रक्रियामें जो सामर्थ्य विसर्जित होती है उससे वायु का नोषजन भूमिमें स्थापित हो जाता है। इस प्रकार वायुका नोषजन भूमिमें ओषजनसे संयुक्त होकर मिट्टीकी उपज बढ़ाता हैं, क्योंकि इस कामके लिए ओषजनकी आवश्यकता है। मिट्टीमें काफी हवा लगनी चाहिए और इसी लिए शीरा मिलाकर बार-बार गोड़ना आवश्यक है।

यदि इन बातोंपर ध्यान दिया जायगा तो धान, गेहूँ, गन्ना आदिकी खेतीमें बड़ा लाभ होगा।

शीरे का मद्य बनानेमें उपयोग

शीरामें जो शर्करायें रहती हैं उनका खमीरा करके 'पावर अलकोहल' (अर्थात् मद्य जिसका उपयोग मोटरादि के चलानेमें हो सके) भी बनाया जा सकता है। मोटरके इंजिनमें यह पैट्रोलके साथ मिलाकर जलाया जाता। इस कामके लिए यह आवश्यक है कि मद्य जलसे सर्वथा रहित हो, पर मद्यमेंसे सम्पूर्ण जलको निकालकर अलग कर देना एक कठिन समस्या है। जिन विधियोंका उपयोग यूरोप और कानपूरके हार्कोर्ट बटलर टेक्नोलोजिकल इन्स्टीटयूटमें किया जाता है, उनमें व्यय अधिक पड़ता है। हमारे इस देशमें मद्यकी खपत भी तो बहुत कम है, पेट्रोल और तैलकी कम्पनियां इसका विरोध भी कर रही हैं, और इन धनवान कम्पनियोंकी नीति ऐसी है कि मद्य बनानेके व्यापारमें सदा बाधा डालती रहेंगी। मद्यके प्रचारसे पैट्रोलकी बिक्रीको बहुत कुछ धक्का पहुँचेगा इसलिए ये इस देशमें मद्यके कारखानोंकी वृद्धि नहीं देख सकती हैं। इस देशमें न तो मोटरकार ही इतनी हैं कि शीरासे निकाले गये मद्यकी खपत हो सके और न ऐसे कारखाने हैं, जिनमें मद्यका अन्य व्यवसायोंमें उपयोग हो सके। अतः शीरासे मद्य बनानेका प्रयास भी अधिक महत्वका न होगा, और इस प्रकार शीराकी समस्याका इससे समाधान नहीं हो सकता है।

अभी एक पेटेण्ट इस प्रकारका लिया गया है कि शीराको जलाया जाता है और जलानेमें जो राख (पोटाश) बचती है उसका खादमें व्यवहार किया जाता है। पर सीराके उपयोगकी यह कोई सन्तोषजनक विधि नहीं है, क्योंकि इसमें बहुमूल्य शर्कराएँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं। जिस रूपमें हमने बताया है, वही इस समय शीराका परमोपयोगी उपाय प्रतीत होता है।

आजकलका पारस*

[डा० सत्यप्रकाश, प्रयाग विश्वविद्यालय]

व्याख्यान आरम्भ करनेसे पूर्व शिष्टाचार पद्धतिके अनुसार मैं विज्ञान परिषद् के प्रति कृतज्ञता प्रगट कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिसकी कृपासे आज मुझे इस वार्षिक अधिवेशनमें अपने विचार प्रकट करनेका अवसर मिला है। इस वार्षिक व्याख्यानके लिए मैंने एक ऐसे विषयका निर्वचन किया है, जो अति पुराना होते हुए भी सर्वथा नया है। इस समय इस विषयकी मीमांसा संसारके अनेक देशोंकी अति प्रसिद्ध प्रयोगशालाओंमें हो रही है। सुना जाता है कि पारस एक ऐसा पत्थर था, जिसके स्पर्शमात्रसे लोहा स्वर्णमें परिणत हो जाता है। यह भी आवश्यक नहीं कि लोहा ही स्वर्ण बने प्रत्युत अन्य धातुभी इसके संसर्गसे स्वर्णके समान मूल्यवान धातुएं बन जाती थीं। पारस पत्थर किसीको प्राप्त हुआ हो या न हुआ हो, पर इसके अस्तित्वमें साधारण जनताको ही नहीं, प्रत्युत अनेक देशके विद्वानोंको भी विश्वास था।

पारस पत्थरको संस्कृतमें स्पर्श-मणि या स्पर्श-उपल कहा जाता है। पारस शब्द स्पष्टतः 'स्पर्श' का अपभ्रंश है। अंग्रेज़ीमें इसे तत्ववेत्ताओंका पत्थर—Philosopher's Stone और जर्मन भाषा में "Der Stein der Weisen" कहते हैं। पाँचवीं शताब्दीमें अलकीमियोंका एक प्रसिद्ध लेखक पानोपोलिस वासी ज़ोसीमोस (Zosimos of Panopolis) था। उसने एक ऐसे रसका उल्लेख किया है, जिससे चांदी सोनेमें परिणत हो सकती थी। इस रसका नाम (Synesios) सिनीसियोस ने मर्क्यूरियस फिलोसोफोरम (mercuriusphiloSophorum) रखा। यूनान और मिश्र देशमें बहुतसे लोगोंने इस प्रकारके रसपर प्रयोग किये। अरबवालोंमें भी इस पारसको प्राप्त करनेका कई बार यत्न किया गया। सन् १०६३ के लगभग पौल (Paul) नामक एक ईसाई यहूदीने जर्मनीमें यह घोषणाकी कि मैंने यूनानमें ताँबासे सोना बनाना सीखा है। इसके बादसे ही यूरोपके अन्य देशोंमें भी इस बातकी सदा चर्चा रहने लगी कि क्या साधारण धातुएं बहुमूल्य धातुओंमें परिणतकी जा सकती हैं। १३ वीं शताब्दीके तत्ववेत्ताओंको—जैसे विनजेञ्ज (Vinzenz) एलबर्टस मैगनस, रोजर बेकन, आरनेल्डस विल्लानों वेनस, और रेमण्ड ललीको—इस पारस पत्थरकी विद्यमानतामें पूर्ण विश्वास था। अरस्तू और अन्य यूनान एवं मिश्रके दार्शनिकोंकी शिक्षाओंके आधारपर ये इस बातको अवश्य मानते थे कि एक धातु दूसरी धातुमें परिणत की जा सकती है। टामस एक्विनसने अपनी शिक्षाओं द्वारा इस विचारको और भी दृढ़ कर दिया था।

रोगर बेकन (१२१४-१२९४) न केवल यह मानता था कि थोड़े से ही पारस मणिद्वारा लाखों गुनो भारी तुच्छ धातु मूल्यवान धातुमें परिवर्तित हो जायगी, प्रत्युत उसकी यह भी धारणा थी कि इसके स्पर्शसे मनुष्यकी जीवन-आयु भी बढ़ सकती है। रेमण्डलल्ली ने (१२३५-१३१५) तो सबसे अधिक निश्चयात्मक शब्दोंमें यह घोषणा की थी कि 'यदि समुद्र पारेके होते तो मैं उन सबको सोनेका बना देता।' केवल सोनाही नहीं, वह तो तुच्छ धातुओंको भी बहुमूल्य रत्नों में परिणत कर सकनेका गर्व करता था। वह इन्हीं विधियोंद्वारा मनुष्यको पूर्ण स्वस्थ और अमर जीवन वाला भी बना देना चाहता था।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दीमें भी कुछ लोग ऐसे थे जिनके विषयमें यह अनुमान किया जाता था कि उनको पारसमणि प्राप्त है (जैसे निकोलस फ्लेमल, आइज़ाक होलूमंडस, काउण्ट बर्नार्डो, और सरजार्ज रिप्ले)। इन अलकीयोंको राज्यका भी आश्रय बहुत मिला था, क्योंकि यदि उनकी विद्या सत्य और समर्थ हो तो राजाओंके कोषमें धन की कभी कमी न रहेगी। पर सम्भवतः इन आश्रयदाताओं को इन रसानयज्ञोंसे कभी सन्तोष न हुआ क्योंकि वे कभी असली सोना न बना सके और उनके छल-कपटके लिए

*विज्ञान परिषत्‌के वार्षिकोत्सवके अवसरपर पठित। १५-११-३५

अनेक बार अति कठोर दण्ड रूप पुरस्कार दिये गये। चतुर्थ-हेनरीने तो इंगलैण्डमें इस सुधारके कार्यके विरुद्ध राज्य-नियम ही बना दिया था, पर छठे हेनरीने फिर इन्हें प्रोत्साहन दिया और फलतः सिक्कोंमें जाली या कपटी धातुओंका प्रयोग बेधड़क होने लगा। फ्रान्सके सातवें चार्ल्सको भी लीकोर (LeCor) नामक रसायनज्ञने कृत्रिम धातु बनाने का लोभ दिलाया। इस समय चार्ल्सका इंगलैण्डसे युद्ध हो रहा था, और उसे धनकी आवश्यकता भी थी। पर रसायनज्ञकी सेवाओंका फल यह हुआ कि नक़ली धातुओंके कारण उसके देशपर ऋण और भी बढ़ गया।

सोलहवीं शताब्दीके आरम्भमें रसायन विद्याने अधिक नियमित रूपमें उन्नति करनी आरम्भ की। जर्मनीके बेसिल वेलेण्टाइनने "प्राचीन तत्ववेत्ताओंके अति प्रसिद्ध पत्थर" (Von dem grossen Stein der Uralten Weisen) नामकी एक पुस्तक भी लिखी जिसमें उसने धातुविद्याका उल्लेख किया है।

क्या बात है जिससे लोग इस बातके प्रयत्नमें लगे रहे, कि तुच्छ धातुओंको मूल्यवान धातुओंमें परिणत कर देना चाहिये ? मिश्र आदि देशोंमें तत्ववेत्ताओंने इस शिक्षाका प्रचार किया था कि सभी धातुएं कई पदार्थों से मिलकर बनी हुई हैं। इन पदार्थोंको भिन्न भिन्न अनुपातों में मिलाने से अनेक धातु बन सकती हैं। यदि तुच्छ धातु मेंसे किसी पदार्थका कुछ अंश निकाल लिया जाय अथवा यदि कोई अन्य पदार्थ मिला दिया जाय तो मूल्यवान् धातु बन सकती हैं। जब कभी किसी पदार्थके संयोगसे धातु के रंगमें परिवर्तन हुआ, तो लोग समझने लगते थे कि नयी धातु बन रही है। यदि किसी पदार्थमें सुनहरा रङ्ग आ गया तो बस वे यह समझने लगे कि अब सोना बन जानेमें देर ही क्या है। परन्तु "All that glitters is not gold" वस्तुतः प्रत्येक सुनहरी चीज सोना नहीं है और न प्रत्येक रुपहली चीज चाँदी ही है। यदि किसी धातुपर सुनहरा रङ्ग चढ़ा दिया जाय तो वह सोना नहीं हो जायगी। पर एलेक्ज़ेण्ड्रियाके मध्यकालीन रसायनज्ञ रङ्गपरिवर्तनको ही धातुपरिवर्तन समझने लगे। धातु-परिवर्तन प्रक्रियाओंका नाम भी उन्होंने रङ्गपरिवर्तन (Xanthosis, Leukosis, Melanosis) रखा। अरस्तू और अफ़लातून दोनों ही तत्वोंके परिवर्तनमें विश्वास रखते थे और उनकी शिक्षाओंका मिश्रमें बड़ा सम्मान था।

एलबर्टस मैगनस की धारणा थी कि धातु तीन चीज़ोंसे मिलकर बनी होती हैं, संखिया, गन्धक और पानी। पर आर्नेलस विलआनोवेनस और लल्लसका विचार था कि प्रत्येक धातुमें गन्धक पारा होता है। गेबेर के नामसे जो लेख मिलते हैं, उनमेंभी यही धारणा पुष्ट की गयी है कि भिन्न-भिन्न मात्राओंमें भिन्न-भिन्न शुद्धता का गन्धक और पारा मिला देनेसे ही पृथक्-पृथक् धातुएँ बन सकती हैं। इन धातुओंमें ज्यों-ज्यों पारेकी मात्रा और शुद्धता बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों तुच्छ धातु मूल्यवान् होती जायगी। गेबरने इसमें सफलता प्राप्त करनेके लिए भस्मीकरण, ऊर्ध्वपातन, स्रवण, घोलन, अवक्षेपण, स्फटकीकरण आदि विधियोंको जन्म दिया। धातुओंमें पारेकी विद्यमानताके कारण चमक, घनवर्धनीयता, द्रवणता, आदि धात्विक मूल होते हैं, और गन्धक होनेके कारण बहुतसी धातुएं आगमें रखनेपर भस्म हो जाती हैं। अति मूल्यवान धातुओंपर (जैसे सोनेपर) आगका प्रभाव नहीं होता अतः यह माना गया कि इसमें गन्धक नहीं है और यह शुद्ध पारा है। पर जैसा पारा मिलता है वह द्रव्य है और आगपर रखनेसे उड़ जाता है, अतः यह भी माना गया कि यह पारा भी असली पारा नहीं है, इसमें थोड़ासा गन्धक मिला हुआ है, जिसके कारण इस पर आगका प्रभाव पड़ता है।

पन्द्रहवीं शताब्दीमें आइज़ाक होलेण्डसने यह कल्पना प्रस्तुत की कि धातुमें पारा और गन्धकके अतिरिक्त एक तीसरी चीज़ 'लवण' भी होती है। पारा धातु गुणोंका कारण है, गन्धक अग्निके संयोगसे भस्म होनेका और नमक ठोसत्वका और अग्निके प्रभावका प्रतिरोधक होनेका।

अस्तु, कुछ हो इन सिद्धान्तोंके कारण लोगोंका विश्वास यह अवश्य था कि यदि पारा, गन्धक, लवणादिके अनुपातोंको वशमें कर लिया जाय तो तुच्छ धातुओंसे बहुमूल्य धातुएं बनायी जा सकती हैं। लल्ली (Lully) के 'Testamentum Novissimum' में यहाँतक उल्लेख है कि 'इस पारस ओषधिकी एक छोटीसी मात्रा

मटरके दानेके बराबर लो। इसे एक सहस्र औंस पारे पर डाल दो, तो यह लाल चूर्णमें परिणत हो जायगा। इस लालचूर्णका एक औंस लेकर १००० औन्स पारेमें फिर मिला दो, तो फिर सबका सब पारा लालचूर्णमें परिवर्तित हो जाएगा, इसका फिर एक औन्स लेकर १००० औन्स पारे पर डालो। अब जो लाल ओषधि मिले उसका १ औन्स लेकर फिर १००० औन्स पारेसे मिलाओ। फिर जो लाल पदार्थ मिले उसके एक औन्स को फिर १००० औन्स पारेसे मिलाओ। इस अन्तिम बारकी प्रक्रियामें जो लाल रस तैयार होगा उसके एक औन्सको १००० औन्स पारेसे मिलाने पर ऐसा सोना बन जायगा, जैसा कि खानोंके अन्दर भी न पाया जाता हो।' कुछ हो, ये कल्पनायें केवल कल्पनायें ही रह गयीं। अलकीमियोंके ये स्वप्न कभी सच्चे न हुए। उनके इन प्रयोगोंने रसायन शास्त्रको प्रोत्साहन तो अवश्य दिया; पर लोहे या पारेसे सच्चा सोना कभी न बन सका। अच्छा ही हुआ, यदि कहीं ऐसा हो जाता, तो अति सुलभ होनेके कारण सोनेका मूल्य ही क्या रहता? यह लोहेके समान तुच्छ पदार्थ ही रह जाता। कोई इसे पूछता भी नहीं।

विचारोंमें परिवर्त्तन

पाश्चात्य रसायनज्ञोंने तत्व (Elements) शब्द का प्रयोग तो बहुत प्राचीन कालसे किया, पर तत्वकी ठीक ठीक परिभाषा उन्होंने कभी न दी, वह तो केवल दार्शनिक युग था जब पृथ्वी, जल, वायु और अग्निको मौलिक पदार्थ माना जाता था, पर इस तत्ववादने रसायनज्ञोंकी सहायता न की। इसके उपरान्त अन्य अनेक तत्वोंकी आवश्यकता प्रतीत हुई जैसे धातुओंको पारा, गन्धक, नमक, जल, संखिया आदिसे मिलकर बना हुआ माना गया। रोबर्ट बायल (१६६१) ने अपनी पुस्तक "Chemista Scepticus" में अरस्तू और अलकीमियोंके तत्वोंका खंडन किया। उसने यह धारणा प्रस्तुत की कि यौगिक पदार्थोंके उन अंशोंका नाम तत्व है जो यौगिकमेंसे पृथक भी किये जा सकते हैं और जिनका पुनः विभाग करनेसे कोई अन्य भिन्न अंश न प्राप्त हो। रसायनज्ञोंने इस परिभाषाके आधारपर यौगिकोंका विभाजन आरम्भ किया, और अनेक तत्व प्राप्त किये। लवाशिये, प्रीस्टले, कैवेण्डिश, शेले, आदिने तरह-तरहकी गैसें तैयार कीं और बादको डाल्टन, गेलूज़क, डूलङ्ग-पेटीट, एवेगैड्रो, बर्ज़ीलियस आदिने परमाणुवादकी नीव डाली। अब रसायनज्ञोंको यह विश्वास होने लगा कि एक तत्व किसी भी दूसरे तत्वमें रासायनिक विधि द्वारा परिणत नहीं किया जा सकता। लोहा, चाँदी, पारा, ताँबा और सोना ये सब तत्व हैं, ये किन्हीं दो भिन्न पदार्थोंके संयोगसे मिलकर बने हुए नहीं हैं। अतः किसी भी विधिसे यह संभव नहीं है कि लोहा, पारा या ताँबा बदलकर सोना हो जाय। ऐसा पारस मणि होना असंभव है जिसके स्पर्श मात्रसे एक तत्व दूसरा तत्व बन जाय। अलकीमियोंने जिन रसोंके प्रयोगसे धातुओंके रंगोंमें परिवर्तन किया था, उनसे तत्व कभी परिवर्तित नहीं हुए, केवल नये यौगिक ही बने। हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि अलकीमिया लोग कभी लोहेसे सोना नहीं बना पाये। १८ वीं और १९ वीं शताब्दीके रसायनज्ञोंने अपने मस्तिष्कसे इस सनकको निकाल दिया कि वे एक तत्वको दूसरे तत्वमें परिणत करनेका प्रयत्न करें। भिन्न-भिन्न तत्वोंके संयोगसे तरह-तरहके यौगिक बनाना रसायनज्ञोंका ध्येय बन गया।

मैण्डलीफ़का कार्य्य

भिन्न-भिन्न तत्वोंका संबन्ध समझनेमें मैण्डलीफके "आवर्त्तसंविभाग"ने बड़ी सहायता दी। उसने तत्वोंको परमाणुभार और रासायनिक गुणोंके आधारपर क्रमबद्ध किया। एक तत्व दूसरे तत्वसे न केवल रासायनिक और भौतिक गुणोंमें ही भिन्न होता है, प्रत्युत सबका परमाणुभार अलग-अलग है। एक तत्वका दूसरेमें परिणत करनेका अभिप्राय ही यह है कि उनका परमाणुभार घटाया बढ़ाया जाय। पर परमाणुके भार किसी भी रासायनिक प्रक्रियाद्वारा बदलना रसायनज्ञोंके लिए असंभव बात थी। इसीलिए रसायनज्ञोंको यह विश्वास हो गया कि एक तत्व दूसरे तत्वमें परिणत नहीं किया जा सकता। मैण्डलीफ़ने अपने "आवर्त्त नियम" द्वारा यह दिखा दिया कि सबसे हलके उदजन तत्वसे लेकर सबसे भारी पिनाकम् तत्व तक केवल निश्चित संख्याके तत्व ही होंगे। किसी भी रासायनिक प्रक्रियामें एक तत्व दूसरे तत्वसे संयुक्त होकर यौगिक तो

बना सकता है, पर दोनोंके योगसे कोई नया तत्व नहीं बन सकता है।

परमाणुओंका विच्छेद

बहुत दिनोंतक तत्वोंके परमाणु अविच्छिन्न और अखंडनीय माने जाते रहे। इधर प्राउट नामक एक रसायनज्ञ ने यह घोषणा की कि प्रत्येक परमाणु उदजन परमाणुका ही घनीभूत रूप है, उदजन परमाणु ही मौलिक परमाणु है, अन्य सब इसीके बने हुए हैं, पर यदि ऐसा होता तो सभी तत्वोंके परमाणुभार पूर्ण संख्यामें आने चाहिए थे। पर ऐसा न था, अतः प्राउटका मत ग्राह्य न समझा गया।

क्रुक्सके शून्य नलीवाले प्रयोगने जिसमें अति उच्च अवस्था भेद वाली उलटी सीधी बिजलीकी धारा प्रवाहितकी गयी थी, सबसे पहले ऋणाणुओंको परमाणुओंमेंसे पृथक् कर दिया। (Plucker) प्लूकर ने ऋणाणुओंकी विस्तृत मीमांसा की।

आगे चलकर लार्ड रथरफोर्डने अपने बहुमूल्य प्रयोग द्वारा यह भी सिद्ध कर दिया कि परमाणुओंके भीतर एक धन केन्द्र भी स्थित है। इस प्रकार परमाणुओंके अब दो विभाग हो गये, धनकेन्द्र और ऋणाणु। धनकेन्द्रोंपर धनात्मक विद्युतकी जितनी मात्रा रहती है, उतनीही ऋणाणुओंपर ऋण विद्युतकी होती है। एक परमाणु में धन केन्द्र तो एक होता है, पर ऋणाणु अनेक हो सकते हैं। जिस प्रकार सौरमण्डलमें सूर्यके चारों ओर ग्रह भिन्न-भिन्न परिधियोंपर चक्कर लगाते हैं, उसी प्रकार परमाणुओंके अन्दर भी एक ब्रह्माण्ड निहित है, जिसका केन्द्र धनात्मक है, और जिसके चारों ओर अनेक अण्डवृत्ताकार परिधियोंपर ऋणाणु भ्रमण किया करते हैं।

मोसले नामक एक नवयुवक वैज्ञानिकने यह प्रदर्शित किया कि प्रत्येक तत्वका न केवल परमाणुभार ही अलग अलग है, प्रत्युत सबमें क्रमशः एक-एक ऋणाणुकी संख्या और उसीके अनुसार धनकेन्द्रमें धनात्मक विद्युतकी मात्रा भी बढ़ती जाती है। उदजन नामक सबसे हलके तत्वके परमाणुमें धनकेन्द्रके चारोंओर एक ऋणाणु चक्कर लगाता है, और उसके आगे हिमजन तत्वमें दो ऋणाणु, और इसी प्रकार बढ़ते-बढ़ते ९२ वें तत्व पिनाकममें ९२ ऋणाणु धनकेन्द्रके चारों ओर भिन्न-भिन्न परिधियोंपर घूमते हैं। इस प्रकार उदजन और पिनाकम्‌के बीचमें ९२ तत्व स्थित हैं। ऋणाणुओं और केन्द्रपर धनात्मकताके अनुसार उसने हरएक तत्वकी एक निश्चित संख्या निर्द्धारित की, और इसे तत्वकी 'परमाणु संख्या' कहते हैं।

इन सब प्रयोगोंसे एक बात निश्चित हो गयी। वह यह कि सब तत्व दो प्रकारके विद्युदणुओंसे मिलकर बने हुए हैं, ऋणात्मक और धनात्मक। इन दोनों विद्युदणुओंकी संख्याएँ न्यूनाधिक कर देनेपर एक तत्व दूसरे तत्वमें परिवर्तित किया जा सकता है। एक तत्वमें दूसरा तत्व बनाना संभवनीय बात हो गयी; पर दूरूह अवश्य।

तत्वके परमाणुमें ऋणाणुओंकी संख्या न्यूनाधिक करना तो सापेक्षतः आसान काम है। जब लवण पानीमें घुलते हैं, तो उनके भिन्न-भिन्न परमाणुओंमें ऋणाणु-विनिमय हो जाता है, और वे यापित हो जाते हैं। जब किसी पदार्थपर प्रकाशकी रश्मियाँ पड़ती हैं, तब भी ऋणाणुओंकी स्थितिमें अन्तर आ जाता है। धातुओंको रक्ततप्त करनेपर भी उनमेंसे ऋणाणु निकलने लगते हैं। सैन्धकम् धातुको चाकूसे काटनेमें ही ऋणाणु छूटने लगते हैं। तात्पर्य यह है कि ऋणाणुओंका परमाणुओंमेंसे इधर-उधर करना सापेक्षतः आसान काम है। विद्युत्-प्रवाहके द्वारा एक्स-रश्मियोंका शून्य नलीसे जनित होना भी तो इन ऋणाणुओंका ही उत्तेजित होना है। सम्भवतः जितने भी भौतिक गुण हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि, ये सब ऋणाणुओंकी परिस्थितिके ही चमत्कार हैं।

पर एक तत्व दूसरे तत्वमें तबतक परिणत न होगा, जबतक उसका धनकेन्द्र प्रभावित न हो, ऋणाणुओंमें भार तो नहींके बराबर होता है (उदजनका १८४५वाँ भाग) एक-दो ऋणाणु कम-अधिक होनेसे परमाणु-भारमें कोई विशेष अन्तर नहीं आवेगा, और जबतक परमाणु-भार न बदले तबतक नया तत्व बन ही कैसे सकेगा। तत्वोंका परमाणु-भार तो धनकेन्द्रके भारपर निर्भर है, और इसीलिए केन्द्रपर आक्रमण करके ही परमाणुओंका अन्तर्विच्छेद किया जा सकता है। पर परमाणुओंके केन्द्रों पर चढ़ाई करना तो अति कठिन बात है। ऐसा प्रतीत होता है कि चारों ओर घूमनेवाले ऋणाणु इस धनकेन्द्रकी चौकसी करते रहते हैं।

क्या प्रकृतिमें एक तत्त्व दूसरेमें परिणत होता है?

यह कहना कठिन है कि समस्त संसारकी उत्पत्ति एक तत्वसे हुई अथवा अनेकसे, पर मनुष्यकी दार्शनिक धारणा यही है कि जिसप्रकार एक बीजसे वृक्षका विकास होता है, इसी प्रकार सृष्टिकी आरम्भिक अवस्थामें भी मूल तत्व एक ही था। सत्व-रज-तम गुणोंकी साम्यावस्थावाली प्रकृतिसे ही अन्तमें पंचतन्मात्राओं और पंचभूतोंकी उत्पत्ति हुई। वेदान्त और उपनिषदोंमें भी आकाश से वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल आदिकी उत्पत्ति मानी है। अतः सम्भवतः सृष्टिके आदिमें भी मूलतत्व एक ही था और प्राउटकी कल्पनाके समान अन्य तत्व इस तत्वके घनीभूत होनेसे ही बने होंगे। भूगर्भकी आरम्भिक अवस्थामें भी संभवतः इतनी धातुएँ और अधातुएँ नहीं थीं, पर बादको अनेक युगोंमें इसका जन्म हुआ।

प्रकृतिमें एक तत्व दूसरे तत्वमें परिणत होता रहता है। इसका सबसे अच्छा प्रमाण रश्मिशक्तिक तत्वोंमें मिलता है। लार्ड रथरफोर्ड, सौडी आदि वैज्ञानिकोंने रश्मिशक्तिक पदार्थोंके विभाजनका बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया है। पिनाकम् रश्मिम् (रेडियम्) आदि तत्वोंमें यह विशेषता पायी जाती है कि ये स्वतः तीन प्रकारके कण रश्मियोंके रूपमें विसर्जित करते रहते हैं। ये कण क्रमशः एल्फा कण, बीटा कण, और गामा कण कहलाते हैं। इन कणोंकी उत्पत्ति परमाणुओंके धनकेन्द्रोंमें होती है। रश्मिशक्तिक पदार्थोंके धनकेन्द्र बराबर इन कणोंके विसर्जित करनेपर परिवर्तित होते रहते हैं। जब धनकेन्द्रोंमें परिवर्तन हो गया तो स्वभावतः नये तत्वोंकी सृष्टि होती रहती है।

एल्फा कण—इनके २ धनात्मकता होती है, और १ एल्फा कण निकल जानेपर परमाणुभारमें ४ की कमी हो जाती है। इन्हें वैद्युत-हिमजन कण समझा जा सकता है।

बीटा कण—इनमें एक ऋणात्मकता होती है पर इनका भार बहुत कम होता है। ये ऋणाणु हैं पर इनका स्रोत भी परमाणुओंका केन्द्र है, न कि परिधिपर स्थित ऋणाणु। इनके निकालनेपर परमाणुभार तो उतना ही रहता है, पर परमाणु संख्या १ बढ़ जाती है।

गामा कण—ये न तो धनात्मक हैं, और न ऋणात्मक। इनके निकलनेसे परमाणुभारमें भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता।

जितने भी रश्मिशक्तिक पदार्थ हैं उन सबका जीवन बहुत थोड़ा होता है, बहुतसे तो क्षणभंगुर ही होते हैं। कुछका अर्द्ध जीवनकाल कुछ मिनटों या कुछ सेकण्डोंका ही है, पर कुछ सहस्रों वर्ष भी जीवित रहते हैं। इन रश्मिशक्तिक पदार्थोंमें से अनेकका अन्तिम स्थायी पदार्थ सीसा है। यही कारण है कि जहाँ रश्मिशक्तिक पदार्थ पाये जाते हैं, वहाँ सीसा धातु भी पायी जाती है। लोगोंका यह भी विश्वास है कि धरातलपर जितना भी सीसा पाया जाता है, वह किसी-न-किसी समय रश्मिशक्तिक तत्व ही था। सीसाके साथ-साथ इन चट्टानोंमें हिमजन भी पाया जाता है। यह हिमजन गैस रश्मिशक्तिक तत्वोंमेंसे निकलते हुए एल्फा कण ही हैं, जिनकी वैद्युन्मात्रा शिथिल पड़ गयी है। पिनाकम्, रश्मिम्, थोरम्, एक्टीनम्, आदि अतिप्रसिद्ध रश्मिशक्तिक पदार्थ हैं, हम आगे यह दिखायेंगे कि कृत्रिम उपचार-द्वारा रश्मिशक्तिक सैन्धकम्, खटिकम्, पांशुजम् आदि तत्व भी बनाये जा सके हैं।

रश्मिशक्तिक पदार्थोंकी विवेचनासे यह बात तो सिद्ध हो गई कि प्रकृतिमें एक तत्व दूसरे तत्वमें परिणत अवश्य होता रहता है, जो बात प्रकृतिमें संभव है, उसे वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालामें क्यों नहीं कर सकते, इसका कोई कारण नहीं है, रश्मिशक्तिक पदार्थोंके अध्ययनसे रसायनज्ञों और भौतिकज्ञोंको यह साहस हुआ कि वे कृत्रिम तत्व परिवर्तनके सम्बन्धमें भी प्रयोग करें।

तत्व-परिवर्तनके कुछ प्रारम्भिक प्रयोग

यह अभी कहा जा चुका है कि रश्मिशक्तिक पदार्थोंके केन्द्रमेंसे एल्फा और बीटा कणोंका विसर्जन होता रहता है। प्रश्न यह है कि क्या ये एल्फा कण अन्य तत्वोंके केन्द्रमें प्रविष्ट होकर परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं? ये परिवर्तन दो प्रकारके होंगे—एक तो यह कि किसी तत्वके केन्द्रमें एक एल्फा कण संयुक्त होकर एक नया भारी केन्द्र बन जायगा। और दूसरी बात यह भी हो सकती है कि यह नया बना हुआ भारी केन्द्र फिर नए प्रकारसे विभाजित हो जाय और

कोई दूसरा केन्द्र बने। दोनोंही प्रकारसे एक तत्व किसी-न-किसी दूसरे तत्वमें परिणत हो जायगा। नये तत्वकी परमाणुसंख्याका पता चलनेपर ज्ञात हो जायगा कि इस नये तत्वका क्या नाम है।

सर विलियम रैमजेका ध्यान तत्व-परिवर्तनकी ओर सन् १९०७के लगभग गया। इन्होंने निटनका प्रभाव तूतिये (ताम्रगन्धेत)के घोलपर देखना चाहा। उन्हें आशा थी कि प्रक्रियामें उन्हें तांबा मिलेगा। पर प्रयोगके उपरान्त उन्हें तांबा और हिमजन तो न मिला, पर नूतनम, और आलसीम (न्योन, आर्गन) गैसें मिलीं, और साथ ही साथ शोणम् तत्वभी मिला। बादको सन् १९०८में भी केमरन और रैमजेने इसी प्रयोगको दोहराया, और उन्हें वैसेही परिणाम मिले। रैमज़ेने यह भी देखा कि थोरम् नोषेत और ज़रकोन नोषेतके घोलोंपर यदि निटनका प्रभाव देखा जाय तो कर्बन द्विओषिद और शोणम् बनते हैं। इस प्रकार नीटनके प्रभावसे तत्वपरिवर्तन संभव हो जाता है। बादको श्रीमती कुरी, और ग्लेडिशने और रथरफोर्ड और रायडने रैमज़ेके इन प्रयोगोंको दोहराया, पर उन्हें सन्तोषजनक फल न मिले, और तत्व परिवर्तनकी संभावना संदिग्ध ही रही।

सन् १९१३में कौली और पेटरसनने शुद्ध फ्लोरस्पार (खटिक-प्लवित) पर ऋणोद किरणोंद्वारा आक्रमण किया। प्रक्रियामें उन्हें उदजन परौषिद और कर्बन एकोषिद मिले। साथ-ही-साथ नूतनम् (न्योन) के भी कुछ चिह्न मिले। काँचकी ऊन (Glass wool) पर प्रयोग करने पर ऐसे ही फल मिले। पर बहुत कुछ संभव है कि नूतनम् गैस कहीं बाहरसे आ गई हो, अथवा अशुद्धिके रूपमें पूर्वसे ही विद्यमान हो। कौलीने (१९१४) पिनाकम् चूर्ण और उदजन गैसको साथ साथ विद्युत संचारके अन्दर प्रभावित किया, और उनका कहना है कि उन्हें इस प्रकार हिमजन और न्योन गैसें मिलीं। पर सौडी, मैकन्जी, स्ट्रट, मरटन आदि वैज्ञानिक कौलीके उपर्युक्त प्रयोगोंको न दोहराये और तत्व परिवर्तनकी बात सन्दिग्ध ही रह गई। इधर सन् १९२६में मीथेने जर्मनीमें यह घोषणा की कि वह पारेको सोनेमें परिवर्तित करनेमें सफल हुआ है। पर बादको हाबर आदिने यह प्रदर्शित किया था कि जिस पारे का मीथेने प्रयोग किया था उसमें पूर्वसे ही स्वर्णके सूक्ष्मकण विद्यमान थे।

तत्व-विच्छेदके साधन

इसमें तो सन्देह नहीं कि परमाणुके घनकेन्द्र तक पहुँचना अति दुष्कर है, और इसीलिए यह सम्भव नहीं है कि पारसमणिके सदृश किसी पत्थरके स्पर्श मात्रसे लोहा सोनेमें परिणत हो जाय। पर हाँ, आजकल तो पारसके चार रूप विद्यमान हैं, जिनकी सहायतासे एक तत्वका दूसरे तत्वमें परिणत होना संभव हो गया है।—

१—किसी तत्वके केन्द्रको प्रोटोन कणों द्वारा आक्रमित करके।

२—किसी तत्वके केन्द्रको एलफा कणों द्वारा आक्रमित करके।

३—किसी तत्वके केन्द्रको न्यूट्रोन द्वारा आक्रमित करके।

४—किसी तत्वके केन्द्रको डाइप्लोन-द्वारा आक्रमित करके।

तत्व विच्छेदके ये चार साधन सुलभ हैं। हम इनके द्वारा किये गये प्रयोगोंका सूक्ष्म उल्लेख यहाँ करेंगे।

प्रोटोन कणों द्वारा तत्व-विच्छेद

जब विद्युत्की सहायतासे उदजन परमाणुकी परिधि पर घूमनेवाला ऋणाणु पृथक् हो जाता है तो वैद्युत उदजन परमाणु प्राप्त होता है। इसे ही प्रोटोन कहते हैं। इसका भार उदजन परमाणुके भारके समानही १.००७२ होता है। सन् १९३१ में कोक्रोफ्ट (Cockroft) और वाल्टन (Walton) ने एक सुन्दर आयोजना प्रस्तुत की जिसकी सहायतासे अति तीव्र गतिवाले प्रोटोनों का समूह प्राप्त होना संभव हो गया। एक तड़ितनलिका(Discharge tube) में उदजन लिया गया और ६,००,००० वोल्ट अवस्थाभेद पर विद्युत् प्रवाहित किया गया। इस विधिसे अति तीव्रगामी प्रोटोनकण प्राप्त हुए। इनके मार्गमें धातुतत्वोंको रख कर प्रयोग किये गये।

जब शोण ओषिद (लीथियम् औक्साइड) पर प्रोटोन कणोंने आक्रमण किया, तो दस्तगन्धिदके परदेपर कुछ आभायें इस प्रकार की मिलीं जो विकिर्णित प्रोटोनोंकी कमी

नहीं हो सकती थी । सबसे पहले २५०००० वोल्ट पर प्रयोग किये गये, पर ज्योंहीं वोल्टन बढ़ाया गया, परदेपरकी आभाओंकी मात्रा बढ़ने लगी । पहले तो प्रति $१०^{९}$ प्रोटोनोंके लिए १ आभा थी पर वोल्टन दुगुना करने पर इनकी संख्या दस गुनी हो गई । इन नये कणोंकी सीमा* (Range) प्रोटोनोंकी सीमासे अधिक है, और वोल्टनके घटाने-बढ़ानेसे इस सीमामें कोई अन्तर नहीं आता । इन आभाओंकी चमकको देखकर और इनके पथ-चित्रोंके रूपके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये एलफाकण हैं । पर ये एलफा-कण कहाँसे आये ? निश्चय है कि शोणम् तत्व और प्रोटोनों के संयोगसे ये बने होंगे । हम इस प्रक्रियाको इस प्रकार सूचित कर सकते हैं ।

$$शो^{७}_{३} + उ^{१}_{१} = २\ हि^{४}_{२} + सामर्थ्य$$

[तत्व संकेतके ऊपर लगी हुई संख्या परमाणुभार बताती है और नीचे लगी हुई संख्या 'परमाणु संख्या' । समीकरणके दोनों ओर, न केवल परमाणुभारोंका योग बराबर होना चाहिए, प्रत्युत परमाणु-संख्याओंका भी ।] इस प्रकार शोणम् पहले प्रोटोनसे संयुक्त हो गया जिससे परमाणुभार दोनोंका मिलकर ८ और परमाणु-संख्या ४ हो गई । पर बादको ये संयुक्ताणु दो हिमजनके अणुओंमें विभाजित हो गये । वैद्युत्-हिमजनाणुओंका नाम ही एलफा-कण है । इस प्रयोगसे यह स्पष्ट होगया कि शोणम् तत्व हिमजन तत्वमें परिणत हो सकता है। इस विच्छेद प्रक्रियामें १७.२×१०^{६} ऋणाणु-वोल्ट सामर्थ्य विसर्जित होती है जैसा कि इन एलफाकणोंकी "सीमा"से स्पष्ट है । ऊपरके समीकरणसे भी हिसाब लगानेपर इतनेके लगभग ही सामर्थ्य विसर्जित होनी चाहिए—

शोणम्का परमाणुभार = ७'०१०४
प्रोटोनका भार = १'००७२
८'०१७६

हिमजनके २ परमाणुओंका भार = २ × ४'००१०६
= ८'००२१२

अतः समीकरणके दोनों ओर भारोंका अन्तर
= ८'०१७६—८'००२१२
= ०'०१५४८

इतने भारका अन्तर $१४'४ \times १६^{६}$ ऋणाणु-वोल्टके बराबर होता है । इस प्रकार प्रयोग द्वारा विसर्जित सामर्थ्य और हिसाब द्वारा निकाली गई सामर्थ्य दोनों बहुत कुछ बराबर हैं । इससे स्पष्ट है कि हमारी यह कल्पना ठीक है कि शोणम्के परमाणु प्रोटोनोंके संघर्षसे हिमजनाणुओंमें परिणत हो गये हैं ।

टंकम् (Boron) परमाणुओंसे भी एलफा-कण इसी प्रकार निकलते हैं—

$$ट^{११}_{५} + उ^{१}_{१} = ३\ हि^{४}_{२}$$

कोक्रोफ्ट और वाल्टनका विचार है कि टंकम् और प्रो-टोनोंके संघर्षसे बेरीलम् कण भी बनते हैं । यदि ऐसा है तो समीकरण निम्न प्रकार होगा—

$$ट^{११}_{५} + उ^{१}_{१} = हि^{४}_{२} + बे^{८}_{४}$$

बेरीलम्का परमाणुभार ८ और परमाणु संख्या ४ है ।

खटिक प्लविद्के प्लविन् परमाणुओंका भी प्रोटोनोंसे विच्छेद हो जाता है । विच्छेद्के उपरान्त न केवल हिमजन ही प्राप्त होता है, प्रत्युत ओषजन भी मिलता है ।

$$प्ल^{१९}_{९} + उ^{१}_{१} = हि^{४}_{२} + ओ^{१६}_{८}$$

बेरीलम्, सैन्धकम्, पांशुजम्, लोह, निकल, ताँबा आदि धातुपर प्रोटोनोंका बहुत कम प्रभाव देखा गया है । कम-से-कम इतना तो स्पष्ट हो है कि प्रोटोनोंके संघर्षसे परमाणुओंके धनकेन्द्रका विच्छेद हो जाता है और एक तत्व किसी दूसरे तत्वमें परिणत हो जाता है ।

एलफाकणोंद्वारा तत्त्व-विच्छेद

एलफाकणोंकी सहायता से तत्वोंके विच्छेदका इतिहास कुछ पुराना-सा है । सन् १९१९में रथरफोर्डने यह देखा कि रेडियम बी और सी (रश्मिम् ख और ग)के मिश्रण-मेंसे निकले हुए एलफाकणोंको नोषजन गैसमेंसे प्रवा-हित किया जाय और फिर दस्तगन्धिद्के परदेपर परीक्षा की जाय तो इस प्रकारकी आभाएँ मिलेंगी जो लम्बी सीमा-

---

* ये वैद्युत्कण अपने स्रोतसे कुछ आगे चलकर शिथिल पड़ जाते हैं, क्योंकि मार्गमें स्थित पदार्थोंको ये अपनी सामर्थ्य बाँटने लगते हैं । जब बिल्कुल शिथिल होजाते हैं, तो फिर ऋणाणुओंसे संयुक्त होकर विद्युत्-विहीन हो जाते हैं । "सीमा" इसी दूरीका नाम है, जो स्रोत और शिथिल-विन्दुके बीचमें स्थित है ।

वाले नये कणोंकी सूचक हैं। बादको यह भी पता चला कि इन नये कणोंपर १ धनात्मक संचार है और इनका भार भी १ है। अर्थात् नोषजन और एलफाकणोंके संघर्षमें प्रोटोनोंकी उत्पत्ति होती है। ये प्रोटोन कहाँसे आये? प्रयोग करके देखा गया कि नोषजनमें अशुद्धिके रूपमें स्थित उद्जनके कारण ये नहीं हो सकते। ये दो प्रकारसे ही उत्पन्न हो सकते हैं। या तो नोषजनके धनकेन्द्रोंका एलफाकणोंसे भौतिक विच्छेद मात्र हुआ है—

$$\text{नो}^{14}_{7} = \text{उ}^{1}_{1} + \text{क}^{13}_{6}$$

इस प्रक्रियामें नोषजन परमाणु एक प्रोटोन और एक ऐसे कर्बनमें परिणत होता है जिसका परमाणु भार १३ है।

[यह कर्बन साधारण १२ भारवाले कर्बनका दूसरा समस्थानिक (Isotope) है]

दूसरी बात यह भी हो सकती है कि एलफाकण पहले नोषजनसे संयुक्त हुआ हो और बादको विच्छेद हुआ हो।

$$\text{नो}^{14}_{7} + \text{हि}^{4}_{2} = \text{उ}^{1}_{1} + \text{ओ}^{17}_{8}$$

ऐसी अवस्थामें प्रोटोनोंके साथ-साथ १७भार वाले ओषजन समस्थानिककी भी उत्पत्ति मानी जायगी। बादको ब्लैकेट (Blackett,ने १९२५में और हार्किन्सने १९२८में यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि संघर्षकी यह प्रक्रिया दूसरे प्रकार की है जिसमें ओषजन (भार १७)की उत्पत्ति होती है।

इसी प्रकार जब एलफाकण टंकम् परमाणुओंसे संघर्षमें आते हैं तो प्रोटोनोंके साथ कर्बन परमाणु (भार १३)की सृष्टि होती है जिसे इस प्रकार सूचित कर सकते हैं—

$$\text{टं}^{10}_{5} + \text{हि}^{4}_{2} = \text{उ}^{1}_{1} \times \text{क}^{13}_{6}$$

सामर्थ्योंका भी हिसाब लगाकर यह समीकरण इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$\text{टं}^{10}_{5} + \text{हि}^{4}_{2} + \text{एलफाकणकी सामर्थ्य}$$
$$= \text{उ}^{1}_{1} + \text{क}^{13}_{6} + \text{प्रोटोन की सामर्थ्य}$$

प्रयोग में ३·६सीमाके एलफाकण लिये गये थे, जिनकी सामर्थ्य सापेक्षवादकी इकाइयोंके अनुसार ०·००५६५भार के बराबर थी।

टंकम्का भार = १०·०१०८०
हिमजन (एलफा) का भार = ४·००१०६
एलफाकणोंकी सामर्थ्य
बराबर भार = ०·००५६६
∴सम्पूर्ण भार = १४·०१७५१
कर्बनका भार (नये समस्थानिकका) = १३·००८
प्रोटोनका भार = १·००७२४
दोनोंका भार = १४·०१५२४

अतः प्रोटोनकी सामर्थ्यके बराबर भार
= १४·०१७५१ — १४·०१५२४ = ०·००२२७

यह भार२·३ $\times$ १०^{6}ऋणाणु-वोल्टके बराबर होता है। चैडविकने प्रयोगमें जो प्रोटोन पाये थे उनकी सामर्थ्य प्रति अणु ३·२ $\times$ १०^{6}वोल्ट थी। इस प्रकार प्रयोग और गणितके फलोंमें समुचित समानता है और यह कल्पना ठीक है, कि टंकम् परमाणु वैद्युत-हिमजन परमाणुओंके संघर्षसे कर्बनमें परिणत हो जाता है।

न्यूट्रोनकी उत्पत्ति

गत कुछ वर्षोंकी खोजोंमें न्यूट्रोनकी खोज बड़े ही महत्वकी है। परमाणुओंके धन केन्द्रके विषयपर न्यूट्रोन बहुत अच्छा प्रकाश डालते हैं। सन् १९३०में बोथे और बेकर (Bothe and Becker) ने यह दर्शाया था कि यदि हलके भारवाले तत्वोंका पोलोनम्से निकले हुए एलफाकणोंद्वारा संघर्ष कराया जाय तो कुछ नई प्रकार की रश्मियाँ निकलती हैं, जो गामा किरणोंके समान हैं। इनमें न तो धनात्मकता है और न ऋणात्मकता। बादको जगद्विख्यात मेडेमकुरीकी पुत्री श्रीमती कुरी-जोलिओट और दामाद जोलियोटने (१९३१) एलफाकणोंका संघर्ष बेरीलम्से कराया। इस संघर्षसे निकली हुई रश्मियोंमें यह गुण था कि यह गामा किरणोंकी अपेक्षा कहीं अधिक दूरीतक पदार्थोंमें प्रविष्ट हो सकती थीं। पर चैडविक महोदयने स्पष्ट रूपसे इन रश्मियोंके विषयमें यह घोषणा की कि ये ऐसे कणोंका समूह हैं जिनका भार तो प्रोटोन या वैद्युत-उद्जन परमाणुओंके बराबर है पर इनमें न तो ऋणात्मकता है और न धनात्मकता। इन्होंने इसका नाम न्यूट्रोन (शिथिलाणु) रखा। इन न्यूट्रोनोंके सम्बन्धमें विस्तृतही विवेचना करनेका हमें यहाँ समय है। इतना कह देना ही समुचित होगा कि परमाणुओंके विच्छेदमें न्यूट्रोनके स्वरूपने बड़ी सहायता दी है। चैडविकने न्यूट्रोनोंके गुणोंके विषयमें यह कथन किया है कि—"सबसे

महत्वका गुण इनमें यह है कि जिन पदार्थोंमें होकर ये प्रवाहित होते हैं, उनके परमाणुओंको ये गतिवान बना देते हैं, और इनमें अत्याधिक प्रवेशनीयता या भेदक शक्ति होती है। (Momenta) आवेगोंका हिसाब लगाकर यह कहा जा सकता है कि इनका भार प्रोटोनोंके भारके बराबर होता है, पर इनकी अधिक प्रवेशनीयताके बराबर यह मानना पड़ता है कि इनमें कोई भी (ऋृणात्मक अथवा धनात्मक) वैद्युत-संचार नहीं है। पदार्थोंमें प्रविष्ट होनेपर इनकी सामर्थ्यमें जो कमी आती है वह परमाणुकेन्द्रसे संघर्षके कारण है न कि ऋृणाणुओंसे संघर्षके कारण। ३ × १०⁹शम। सैकन्ड गतिवाला प्रोटोन वायु में १ फुट ही जाकर सामर्थ्य रहित हो जाता है, पर न्यूट्रोन तो ३००—४०० गज़ चलनेके उपरान्त कहीं परमाणुकेन्द्रोंसे एक बार टक्कर खावेगा और तब मीलों जाने के पश्चात् इसकी सामर्थ्य नष्ट हो पावेगी।'

परमाणुके केन्द्रोंमें प्रोटोन और न्यूट्रोन होते हैं। परमाणुका भार संख्यामें अपने वैद्युत संचारके दुगुनेसे कुछ अधिक ही होता है,अतः केन्द्रोंमें प्रोटोनोंकी अपेक्षा न्यूट्रोनों की संख्या अधिक ही होती है। जब किसी तत्वके 'केन्द्रसे एलफा-कण टक्र खाते हैं,तो पहले ही दोनोंके संयोगसे एक नया केन्द्र बनता है, और बादको इस केन्द्रमेंसे एक न्यूट्रोन मुक्त होजाता है। अब जो नया तत्व बनता है, उसका वैद्युत-संचार पहलेकी अपेक्षा २ अधिक हो जाता है, और परमाणुभार पहलेकी अपेक्षा ३ अधिक हो जाता है जैसा कि निम्न समीकरणसे स्पष्ट है। बेरीलम् और एलफाकणोंके संघर्षसे—

$$\text{बे}^{९}_{४} + \text{हि}^{४}_{२} = \text{क}^{१२}_{६} + \text{न्यू}^{१}_{०}$$

इस प्रकार बेरीलम् तत्वसे कर्बन तत्व बन गया शोणम् टंकम् , प्लविन, नूतनम्, सैन्धकम्, मगनीसम् और स्फटम् तत्वोंमेंसे भी इसी प्रकार न्यूट्रोन निकल सकते हैं। प्रक्रिया में नये तत्व इस प्रकार बनेंगे—

(१) शोणम्से टंकम—

$$^{७}_{३} + \text{हि}^{४}_{२} = \text{टं}^{१०}_{५} + \text{न्यू}^{१}_{०}$$

(२) टंकम् से नोषजन—

$$\text{टं}^{११}_{५} + \text{हि}^{४}_{२} = \text{नो}^{१४}_{७} + \text{न्यू}^{१}_{०}$$

(३) प्लविन से सैन्धकम्—

$$\text{प्ल}^{१९}_{९} + \text{हि}^{४}_{२} = \text{सै}^{२२}_{११} + \text{न्यू}^{१}_{०}$$

इसी प्रकार नूतनम्से मगनीसम्, सैन्धकम्से स्फटम्, मगनीसम्से शैलम्, और स्फटमसे स्फुर, कर्बन (१२) नोषजन (१४) या ओषजन (१६) से टक्कर खानेपर न्यूट्रोन उपर्युक्त विधिमें नहीं बनते हैं।

हम ऊपर के किसी भी समीकरण के आधार पर न्यूट्रोनका भार निकाल सकते हैं। सामर्थ्योंका हिसाब लगाकर समीकरण इस प्रकार लिखा जावेगा। सामर्थ्योंको भारकी इकाइयोंमें सापेक्षवादके अनुसार परिणत कर लेना चाहिए।

$$\text{टं}^{११}_{५} + \text{हि}^{४}_{२} + \text{एलफाकी सामर्थ्य} = \text{नो}^{१४}_{७} + \text{नोषजनकी सामर्थ्य} + \text{न्यू}^{१}_{०} + \text{न्यूट्रोनकी सामर्थ्य}$$

टंकमका भार = ११.००८२५
एलफाकणका भार = ४·००१०६
एलफाकी सामर्थ्य, भारकी इकाइयोंमें = ०·००५६५
योग = १५·०१४९६

नोषजन का भार = १४·००४२
नोषजनकी सामर्थ्य = ०·०००६१
न्यूट्रोनकी सामर्थ्य = ०·००३५
योग १४·००८३१

अतः न्यूट्रोनका भार = १५·०१४९६—१४·००८३१
= १·००६६५

अर्थात् न्यूट्रोन का भार १·००६७ के लगभग है।

न्यूट्रोनों द्वारा परमाणु-विच्छेद

जिस प्रकार परमाणु केन्द्रों और एलफाकणोंके संघर्ष से न्यूट्रोन विसर्जित होते हैं उसी प्रकार न्यूट्रोनों केसंघर्षसे भी परमाणुकेन्द्रका विच्छेद किया जा सकता है। जब न्यूट्रोन किसी केन्द्रके साथ टक्र खाता है, तो या तो यह पीछेकी ओर उलटकर वापस चला जाता है, जैसे दो गेंदें टक्र खाकर फिर अलग-अलग हो जाती हैं, अथवा कभी न्यूट्रोन केन्द्रसे संयुक्त होकर साथ-साथ चलने लगता है। इस दूसरे प्रकारकी टक्करोंमें कभीकभी दोनोंके संयुक्तकेन्द्रका विच्छेद हो जाता है, और नया तत्व बन जाता है। फेदर (Fether) महोदयने इस प्रकारके कई प्रयोग

किये। नोषजनसे टक्कर लगनेपर दो प्रकारके असर देखे गये हैं। एक प्रकार तो टंकम् तत्व बनता है और एलफा-कण विसर्जित हो जाते हैं।

$$\text{नो}^{१४}_{७}+\text{न्यू}^{१}_{०}=\text{टं}^{११}_{५}+\text{हि}^{४}_{२}$$

पर दूसरे प्रकारकी प्रक्रियामें न्यूट्रोन स्वयं परिवर्तित नहीं होता, वह टक्कर मारकर केन्द्रमेंसे एक प्रोटोन पृथक् कर देता है—

$$\text{नो}^{१४}_{७}+\text{न्यू}^{१}_{०}=\text{क}^{१३}_{६}+\text{उ}^{१}_{१}+\text{न्यू}^{१}_{०}$$

इस प्रक्रियामें १३ भारवाला समस्थानिक कर्बन बनता है। ओषजन और न्यूट्रोनके संघर्षसे भी यही कर्बन बनता है।

$$\text{ओ}^{१६}_{८}+\text{न्यू}^{१}_{०}=\text{क}^{१३}_{६}+\text{हि}^{४}_{२}$$

एसीटिलीनके कर्बन से न्यूट्रोन बेरीलम् तत्व देता है।

$$\text{क}^{१२}_{६}+\text{न्यू}^{१}_{०}=\text{बे}^{९}_{४}+\text{हि}^{४}_{२}$$

न्यूट्रोनोंकी सहायतासे कृत्रिम रश्मिशक्तिक पदार्थोंका भी संश्लेषण किया गया है जिसका उल्लेख आगे किया जावेगा।

धनाणु या पोज़ीट्रोनका अन्वेषण

इसमें सन्देह नहीं कि एलफाकण, प्रोटोन और न्यूट्रोन ये तीनों परमाणुओंके केन्द्रकी व्यवस्थापर समुचित प्रकाश डालते हैं, पर धनात्मक विद्युत्के ये सूक्ष्मतम अंश नहीं कहे जाते, उपर्युक्त तीनोंही ऋणाणुओंकी तुलनामें कहीं अधिक भारी हैं। इधर वैज्ञानिक निरन्तर इस चिन्तायें थे कि क्या उन्हे ऋणाणुओंके समान ही कोई अति सूक्ष्म धनाणु सत्ता भी प्राप्त हो सकती है। न्यूट्रोनके अन्वेषणके उपरांत धनाणुओंकी विद्यमानताके स्पष्ट चिन्ह दिखाई पड़ने लगे।

मिलीकनका नाम 'विश्व-रश्मि' या कास्मिक किरणोंके साथ सदा स्मरणीय रहेगा। ये कास्मिक किरणें आकाशके प्रत्येक स्थलमें बहिर्जगतसे प्रविष्ट हुआ करती हैं और विद्युत् प्रदर्शक यन्त्रोंको अवैद्युत् किया करती हैं। इनकी प्रवेशनीयता बड़ी भयंकर होती है। मोटे-से-मोटे सीसे के टुकड़े भी इनके पथमें बाधा नहीं डालते हैं। इन विश्व रश्मियोंके प्रयोगों ने ही धनाणुओं या पोज़ीट्रोनोंको जन्म दिया है। इनके आविष्कर्ता डा० एण्डरसन हैं, जिन्होंने सितम्बर १९३२में इनके अस्तित्वकी घोषणा की थी। केलीफोर्निया इन्स्टीट्यूटमें एक बार ये विलसन के 'मेघयन्त्र' Cloud Chamber में कास्मिक किरणोंके प्रभावपर प्रयोग कर रहे थे। यह यंत्र १५००० गौस चुम्बकीय क्षेत्रमें रखा गया था। प्रयोगमें इन्होंने कुछ ऐसे चित्र लिये जिनमेंसे कुछ किरणोंकी वक्रतायें उस दिशामें थीं, जिनसे यह सूचित होता था कि इनमें धनात्मकता है। पर इन किरणों के मार्गमें जितना यापन होता था, उससे यह प्रकट होता था कि वह उतनी नहीं है, जितना कि धनात्मक प्रोटोनों या एलफाकणोंके कारण होना चाहिये था। अतः ये नये कण धनात्मक होने पर भी प्रोटोन या एलफा कण न थे, प्रत्युत उनसे कहीं छोटे थे। एण्डरसन के प्रारम्भिक अनुमानोंद्वारा इनका भार ऋणाणुके भारसे २० गुना भारी माना गया। (मार्च १९३३)

बादको ब्लैकेट और ओक्यालिनी (Blackett and Occhialini)ने केम्ब्रिजमें इन प्रयोगोंको दोहराया। इन्होंने चुम्बकीय क्षेत्रको कम कर दिया। (२०००—३००० गौस), पर दो गाइगर-गणकों (Geiger counters) की सहायतासे दो साथ-साथ फोटोग्राफ लेने की व्यवस्था थी। यही नहीं, अप्रेल १९३३में चैडविक, ब्लैकेट, ओक्यालिनी, कुरी-जोलियोट, माइटनर-फिलिप आदि अनेक महोदयोंने यह भी घोषणा की, कि जब बेरीलमपर एलफाकणोंका संघर्ष होता है, तो कुछ रश्मिएँ निकलती हैं और ये रश्मियें बादको धनाणुओंको जन्म देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है, कि गामा रश्मियें केन्द्रोंसे संघर्ष खानेपर धनाणु उत्पन्न कराती हैं अथवा स्वयं विभाजित होकर धनाणु दे देती हैं, कुरी और जोलियोट का विश्वास है, कि स्फट या टंकन धातुयें एलफा कणोंके संघर्षसे एकदम धनाणु देती हैं।

अब यह तो स्पष्ट हो गया है कि धनाणुओंका भार वही है जो कि ऋणाणुओं का भेद केवल वैद्युत्-अवस्थाका है। एकमें जितनी धनात्मकता है, दूसरेमें उतनी ही ऋणात्मकता है। सम्भव है कि—

$$\text{गामा किरण}=\text{धनाणु}+\text{ऋणाणु}$$

धनाणु प्रकाशकी गतिसे चलते हैं और इतनी तीव्र गतिके कारण (आइसटाइन-लारेञ्ज सूत्रके अनुसार)

इनका भार अधिक प्रतीत होता है, पर स्थायी अवस्था में ये ऋणाणु के समान ही भारवाले हैं।

भारी उद्‌जन या भारी पानीकी खोज

भौतिक-रसायनके क्षेत्रमें गत तीन-चार वर्ष तो चमत्कार-पूर्ण रहे हैं। एकसे एक आश्चर्यजनक वस्तुएँ वैज्ञानिकोंके हाथ लग रही हैं। अभी गत वर्ष ही 'भारी उद्‌जन' और 'भारी पानी'की खोज करनेवाले प्रोफेसर यूरेको नोबेल पारितोषिक प्राप्त हो चुका है। इनकी खोजके कारण आज विज्ञानके समस्त क्षेत्रोंमें हलचल मच गयी है।

धनात्मक रश्मियोंकी खोजके उपरान्त (१८९८)से ही समस्थानिकोंकी खोजका प्रबन्ध किया जाने लगा था। समस्थानिक तत्वोंके वे परमाणु हैं जिनका परमाणुभार तो भिन्न-भिन्न होता है, पर उनके भौतिक और रासायनिक गुण एकसे ही होते हैं। मैण्डलीफके आवर्त्त-संविभागमें उन सबको एक ही स्थान मिलता है, इसलिए उन्हें समस्थानिक कहा जाता है। उदाहरणतः हरिन्-गैसका साधारण परमाणुभार ३५·४६ है, पर वस्तुतः हरिन्‌के कुछ परमाणु ३५ भारवाले हैं और कुछ ३७। वे दोनों इस अनुपातमें मिले हुए हैं, कि औसतभार ३५·४६ है। आस्टन महोदयके स्मरणीय प्रयोगोंने समस्थानिकोंके पहचाननेमें बहुत सहायता दी है।

प्रत्येक तत्वके समस्त समस्थानिकोंके रासायनिक और भौतिक गुण इतने समान होते हैं, कि उन्हें किसी भी विधिद्वारा पृथक् करना दुष्कर है। और फिर एक यह कठिनाई है, कि कोई एक समस्थानिक तो अधिक मात्रामें होता है और शेष घटमें विन्दु-मात्र होते हैं। इन कारणोंसे यह निश्चित होनेपर भी वे तत्वोंमें कई समस्थानिक मिले हुए हैं, ये सब अलग-अलग न किये जा सके।

सम्भवतः साधारण उद्‌जनके ४५०० भागोंमें एक भाग ऐसे भी उद्‌जनका विद्यमान है जिसका परमाणु भार १ नहीं प्रत्युत २ है। इसकी विद्यमानता उद्‌जनके रश्मिचित्रके आधारपर सबसे पहले सन् १९३३में बेनब्रिज (Bainbridge) ने बतलायी थी, और बादको वाशबर्न और यूरेने साधारण उद्‌जनमेंसे इसे पृथक् किया।

द्रव उद्‌जनके वाष्पीभूत करनेपर अन्तमें कुछ ऐसा उद्‌जन रह जाता है जिसमें भारी उद्‌जन पहलेकी अपेक्षा अधिक अनुपातमें पाया जाता है। इन महोदयोंने पुरानी बिजलीकी बैटरियोंके पानीकी परीक्षा की, जिनमें जलका विद्युद्‌विश्लेषण किया जाता था। दो-तीन वर्ष पुरानी बाटरियोंके पानीमें भारी उद्‌जन अधिक मात्रामें पाया गया। बादको जी० एन० लेविस और मैकडानल्डने पुरानी बाटरीसे २० लीटर पानी लिया जिसमें थोड़ी क्षारीयता (स$_2$) थी। नकलम् धातुके बिजलोदोंसे २५० एम्पीयर धाराद्वारा इसका ९०% पानी उड़ा दिया गया। शेषके दशांशको कर्बनद्विओषिदद्वारा शिथिल करके फिर स्रवण किया गया। विद्युत विश्लेषण और स्रवणकी विधियोंको कई बार दोहराया गया, और अन्तमें ऐसा जल प्राप्त हुआ जिसके विद्युत्-विश्लेषणसे ९९% 'भारी उद्‌जन' मिला।

इस 'भारी उद्‌जन' के तीन नाम प्रसिद्ध हैं—

यूरेने इसका नाम ड्यूटीरियम (Deuterium) दिया था, लेविस ने ड्यूटोन (Deuton) या ड्यूटीरोन (Deuteron) और रथरफोर्डने इसे डाइप्लोजन (Diplogen) कहा है।

'भारी पानी' के गुणोंकी विवेचना करनेका यहाँ अवसर नहीं है। इतना ही कह देना समुचित होगा कि इसका घनत्व २०° पर १·१०५६ (साधारण जलका ·९९८२) है। इसका द्रवणाङ्क ३·८ और क्वथनांक १०१·४२ है। इसकी स्निग्धता भी साधारण पानीकी अपेक्षा अधिक है।

डाइप्लोनोंसे परमाणु-विच्छेद

जिस प्रकार वैद्युत-उद्‌जन (Charged hydrogen atom) परमाणुको प्रोटोन कहते हैं उसी प्रकार वैद्युत्-'भारी उद्‌जन' परमाणुको डाइप्लोन (Dipolon) कहते हैं। ये वैद्युत-डाइप्लोजन कण हैं। डाइप्लोजनका संकेत 'ड' है। वैद्युत संचार और परमाणुभार प्रदर्शित करनेके लिए इसे ड$^2_1$ लिख सकते हैं, अर्थात् डाइप्लोनका भार २ और धनात्मकता १ है। प्रोटोनोंकी सहायतासे जिसप्रकारका परमाणु-विच्छेद होता है उसका उल्लेख हम पहले कर आये हैं।

लार्ड रथरफोर्ड (१९३४)का कथन है कि 'भारी उदजनकी खोजने परमाणु-विच्छेदका एक ऐसा साधन हमें दिया है, जिससे हलके तत्व अति कौतूहल-पूर्ण विधिसे विच्छिन्न हो जाते हैं। यह सौभाग्यकी बात है कि लगभग उसी समय जब प्रो० लेविस डाइप्लोजन तैयार करनेमें समर्थ हुए, उसी विश्वविद्यालयमें प्रो० लरेन्सको एक ऐसी आयोजनामें सफलता मिली, जिसकी सहायतासे अतिवेग-वाले प्रोटोन और अन्य कण २० लाख वोल्ट सामर्थ्यसे संयुक्त प्राप्त हो सकते थे। जब उदजनके स्थानमें डाइप्लो-जनका प्रयोग किया गया तो उनसे डाइप्लोन (ड+) प्राप्त हुए जो शोणम् तत्वके परमाणु-विच्छेदमें प्रोटोनोंकी अपेक्षा १० गुने अधिक प्रभावशाली थे।'

शोणम् तत्वके दो मुख्य समस्थानिक हैं जिनका भार ६ और ७ है। डाइप्लोनसे दोनों समस्थानिकोंका विच्छेद हो सकता है। जब ६ भारवाला समस्थानिक डाइप्लोनके संघर्षमें आता है तो वैद्युत्-हिमजन (एलफाकण) के दो कण दो भिन्न दिशाओंमें अतिवेगसे प्रस्फुटित होने लगते हैं—

$$\text{शो}^{६}_{३} + \text{ड}^{२}_{१} = \text{हि}^{४}_{२} + \text{हि}^{४}_{२}$$
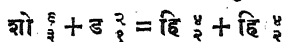
७ भारवाले समस्थानिकपर भी डाइप्लोनका प्रभाव रथरफोर्ड और ओलिफेण्टने देखा है। इनकी प्रक्रियामें एलफाकणोंके अतिरिक्त न्यूट्रोन भी प्राप्त होता है—

$$\text{शो}^{७}_{३} + \text{ड}^{२}_{१} = \text{हि}^{४}_{२} + \text{हि}^{४}_{२} + \text{न्यू}^{१}_{०}$$
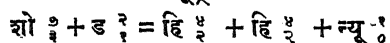
लोरेन्सने अपने प्रयोगोंद्वारा दिखाया है कि डाइप्लोनकी टक्करसे एलफाकण और न्यूट्रोन ही नहीं, प्रत्युत कुछ तत्वोंमें प्रोटोन भी प्राप्त होते हैं।

रथरफोर्ड, हाटक और ओलीफेंटने केम्ब्रिजमें अमोनियम हरिद, $\text{नोड}_{४}\text{ह}$ और अमोनियम गन्धेत, ($\text{नोड}_{८}\text{गओ}_{४}$) पर जिनमें साधारण उदजनके स्थानमें भारी उदजन कर दिया गया था डाइप्लोनोंका प्रभाव देखा। उनका कथन है कि प्रक्रियामें प्रोटोनोंका अति तीव्र समूह विसर्जित हुआ। इतनी अधिक मात्रामें इतना वेगवान् समूह और किसी प्रयोगमें नहीं पाया गया था।

रथरफोर्डका विश्वास है कि इन प्रक्रियाओंमें कभी-कभी दो डाइप्लोन कणोंमें परस्पर संयोग हो जाता है, और बादको प्रोटोन निकलने लगता है। इसके साथ-ही-साथ त्रिगुण-उदजन (त्रिप्लोजन)का भी बनना संभवनीय है।

$$\text{ड}^{२}_{१} + \text{ड}^{२}_{१} \rightarrow \text{हि}^{४}_{२} \rightarrow \text{ड}^{३}_{१} + \text{ड}^{१}_{१}$$
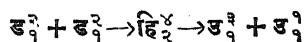
और जब न्यूट्रोन निकलता हो तो ३ भार वाला हिम-जन समस्थानिक भी बनता है—

$$\text{ड}^{२}_{१} + \text{ड}^{२}_{१} \rightarrow \text{हि}^{४}_{२} \rightarrow \text{हि}^{३}_{२} + \text{न्यू}^{१}_{०}$$
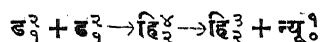
डाइप्लोनोंका उपयोग परमाणु-विच्छेदमें अभी नया ही हुआ है। सम्भवतः आगे जाकर इससे और भी अधिक मनोरञ्जक फल मिलें।

कृत्रिम रश्मिशक्तिक तत्त्व

फर्वरी १९३४में जोलियोट और इरीन क्युरीने यह प्रकाशित किया कि जब स्फटमधातुके पत्रपर पोलोनियम-द्वारा विसर्जित एलफाकण आकर पड़ते हैं तो धनाणु (पोज़ीट्रोन) निकलने लगते हैं। पर पोलोनियमके अलग हटा लेनेपर इन धनाणुओंका निकलना बन्द नहीं हो जाता है। ये कुछ समयतक और निकलते रहते हैं। तात्पर्य्य यह है कि धातुपत्र कुछ कालके लिए स्वयं रश्मिशक्तिक हो जाता है। इसकी रश्मिशक्ति कालोपरान्त उन्हीं नियमोंके अनुसार क्षीण होती है जिनके अनुसार अन्य प्राकृतिक रश्मिशक्तिक पदार्थोंकी स्फटम् धातुके अतिरिक्त टंकम् और मग्नीशम धातु भी कुछ समयके लिए रश्मिशक्तिक हो जाती हैं। टंकम्से प्राप्त पदार्थका 'अर्द्ध-जीवन-काल' (Half-life period) १४ मिनट, मग्नीसम वालेका २ मिनट ३० सैकण्ड और स्फटम्वालेका ३ मिनट १५ सैकण्ड है।

टंकम्पर एलफाकणका प्रभाव निम्न प्रकार होता है—

$$\text{टं}^{१०}_{५} + \text{हि}^{४}_{२} = \text{नो}^{१३}_{७} + \text{न्यू}^{१}_{०}$$
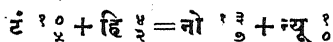
१३ भारवाला नोषजन संभवतः रश्मिशक्तिक पदार्थ है। इसमेंसे एक धनाणु निकलनेपर स्थायी कर्बन शेष रह जाता है—

$$\text{नो}^{१३}_{७} = \text{क}^{१३}_{६} + \text{धनाणु}$$

इसी प्रकार स्फटम् द्वारा रश्मिशक्तिक स्फुर बनता है—

$$\text{स्फ}^{२७}_{१३} + \text{हि}^{४}_{२} = \text{स्फु}^{३०}_{१५} + \text{न्यू}^{१}_{०}$$

और मगनीसम्से रश्मिशक्तिक शैलम्—

$$\text{म}^{२४}_{१२} + \text{हि}^{४}_{२} = \text{शै}^{२७}_{१४} + \text{न्यू}^{१}_{०}$$
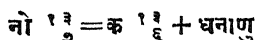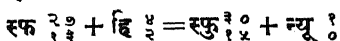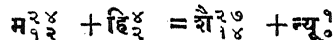
इन सब प्रक्रियाओंमें न्यूट्रोन मुक्त होते हैं।

फर्मी प्रभाव और ९३वां तत्व

गत वर्ष फर्मीने यह घोषणाकी थी कि जब न्यूट्रोनोंका संघर्ष पिनाकम् परमाणु (यूरेनियम)से होता है तो धातुमें रश्मिशक्ति आ जाती है और इसमेंसे बीटा किरणें (ऋणाणु समूह) निकलने लगती हैं। ऋणाणुके निकलनेपर एक नया तत्व बन जाता है, जिसकी परमाणु-संख्या ९३ है। अबतक केवल ९२ तत्व ज्ञात थे, पर कृत्रिम विधिसे बनाया गया यह ९३वाँ तत्व है। इसके बननेका समीकरण इस भाँति है—

$$\text{पि}^{२३८}_{९२} + \text{न्यू}^{१}_{०} = \text{फ}^{२३९}_{९३} + \text{ऋणाणु}$$
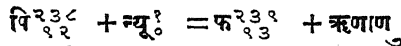
प्रक्रियासे पूर्व ९२ धनात्मकता थी। एक ऋणाणु निकलनेसे धनात्मकता एक बढ़ गयी और ९३ परमाणु-संख्याका तत्व 'फर्मी-तत्व' बन गया जिसका संकेत हमने समीकरणमें "फ" दिया है।

फर्मीकी घोषणासे पूर्व यह तत्व कहीं प्राकृतिक रूपमें नहीं पाया गया। बादको ऐसा पता लगा कि पिचब्लैण्डीमें ९३ वाँ तत्व मिला है जिसके गुण मैंसूरम (४३) या रैनम् (७५)से मिलते-जुलते हैं। बहुतोंको इस नये तत्वकी विद्यमानतामें अब भी सन्देह हो जाता है, पर अब तो इसे रासायनिक विधियोंद्वारा अलग भी कर दिया गया है और इसका अस्तित्व निश्चित ही है।

कुरी-जोलियोटोंके जिन प्रयोगोंका अभी ऊपर उल्लेख किया गया है उसमें एल्फा-कणोंके संघर्षसे रश्मिशक्तिक तत्व बनता है। और साथ-साथ न्यूट्रोनोंका विसर्जन होता है। स्फटम्से बना हुआ रश्मिशक्तिक स्फुर अपनी रश्मिशक्तित्वकी अवस्थामें धनाणु देता है।

$$\text{स्फ}^{२७}_{१३} + \text{हि}^{४}_{२} = \text{स्फु}^{३०}_{१५} + \text{न्यू}^{१}_{०}$$

$$\text{स्फु}^{३०}_{१५} = \text{शै}^{३०}_{१४} + \text{धनाणु}$$
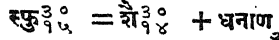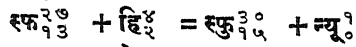
अबतक जितने प्राकृतिक रश्मिशक्तिक पदार्थ पाये गये थे उनसे एल्फाकण, बीटाकण (ऋणाणु) और गामा किरणें ही निकलती थीं, पर कुरी-जोलियोटोंके प्रयोगोंने यह नयी बात बतायी कि कृत्रिम रश्मिशक्तिक पदार्थोंसे ऋणाणु ही नहीं, प्रत्युत धनाणु भी निकल सकते हैं।

मगनीसम् और एल्फाकणोंके संयोगसे रश्मिशक्तिक स्फटम् बनता है और प्रोटोनका विसर्जन होता है—

$$\text{म}^{३५}_{१२} + \text{हि}^{४}_{२} = \text{स्फ}^{२८}_{१३} + \text{उ}^{१}_{१}$$

यह स्फटम् रश्मिशक्तिक प्रक्रियामें ऋणाणु देता है

$$\text{स्फ}^{२८}_{१३} \rightarrow \text{शै}^{२८}_{१४} + \text{ऋणाणु}$$
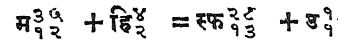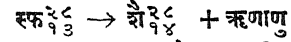
इसका अर्द्धजीवन काल पौने तीन मिनट है।

एल्फाकणोंके संघर्षसे ही नहीं प्रत्युत डाइप्लोनोंके संघर्षसे भी रश्मिशक्तिक पदार्थ बने हैं। लारेन्सने सैन्धकम् [२३] से डाइप्लोनकी सहायतासे सैन्धकम्का दूसरा रश्मिशक्तिक समस्थानिक (२४) बनाया। प्रक्रियामें प्रोटोनोंका विसर्जन हुआ—

$$\text{सै}^{२३}_{११} + \text{ड}^{२}_{१} = \text{सै}^{२४}_{११} + \text{उ}^{१}_{१}$$
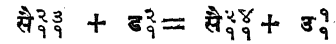
यह कहा जा सकता है कि डाइप्लोन साधारण वैद्युत-उदजनमें परिणत हो गया। यह नया सैन्धकम् रश्मिशक्तिक प्रक्रियामें ऋणाणु (बीटा) देता है। इसका जीवनकाल १५½ घंटे है। साथ-साथ गामा किरणें भी निकलती हैं।

फर्मीके सबसे महत्वके प्रयोग वे हैं जिनमें न्यूट्रोनोंके प्रभावसे रश्मिशक्तिक पदार्थ बनाये गये हैं। इस प्रक्रियाका नामही "फर्मी-प्रभाव" है। न्यूट्रोन अवैद्युत् हैं, इस कारण इनका प्रभाव प्रोटोनों या एल्फाकणोंकी अपेक्षा कहीं अधिक है। आवर्त्त-संविभागके लगभग सभी तत्वोंपर इनका प्रभाव पड़ता है। मगनीसम्पर न्यूट्रोनका प्रभाव निम्न प्रकार होता है—

$$\text{म}^{२४}_{१२} + \text{न्यू}^{१}_{०} = \text{सै}^{२}_{११} + \text{उ}^{१}_{१}$$
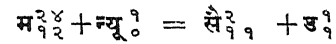
यह रश्मिशक्तिक सैन्धकम् फिर ऋणाणु दे देता है जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। ऐसे ही प्रयोग प्लविन्-पर भी किये गये हैं जिनमें भी न्यूट्रोनके प्रभावसे प्रयोग या एल्फाकण निकलते हैं।

यदि भारी परमाणुभारवाले तत्वोंको लिया जाय तो न्यूट्रोन एकदम केन्द्रसे संयुक्त हो जाता है और अधिक भारी परमाणुभारवाला रश्मिशक्तिक तत्व बन जाता है। इन प्रयोगोंके सम्बन्धमें बहुतसी मनोरञ्जक बातोंका पता चला है, जिनकी व्याख्या करना कठिन है। फर्मीका कहना है कि संघर्षके समय यदि न्यूट्रोनोंके स्रोतको पैराफीन या पानीमें रखा जाय तो रश्मिशक्तिक पदार्थोंके बननेकी सम्भावना कभी-कभी सौगुनी अधिक हो जाती है।

अब हम यहाँ इस विषयकी समाप्ति स्फटम्का मनोरञ्जक उदाहरण देकर करेंगे। रश्मिशक्तिक स्फटम

($\text{स्फ}^{२८}_{१३}$) ५ विधियों द्वारा बनाया जा सका है जैसा कि निम्न ५ समीकरणों द्वारा स्पष्ट है:—

(१) $\text{स्फ}^{२७}_{१३} + \text{न्यू}^{१}_{०} = \text{स्फ}^{२८}_{१३}$

(२) $\text{शै}^{२८}_{१४} + \text{न्यू}^{१}_{०} = \text{स्फ}^{२८}_{१३} + \text{उ}^{१}_{१}$ (प्रोटोन)

(३) $\text{स्फु}^{३१}_{१५} + \text{न्यू}^{१}_{०} = \text{स्फ}^{२८}_{१३} + \text{हि}^{४}_{२}$ (एलफा)

(४) $\text{स्फ}^{२७}_{१३} + \text{ड}^{२}_{१} = \text{स्फ}^{२८}_{१३} + \text{उ}^{१}_{१}$

(५) $\text{म}^{२५}_{१२} + \text{हि}^{४}_{२} = \text{स्फ}^{२८}_{१३} + \text{उ}^{१}_{१}$

पहली तीन प्रक्रियाओंमें स्फटम्, शैलम और स्फुर-पर न्यूट्रोनोंका प्रभाव डाला गया है। चौथीमें डाइप्लोनका स्फटम्से संघर्ष कराया और पांचवींमें मगनीसम और एलफा-कणोंका संघर्ष प्रदर्शित किया गया है।

केन्द्र रसायनकी ये प्रक्रियाएँ बड़ी ही अद्भुत और मनोरंजक हैं। तत्वोंके केन्द्रोंको अपने वशमें कर लेना अब निकट-भविष्यकी ही बात प्रतीत होती है।

उपसंहार

अब तक जो कुछ भी वर्णन किया गया है, उससे इतना तो अवश्य ही पता चलता है कि एक तत्वका दूसरे तत्वमें परिणत होना संभवनीय बात है। कल्पनासे तो यह स्पष्ट है कि सृष्टिसे पूर्व अति प्रारम्भिक अवस्थामें सब तत्वोंका एक ही रूप रहा होगा। वह प्रकृतिकी अविच्छिन्न अवस्था थी। इसके उपरान्त उस अद्वैत प्रकृतिसे बहुत्व आरम्भ हुआ, और सम्भवनीयता probability और आकस्मिकताके आधारपर जिन-जिन रूपोंका होना अधिक स्थायी था, वे-वे बनने लगे और कालान्तरपर आज इन्हींने तरह-तरहके तत्वों और यौगिकोंका रूप धारण कर लिया है। इन तत्वोंका इतिहास अरबों वर्ष पुराना है, और सम्पूर्ण संसारकी शक्तियाँ इस परिवर्तनमें सहायक हैं। मनुष्यका जीवनकाल अति परिमित और उसके साधन सीमित हैं। कुछ घण्टों, दिनों या वर्षोंमें ही वह कार्य करनेकी चेष्टा करना जिसे प्रकृतिने अनेक भौगर्भिक युगोंमें किया, दुष्कर ही कार्य है। इसी कारण हम जिन तत्वोंको कृत्रिम विधियों-द्वारा परिवर्तित करनेमें सफल हुए हैं, वे इतनी सूक्ष्म मात्रा में हैं, कि उनका संकेतमात्र ही विशिष्ट फोटोग्राफिक चित्रोंमें पाया जाता है। एक रत्ती या एक माशा भी तैयार होना अभी स्वप्नकी बात है। और इतने थोड़ेसेके लिए भी सहस्रों रुपया व्यय हो जाता है। हमारी इस सफलतापर व्यापारियोंको तो हताश होना पड़ेगा, बहुमूल्य यूरेनियम या रेडियम को निकम्मे सीसामें परिणत करना तो अधिक आसान हो सकता है, पर सीसासे रेडियम बनाना तो अभी सम्भवनीय बात भी नहीं प्रतीत होती है।

हाँ, 'केमिकल गोल्ड' (रासायनिक स्वर्ण)के सुन्दर सुनहले आभूषण बाज़ारमें आजकल धड़ाधड़ सस्ते बिक रहे हैं। दो-तीन रुपएकी चूड़ियाँ सच्चे सोनेके गहनोंको लज्जित कर रही हैं। इनमें चमक है, शोभा है, स्थायीपन भी है, पर फिर भी 'all that glitters is not gold' प्रत्येक सुनहरी चीज़ सोना नहीं है!

हिन्दुओंकी राज्यसंबंधी आदर्श-कल्पना

रामराज्य कैसा था ?

[रामदास गौड़]

आजकल संसारमें न्यूयार्ककी आबादी सबसे अधिक बढ़ी हुई है। साठ लाखके लगभग बतायी जाती है। अयोध्यापुरीका विस्तार जैसा वर्णित है, न्यूयार्कके वर्तमान विस्तारसे कहीं अधिक था। अनुमानसे आबादी भी अभी न्यूयार्ककी उतनी नहीं हो पायी है। देश-काल दोनों आज बहुत संकुचित हो गये हैं। विमानोंद्वारा महीनोंका मार्ग घंटोंमें तय होने लगा है, परन्तु उस समय देश-काल आजसे भी कहीं अधिक संकुचित थे। सौ योजन सागर हनुमान्‌जीके लिए अधिक-से-अधिक कुछ घंटोंमें तय हुआ था। सजीवन-बूटी लानेको हनुमान्‌जीने दो हजार कोसकी यात्रा की, कालनेमि और भरतजीके कारण राह भी खोटी हुई, परन्तु कुल छः-सात घण्टे लगे। भगवान् रामचन्द्रजी पुष्पक-विमानपर सवार हुए, किष्किंधामें आकर उतरे। वहाँ और सवारियाँ लेकर बीच-बीचमें मुनियों, ऋषियोंसे मिलते अयोध्यातक आये, फिर भरद्वाजाश्रम लौटकर हनुमान्‌जीको भेजा, उन्होंने लौटकर भरतजीका हाल कहा। फिर शामके पहले ही सारी मण्डली अयोध्याजी पहुँच गयी। इस यात्रामें आरामके साथ तीन पहरसे अधिक नहीं लगे। कहना चाहिये कि महीनोंका मार्ग मिनटोंमें तय होता था। और ऐसी सुविधा न होती तो अनेक लोक-लोकान्तरोंका भ्रमण करते हुए नित्य नारदजी कैसे आया करते ? इस विज्ञान-युगमें तो मंगल ग्रहसे बातचीत करनेकी अभी बातचीत ही चल रही है। देश-कालके अत्यन्त संकुचित हुए बिना आवागमनके साधनोंके अत्यन्त सुगम और सुलभ हुए बिना, त्रेतायुगमें ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकती थी। विज्ञानकी सतत-वर्धमाना प्रगतिको आज देखते हुए रामायणकी इन बातोंको काल्पनिक कहनेका दुःसाहस कोई समझदार वैज्ञानिक नहीं कर सकता।

रेल, तार, डाक, हवाई जहाज, मोटर आदिके कारण आज संसारमें पारस्परिक संबंधका ऐसा ताना-बाना-सा लग गया है कि अमेरिकामें—हमारे पाँवोंके नीचे ठीक पाताल-में—डालरका भाव गिरा और यहाँ तुरन्त रूईका भाव चढ़ गया। यह उसी तरह की चेतनावाली बात है कि हमारे पाँवोंमें मच्छरने डंक चुभोया नहीं कि हमारे दिमागको खुजली मालूम हुई और हाथको हुक्म हुआ और वह तुरन्त उसी जगह पहुँच गया। एक ही चेतना सारी देहमें व्याप रही है इसीसे शरीरका देश-काल संकुचित है, शरीररूपी देशपर चेतनाका राम-राज्य है, मजाल क्या कि कुमककी जरूरत हो और उसके पहुँचनेमें पलक मारनेकी भी देर लगे। आज जिस विश्वव्यापी चेतनाके आरम्भिक लक्षण देखे जाते हैं वह आसुरी मायाकी महाप्रबलताका परिचायक है। राम-राज्यके समयमें प्रकृतिके अधीश्वर विश्वात्मा स्वयं शासन कर रहे थे। समस्त भूमण्डलमें एक चेतना व्याप रही थी। इसीलिये संसारके एक कोनेमें जो घटना होती थी उसका प्रभाव तुरन्त दूसरे कोनेतक जाकर पड़ता था। आज बिजली जो काम परवश होकर यन्त्रके सहारे करती है और भूमण्डलसे बाहर उसकी गतिके सम्बन्धमें विज्ञानका बस नहीं चलता, वही स्ववश होकर लोकान्तरोंसे भी सम्बन्ध स्थापित करे, तो कौन-से आश्चर्यकी बात है। अभीतक प्रकाशकी गति जो सेकण्डमें एक लाख छियासी हजार मील है, सबसे अधिक वेगवाली समझी जाती है। परन्तु कौन कह सकता है कि कल ही विज्ञान ऐसे सर्गाणुओंका पता लगा ले जिसके सामने प्रकाश और बिजलीकी गति भी अत्यन्त मन्द पड़ जाय और इस महान् और विशाल विश्वमें बड़े-बड़े ब्रह्माण्ड मुहल्लोंकी तरह सुगम

हो जायँ ? और ऐसी दशामें अन्ताराष्ट्रीयताकी तो कौन कहे, अन्तर्लोकता भी एक साधारण-सी बात हो जाय। आज तो तार, डाक, रेल, विमान और मोटरोंके बलपर राष्ट्रीयताका आदर्श अत्यन्त संकुचित समझा जाने लगा है और अनेक देशोंमें अन्ताराष्ट्रीय दल बन गये हैं। अभी विमानोंमें इतनी द्रुत गति नहीं आयी है, तो भी लोग अन्ताराष्ट्रीय सम्बन्धोंके सपने देख रहे हैं, सर्वांगैक चेतनाकी संसारमें प्रवृत्ति पा रहे हैं, साम्यवादका प्रचार हो रहा है।

राम-राज्यमें तो देश-काल कल्पनातीत रीतिसे संकुचित हो गये थे। सर्वांगैक चेतनताकी पूर्णता थी अर्थात् विश्वात्मा विभुका ही राज्य था फिर 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यत' सर्वत्र एक विश्वात्माका भाव होनेसे ईर्षा द्वेषका अभाव था। कोई ऊँच न था और न कोई नीच। अपने अपने कर्तव्योंका पालन करना ही सबका परम उद्देश्य था। स्त्रियों, वैश्यों, शूद्रोंको कोई नीच नहीं समझता था और न इनमें ही योनिगत वा समाजगत कोई नीचता थी। 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः' का अनुत्तम आदर्श समाजकी एड़ीसे चोटीतक वर्तमान था। शरीरके विविध अङ्गोंमें जैसे परस्पर सहकारिता और प्रेम है उसी तरह समाजके अंगोंमें सहयोग और स्नेहका भाव भरा हुआ था। जिस तरह पाँव और जंघे कभी हाथों और आँखोंका काम नहीं कर सकते और करनेकी कोशिश भी करें तो शरीरकी सारी व्यवस्था बिगड़ जाय, उसी तरह विविध वर्णों और आश्रमोंके लोग भी अपने-अपने कर्त्तव्योंको छोड़ किसी औरके कर्त्तव्योंमें हस्तक्षेप नहीं करते थे। न केवल प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने अधिकारोंकी सीमाके भीतर काम करता था, बल्कि जहाँ जरूरत होती थी वहाँ औरोंके साथ पूरा और इष्ट सहयोग करता था। हमारे शरीरके भीतर संख्यातीत जीवित सेल हैं, जिनके कर्त्तव्यपालन और पारस्परिक सहयोगसे ही सौ-सौ बरसतक निरन्तर शरीरकी व्यवस्था बनी रहती है, और जहाँ इन सेलोंमें विश्रृंखलता आयी, शरीर-देश रुग्ण हुआ और यदि उचित उपचारोंद्वारा पुनः सुव्यवस्थाकी स्थापना न हुई तो शरीरका अन्त ही हो जाता है। इसीलिये जहाँ एक भी सेलमें कर्त्तव्यच्युत होनेका भाव आया वहाँ उस सेलको शरीरके कुशलके लिए समाप्त करदेना ही उपाय होता है। घड़ीके सभी पुरजे मिल-जुलकर काम करते हैं। यदि एक भी अपनी जगह और ड्यूटी छोड़ दे तो घड़ी रुक जाती है। ठीक यही बात समाजमें भी भगवानके राज्यमें थी। समाजको कितना तेल रोज खर्चको चाहिए उतना तेल रोज़ पेला भी जाना चाहिये। यदि एक भी तेली अपना काम छोड़ दे तो शायद बहुत लोगोंको तेल न मिले। मान लो, कि वह बीमार ही हो गया, तब भी वही अवस्था हो गयी। अल्पमृत्यु हुई तो भी बड़ी कमी आ गयी, क्योंकि एक तो मरा और अनेक उसकी मृत्युसे शोकग्रस्त हुए, काम बन्द हो गया। यदि मृत्यु न भी हुई और रोगीके प्राणोंका भय हुआ तो भी उसके अनेक स्नेही और स्वजन भयवश दौड़-धूपमें लगे और तेलका पेलना रुका। अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, राज्याक्रमण, प्राणियों और रोगोंका सांघातिक, वैयक्तिक और व्यापक आक्रमण इत्यादि आपदाओंका भय भी समाजको अपने कर्तव्योंसे विरत रख देता। राम-राज्यमें किसी प्रकारका भय न था। समाजकी सारी आवश्यकताएँ समाजके व्यक्तियोंकी कर्त्तव्यपरायणतासे पूरी रहती थीं। भगवान श्रीरामचन्द्रजीकी नीति अद्भुत थी, कुसुमसे अधिक कोमल अन्त्यजों और ब्राह्मणोंमें भी परस्पर अत्यन्त प्रेम-भाव था। निषादकी शालीनता और विनय हद दरजेकी थी और वशिष्टकी उसके प्रति उदाराशयता और प्रेमभाव दोनों जातियोंके साम्यभावके उदाहरण हैं। राम-राज्यमें विषमता न थी परन्तु साथ ही वज्रसे भी अधिक कठोरता थी दण्डमें। शम्बूक शूद्र था। उसका काम था परिचर्या और गार्हस्थ्य-जीवन। उसने अपने वर्णाश्रम-धर्मको छोड़ दिया और तपस्या और वनवासमें लग गया। अशास्त्र-विहित घोर तपस्यामें लगे हुए शम्बूकने समाजके नियमोंको तोड़ डाला। एक पेंच ढीला हो जानेसे समाजका यन्त्र विचलित हो गया। उसकी परिचर्या और गार्हस्थ्य-धर्मसे सहयोगका एक अधिकारी ब्राह्मण और ब्रह्मचारीकी अल्पमृत्यु हो गयी। पिताको शोक हुआ। वर्णाश्रम-व्यतिक्रमका फल यहाँतक हुआ। यह बात साधारण बुद्धिमें उसी तरह नहीं आती जैसे अमेरिकामें डालरका भाव गिर जानेसे भारतमें रूईके भावका गिर जाना। शम्बूक उधर तप करता है कहीं और ब्रह्मचारी बालक मरता है कहीं, यह अद्भुत बात है न?

यह बात भी समझनेकी है कि अमेरिकासे हमसे लेन-देन है, आर्थिक सम्बन्ध है। इसीसे वहाँकी आर्थिकनीतिका प्रभाव भारतमें आकर पड़ता है। समाजका भी उस समय ऐसा अविरल सम्बंध था कि संसारके किसी कोनेमें भी कोई गड़बड़ होता तो उसका प्रभाव किसी सुदूर कोनेतक उसी तरह जा पड़ता जिस तरह तालाबके जलमें एक कंकड़ी डालनेसे उससे उठती हुई तरङ्गमाला सारे तालाबमें फैल जाती है। भगवान्‌ने रोते हुए पिताके पुत्र-शोकपर विचार किया तो पता लगा कि विश्वकी इस नियमसे चलती हुई घड़ीका एक पेंच शम्बूककी तपस्याके रूपमें ढीला हुआ है। देह-विद्रोही सेलकी तरह उन्होंने इस समाज-विद्रोही शम्बूकका बध कर डाला। तपस्वी शूद्रको परम गति भी दी और समाजकी दुर्दशा भी निवारण की। आजकलके 'कर्मणा वर्णः' माननेवाले सुधारक तो इसे घोर अत्याचार और बर्बरता कहेंगे और व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवादके साथ घोर अन्याय बतलावेंगे, परन्तु आज भी साम्यवादी, समाज-सत्तावादी और व्यक्ति-स्वातंत्र्यवादी आपसमें जिन विषयों-को लेकर भिड़ते रहते हैं उन सबका सुलझाव रामराज्य-पद्धतिके अतिरिक्त और कहीं नहीं है।

यदि उस समय 'कर्मणा वर्णः' वर्णकी कसौटी होती, तो सवेरेसे शामतकमें एक ही आदमी ब्राह्मणसे शूद्रतक बन सकता था, शूद्रसे ब्राह्मणतक हो सकता था। फिर तो समाजकी विचित्र दशा हो जाती। इस समय समाजकी जैसी अव्यवस्था है उससे भी अधिक अव्यवस्था बर्तती।

फिर शम्बूककी तपस्यामें क्या बाधा थी? विश्वामित्रको ब्राह्मण बननेके लिए हजारों बरसकी तपस्या क्यों करनी पड़ती? क्यों न वह अपने कर्मोंको बदलकर एकही क्षण में ब्राह्मण बन जाते? बात यह थीकि सृष्टिके आरम्भसेही चारों वर्णोंकी पूरी व्यवस्था प्रजापतिने की थी अथवा सत्ययुगमें ही धीरे धीरे वर्णव्यवस्थाका समाजमें प्रकृतिसे ही विकास हुआ और वह सत्ययुगके सत्रह लाख अट्ठाईस हजार बरसोंतक बराबर चल चुका था। भगवान् रामचन्द्र जीके समयमें कोई नयी व्यवस्था नहीं करनी थी, समाजमें यदि विशृंखलता आती थी और लोग अपने अपने कर्तव्यसे विमुख हो जाते थे और राजा अपने शासनसे धर्मकी पुनः स्थापनामें समर्थ नहीं होता था तो प्रकृति दण्डके बलसे समाजको ठीक करती थी। जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिके महायन्त्रोंके सञ्चालनसे समाज-संशोधन होने लगता था। कुराज्यके कारण भी समाजकी प्रकृति बिगड़ जाती थी, और रोग स्वयं प्रकृतिके बूतेसे बाहरका हो जाता था तो 'पुरुष' अवतरित होकर दूर करता था। राम-राज्यकी यही अन्तिम स्थिति थी।

राम-राज्यमें समाज सर्वाङ्गपूर्ण था। उसके अङ्ग अङ्ग सुडौल और विकसित थे। समाज-पुरुष रोगी न था। प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रमकी आबादी ठीक उतनी ही थी, जितने की आवश्यकता थी। कोई जाति इतनी कम न थी कि उसके कर्त्तव्योंमें कमी आनेसे समाजके और अङ्गोंको कष्ट हो। कोई जाति इतनी अधिक भी न थी कि समाजके और अङ्गोंको उसके अनुचित भारके नीचे दबना पड़े। आबादी बढ़ती भी थी, परन्तु जैसे बढ़ते हुए बालकके सभी अंग अपने-अपने अनुपातसे बढ़ते हैं उसी तरह समाजके विविध अङ्गोंकी आबादी भी अनुपाततः बढ़ती जाती थी।

जैसे शरीरमें सिर छोटा भाग, परन्तु अत्यन्त महत्वका भाग है, बाहु भी कुछ बड़े परन्तु आवश्यक भाग हैं और टाँगें उससे बड़ी और सबसे अधिक सेवा करनेवाली अंग हैं और पेट सबसे बड़ा और अधिक उपयोगी है, उसी तरह समाजमें वैश्यवर्ग सबसे अधिक संख्यामें, शूद्र उससे कम, फिर क्षत्रिय शूद्रोंसे भी कम और ब्राह्मण सबसे कम संख्यामें होने चाहिये। वैश्यका काम चारों वर्णों के लिए भोजनोपार्जन है—सम्पत्तिका उत्पादन और विभाजन है। इसीलिये, यदि मान लिया जाय कि एक वैश्य दो मनुष्योंके लिये उत्पादन कर सकता है तो उसकी संख्या शेष तीनों वर्णोंकी सम्मिलित संख्याके बराबर होनी चाहिये, परन्तु स्त्रियोंका कर्तव्य सम्पत्तिका उपार्जन नहीं है, अतः वैश्योंकी संख्या शेष आबादीकी दूनी होनी चाहिये। परन्तु वैश्योंमें भी बच्चों, बूढ़ों और असमर्थोंका काम सम्प-त्तिका उपार्जन उसी हदतक नहीं हो सकता जिस हदतक प्रौढ़ समर्थ वैश्य कर सकते हैं। अतः शेष सभी वर्णोंको मिलाकर भी जो संख्या आबादीकी होगी उससे कई गुनी अधिक संख्या वैश्योंकी होनी चाहिये। समाजमें जहाँ 'जन्मना वर्णः' नियम है, वहाँ इस तरह जनबलका सामं-जस्य होना आवश्यक है। 'जन्मना वर्णः' विधाताका

विधान है।* 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।' गुणकी हम यहां चर्चा करें तो लेखका कलेवर बढ़ जायगा 'कर्मविभाग' तो समाजमें आवश्यक नियम है। 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः,' 'परधर्मो भयावहः' आदि वचन इसी बातकी चेतावनी हैं। आदर्श समाजमें व्यक्तियोंके हस्तक्षेपके बिना ही कर्म-विभागके अनुसार काम होता है। आवश्यकता भर उपज और आवश्यकता भर उपजानेवाले होते हैं। परन्तु मनुष्य अपने कर्मों के लिये स्वच्छन्द भी है। अतः उसकी उच्छृंखलताओंसे समाजका सामञ्जस्य बिगड़ता रहता है। फिर इसका संशोधन कैसे हो? प्रकृति इस संशोधनमें तत्पर रहती है। संक्रामक रोगमें लाखोंकरोड़ोंको समाप्त कर देती है। युद्धमें लाखों मर मिटते हैं। दुर्भिक्ष, बाढ़, अग्निप्रकोप आदिके द्वारा भी वह अपने काम निकालती है। अल्पमृत्युका बाजार गर्म कर देती है। दरिद्रता अपने कर वसूल कर लेती है। जीवनके शत्रुओंमें प्रबलता आ जाती है। संघर्ष अधिक बढ़ जाता है।

राम-राज्यमें समाजकी व्यवस्था प्रकृतिकी माँगके अनुसार थी। शासनके प्रभावसे कोई अपने मार्गसे विचलित नहीं होता था। इसीलिये प्रकृतिको अपना विनाशकारी यन्त्र चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसीलिये रोग, शोक, भय सुननेमें भी नहीं आते थे।

जैसे वर्णोंमें वैश्योंकी संख्या सबसे अधिक थी वैसे ही आश्रमोंमें गृहस्थोंकी संख्या सबसे अधिक होती थी। निदान गृहस्थ ही जनसाधारणमें सबसे अधिक थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय ही वानप्रस्थ और संन्यास दोनों आश्रमके अधिकारी थे। शूद्रको केवल गृहस्थाश्रम विहित था। अतः गृहस्थाश्रमी चारों वर्णोंमें होनेसे समाजमें गृहस्थोंकी ही सबसे बड़ी संख्या थी। गृहस्थ ही अन्य आश्रमोंका पालक था। चतुर्थाश्रमी ही भिक्षुक था। परन्तु राम-राज्यमें ब्रह्मचारी हो या संन्यासी हो, किसीको सदावर्त्त या धर्मशालाको खदेड़नेका काम न था। प्रत्येक गृहस्थका कर्तव्य था कि वह कम-से-कम एक अतिथिका नित्य सत्कार करे। अतिथि जानेको उत्सुक रहता था और गृहस्थ उसे रोकनेको। गृहस्थको अतिथियोंकी खोज रहती थी। पंचमहायज्ञमें अतिथिको भोजन कराना एक परमावश्यक कर्तव्य था। बनवास करनेवाले भी गृहस्थाश्रमियोंसे सहायता पाते थे। आजकलके बावन लाख भिक्षुक देशपर भारी बोझ समझे जाते हैं, परन्तु सच पूछो तो इनकी संख्या हमारी आबादीके हिसाबसे बहुत कम ही है और यदि हमारी दरिद्रता हमें

* यहाँ यह शंका उठायी जा सकती है कि यदि 'जन्मना वर्णः' विधाताका विधान है तो उसे जगद्व्यापी होना चाहिये। परन्तु वह केवल भारतकी ही सीमाओंके भीतर क्यों है? तो इसका समाधान यह है कि चातुर्वर्ण्यकी व्यवस्था विविध रूपों और नामोंसे विश्वव्यापी है। इस व्यवस्थाके बिना समाज कभी रह ही नहीं सकता। कर्म-विभागको ही आज सम्पत्तिशास्त्री 'श्रम-विभाग' कहते हैं और यह समाजकी सभी जगह नींव है। 'कर्मणा वर्णः' माननेवालोंका विचार है कि मनुष्य चाहे जो पेशा अख्तियार कर सकता है और एक ही आदमी चाहे तो दिनभरमें अपना वर्ण अनेक बार बदल सकता है। 'जन्मना वर्णः' माननेवाले ऐसा समझते हैं कि मनुष्यके कर्मोंके शुभाशुभ फल देनेवाले पारलौकिक शासनको ही यह अधिकार है कि कर्मानुसार किसीको किसी विशेष वर्णमें, और तदर्थ किसी विशेष परिस्थितिमें जन्मावे। 'कर्मणा वर्णः' वालेको जन्मान्तरका कर्मसे अनिवार्य सम्बन्ध माननेकी आवश्यकता नहीं है। 'जन्मना वर्णः' वालेको तर्ककी नींव जन्मान्तरसे कर्मका संबन्ध ही है। 'जन्मना वर्णः' किसी-न-किसी रूपमें जगत्‌में सभी रूढ़िवादी जातियोंमें माना जाता है। फिर भी व्यक्तियोंको संसारमें दोनों पक्षके लोगोंमें अपने-अपने रोजगारके बदलनेकी स्वतन्त्रता थोड़ी-बहुत मर्यादाके साथ सभी जगह है। अपने यहाँ स्मृतियोंमें इस मर्यादाका निर्धारण है। जिन देशोंमें वर्णविभाग अमर्यादित है और शुद्ध 'कर्मणा वर्णः' चल रहा है, जहाँ स्वार्थमात्र सामाजिक योगक्षेमका प्रवर्त्तक है, वहाँ समाज बड़ी उच्छृङ्खल दशामें है। संसारमें वर्त्तमान कालमें ऊँच-नीच, धनी दरिद्रकी जो भयानक विषमता और पारस्परिक कलह संघर्ष, नोचा-नोची और भीषण सामाजिक विप्लव है वह व्यक्तियोंके अति स्वार्थ, अति स्वातन्त्र्य, उच्छृङ्खलता एवं समाजकी विधान-हीनताद्वारा प्रवर्तित है और साम्यवाद, समष्टिवाद वा समाजसत्तावाद आदि कहलानेवाले आन्दोलन प्रकृतिकी ओरसे संशोधन और सुधारके उपाय हैं, जिनकी असफलताकी दशामें भयानक संग्राम, संक्रामक रोग, दुर्भिक्षपीड़ा आदि होते रहते हैं। यही कलियुग का प्रभाव है। —लेखक

धर्म और कर्तव्यसे जी न चोरवाती और स्वार्थपरायण न बनाती, तो ये भिक्षुक हमारे लिए बोझ होनेके बदले 'अतिथि-प्राणप्रिय' होते। राम-राज्यमें इनकी संख्या बहुत थी। परन्तु हरएक गृहस्थ सम्पन्न था, औरउसे सम्पन्न होना ही था। हरएक गृहस्थ सुखी था और हर्ष और उत्साहका तो चोलीदामनका साथ है। उत्साह और उमंगसे भरी प्रजा सदा अतिथियोंकी खोजमें रहती थी। जब सभी सुखी थे और सम्पन्न थे, तब किसे किसकी ईर्षा होती? दैहिक, दैविक भौतिक किसी तरह के तापकी पीड़ा न थी, तब दुःख क्या होता? सब लोगोंमें परस्पर प्रीति थी। द्वेष तो तब होता जब कोई किसीके स्वत्वका लालच करता और उसे नसीब न होता? किसी कामनाकी पूर्ति न होती तो मनमें ग्लानि उपजती, क्रोध आता, सम्मोह होता और नाशका मार्ग बन जाता। परन्तु प्रजा तो आप्तकाम थी। उसे क्या अप्राप्य था? ऐसी दशामें सब-के-सब सुखपूर्वक वेदानुकूल आचरण करते थे। गृह्यसूत्रोंमें जो धर्म बताये गये उनपर आरूढ़ थे। नीतिके अनुकूल बर्ताव करते थे, अपने-अपने धर्मोंका पूरा पालन करते थे।

इस प्रकारके जीवनमें पापमें प्रवृत्त होनेका कोई कारण नहीं था। अपने कर्तव्य-पालनके साथ-ही-साथ बहुत समय बचता था। इन समयोंमें प्रजा जहाँ-तहाँ एकत्र हो भगवान् रामचन्द्रजीके गुण गाती थी। उसे जो आनन्द मिल रहा था उसके लिए प्रजा कृतज्ञतापूर्वक अपने राजा भगवान् रामचन्द्रजीकी भक्ति करती थी। इस राज्यमें राज्यभक्ति और राम-भक्ति दो बातें न थीं।

धर्मराज्यका वर्तमान प्रजापर ऐसा आचरण सुधारनेवाला प्रभाव पड़ा कि आगेकी होनेवाली सन्तानें और भी अच्छी हुईं। विकासकी गति भी ऐसी ही है कि माता-पिता अच्छे हों तो सन्तान उनसे भी अच्छी और अधिक योग्य निकलती है। विकलांग, विकृतांग, दुर्बुद्धि, कुलक्षण बालक तो होते ही न थे। सब सुलक्षण, सब बुद्धि और बलसे युक्त होते थे। विनयशीलता सबमें थी, इसीलिए दम्भका कोई काम न था। सभी अपने-अपने धर्म में निरत थे, परन्तु साथ ही जो किसी दुर्बलताके कारण किसीकी बराबरी नहीं कर सकता था तो उसपर अधिक बलवान्, अधिक धर्मवान् करुणा और दयाकी दृष्टि रखता था। सभी गुणी थे और साथ ही गुणका आदर भी करते थे। कोई किसीसे रत्तीभर अच्छा सलूक करता तो उसके साथ उसका सौगुना एहसान मानना और प्रत्युपकार करना जनताका साधारण व्यवहार था। कपट, चतुराई, धूर्तता, ठगी आदि सुननेमें नहीं आती थी। ये बातें केवल मानव-समाजमें न थीं। पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी प्राणियोंके समाजमें व्यक्तिगत सुधार हो गया था। राम-राज्य केवल मनुष्योंके समाजके लिए न था। मर्यादापुरुषोत्तमका राज्य प्राणिमात्रके लिए हितकर था। शेर और बकरी एक घाट पानी पीते थे। स्वाभाविक वैर भी नष्ट हो गया था। यही बात थी कि विचार के लिए प्रभुके सम्मुख पशु-पक्षियोंकी नालिशें भी आती थीं, कुत्ते और गीधका भी न्याय होता था। आपसमें लड़कर झगड़ा चुकानेकी रीति उठ गयी थी। पाश्चात्य पुराणोंमें हजरत सुलेमानका राज्य भी ऐसा ही बतलाया जाता है। परन्तु हमको पता नहीं कि हजरत सुलेमानके समयमें न्याय-विभागके अतिरिक्त धर्म और नीति और अर्थ और समाजकी क्या व्यवस्था थी। जो हो, पाश्चात्य राज्यादर्श भी राम-राज्यके आदर्शके विपरीत न था।

सुराज्यका प्रभाव चराचर प्रकृतिपर पड़ता है। देश-कालके अनुकूल बरसात, गरमी, जाड़ेका होना, समयपर वृक्ष, लता, गुल्मादिका फलना-फूलना, लता और विटपका माँगनेपर फल-मधु आदि देना, गायोंका यथेष्ट दूध देना, खेतोंका यथेष्ट अन्न उपजाना, सागरों, पहाड़ों और खानियोंका अनायास ही रत्न दे देना यह एक साधारण-सी बात हो गयी थी। पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु अपनी-अपनी मर्यादाकी रक्षा करते थे। आग, बाढ़, आँधी, तूफान, भूकम्प आदि विपत्तियाँ कभी सुननेमें नहीं आती थीं। सूर्य उतना ही तपता था जितने तपनेकी धरतीको आवश्यकता थी और चन्द्रमा धरतीको अमृतसे आप्यायित करता रहता था। प्राणी-प्राणीमें ही मैत्री और सहकारिताका भाव न था। प्रेम और सहयोग जड़ और चेतन, चर और अचरमें व्याप्त था। इच्छा होते ही बादल जल देते थे, पेड़ मधु और फल देते थे। मधुके लिए मक्खियोंके महलमें डाका डालने और चोरी करनेकी जरूरत नहीं पड़ती थी।

वेदानुकूल आचरणका प्रचार करनेके लिए भगवान् स्वयं वेदानुकूल आचरण करते थे और वर्णाश्रम-धर्मकी

पंचभूत और त्रिदोष-परिषद-चर्चा

[स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, अमृतसर]

वैद्योंमें २५-३० वर्षोंसे पञ्च-भूत और त्रिदोष-सिद्धान्तपर अविश्वासके बादलोंका मँडराना आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम एलोपैथी डाक्टरोंने अनेक वैज्ञानिक आधारोंपर यह बतलानेका प्रयत्न किया कि पञ्चभूतोंकी तात्विक स्थिति विज्ञान द्वारा—जैसी मानी जाती है—जाँचनेपर ठीक नहीं जँचती। न शरीरमें वात, पित्त, कफकी वैसी स्थितिका पता लगता है, जैसा आयुर्वेद-शास्त्र बतलाता है। जहाँतक मुझे ज्ञात है सबसे पहले पूना-निवासी आयुर्वेद-प्रेमी संस्कृतके विद्वान् डा० गर्दे महोदयने वाग्भटका भाषान्तर करते हुए अपनी उक्त पुस्तककी प्रस्तावनामें शरीर-रचना शास्त्रके आधारपर त्रिदोष-सिद्धान्तकी स्थितिपर गम्भीर प्रकाश डाला था। इसके पश्चात् उन्होंने १९१६में पूनाके मेडिकल एसोसिएशनके अधिवेशनपर आयुर्वेद विषयको लेकर एक व्याख्यान दिया था, उससे महाराष्ट्र वैद्यमण्डलमें भारी हलचल मच गयी थी और उस समय इसके विरोधमें अनेक वैद्योंके लेख निकले थे। उस समय डा० गर्देके प्रतिवादमें जितने भी लेख निकले थे, न तो वह उनकी युक्तिपूर्ण बातोंके उत्तर थे, न पक्षपोषक सबल प्रमाण ही थे। हाँ, उनको भला-बुरा कहनेमें कोई कसर उठा न रक्खी गयी थी। उस समय इस वर्षके अखिल भारतीय आयुर्वेद-सम्मेलनके समय भी काफी चर्चा हुई। यद्यपि डा० गर्देके पश्चात् इस प्रकार आयुर्वेद सिद्धान्त-सम्बन्धी विचारोंपर किसी भी आक्षेप-कर्त्ताने इतनी अच्छी तरह क्रमपूर्ण विचार नहीं रक्खे तथापि अनेक एलोपैथी चिकित्सानुयायियोंकी ओरसे आयुर्वेद-पद्धतिका अवैज्ञानिक मात्र कहनेकी धृष्टता जरूर दिखायी जाती रही है। और अभी-अभी काशीमें कर्नल बकलेने भी यही धृष्टताकी है। * डा० गर्देकी उत्पन्न की हुई परिस्थितिका प्रभाव विज्ञान-वादके प्रसारके साथ-साथ

* कर्नल बकले साहब काशीके मारवाड़ी-अस्पतालमें मनमानी धृष्टता कर गये। अलोपैथीको भी कट्टरवैज्ञानिक अ-वैज्ञानिक ही मानते हैं। उसे 'नेचर'ने ज्युबिली नंबरमें स्थान नहीं दिया है। वह विज्ञानोंको व्यवहारमें लानेवाले अनेक शिल्पों और कलाओंमें भले ही स्थान पा सकता है। परन्तु उसकी सभी बातें वैज्ञानिक हों, यह आवश्यक नहीं है। और न यही आवश्यक है कि आज जो बातें वैज्ञानिक समझी जाती हैं कल भी वह वैज्ञानिक समझी जायँ। कर्नल बकले यदि सच्चे वैज्ञानिक होते तो ऐसी धृष्टताकी बात न कहते। कांचकी छतवालेको औरोंके घर पत्थर नहीं फेकना चाहिए। फिर भी यदि हमारी आयुर्वेद-पद्धतिमें सचमुच कोई अवैज्ञानिकता हो तो उसे दूर कर देना हमारा कर्त्तव्य है। [रा० गौ०]

मर्यादाकी रक्षा करते थे। परात्पर ब्रह्म स्वयं होते हुए भी माया-मानुषरूपी अयोध्याधिपतिका-सा ही बर्ताव करते थे। छोटे-से-छोटेकी भी पूजा, आदर, मान, सत्कार नियम था। राजाओंका धर्म-पालन करके राजाओंको, व्यक्ति-धर्म पालन करके व्यक्तियोंको, शिक्षा देते रहते थे, क्योंकि—

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ३। २३)

और 'धर्मसंस्थापनार्थ' तो प्रभु अवतरे ही थे। साधुओंका परित्राण और दुष्कृतोंका विनाश तो थोड़े कालकी बात थी। धर्मसंस्थापन ही स्थायी और ठोस काम था। भगवान्के इस काममें जगज्जननी सीताजीका पूरा सहयोग था, सब भाई, सारा परिवार सम्मिलित था। प्रभुके समस्त सेवक और सखा भगवान्के रुखको देखकर तदनुकूल आचरण करते थे। —क्रमशः

वैद्योंमें बढ़ता ही गया। उस समयसे लेकर आजतक के अखिल भारतीय आयुर्वेद-सम्मेलनोंका इतिहास बतलाता है कि प्रतिवर्ष ही सम्मेलनके अवसरों पर त्रिदोष सम्बन्धी विवाद होता ही चला आया है। वैद्य समुदायमेंसे कोई-न-कोई त्रिदोष-सिद्धान्त-सम्बन्धी ऐसी शंकाएँ रखता आया है जिसका शास्त्रीय अवतरणोंकी लीपा-पोतीके सिवाय कोई संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया जाता। इसीसे वह अविश्वासके बादलोंकी घटा विद्वान् और विचारवान् वैद्योंके हृदयाकाशमें बढ़ती ही चली गयी। जिन वैद्योंके हृदयमें इस प्रकारकी शंकाएँ उठती रहीं, उनमेंसे एक मैं भी था। मैंने इस १५।२० वर्षों में उक्त आयुर्वैदिक सिद्धान्तोंपर काफी प्रयोगात्मक विचार किया है। तत्पश्चात् समय-समयपर किये संकलनको त्रिदोष-मीमांसा नामक पुस्तकके रूपमें वैद्योंके सामने इस विचारसे रक्खा कि या तो वह उक्त असम्बद्ध संशयात्मक बातोंका उचित और युक्ति-पूर्ण उत्तर दें, या आयुर्वेदके निज सिद्धान्तोंमें संशोधन और सुधारकी जहाँ-जहाँ आवश्यकता है, संशोधन कर आयुर्वेद-सिद्धान्तोंको परिष्कृत करें।

त्रिदोष-मीमांसाके प्रकाशित होनेके पश्चात्-वैद्योंमें त्रिदोष-चर्चाकी एक प्रकारसे आँधीसी आ गयी। प्रत्येक आयुर्वेद-पत्र-पत्रिकाओंमें उक्त विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले लेख निकलने लगे। इससे भिन्न महाराष्ट्र वैद्योंने त्रिदोष सिद्धान्तकी भित्तिको दृढ़ बनानेके लिए पनवेलमें पिछले वर्ष त्रिदोष-चर्चा-परिषद्का बृहत्तर आयोजन किया। इस परिषद्के कार्यक्रमको देखनेसे, तथा इसके स्वीकृत कार्यसे, प्रत्येक विचारवान् वैद्य इस परिणामपर ही पहुँचता है कि वैद्य-समुदायमें यह शक्ति नहीं रही कि इस समयके किये गये आक्षेपोंका युक्तिपूर्ण उत्तर दे सके। पनवेलका स्वीकृत 'त्रिदोष विज्ञानम्' नामक लेख अस्पष्ट तथा उन प्राचीन ग्रन्थोंका संकलनमात्र है जिनके आधारपर आयुर्वेद-पद्धतिको माना जा रहा है। उन बातों, आक्षेपोंका उत्तर कहीं नहीं दिया गया जो पञ्चभूत और त्रिदोष-सिद्धान्तपर होते चले आ रहे हैं।

अपने सजातियोंमें बैठकर अपने पक्षकी बातोंका समर्थन करा लेना, स्वीकृति प्राप्त कर लेना, वैसा ही न्याय है जैसा इस समय गौराङ्ग महाप्रभुओंके द्वारा किसी देशी आदमीकी तिल्ली फट जानेपर उनके द्वारा किया जाता है।

अपने पक्षका अपने ही न्यायकारियोंसे निर्णय करवाना इस कहावतको चरितार्थ करता है कि 'अन्धा बाँटे रेवड़ी फिर फिर घरवालोंको देय।' इस परिषद्का कार्य परस्पर बैठकर मनको सांत्वना दिलानेके सिवाय कुछ नहीं। आयुर्वेदके धुरन्धर विद्वान्लेखक भी उन किये गये आक्षेपोंका उत्तर देनेके स्थान पर आक्षेपकर्त्ताओंको भला-बुरा कहकर ही वैद्यमात्रका दिलपरचावा किया करते हैं। इसकी एक ताजी बानगी प्रमाणके लिए रखता हूँ।

श्रीयुक्त भीकाजी विनायक डेग्वेकर एम०एस-सी० एल-एल० पी० इस समय महाराष्ट्र और मध्यप्रान्तमें विद्वान् वैद्य माने जाते हैं। आपको गत १९ अप्रैलको मध्यप्रान्तीय चतुर्थ वैद्यसम्मेलन-भण्डारका अध्यक्ष चुना गया। वहाँपर आपने अपने अभिभाषणमें मेरे सम्बन्धमें तथा मेरी पुस्तकके सम्बन्धमें जो कुछ उत्तर स्वरूप लिखा है, हम उसे उद्धृत करते हैं—

प्रियबन्धुगण, जब मुझे विदित हुआ कि हमारे प्रान्तीय वैद्य बन्धुओंकी यही इच्छा है कि इस वर्ष के अधिवेशनमें मेरी ही सेवा ग्रहण की जाय, तब मैंने यही सोचा था कि आजके भाषणमें टीका-टिप्पणियोंको कोई स्थान न देते हुए केवल शास्त्रीय विषयकी विधायक चर्चा ही की जाय, जिसके द्वारा शास्त्रीय सिद्धान्तोंका क्रमशः विकास होते हुए इन सिद्धान्तोंके विषयमें सूक्ष्म गवेषणाएँ करनेकी ओर हमलोगोंका ध्यान बढ़ता जावे। किन्तु मैं फिर भी देखताहूँ कि निखिल भारतीय वैद्य-सम्मेलनके हमारे देशमें लगभग २५ अधिवेशन हो जानेके पश्चात् भी आयुर्वेदके मूल-भूत त्रिदोष-सिद्धान्तके विषयमें अविश्वास प्रकट करनेवाली टीकाएँ पर-देशस्थ तथा आयुर्वेदेतर चिकित्सा-शास्त्रज्ञ तो करते ही जाते हैं, किन्तु विशेष आश्चर्य इस बातका है कि हमारे देशकी तथा हमारे व्यवसायपर निर्भर होकर बड़े-बड़े आयुर्वैदिक औषधियोंके भण्डार और कारखाने चलाते हुए हजारों रुपया कमानेवाली व्यक्तियाँही इस शास्त्रके मूल सिद्धान्तोंपर टूट पड़ती हैं तथा इतनी निन्दनीय टीका करती हैं कि जिन्हें बहुधा अन्य चिकित्सा-शास्त्रज्ञ भी सीमाका अतिरेक समझें। इस प्रकारकी एक घृणित टीका आयुर्वेद-विज्ञान (!) ग्रन्थमाला-आफिस

अमृतसरसे अभी प्रसिद्ध हुई है। स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य "आयुर्वेद-विज्ञान" मासिकके सम्पादक महोदयजीने "त्रिदोष-मीमांसा" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है। आज कई वर्षसे स्वामीजी आयुर्वेदकी सेवा करते आये हैं, किन्तु इस पुस्तकको पढ़नेसे यही प्रतीत होता है कि आयुर्वेद शास्त्ररूपी अमृत-तुल्य दुग्धका इतने वर्ष पान करनेके पश्चात् भी आपके शरीरमें उसका परिवर्तन गरलमें ही होता गया जिसे आपने उक्त पुस्तकरूपमें वमन किया है। यह दोष उक्त अमृत-दुग्धका नहीं किन्तु आपके मस्तिष्ककी विशिष्ट रचनाका है। कहा ही है कि पयः पाने भुजंगानां केवलं विषवर्द्धनम् * इस टीकाका उत्तर देनेका न तो यह योग्य स्थान है, न मुझे अवकाश है। आयुर्वेदीय वाक्य उद्धृत करते हुए मैं त्रिदोषोंको प्रत्यक्ष द्रव्य सिद्ध करनेका प्रयत्न आज ही इसी भाषणमें करनेवाला हूँ। विधायक चर्चा ही टीकासे अधिक लाभदायक होती है ऐसा मेरा विश्वास है।

इसके पश्चात् आपने आगे चलकर जो त्रिदोष-सम्बन्धी विधायक चर्चा करके पिष्टपेषण किया है, वह है आपकी परम योग्यताका प्रमाण जिसपर हमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं।

हमने आपकी सेवामें आज एक वर्षसे ऊपर हुआ त्रिदोष-मीमांसा इस इच्छासे भेजी थी कि आप एक तो एम०एस०सी० हैं दूसरे न्यायपटु एल-एल बी० तीसरे आयुर्वेद एवं न्यायके अच्छे ज्ञाता हैं। आपसे हमें पूर्ण आशा थी कि आप आयुर्वेदके इस त्रिदोषस्तम्भको, जिसे आधुनिक विज्ञान-वादकी आँधीने हिला दिया है, प्रबल युक्तियोंसे दृढ़ बनाकर हमजैसे विचारकोंके विचार बदलकर आयुर्वेदका मुख उज्वल करेंगे। किन्तु, आप कहते हैं मुझे अवकाश कहाँ! यदि ऐसी बातोंके लिए अवकाश हो तो प्रधान पदको सुशोभित करनेके लिए किस तरह अवकाश मिल गया, यही आश्चर्य है। यह है हमारे एक सुयोग्य वैद्यके अकर्मण्यताकी बानगी, जो इसीलिए रक्खी गयी है कि जिस पुस्तकके विचारोंको अत्यन्त घृणित और निन्दनीय समझा गया हो, जिसकी युक्तियाँ आयुर्वेद रूपी सूर्यपर कालिमाका कोहरा बरसानेवाली हों, जो आयुर्वेदके त्रिदोष-स्तम्भको उखाड़ कर फेंकनेकी ओर ले जाती हों, उसको बचानेके लिए क्या इनका कर्तव्य कुछ नहीं है? जिन युक्तियों और बातोंको घृणित और निन्दनीय कहा जाता है वह कोई मेरी आविष्कृत नहीं हैं। बल्कि,मैंने तो वह बातें ही वैद्य-समुदायके सामने रक्खी हैं जो विज्ञान-वाद द्वारा सिद्धान्त रूप प्राप्त कर चुकी हैं, जिसका समर्थन प्रत्येक विज्ञानविद्द्वारा हो रहा है और जिसकी सच्चाईको हस्तामलकवत् जहाँ चाहो दिखाया जा सकता है।

उक्त बातोंकी चर्चा छेड़नेका मेरा अभिप्राय यह है कि अभी कुछ मास हुए हमारे पास श्रीयुत महामना पं० मालवीय तथा श्रीयुत वैद्यराज यादवजी त्रिविक्रमजी आचार्य बम्बईकी ओरसे हस्ताक्षरित विद्वान् दार्शनिक वैज्ञानिक वैद्योंको सेवामें एक आवश्यक निवेदन-पत्र आया था। उसमें यह विचार थे कि अगस्तके महीनेमें हिन्दू-विश्व-विद्यालयमें पंचभूत त्रिदोष-चर्चा-परिषद्का महत्तम आयोजन किया गया है। उसमें बड़े-बड़े दार्शनिक पंडित और वैज्ञानिक तथा वैद्योंको निमन्त्रण किया गया है। इसमें सम्मिलित होनेके लिए मुझे भी कहा गया।

मुझे यह पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि शायद वैद्य-समुदाय में अब जाग्रतिके चिह्न दिखाई पड़े। इस परिषदमें जब दार्शनिक और वैज्ञानिक दोनों पक्षोंके ज्ञाताओंको बुलाया गया है तो अवश्य ही इस कठिन ग्रन्थिके खुलनेकी आशा है। धीरे-धीरे जैसे-जैसे समय समीप आता गया, मैं इसी प्रतीक्षा में रहा कि कम-से-कम उन दार्शनिक और वैज्ञानिक व्यक्तियोंका पता तो चले कि जिनको निमन्त्रण दिया जा रहा है तथा परिषद्की कार्यवाहीका क्रम क्या होगा? यह जाननेकी अभिलाषा रही। अन्तमें ज्ञात हुआ कि इस परिषद्का कार्यकाल अगस्तसे नवम्बरमें जा पहुँचा है। दूसरे जिन विद्वान् स्वपक्षी विपक्षियोंको निमन्त्रण दिया गया है वह संतोषप्रद नहीं। हमें इस परिषद्के कार्यक्रममें निम्नलिखित त्रुटियाँ दिखाई दे रही हैं।

*शुद्ध तर्कसे जब कृतिका उत्तर देनेमें आदमी असमर्थ होता है, तब कर्त्तापरही प्रहार करने लगता है। यह वस्तुतः उसकी हार है। अतः इस तरहकी वैयक्तिक टीकाका प्रत्युत्तर भद्रपुरुष नहीं देते। मौनावलम्बन ही उनका शोभन प्रत्युत्तर है। खेदकी बात है कि ऐसे विद्वज्जन भी इस प्रकारकी दुर्बलताके शिकार होते हैं। [रामदास गौड]

विज्ञान और सत्यताका सम्बन्ध

[पं० रघुवरदत्त पांडे, एम० एस-सी०]

ज्ञानिक लोगोंकी हमेशासे यह धारणा चली आयी है कि विज्ञानका उद्देश्य सत्यकी खोज है। ज्ञान और सत्य एक हैं, यह बात कहाँ तक ठीक है कहा नहीं जा सकता। सत्यको पहचानना अतिकठिन है। सुविख्यात दार्शनिक Descartes डेकार्टने सत्यको पहिचाननेके लिए नीचे दिये हुए उपाय अपनी पुस्तक 'डिसकोर्स'में दिये हैं—

(अ) किसी भी बातको सत्य न मानना जबतक कि दिमाग बिना किसी पहले संस्कार-द्वारा दूषित हुए उसे न मान ले।

(ब) किसी भी कठिनाईको अधिक-से-अधिक हिस्सोंमें विभाजित किया जावे।

(स) सबसे सरल बातसे जाँच शुरू करे और विविध हिस्सोंके बीच सम्बन्ध स्थापित करे।

(ड) फिर अपनी रायको इतना पूर्ण तथा उदार बनाये कि कोई बात उससे छूटकर बाहर न रह जाय।

डेकार्टको इस बातका दृढ़ विश्वास था कि सत्य और असत्यकी जाँच इन्हीं ऊपर दिये हुए सिद्धान्तों-द्वारा की जा सकती है, चाहे विषय दार्शनिक हो या वैज्ञानिक। उसके मतके अनुसार सत्यका सबसे प्रथम प्रमाण तो किसी बातको सरलता और स्पष्टता द्वारा समझमें आ जानेमें है। उदाहरणार्थ 'मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।' यही एक पूर्ण सत्य है और बाकी सब बातें जिन्हें हम सत्य मानते हैं वे यथार्थमें सत्य नहीं; बल्कि 'सत्य मानी हुई बातें' हैं।

यह समझते हुए कि हमारे पास पूर्ण सत्यको पहचानने-का कोई उपाय नहीं है। हम यह विचार करना चाहते हैं कि हमारा वैज्ञानिक ज्ञान किस अंश तक सत्य है, बैलफोर-के मतके अनुसार कुछ ऐसी भी समस्याएँ हैं जो कि न तो स्वयंसिद्ध ही हैं और न जिनकी सत्यताको हम प्रमाणित ही कर सकते हैं और न जिनको हम असत्य ही कह सकते

---

(१) प्रथम त्रुटि तो यह है कि केवलमात्र संस्कृत भाषामें ही विचार होगा। जो व्यक्ति संस्कृत नहीं बोल सकते, उनको बोलनेके लिए कोई अवसर नहीं मिलेगा।

(२) संस्कृतसे अन्य किसी भी भाषाके लेख वहाँ नहीं पढ़े जायँगे। यह दूसरी त्रुटि है।

(३) अनेक वैज्ञानिक जो संस्कृत नहीं जानते अथवा जो जानते हैं, वह आयुर्वेदज्ञ न होनेसे उनका बोलना कठिन है। यह तीसरी त्रुटि है।

(४) वैज्ञानिकोंमें केवल दो काशीस्थ वैज्ञानिकों के नाम हैं। कमसेकम ५वैज्ञानिक होने चाहिए और ५डाक्टर।

(५) इन बातोंका संशोधन होना चाहिये तथा कुछ वैज्ञानिक व दार्शनिक वैद्योंका एक बोर्ड इस निमित्त बनना चाहिए कि वहाँके उठे हुए विवादमेंसे निष्कर्ष निकालकर पश्चात् सत्यासत्यका निर्णय दें।

(६) ऐसे स्थानपर वैद्यमात्रकी बहुसम्मतिसे कोई निर्णय नहीं होना चाहिए बल्कि उन अनुसन्धान कर्त्ताओंके विचारानुसार निर्णय होना चाहिये कि जिन्होंने विवादास्पद बातोंपर क्रियात्मक निर्णय प्राप्त किया हो जभी इस परि-षद्का महत्व बढ़ सकता है। पनवेलवाली नीतिसे नहीं।

[खेद है, विशेषांकमें देर हो जानेके कारण यह लेख जल्दी प्रकाशित न हो सका। जब सम्मेलन हो चुकेगा, तब कहीं इसके प्रकाशनकी नौबत आवेगी।

फिर भी 'विज्ञान'की भी उस मंडलीमें सुनाई होगी, इसकी मुझे कदापि आशा नहीं है। काशी के इस सम्मे-लनमें पंचभूत और त्रिदोषके सम्बन्धमें जो एकांगी विचार होने जा रहा है, उससे कोई लाभ हमें तो नहीं दीखता। स्वामीजीका सुन्दर प्रस्ताव शायदही कोई सुने। पूज्य मालवीयजी स्वयं अपने स्वास्थ्यके कारण इस सम्मेलनमें सम्मिलित ही न होंगे। रा०गौ० २०।१०।३५]

हैं। ऐसी समस्याएँ अगर यथार्थमें पूर्ण सत्य न भी हों तो भी एक अधिक मात्रामें सत्यता रखती हैं और सर्वसाधारण-के लिए मोटेतौरसे सत्य मानी जा सकती हैं। विज्ञानमें भी ऐसी बहुतसी समस्याएँ हैं जिनकी पूर्ण सत्यतामें शक रहते हुए भी वैज्ञानिक संसार उन्हें सत्य मान लेता है और ये Hypothesis 'कल्पना' कहलाती हैं जिनके ऊपर निर्द्धारित होकर कठिनसेकठिन धारणाएँ बनती और बिगड़ती हैं।

हमको पहले ही स्वीकार कर लेना चाहिए, कि वह सभी बातें जो कि भिन्न-भिन्न युगोंमें वैज्ञानिक ज्ञानके नामसे प्रचलित हुई सत्य थीं, यह हम नहीं कह सकते। सत्यका रूप हमेशा हर समयपर एक ही रहता है। सत्यके बारेमें मतभेद नहीं हो सकता। असभ्य जातियों के बीच उनके वैद्य या भड्डुली भले ही विद्वान समझे जावें; लेकिन हमारी दृष्टिमें तो जो अनजान मनुष्योंको धोखा देकर अपना उल्लू सीधा करते हैं सिर्फ ठग ही साबित होंगे क्योंकि आजकल हम हवा तथा मेंहके बारेमें बहुत कुछ जानने लग गये हैं और इसलिए उनके ये दावे कि वे अपने ज्ञानद्वारा मेंह वर्षाते वा मृतको जीवन देते हैं, हास्यास्पद मालूम होते हैं *। हो सकता है, कि हमारी भावी सन्तान भी हमारे आजकलके नवीन-से-नवीन तथा पूर्ण समझी जानेवाली धारणाओंका ऐसी ही खिल्ली उड़ाये।

यूनानका अरस्तू नामक ऋषि प्राकृतिक विज्ञानका एक बड़ा ही सूक्ष्म तथा अचूक द्रष्टा हो गया है। लेकिन उसकी यह धारणा कि नाड़ी-मण्डलका केन्द्र हृदय है, सरासर गलत होते हुए भी, कई सौ वर्षतक सत्य मानी गयी है। इसी प्रकार ज्यौतिषशास्त्रमें भी बतलीमूसका भूकेन्द्री-ब्रह्मांड-वाद बहुतकाल तक माना गया। अन्तमें जब कोपरनिकसने अपना क्रान्तिकारी सूर्य्यकेन्द्री ब्रह्मांडवादकी धारणा चलायी तब बतलीमूसी धारणाका अन्त हुआ। आजकल भी पर-माणुके दो प्रकारके रूप माने जाते हैं। एक तो स्थिर और दूसरे गतिशील। इन दोनों मेंसे कौन ठीक है, यह कहना असम्भव है। इसलिए किसी वैज्ञानिक धारणाके लिए सत्य होनेकी अपेक्षा सरल होना अधिक आवश्यक है।

वैज्ञानिक ज्ञान चाहे सत्य हो, चाहे असत्य पर यह ज्ञान समयके साथ-साथ बढ़ता ही जायगा। टटोल और अनुसन्धान यह दो बातें किसी भी विषयके बारेमें खोज करनेके लिए बहुतही शक्तिशाली यंत्र हैं। यूनानियोंके युगमें दर्शन, शिल्पकला, संगीत, विज्ञान तथा और विषयोंका उत्थान लगभग एकसाथ और बराबर उत्साहके साथ हुआ था। लेकिन क्या कारण है कि विज्ञानने आज इतनी उन्नति कर ली है और दूसरे विषयोंकी उन्नति विज्ञानकी उन्नतिके आगे कुछ भी नहीं है? इसके दो कारण हैं। नयी बातोंका ज्ञान प्राप्त करने और शक्तिशाली बननेकी प्रबल आन्तरिक इच्छाओंसे प्रेरित होकर मनुष्य वैज्ञानिक खोजमें लगता है। दूसरा कारण यह है कि वैज्ञानिक कोषमें प्रत्येक शब्दकी ठीक-ठीक परिभाषा दी गयी है। एक वैज्ञानिक शब्द समस्त संसारमें एक ही माने रखता है। इससे भिन्न-भिन्न समयपर तथा भिन्न-भिन्न मनुष्य एक ही शब्दके भिन्न अर्थ नहीं कर सकते। लेकिन, और विषयोंमें शब्दोंकी स्पष्ट परिभाषाएँ नहीं दी गयी हैं। जैसे, कि शब्द "न्याय" की उस तरहकी कोई खास परिभाषा नहीं है, जैसे कि विज्ञानमें अणु तथा किसी और शब्दकी है। प्रत्येक दार्शनिकने अपनी अपनी समझके अनुसार "न्याय" शब्दकी भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की हैं। विख्यात चेला और गुरु अफलातून और सुकरातने इस शब्दकी अलग-अलग परिभाषा दी है। परि-भाषाके अभावमें लोग पुराने दार्शनिकोंके दिये हुए अर्थ पर फिजूल वादविवाद करनेमें समय नष्ट करते हैं, जिससे कि उन्नतिमें बाधा पड़ती है। वैज्ञानिक शब्दोंकी परिभाषाएँ अक्सर अपूर्ण होती हैं, और ऐसी चीजोंके बारेमें होती हैं कि जिनका कि अस्तित्व संसारमें है ही नहीं, जैसे कि ईथर, अनन्तता इत्यादि। लेकिन, प्रत्येक शब्दके परिचालित होनेमें यह खूबी है कि ये शब्द सबके लिए एक ही माने रखते हैं। अगर हम और विषयोंको भी जोकि मनुष्यके स्वभावसे सम्बन्ध रखते हैं [जैसे कि न्याय, प्रेम, सुख इत्यादि] की उन्नति भी वैज्ञानिक तरीकेपर करना चाहें तो पहले हमें इन

* यह लेख पाश्चात्य भावसे प्रभावित दीखता है। वैज्ञानिक हवा तथा मेंहके बारेमें बहुत कुछ जान गये हैं सही। परन्तु वह अभी इतना अपर्याप्त है, कि हमारी भविष्यवाणी अक्सर भड्डुलियोंके मुकाबिलेमें भी नहीं ठहरती। सच्चा वैज्ञानिक अपनी लाचारी सदा स्वीकार करता रहता है।

—रा० गौ०

चोपचीनी

[कविराज पं० धर्मानन्द शास्त्री प्रोफेसर आयुर्वेदिक कालेज, गुरुकुल-कांगड़ी]
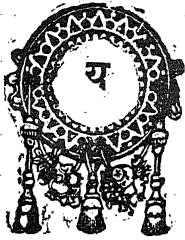
द्यपि इस नामकी वनौषधिका विस्तृत वर्णन प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में नहीं पाया जाता है, तथापि जबसे इस देश में फिरंग रोग बाहरसे आया तबसे ही तत्कालीन भावमिश्र आदि आयुर्वेद-पण्डितोंने इसकी खोज की और इसके गुणावगुणोंपर पूर्ण प्रकाश डालना शुरू किया और क्योंकि यह औषधि बहुधा बाहरी देशोंसे यहाँ आने लगी, अतः इन्होंने इसका नाम द्वीपान्तर वचा रख दिया। यद्यपि वचामें पाये जानेवाले गुण धर्म इसमें नहीं के बराबर हैं तथापि वचाकी भाँति इसकी जड़ भी ग्रन्थिल होनेसे तथा कफ रोगों में वचा सदृश ही उपयोग होनेसे इसको एक प्रकारकी विदेशीय वचा माना गया और हिन्दीमें चोपचीनी कहने लगे।

प्राप्ति तथा वानस्पतिक वर्णन

यह बहुधा चीन और जापानसे आती है। बंगालमें भी ऐसे पौधे होते हैं, जिनको बड़ी चोपचीनी कहते हैं। यह चढ़नेवाली झाड़ी होती है। जिसकी शाखायें चिकनी पतली और उपशाखाओं से रहित होती हैं। इसमें पत्ते क्रमिक रूपमें होते हैं। एक पत्तेमें तीन मध्या नाड़ियाँ होती हैं। पत्तेके डण्ठलकी जड़में छोटे डण्ठल पर लगी हुई १० से १२ डण्डियों पर छोटे-छोटे वर्ण पुष्प लगते हैं। इसकी जड़ें ग्रन्थिल होती हैं, जो ओषधिके काममें लायी जाती हैं। इसकी जड़ बाह्यत्वक छीलकर काममें लायी जाती हैं।

उत्तम चोपचीनी

बाजार से प्राप्त होनेवाली चोपचीनी यदि गुरुभारमें पानीमें डालनेसे डूबनेवाली और कुछ गुलाबी रङ्गकी हो तो उसे उत्तम समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त घुनी सड़ी पुरानी और अधिक गाठें भी नहीं होनी चाहिये।

विश्लेषण

चोपचीनीमें ग्लुकोसाइड Glucoside विशेष रूपमें पाया जाता है। इसके अतिरिक्त वसा, शर्करा, निर्यास और मंड भी इसमें होते हैं।

योग

चोपचीनी कषाय—चोपचीनीमूल १ तोला, जल ३२ तोलामें पकाकर बनाया जाता है मात्रा १—२ औंस, चोपचीनीमूल चूर्ण-मात्रा १० से ६० ग्रेन।

चोपचीनीपाक—चोपचीनी ४८ भाग ; त्रिकुट, पिप्पलीमूल, दालचीनी, अकरकरा लवंग प्रत्येक एक-एक भाग, शर्करा इन सब द्रव्योंके समान, पहिले शर्करामें द्विगुण

शब्दोंकी परिभाषाएँ बना लेनी पड़ेंगी ताकि इन शब्दोंका अर्थ हर कालमें और हरएक मनुष्यके लिए एक ही हो।

विज्ञान सत्य और असत्यको जाननेका दावा नहीं रखता। इसकी उन्नति विद्वानोंके अनुसन्धान तथा "गलतियों" पर निर्भर है। इन लोगोंके असंख्य अनुसन्धानोंमेंसे कुछ अनुसन्धान ऐसे भी होते हैं, जो कि प्रकृति द्वारा समय-समयपर सिद्ध होते हैं। ऐसे अनुसन्धानोंमें कुछ विशेष गम्भीरता आ जाती है और ये प्रकृतिके नियमके नामसे पुकारे जाते हैं और इन्हीं पर निर्धारित होकर कठिन वैज्ञानिक विषयोंके हल करनेकी कोशिश की जाती है।

विज्ञान सत्य हो या असत्य लेकिन यह हमारी आधुनिक सत्यताका एक प्रधान अङ्ग बन गया है। विज्ञान द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य और सुखोंसे घिरे हुए संसारमें रहकर हम कदापि विज्ञान-रहित युगका फिरसे आना स्वप्नमें भी ख्याल नहीं कर सकते। हम विज्ञानमें लिप्त हैं और विज्ञान हममें।

जल डालकर एक कलईके पात्रमें शर्बत बनाकर उसमें चोपचीनी आदि सब द्रव्योंका बहुत बारीक चूर्ण डालकर मिला लेते हैं, बादको उसमें आवश्यकतानुसार थोड़ा घृत तथा मधु मिलाकर रख लेते हैं। मात्रा ६ मासेसे १तोला। रोग— फिरंग, त्वक्रोग भगन्दर वातरोग तथा नैर्बल्य हर है।

भौतिकगुण

रस मधुर तथा किञ्चित् तिक्त, गुण गुरु, वीर्यउष्ण, पाक कटु, दोष वातहर होती है।

प्रभाव तथा उपयोग विधि

'द्वीपान्तर वचा किञ्चित्तिक्तोष्णा वह्निदीप्तिकृत्' विवन्धाध्मनशूलघ्नी सकृन्मूत्र विशोधिनी । वातव्याधीनपस्मारमुन्मदं तनुवेदनाम् । व्यथोहति विशेषेण फिरंगामयनाशिनी' चोपचीनी फिरंग (सिफलिस) रोग तथा रक्त-विकार और वातिक वेदनाओंके लिये अत्यन्त लाभदायक ओषधि है । 'ग्लुकोज'का भाग अधिक होनेके कारण यह यकृत तथा वृक्कोंको बल देती है और मलद्वारा पित्त तथा मूत्रद्वारा यूरेटोंको जोकि मूत्रमें जमनेसे रोगकारक होते हैं, निकालती है। आन्त्रिक वातनाड़ी पोषक होनेसे फिरंगविषजन्य आंत्रिक दुर्बलतामें होनेवाले मलबन्ध, आध्मान तथा शूलोंको नष्ट करती है। इसके अतिरिक्त फिरंग विषजन्य आक्षेप, पक्षाघात अर्दित उन्माद और अपस्मार आदि वात रोगोंमें वातिकनिर्बलताको दूर करती है। आमाशय तथा आन्त्रोंमें इसका दीपक प्रभाव होता है। यह उष्णवीर्य होनेके कारण स्वेदक ग्रन्थिमुखोंको खोलती है जिससे अधिक मात्रामें स्वेद आता है और रक्त स्थित विष और दोष बाहर निकल जाते हैं। शरीरकी स्वाभाविक वातिक शक्तिको पोषण करने और धातुओंको बल देनेसे इसको बल्य और रसायन माना जाता है। त्वचा और चेहरेके वर्णको स्वच्छ करनेके कारण इसे त्वच्य माना जाता है।

फिरङ्ग जन्य व्रण आदि अनेक उपद्रवोंमें इसको सारिवा उसवा, चिरायता, कुटकी और निम्ब पत्रके साथ पानकके रूप में देनेसे विशेष लाभ देखा जाता है। केवल इसका अर्क भी एतदर्थ प्रयुक्त होता है। रक्त-विकृतिजन्य व्रणोंको भरने के लिये चोपचीनी रस क्रियामें त्रिफलाभस्म यशदभस्म, मोम और तिल तैलसे बने हुए मलहर लगाये जाते हैं। फिरङ्ग रोग, आमवात, सन्धिशूल और वातिक निर्बलतामें चोपचीनीका दालचीनी बड़ी इलायचीके साथ क्षीरपाकसे पकाया हुआ दूध पिलावे तो बड़ा लाभ होता है। अशुद्ध रसकपूर जन्य ग्रन्थिवात सन्धिशोथमें चोपचीनी का क्षीरपाक महोषधि मानी जाती है। हिस्टीरीयामें भी इसका दालचीनी चन्दन, जटामांसी, वलामूल और गुलाबके फूलके साथ बना हुआ विशेष लाभकारी सिद्ध होता है। गलितकुष्टके प्रारम्भ में यदि चोपचीनीका कल्पके रूपमें सेवन किया जाय तो यह रोग समूल नष्ट हो जाता है। ऐसे रोगोंमें चोपचीनी कल्प करनेके पूर्व यदि पञ्चकर्म विधान कर लिया जाय, या विधिवत रेचन लिया जाय तो निश्चय शीघ्र लाभ होता है ; परन्तु कल्पक्रियामें पथ्यादिका बड़ा ध्यान रखना पड़ता है। अन्यथा रसायन भ्रन्श जन्य अनेक रोग होनेका डर रहता है।

पथ्यापथ्य

चोपचीनी सेवनकालमें गेहूँ, चना और जौकी रोटी घी-दूध, साबूदाना, दलिया, मुनक्का, अंगूर सेव, आदि शीतवीर्य भोजन पथ्य हैं। और उष्ण तीक्षण पदार्थ, तेल, मिर्च, खटाई, दही, लवण, क्षार, अपथ्य है। क्रोध, शोक, शीतवायु स्पर्श अजीर्ण भोजन, मैथुन आदि क्रिया भी निषिद्ध है।

हमारे आहारमें खाद्योजोंका स्थान

[श्री रामदास, जीव-विज्ञान-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय]

मारे स्वास्थ्यकी रक्षा या यों कहिए कि स्वास्थ्यकी कुंजी हमारे दैनिक आहारमें छिपी रहती है। हमारे स्वास्थ्यका हमारे जीवनकी सार्थकतासे बड़ा निकट सम्बन्ध है। स्वास्थ्य-रक्षाकेलिए यह आवश्यक है, कि हमको इस बातकी पूरी जानकारी हो, कि हमारे आहारमें कौन-कौन पौष्टिक गुण होते हैं। भोजन वास्तवमें कैसा होना चाहिए, किस प्रकारका होना चाहिए, किस समय और कितनी मात्रामें करना चाहिए? इन सभी बातोंका थोड़ा-बहुत ज्ञान होना परमावश्यक है।

खाद्य पदार्थोंमें कौन-कौन पौष्टिक गुण होते हैं, इस विषयमें पाश्चात्य देशोंके विद्वानोंने बड़ी खोज-बीन की है। हमारे आहारिक द्रव्योंमें दूसरे पदार्थोंके सिवाय वैज्ञानिकोंकी नयी खोजके अनुसार एक तत्व और रहता है, जिसका कि आविष्कार १९१३में फ़ूक नामक विद्वानने चावलकी परीक्षा करते हुए किया। हौपकिन्सने पहले इस तत्वको "Accessory Food Substance" उपाहार द्रव्यके नामसे पुकारा, लेकिन फूकने इसको विटामिन या जीवन-शक्तिका ही नाम देना उचित समझा। (डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्माने इसका नाम "खाद्योज" बहुत ही उपयुक्त रखा है। रा० गौ०) Vitaminका अर्थ Vital + amine अर्थात्—जीवनके लिए आवश्यक अमीन है। अब खोजसे पता चलाता है, कि सभी विटामिनमें अमीनके-से गुण नहीं होते हैं। कुछ भी हो अब अंग्रेज़ीमें इस नामको बदलनेकी कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती। यह एक बहुत सूक्ष्म और शक्तिमान् तत्व है। इसकी थोड़ी मात्रा भी किसी पदार्थमें मिल जानेसे उसमें विटामिनके गुण आ जाते हैं। यह एक विशेष रासायनिक यौगिक तत्व है जो दूध, ताजे फल और तरकारियोंमें विशेष रूपसे पाया जाता है। यही नहीं बल्कि आधुनिक डॉक्टरोंके मतानुसार हमारे आहार-वस्तुओंमें कुछ-न-कुछ अंश विटामिनका होना परमावश्यक है। इसके न होनेसे भोजनकी शक्ति बहुत कम हो जाती है। खाद्योजहीन खाद्य पदार्थोंके सेवनसे मनुष्यका स्वास्थ्य भंग होता है। और क्षीणता तथा रक्तके अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। खाद्य पदार्थ जब स्वाभाविक अवस्थामें होते हैं, तो उनमें खाद्योज न्यूनाधिक परिमाणमें अवश्य पाया जाता है। भोजनको पकानेसे बहुत कुछ इस पदार्थका लोप हो जाता है। आजकलके प्रायः कृत्रिम और अस्वाभाविक उपायसे तय्यार किये गये आहार-द्रव्योंमें इसका अस्तित्व नहीं रह जाता। आजकल तो मशीनका युग है। दुर्भाग्यसे मनुष्य जाति भी मशीनकी तरह काम करने लगी है। पाँच मिनटमें भोजनकी क्रिया समाप्त हो जाती है। किसी प्रकार सामने रक्खा हुआ भोजन गलेके नीचे उतार लिया जाता है। ध्यान तो इस बातका रहता है कि भोजन स्वादिष्ट हो। हमको इस बातका ध्यान नहीं रहता कि मशीनसे साफ किया चावल या पनचक्की या बिजली अथवा एंजिनसे पीसे आटे। दानेदार चीनी, डब्बोंमें आनेवाले दूधमें विटामिन रह जाता है या नहीं। जो बच्चे कि गाय-बकरीका ताज़ा दूध नहीं पाते, किन्तु डब्बेके जमे हुए दूधपर पाले जाते हैं उन्हें रिकेट रोग विशेष होता है। इस रोगके कारण बच्चोंकी हड्डी पुष्ट नहीं होती, शरीर दुर्बल हो जाता है, पाचनशक्ति कम हो जाती है। पेट और मस्तक भारी हो जाता है और तालू खाली रहता है। ऐसे बालक केवल माताकी अज्ञानताके कारण अकाल ही कालके गालमें चले जाते हैं। यह सब विटामिनके ही अभावसे होता है। यह माताके दूध हरी, शाक-सब्जी, हरे तृण घास खानेवाली गायका दूध, मक्खन, काडलिवर आयल, आदि चीजोंमें रहता है। हरे शाक, सब्जी तथा ऊपर लिखे और भी खाद्य पदार्थोंमें प्रथम श्रेणीके खाद्योजका भी समावेश रहता है। इस श्रेणीके खाद्योजके अभावसे रतौंधी तथा अन्य नेत्र-रोग उत्पन्न होजाते हैं। खाद्योज १ और २ चर्बीमें पतले रूपसे

रहते हैं। ये चर्बीमें घुलनेवाले होते हैं। खाद्योज २ और ३ पानीमें घुल सकते हैं। इनके अलावा पाँचवाँ खाद्योज भी है। इसके अभावसे संतान उत्पन्न करनेकी शक्ति घट जाती है। मनुष्य नपुन्सक और स्त्री बाँझ-सी हो जाती है। गर्भस्थित संतान नष्ट होजाती है। इसकी अभाव-पूर्ति अन्य किसी जातिके खाद्योजसे नहीं होती।

पश्चिमी विज्ञान अभी तक इन पाँचों जातिके खाद्योजों-के रासायनिक उपादानोंका निर्णय करनेमें पूर्ण रूपसे समर्थ नहीं हुआ है। पूरी आशा है कि पूर्ण सफलता कुछ वर्षोंमें प्राप्त हो जायगी।

प्रत्येक मनुष्यको कौन-कौन पदार्थ कितनी मात्रामें लेना चाहिए, जिससे कि पाँचों श्रेणीके खाद्य पदार्थ हमारे शरीरकी आरोग्यता देहकी पुष्टि और शारीरिक शक्तिको स्थिर रखनेके लिए बराबर मिल सकें। इस विषयका पूरा ज्ञान प्राप्त करनेके लिए इन पाँचों श्रेणीके खाद्यपदार्थोंका वैज्ञानिक रीतिसे अलग-अलग वर्णन आवश्यक है।

प्रथम श्रेणीका खाद्योज—यह तेलके समान होता है और ज्यादातर घी, दूध, मक्खन, मलाई, मट्ठा, काडलिवर आयल, च्यवन-प्राश, अष्टवर्गकी ओषधियाँ, जीवंत्ति, मुलेठी आदिमें रहता है। मांसमें भी यह कुछ अंशमें रहता है। पालकका शाक, बंधी गोभी, फूल गोभी, टमाटर, नीबू, नारङ्गी, मूली, मटर, अमरूद, गाजर, सलाद, गेहूँ आदि में यह अधिकतासे होता है। सरसों, तिल; नारियल, महुआ, आदि तेलोंमें यह साधारणतया पाया जाता है। ज्यादा गरमीसे यह नष्ट हो जाता है। मक्खन और घीके अधिक गरम करनेसे इस शक्तिवान सूक्ष्म खाद्योजका नाश हो जाता है। दूध साधारण दो-एक उफान आनेतक ही गरम कर दिया जाय तो इसकी जीवन-शक्ति नष्ट नहीं होती, खाद्योज १ शारीरिक पुष्टि और वृद्धिका पोषक है।

हमारे दैनिक भोजनमें इसकी कमी होनेसे शरीरमें सेर रोगोंके बचाव करनेकी ताकत जाती रहती है। रतौंधी औ अनेक रोग हो जाते हैं। बालकोंके शरीरकी वृद्धिके लिए ये परमावश्यक हैं। अगर छोटे दूध पीते बच्चे माँका दूध नहीं पाते, और इस श्रेणीके खाद्योज रहित डब्बेके दूधपर पाले जाते हैं तो उनके दाँत देरमें निकलते हैं और पुष्ट भी नहीं होते। गलेकी ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं। शरीर ठिगना और वजन कम हो जाता है। क्षय, खाँसी, निमोनिया आदि भीषण रोग भी इसकी कमी होनेसे आसानीसे घर दबाते हैं। इसीके अभावसे शोथ और संग्रहणी रोग हो जाते हैं। स्त्रियोंको प्रसूतिके समय और दूध पिलानेकी अवधिमें इस श्रेणीके खाद्य-प्राणकी बड़ी आवश्यकता होती है। जब कभी भोजनमें विटामिन ए अधिक रहता हो तो शरीरमें संचित रहकर आगे काम आता है। पर अभीतक खाद्य पदार्थोंसे यह अलग नहीं किया जा सका। हानसेनके मतानुसार विटामिनोंको ए० बी० सी० के नामसे पुकारनेसे यह ज्यादा उचित होगा कि इन सबोंको अलग-अलग नाम दिया जाय। इस श्रेणीके खाद्यप्राणको हानसनने Antixeropthalmic Vitamin नाम दिया है।

द्वितीय श्रेणीका खाद्योज—जीवनको स्थित रखने और शरीरकी आरोग्यताके लिए इस श्रेणीका खाद्योज परमावश्यक है। यह दूध, अण्डेके फूल, हरी शाकह भांजी, गोंद, जव, गेहूँ, चावल, दाल, कणदार आटा, और सूखे मेवे, चना-मटरकी हरी फलियोंमें रहता है। छिलके सहित आलू और बैंगनमें भी कुछ अंश रहता है। मशीनका पिसा हुआ आटा, कुटे चावलों, मछली और चरबीमें, इस जातिके खाद्यप्राणका अस्तित्व नहीं होता। चना-मटर मूंग दो दिन भिगो कर अंकुर निकलनेपर चबावे तो उसमें विटामिन भी अधिक मिलता है, क्योंकि यह पानीमें घुल जाता है। उन पदार्थोंको जिनमें यह विटामिन होता है ज्यादा देर तक पानीमें उबालना न चाहिए। शाक-तरकारी आदि पहले, उबालकर पानी निकाल दिया जाय तो उसी जलके साथ विटामिन भी निकल जायगा, भातका माँड़ निकालनेपर उसकी जीवन-शक्ति उसीके साथ निकल जाती है। शाक-सब्जी, या चावल उबालना हो तो इतना पानी डाले कि पीछेसे बाकी बचकर न निकल सके, सब पानी सूख जाना चाहिए। इस जातिके खाद्योजका अभाव बच्चोंकी बाढ़को रोक देता है। पाचनशक्ति भी कम हो जाती है। अपचन, भूखकी कमी और पेटमें मरोड़की शिकायत पैदा हो जाती है। देहातके जो लोग ज्यादातर मकापर बसर करते हैं उनमें खाल फटनेका रोग हो जाता है। हमारे शरीरकी कंठ, वृक

और मस्तिष्ककी गाँठें बिना इस श्रेणीके खाद्योजके अपना कार्य ठीकसे नहीं कर सकती हैं। और हमारे स्वास्थकी रक्षाकेलिए इन गांठोंकी ठीक-ठीक क्रिया आवश्यक है। अब पता चला है कि खाद्योज २के पाँच भाग हो सकते हैं। परन्तु इनकी परीक्षा अभी अपूर्ण मालूम होती है।

पीले और निस्तेज पत्तोंकी अपेक्षा गहरे हरे रङ्गके पत्तोंमें खाद्योज २ अधिक रहता है। पेलाग्रारोगमें मस्तिष्क, मेरुदंड और चर्मका विकार होता है। खाद्योज २ (२)से इन लक्षणोंमें लाभ पहुँचता है। और शारीरिक शक्तिमें भी यह कारण मूल होता है। इसके अभावसे चर्म-रोग हो जाते हैं। नेत्रोंकी ललाई, नेत्रोंसे पानी जाना, आँखोंमें जलन होना। चमड़ेमें जलन, बालका झड़ना, आँख और नाक और जननेंद्रियसे रक्त गिरना भी इसीके अभावसे होते हैं। जो लोग ताजा मांस, अंडे, दूध, शाक, सब्जी आदि खाते हैं उन्हें ऐसी शिकायतें प्रायः कम होती हैं।

खाद्योज ३—यह ताजे फल-फूलमें अत्यधिक होता है। कागजी नीबू, बड़ा नीबू, मीठा नीबू, संतरा, टमाटर, भीगे चने, अंगूर, केला, सलजम, प्याज, सलाद, बंधीगोभी, पालक सेव आदि फलों और तरकारियोंमें यह विटामिन विशेष रहता है। नीबूमें यह सबसे अधिक रहता है। दूधमें यह कम रहता है पानीमें यह घुल सकता है। ज्यादा देरतक खाद्य पदार्थोंको हवामें खुला रखनेसे भी इस विटामिनकी मात्रा कम हो जाती है। यह ज्यादा गर्मी नहीं सह सकता। ज्यादा देर तक पकानेसे, या ज्यादा नमक आदि मिलाने से भी इस तत्वका विनाश हो जाता है। तरकारी उबालकर पानी फेंक देनेसे यह विटामिन पानीमें घुलकर निकल जाता है। अगर पानीमें चीजें न उबाली जायँ तो ज्यादा अच्छा होगा। हरी घास खानेवाली गायके दूधमें खाद्योज ३ अधिक रहता है। पेड़ोंके पत्तोंके हरे रंगमें सूर्यकी किरणोंकी सहायतासे यह उत्पन्न होता है। जो खाद्यपदार्थ जैसे फल, फूल शाक, भाजी इत्यादि कच्ची हालतमें खाये जा सकते हैं। उचित और लाभदायक तो यही होगा कि उनका सेवन इसी स्वाभाविक दशामें किया जाय। ऐसा करनेसे यह विटामिन विशेष रूपसे हमारे शरीरमें पहुँच सकता है। इसको खालिस अवस्थामें अलग किया गया है। अब अंग्रेजी दवखानोंमें यह अस्कार्बिक (Ascorbic Acid) अम्लके नामसे मिलता है।

कई वैज्ञानिकोंने यह खोज निकाला है कि पांच महीनेतक गर्भस्थित बालक को गर्भाशयमें बना हुआ ही खाद्योज ३ मिलता है। इसके बाद इस तत्वको बनानेकी शक्ति दिनोंदिन कम होती जाती है। भ्रूण स्वयं इस खाद्योजको बनाता है।

हमारे शरीरमें इसकी कमीसे पाचनशक्ति घट जाती है। यही नहीं बल्कि पेट और आंतोंमें छाले पड़ जाते हैं और रक्त रोग हो जाता है। हड्डीके रोग और गठिया होनेका डर रहता है। दांत कमज़ोर हो जाते हैं। उनकी जड़ें ढीली पड़ जाती हैं। मसूड़े सूज जाते हैं और उनसे पीब निकलने लगती है मुख से दुर्गन्ध आने लगती है। रक्तके विकारसे चमड़ेपर जगह-जगह चकते खूनके जम जानेके कारण पड़ जाते हैं। कुछ दिनोंमें शरीर अत्यंत निर्बल हो जाता है। और अंतमें मौतका शिकार होना पड़ता है।

चतुर्थ श्रेणीका खाद्योज—सूर्यकी पराकासनी किरणोंमें यह अधिकतासे होता है। पश्चिमी वैज्ञानिकोंका यह मत है कि अगर सरसों या जैतूनका तेल धूपमें बैठकर लगाया जाय तो खाद्योज ४की शरीरमें उत्पत्ति हो जाती है। हमारे चमड़ेमें कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जिनमें कि धूप लगनेसे इस जातिका खाद्यसार शीघ्र बन जाता है और फिर सारे शरीरमें फैल जाता है। काडलिवर आयलमें यह काफी परिमाणमें होता है। माताके स्तन-दुग्ध, गौ-दूध, मक्खन आदिमें इसकी काफी मात्रा होती है। जो गाय या भैंस धूप और खुली हवामें चरा करते हैं उनके दूधमें यह हमेशा अधिक होता है। बच्चोंको विशेषकर सूखा रोगवाले, खुली देह कुछ समय तक धूपमें घूमने-फिरने देना अत्यंत लाभदायक होता है। यह खाद्योज पृथक् किया गया है और अंग्रेजी दवाखानोंमें Calci-feroe केलसी फेरोके नामसे मिल सकता है। इसकी कमीसे शरीरकी शक्ति घटती है। बच्चोंका सूखा रोग रहता है। और उनमें जल्दी चलने-फिरनेकी ताकत नहीं आती। हाथ-पैर दुबले हो जाते हैं। दाँत देरमें और अधिक पीड़ासे निकलते हैं। पेट निकल आता है। जवान आदमियोंमें मधुमेह आदि रोग भी हो जाया करता है।

पंचम श्रेणीका खाद्योज—इसमें सन्तानोत्पादनी

अस्पतालोंके कामकी रुईका कारखाना, सोखनेवाली रुईकी तैयारी

[पं० ओंकारनाथ शर्मा, बांदीकुई]

(संग्रहकर्ता—लाला श्रीरामजी अग्रवाल, मंत्री—असोसियेशन फौर दी डेवलपमेन्ट आफ स्वदेशी इन्डस्ट्रीज, चांदनी चौक देहली)

अस्पतालोंमें मरहम-पट्टीके काममें जो रुई आती है उसे एबसोरबेन्ट काटन अर्थात् शोषक रुई कहते हैं। भारतके अस्पतालोंमें इसका खर्चा बहुत होता है। अक्सर यह विदेशों-से मंगवायी जाती है। सुनते हैं बँगालमें इस प्रकारकी रुई तैयार करनेकेलिए दो फैक्टरीयाँ खुल गयी हैं।

पंजाबमें यह उद्योग बहुत लाभप्रद हो सकता है, क्योंकि वहां रुई बहुतायतसे पैदा होती है। पाँच वर्षों के रुईकी पैदाइशके पंजाबके आँकड़े यहां दिये जा रहे हैं। इनके अनुसार, पंजाबमें रुईकी औसत पैदाइश २,७८,३०० मन प्रतिवर्ष हुई।

वर्ष	अमेरिका रुईकी खेती एकड़ोंमें	देशी रुईकी खेती एकड़ोंमें
१९२६—२७	११,३४,२५३	१३,८९,४६५
१९२७—२८	७,५०,३३०	१०,९१,१२०
१९२८—२९	९,७४,३७०	१५,३४,५४१
१९२९—३०	८,०५,८७६	१४,०२,६५५
१९३०—३१	८,३६,७०५	१३,२७,५३४

शोषक रुई जैसी अस्पतालोंमें काममें आती है वह लोढ़ी हुई रुईसे और मिलोंके रद्दी टूटे हुए सूतसे तैयार की जाती है। लोढ़ी हुई रुईसे जो शोषक रुई तयार होती है वह बढ़िया होती है और रद्दी टूटे हुए सूतसे जो शोषक रुई बनती है वह कुछ घटिया होती है। पंजाब प्रान्तकी सब जिनिंग फैक्टरियोंसे मिलाकर प्रतिवर्ष ४०० पौंडकी ३,६३,००० गाँठें तो देशी रुईकी तयार होती हैं और २,४४,००० गाँठें ही अमेरिकन रुईकी तैयार होती हैं और सब रुईकी मिलोंसे मिलाकर १,५०० मन टूटा हुआ रद्दी सूत निकलता है।

संक्षिप्त निर्माण विधि—रुईको पहिलेतो कास्टिक सोडाके ५%घोलमें आधे घंटे तकउबाला जाता है और फिर उसे साफ पानीसे भली भांति धोकर निचोड़ दिया जाता है। निचोड़नेके बाद उस रुईको क्लोराइड आफलाइमके ५% घोलमें १५ अथवा २० मिनटतक डालकर पानीसे धो दिया जाता है फिर उसे हाईड्रोक्लोरिक एसिडके घोलमें डाल दिया जाता है। कुछ देरतक तेजाबके पानीमें भीगनेके बाद इस रुईको साफ पानीसे धोकर खूब साफ कर दिया जाता है और फिर उसे फैलाकर, गरम कमरोंमें रखकर, सुखा दिया जाता है। सूखनेके बादमें उसे धुना जाता है। उसके पहल जमाकर बेचनेकेलिए पैक कर दिया जाता है।

(क) १० घण्टे प्रतिदिन काम करके ५०० पौंड शोषक रुई तैयार करनेवाली फैक्टरीके खर्च आदिका अनुमान।

शक्ति होती है। इसके अभावसे पुरुषोंमें नपुंसकता और स्त्रियोंमें बाँझपन आ जाता है।

इसको Sex Vitamin जनन खाद्योजके नामसे पुकारना अब बिज्ञानी लोग ज्यादा ठीक समझते हैं। प्रायः यह जब गेहूँ चावल आदि अनाज और अण्डेमें पाया जाता है। इसकी कमी और कोई दूसरी जातिकी खाद्यप्राण नहीं दूर कर सकता। दूध और नारियलमें यह विशेष मात्रामें पाया जाता है। आटा चालकर न खाना चाहिये क्यों कि चोकरके साथ खाद्योज भी गायब हो जाता है।

अभीतक खाद्योजोंकी खोज पूरी नहीं हुई है। हमारा भोजन इस प्रकार पकाया जाय कि यह अमूल्य सूक्ष्म तत्व जहाँ तक हो नष्ट न होने पावे। भोजन पकानेकी प्रणालीमें आवश्यक सुधार किया जाय, तो कुछ अनुचित न होगा। भारतकी इस गरीबीमें जो कुछ रूखा-सूखा भोजन लोगोंको अपना पसीना बहाकर मिलता है उसे उचित रीतिसे खाने योग्य करके अधिक-से-अधिक लाभदायक बनाना चाहिये।

आवश्यक मशीनें

1 ब्राइटन ओपिनर (Brighten Opener) २५३४रु०
1 बीटर सोचर (Beater Soutcher) २९७८॥रु०
1 धोने और पखालनेकी मशीन ... १६१३ रु० ८ आ०
1 हाईप्रेशर केयर (High Pressure Kier) २४६४ रु०
1 रंग उड़ाने, मसलने और धोनेकी मशीन १८६२ रु०
1 रंग उड़ानेके मसालेको घोलनेकी मशीन... ७०० रु०
1 हेनबोल्ड हाईड्रो एक्सट्रेक्टर ... १०९२ रु०
1 वेटपिकिंग मशीन ... ... १४६६ रु० ८आ०
1 रेक ड्राइङ्ग मशीन ... ... ३०६६ रु०
४ वाडिंग कार्ड ... ... १३३०० रु०
४ जोड़ी कार्डोंके कपड़े ... ... ३२०६ रु०
२ रुईके तराजू ... ... २१७ रु०
1 जिनिंग मशीन ... ...६६१ रु० ८आ०
1 सेट फालतू औज़ार ... ... ५२७ रु०
1 वाडिंग प्रेस ... ... १३२६ रु०
1 वाडिंग बाईंडिंग मशीन ... ... ८६१ रु०
1 वाडिंग रॉल कटिंग मशीन ... ४५८ रु०
1 लोहेके बेलन रखनेका उठाऊ ढाँचा ... १११ रु०
1 हाईप्रेशर स्टीम स्टरीलीसेटर (High Pressure Steam Sterilisator) ... ३६४८रु०

मशीनोंका योग ... ... ४१५९४ रु०
उपरोक्त मशीनोंका किराया, चुङ्गी और बीमा ५०%के हिसाबसे ... ... २०७९७ रु०
बिजली की मोटर ५२ अश्वबल ... ३००० रु०
धुरे, पट्टे और कुली इत्यादि ... ... २००० रु०
पानीकी टंकी ... ... २००० रु०
पंप और उसकी मोटरका खर्चा ... १००० रु०
मशीनोंको जमानेका खर्चा ... २००० रु०
योग ... ३०७९७ रु०

फैक्टरीके लिए इमारत :—

फैक्टरीके लिए १८० फुट लम्बी और ६० फुट चौड़ी इमारतकी आवश्यकता होगी जो ३ रु० प्रति वर्गफुटके हिसाबसे ३२००० रु०में तैयार हो सकती है।

इस योजनासे आमद और खर्च

खर्च (एक मासका)

१. कच्चे मालका खर्चा ... २५२४ रु०
२. कार्यकर्त्ताओंका वेतन ... ८२६ ,,
३. शक्तिका खर्चा ... ... १५७५ ,,
४. किराया, चुंगी और कर आदि तैयारीपर २%के हिसाबसे ... १३० ,,
५. यंत्रोंकी मरम्मत और तेल आदिका खर्चा १५० ,,
६. यंत्रोंकी छीजन १०%के हिसाबसे ६०३ ,,
७. इमारतकी छीजन २%के हिसाबसे ५२ ,,
८. कोयलेका खर्चा ... ... ७५ ,,
९. पैकिंगके सामानका खर्चा ... २२५ ,,
१०. फुटकर खर्च ... ... ५१० ,,
योग—६६६० ,,

एक मासकी आमदनी—५% रुई बर्बाद होते हुए भी, एक मासमें १२,३५० पौंड रुई तैयार होवेगी। कमीशन और दलाली देनेके बाद यदि वह रुई ९ आना ६ पाईके भावसे बेची जावे तब भी एक मासमें ७३३२ रुपयेकी आमदनी होगी।

इस प्रकारसे एक महीनेका लाभ ... ६७२ रु०
और एक वर्षका लाभ ... ... ८०६४ रु०

इसका आशय यह है कि उपरोक्त व्यापारमें कुल पूँजीपर १०%लाभ मिलता है।

परिशिष्ट—कच्चे मालका हिसाब—(एक मास अर्थात् २६ दिनके लिये]

१—प्रतिदिन ५०० पौंड रुई काममें आवेगी।

इसलिए एक महीनेमें $= \frac{५०० \times २६}{८२} =$ १५९मनके लग-भग रुई काम आवेगी जिसके दाम १२ रु० प्रति मनके हिसाबसे १९०८ रु० होंगे।

२—८ मन कास्टिक सोडा १३ रु० प्रति मनके हिसाबसे १०४ रु०

३—३२ मन ब्लीचिंग पाउडर ९ रु० २ आ० प्रति मनके हिसाबसे ३०४ रुपया।

४—८ मन हाइड्रो-क्लोरिक एसिड २६ रुपया प्रति मनके हिसाबसे २०८ रुपया
योग—५२२४ रुपया

कार्यकर्त्ताओंका मासिक खर्चा

एक विशेषज्ञ	...	...	३५० रु०
एक फोरमैन	...	...	१०० ,,
एक फिटर	...	...	४० ,,
१६ मजूर, २० रुपया मासिक		...	३३० ,,
२ लड़के, १३ रुपया मासिक		...	२६ ,,
१ बाबू	...	...	३० ,,
१ भंडारी	...	...	३० ,,
१ चपरासी	...	...	१५ ,,
१ चौकीदार	...	...	१५ ,,
		योग—	८२६ रु०

पानीका खर्चा—

१—रुईकी तैयारीके लिए—

१०० ग्राम रुईके लिए ४००० ग्राम पानीकी आवश्यकता पड़ेगी, अतः एक दिनका पानीका खर्चा

$$= \frac{४००० \times ५०० \times ४५३ \times ६}{१०० \times ४५३ - ६ \times १०} = २००० \text{ गैलन}$$

(२)—वाष्प तैयार करनेके लिए पानीका खर्चा :—

प्रतिदिन वाष्पका खर्चा = २००० पौंड

पानी का खर्चा ... = २००० पौंड = २०० गै०

(३) पीने आदिके लिये पानीका खर्चा एक दिनका = ३०० गै०

∵ पानीका कुल खर्चा = २५०० गै०

उपरोक्त पानीसे २० % अधिक पानी जमा करनेके लिए १५ फुट लम्बा ८ फुट चौड़ा और ४ फुट गहरा हौज़ अथवा टंकी बनानेमें लगभग २००० रु०का व्यय होगा।

(४) मशीनोंको चलानेके लिए शक्तिका खर्चा (२६ दिनकेलिए) ५२ अश्वबलकी मोटरमें $\frac{५२ \times ७४६}{१०००}$ किलोवाट खर्च होंगे।

एक महीने में $\frac{५२ \times ७४६}{१०००} \times \frac{१० \times २६}{१}$ किलोवाट घण्टे खर्च होंगे।

एक किलोवाट घण्टेकी कीमत २ आना ६ पाई पड़ती है। अतः एक मासकी शक्तिका खर्चा

$$= \frac{५२ \times ७४६ \times १० \times २६ \times ५}{१००० \times २ \times १६}$$

= १५७५ रु० होगा।

(५) एक मास (२६ दिन) के लिए पैकिंगका खर्चा

१—कागज का खर्चा—

एक पौंड रुईको पैक करनेके लिए ४५ ग्राम अथवा कहिए ५० ग्राम कागज खर्च होता है।

∴ ५०० बण्डलोंके लिये ५० × ५०० = २६००० ग्राम कागज खर्च होगा।

∴ एक मास (२६ दिन) में २५००० × २६ ग्राम

अर्थात् $\frac{२५००० \times २६}{४५३.६}$ = १४३३ पौंड कागज़ खर्च होगा।

यदि एक पौंड कागज की कीमत २ आना हो तो १४३३ पौंड की कीमत १८० रुपये होगी।

२—बंडलोंपर लगनेके लिए लेबिलोंमें २६ रु० मासिक खर्चा होगा।

३—सुतलीका चर्खा लगभग २० रु० मासिक होगा। अतः पैकिंगका कुल खर्चा २२५ रु० मासिक होगा।

(६) कोयलेका खर्चा, एक मास (२६ दिन) तक वाष्प बनानेके लिये —

प्रतिदिन स्टीमका खर्चा २००० पौंड।

यदि अच्छा-से-अच्छा एक पौंड भारतीय कोयला ८ पौंड वाष्प तैयार कर सके तो कोयलेका दैनिक खर्चा

$$\frac{२०००}{८} = २५० \text{ पौंड होगा।}$$

यदि बैलटकी कार्यक्षमता ७०%मानी जावे तो कोयले का दैनिक खर्चा $\frac{२५० \times १००}{७०}$ = ३५७ पौंड होगा।

∴ एक मासका खर्चा = $\frac{३५७ \times २६}{२२४०}$ = ४०१५ टन

यदि कोयलेका भाव १८ रु० प्रतिटन हो तो एक मास का खर्चा = १८ × ४१५ = ७४७ रु०

= ७५ रु०

(ख)—१० घण्टे प्रतिदिन काम करके १००० पौंड शोषक रुई तयार करनेवाली फैक्टरीके खर्चे का अनुमान—

आवश्यक मशीनें

१—ब्राइटन ओपिनर (Brighten opener) २५३४ रु०

१—बीटर सोचर (Beater soutcher) २९८२ रु०

१—धोने और पखालनेकी मशीन..........१६१२ रु०
१—हाईप्रेशर केयर (High pressure kier) ३७८० रु०
१—रङ्ग उड़ाने, मसलने और धोनेकी मशीन... १८६० रु०
१—क्लोरीनको घोलनेकी मशीन...... ७०० रु०
१—हेनबोल्ड हाइड्रो एक्स्लट्रैक्टर...... १०९२ रु०
१ —वेट पिकिंग मशीन... ... १४७० रु०
१—रेकड्राइंग मशीन ... ... ४०६० रु०
८—वाडिंग कार्ड ... २६६०० रु०
८—जोडीकार्डोंके कपड़े ६४१२ रु०
४—रुई तोलनेके तराजू ४३४ रु०
१—जिनिंग मशीन ६५८ रु०
१—सेट फालतू औज़ार ४२७ रु०
१—वाडिंग प्रेस १३३० रु०
२—वाडिंग वाईंडिंग मशीनें १७२२ रु०
१—वाडिंग रौल कटिंग मशीन ४६२ रु०
१—लोहेके बेलन रखनेका उठाऊँ ढाँचा ११२ रु०
१—हाईप्रेशर स्टीम स्टरीलीसेटर (High p essure steam sterilisator) ३२५५ रु०

मशीनोंका योग—६१५०२ रु०

उपरोक्त मशीनोंका किराया, चुँगी और बीमा ५०%के हिसाबसे......... ३०७५१ रु०
बिजलीकी मोटर ६५ अश्वबल...... ४००० रु०
धुरे, पट्टे और पुली इत्यादि......... २००० रु०
पानीकी टंकी ३००० रु०
पंप और उसकी मोटरका खर्चा १००० रु०
मशीनोंको जमानेका खर्चा ...... २००० रु०

योग १,०४,१५३ रु०

फैक्टरीके लिए इमारत —

फैक्टरीके लिए १८० फुट लम्बी और ७० फुट चौड़ी इमारतकी आवश्यकता होगी, जो ३० रु० प्रति वर्ग फुटके हिसाबसे लगभग ३८००० रु०में तयार हो सकती है।

इस योजनासे आमद और खर्च

खर्च (एक मासका)

१, कच्चे मालका खर्चा ... ५०३६ रु०
२. कार्यकर्त्ताओंका वेतन ... ९३० ,,
३. शक्तिका खर्चा ... ... ११७० ,,
४. किराया, चुंगी और कर आदि तयारी पर २%के हिसाबसे ... २०० ,,
५. यंत्रोंकी मरम्मत और तेल आदि २१४ ,,
६. यंत्रोंकी छीजन १०%के हिसाबसे ८६९ ,,
७. इमारतकी छीजन २%के हिसाबसे ६३ ,,
८. कोयलेका खर्चा ... ... १५० ,,
९ पैकिंगके सामानका खर्चा ... ४०० ,,
१०. फुटकर खर्च ... ... १००० ,,

योग—१८८०४ ,,

एक मासकी आमदनी—५%रुई बरबाद होते हुए भी, एक मासमें २४७०० पौंड रुई तयार होवेगी। कमीशन और दलाली देनेके बाद यदि वह रुई ९ आना प्रति पौंडके भावसे बेची जावे तब भी एक मासमें १३८९४ रुपयेकी आमदनी होगी।

इस प्रकारसे एक महीनेका लाभ ... ३०१० रु०
एक वर्षका लाभ ... ... ३६१२० ,,

इसका आशय यह है कि इस व्यापारमें उपरोक्त योजनाके अनुसार कुल पूँजी पर २७.६ लाभ मिल सकता है।

परिशिष्ट कच्चे मालका हिसाब—[एक मास अर्थात २६दिनके लिये।]

१—एक दिनमें २९०० पौंड रुई काममें आवेगी। इसलिए एक महीनेमें $\frac{२९००\times२६}{८५}$ अर्थात २२६ मन के लगभग रुई काममें आवेगी, जिसके दाम २१ रु० प्रति मनके हिसाबसे ३८०४ रु० होंगे।
२—२६ मन कास्टिक सोडा १२ रु० प्रति मनके हिसाबसे १०८ रु०का खर्च होगा।
३—६४ मनब्लीचिंग पाउडर ९ रु० ८ आना प्रति मनके हिसाब ६०८ रु०का खर्च होगा।
४—१६ मन हाइड्रोक्लोरिक एसिड २६ रु० प्रति मनके हिसाबसे ४०६ रु० का खर्च होगा।

योग—५०३६ यु० बे

कार्यकर्त्ताओंके वेतनका खर्चा

१ विशेषज्ञ	२५० रु०
१ फोरमैन	१०० रु०
१ फिटर	४० रु०
२० मजूर, २० रु० मासिक	४०० रु०
४ लड़के १३ रु० मासिक	५२ रु०
१ बाबू	३० रु०
१ भंडारी	३० रु०
१ चपरासी	१५ रु०
१ चौकीदार	१५ रु०
योग	९३२ रु०

पानीका खर्चा

१—रुईकी तैयारीके लिए—

१०० ग्राम रुईके लिए ४००० ग्राम पानीकी आवश्यकता पड़ती है, अतः एक दिनके पानीका खर्चा =

$$\frac{४००० \times १००० \times ४५३.६}{१०० \times ४५३.६ \times १०} = ४००० \text{ गैलन}$$

२-वाष्प तैयार करनेके लिए पानीका खर्चा-

प्रतिदिन वाष्पका खर्चा = ४००० पौंड

∴ पानीका खर्चा...... = ४००० पौंड = ४०० गैलन

३-पीने आदिके लिए पानीका खर्चा —

एक मासका खर्चा = ४०० गैलन

∵ कुल खर्चा, एक मासका = ४८०० गैलन

टंकीका नाप—

उपरोक्त पानी से २५%अधिक पानी जमा करनेके लिए २० फुट लम्बी, १५ फुट चौड़ी और ४ फुट ऊँची टंकी चाहिए, जिसे तयार करनेमें लगभग ३००० रु० का व्यय होगा।

मशीनोंको चलानेके लिए शक्तिका खर्चा १० घंटे तक एक दिनमें (२६ दिनके लिए)

६५ अश्ववलकी मोटरमें $\frac{६५ \times ७४६}{१०००}$ किलो वाट खर्च होंगे

∴ एक मास में $\frac{६५ \times ७४६ \times २६ \times १०}{१०००}$ किलोवाट घंटे खर्च होंगे।

यदि एक यूनिटकी कीमत २ आना ६ पाई हो तो एक मास का खर्चा १९७० रु० होगा।

पैकिंगका खर्चा

(२६ दिनके लिये)

१—कागज़—

एक पौंड रुईका बण्डल बनानेके लिये ४५ ग्राम कागज़ खर्च होता है अथवा मान लीजिये ५० ग्राम खर्च होता है। १००० बण्डल प्रतिदिन बाँधनेके लिये कुल = ५०,०००ग्राम कागज़ खर्च होगा।

एक मास में $\frac{५०,००० \times २६}{४५३.६}$ = २८६६ पौंडके लगभग कागज़ खर्च होगा।

प्रति पौंड २ आनाके हिसाबसे एक मासमें कुल कागज़ ३५८ रु० ४ आनेका खर्च होगा।

२—लेबलका खर्चा=५० रु० प्रतिमास

३—सुतलीका खर्चा = ४० रु० प्रतिमास

∴ कुल पैकिङ्गका खर्चा = ४५० रु० प्रतिमास

कोयलेका खर्चा

एक दिनमें ४००० पौंड वाष्प खर्च होती है और यदि एक पौंड कोयलेसे ८ पौंड वाष्प तयार होवे तो एक दिनमें $\frac{४०००}{८}$ = ५०० पौंड कोयला खर्च होगा।

यदि बायलरकी कार्यक्षमता ७०%मान ली जावे तो एक दिनमें $\frac{५०० \times १००}{७०}$ = ७१४ पौंड कोयला खर्च होगा

अतः एक मासमें = $\frac{७१४ \times २६}{२२४०}$ टन = ८.३ टन कोयला खर्च होगा।

एक टन कोयलेका मूल्य = १८ रु०

कोयलेका कुल खर्च = १८ × ८.३ = १४९ रु० ४ आना अथवा १५० रु०

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४२ } प्रयाग, धनुष्यर्क, सं० १९९२ विक्रमी । दिसम्बर, १९३५ ई० { संख्या ३

मंगलाचरण

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः
स्थिरैरंगैः तुष्टुवांसस्तनूभिः
व्यशेमहि देव हितं यदायुः

धर्म और भगवान्‌के विरुद्ध आन्दोलन

[रामदास गौड़]

१—औचित्यकी बात

संवत् १९९१के चैत्रमासमें मैंने कलकत्तेकी सड़कोंपर एक सज्जनको देखा कि एक झंडा लिए हुए फिर रहे हैं। इस झण्डेपर जहाँतक मुझे याद है, लिखा था—

धर्म और ईश्वर ढोंग है।

वह एक पुस्तक भी बेंचते फिरते थे जिसका विषय यही था। उन्होंने कृपाकर इस पोथीकी एक प्रति मुझे भी दी।

हिन्दीके एक मासिक-पत्रमें कुछ दिनों पहले 'धर्म और भगवान् मुर्दाबाद' नामका भी एक लेख देखनेमें आया। फिर कुछ काल पीछे एक दैनिक पत्रमें भी एक लम्बा लेख इसी विषयका छपा जिससे असम्मति प्रकट करते हुए भी उसके सम्पादकने उसपर कुछ अधिक न लिखा!

हमारे देशमें इधर कुछ वर्षोंसे समाजवाद उर्फ साम्यवादका प्रचार हो चला है तबसे अनीश्वरवादने भी इधर अधिक जोर पकड़ा है। मैं 'अधिक' इसलिये कहता हूँ कि अनीश्वरवाद कुछ आजकी चीज नहीं है। कम-से-कम भारतमें तो वह बहुत ही पुरानी है। वेदोंमें, पुराणोंमें इतिहासोंमें, यत्र-तत्र इसकी चर्चा है और दर्शनोंमें तो कम-से-कम छः दर्शन नास्तिक ही मशहूर हैं, और आस्तिक दर्शनोंमें भी कई अनीश्वरवादियोंका खयाल है कि ईश्वरवादका खण्डन है।

संसारके और देशोंमें भी जहाँ-जहाँ ईश्वरवादका उद्गम समझा जाता है वहाँ-वहाँ अनीश्वरवाद भी साथ-साथ चलता रहा है। ईश्वरवादियों और अनीश्वरवादियोंका संघर्ष अत्यन्त प्राचीन है।

संघर्ष तो ईश्वरवादी-ईश्वरवादीमें और अनीश्वरवादी-अनीश्वरवादीमें भी चलता रहा है। जैसे ईश्वरवादियोंके सम्प्रदाय हैं, वैसे ही अनीश्वरवादियोंके भी सम्प्रदाय हैं, यद्यपि 'सम्प्रदाय'के बदनाम शब्दको कोई अपने लिये प्रयुक्त नहीं करना चाहता। बौद्ध और जैन दोनों सम्प्रदायोंमें भारी मतभेद है, यद्यपि दोनों नास्तिक सम्प्रदाय कहलाते हैं, दोनों अनीश्वरवादी समझे जाते हैं। ईश्वरवादी सम्प्रदायवाले तो एक दूसरेको नास्तिक, काफ़िर आदि कहनेमें नहीं चूकते, बल्कि हर ईश्वरवादी सम्प्रदाय केवल अपनेको ईश्वरका अनुयायी और शेष संसारको शैतानका अनुयायी समझता है, और यह भूल जाता है कि आजकलके बहुमतके युगमें वह शैतानको कितना बड़प्पन, कितनी 'फ़ज़ीलत' देता है। ऐसी दशामें मैं यह कदापि आशा नहीं कर सकता कि एक लेख तो क्या, एक पुस्तकालय भी कभी इस सृष्टि-विधायक सहज मतभेदको दूर करनेमें समर्थ हो सकेगा। यदि ईश्वरवादीको अपने मतके प्रचारका अधिकार है, तो अनीश्वरवादीको भी है, और कोई कारण नहीं कि ईश्वरवादी जब बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखकर ईश्वरवादका प्रचार करे, तो अनीश्वरवादी ईश्वरवादियोंके प्रबल बहुमतका सामना करते हुए दो-चार लेख भी न लिखे।

यह तो हुई औचित्यकी बात।

२—धर्मकी बात

अब अनीश्वरवादके लेखोंके गुण और मूल्यपर विचार करना चाहिए।

'धर्म और भगवान मुर्दाबाद'में लिखा है कि जो लोग धर्मके खतरेमें होनेकी दुहाई देते हैं वे हास्यास्पद बात कह रहे हैं, यह बिलकुल ठीक है; परन्तु आगे चलकर जहाँ लिखा है कि 'धर्म तो वस्तुतः वैसी ही वस्तु है जैसा कि यश और मानके इच्छुक किसी कुशल लेखकका कथानक।' वहाँ लेखकने उससे कम हास्यास्पद बात नहीं कही है।

धर्म शब्दकी व्याख्या करनेके अधिकारी क्या इसी तरह करते हैं ? क्या धर्मके बारे में गँवारोंका प्रमाण माना जायगा ? सचाईकी खोज और जाँच करनेवाला क्या इसी तरह मनमानी परिभाषा कर देता है ? 'अग्निका धर्म है जलाना,' 'पिताका धर्म है सन्तानका पालन-पोषण,' 'विद्यार्थीका धर्म है विद्याध्ययन,' 'अहिंसा परम धर्म है,' सचाईसे बढ़कर कोई धर्म नहीं' ये वाक्य जो हम पढ़ेलिखे साधारण बातचीत में प्रयोग करते हैं, क्या झूठे हैं, और क्या 'धर्म' यहाँ 'वास्तवमें वैसी ही वस्तु है, जैसा कि यश और मानके इच्छुक किसी कुशल लेखकका कथानक' ?' कदापि नहीं। 'धर्म और भगवान् मुर्दाबाद' के लेखक ही यह कभी स्वीकार न करेंगे कि उन्होंने धर्म शब्दका प्रयोग उस लेखमें पारिभाषिक अर्थमें किया है। तो फिर उनका तात्पर्य धर्म शब्दसे क्या है ? वह इस बात को कबूल करेंगे कि उन्होंने धर्म शब्दका वही अर्थ लिया है, जिस अर्थमें खतरेकी दुहाई देने वाले लेते हैं। यदि मेरा यह अनुमान ठीक है, तो उन्हें 'धर्म'की जगह 'सम्प्रदाय' शब्दका प्रयोग करना था। उन्होंने 'धर्म' शब्दका अशुद्ध प्रयोग करके अपनी मर्मज्ञता और साहित्य-ज्ञताको खतरेमें डाल दिया। धर्म तो खतरे में पड़नेवाली चीज नहीं है। ओषजनका धर्म है कई पदार्थोंको जलाना। इसीमें ओषजनत्व है। उसका यह धर्म नष्ट हो जाय तो ओषजन ही न रह जाय। 'धारणाद्धर्मम्' यह धर्मको वैज्ञानिक परिभाषा है। नमकका धर्म नमकीनियत, लावण्यता है। यही न रही तो नमक कहाँ रहा ? इसीलिये कहा है कि 'धर्मो रक्षति रक्षितः।' धर्मकी रक्षा करो, धर्म रक्षा करेगा। 'यतो धर्मस्ततो जयः।' जहाँ धर्म है वहाँ जय है। धर्म और धर्मीकी एकता ही इसका कारण है।

धर्मसे चिढ़कर वृथा ही बे-समझे-बूझे निन्दा करने लग जाना बुद्धिमानी नहीं है। धर्मकी झूठी दुहाई देना भी मूर्खता है।

अनेकों प्रकारकी प्रचलित रूढ़ियोंको धर्म नहीं कहना चाहिये, सम्प्रदाय कहना चाहिए। इनके मूलमें समाज धर्म और व्यक्तिधर्म भले ही हों, परन्तु इनका वर्त्तमान पल्लवित रूप साम्प्रदायिक है, इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं है ! धर्म व्यापक होता है, सम्प्रदाय अत्यन्त संकुचित। दोनोंमें भेद समझकर इन शब्दोंका प्रयोग करना चाहिए।

व्यक्तिधर्म और समाजधर्म दोनों ही व्यक्ति और समाजके कल्याणके लिये हैं। मानव, व्यक्ति और समाज विकसित और स्वच्छन्द है अतः धर्मका पालन या अपालन उसकी इच्छापर निर्भर है।

सृष्टिके विकासमें धर्मका विकास भी शामिल है। जड़ पदार्थका स्वाभाविक धर्म दृढ़तापूर्वक उसमें निहित है। धर्मसे ही धर्मीकी पहचान होती है। सोनेके धर्मसे ही हम उसे सोना समझते हैं। सोनेमें चाँदीका और चाँदीमें सोनेका जो-जो धर्म हम पाते हैं उन्हें हम सामान्य धर्म कहते हैं। जिस धर्मसे या धर्मोंसे सोना चाँदीसे एवं अन्य सभी पदार्थोंसे एकदम भिन्न व्यक्त होता है, उन्हें हम विशेष धर्म कहते हैं। उद्भिज्जमें सामान्य और विशेष दोनों प्रकारके धर्मोंका जड़की अपेक्षा अधिक विकास है। जिन परिस्थितियोंमें पड़कर पौधा अपने धर्मोंकी रक्षा नहीं कर सकता उनसे उसका विनाश हो जाता है। प्रकृतिने पौधेकी रक्षा अर्थात् उसके धर्मोंकी रक्षाके लिये सुसाध्य उपाय कर रक्खे हैं। वनस्पतिसंसार इन उपायोंसे लाभ उठाता है। जन्तु और पशुसंसारके सामान्य और विशेष धर्म भी उनके द्वारा पालनीय हैं। गधेका घास चरना, सिंहका मांस खाना इनके व्यक्ति और जातिरक्षक धर्म हैं। न एक दूसरेके धर्मको ग्रहण कर सकते हैं, न अपने-अपने धर्मका त्याग कर सकते हैं। अपने-अपने धर्मकी रक्षा न करें, तो मर जायँ। इसी तरह मनुष्यके भी धर्म हैं। मनुष्य राष्ट्रोंमें, समाजोंमें, वर्णोंमें विभक्त है। देश, काल, कर्म और स्वभावके अनुसार सबके धर्म भी अलग-अलग हो गये हैं। आहार, निद्रा, भय, मैथुनादि स्वाभाविक धर्म हैं, जो व्यापक हैं। आचार-नीतिके धर्म उन्नतिकी दृष्टिसे ऋषियों आदिके चलाये हुए हैं। ये सहज नहीं हैं। इनकी ओर प्रवृत्ति वा अप्रवृत्ति संस्कारपर निर्भर है, परन्तु इनसे विकासमार्ग प्रशस्त होता है। 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः' जिससे अभ्युदय-निःश्रेयसकी सिद्धि हो वही धर्म है। यह वैज्ञानिक परिभाषा है, इसीकी कसौटीपर कसकर सदाचारको धर्म माना जा सकता है। यदि सदाचारसे हमारा अभ्युदय हो, सबसे बड़ी भलाई हो, तो वह धर्म तो जरूर पालने योग्य है। इसकी रक्षा करनेसे हमारी रक्षा होगी। सदाचार धर्मका मूल है।

'आचारप्रभवो धर्मः'। इसीलिये धर्मकी रक्षा करो, सदाचारकी रक्षा करो, तो वह तुम्हारी रक्षा करेगा। 'धर्मो रक्षति रक्षितः'। सदाचार दृढ़तापूर्वक धारण करनेकी चीज है; इसीलिये धर्म है। इससे शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सब तरहका विकास सम्भव हो जाता है। सदाचार खतरेमें पड़ा, तो मानवविकास भी खतरेमें पड़ा; इसीलिये सदाचारकी रक्षा होनी ही चाहिये। कोई अनीश्वरवादी भी इससे असहमत हो नहीं सकता।

हम किस प्रकारसे भोजन करें, साफ फर्शपर या लिपे-पुते चौकेमें; कैसा भोजन करें, किस तरहका कपड़ा पहनें या न पहनें कौन त्योहार मनावें या न मनावें, मन्दिरमें, मस्जिदमें, गिरजेमें जायँ या न जायँ, सन्ध्या-पूजा करें या न करें और करें तो किस रीतिकी करें, कैसा तिलक लगावें या न लगावें, यज्ञोपवीत पहनें या न पहनें, शिखा रक्खें या न रक्खें, दाढ़ी-मूँछ रक्खें या मुड़ा डालें, इत्यादि सदाचार-मूलक प्रश्न होते हुए भी उस विस्तारके प्रश्न हैं जिसे हम 'सम्प्रदाय' कहते हैं। आपसमें मतभेद और कलहका कारण यही 'सम्प्रदाय' है।

३—सम्प्रदायकी बात

'अब यदि यह कहा जाय कि अच्छा, धर्मके बदले सम्प्रदाय ही सही, जब कलहका कारण यही है, तो इसे दूर करना चाहिए।' इस प्रश्नपर भी आइए विचार करें।

मनुष्यने जबसे सृष्टिमें होश सँभाला है तबसे आज तक विस्तारके प्रश्नोंमें सदा कलह होता रहा है। इस झगड़ेके कारण अधिकांश शब्दोंके कुप्रयोग या दुष्पयोग, कुछ भावों और परिस्थितियोंके प्रभेद और साथ ही पारस्परिक राग-द्वेष तथा काम-क्रोध-लोभादिकी कुप्रेरणा हैं। संसारमें जितने धर्म, मत, पन्थ, मजहब, सम्प्रदाय बने वह बड़ी व्यापक दृष्टिसे बने और सब मनुष्योंके लिये बने; परन्तु इनके अनुयायियोंने उन्हें विस्तारके भेद-भावोंको बढ़ा-बढ़ाकर संकुचित कर डाला। इस संसारका मूल 'एकोऽहं बहु स्याम्' वाला महावाक्य है। अनेकता तो दुनियाकी घुट्टीमें पड़ी हुई है। इससे लाख जतन करो कोई बच नहीं सकता। चले थे विनायक बनाने, बना वानर। संसारव्यापी मजहबकी रचना करने चले बन गया 'सम्प्रदाय'। वह तो बने बिना रहता नहीं। 'आर्यसमाज', 'देवसमाज', 'ब्रह्मसमाज' 'थियोसोफिकल सोसायटी' आदि कलके बने सम्प्रदाय और 'नानकपन्थ' 'कबीरपन्थ' आदि पहलेके बने सम्प्रदाय इसके गवाह हैं। मूलतः ये सभी बड़े व्यापक हैं; पर विस्तार और अनुयायित्वने इन्हें जबरदस्ती सिकोड़कर सम्प्रदाय बना डाला, जो तत्वदर्शी विद्वान् हैं वह साम्प्रदायित्वसे सदा ऊपर उठे रहेंगे; परन्तु ऐसे कितने हैं? समाजमें तो साधारण मनुष्योंका ही बाहुल्य है। अतः सम्प्रदायकी ये रक्षा करते रहेंगे। थोड़े-से अनीश्वरवादियोंके तोड़े ये नहीं टूटनेके, प्रत्युत पुराने बार्हस्पत्यों या चार्वाकोंकी तरह आजकलके अनीश्वरवादियोंका भी अधिक-से-अधिक एक सम्प्रदाय बन जायगा।

यह भी सम्भव है, कि अनीश्वरवादियोंका सम्प्रदाय बढ़े और सभी समाजवादी अनीश्वरवादी भी हो जायँ। रूसमें समाजवाद और अनीश्वरवादका गठजोड़ा हो गया ही है।* मान लीजिये, कि यहाँ भी वैसा ही हो जाय और भारतकी बहुसंख्यक जनता नास्तिक हो जाय, तो भी सभी भारतीय किसी समय भी व्यापकरूपसे नास्तिक नहीं हो सकते। अतः नास्तिकवाद भी अधिक-से-अधिक एक सम्प्रदाय ही होकर रहेगा। वह ईश्वरवादका पूर्णतया उच्छेद करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। ठीक उसी तरह जैसे सभी प्रयत्न करके भी सारा संसार मुसलमान या ईसाई न हो सका। इसलिये सब सम्प्रदायोंके विनाशके लिये झंडा उठानेवाला भी एक विनाशक सम्प्रदायसे ज्यादा कुछ भी नहीं बना सकता।

इसलिये 'मतभेद', 'सम्प्रदायभेद', 'धर्मभेद', 'अनैक्य' सभी 'संसार' नामक पदार्थके धर्म हैं, और स्वाभाविक

* यूरोपमें राजनीति और शासनमें पादरियोंका बहुत बड़ा प्रभाव बहुत कालसे चला आया है; उनकी ओरसे भयानक रोमहर्षण अत्याचार भी हुए हैं। उसीकी प्रतिक्रियामें पादरी और ईसाईधर्मके विरुद्ध वहाँ असंख्य लोग हो गये। इसमें यहूदियोंका भी प्रभाव था। समाजवादने अनीश्वरवादको इसी पालसीसे अपनाया। भारतमें तो किसी ब्राह्मण, मौलवी आदिका राजनीतिमें कोई दखल नहीं है। अतः समाजवादी भाइयोंको यूरोपकी नकल करनेकी जरूरत नहीं है।

धर्म हैं। किसी एक देश या कालमें कुछ थोड़ी-सी एकता देख पड़े तो उसे इस अनेकताका नाश या अभाव समझना भूल है। वह केवल अनेकताओंका पारस्परिक सामञ्जस्य है जिसे हम अनेकताका नाश समझ रहे हैं। आपसकी थोड़ी-सी समझदारी, कि तुम हमारी सहो हम तुम्हारी सहें, हमलोग परस्पर मेल-जोलसे रहें, इसी सामञ्जस्यका लाना ही स्वाभाविक और ठीक मार्ग है। किसी या सभी सम्प्रदायोंका मिटा देना न तो ठीक मार्ग ही है और न कभी सम्भव ही है।

४—क्या ईश्वर है? है तो क्या है?

अनीश्वरवादीका तर्क यह है कि ईश्वरको अपनी ज्ञानेन्द्रियोंसे किसीने प्रत्यक्ष नहीं किया है, इसलिये ईश्वर नहीं है। इस दलीलमें यह बात मान ली गयी है कि है वही वस्तु जिसे किसीने ज्ञानेन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष कर लिया है। इससे तो यह मतलब निकला कि जो अनीश्वरवादी यह तर्क करता है वह ज्ञानेन्द्रियोंकी ही गवाही मानता है, वह निर्गुण निराकार अगोचर सत्ता नहीं मानता। परन्तु वह आदर्श पुरुषोंको अवश्य मानेगा। जैसे अर्हत, तीर्थङ्कर, राम, कृष्णादि, ऋषि-महर्षि आदि जो गोचर हो चुके हैं, उन्हें मानता है। उन्हें बहुत लोग मानते हैं जो अपनेको अनीश्वरवादी नहीं कहते। वह इन्हें अच्छे और आदर्श मनुष्य करके ही माने तो भी मानता तो है, ईश्वर शब्दका प्रयोग न करे, न सही, क्योंकि ईश्वर शब्दका अर्थ तो वह 'अगोचर' समझता है। अद्वैत वेदान्ती जो 'अयमात्मा ब्रह्म' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' आदि महावाक्य कहता है, वह तो आत्माको, या इस जगतको ही ब्रह्म मानता है। वह समष्टिको ईश्वर मानता है और समष्टि गोचर है तो अनीश्वरवादीका उसका कोई झगड़ा नहीं। अनीश्वरवादीको अगोचरसे ही इनकार ठहरा।

'ईश्वर' शब्दका प्रयोग सभी ईश्वरवादी एक ही अर्थमें नहीं करते। अनीश्वरवादी केवल गोचरताको सत्ताका अनिवार्य गुण मानकर कहता है कि ईश्वर नहीं है, तो हमारा उसका कोई झगड़ा नहीं। वैज्ञानिक इस बातको जानता है कि सत्ता गोचर और अगोचर दोनों ही है परन्तु अवैज्ञानिक केवल गोचर सत्ताको ही जानता है, तो दोनों पक्षोंमें झगड़ा किस बातका है? एक जानता है, दूसरा नहीं जानता, इतना ही तो अन्तर है। अवैज्ञानिकको जाननेकी योग्यता हो जायगी तो जान जायगा।

वह कहता है कि ईश्वरको किसीने देखा नहीं है इसलिये वह नहीं है। परमाणुको किसीने देखा नहीं है इसलिये परमाणु नहीं है। आकाशको किसीने देखा नहीं है, अतः आकाश नहीं है। आत्माको किसीने देखा नहीं है, अतः आत्मा नहीं है। चार्वाकके ये ही तो तर्क थे। क्या इन तर्कोंका सैकड़ों बार खण्डन नहीं हो चुका है? हाँ, सभी पाठक इन विषयोंके ज्ञाता नहीं हैं, यह बात दूसरी है। ईश्वरवादी किसीसे यह नहीं कहता कि तुम्हें विश्वास न भी हो तब भी ईश्वरकी सत्ताको मानो।

वास्तविक सत्ता जितनी है उसका अत्यन्त अल्प अंश हमारे गोचर होता है। आँखें कुछ परिमित तरंगोंको ही तो देख सकती हैं। कान कुछ परिमित तरंगोंको ही तो सुन सकते हैं, जिह्वा कुछ परिमित रसोंको ही तो चख सकती है। नाक कुछ थोड़ी-सी ही गन्ध तो सूँघ सकती है। त्वचामें स्पर्श तो अत्यन्त परिमित है। भार, आकर्षण एवं अनन्त प्रकारकी विद्युत् और अन्य तरंगोंमेंसे अत्यन्त थोड़ेका ही अनुभव तो मन कर सकता है। सत्ताकी अनन्त राशि तो अछूती रह जाती है, हमारी इन्द्रियाँ तो उस अनन्त राशिके ऊपरी सतहको भी छू नहीं पातीं। केवल उसके होनेका अत्यन्त सूक्ष्म प्रमाण पाती हैं। जो कुछ गोचर होता है अनन्त अगोचरका पता देता है। विज्ञानका यही निष्कर्ष है। इसीलिए जो कुछ अगोचर है, वह है ही नहीं ऐसा कहना नितान्त अवैज्ञानिक कथन है।

अतः अगोचर सत्ता अनन्त है। यदि कोई इसी अनन्त सत्ताको ईश्वर मानता है, तो कौन-सी असंगत बात करता है? अन्धोंने जैसे हाथीके अलग-अलग अंगोंको सम्पूर्ण हाथी समझा वैसे ही केवल अगोचर सत्ताको ईश्वर माननेवाला केवल एक अंगको ईश्वर मानता है।

ईश्वर तो वस्तुतः गोचर और अगोचर सम्पूर्ण सत्ता है और इस संपूर्ण सत्तामें अनन्त कोटि विश्व हैं। तब भी यह सम्पूर्ण सत्ता ईश्वरका अंशमात्र है। वह तो इनसे कहीं बड़ा है। निदान वही सब है। उसके सिवा कुछ और है ही नहीं।

जो कुछ गोचर है वह भी ईश्वर है और हम भी उसी गोचर जगत्‌में ईश्वरमें अत्यन्त सूक्ष्म जीव हैं। जैसे, सिरकी जूँ बालोंके जंगलके सिवा नरब्रह्माण्डका हाल नहीं जानती और केवल सिरकोही समस्त गोचर जगत् मानती है, उसी तरह हम भी ईश्वरके एक अंगमात्रको सम्पूर्ण जगत् मान लेते हैं। इस प्रकार जो कुछ हमारे गोचर है वह सब वस्तुतः ईश्वरका ही अंश है जिसे हम देख रहे हैं। इस प्रकार ईश्वरको सभी देखते हैं, मगर जानते नहीं हैं। यह सबका व्यामोह है, अज्ञान है। अनीश्वरवादीका यह कहना कि ईश्वरको किसीने नहीं देखा है, वैसा ही है जैसे हमारे शरीरका एक जीवाणु दूसरेसे कहता है कि अमुक नामधारी शरीरको तो किसीने नहीं देखा है, यद्यपि वह जीवाणु हमारे शरीरके एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंशको देख रहा है और उसीमें रहता और चलता-फिरता है।

अनीश्वरवादी कहेगा कि यह तो 'तुमने जड़ प्रकृतिको ही ईश्वर ठहराया है। उसे तो हम भी मानते हैं। वह चेतन नहीं है। उसे भजनेकी जरूरत नहीं है, परन्तु तुम तो चेतन ईश्वरको मानते हो, वह इस जड़में कहाँ है? उसे तो तुम प्रकृतिसे बिल्कुल भिन्न मानते हो!'

सम्पूर्ण गोचर और अगोचर जगत् और उससे अधिक भी सम्पूर्ण सत्ताको, सर्वको, जब ईश्वर माना तब तो जड़ और चेतन, प्रकृति और पुरुष सब कुछ ईश्वर ही तो हुआ? अलग क्या रहा? जैसे मनुष्य देवदत्त केवल शरीर ही नहीं है, इन्द्रियाँ, मन और जीवात्मा सभी कुछ वही है, उसी तरह ईश्वर भी जड़-चेतन सब कुछ है। जैसे हम और हमारा स्वभाव अलग नहीं है इसी तरह ईश्वर और उसकी प्रकृति अलग नहीं है। रही भजनेकी बात सो अपनी श्रद्धापर निर्भर है। बापकी सेवा करो या न करो वह पालन तो करेगा ही। जो बापकी सेवा करता है उसे बाप अधिक प्यार करता है, यह तो स्पष्ट ही है। जो बापको नहीं मानता, नालायक निकल जाता है उसे भी क्या बाप निकाल देता है? हमारे शरीरके असंख्य जीवाणु अपने-अपने कर्त्तव्य पालन करते रहें तो शरीराभिमानी आत्माको सन्तोष रहेगा। यदि जीवाणु आत्माकी वन्दनामात्र करें और अपने कर्त्तव्य न पालन करें तो आत्माको क्या सन्तोष होगा? यदि कर्त्तव्य भी पालन करें और आत्माको भी मानें और आत्माको यह ज्ञान हो जाय तो सन्तोषकी मात्रा बढ़ ही जायगी'। इसी प्रकारका हमारा और ईश्वरका सम्बन्ध है। यदि ईश्वर है, तो हम अपना कर्त्तव्यपालन मुख्य जानें और उसे भजें तभी तो उसे परम सन्तोष होगा और जैसे जीवाणुओंके स्व-स्व-कर्त्तव्यपालनसे शरीर जगतका कल्याण होता है, उसी तरह हमारे कर्त्तव्यपालनसे भी जगत्‌का कल्याण होता है, और जैसे शरीरके कल्याणसे शरीराभिमानी आत्माको प्रसन्नता होती है वैसे ही ईश्वरको भी जगतके कल्याणसे प्रसन्नता होती है। गीतामें—

'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः'
'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य'
'स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्'
'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः'
'कर्मण्येवाधिकारस्ते'
'न तु कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्'

इत्यादि वाक्य, बल्कि सारी गीता इसी बातका प्रतिपादन करती है। ईश्वर, माननेवालोंका मुहताज नहीं है, वह यही चाहता है कि सब अपने कर्त्तव्यका पालन करें।

५—ईश्वर और धर्म जिम्मेदार है या सम्प्रदायवाद

ईश्वरवादीसमाजके अत्याचारोंसे पीड़ित लोग घबराकर ईश्वर और धर्मको कोसने लगते हैं, परन्तु ये अत्याचार तो ईश्वर या धर्मके कारण नहीं हैं। ये तो सम्प्रदायवादके ही दुष्परिणाम हैं। यदि गिरजा, मन्दिर और मसजिदमें व्यभिचार होते हैं तो वह भी सम्प्रदायके दुराचारियोंकी ही करतूतें हैं। कोई सम्प्रदाय, मत या धर्म दुराचार या व्यभिचारका पोषण नहीं करता। अब रही अपने-अपने मतकी बात। सो मैं अमुकामुक विचार रखता हूँ इसीलिए दण्डके योग्य हूँ यह भारी अत्याचार और हिंसा है; परन्तु किसी एक विचारके अनुयायी जब जोशमें आते हैं तो बातों-बातोंमें ही अपनेसे विपरीत या भिन्न विचारवालेसे लड़ पड़ते हैं और सिर-फुटौवलकी नौबत आती है। इसके दोषी नासमझ लोग हैं, चाहे वह ईश्वरवादी हों और चाहे अनीश्वरवादी हों। इन झगड़ों और अत्याचारोंके लिए न तो ईश्वर

जिम्मेदार है न धर्म। न ईश्वर लड़ाई और हिंसाका प्रवर्त्तक है और न धर्म। ईश्वरके होने या न होनेपर जिद करनेवाले लड़ जाते हैं, परन्तु इसमें लड़ने-झगड़नेकी बात नहीं है। सत्य किसीकी जीत या हारपर नहीं जीता। किसीकी हिमायत भी नहीं चाहता। उसका अपना बल अपरिमित है, वह कभी खतरेमें नहीं हो सकता। खतरेमें वही होता है जो सत्यसे दूर हो जाता है, उसका विरोधी बन जाता है। सत्यके नामपर जो लड़ते हैं या किसीको सताते हैं वह उसका दुरुपयोग करते हैं, सत्यसे ये वास्तवमें दूर हैं, और वही हानि उठते हैं। सत्य और ईश्वर एक ही है, और तथोक्त अनीश्वरवादी भी सत्यसे इनकार नहीं कर सकते। सत्यको माननेवाला अनीश्वरवादी हो नहीं सकता।

बलिदान आदिके सम्बन्धमें जो शिकायतें की जाती हैं वह भी ईश्वरवाद या धर्मका कोई अंग नहीं है। वह भी सम्प्रदायवादके ही कारण है। बलिदान करना यदि अनिवार्य या व्यापक धर्म होता तो उसके बिना मनुष्य-जाति रह नहीं सकती थी। बलिदानके बहाने मांसभोजी अपनी वासनाकी तृप्ति करता है। मांस-भक्षणमें जीवोंकी प्रवृत्ति अवश्य है। इतना तो जन्तु-धर्म है और व्यापक है। मनुष्य पशुत्वसे विकास करके ऊँचा हो रहा है, अतः उसके लिए 'निवृत्तिस्तु महाफला' निवृत्ति ही महाफलदायक है। निवृत्ति व्यापक नहीं हो सकती। वह प्रयत्नसे ही प्राप्य है। जैसे शिक्षा मनुष्यके विकासमें सहायक है, अतः धर्म है; परन्तु वह प्रयत्नसे ही प्राप्य है। जैसे मांसभोजीको समझा-बुझाकर उससे निवृत्त करना ही निरामिष बनानेका उपाय है, जीवोंका कटना या मांसका बिकना रोक देना यथार्थ उपाय नहीं है, वैसे ही बलिदान करनेवालोंका मांसभोजित्व दूर करना ही बलिदान रोकनेका उपाय है। सच्चे ईश्वरवादी बलिदान और यज्ञका बहुत ऊँचा अर्थ लगाते हैं—इतना ऊँचा और अच्छा कि अनीश्वरवादी भी माने बिना नहीं रह सकता।

यह आक्षेप भी कि प्रत्येक धर्ममें भोले-भाले लोगोंको बहकाने, डराने और अपना मतलब गाँठनेको तरह-तरहकी रोचक और भयानक बातें बनायी गयी हैं, उसी हदतक सही हैं जहाँतक धर्म सम्प्रदायके अर्थमें आया है। कर्म और कर्मका फल तो वैज्ञानिक बात है। जहाँ दोनोंका सम्बन्ध यथार्थरूपसे नहीं समझा गया है वहीं भूलें होती हैं और धूर्त्तोंकी बन आती है। परन्तु, जैसे डाकू पुलिसका रूप धारण करके लूटते हैं, पर इससे पुलिसकी कोई हानि नहीं होती और कोई पुलिसमात्रको डाकू नहीं कहता, उसी तरह धर्मका रूप बनाकर धूर्त्त लोग भोले-भाले लोगोंको ठगते हैं; परन्तु इससे धर्मकी कोई हानि नहीं है और कोई नासमझ ही होगा, जो धूर्त्तद्वारा दुष्प्रयुक्त उपायोंको धर्म समझेगा।

सम्प्रदायवाद ही धर्मनामका दुरुपयोग करता है और जितने आक्षेप अनीश्वरवादियोंकी ओरसे ईश्वर और धर्मपर होते हैं, वह वस्तुतः सम्प्रदायवादपर होने चाहिये। इस प्रकार तथोक्त अनीश्वरवादी भी 'धर्म' और 'ईश्वर'के नामोंका केवल दुरुपयोग करते हैं। इनके लक्ष्यच्युत आक्षेपोंसे 'ईश्वर' और 'धर्म' का कुछ भी नहीं बिगड़ता। हाँ, जो भ्रम फैलता है उसका निराकरण अवश्य होना चाहिये।

६—आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः

(अनु० १४९ । १३७)

महाभारतका यह श्लोकार्द्ध 'ईश्वर' और 'धर्म'की बड़ी अच्छी परिभाषा करता है। अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धिके लिये जो आचरण मनुष्य धारण कर लेता है और उससे उसका अभ्युदय और सबसे अधिक भलाई हो जाती है, वही आचरण 'धर्म' है। वह प्रयोग करता है और ठीक फल पाता है, अभ्युदय और निःश्रेयसकी प्राप्ति होती है। जिस आचरणको इस कसौटीपर कस लिया जाता है, वही आचरण धर्म है। मनुस्मृतिकी बतायी धर्मकी पहचानोंमें आचार्योंका आचरण एक प्रमुख पहचान है। इस तरह 'धर्म' आचारसे ही उत्पन्न होता है, 'आचारप्रभवो धर्मः।' प्रभुका काम है, नियमन और अधिकार और जो प्रभु स्वयं दृढ़ हो, जो नियमन करे उसपरसे स्वयं च्युत न हो, डिगे नहीं, वैसा प्रभु 'अच्युत' है। 'अच्युत' ही आचारकी दृढ़ताका आदर्श है। आदर्श सत्य है, ज्ञान है, अनन्त है, ब्रह्म है, वही 'अच्युत' है। धर्मका नियमन करनेवाला वही न 'च्युत' होनेवाला 'अच्युत' भगवान् है।

पींजन यन्त्रका आविष्कार

[पं० काशीनाथ त्रिवेदी, चर्खा-संघ प्रकाशन-विभाग, अहमदाबाद]

पिछले ९-१० वर्षों में खादीने ठीक ठीक प्रगति की है। पर यह सारी प्रगति अधिकतर तो पुराने साधनोंकी सहायतासे ही हुई है। लेकिन अब ज्यों-ज्यों खादीका विस्तार हो रहा है और कार्यक्षेत्र बढ़ रहा है, त्यों-त्यों नये, सुधरे हुए वैज्ञानिक साधनोंकी आवश्यकता मालूम हो रही है। पुरानी चर्खी, पुरानी पींजन और पुराने चर्खेको अधिक 'अप टु डेट', अधिक अच्छा और अधिक कार्य-क्षम बनाना अनिवार्यसा हो रहा है। इस प्रकारके उपयोगी और अधिक अच्छा और ज्यादा काम करनेवाले चर्खेके लिए तो चर्खा-संघने एक लाखके इनामकी घोषणा कर रखी है, और संघ ऐसे एक चर्खेकी परीक्षा भी कर रहा है। चर्खीके सुधारनेके भी प्रयत्न हुए हैं और हो रहे हैं। आशय यह है कि सुधरी हुई चर्खीसे अच्छा और ज्यादा कपास ओटा जा सके। पींजनें भी कई तरहकी बनी हैं। धुनियोंकी भारी भरकम पींजनोंसे कताईके लिए सुन्दर पूनियोंका उम्दा पोत तैयार करना कठिन होता है। और हर कोई उन पींजनोंका उपयोग भी नहीं कर सकता। गुजरातकी 'मध्यम' और 'युद्ध' पींजनें थोड़े दिनोंमें काफी लोकप्रिय हो गयी हैं। लेकिन खादीकी बढ़ती हुई माँग और आवश्यकताके लिये भी पर्याप्त नहीं है। इनसे भी ज्यादा अच्छा और जल्दी काम करनेवाली पींजनें तैयार हो सकें तो खादी आन्दोलनको वेग मिले, और गरीबों और बेकारोंको धुनाईका एक ऐसा सहायक धन्धा मिल जाय कि जिससे वे घर-बैठे सम्मानपूर्वक अपना गुजर-बसर कर सकें।

खादी-प्रेमी पाठकोंको यह तो मालूम होगा ही कि पिछले ५-६ वर्षोंसे मैसूर राज्यमें खादीका सुन्दर काम हो रहा है। बदनवाल मैसूर राज्यका पहला खादी-उत्पत्ति-केन्द्र है। राज्यकी चाम राजेन्द्र टेकनिकल इन्स्टीट्यूटमें नये ढंगके एक पींजन यंत्रका आविष्कार किया गया है। मैसूर राज्यकी ओरसे इस यंत्रका एक विवरण हमें प्राप्त हुआ है। नीचे इस आशासे उसका सारांश दिया जाता है कि उससे हमारे पाठकों और खादी-प्रेमियोंकी ज्ञानवृद्धि होगी और साथही उनका मनोरंजन भी हो सकेगा।

सन् १९२८ में मैसूर राज्यने अपने यहाँ खादीके प्रयोग शुरू किये और आरम्भिक कार्यके लिये चर्खा-संघसे खादीके एक विशेषज्ञको माँग लिया। एक ही वर्षमें राज्यके बदनवाल केन्द्रमें खादीकी उत्पत्तिका कार्य चमक उठा और केन्द्र स्वावलम्बी भी हो गया। मैसूर सरकारने देखा कि यह तो देहातकी किसान जनताकी बेकारीको मिटाने का एक सुन्दर, सुलभ और अमोघ साधन है—राज्यको इस व्यवसायमें बड़ी-बड़ी सम्भावनाएँ दिखाई दीं और उसने इस कार्य का विस्तार करनेका निश्चय कर लिया। कार्यके विस्तारके साथ ही राज्यको कुछ व्यावहारिक कठिनाइयोंका भी सामना करना पड़ा। खादीके लिए सूतकी सबसे पहली आवश्यकता है। हाथका कता सुन्दर, मजबूत एकसाँ और १२ से १६ नं० का सूत प्राप्त करना कोई सहज बात नहीं है। इतनी होशियार कत्तिनें हर जगह नहीं मिलतीं। और अगर कत्तिनें मिल भी जायँ तो रुई, पिंजाई, पूनी आदिकी समस्याएँ सहजमें हल नहीं होतीं। देशभरमें देहातकी जनतामें अज्ञान के कारण कई तरहके मिथ्या विश्वास रूढ़िगत हो चुके हैं, एकाएक उन्हें नष्ट करना है। कुछ कत्तिनें अगर कातना जानती हैं तो पींजनेंसे इनकार करती हैं, कुछको पींजनेमें

धर्मका प्रभु वही ईश्वर है। ऐसे 'धर्म'को ऐसे 'ईश्वर'को 'मुर्दाबाद' कहनेवाला तो अपना ही गला काटता है, आत्म-हत्या करता है। वह तो विकासकी डाल पर बैठकर उसीकी जड़को काटता है। सौभाग्यसे हमारे योग्य लेखक इन नामोंका दुरुपयोगमात्र करते हैं। उनका वास्तविक लक्ष्य 'सम्प्रदायवाद' है जिसके हम भी विरोधी हैं।

धार्मिक आपत्ति होती है, तो कुछको रूढ़ि टूटनेका भय! अनुभवसे यह सिद्ध हुआ है कि रुईको भलीभाँति धुनकने और उससे सुन्दर पूनियाँ बनानेके लिए उसे ताँतवाली पींजनसे धुनकना चाहिये। और ताँत अपवित्र वस्तु है! ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय आदि उच्च जातिकी बहनें तो ताँतका नाम लेते ही सिहर उठती हैं। इसी कारण कई प्रान्तोंमें आज भी धुनाईके लिये बाँसकी धनुही बरती जाती है।

मैसूर राज्यके खादी-विभागके अधिकारियोंने इस प्रश्नको हल करनेकी ठानी। उन्होंने चर्खा-संघसे सन् १९२९के तामिलनाड्के भेजे हुए खादी-सेवक और खादी-कला-विशेषज्ञ श्री के० तिरुनारायणको अपने लिए माँग लिया और उनकी सहायतासे राज्यके यन्त्र-विभाग-द्वारा एक ऐसी इंजन तैयार करवाई जो साधारण प्रचलित इंजनोंसे अधिक शास्त्रीय और अच्छा और अधिक काम कर सकती। इस इंजन यन्त्रके आविष्कार में डेढ़ वर्ष लग गया। सन् १९३०में इस नमूनेके पाँच इंजन यन्त्र आजमाइशके लिए तैयार किये गये और गुण्ढलुपेट और फब्बाहल्ली नामक कताई केन्द्रोंमें उनसे काम लिया जाने लगा। सन् १९३४के जून महीनेतक इन केन्द्रोंमें ये इंजन यन्त्र काम करते रहे और इस बीच इनमें अनुभवके अनुसार समय-समयपर आवश्यक परिवर्तन और सुधार होते रहे। जून १९३३में दो नये इंजन यन्त्र कब्बाहल्ली केन्द्रोंमें और बढ़ा दिये गये। ये सभी यन्त्र मसूर राज्यकी 'चाम राजेन्द्र टेक्निकल इन्स्टीट्यूट' में बनकर तैयार हुए थे, और प्रत्येक इंजन यन्त्र १८० रुपयेमें बना था। शुरू में यह यन्त्र बहुत भारी था और बड़ी मेहनतसे चलता था—लेकिन अब आवश्यक सुधार और परिवर्तनके बाद यह बहुत हलका हो गया है। और सहूलियतके साथ चलाया जा सकता है। सन् १९३२-३३में इस इंजनपर एक आदमी महीनेमें १०२ पौंड रूई धुन सकता था और इस प्रकार कम-से-कम सात रुपया माहवारकी कमाई कर लेता था। सन् १९३३-३४में इसी यन्त्रपर महीनेमें ११२ पौंड रूई धुनकर वह साढ़े सात रुपया कमा लेता था। यदि ये इंजनें सालभर बराबर पूरे समय चलें, तो फी आदमीके काम और आमदनीकी मात्रा सहज ही कुछ और बढ़ जाय। चूँकि ये मशीनें समय-समय पर प्रदर्शिनी आदिमें भी भेजी गयीं; इसलिए केन्द्रमें ये सारा समय काम नहीं कर सकीं। और ऊपरके ये आँकड़े तो साधारण योग्यता रखनेवाले धुनियोंके काम और आमदनीके हैं। विशेष योग्यतावाले मँजे हुए धुनिये तो इसी यन्त्रपर दोसे ढाईगुना ज्यादा काम करके उतना ही अधिक कमा भी सकते हैं। उदाहरणके लिए अक्तूबर सन् १९३४-में चार भिन्न इंजनोंपर चार धुनियोंके काम और आमदनीके आँकड़े नीचे दिये जाते हैं। इन धुनियोंने महीनेमें २७ दिन काम किया था। ये आँकड़े अपने अर्थके स्पष्ट सूचक हैं। और इनकी व्याख्या करना व्यर्थ है।

इंजन	पौण्ड		रु०	आ०	पा०
१	२२४	१०	२०	५	३
२	२३४		२०	३	९
३	२३६		२०	७	३
४	२३४	४	२०	५	१
	९३८	१४	८१	५	४

इनमेंसे फी इञ्जन २॥) के हिसाबसे यन्त्रोंके भाड़के १०) घटानेपर कुल ७१।-)४ रहते हैं। इस प्रकार इस महीनेमें कामके हिसाबसे हर धुनियेको अधिक-से-अधिक १७॥≥)। और कमसे कम १७।≥)॥ मिले। यदि यन्त्रके भाड़ेको छोड़ दिया जाय तो हर धुनिएको २।-२। रु० और मिल जाय। एक धुनियेके लिए यह मासिक आमदनी कुछ कम नहीं है।

ऊपरके हिसाबसे इस यन्त्रपर हर धुनियेने हर रोज ८ पौण्डसे ज्यादा ही धुना है। वैसे दो-एक आदमी इस यन्त्रसे एक घण्टेमें एक पौण्ड रूई धुन सकता है, और अगर कामका दिन ८ घण्टेका माने तो ८ पौण्ड रूई दिनभरमें धुनी जा सकती है। परन्तु लगातार एक ही गतिसे मशीन-पर काम करना सम्भव नहीं है, इसलिये ८ घण्टेमें साधारण रीतिसे ६ पौण्डकी औसत मानी गई है। और इतना परिणाम तो आसानीसे आ जाता है।

इस यन्त्रके कल-पुर्जे अधिक जटिल नहीं। किसी भी शहर और कस्बेके कारखानेमें यह आसानीसे बनाया जा सकता है। और इसकी मरम्मत भी की जा सकती है। ऐसी आशा की जाती है कि बड़े पैमानेपर इसका प्रचार करनेमें विशेष कठिनाई नहीं होगी।

परमाणु-केन्द्रकी बनावट

[श्रीअमरनाथ टंडन, एम० एस-सी०, प्रयाग-विश्वविद्यालय]
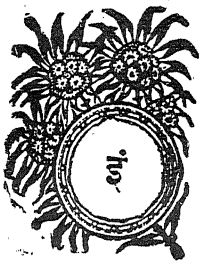
इंगलैण्डके प्रसिद्ध वैज्ञानिक डालटनने प्रथम बार परमाणुवादका प्रचार यूरोपके वैज्ञानिक संसारमें किया जिसके अनुसार पृथ्वीका प्रत्येक तत्व अत्यन्त छोटे-छोटे अविभाजित कणोंसे जो कि परमाणु कहलाते हैं बना है। गत ४० वर्षोंके अन्दर वैज्ञानिक विचारोंमें बहुतसे परिवर्तन हो गये हैं और डालटन-का परमाणु अब एक अविभाजित वस्तु नहीं रहा है। प्रयोगों-द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि उसका परमाणु भी बहुतसे अन्य छोटे-छोटे कणोंका बना हुआ है। सर जे-जे टामसनने अणुके भीतर बिजलीके छोटे-छोटे कणोंकी जो ऋणाणु कहलाते हैं स्थापना की। तत्पश्चात् लार्ड रदड़फोर्ड (Rutherford) ने बोहरके (Bohr) विचारोंसे सहमत हो परमाणुके आन्तरिक भागका एक कल्पित चित्र खींचा (Bohr) बॉरके मतानुसार प्रत्येक परमाणुमें धनात्मक विद्युतका केन्द्र होता है, जिसका नाम परमाणु केन्द्र या न्यूक्लिअस रक्खा गया है। इसके चारों ओर ऋणाणु स्थायी वृत्तोंमें घूमा करते हैं। परमाणुके भीतर बहुतसे स्थायी वृत्त होते हैं और प्रत्येक वृत्तमें ऋणाणुकी संख्या निश्चित रहती है। सबसे बाहरी वृत्तमें रहनेवाले ऋणाणुके ही ऊपर उस अणुका रश्मि-चित्र निर्भर रहता है। बाहरी ऋणाणुकी संख्या परमाणुकी परमाणु-संख्या (Atomic number) के बराबर होती है। ऋणाणुका भार बहुतही कम होता है, अतः प्रत्येक परमाणुका भार परमाणु परमाणुकेन्द्रमें ही स्थित रहता है। प्रत्येक मौलिक पदार्थोंका परमाणुभार भिन्न होता है इससे यह अनुमान किया गया कि परमाणुकेन्द्र भी अवश्य ही छोटे-छोटे कणों-का बना हुआ होगा। पृथ्वीका सबसे हलका मौलिक पदार्थ उज्जन है। प्रयोगों-द्वारा सिद्ध हो चुका है कि उद्जनका परमाणुकेन्द्र केवल एक ही धनाणुका बना है। इस सिद्धान्तके अनुसार परमाणुकेन्द्रके अन्दर धनाणु और ऋणाणु दोनों होना चाहिये। परन्तु कुछ ऐसी विकट समस्याएँ उपस्थित हुई हैं जिनसे परमाणु केन्द्रके अन्दर ऋणाणु-का रहना असंभव-सा प्रतीत होता है। हाल में ही कुछ ऐसे छोटे-छोटे कणोंका ज्ञान हुआ है जिन्होंने इन विकट समस्याओंको हल कर दिया है।

रश्मिम्, पिनाकम् तथा और अन्य विकीरक पदार्थोंसे

जिन केन्द्रोंमें यह यन्त्र चलाया गया है, वहाँकी कताईमें भी काफी तरक्की हुई है। जहाँ पहले कत्तिनें केवल १० नम्बरका सूत कातती थीं, वहाँ जब १५ नम्बरका कातने लगी हैं और जिस उम्दा कपासकी पूनीसे वे अधिक-से-अधिक १६ नम्बरका सूत कात पाती थीं, वहाँ अब उसी कपासकी इस इंजन-यन्त्र द्वारा धुनी रूईकी पूनियोंसे वे ३० नम्बरका सूत कात लेती हैं। सूतकी मजबूती और समानता भी बढ़ी है।

मैसूरवाले इस वर्ष कुछ और नये इंजन-यन्त्र बनाने जा रहे हैं और आशा की जाती है कि अबकी प्रत्येक इंजन १८०)के बजाय १५०)में बन सकेगी, इस प्रकार इस यंत्रको कीमतकी दृष्टिसे भी सुलभ बनानेका वे प्रयत्न तो कर ही रहे हैं। जब यह यन्त्र बड़े पैमानेपर बनने लगेगा, तो इसके मूल्यमें अपनेआप ही और भी कमी हो जायगी फिर भी इसमें तो सन्देह नहीं कि अपनी इस कीमतके कारण ही देहातमें गरीबोंकी झोंपड़ियोंतक इसकी पहुँच निकट भविष्यमें तो सम्भव नहीं दीखती। यदि किसी तरह इसकी कीमत इतनी घटाई जा सके कि इसे साधारण हैसियतका एक ग्रामीण भी खरीद सके तो खादीके संसारमें यह पींजन निश्चय ही एक स्वागतकी वस्तु बन जाय और देशके लाखों बेकार ग्रामीणोंको इससे सम्मानपूर्वक अपनी रोजी कमानेका मौका मिल जाय।

तीन प्रकारके कण सदैव निकलते रहते हैं। प्रयोगोंसे प्रमाणित हुआ कि यह तीन प्रकारके, कण (१) ऋणाणु (एलेक्ट्रन) (२) आलफ़ा-कण और (३) गामा-रश्मि हैं। आलफ़ाकण हीलियम्के केन्द्र सिद्ध हुए हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि परमाणुकेन्द्रके भीतर धनाणु और ऋणाणु मिलकर आलफ़ा-कणके रूपमें रहते हैं। गत तीन-चार वर्षों में इन विचारोंमें भी बहुतसे उथल-पुथल हो गये। यह सब केवेन्डिश प्रयोग-शालाके प्रसिद्ध वैज्ञानिक शाडविकके अनुसन्धानोंका फल है। कई वर्ष पहले बोथे और गैगरने पोलोनियमसे निकले हुए आलफ़ा-कणको बेरीलियम केन्द्रपर टकराया और इससे कुछ ऐसी रश्मियोंका पता लगाया, जो सीसेकी काफ़ी मोटाई पार करनेकी शक्ति रखती हैं। इस प्रयोगको शाडविकने दोहराया। उसने फिर अपने तथा अन्य वैज्ञानिकोंके प्रयोगोंको सिद्ध करनेके लिए ऐसे कणोंकी कल्पना की जिनका भार धनाणुके भारके बराबर है, परन्तु उनमें विद्युतकी मात्रा बिलकुल नहीं होती। इन कणोंके विषयमें और भी बहुत-सी भविष्य-वाणियाँ कीं जिनकी सत्यताका परिचय बादके प्रयोगोंसे मिला। इस कणको न्यूट्रन (उदासीन-कण) कहते हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैजेनबर्गने धनाणु और उदासीन-कणोंके आधारपर परमाणु-केन्द्रका ऐसा चित्र खींचा कि जिसके अनुसार ऋणाणु केन्द्रके अन्दर नहीं रहता। इससे ऋणाणु-सम्बन्धी जो समस्याएँ उपस्थित होती थीं, वे भी बहुत कुछ हल हो गयीं।

इन आविष्कारोंके कुछ काल पीछे स्कोब्लैन मिलिकन ब्लैकेट आदिकी विचारधारामें प्रवाहित आन्डरसनने कस्मिकांशुओंको प्रयोगमें लाकर (विलसन्-क्लाउड-चेम्बर)विलसन-मेघागारकी सहायतासे कुछ ऐसे चित्र खींचे जिनसे एक ऐसे कणका पता चला जो ऋणाणुके सब गुणोंसे मिलता है। अन्तर केवल इतना है कि इन कणोंपर धनात्मक विद्युत्का आवेश है। अतएव इनका नाम पाजिट्रन या धनाणु रक्खा गया। नेडरमायरने प्रयोगद्वारा यह सिद्ध किया है कि कस्मिक-रश्मिके electro-fission विच्छेदसे ॠणाणु और पाजिट्रन या 'धनाणु'की उत्पत्ति होती है। इन आविष्कारोंने पहलेके (प्रोटोन) धनाणुके अविभाजित कण होनेके विषयमें बहुतसे मतभेद पैदा कर दिये। कतिपय वैज्ञानिकोंके मतानुसार धनाणु, Neutron तथा Positron का मिश्र पदार्थ है। इसलिए संसारमें केवल Neutron, Positron तथा ॠणाणु ही मौलिक कण हैं। इसके विरुद्ध कुछ वैज्ञानिकोंका यह मत है कि Neutron धनाणु और ॠणाणुसे मिलकर बना है। अभीतक यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि धनाणु या Neutronमें कौनसा मुख्य कण है। इन्हीं मुख्य कणोंके सिद्धान्तपर अणुकेन्द्रकी रचना निर्भर है। इन दोनों मतोंका अन्तर देखनेके लिए हम अल्फ़ाकणके अणुकेन्द्रके उदाहरण ले सकते हैं। धनाणुके मतसे अल्फ़ाकणके केन्द्रमें चार धनाणु दो ॠणाणु होते हैं। यदि न्यूट्रनका मत स्वीकार करें तो अल्फ़ाकण चार Neutron और दो Positronसे मिलकर बना है।

Lord Rutherfordने भिन्न-भिन्न प्रकारके तत्वोंको वेग गतिके अल्फ़ाकणोंसे विस्फोटित किया और प्रयोगद्वारा दिखलाया कि अणुकेन्द्रके समीप पहुँचनेपर यह कण बहुत अधिक हटाव (Repulsion) सहन करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि अणुकेन्द्र धन-विद्युत आविष्ट है। प्रश्न यह उठता है कि इतने धनाणु पर ही प्रकारकी विद्युतसे आविष्ट होनेपर भी संगठित रहते हैं। वैज्ञानिकोंका इस विषयपर यह मत है कि बहुत छोटी दूरीपर हटावशक्ति आकर्षणमें परिवर्तित हो जाती है। इसी कारण अणुकेन्द्रके भीतर धनाणु एक दूसरेसे संयुक्त रहते हैं। इतनेपर भी प्रकृतिमें Radium तथा अन्य Radioactive elements हैं जो स्वयमेव अल्फ़ाकण, बीटा तथा गामा किरणें स्फन्दित करते रहते हैं। इस प्रश्नपर Rutherford और उनके शिष्योंने कुछ प्रकाश डाला और प्रयोग-द्वारा सिद्ध किया कि अणुकेन्द्रके समीप एक प्रकारकी विभवभित्ति (Potential Barrier) है जिसे अणुकेन्द्रके भीतरके अल्फ़ाकण सहजमें नहीं फाँद सकते। इस भीतके अन्दर प्रत्येक एक-दूसरेका हटाव (Repel) करता है परन्तु उनमें इतनी गति-शक्ति नहीं होती कि वह इसी दीवारको पार कर सके। इतना होनेपर भी बहुतसे Radioactive पदार्थ, जैसा कि ऊपर कहा गया है, स्वयमेव अल्फ़ाकण निकाला करते हैं। और बहुतसे तत्व अन्य तत्वोंमें आजकल परिवर्तित भी

किये जा सकते हैं। इस जटिल समस्याको तरंग विज्ञान (Wave Mechanics)की सहायतासे हल किया गया। तरंग-सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक कण अपने साथ तरंगों-की विशेषता भी रखता है। यह तरंगें सदैव कणके साथ रहती हैं और उसकी तरंग-गति उस कणकी वेगगतिपर निर्भर रहती है। इस मतानुसार अल्फ़ाकणको भी तरंगोंका समूह मान सकते हैं और यह कहा जा सकता है कि अणुकेन्द्रके भीतरसे अल्फ़ाकण विभव भीतके भीतरसे छनकर निकल आता है।

तरंग-सिद्धान्तके अनुसार यह मानना पड़ता है कि Nucleusके अन्दर भिन्न-भिन्न गतिशक्तिके अल्फ़ाकण और धनाणु, इत्यादि उपस्थित हैं जिसकी अवस्था बिल-कुल सम्पूर्ण काली वस्तु Black body chamber की-सी है जिसके अन्दर हरएक प्रकारकी तरंगोंकी रश्मियाँ होती हैं। इन विचारोंसे हमें (Nucleus) अणुकेन्द्रके अन्दर भी स्थायी वृत्तोंकी स्थितिका अनुमान करना पड़ता है। ऐसा बहुधा देखा गया है कि मन्द गति शक्तिवाले अल्फ़ाकण सहज हीमें अणुकेन्द्रमें प्रवेश कर सकते हैं यदि उनकी गतिशक्ति अणुकेन्द्रके अन्दरकी किसी स्थायी स्थिति Stationary levelके बराबर है। पोजने यह प्रयोगरूप भी देखा है और उसे बहुतसे अणुकेन्द्रोंने दोसे अधिक स्थायी वृत्तियाँ मिली हैं। Nucleus के इस सिद्धान्तपर गामा रश्मिकी उत्पत्ति भी सिद्ध हो जाती है। जब कोई भी Nucleusके अन्दरका अल्फ़ाकण एक अधिक शक्तिवाली स्थायी अवस्थासे मन्द शक्तिशाली अवस्था पर आता है तो कुछ शक्ति एकत्रित होती है जो बीटाकण के रूपमें परिवर्तित हो जाती है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि अणुकेन्द्रसे भिन्न-भिन्न शक्तिके अल्फ़ाकण निकलते हैं जो हवामें भिन्न-भिन्न दूरीतक घुस सकते हैं। प्रयोगोंसे यह सिद्ध हुआ है कि बीटा रश्मिकी शक्ति किसी-न-किसी दो अल्फ़ाकणोंकी गतिशक्तिके अन्तरके बराबर है।

अणुकेन्द्रसे ऋणाणुकी उत्पत्तिके विषयमें अभी कुछ निर्द्धारित नहीं हो सका। बीटा रश्मि दो प्रकारके हैं। प्रथम तो वे जो अणुकेन्द्रके चारों ओर स्थायी वृत्तोंमें स्थित ऋणाणुओंके ऊपर, अणुकेन्द्रसे आनेवाली बीटा रश्मिका धक्का लगनेसे निकलते हैं? इनके रश्मिचित्रसे पता लगता है कि इनकी शक्ति विशेष रहती है। दूसरे वे जिनके रश्मि-चित्रमें कृष्ण पदार्थ विकिरणकी तरह शक्ति रहती है। इनकी उपस्थितिको सिद्ध करनेके लिए पहले वैज्ञानिकोंने अणुकेन्द्रके भीतर ऋणाणुओंकी उपस्थितिका अनुमान किया था परन्तु यह मत अब सदैवके लिये विदा हो गया है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो अणुकी तरह प्रत्येक अणुकेन्द्रका भी विशेष Magnetic moment होना चाहिए परन्तु किसी भी प्रयोगसे अणुकेन्द्रका विशेष Magnetic moment प्रमाणित नहीं हो सका। इससे यह मानना पड़ता है कि ऋणाणु अणुकेन्द्रके बाहर ही पैदा होते हैं। अभीतक इन ऋणाणुओंकी उत्पत्तिका ठीक कारण बताना वैज्ञानिकोंके सामने एक समस्या है।

अज्ञात और ज्ञात इच्छा

[श्री दुर्गादत्त जोशी, रींगस, जयपुर राज्य]

मैं पूर्व ही कह चुका हूँ कि रुद्ध-इच्छा ही स्वप्नमें काल्पनिक-रूपसे परितृप्त होनेकी चेष्टा करती है, यह रुद्ध-इच्छा क्या है और उसकी उत्पत्ति कैसे होती है, अब उसकी आलोचना करता हूँ। हमारे दैनिक कार्योंकी आलोचना करने पर देखा जाता है कि उनका अधिक मार्ग हमारा इच्छा-कृत है और इन कार्यों में हमारी इच्छाका अस्तित्व परिस्फुट-आकारमें वर्तमान है। जैसे, भूख लगनेपर भोजन करनेकी इच्छा हुई और भोजनार्थ आसनपर भी बैठा, ऐसे कार्योंके अतिरिक्त हम ऐसे और भी अनेक कार्य करते हैं जिनमें हमारी इच्छाका अस्तित्व स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। पर पैरपर मच्छर बैठा, अन्यमनस्कभावसे हाथसे उड़ा दिया। यहाँ यह निश्चित-रूपसे नहीं कहा जा सकता कि ऐसा यथार्थमें इच्छावश ही किया है, आँखमें धूल गिरी, आँख बन्द की, यह आँख बन्द करना हमारे इच्छाधीन नहीं, धूल गिरनेपर हमारी इच्छाकी अपेक्षा न कर आँखें आप-से-आप बन्द हो जाती हैं, अन्यमनस्क-दशामें हम जो कार्य करते हैं, उनमें भी इच्छा परिस्फुट नहीं होती। सर्व-साधारणकी धारणा है कि सर्वप्रथम हमारे मनमें इच्छा जन्मती है, पश्चात् उसी इच्छाके अनुरूप कार्य होता है। यह सर्वथा सत्य है, तथापि अनेक स्थलोंपर इच्छा और तदनुरूप कार्यका पौर्व्वापर्य-सम्बन्ध भली-भाँति ज्ञात नहीं होता। पूर्व इसे देखनेके कि इच्छाके कारण कार्य हुआ है, मनको विश्लेषण करके देखना उचित है। मुझे किसीने गाली दी, मैंने बिना वाक्यव्यय उसके एक थप्पड़-मारा। यह थप्पड़ मारना मेरा इच्छा-कृत है सत्य, पर मैं यह नहीं समझ सकता हूँ कि मारते समय मेरे मनमें उस इच्छाका उदय हुआ था। ऐसे थप्पड़-मारना, मच्छर-उड़ाना, अन्यमनस्कभावसे कार्य करना प्रभृतिमें इच्छाका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिए मानसिक-विश्लेषणका आश्रय लेना पड़ेगा। सारांश, देखा जाता है कि इच्छाके कई भेद हैं। जैसे—

(१) वे इच्छाएँ जो सर्वथा परिस्फुट हैं और जिनके अस्तित्वका पता सरलतासे चलता है। जैसे, सैर करनेके लिए ईडनगार्डेन जाऊँ कि परेशनाथ जाऊँ, इस असमञ्जसमें पड़ा हूँ ; अन्तमें निश्चित हुआ कि परेशनाथही जाऊँगा। इस स्थलपर परेशनाथ जानेकी इच्छा परिस्फुट-रूपसे मनमें उदित हुई है।

(२) वे इच्छाएँ जो मनमें स्पष्ट नहीं रहतीं पर जिनके अस्तित्वके सम्बन्धमें हमें सन्देह नहीं होता, जैसे, प्रतिदिनके नियमानुसार सवेरे उठकर मुँह धोना। इस स्थलपर मुँह धोनेकी इच्छा मनमें स्पष्ट नहीं हुई थी पर किसीके पूछते ही उसका ज्ञान हो सकता है। सब प्रकारके अस्तव्यस्त कार्योंमें इस प्रकारकी इच्छाओं का अस्तित्व वर्तमान होता है, प्रथम पर्यायकी इच्छाको ज्ञानके केन्द्रस्थानमें अवस्थित कहा जाय, तो इस द्वितीय पर्यायकी इच्छाको ज्ञानके प्रान्तमें अवस्थित कहा जा सकता है।

(३) वे इच्छाएँ जो अपरिस्फुट हैं, पर सहजमें ही जिनके अस्तित्वका ज्ञान होता हो। जैसे क्रोधमें आकर थप्पड़-मारना। यह कहना अनुचित है कि यह इच्छा सर्वथा ज्ञानके वहिर्भूत थी, इस प्रकारकी इच्छाका अस्तित्व जाननेके लिए मनको जरा विश्लेषण करनेकी आवश्यकता है।

(४) वे इच्छाएँ जिनका अस्तित्व केवल अनुमान-सापेक्ष है। मनका विश्लेषण करनेपर भी इस श्रेणीकी इच्छाओंके अस्तित्वका सुराग नहीं मिलता। केवल कार्य देखकर या पूर्व ऐसी इच्छा हुई थी, जानकर, उनका अस्तित्व अनुमान कर लेना पड़ता है, जैसे, मैं पान खाना बहुत पसन्द करता हूँ और निश्चय किया कि आज पान न खाऊँगा। मैं एकमनसे पुस्तक पढ़नेमें लगा हुआ हूँ, पासमें पानोंसे भरा हुआ डिब्बा पड़ा है, पढ़ते समय अन्यमनस्क-दशामें कब डिब्बेसे निकालकर पान मुँहमें डाल लिया, कुछ पता नहीं रहता। ध्यान आनेपर देखा कि पान चबा रहा हूँ। इस स्थलपर पान लेना मेरा इच्छा-कृत है, पर मैं उस इच्छाका अस्तित्व नहीं जान सका। यह चेष्टा-द्वारा जाननेका

कोई उपाय नहीं कि कब मेरे मनमें वह इच्छा हुई थी। तथापि कार्य देखनेपर सन्देह नहीं रहता कि पान खानेकी इच्छा हुई थी।

सारांश यह है कि इस श्रेणीकी इच्छाएँ अनुमान-सापेक्ष होती हैं, पर इनके अस्तित्व अथवा सत्यताके सम्बन्धमें हमें सन्देह नहीं होता। उक्त प्रकारकी इच्छाओं-की एक यह भी विशेषता है कि ये अपरिस्फुट होते हुए भी हमसे परिस्फुट इच्छाके विरुद्ध कार्य करा सकती हैं। जैसे, 'पान न खाना' निश्चित किया था पर मुझे अन्यमनस्क पाकर पान खानेकी इच्छा चरितार्थ हुई।

(५) वे इच्छाएँ जिनका अस्तित्व अनुमान सापेक्ष हो और विश्लेषण द्वारा जिनकी प्रकृतिका भी ज्ञान होता हो, पर उनका मनमें होना इतना असम्भव ज्ञात हो कि विश्वास न किया जा सके। जैसे, मैं एक व्यवसायी हूँ, पावनेदारोंने अपने पावनेके बिल भेजे हैं। खरे होनेका मुझे अभिमान है, पर नित्य पावनेदारोंके रुपये भेजनेमें मेरी भूल होती है, इस स्थलपर ऐसा अनुमान करना असङ्गत न होगा कि रुपये देनेकी मेरी इच्छा नहीं। मेरे पावनेदार ऐसा ही समझते हैं और मुझे बुरा-भला कहते भी नहीं हिचकते। कहते कि, "देनेकी इच्छा होती तो देते"। मैंने उन्हें समझाया कि "कामके झञ्झटमें भूल हो गयी"। उन्होंने कहा कि "अपने रुपये वसूल करनेकी चेष्टा करना तो आप नहीं भूले"। कामके झञ्झटमें भूल होना एक बहाना भर है। इस बातको मान लेनेमें अनेकोंको आपत्ति होगी कि अनजानमें मेरे मनमें रुपये न देनेकी इच्छा-के कारण ऐसा हुआ है। विशेषतः देनदारोंको। यहाँ एक बड़ा प्रश्न यह उठता है कि ऐसा अनुमान करना युक्ति-युक्त है या नहीं? केवल यदि एक घटनाके आधार पर ऐसा अनुमान किया जाय, तो वह ठीक न भी हो सकता है। पर जब देखा जाय कि बार-बार रुपये देनेमें मेरी भूल होती है और रुपये न देनेकी इच्छा मेरे अन्यान्य व्यवहारोंमें भी पाई जाती है तब ऐसा अनुमान करना अन्याय न होगा कि रुपये न देनेकी इच्छा ही मेरे मनमें है। यहाँ इस बातकी आलो-चना न करूँगा कि किस प्रकारके प्रमाणोंके आधारपर इस प्रकारकी इच्छाका अस्तित्व स्वीकार करना उचित है। इस प्रकारकी इच्छा केवल हमें अज्ञात ही नहीं, वरन् किसीके उसका अस्तित्व प्रमाणित करनेपर भी हम सहजमें स्वीकार करना नहीं चाहते। पाठक ध्यान देंगे कि ऐसी इच्छाके वश हम जो कार्य करते हैं, उनके लिए कारण दिखाया करते हैं। जैसे, कामके झञ्झटमें भूल होना। ऐसे कारण दिखाना इतना स्वाभाविक है कि मनोवैज्ञानिकोंने इसका नया नाम-करण किया है Rationalization इसे हिन्दीमें युक्त्या-भास कहा जा सकता है। यह युक्त्याभास हठात् सुननेपर न्यायसङ्गत युक्तिके जैसा प्रतीत होता है पर विचारमें नहीं टिकता। जैसे, रुपये न देनेका कारण बताता हूँ—कामके झंझटमें भूल होना और अपने पावने अदायगीके समय मेरी बिलकुल भूल नहीं हुई। तर्कसे परास्त होनेपर भी युक्त्या-भास-प्रदर्शनकारी कहेंगे कि भूल हो गई, चित्तसे उतर गया, ऐसा हो ही जाता है इत्यादि। पाठक ध्यान देंगे कि यह भूल या चित्तसे उतर जाना एक नियमके अधीन है, आकस्मिक नहीं।

(६) पूर्व जिस प्रकारकी इच्छाका वर्णन किया है, वह ज्ञानके बहिर्भूत होती है। अनुमान-द्वारा उसका अस्तित्व निरूपित होनेपर वह असम्भव प्रतीत नहीं होती। ऐसी इच्छा किसी-न-किसी समय हमारी चेतनामें उठ सकती है, दूसरेको छकानेकी इच्छा ऐसी कुछ अद्भुत नहीं कि हमें उसे सर्वथा अस्वीकार करना पड़े, पर अब मैं जिस प्रकारकी इच्छाकी आलोचना करूँगा, वह हठात् सुननेपर अद्भुत और असम्भव बोध होगी। कहना व्यर्थ है कि यह इच्छा हमारे ज्ञानके बहिर्भूत होती है और इसका अस्तित्व केवल अनु-मानकी सहायतासे सिद्ध किया जा सकता है। जैसे यदि मैं कहूँ कि हम सबमें मरनेकी इच्छा होती है, तब तो सभी मेरे कथनको असम्भव जानकर हँसीमें उड़ा देंगे, कहेंगे कि हम तो सर्वदा जीनेके लिये मरे फिरते हैं। मरना चाहते हैं—यह तो मन बिलकुल नहीं मानता। इस प्रकारकी इच्छाका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिए एक उदाहरण देकर समझाता हूँ। कल्पना कीजिए कि रामबाबू नाना प्रकारके दुःख-कष्टों से दुःखी होकर संसारसे वीतस्पृह हो गये। वे आत्महत्या करनेके विचारसे गंगामें कूद पड़े और मर गये, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस स्थलपर रामबाबूको मरनेकी इच्छा हुई थी और यह इच्छा प्रथम-पर्यायकी इच्छाकी भाँति है, उनके ज्ञानके केन्द्रस्थलमें अवस्थित थी। हम सभी बुढ़ापेमें

मरनेके लिए उत्सुक हो सकते हैं, अथवा दुःख-कष्टोंकी यन्त्रणासे यौवनमें भी मृत्यु-कामना कर सकते हैं। इससे सिद्ध होता है कि मरनेकी इच्छा हम लोगोंके मनोंमें सुप्तावस्थामें वर्त्तमान है; केवल सुविधा-सुयोग पानेपर वह आत्म-प्रकाश करती है। जिस इच्छाके अस्तित्वका सर्वथा अभाव हो, वह कभी प्रकाशित नहीं हो सकती। हमारे सभीके पिल्ली है, स्वस्थ अवस्थामें उसके अस्तित्वका पता नहीं चलता। पर जो मलेरियाके बीमार हैं, वे पिल्लीका अस्तित्व बड़ी सरलतासे अनुभव करते हैं। मलेरिया कोई नई पिल्ली नहीं बनाती है, उसे ही थोड़ा-थोड़ा करके बढ़ा देती है। इसी प्रकार दुःख-कष्ट या बुढ़ापामें हमारी मृत्यु-इच्छा प्रकटित मात्र होती है। और एक उदाहरण देता हूँ। जैसे, हरि बाबू बिलकुल तैरना नहीं जानते। इसे वे भली-भाँति जानते हैं कि जलमें गिरे कि बिल्कुल डूब ही जायेंगे। काल वैशाखीका दिन, आकाशमें घनघटा; वे अकेले नावपर चढ़े और बोले कि जरा गंगामें सैर कर आऊँ। वे सैर करनेके लिये गये, तूफान आया, नाव डूब गई और वे मर गये। इस स्थलपर यह कहना नितान्त असंगत न होगा कि हरि बाबूके मनमें अन्दर-ही-अन्दर मरनेकी इच्छा थी, अवश्य। पर यह सत्य है कि मरनेकी इच्छा उनके मनमें उदित नहीं हुई। मृत्युकी सम्भावना होते हुए भी जब हम कोई विपज्जनक कार्य करने जाते हैं तब यह कहना अन्याय नहीं कि हम मृत्यु-इच्छाके वश हो चलते हैं। यह मृत्यु-इच्छा मनमें सुप्त होती है इसलिए हम कृतकार्यके अन्य पाँच कारण बताया करते हैं। ऐसा युक्त्याभास पूर्व पर्यायकी इच्छा-वश कृत-कार्योंमें भी देखा गया है। कवि शेलीकी मृत्युको कई आकस्मिक बतलाते हैं। मेरे मतसे यह एक प्रकारसे आत्म-हत्या है। मृत्यु आसन्न जानकर भी शेली दो अनाड़ी आदमियोंके साथ नावपर चढ़कर समुद्रमें डूब मरे। जो स्वेच्छासे लड़ाईमें जाते हैं, उनमें भी इस प्रकारकी मरनेकी इच्छा वर्तमान होती है। इस मृत्यु-इच्छाकी प्रेरणा सब स्थलोंपर समान नहीं होती। जो जान-बूझकर आत्म-हत्या करते हैं, (जैसे, रामबाबू) उनकी मरनेकी इच्छाकी अपेक्षा हरि बाबू—जो तैरना न जानते हुए भी तूफानमें नावपर सवार होते हैं। उनकी मरनेकी इच्छाकी प्रेरणा अपेक्षाकृत कम है। जो लड़ाईमें जाते हैं, उनकी मृत्यु-इच्छा और भी अप्रकाशित कही जा सकती है। जो गाड़ी-घोड़ोंकी भीड़में जाते हैं, कहना ठीक है कि उनकी भी इस प्रकारकी मरनेकी इच्छा है। हम प्रतिदिन अनेकानेक विपज्जनक कार्योंमें हाथ डालते हैं। इसलिए प्रतिदिन हमारी मृत्यु-इच्छा नाना कार्योंमें प्रकाशित होती है। पर इस इच्छाका अस्तित्व केवल युक्ति और अनुमानके बलपर ही निर्णय किया जाता है। ऐसी इच्छाका एक लक्षण यह है कि वह हमारे ज्ञानमें कभी इच्छा-रूपमें तो प्रकाशित होती ही नहीं, वरन् भय-रूपमें प्रकट होती है। भीतर मरनेकी इच्छा है। पर बाहरमें भय। पीछे मरते हैं। इच्छाका भय-रूपमें प्रकाश अनेक समय देखा जाता है। चोरकी चोरी करनेकी इच्छा है,—पीछे वह कार्यमें प्रकाशित होकर पाँच जनोंकी नजरोंमें पड़े, इसलिए वह सर्वदा ही सशंकित रहता है। असत् इच्छाको छिपानेमें हमें पद-पदपर भय होता है, डरते हैं कि वह प्रकाशित हो जायगा। हरिबाबूके उदाहरण-में उनकी मृत्यु-इच्छा प्रमाणित होती है तथापि उनकी चेतनामें जीनेकी इच्छा ही प्रबल है। इस स्थलपर कहना पड़ेगा कि मनमें जीनेकी और मरनेकी दो विरुद्ध इच्छाएँ वर्तमान थीं। दो विरुद्ध इच्छाएँ कभी एक साथ प्रकाशित नहीं हो सकतीं। इसलिए सुप्त-इच्छा आत्म-प्रकाशमें बाधा पाकर भय-रूपमें प्रकाशित होती हैं। पूर्व कथित स्वप्नके उदाहरणमें 'क' बाबूको पिताकी मृत्युकामना करते देखा गया था, यहाँ उसके सम्बन्धमें कुछ कहना चाहता हूँ। हमारे मनमें गुप्तरूपसे जैसे मृत्यु-इच्छा छिपी हुई है, वैसे ही 'क' बाबूकी पिताकी मृत्यु-कामना भी मनमें अज्ञात छिपी हुई थी। उन्होंने अपनी चेतनामें उसका कोई आभास नहीं पाया। यही नहीं, जब मैंने उन्हें ऐसी इच्छाका अस्तित्व दिखा दिया तब भी उन्होंने उसे सहजमें स्वीकार करना नहीं चाहा। बापकी मृत्यु-कामना तो दूर रही, पीछे बापकी मृत्यु हो, यह आशंका ही उनके ज्ञानमें प्रबल थी।

गाँवोंका भीषण अर्थ-संकट

[साहित्य-रत्न पं० भगवतीलाल श्रीवास्तव 'ग्राम्य-ज्ञान-गुरु' म्यु० मिडल स्कूल, पिसनहरिया, काशी]

१—गाँवोंका महत्व

रत जिसके बलपर भारत कहलाता है, उसका अधिकांश श्रेय गाँवोंको है। गावँ भारतकी आत्मा हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भारत-जैसे कृषि-प्रधान प्रदेशके लिए 'गाँवोंका सुधार ही वास्तविक सुधार है'। हम क्या, हमारे सुदूरवर्ती सभी वृत्तिवाले हमारे गाँवोंकी ओर सतृष्ण नेत्रोंसे देखते रहते हैं। 'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः'के अनुसार हमारी श्रद्धा गाँवोंकी ओरसे हट गयी है। यह एक निश्चित बात है कि हमें उन्नत बननेके लिए गाँवोंको उन्नत करना होगा, अन्यथा सर्वदाके लिए फैशनपर आँसू गिराते अनन्तके गर्तमें विलीन हो जाना पड़ेगा।

२—अर्थकी बुरी हत्या

हमारे गाँवोंका अर्थ सभ्य समाजमें जिस दृष्टिसे देखा जाता है उसका वर्णन लेखनीसे बाहर है। एककी जगह दो ले लेना, अधिक-से-अधिक वस्तुके बदले थोड़ा या कभी कुछ भी न देना एक साधारण-सी बात है। कोई भी वस्तु पैदा होनेके समय किसानों तक 'टके सेर'के लिए महँगी होती है, किन्तु उसी वस्तुका जब किसानोंके यहाँ अभाव हो जाता है 'रुपये सेर'के लिए सस्ती होती है। यह अर्थकी बुरी हत्या नहीं तो और क्या है ? किसान सभी प्रकारके 'ऐरे गैरे नत्थू खैरे'के लिए अन्नदाता है किन्तु नगरकी गलियोंमें प्याससे भटकता हुआ किसान चोर, डाकू, बदमाश सिद्ध होता और दुतकारा जाता है। सौदेके रूपमें रहनेवाले उसके अर्थका उतना मान नहीं होता, जितना सिक्केके रूपमें रहनेवाले दूसरोंके अर्थका होता है।

३—समवेदनाका अभाव

खेदका विषय है कि जिनके पैदा किये हुए अन्नसे हम पलते तथा कुटुम्बका भरण-पोषण करते हैं—उनके दुःख-सुख-की चिन्ता कभी नहीं करते। कितने सज्जन ऐसे हैं जो गावों-की जनतामें घुलमिलकर रहने, उनके सुख-दुःखमें भाग लेने-को अपना परम सौभाग्य समझते हैं। जहाँ मेले-ठेलोंमें नगरके लोग ग्रामीण जनतासे दो की जगह चार बना लेनेकी धुनमें रहते हैं, वहाँ गाँवोंकी जनता अपनी अच्छी-से-अच्छी चीज़ बिना मूल्य ख़र्च कर अपना अहोभाग्य समझती है। पृथक होनेपर हम उनको जितनी जल्दी भूल जाते अथवा अपशब्दोंसे स्मरण करते हैं, उतनी ही अधिक लालसा पूर्ण अवधितक वे हमारी प्रतीक्षा करते और नेक शब्दोंसे सराहना करते हैं।

४—भुक्तभोगी बननेकी आवश्यकता

वे हमारे निस्पृह अन्नदाता किस भाँति दिन व्यतीत कर रहे हैं, इसका पूरा पता हमको दूर-दूर रहने तथा सच्ची-झूठी मिलती खबरोंसे नहीं लगेगा।

इसका ठीक-ठीक और सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उन्हींका रूप धारण करना पड़ेगा—उन्हींके समान जीवनचर्या बनानी पड़ेगी। कहावत है कि 'जब तक ऊँट पहाड़पर नहीं चढ़ता, बहुत बलबलाता है।' हमारे कितने अहंमन्य भाई यह कहकर गाँवोंका अपमान करते और उनके अर्थका सम्मान नहीं करते कि खेतमें छींटकर घर भर देनेमें क्या परिश्रम हुआ ? भुक्तभोगी होनेपर अगहनकी ठरनमें पुरटके चलाने, माघके पालेमें ईखके पेरने, जेठकी लूमें ईखके गोड़ने, अन्नके भारी-से-भारी गट्ठर सिरपर लादनेका मूल्य मालूम होगा। नियम भी है कि भुक्तभोगी होनेसे ही किसी समाज, कामकी व्यवस्था तथा महत्ताका पूरा पता चल सकता है।

५—वर्तमान अर्थ-संकट

यों तो इस उथल-पुथल-युगमें सभी आर्थिक उलझनोंमें

फँसे हुए हैं ; किन्तु भारतीय गाँवोंकी अर्थ-समस्या जैसी दुरूह और जटिल वेदनोत्पादिनी हो रही है वैसी किसीकी नहीं। यह जटिलता इतनी वीभत्स तथा विषादमय हो चली है कि यदि इसकी ओर कारुणिककी करुण-दृष्टि न होगी तो निस्सन्देह भारतकी काया-पलट उलट जाते देर नहीं। गाँवोंकी आर्थिक उलझनें भारतके घोरपतनके एक-एक प्रशस्त मार्ग हैं।

६—अर्थ-संकटके मुख्य कारण

अ—कृषिके प्रति भ्रम

'लग्गेसे पानी पिलाने' की कहावत चरितार्थ करनेवाले कहा करते हैं कि भारतके गाँवोंमें खेतीका ढंग बहुत पुराना है ; नये ढंग और यंत्रोंसे खेती नहीं होती ; यही कारण है कि उपजमें कमी हो गयी है और आर्थिक कठिनाइयाँ विशेष जटिल और दुःखद हो गयी हैं। इस कथनके उत्तरमें मेरा कहना है कि वे महाशय आगे आवें। उन्हें एक कृषक-कुटुम्ब सौंप दिया जाता है। वे अपने सुन्दर प्रबन्धके बलपर आदर्श दिखावें। केवल सरकारी रिपोर्टके पन्ने भरनेके लिए 'ख्याली पोलाव'से काम नहीं चलेगा। मैं नहीं समझता, ये विचारे दीन-हीन कृषक बहुमूल्य मशीनें, खाद और पूँजी कहाँसे लावें ? यही तो समस्या है जिसके सुलझानेकी आवश्यकता है अन्यथा परिणाम और प्रयोगकी कहाँ कमी है ? मेरे विचार से तो यह एक प्रकारका भ्रम है, और यह कारण एक प्रकारसे सरकारी रिपोर्टोंका पेटा ही भरने मात्रके लिए है। इसमें सच्ची सहानुभूति होनेमें भी मुझे सन्देह है।

ब—कृषिका अवरोध

कितने लोगोंकी यह धारणा है कि खेत काममें आते-आते निर्बल हो गये हैं, उनमें खाद्य पदार्थोंकी इतनी न्यूनता हो गयी है कि वे उत्पादन के एकदम अयोग्य हो गये हैं। मेरा यह कहना है कि खेती बन्द करनेके समय तक भोजन-वस्त्रका प्रबन्ध कहाँसे होगा।

जहाँ सालभरके अथक परिश्रम द्वारा उत्पन्न किये गये अन्नसे खेतकी मालगुजारीतक नहीं आती, वहाँ कुटुम्बभर का भरण-पोषण तो दूर रहा। मैंने अपनी आँखोंसे देखा है और अब भी देखनेमें आता है कि कितने ग्रामीण कृषक इसलिए खेत छोड़कर कुटुम्ब सहित प्रवासी हो गये कि उनके खेत में लगानतकके लिए उपज नहीं है। हो तो कहाँसे हो 'एक टकेकी मुर्गी नौ टके नोचाई।' आज-कल तो उपजका बीस गुना क्या उससे अधिक मालगुजारी ही देनी पड़ती है। यह बात पूँजीपति कृषकोंकी नहीं, प्रत्युत अधिक संख्यामें मिलनेवाले दीन शिकमी कृषकोंकी है। उदाहरणमें मैं आखों देखी एक समस्याका उद्धरण उपयुक्त समझता हूँ। एक कृषकने एक महाजन-से १२ बिस्वा खेत १६) लगानपर लिया उस खेतमें कुल ६ मन जौ पैदा हुआ। यह पैदावार उस समयकी है, जब किसी प्रकार की बाधा (ईति-भीति चोरी-चराई) न आयी हो। उस समय दो रुपया मन जौकी बिक्री हुई और उसे कुल १२) प्राप्त हुए। सुधारकी योजना तैय्यार करनेवालों से मैं पूछना चाहता हूँ कि शेष ४) लगान कौन देगा ? और यह कृषक कितने वर्षोंके लिए खेती बन्द करे ? एक किसान-ने कुटुम्ब-रक्षाका ध्यान रखकर अपनी मौरूसी रेहन भोग बन्धक किया। कुछ ही वर्षोंमें देखनेमें आया कि उसकी शेष मौरूसी 'बकाया लगानमें रेहन हो गयी। अन्तमें यह समस्या यहाँतक पहुँची कि उसे 'बै' करके महाजनके कठोर उलहनेसे पिण्ड छुड़ाना पड़ा। क्या इस प्रकार खेती बन्द कर दी जाय ?

स—सूदखोरी

'आवश्यकता आविष्कारकी जननी है'के मतानुसार उदर-पोषण के लिए विचारे कृषक एक-न-एक उपाय करते रहते हैं। शिक्षा-शास्त्रकी न्यूनतावश उनके संबंधमें 'मियाँ-की दौड़ मसजिदतक' वाली लोकोक्ति चरितार्थ होती है। जब कहीं ठिकाना नहीं लगता तो ये दीन ग्रामीण अपनी करुण पुकार अर्थलोलुप महाजनोंतक पहुँचाते हैं। वे ऐसे अवसरपर अपनी अर्थपिपासा शांत करनेसे नहीं चूकते। गावोंमें प्रायः २) सैकड़े माहवार, दो पैसे या एक आना प्रति रूपया माहवार सूदका प्रचलन है। इस सूद-प्रणाली-से कौन-सी उद्धारकी आशा है। ऊपरसे चक्रवृद्धिका चक्र और विकट है। मैंने आँखों देखा है कि एक आदमीने एक चमार कृषक को १०) देकर पाँच वर्ष बाद त्रैमासिक

चक्रवृद्धि सूद लगाकर आना रुपयाके हिसाबसे जोड़कर ३५०)में पूर्वजोंकी बची-खुची मौरूसी बै करा लिया। हिसाब लगानेवाले हिसाब करें। कमी-बेशी अशिक्षाके मत्थे ठोंक दें। हिसाब बैठ जायगा। अब बतलाइए, उस किसानकी सुनवाई कहाँ होगी। आप कहेंगे—

द—अदालत

मैं नहीं समझता कि जिसके खानेका ठिकाना नहीं वह 'कोर्ट-फीस कहाँसे लाये ?

इसके लिए भी तो उन्हीं अर्थ-पिपासोंकी शरण लेनी पड़ेगी। सब कुछ करनेपर भी पता नहीं 'ऊँट किस करवट बैठेगा'। यह मानी हुई बात है कि एक पूँजीवाले तथा पहुँचवालेके समक्ष दीन-हीन अपरिचित ग्रामीण कभी भी सफल नहीं हो सकता। 'रईसीका तुर्रा' बाँधे हुएके सामने असभ्य देहातीकी बातें ही कितनी ? यह तो अदालतोंकी एक 'खफीफ' माया है, अदालतोंकी विकट माया इन्हें पग-पगपर ठुकरानेवाली होती और कितनोंको तो 'नदारद'की वेदीपर न्योछावरतक कर देती हैं। इसका मुख्य कारण क्या है ? अथवा अपराधी कौन है ? उत्तरमें केवल यही कहते बनता है कि हमारा दुर्भाग्य 'मैं एक ऐसा गया गुज़रा हुआ ग्रामीण हूँ जिसका सर्वस्व अदालत लड़नेमें स्वाहा हो गया है। ऊपरी ऋणका सूद भरनेके लिए बाप, चाचा, काका आदि कलकत्ते कमाने गये। वे मर भी गये ऋण वैसा ही क्या दो पग आगे ही है—सुधारक-मण्डली बतलाये मेरा उद्धार कैसे होगा ? सुना कि कोई चीज़ पास नहीं तो बुद्धि और कलमसे काम लो—किन्तु (?) वहाँ भी वही दुर्भाग्य काम कर रहा है (!) लेख या पुस्तकें अच्छी नहीं होने पातीं' आदि। अदालतें मुझे बुलाने नहीं आतीं हमारा मातृ-विद्रोह, पारस्परिक-मतभेद, धन-सम्पत्ति-सम्बन्धित ऊटपटांग झमेले तथा कुछ सामाजिक कोढ़ ऐसे हैं—जो हमें वहाँतक पहुँचाते और मटियामेट करते हैं—सच भी है कि 'घर आयी लक्ष्मीको कौन छोड़ना चाहेगा'।

य—बेदखली

भूमि-सम्बन्धी जटिल समस्याओंका कुछ जिक्र ऊपर आया है। इन्हींसे सम्बन्धित अर्थसंकटकी सहायक भूमिका बेदखल होना भी है ; ऋण बोझसे दबे हुए कुछ ग्रामीण कृषक तो भूमिकर न चुका सकनेके कारण बेदखल हो जाते हैं। कुछ महाजनोंके चंगुलमें फँसकर बेदखल हो जाते हैं। उदाहरणके लिए एक किसानका क़िस्सा यों है—'मेरी २२ बीघा भूमि एक महाजनके पास रेहन थी। ४५ वर्षके बाद मेरी नीयत हुई कि उसीमेंसे कुछ बेंचकर बाकी छुड़ाकर जीविकाका साधन बनाऊँ। उसे इधर लगभग दस वर्षोंसे महाजनके जोतका लगान देते रहने पर भी—ज़मीन्दारका भी लगान देकर बेदखल होनेसे बचाता आ रहा हूँ। महाजन की नीयत खराब होनेसे अदालतकी शरण लेनी पड़ी। महाजनका रुपया तथा अदालत-खर्चमें आधी भूमि लिख गयी। नये महाजन केवल खेत जोतना-बोना जानते हैं—न तो नाम चढ़वाते हैं और न मालगुजारी देते हैं। मैं ग़रीब खानेको मुहताज कितने दिन ज़मीन न जोतनेपर भी मालगुज़ारी देता रहूँ। इतनी पूँजी भी नहीं कि अदालतमें जा सकूँ। महाजनकी नीयत उसे बेदखल कराकर पट्टा लेलेनेकी है। एक दिन मैं रोता हुआ 'अफसर साहब'से मिला कि नीयत की जाँच करके मुझे मौक़ा मिलना चाहिए। मेरी यही एक जीविका है। जवाब मिला कि भग.जाओ तुम मालगुज़ारी नहीं देते। महाजनका रुपया मारना चाहते हो। तुम्हारे उद्धारका मेरे यहाँ कोई उपाय नहीं—लाचार घर बैठा जानबूझकर आगे आनेवाली भीषण-विभीषिकाकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।' सुधारक बतलायें मेरी कौन सुनेगा ? मेरी नीयतका फैसला कौन करेगा ? जमीन्दार या अफसर साहबके पास मेरी करुण-पुकार कैसे सफल होगी ? जिस भूमिके बनानेमें मेरा सभी अर्थ स्वाहा हो गया वह भी आज बेदखली लेरही है—हम क्या करें ?

फ—आतंकवादकी धूम

इस प्रकार दलित ग्रामीणोंके ऊपर एक भीषण प्रहार आतंकवादका भी है। हम ऊँचे हैं—हम जो चाहेंगे करेंगे-तुम्हारे वशमें है ही क्या ? हमारा कहा नहीं, करोगे तो रहोगे कहाँ ? आदि प्रश्न ऐसे हैं जिनका उत्तर दीन-देहातियोंके पास नहीं। 'एक चमार कई पुश्तसे २) माहवार-

पर ठाकुरका हल इसलिए जोतता है कि उसने बचन दिया है कि जबतक हमारा खानदान रहेगा हल जोतेंगे ?' ऐसा ठाकुर कहते हैं। हम नहीं समझते कि यह भी प्रतिज्ञा विश्वसनीय हो सकती है ? 'ठाकुरकी लवाई हो जानेपर ही चमारकी लवाई होगी नहीं तो सिर गंजा कर दिया जायगा।' मैंने अपनी आँखों एक शिक्षा-सूत्रधारीको एक खेत अपने जानवरोंसे चराते देखकर पूछा—भाई ! ऐसा क्यों करते हैं—उत्तर मिला 'साला क्या कर सकता है ? फिर उसके घर खानेवाला ही कौन है ?'। इसी प्रकार अनेक ऐसी घटनाएँ हैं जिनका पता सुधारकोंको नहीं और उनका सुधार आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त सामाजिक कुप्रथाओंका आतंक (दहेज आदि) भी इनके अर्थ-संकटमें विशेषरूपसे सहायक हैं, जिसका भीषण प्रभावयुक्त भोगी ही अनुभव करते हैं।

ज—साखका अभाव

उक्त कारणोंके अतिरिक्त अन्य भी ऐसेही अनेक कारण हैं, जिनका उल्लेख इस छोटेसे लेखमें होना असम्भव है। इसपर तो एक छोटी-मोटी पुस्तक लिखी जा सकती है किन्तु प्रकाशक कौन बनेगा ? प्रकाशित भी हो तो पढ़ेगा कौन ? अमुक प्रोफेसर साहबका बड़ा नाम है यदि उनके नामसे छपती तो सभी पढ़ते—किन्तु नाम पानेका खर्च कहाँ मिलेगा ? नाम मिल भी जायगा तो पुस्तकका दाम इतना रखना पड़ेगा कि गरीब उसे खरीद न सकेंगे। यह भी एक 'गयाका दण्ड' होगा। शिक्षा-दुर्गतिके कारण ग्रामीण सर्वत्र ठगे जाते हैं—एककी जगह दो उनसे ले लेना सहज है। 'चापलूसीका इतना बुरा प्रभाव' पड़ रहा है कि बात-बातमें इन पर अविश्वास प्रकट किया जाता और ये दुतकारे जाते हैं। बहुत-सी आघातोंका सहन इन्हें 'विवश' होकर करना पड़ता है। 'को-आपरेटिव-सुसाइटी [सहयोग-समिति] इन दीनोंकी सहायता करनेमें इसलिए कभी-कभी असफल हो जाती है कि इन्हें इनकी ओरसे 'साख' नहीं मिलती और जमानतके लिए इनके पास कोई मौरूसी नहीं होती। मैंने एक सहयोग-समितिके संस्थापक महाशयसे अपने गाँवमें इस संस्थाको स्थापित कर दीनोंकी अर्थगत सहायताकी प्रार्थना की तो बहुत समय बाद मुझे उत्तर मिला कि 'यहाँकी जनता बहुत गरीब है। उनके पास साखका साधन नहीं है। फिर वे अधन्नी सूदवाले महाजनोंसे इतने दबे हैं कि महाजन विघ्न डालेंगे—असामी भी ऐसे मूर्ख हैं कि उनसे डरते हैं। कुनबी-किसानोंमें ही हम विशेष सफल होते हैं।'

ह—दैवी कारण

ऊपर वर्णित राजनीतिक तथा सामाजिक कारणोंके अतिरिक्त कुछ दैवी कारण भी ऐसे हैं जो इन्हें अर्थ-संकटमें ठेल रहे हैं। इधर कई वर्षोंसे ईति-भीतियोंका जैसा प्रचण्ड आक्रमण हो रहा है, कभी सुननेमें भी न आया था। इनका आगमन कोई नयी बात नहीं ; किन्तु प्रवाह अवश्य दुर्भाग्यकी परिचायक है। सुधारकोंका कहना है कि 'उपज की न्यूनताके अनुसार संतति-निरोध-द्वारा जीवनकी समस्या सुलझायी जा सकती है'। मेरी समझमें यह वाक्य केवल बुद्धिमत्ताकी द्योतकमात्र है। इस आश्चर्यमय प्रकृतिके नियमोंपर यदि गवेषणापूर्ण दृष्टि डाली जाय तो संतति निरोधवाली बात अपनेआप हल हुई दिखलाई पड़ेगी। प्रकृति न्यून अथवा अधिक संतति अपनी गोदमें कभी भी रहने नहीं देती, जिसके लिए उसे तरसना या पश्चात्ताप करना पड़े। यह बातें तो ऐश्वर्य युगकी पेट भरनेपर की हैं। अर्थशास्त्रकी दृष्टिमें घर में उड़कर आया हुआ तिनका भी अपना एक व्यक्तित्व रखता है। नवयुगके भीषण युद्धोंका संघर्षण, महामारी रक्तपात आदि ऐसे कारण हैं, जो अर्थके साधनोंका सत्यानाश करते रहते हैं। इस प्रकार असामयिक मृत्युसे अनेक कुटुम्ब निराश्रित हो लुट जाते अथवा भूखों जीवन-लीला समाप्त कर धराधाममें सर्वदाके लिए विलीन हो जाते हैं इन सब का भार इन्हीं ग्रामीण जनताके मत्थे आता है।

म—यन्त्रों का असाधारण प्रचार

सुना जाता था कि एक बार अकालके कारण मिटती हुई जनताके उद्धारके लिए आसफउद्दौलाने एक बृहत् महल बनवाया शुरू किया। उसने उस मकानको कई बार गिरवा कर बनवाया। अन्तमें अकालका भय मिटनेपर वर्षोंका गिरा मकान एक महीनेमें बनकर तय्यार हो गया। कदाचित्

इसीलिए लोग कहते थे कि 'जिसे न दे मौला-उसे दे आसफउद्दौला' अस्तु ; भाव यह है कि इन यंत्रोंके असाधारण प्रचारके कारण जनताकी बेकारी बढ़ गई है और सभी पूँजी यंत्र-स्वामियोंकी थैलीमें ही चली जा रही है। गाँवोंके अनेक रोज़गार सूत कातना, कपड़ा बुनना, तेल पेलना आदि-आदि मिट गये। ये रोज़गार ऐसे थे जिनके द्वारा गरीब-ग्रामीण जनता कुछ-न-कुछ प्राप्त कर लेती थी और तारीफ़ यह कि सभीको कुछ-न-कुछ मिल जाता था। अब तो उन्हींके पास लक्ष्मी दौड़ती हैं जिनके पास पैसा है और जमानत पर वे मिलोंके एजेण्ट बन सकते हैं। अर्थशास्त्रमें 'परिवर्तित-पूँजी' का एक बहुत बड़ा स्थान है। परिवर्तित-पूँजीसे हमारा अभिप्राय यह है कि हमारी पूँजी जो आपके पास है या आपकी पूँजी जो हमारे पास है—व्यापारिक ढंगसे फिर अपने-अपने पास आ जाय। उदाहरणसे यों समझा जा सकता है कि 'मैंने आपके हाथ १)का कपास बेचा आपका रुपया हमारे पास और हमारा कपास आपके पास चला गया। आपने कपड़ा बनाया—मैंने आपका या तो रुपया या रुपयेके रूपमें अन्न देकर अपना कपास या उससे बना कपड़ा वापस ले लिया। इस प्रकार हमारे अर्थमें कमी न आकर वृद्धता ही हुई। किन्तु यंत्रोंके कारण हम अपना देते और पाते कुछ और हैं क्योंकि यंत्रोंका मूल्य हमारा नहीं बल्कि दूसरेका भाग है। मुझे उस समय और निराश होना पड़ता है जब सुननेमें आता है कि बड़े-बड़े धुरन्धर प्रोफेसर और अंग्रेज़ बेकारी अथवा किसी प्रकारकी जाँच-समितिके सदस्य होकर आ रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि वे तो स्वयं हाथसे काम न ले यंत्रोंके आदी हैं—'फिर जिनके पैर न फटी बेवाई—वे क्या जानिहैं पीर पराई' इनकी आशा दुराशा मात्र हैं।

७–सुधार-योजना

क–सरकारका हाथ

एक लोकोक्ति है कि 'जिसका राज उसकी दुहाई।' बात ठीक भी है। राज-तन्त्रमें राजाका प्रजापर पूरा अधिकार रहता है। उसके सुख-दुःखका साथी प्रायः राजा हुआ करता है। राजस्वकी बेड़ियोंमें जकड़ा होनेके कारण वह इसका जिम्मेदार है। यदि सरकार चाहे तो इन दीन दलित कृषकोंका उद्धार हो सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि उसके द्वारा अनेक उपाय सोचे और कोई-कोई प्रयुक्त भी हो रहे हैं फिर भी वह इस समुद्रके उफानके लिए पानीके एक छींटेके समान हैं। सरकारको इस ओर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है। इन बेकारोंका छीना हुआ व्यवसाय उन्हें लौटाना पड़ेगा—ऐसे-ऐसे नियमोंकी अवतारणा करनी पड़ेगी जिनसे इनके स्वत्वोंकी रक्षा हो—पूँजीपतियोंके भीषण-आतंकवादसे इनकी रक्षा करनी पड़ेगी—सहृदय सज्जनों-द्वारा इनकी मनोव्यथा जानकर बाधाओंका विच्छेद करना होगा ; केवल जाँच कमेटी बैठाने या प्लावनसपर सुधार-योजनाकी गाड़ी दौड़ानेसे काम न चलेगा। ग्रामीण व्यवसायियों, सुधारकों तथा योग्य पदाधिकारियोंकी कद्र करनी होगी और उन्हें आगे बढ़ाना होगा। यंत्र-कौशलके स्थानपर हस्त-कौशलका प्रचार करना होगा। अछूतोद्धारका प्रश्न सरकारने जिस प्रकार हाथमें लेकर उसे सफल बना रही है, उसी प्रकार यदि वह ग्रामीण-अर्थ-संकटका प्रश्न लेकर कार्य-रूपमें सफल बनानेकी चेष्टा करे तो बहुत कुछ आशा है कि भारत उसे रोम-रोम से आशीर्वाद देने लगे। उसके पास इतनी शक्ति है और वह सब कुछ कर सकती है, वह कम सूद पर बैंक संस्था खोलकर अपनी जिम्मेदारी-पर दीन ग्रामीण-जनतकी सहायता कर सकती है और अनुचित रूपमें सूद कमानेपर बेदखलीकी प्रथाको रोक सकती हैं।

ख—सहानुभूतिपूर्ण न्याय

इस दीन ग्रामीण जनताका आँसू एक प्रकारसे-पोंछा जा सकता है, वह है सहानुभूतिपूर्ण न्याय। इसके बिना अधिकांश निर्दोष गरीब पिसे जाते या सबलोंके आतंक-अग्निकी आहुति बनते हैं। ग्रामीण पंचायतें यदि शिकायत न समझी जाय तो इसमें असफल-सी हो रही हैं क्योंकि आतंकवादका झंडा वहाँ भी बुलन्द है। हाँ! चुनावका सुधार तथा पंचोंकी रक्षाका भार सरकार अपने मत्थे ले-ले तो ये पंचायतें बहुत कुछ कर सकती हैं, जैसी कि अनेक पंचायतें चल रही हैं और जनताको संतोष है।

ग—खरा विश्वास

इनके सुधारके लिए विश्वास भी एक अच्छा साधन हो सकता है। विश्वास भी खरा होना अनिवार्य है। चापलूसीसे भरा विश्वास धोखा दे सकता है। अफसर लोग प्रायः मनोविज्ञानके पंडित हुआ करते हैं। उन्हें उनकी आकृति मनोविज्ञानसे भी कुछ काम लेना पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि छल-कपट इतना बढ़ गया है कि यह काम उतना आसान नहीं जितना कहने में आता है फिर भी प्राचीन परीक्षा-प्रणाली इसमें खूब सफल हो सकती है। अब भी खुफिया-विभाग सरकारके अपराधियोंका सच्चा पता उनका मेहमान बनकर लगा लेता है। इस प्रकार इन दीन ग्रामीण-जनताके आन्तरिक वास्तविक स्वभावका पूरा पता लेकर सरकारको उसे उचित सहायता देनी चाहिए। उसकी बातें विश्वासकी सीमामें लानी चाहिए। इनके विश्वासका कोई मूल्य न होनेके कारण नहीं ज्ञात कितने निर्दोष दीन जालमें फँसके और अपनी गाढ़ी कमाईसे हाथ धो नीचे मुख किये घर लौट आते हैं।

घ-ग्रामोपयोगी शिक्षा

इन सब उपायोंके साथ-साथ उसे शिक्षामें भी कतिपय सुधार करने पड़ेंगे। उसे ग्रामीण बालकोंकी शिक्षाका कुछ ऐसा स्वरूप बनाना पड़ेगा जिससे वे शिक्षा-समाप्तिके पश्चात् कुछ जीविकोपार्जन कर सकें। उन्हें गाँवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले उपादानोंके निर्माणकी शिक्षा देनी होगी। कला-कौशलकी ऐसी शिक्षाका प्रचार करना होगा जो कम पूँजीमें चलकर जीविका दे सके। उन्हें ऐसे-ऐसे नियमोंसे अवगत करना पड़ेगा जिससे कोई उन्हें धोखा न दे सके। गाँवोंमें ऐसे-ऐसे काम खोलने पड़ेंगे कि स्कूलकी पढ़ाईके साथ-साथ बालक कमानेकी भी शिक्षा प्राप्त कर सके। भूमिति तथा युद्धकी तारीखोंके रटनेके स्थान पर-सिलाई, कपड़ा बुनना, कलप देना, भिन्न-भिन्न प्रकारकी स्याही, रंग, तेल तय्यार करना, साबुन बनाना, बेल-बूटा बनाना, कागज़के खिलौने बनाना, मिट्टीकी उपयोगी वस्तुएँ बनाना, पालिश तय्यार करना—कपड़ेके जूते तय्यार करना आदि अनेक उपयोगी बातोंकी शिक्षा देना विशेष उपयोगी होगा। बढ़ईगीरीका भी काम उनके लिए विशेष लाभप्रद होगा, किन्तु इसका ध्यान रहे कि वे उसे केवल शिक्षा ही न समझें। जहाँ-जहाँ दर्जी और कार्पेण्टरी क्लास स्कूलोंमें खुला है अधिकांशमें वे लाभ-प्रद ही सिद्ध हुए हैं। स्कूलोंके इस काममें उदार ग्रामीण पूँजीपतियोंसे अच्छी मदद मिल सकती है। दान नहीं तो आदान-प्रदानके ही रूपमें सही, वे बहुत कुछ कर सकते हैं।

ङ—प्रौढ़-शिक्षा-विधान

ऊपर बालकोंकी शिक्षाका उल्लेख है। अर्थ-संकटसे चैतन्य होनेके लिए प्रौढ़ोंको भी शिक्षा देनी होगी। यद्यपि यह काम यत्र-तत्र हो रहे हैं किन्तु नहीं के समान। मुझे यह सुनकर बड़ी हँसी आयी कि 'प्रौढ़ोंका टूर्नामेण्ट होने जा रहा है।' यह सुनते ही मुझे स्मरण हुआ कि 'आये थे हरिभजनको ओटन लगे कपास'। मेरी रायमें उनसे ऐसे काम न लेकर कुछ ऐसी शिक्षा ही दी जाय जिससे उनमें सहानुभूतिकी मात्रा बढ़े और वे अर्थका मूल्य समझें और धोखा देनेवालोंसे अपनेको बचा सकें। केवल प्रहसन करा देनेसे काम न चलेगा। अफसरोंको खुश करा देना और बात है, शिक्षाका समुचित बोध होना और बात है। इस सम्बन्धमें मुझे अकबरका यह शेर बहुत उपयुक्त जँचता है कि—

तुम खुदाको खुश करो 'अकबर' खुशामद छोड़कर,
बाखुदा हाकिम जो होगा खुद ही खुश हो जायगा।

८—उपसंहार

इतना लिख जानेपर भी संतोष नहीं क्योंकि बहुत-सी बातें अभी पेटमें घुट रही हैं; फिर भी प्रयोग-युगका स्मरण कर इतना ही क्या कम है। गाँवोंका अर्थविषयक प्रश्न उत्तरोत्तर गूढ़ होता जा रहा है। सभी सदय हृदयोंको इस ओर देखना चाहिए और उपयुक्त शक्तिसे जहाँतक हो सके इसे सुलझाना चाहिए। यह एकका विषय नहीं है। इसपर देशका वातावरण निहित है। सरकारको अपनी प्रजानुरागिताका अकाट्य प्रमाण देनेके लिए इस प्रश्नको हाथमें लेकर धन्यवादका पात्र बनना चाहिए। सभी प्रकार-की नीतियों, उद्योग, व्यवसायादिमें ग्रामीण जनताका पूरा ध्यान रखते हुए उसे सचेष्ट हो जाना चाहिए। अन्यथा यही कहना पड़ेगा कि 'रही न रानी केकयी, अमर हुई वह बात।'

मोटर-दुर्घटनाओंका प्रतीकार कैसे हो ?

[श्री श्यामनारायण कपूर बी० एस० सी०]

गोंको शायद इस बातपर विश्वास न हो कि मोटरें भी घातक हो सकती हैं, परन्तु नित्यप्रति जो घटनाएँ हमारे देश और विदेशोंमें घटित होती हैं, वे यही सिद्ध करती हैं कि मोटर जितनी सुविधाजनक और उपयोगी है, उससे कम घातक भी नहीं है । कभी-कभी तो इससे होनेवाली दुर्घटनाओं और प्राणघातक क्रियाओंको देखकर इसके उपयोग बिलकुलही भूल जाते हैं और लोग इस बातकी हार्दिक कामना करने लगते हैं कि अच्छा होता, यदि हम एक बार फिर उसी मोटरविहीन कालमें रहते होते और पालकियों, रथों, बहलों, बग्घियों आदि सवारियों में शान्तिपूर्वक सफर करते !

हालहीमें अखबारोंमें प्रकाशित हुआ है, कि १९३३ ई०-में इंगलैण्डमें प्रतिदिन १००० मोटर दुर्घटनाएँ और अपराध होते हैं। इंगलैण्ड और वेल्समें चलनेवाली प्रत्येक छः मोटरोंमेंसे एक इन दुर्घटनाओं और अपराधोंमें शामिल होती है । ये दुर्घटनाएँ और अपराध मार्ग अवरुद्ध कर देनेकी श्रेणीसे लेकर नरसंहार जैसी भीषण और घातक-श्रेणीतकके होते हैं। और लुत्फ यह है कि ये दुर्घटनाएँ और अपराध नित्यप्रति बढ़तेही जा रहे हैं ।

इंगलैण्डमें १९३३में कुल मिलाकर २२, ९७, ३२६ मोटरें चालू थीं । इन मोटरोंके सड़कोंपर चलनेसे इस वर्ष ३, ६६, ९४३ अपराध और दुर्घटनाएँ हुईं । १९३२ की अपेक्षा इस संख्यामें २८, २८१ की वृद्धि हुई है, और १९३४-में भी जरूरही इसी अनुपातमें वृद्धि हुई होगी । इन दुर्घटनाओं और अपराधोंके लिए सरकारको जुर्मानेके तौरपर २,६६,१७८ पौंडकी आय हुई ! इस लम्बी-चौड़ी रकमसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इंगलैण्डकी पुलिसको बहुतही सतर्कतासे काम लेना पड़ता है और यदि इतनी सतर्कतासे काम न लिया जाय तो, अपराधों और दुर्घटनाओंकी संख्याका ठीक-ठीक हिसाब रखना भी दुस्तर हो जाय । इनमें ७९२५ व्यक्तियों को बेतहाशा मोटर चलानेके अपराधमें दण्ड दिया गया । २,८०,०८८ व्यक्तियोंको लापरवाहीसे चलानेमें और २०६४ व्यक्तियोंको नशेकी हालतमें मोटर चलानेके लिए दण्ड दिया गया । ४६६० ड्राइवर तो दुर्घटनाके हो जाने और पुलिसके कहने सुननेपर भी घटनास्थलपर नहीं रुके । २०७५५ व्यक्तियोंने पुलिसकी अवज्ञा करके मोटरें नहीं रोकीं ।

यह तो सिर्फ इंगलैण्डका हाल हुआ। अमेरिकाके नगरों में तो इससे भी कहीं अधिक दुर्घटनाएँ होती हैं ! वहाँ तो सड़कोंपर पैदल निकलना भी मुहाल है । ज़रा निगाह चूकी कि आप मुसीबतमें फँसे । आये दिन भीषण मोटर-दुर्घटनाओंके समाचार सुननेमें आते हैं । मनुष्यों और पशुओंका कुचल जाना तो एक साधारण-सी बात है । कभी-कभी तो ड्राइवरकी असावधानीसे मोटर आपहीआप उलट जाती है और सवारियोंको साक्षात मौतके मुँहमें पहुँचा देती है । पहाड़ियों पर चढ़ते और उतरते समय इस प्रकारकी दुर्घटनाएँ अक्सर हो जाती हैं । यों तो मोटर दुर्घटनाओं के अनेक कारण होते हैं । पर 'मार्निंग पोस्ट' के लेखक मि० आलिवर स्टुअर्ट इसके दो प्रमुख कारण बतलाते हैं । पहला मोटर-ड्राइवरोंमें कल्पनाशक्तिका अभाव और दूसरा उनकी हड़बड़ी तथा घबराहट ।

मि० आलिवर स्टुअर्ट अपने लेखमें हड़बड़ी और घबड़ाहटका एक उदाहरण भी देते हैं । एक मोटर ड्राइवर रेलवे ट्रेनपर ठीक वक्तपर पहुँचना चाहता है । स्टेशन उसके मकानसे १० मीलकी दूरीपर है । वह अक्सर उस स्टेशनको आया-जाया करता है । इससे उसे वहाँ पहुँचनेके लिये ज़रूरी वक्तका अन्दाज़ मालूम हो गया है । आज भी वह उसी अन्दाज़के मुताबिक रवाना होना चाहता है । अपने अन्दाज़के हिसाबसे उसके पास काफी वक्त है । पर तैयार होते ही एक साहब उसे टेलिफोनपर बुला लेते हैं । इन साहबको वह आदरकी दृष्टिसे देखता है और उनसे एकाएक

इन्कार भी नहीं कर सकता। बातचीतमें कई मिनट लग जाते हैं। ट्रेन रवाना होनेका समय अधिकाधिक निकट आता जाता है। मोटर ड्राइवर स्टेशनके लिये रवाना होनेको परेशान होने लगता है। इधर बातचीत खतम नहीं होने पाती। फलस्वरूप उसे रवाना होनेमें दस मिनटकी देर हो जाती है। पर उसे गाड़ीपर ठीक वक्तपर तो पहुँचना ही है। वह तेज़ीमें मोटर चलाना शुरू कर देता है। इस समय उसे आगा-पीछा कुछ नहीं सूझता। केवल एक ख्याल है कि किसी तरहसे गाड़ी मिल जाय। रास्ता जरा भी साफ देखते ही वह मोटरकी रफ्तारको बहुत तेज़ कर देता है और स्टेशन पहुँच जाता है। परन्तु किसी दिन अगर किसी भी तरहसे वह वहाँ नहीं पहुँच पाता, तो बस रास्तेमें मिलनेवाली मोटरों, गाड़ियों और सवारियोंका खुदा ही मालिक है। ऐसी हालतमें कभी-कभी दो मोटरें लड़ जाती हैं, आदमी कुचल जाते हैं और दूसरी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। अपने यहाँ किरायेपर चलनेवाली लारियोंमें होड़ लग जानेपर अकसर इस तरहकी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। कभी-कभी पैदल चलनेवालोंकी हड़बड़ी और घबड़ाहट भी इनका कारण बन जाती है।

बहुतसे मुसाफिर बिलकुल अन्धे और बहरे होकर चलते हैं। कुछकी चालसे तो ऐसा मालूम होता है मानो सारी सड़कपर इन्हींका राज्य है और कोई दूसरा सड़कपर चल ही नहीं रहा! बहुतसे इक्के-ताँगेवालोंका भी यही हाल है। बिलकुल बेधड़क हाँकते चले जाते हैं और मोटर या साइकिल भिड़ जानेपर 'अरे' कहकर रह जाते हैं! अगर ये लोग थोड़ीसी भी कल्पनाशक्तिसे काम लें तो दुर्घटनाओंकी संख्यामें काफी कमी होनेकी सम्भावना हो सकती है।

सड़कोंपर होनेवाली इन दुर्घटनाओंकी वृद्धिसे जनताके साथ-ही-साथ वैज्ञानिक भी परेशान हो उठे हैं। मोटरोंकी रफ्तार बराबर बढ़ती जा रही है। रफ्तारके साथ-साथ इन 'आकस्मिक' कही जानेवाली दुर्घटनाओं और उनसे हताहत होनेवाले प्राणियोंकी संख्या भी बराबर बढ़ रही है। जबसे ७०-८० मील प्रति घण्टेकी रफ्तारसे चलनेवाली मशीनें मनुष्यके हाथमें आयी हैं, तबसे तो बस सड़कपर चलनेवालोंकी आफत ही-सी आ गयी है।

कतिपय वैज्ञानिकोंने प्रयोगशालाओंमें जाँच करके पता लगाया है कि कुछ लोगोंकी प्रकृति दुर्घटनाओंके अधिक अनुकूल होती है और वे उनमें बड़ी आसानीसे फँस जाते हैं। चलते-चलते ठेस मार लेना, चाकू या किसी दूसरे औज़ारसे काम करते हुए उँगलियाँ काट लेना आदि-आदि छोटी-छोटी आकस्मिक दुर्घटनाओंसे लेकर भीषण मोटर-दुर्घटनाएँतक इसी प्रकृतिसे सम्बन्ध रखती हैं। मनोवैज्ञानिकोंका कहना है कि जबतक आधुनिक उन्नत यंत्र मनुष्योंके हाथमें इस प्रकार रहेंगे, तबतक सड़कोंपर होनेवाली दुर्घटनाओंमें कमी होनेकी बहुत कम सम्भावना है।

कुछ दिन हुए सर अर्नेस्ट ग्रेहम लिटिलने ब्रिटिश पार्लियामेंटमें इस बातपर ज़ोर दिया था कि भविष्यमें मोटर-ड्राइवरीका लाइसेंस माँगनेवाले प्रत्येक व्यक्तिकी मनोवैज्ञानिक रीतिसे जांच की जानी चाहिये और उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति, मानसिक स्थिति एवं झुकावका पूरा-पूरा हाल मालूम कर लिया जाना चाहिये। इङ्गलैण्डकी राष्ट्रीय औद्योगिक मनोविज्ञान समितिने इस तरहकी जांचके लिये कुछ परीक्षाएँ भी नियत कर दी हैं जिनकी सहायतासे व्यक्ति-विशेषकी मानसिक स्थितिका पता लगा करके यह निश्चय किया जा सकता है कि यह मोटर चलानेके क़ाबिल है अथवा नहीं। परन्तु अभी इसका अधिक प्रचार नहीं हुआ है और न इसकी सहायतासे सड़कोंपर होनेवाली दुर्घटनाओंमें कोई कमी ही हो पायी है। परन्तु फिर भी मनोवैज्ञानिक इस बातके लिये बराबर प्रयत्नशील हैं कि जनता और ड्राइवर लोग शीघ्रसे शीघ्र इनके कथनके महत्वको स्वीकार कर अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारीको समझें।

प्रोफेसर मिलेस कलिपनने लण्डनके किंग्स कालेज हास्पिटल मेडिकल स्कूलमें मोटर दुर्घटनाओंपर भाषण देते हुए कहा था—ड्राइवरोंको उपयुक्त और आवश्यक शिक्षा दे लो, उन्हें कायदेको पाबन्दी करनेके लिये मजबूर कर लो, राहगीरोंको सड़कोंपर चलना सिखाओ, बच्चोंको आकस्मिक दुर्घटनाओंसे बचनेकी शिक्षा दो, परन्तु जबतक मोटरोंकी तेज रफ्तारमें कमी न की जायगी तबतक दुर्घटनाओंमें कोई उल्लेखनीय और सन्तोषप्रद कमी हो सकेगी, इसकी बहुत कम सम्भावना है। अन्य विशेषज्ञोंकी भी ऐसी ही राय है। ऐसी राय मोटरोंकी तेज रफ्तारके विरोधकी भावनासे नहीं

सिलाईकी कल बनानेवाले

[श्री नवनिहालसिंह माथुर]

१—आवश्यकता

जकल इस मैशीनका व्यवहार प्रायः प्रत्येक गृहस्थीमें होता है ; और यह इतने कामकी चीज है कि इसे 'घरकी नौकरानी' कहकर पुकारते हैं। इसका आविष्कार उसी समय हुआ जब कि इसकी आवश्यकता थी। डेढ़सौ वर्ष पहले सिले हुए कपड़ोंकी इतनी माँग बढ़ी कि बिचारी स्त्रियाँ रात-दिन कठिन परिश्रम करनेपर भी उसको पूरा न कर सकीं। रात-दिन सुई और डोरेमें स्त्रियोंको आँखें गड़ाये हुए देखकर बहुतोंका हृदय दयासे भर आया, और उसी समय लोगोंने एक ऐसा यन्त्र बनानेका प्रयत्न किया जो कि सिलाईका काम सहल रूपमें कर सके और जिसमें समयका व्यय भी अधिक न हो।

२—आविष्कार और आविष्कर्त्ता

सन् १८५१में लन्दनके Crystal Palace 'क्रिस्टल भवन'में जो नुमायश हुई थी उसमें एक सीनेकी मैशीन भी दिखायी गयी थी। पर उस समय मैशीनकी ओर उतना ध्यान न दिया गया था। यद्यपि सीनेकी मैशीन बनानेका खयाल एक अंग्रेज़को आया पर एक पुख्ता और कारआमद मैशीन बनानेका श्रेय अमरीकावालोंको है। सौ वर्षसे अधिक हुए कि मैशीनसे सिलाई करनेकी सम्भावना बतायी गयी थी। परन्तु मैशीनको पूर्णरूपसे सफल बनानेमें एक दो पीढ़ीका समय लग गया। इस कार्यके करनेका श्रेय मुख्यतया थोमस सैण्ट, Thomas Saint बारथेलेमी थिमोनिया, वाल्टर हण्ट, ईलियास हो, एलिन विलसन, सिन्गर और जेम्स गिब्ज़ नामक ही मनुष्योंको है। इन्हीं लोगोंके दिमाग-को मैशीन बनानेकी बात सूझी और इन्हींमें से कुछने ऐसी मेशीनें बनायीं कि, आजकलकी मैशीनोंमें भी करीब-करीब वैसेही पुर्जे लगाये गये हैं।

३—मैशीनोंके सम्बन्धमें आविष्कर्त्ताओंके मनोरंजक वृत्त

इस मैशीनके आविष्कारकी मनोहर कहानीका स्वाद इसके अविष्कारकोंकी जीवनघटनायें पढ़नेपर ही मिलेगा। ऊपर लिखे हुए नामोंमेंसे पिछले छः व्यक्तियोंने तो अपना समस्त जीवन सुइंग मैशीनके आविष्कार और उसको पूर्ण करनेमें ही बिता दिया। अस्तु, हम अब इनके जीवन-चरित के कुछ अंश नीचे उद्धृत करते हैं।

आविष्कारकोंकी सच्ची लगन

थोमस सेण्ट

एक ऐसी मैशीनका विचार, जो कि दो या दोसे अधिक कपड़े या चमड़ेके टुकड़ोंको सुई-डोरेसे मनुष्यके हाथकी सिलाईकी तरह सी सके, एक अंग्रेज़ थोमस सेण्टको आया। उसने अपनी कल्पना मूर्ति मैशीनका एक नमूना भी बनाया और सन् १७९० में उसे पेटेण्ट करा लिया। यह मैशीन केवल चमड़ोंके टुकड़ोंपर ही सिलाईका काम करती

दी गयी है. वरन् विशेषज्ञोंके अनुभव और प्रयोगशालाके वास्तविक प्रयोगोंके आधारपर दी गयी है। जबतक रफ्तार-को नियंत्रित न किया जायगा, तबतक ड्राइवरका जोश, उसकी हड़बड़ी और घबराहट, कल्पना शक्तिका अभाव तथा दूसरी मानसिक कमज़ोरियाँ बराबर सड़कोंकी शान्तिको भंग करतीं और लोगोंकी जान लेती रहेंगी।

थी। थोमसने और कई तरहकी मैशीनोंके चित्र भी बनाये परन्तु उसने उनके अनुसार कोई मैशीन नहीं बनायी। इन चित्रोंमें आजकलकी मैशीनोंके भी कितने ही आधार पाये गये हैं।

गरीब बारथेलेमी थिमोनियर Barthelemy Thimonnier

लगन

पैंतीस वर्ष बाद एक गरीब फ्रांसीसी दर्ज़ीने इसका प्रयत्न किया? वह यन्त्रोंकी Mechanic कलासे बिलकुल अनभिज्ञ था। चार वर्षतक वह अपनी एक बनायी हुई मैशीनपर इसी बातका प्रयत्न करता रहा, कि वह अच्छी तरह सी सके। उसने प्रायः अपना व्यवसाय भुला-सा दिया था इसके घरका भी काम मुश्किलसे ही चलता था। वह अपनी मैशीनके आविष्कार एकान्तमें और चुप-चाप किया करता था? इस कारणसे 'पागल'से भी अधिक गिना जाता था। १८२९तक उसने पुर्जे सम्बन्धी कठिनाईयोंपर विजय पा ली और एक ऐसी मैशीन बनायी जो कि एक (Hooked needle) हुकदार सुईसे जंजीरदार टाँके (Chain stitch) भरती थी।

विपत्ति

दूसरे साल उसने अपनी मैशीन पेटेंट करा ली। इसी समय एक चतुर ईंजिनियरकी उसपर निगाह पड़ी और वह थिमोनियरको अपने साथ पेरिस ले गया। १८३१तक थिमोनियरने इतनी उन्नति की कि उसकी बनायी हुई ८० मेशीनें, फ्रांसीसी सेनाके वस्त्र सीनेके काममें लायी जाने लगीं और थिमोनियर इस दुकानका एक प्रमुख हिस्सेदार भी हो गया। पर हाथसे सीनेवाले दर्ज़ियोंने इस कार्यको अपने तईं हानिकारक समझा। एक दिन उनके दलने क्रोधित होकर उस दुकानपर धावा बोल दिया, और जिस मैशीनपर उनका हाथ पड़ा उसको उन्होंने ध्वंस ही करके छोड़ा। विचारा थिमोनियर एक मैशीन अपनी पीठपर लाद, जान बचाकर, निकल भागा। थिमोनियर अपने घरकी ओर चल पड़ा और रास्तेमें उस मैशीनको एक अजब खिलौनेकी तरह दिखाकर पैसा माँगकर अपना पेट भरने लगा। घर पहुँचकर उसने लकड़ीकी मैशीनें बनानी शुरू कीं और उनको १०डालर प्रति मैशीनके हिसाबसे बेचकर अपने घरका काम चलाने लगा। इस तरहसे मैशीनोंपर लगातार परिश्रम करनेपर, १८४५ में उसने एक ऐसी मशीन बनायी जो दो सौ टाँके एक मिनट में लगाती थी। अपने एक मित्र मेगनिनकी सहायता पाकर उसने ऐसी मेशीनें तय्यार कीं कि वह बारीकसे बारीक मलमलको लेकर चमड़ातक सी सकती थी।

पारखियोंकी असावधानता

सन् १८४८के गदरसे उसके व्यवसायको बड़ा धक्का पहुँचा और वह मेगनिनके साथ थोड़े दिनके लिये इङ्गलेण्ड चला गया। मेगनिनको साझी बनाकर १८४९में उसने अपनी मेशीन इंगलेण्डमें पेटेण्ट करा ली और इसके दूसरे साल उसे अमेरिकासे भी पेटेण्ट मिल गया। लन्दनकी १८५१की सबसे बड़ी विश्व-प्रदर्शिनी' Universal Exhibition में थिमोनियरने ही अपनी मैशीन भेजी थी। परन्तु किसी गलतीसे न तो दर्शकोंने उसे देखा और न विचारकोंकी ही उसपर दृष्टि पड़ी। इससे उसको बड़ा शोक हुआ और यद्यपि वह कुछ और वर्षतक मैशीनोंके काममें लगा रहा, वह निराशा और गरीबीसे इतना उकता गया कि ६४ वर्षकी आयुमें सन् १८५७में उसका देहान्त हो गया।

आत्म-संतोष

थिमोनियरके जीवन-पर्यन्त घनघोर परिश्रमकी ओर देखते हुए, इसी बातका विश्वास होता है कि अनेक बार विफल-मनोरथ होते हुए लगातार परिश्रम करनेके लिये उसमें अद्भुत शक्ति और साहस था। अपनी मैशीनको जनतामें प्रसिद्ध न कर सकनेका दोष इसका नहीं। कालान्तर और तत्कालीन मनुष्य-वृत्ति उसकी उत्तरदायक है। एक तरहसे तो थिमोनियरका जन्म केवल व्यर्थ-सा ही है। क्योंकि न तो उसे धन-प्राप्त हुआ और न यश ही। पर अपने मरनेसे पहले उसे इस बातको सोचकर अवश्य संतोष होता था कि उसका जीवन-स्वप्न—एक ऐसी मेशीन बनानेका जोकि थोड़ेसे ही प्रयाससे और अल्प-कालमें कपड़ा आदि सी सके—पूर्ण हो गया। उसने इस बातका

भी पता पा लिया था कि ऐसी मैशीनोंका बनाना और बेचना एक अत्यन्त लाभदायक व्यवसाय होगा।

वाल्टर हण्ट

आरम्भिक व्यवसाय

जिस समय थिमोनियरकी ८० मैशीनें एक दुकानमें सिलाईका काम कर रही थीं न्यूयार्कमें एक मनुष्यका ध्यान उनकी ओर फिरा। इस मनुष्यका नाम वाल्टर हण्ट था। यह बाज़ारोंमें बाज़ीगरोंकी तरह भीड़ जमा करके दवाइयाँ बेचा करता था और भीड़के मनोरंजनके लिये बहुतसे चतुराई और हाथकी सफ़ाईके खेल दिखाया करता था। उस समय इसकी उम्र उनतालीस सालकी थी और उस समयमें बहुतसे आविष्कार—जैसे चाकू आदिपर धार रखनेकी मैशीन, डोरा (Flax) कातनेकी मेशीन, डोरेमें बल लगानेकी मैशीन, गोल आकारके बड़े घण्टे—इसके नामसे प्रचलित थे। सन् १८३५से अपने मृत्युकाल सन् १८५९तक, कितनेही नये-नये ख़यालोंकी उसने ईजाद की, जो आजकल भी उसी या किसी उन्नतिपूर्ण दशामें व्यवहारमें लाये जाते हैं।

सेफ्टी पिनके आविष्कारकी रामकहानी

इसके एक मित्र चेपिन ने जोकि उसके मुन्शीका काम करता था, हन्टके सेफ्टी पिन आविष्कार करनेकी कहानी लिखी है।

चेपिन लिखता है, "हण्टने मुझसे १५ डालर उधार माँगे परन्तु उन्हें वापिस न किया। एक दिन उसने मुझे ऋण लौटानेका विचार किया। सोचते-सोचते हण्टको सेफ्टी पिनका विचार आया और उसने तुरन्तही एक तारके टुकड़ेका नमूना बना लिया। उसको पेटेण्ट करानेके पहलेही उसने अपना यह आविष्कार ४०० डालरको बेच दिया। हण्टको ऋण चुकानेकी इतनी जल्दी थी कि यह सब काम होते तीन घण्टेसे अधिक न लगे।"

आधुनिक मैशीनोंकी-सी मैशीन बनानेवाला पहला आदमी

हण्ट आश्चर्यजनक आविष्कारक बुद्धिका होता हुआ एक कुशल विद्यार्थी भी था। उसने तत्कालीन वैज्ञानिक साहित्यका अच्छी तरह अध्ययन किया था। सन् १८३२ और १८३४के बीचमें उसने अपनी अमोस स्ट्रीटकी दुकानमें एक सीनेकी मैशीन तय्यार की जो सीनेका, बखियाका और गुठाईका काम अच्छी तरहसे करती थी। इस पहली मैशीनके सफलतापूर्वक काम करनेपर हण्टने अपने छोटे भाई एडोनिरमकी सहायतासे उसी प्रकारकी और मैशीनें भी तय्यार कीं। हण्टने अनेक प्रकारके कपड़े अपनी इन मैशीनोंसे दोस्तों और पड़ोसियोंके सीकर दिखाये। परन्तु हण्टकी मैशीन टेढ़ी और कोणदार सिलाइयोंपर नहीं चलती थी तो भी उसके ठीक-ठीक सीनेका ढंग और गति सराहनीय थी। हण्टकी मैशीनमें आजकलकी मैशीनोंके सब ज़रूरी पुर्ज़े थे। इसकी मैशीनमें आँखसे छेदवाली सुई, एक दूसरी चलती हुई कलकी सहायतासे, एक दूसरे डोरे और शटलके साथ काम करती हुई सिलाई करती थी। शटलकी सहायतासे नीचेवाला डोरा ऊपरवाले डोरेसे मिलकर टाँकोंको मज़बूत और कसा हुआ बना देता था। इन सब बातोंके होते हुए भी इस मैशीनमें कपड़ेके फीडिंगका अच्छा तरीक़ा नहीं था। तो भी हण्ट आजकलकी-सी मैशीन बनानेमें प्रथम मनुष्य था।

सन् १८३४में हण्टने अपने मुनाफ़ेका आधा साझीदार एक एरो स्मिथ नामक लुहारको —जिसकी दुकानमें हण्टका छोटा भाई एडोनिरम काम करता था, बना लिया। वास्तवमें हण्टने अपना आधा हिस्सा ऐरो स्मिथको बेच दिया था। एरो स्मिथ इसके कहनेपर एडोनिरमने वाल्टरकी मैशीनके ढंगके ऊपर एक दूसरी मैशीन तय्यार की। यह दूसरी मैशीन लकड़ीकी बनी थी और एरो स्मिथइस मैशीनके बननेपर इतना प्रभावित हुआ कि उसने वाल्टर हण्टसे दूसरा आधा हिस्सा इस शर्तपर खरीद लिया कि वाल्टर हण्ट एरो स्मिथको मैशीनोंके पेटेण्ट करानेके लिए चित्र और नक़शे तय्यार करके दिया करेगा। धार्मिक, सामाजिक तथा धनाभावके कारणोंसे ऐरो स्मिथ और मैशीन न बनवा सका और न उस मैशीनको पेटेण्ट ही करा सका।

एरो स्मिथको इस सौदेसे कोई विशेष लाभ न हुआ पर एडोनिरमने उस लकड़ीवाली मैशीनको एक सुन्दर और मज़बूत लोहेकी मैंशीन बनानेका विचार प्रकट किया।

मैशीनोंसे बेकारी बढ़नेका प्रश्न ?

वाल्टर हण्टने १८३८में अपनी लड़की करोलिनसे मैशीनों द्वारा कॉरसेटस् सीकर बेचनेका प्रस्ताव किया। परन्तु कुमारी करोलिनने ऐसा धंधा करना अस्वीकार कर दिया। उसने अपने पितासे कहा कि मेरे इस धन्धेसे, अन्य हाथसे सीनेवालोंकी दशा और भी शोचनीय हो जायेगी। वाल्टर हण्टका आविष्कार प्रायः लुप्तसा हो जाता यदि १५ वर्ष बाद सफलता पूर्वक मैशीनसे कपड़ा सीनेके लिये इसकी मैशीनकी तलाश न होती। उसकी मैशीन गोल्डस्ट्रीटके एक मकानमें कूड़ेके ढेरमें पायी गयी जो आग लगनेसे बचा लिया गया था।

हंटके धनी होनेमें उसकी दुर्बलताएँ बाधक

और अविष्कारकोंकी तरह हण्टको भी इस बातका संतोष था कि उसकी बनायी हुई मेशीन सफलतापूर्वक सिलाईका काम जल्दी और अच्छी तरहसे करती थी। उसने अपने आविष्कारको बेचकर और मैशीनें बनानेका प्रयत्न नहीं किया। आगे चलकर इसने एरो स्मिथसे अपना सारा हिस्सा फिर वापस खरीद लिया। १८५३में उसने एक तीसरी मैशीन और बनायी, जिसकी सहायतासे वह दूसरे लोगोंसे, जो उसकी मैशीनके कुछ भाग अपनी मैशीनमें चोरीसे लगाते थे, मुकदमें लड़ा करता था। हण्ट नये-नये आविष्कार, जैसे कीलें बनानेकी मशीन, मोमबत्ती, रिवाल्वर, नोकीले कारतूस बनाने इत्यदिमें इतना लीन रहता था कि उसने अपनी पुरानी मेशीनके अधिक सुधारनेकी ओर ध्यान ही न दिया। एक अच्छा आविष्कारक होते हुए भी वाल्टर हण्ट धनवान न हो सका। एक तो वह खर्च बहुत करता था और दूसरे वह वाणिज्य व्यवहारमें उतना कुशल भी न था। तीसरे वह अपने आविष्कारोंको बहुधा पेटेन्ट करानेसे पहले ही किसी औरको बेच दिया करता था और यही मुख्य कारण है कि अपने कठिन परिश्रमका फल वह स्वयं नहीं भोग सकता था, प्रत्युत और लोग उसके परिश्रमसे अपना भाग्य चमका रहे थे।

ईलियास हो

बाल-रुचि

'हो'का जन्म सन् १८१९में स्पेंसनरमें हुआ था। छः सालकी आयुतक तो वह अपने पिताके ही खेतोंपर काम करता रहा। वह अपने और भाई-बहनोंके साथ चमड़ेके टुकड़ोंमें, जो रूई बिननेमें काम आते थे, तारके टुकड़ोंको काट-काटकर दाँतोंसे बनाकर लगाया करता था। फिर एक सालके लिए वह किसी किसानके साथ देहात चला गया। बचपनसे ही उसकी रुचि मिस्त्रीगिरीके कामोंको तरफ थी, अतएव देहातसे वापस आनेपर उसने अपने गाँवकी मिलों मेंसे एकमें नौकरी कर ली। सोलह सालकी उम्रतक वह मिलोंमें काम करता रहा और इसी बीचमें वह अपने धन्धेमें निपुण भी हो गया। इसके बाद उसने लोवेलके कारखानेमें नौकरी की। पर १८३७में किसी कारणसे वह कारखाना बन्द हो गया और वह फिर कामकी तलाशमें निकल पड़ा। घूमते-घूमते वह बोस्टन पहुँचा और वहाँ उसे ऐरो डेविस नामक एक मिस्त्रीकी दूकानमें नौकरी मिल गयी।

आविष्कारक बननेका चस्का

किसी एक दिन डेविस अपने किसी ग्राहकसे सीनेकी मशीनके बारेमें बातचीत कर रहा था। ग्राहक डेविससे कह रहा था कि अगर तुम एक सीनेकी मेशीन बना सको तो खूब भाग्यवान् और धनवान बन सकोगे। ग्राहककी यह बात 'हो'के विचारमें कुछ जम सी गयी और सीनेकी मैशीन बनाकर भाग्यशाली बननेके ख्यालने उसके दिलमें जगह कर ली। सोचते-सोचते इसकी प्रकृति प्रायः अपने मस्तिष्कसे सोचकर काम करनेकी पड़ गयी और इसकी रुचि अधिक शारीरिक परिश्रम करनेकी ओर प्रतिदिन कम होती गयी। वहाँसे काम छोड़कर वह स्वतन्त्रता पूर्वक इधर-उधर फेरी लगाकर मिस्त्रीपनेका काम करता रहा। इससे उसकी आमदनी ९ डालर प्रति सप्ताह हो जाती थी। २१ वर्ष तककी उम्रतक वह ऐसे ही जीवन बिताता चला गया। फिर उसने विवाह कर लिया। उसके तीन बच्चे भी हो गये; परन्तु उस थोड़ी-सी आयमें उसकी गृहस्थी निभना प्रायः मुश्किल हो गयी थी। १८४३में इसे इतनी तंगीने आ घेरा कि उसने एक सीनेकी मशीनका जिसके कि बारेमें डेविसकी दुकानपर सुन चुका था—आविष्कार करके छुटकारा पानेका इरादा किया।

'हो'के आविष्कारमें उसकी स्त्रीकी अप्रत्यक्ष सहायता

कई महनोंतक वह अपनी स्त्रीके हाथोंकी ओर—जब उसकी स्त्री एक दुतरफा नोंकदार बीचमें छेददार सुईसे सिया करती थी, ध्यानसे देखता रहा। अन्तमें एक दिन उसे एक दूसरे डोरे और शटलकी सहायतासे टाँकें भरनेका खयाल आया। अक्तूबर १८४४तक उसने एक ऐसा नमूना बना लिया था जिसका उसे विश्वास था कि वह अच्छी तरहसे सी सकेगा। अतएव वह अपनी फेरीका काम छोड़कर अपने पिताके घर आ गया और वहाँ कुछ औजारोंद्वारा अपनी कल्पनामयी मेशीनके बनानेमें लग गया। परन्तु मैशीन पूर्णतया धातुकी ही बननेपर काम कर सकती थी। इधर गृहस्थीका ही किसी तरहसे गुजारा होता था फिर मैशीनके लिये धातु आदि खरीदनेके लिये रुपया कहाँसे आता। परन्तु उसकी लगन और अथक प्रयास देखकर उसके एक मित्र जार्ज फिशरने उसकी सहायता करनेका वचन दिया।

मैत्रीका आदर्श

फिशर होका पुराना सहपाठी था और केम्ब्रिजमें कोयले और लकड़ीका व्यापार किया करता था। होने फिशरको अपने पेटेण्ट और मुनाफेका आधा हिस्सेदार क़रार दिया और इसके बदलेमें फिशरने हो तथा उसकी गृहस्थीको अपने यहाँ रखकर भरण-पोषणका भार अपने ऊपर लिया तथा होको औजार वगैरा या और ज़रूरी सामान खरीदनेके लिए ५०० डालरतक देनेका वचन दिया। सन् १८४४के दिसम्बरमें हो अपनी गृहस्थी सहित फिशरके यहाँ चला गया वहाँ जाकर, केवल अपनी मैशीनके ही ध्यानमें लीन होकर मैशीन बनानेके काममें लग गया। जाड़े-भर कठिन परिश्रमके बाद, अप्रेल १८४५,में 'हो'ने एक मशीन तय्यार की और इसी साल जुलाईके महीनेमें उसने अपने और फिशरके दो जाड़ेके सूटोंपर अपनी हो तय्यार की हुई मशीनसे बखिया दी। 'हो' की यह प्रथम मशीन, जिसने अनेकों बार बड़ी-बड़ी समुद्र-यात्राकी अब भी यूनाइटेड स्टेट्सके "राष्ट्रीय विचित्रालय"में देखी जा सकती है, जिसे 'हो'के पौत्रने वहाँ भेज दिया था।

प्रचारका ढंग

'हो'के सामने अब दूसरी कठिनाई अपनी मैशीनको सार्वजनिक बनाने की थी। इसके लिए वह एक कपड़ा सीनेकी दुकानमें कपड़ा सोकर दो सप्ताहतक इस बातको दिखाता रहा कि उसकी मैशीन वास्तवमें सी सकती है। वहाँ पर अपने पास लाये गये सब प्रकारके कपड़ोंको वह सीता था। वहाँकी सबसे तेज पाँच सीनेवाली लड़कियोंके साथ उसने अपनी मशीनकी प्रतियोगिता भी की। बराबर-बराबर कपड़ोंके दस टुकड़े मँगाये गये। पाँचों लड़कियोंको देकर पाँच टुकड़े 'हो' को दिये गये। 'हो'ने इन पाँचों टुकड़ों पर बखिया पाँचों लड़कियोंसे पहले ही लगाकर दे दी। हो अनेक बार इसी तरह अपनी मशीनसे कपड़े सीकर दिखाया करता था। 'हो'—और' फिशर' का

सम्बन्ध विच्छेद

पर इतना सब कुछ होते हुए भी उसकी मशीन न बिकी, किसीने भी उसे न खरीदा। पर 'हो'ने अपनी मशीनको न बिकते देखकर भी पेटेन्ट करानेका इरादा किया। इसके लिए उसने एक और नयी सुन्दर मशीन तय्यार की और १८४६की गर्मियोंमें सब कागज-पत्र लेकर, 'फिशर और हो' दोनों वाशिंगटनके पेटेन्ट आफिसमें मशीनको पेटेन्ट कराने गये। १० सितम्बर १८४६को पेटेन्ट मिल गया और फिर हो और फिशर दोनों केम्ब्रिज वापस चले आये।

अबतक होकी कोई मैशीन न बिकी। इससे फिशर बड़ा हतोत्साह हुआ उसने अपना लगभग २,००० डालरका धन, जिसे कि वह 'हो'के लिये अबतक व्यय कर चुका था, डूबा हुआ समझकर अपना हाथ खींच लिया। 'हो' फिशरके घरसे फिर अपने पिताके यहाँ वापस चला आया और इस प्रकार फिशर और 'हो'का सम्बन्ध टूट-सा गया।

आशावादिता

फिशरकी तरह हो नाउम्मेद न हुआ और उसने इंगलेण्डके सौदागरोंको अपना आविष्कार खरीदनेके लिए फुसलाना

चाहा। इस कामके लिए एक तीसरी मैशीन बनायी गयी, जिसे होका भाई एमासा अपने साथ लन्दन ले गया। लन्दनके एक सौदागर विलियम थोमसने, जिसकी दुकानमें ५,००० मज़दूर जूते, छाते, कॉरसेट्स आदि बनानेका काम करते थे, २५९ पाउण्डमें उस मैशीनको एमासासे ख़रीद लिया। विलियमने यह भी कहा कि यदि हो कॉरसेट्स बनानेके लिये एक मैशीन बना सके तो विलियम होको कारखाना, औज़ार और सब सामान देते हुए तीन पाउण्ड प्रति सप्ताह वेतन भी देगा। दूसरी और एक बात यह भी तय हो गयी थी कि विलियम उस मैशीनके पेटेण्ट करानेपर प्रति मैशीनके बेचने या बाहर भेजनेपर होको तीन पाउण्ड देगा।

'हो'की अग्नि-परीक्षा!

होने, अपनी मैशीनको बिकते न देखकर, विलियमके यहाँ काम करना स्वीकार कर लिया और ५ फरवरी, १८४७ को लन्दनके लिये चल दिया। विलियमने हो तथा उसकी गृहस्थीकी यात्राका सब ख़र्च अपनी ओरसे दिया। विलियमने २५० पाउन्डमें वह मैशीन ख़रीदकर लाखों डालर लाभ किए थे और वह इस समय एक और दूसरी मैशीन बनवा कर अधिक लाभ उठाना चाहता था। आठ मासके लगातार कठिन परिश्रमसे 'हो' ने विलियमके लिए उसकी फरमाइशके मुताबिक एक मैशीन तय्यार कर दी। मैशीनके तय्यार होते ही विलियमने अपना वादा तोड़ दिया और 'हो' के लिये ऐसी दशा उपस्थित की कि उस विचारेको उसकी नौकरी छोड़कर भागना पड़ा। वह एक और चौथो मैशीन तय्यार करने लगा। पर मशीनकी लागतके लिये धन इकट्ठा करनेकी गरज़से उसने अपनी दुःखी और रोग-पीड़ित स्त्री तथा बच्चोंको घर भेज दिया। वह इतना गरीब था कि उसने अपना काम, अपने कुछ कपड़े गिरवी रखकर चलाया। तीन-चार महीनों की मेहनतके बाद उसने मशीन तय्यार करके एक आदमीको ५ पाउन्डका नोट लेकर बेच दी। उसने आवश्यकता और ऋण चुकानेके लिये उस नोटको चारहो पाउन्डमें भुनाया। फिर अपनी प्रथम मशीन और पेटेन्टके पत्र आदि गिरवी रखकर वह अपने घर पहुँचा। उसकी स्त्री अधिक रोगी होकर मृत्यु-शय्यापर पड़ी थी। उसे देखनेके लिये भी उसे १० डालरका ऋण लेकर जाना पड़ा।

उसने लन्दनसे लौटकर, अपने बाल-बच्चोंको मित्रोंके भरोसेपर छोड़कर, फिर फेरी लगानेका काम शुरू कर दिया। उसे घूमते-घूमते यह देखकर आश्चर्य हुआ कि, यद्यपि उसका आविष्कार भुला-सा दिया गया, पर सीनेकी मशीनोंने, जनतामें अपना रास्ता बना लिया था।

धूर्तोंसे भिड़न्त और सफलता

बहुतसे चतुर मिस्त्रियोंने सीनेकी मशीनें तय्यार कीं और बेंचीं। बोस्टनकी बनी हुई कुछ मैशीनें, बोस्टनमें ही रोज़ दुकानदारोंके यहाँ चलती थीं। इन मैशीनोंमें 'हो' की मशीनका बहुत कुछ मिलाव था। हो, दूसरोंको अपने परिश्रमके फल भोगते हुए देखकर, तथा अपनेको मुश्किलसे गुजारा करते हुए पाकर, इन बदमाश चोरों और चालाकी करनेवालोंसे लड़नेके लिए तय्यार हुआ। उसकी पहली मशीन और कागज जो कि उसे मशीन पेटेन्ट करते समय मिले थे, लन्दनसे छुड़ाकर मँगानेके लिए उसने सौ डालरका चन्दा जमा किया। सन् १८४९में उसको मशीन और पेटेन्ट-सम्बधी कागज विलायतसे वापिस आ गये।

उसने दूसरे आदमियोंको अपनी मशीन बनाकर बेचनेके लिए मना किया और उनको यह भी लिखा कि वह 'हो' से मशीनोंके बनाने और बेचनेका हक खरीद भी सकते हैं। एकको छोड़कर प्रायः सबने उसकी बात मान ली। तब उसने अदालतकी शरण ली और दावा करनेकी तय्यरी करने लगा। इस कामके लिए उसके पास पर्य्याप्त धन भी न था। उसने फिशरसे सहायता माँगी; पर फिशरने नहीं कर दी। सौभाग्यसे उसे एक ऐसा आदमी मिल गया, जिसने फिशरका हिस्सा स्वयं मोल लेकर 'हो'की सहायता की। सन् १८५१में तीन आदमी जेक्सन, जोनसन, और ह्विटिंग उसके पेटेन्टके साक्षी हो गये और मुकदमेबाजीमें गवाही वगैरा देनेको तय्यार हो गये। और सब उसके शत्रु तो बैठ गये, क्योंकि उनके पास न्यायालयमें लड़नेके लिए पूँजी न थी, पर एक

साबुनका पसीजना

[श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस-सी०]

अकसर देखा जाता है, कि साबुन की टिकी या टुकड़ेमें कुछ पानीकी-सी बूँदे जमा हो जाती हैं। साबुनके ऊपर इन बूँदोंका जमा हो जाना ही साबुनका पसीजना कहलाता है। आर्द्र या नम वायुमें तो साबुन अकसर करके पसीजते हुए देखे जाते हैं। पसीजनेकी क्रिया निम्न श्रेणीके साबुनों तथा किसी अन्य श्रेणीविशेष तक ही सीमित नहीं है। सभी श्रेणियोंके साबुन पसीजते हुए देखे गये हैं। विदेशी साबुन भी इस क्रियासे अछूते नहीं बचे हैं। यह पसीजना केवल आर्द्र या नम वायु ही तक सीमित नहीं है। बहुधा देखा गया है, कि जब साबुनकी बहुत-सी छड़ोंको एक बक्समें बन्द करके रख दिया जाये या ऐसे ही किसी खुले स्थानमें एक दूसरेके ऊपर रख दिया जावे, तो परस्पर संसर्गमें आनेवाले साबुन भी पसीजने लगते हैं। इधर कुछ समयसे भारतीय वैज्ञानिकोंका ध्यान इस ओर विशेष रूपसे आकृष्ट हुआ है साबुनके पसीजनेके कारण तथा उन्हें दूर करनेके उपायोंका अन्वेषण किया जा रहा है।

पसीजनेकी क्रियासे जो द्रव-कण साबुनके ऊपरी भाग पर दृष्टि-गोचर होते हैं वे या तो विशुद्ध जलके कण हो सकते हैं या विद्युतविच्छेद्य जलके कण। इन द्रव-कणोंके उद्गम्के बारेमें भी दो कल्पनाएँ की जा सकती हैं—

(१) ये द्रव-कण साबुनके अन्दर होनेवाली कुछ विशेष प्रक्रियाओंके कारण साबुनके ऊपरी भाग पर आकर एकत्रित हो जाते हैं।

(२) ये द्रव-कण आर्द्र वायुके जलकण हैं और साबुनकी जलग्राहक क्रियाओंके कारण साबुनपर जमा हो जाते हैं।

भारतीय वैज्ञानिकोंमें से अभीतक जिन महानुभावोंने इस ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया है उनमें काशी विश्वविद्यालयके डा० एन० एन० गाडबोले और उनके शिष्य श्री सद्गोपाल तथा कानपूर टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूटके डा० नन्दगोपाल चटर्जीके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। डा० गाडबोलेने अपनी खोजके परिणाम अखिल-भारतीय साबुन व्यवसायी संघके मुखपत्र 'इण्डियन सोप-जरनल'में प्रकाशित भी कराये हैं। विगत अंकोंमें इस सम्बन्धमें जो कुछ प्रकाशित हुआ है उससे यह स्पष्ट हो जाता है, कि डाक्टर गाडबोले महोदयका ध्यान पसीजनेकी क्रियासे उत्पन्न होनेवाले द्रव-कणोंके उद्गम्स्थानको ढूंढनेकी ओर विशेष रूपसे आकृष्ट हुआ है। उन्होंने इस सम्बन्धमें जो खोजें की हैं उनसे उनका यह विश्वास भी स्पष्ट हो जाता है, कि साबुन पर एकत्रित होनेवाले द्रव-कण आर्द्रवायुके जल कण ही हैं और वे साबुनकी जलग्राहक क्रियाके कारण साबुनपर जमा हो जाते हैं। अभीतक पसीजनेकी क्रियाद्वारा उत्पन्न होनेवाले द्रव कणोंके गुण और स्वभावकी जाँच करनेके लिए कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं किये गये हैं। वास्तवमें इन द्रवकणोंका उद्गम् स्थान ज्ञात करनेके साथ ही साथ इनके गुण और स्वभावको भी जाननेकी ज़रूरत है। इस बातका भी पता लगना चाहिये कि ये द्रवकण विशुद्ध जलके कण हैं, इनमें नमकका प्राधान्य है या साबुन अथवा क्षार का। इन बूंदोंमें उपस्थित नमक अथवा क्षारकी

मनुष्य, आइजक मेरिट सिंगरने उससे लोहा लिया और सामना किया।

इस मुकदमेबाजीके समय भी होको इतना अवकाश रहा कि वह चौदह और मशीनोंके बनवानेके कामकी ओर देखता रहा। इन मशीनोंमें से कुछको तो उसने एक वोरसेस्टरके मोचीके हाथ बेचा और कुछको अन्य ब्राडवेके दर्जियोंके हाथ। इनमेंसे एक मशीन अक्तूबर १८५१,के केसिलगार्डनके मेलेमें भी दिखायी गयी थी।

मात्रा साबुनमें उपस्थित नमक या क्षारकी मात्राके समान है या कुछ कमोबेश।

वास्तवमें यदि केवल नम हवामें रखने से ही साबुन पसीजते तब तो यह बात अवश्य ही माननी पड़ती कि हवामें मौजूद जलकण ही साबुनपर आकर जमा हो जाते हैं ; परन्तु साबुनके कई टुकड़ोंको एक दूसरेके ऊपर रखनेसे भी अकसर पसीजते हुए देखे जाते हैं। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि ये बूँदें साबुनके अन्दर ही से निकलकर ऊपर जमा हो जाती हैं। ऐसी स्थितिमें इन बूँदोंकी जांच परमावश्यक हो जाती है। बूँदोंकी ठीक-ठीक जांच किये बिना इनके ठीक-ठीक उद्गम स्थानका भी पता मालूम करना मुश्किल है। अधिक सम्भावना तो इसी बात की मालूम होती है कि साबुनके बाहरी भागपर जमा होने वाले द्रव पदार्थके उद्‌गम स्थान, नम हवा और साबुनका आन्तरिक भाग दोनों ही हैं। द्रव पदार्थके भलीभाँति निरीक्षण करनेसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

साबुनके पसीजनेसे जो द्रव जमा होता है, उसे एकत्रित करके उसकी विधिवत् जांच की जाय। उसमें मौजूद नमक और स्वतंत्र क्षारकी मात्राका पता लगाया जाय। आर्द्र-वायुमें रखनेसे जो द्रव जमा हो और दो साबुनके टुकड़ोंको तैल ऊपर रखनेसे जो द्रव पदार्थ जमा होते हैं उन दोनोंके विश्लेषण और तुलना करनेसे इस समस्या पर काफी प्रकाश पड़ सकता है।

ताप-क्रमके घटनेके साथ ही विद्युत्‌विच्छेदक प्रभावों के विरुद्ध साबुनका स्थायित्व भी कम होता जाता है। साधारण तापक्रमपर साबुन नमककी जितनी मात्राको अपनेमें रख सकता है यदि वह उससे अधिक हुई तब वह अधिक मात्राअलग होनेकी चेष्टा करती है। परन्तु जमे हुए साबुनमेंसे उसका नमकके घोलका अलग हो सकना आसान काम नहीं है। परन्तु इसका अलग होना अवश्य भावी है। अस्तु यह नमकीन घोल उसी प्रकार साबुनके बाहर निकल जाता है जैसे स्पंजके दबानेपर कोई द्रव पदार्थ परन्तु यह कल्पना केवल उसी दशामें सत्य सिद्ध हो सकती है जब साबुनके पसीजनेसे जो द्रव पदार्थ जमा होता है उसमें नमकका प्रधान्य हो। बहुत सम्भव है कि इस द्रवपदार्थमें स्वतंत्र क्षारकी उपस्थिति भी इसी कल्पनाके आधारपर समझायी जा सके।

साबुनके पसीजनेका एक कारण और भी हो सकता है। साबुनकी आकृति और रचनामें शनेःशनैः कुछ-न-कुछ परिवर्तन बराबर होते रहते हैं। बाहरसे देखनेपर और अनुवीक्षण यन्त्रद्वारा जाँच करनेपर मालूम हुआ है कि साबुनकी रचनामें धीरे-धीरे किन्तु बराबर थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहता है। इसी परिवर्तनके कारण साबुन 'जैल' की दशासे मणिभ दशामें परिवर्तित हो जाता है। इस परिवर्तनके दौरानमें साबुनका स्वभाविक विशिष्ट पृष्ठि भी परिवर्तित हो जाती हैं। इस अवसरपर शोषक-क्षमता में परिवर्तन होते हैं। बहुत सम्भव है कि इन परिवर्तनोंमें साबुनकी शोषक क्षमता कम हो जाती हो और अमणिभ साबुन नमकका जितना घोल अपने में रोके रख सकता है, उतना घोल मणिभ साबुन अपनेमें न रख सकता हो। ऐसी स्थितिमें कुछ द्रव पदार्थका बाहर निकल जाना स्वाभाविक प्रतीत होता है।

भारतीय कालेजोंके विद्यार्थी

फिजूल-खर्ची और विदेशी प्रेम

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रायके विचार

रतमें कालेजके विद्यार्थियोंको मासिक खर्चके लिये साधारणतः ४०) से ५०) तक दिया जाता है। इनके माता-पिता, जो इनका खर्च चलानेके लिये प्रायः जीवनकी नितांत आवश्यकताओंकी पूर्ति भी नहीं करते या अपने घर और जमीनतक बन्धक रख देते हैं, घरके सारे काम करते हैं। छुट्टीके दिनोंमें घर आनेपर ये युवक, जिनसे माता-पिताको बड़ी-बड़ी आशाएँ रहती हैं, घरके कामोंसे बरी रहते हैं और अपना अमूल्य समय गपशप करने, ताश खेलने नाटककी तैयारी करने या सोनेमें बिताते हैं।

प्राचीन कालमें विद्यार्थीको आश्रममें रहकर गुरुसे शिक्षा ग्रहण करते समय गायें चरानी पड़ती थीं, जलावन एकत्र करना पड़ता था तथा खेतीके काम करने पड़ते थे अर्थात् उसे शिक्षा प्राप्त करनेके लिये मजूरी करनी पड़ती थी।

आजकल छात्रावास, विशेषकर जो सरकारी निरीक्षकतामें हैं, स्वदेशी विरोधी संस्कार उत्पन्न करनेवाले केन्द्र हो रहे हैं। इनमें रहनेवाले विद्यार्थी ४५) मासिकसे अपना खर्च नहीं चला सकते। कलकत्तेमें रहनेवाले मेरे कुछ पञ्जाबी मित्रोंने मुझे बताया है कि पञ्जाबमें विशेषकर लाहौर नगरमें उन्हें अपने लड़कोंको पढ़ानेमें १००) मासिक तक, और कभी-कभी इससे भी अधिक खर्च पड़ जाता है।

हमारे अधिकारियोंकी नजरोंके सामने तो आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज हैं, वे यहां भी आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज बनाना चाहते हैं। विद्यार्थियोंको टेनिस खेलनेके लिये ब्लज़र और ट्राउज़र होने चाहिये और क्रिकेट खेलनेके लिये फलालैनके सूट। उनके तेल साबुनमें भी काफी खर्च होता है। इन छात्रावासोंमें रहा हुआ प्रत्येक विद्यार्थी सचमुच विदेशी धन शोषकोंका हस्तक बन जाता है।

पांच वर्ष पूर्व जब मैं पेरिसमें था तब जांच करनेपर मुझे मालूम हुआ था कि पोलैंड और आसपासके देशोंके हजारों विद्यार्थी वहाँ बहुत ही कम खर्चमें रहकर पढ़ रहे हैं। आज भी प्रेग विश्वविद्यालयमें, जो युरोपका सबसे प्राचीन विद्यालय है और जहां सबसे अच्छी वैज्ञानिक तथा साहित्यिक शिक्षा दी जाती है, विद्यार्थी बहुत कम खर्चमें अपना काम चलाते हैं। ४० प्रतिशत विद्यार्थियोंकी आय केवल ३ पौंड या ४२) मासिक है और ३८ प्रतिशत विद्यार्थियोंकी फीस गरीबीके कारण माफ है। औसतन विद्यार्थीको करीब २ पौंड ४ शिलिंग या ३०) में अपना मासिक खर्च चलाना पड़ता है।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि श्री बर्नार्डशा आक्सफोर्ड और केम्ब्रिजको बड़प्पनका झूठा भाव पैदा करनेवाले स्थान बताकर उनकी निन्दा करते हैं और कहते हैं कि यदि मुझे शक्ति होती तो मैं इन दोनों विश्वविद्यालयोंको जमींदोज कर देता। कोई आश्चर्य नहीं जो श्री रैमज़े मेकडोनल्ड कहते हैं कि 'मेरे विचारमें विश्वविद्यालयका जीवन अधिकांश आदमियोंको लाभके बजाय हानि पहुँचाता है।'

और एक ग्रेजुएटकी औसत आमदनी क्या है? प्रोफेसर के० टी० शाहने पूछने पर बताया कि बम्बईके ग्रेजुएटोंकी औसत आमदनी २५) मासिकसे अधिक नहीं है। मेरे हिसाबसे मद्रास और कलकत्तेके ग्रेजुएटोंकी औसत आमदनी भी इससे अधिक नहीं है। धिक्कार है ऐसी शिक्षा और संस्कृतिको जो हमें घरके बने कपड़ेको छोड़कर विदेशी मिलोंके महीन कपड़ेसे प्रेम करना सिखाती है, जो हुक्के और फरशीको बर्बरताकी निदर्शक समझना सिखाती है। अगर आप सिगरेट ही पीने पर उतारू हैं तो देशी सिगरेट या बीड़ी क्यों नहीं पीते? पर वह तो देशी तमाखू और

पत्तोंसे बनती है और सिगरेटमें बना हुआ सुनहरा विदेशी तमाखू रहता है, जो पतले विदेशी कागजमें लपेटा रहता है। आप इसी एक मदमें दो करोड़ रुपया प्रतिवर्ष विदेश भेज देते हैं।

मैंने गोंदियाके आसपासके बीड़ीके कुछ कारखाने देखे हैं और मुझे बताया गया है, कि मध्यप्रान्तकी इस ऊसर भूमिमें करीब ५० हजार स्त्री-पुरुष बच्चे बीड़ी बनाकर एक दो आना रोज कमा लेते हैं। इस प्रकार यह घरेलू धन्धा आधे लाख खाली पेटोंमें रोटीके कुछ टुकड़े पहुँचाता है। अब ये बीड़ियाँ खरीदते कौन हैं? बड़े अधिकारी, सफल वकील या अपनी संस्कृतिका अभिमान करनेवाले कालेजके विद्यार्थी नहीं, गाड़ीवान, मजूर और ऐसे ही लोग इनके खरीदार हैं। शिक्षित वर्गके कहानेवाले लोग तो परोपजीवी हैं, जो साधारण जनता, देशके धनके प्रकृत उत्पादक किसानोंकी गाढे पसीनेकी कमाईपर पल रहे हैं। ये लोग देशके धनको विदेश पहुँचा देनेका जरिया बन रहे हैं।

गाँवसे जब कोई विद्यार्थी शहरमें आता है, तो अपने साथियोंकी नकल करने लगता है और खर्चीली आदतें सीख लेता है। अब उसके कपड़े मामूली धोबीके धोनेसे साफ नहीं हो सकते, उन्हें रंगाई धुलाईका काम करनेवाली किसी दूकानसे धुलाना होगा। उसके बाल साधारण नाईके बदले ठाठ-बाटवाले सैलूनोंमें कटेंगे। तीसरे पहरका जलपान वह किसी जलपानगृहमें जाकर करेगा, जो नगरके हिन्दुस्तानी हिस्सेमें बरसाती कीड़ोंकी तरह जनम रहे हैं। शामको—कमसे कम हफ्तेमें दो बार उसे सिनेमा भी जाना चाहिए। वह भूल जाता है, कि उसके ये खर्च पूरा करनेके लिए उसके गरीब माँ-बापको कटौती करनी पड़ती होगी। बेचारे माँ बापका गला दबाकर रुपया लेना और उसे इस प्रकार विलासितामें उड़ाना विद्यार्थियोंकी ऐसी स्वार्थपरता है, जिसे नीचता भी कह सकते हैं। अवश्य ही विद्यार्थीको अपने खर्चके लिए अपने माँ-बापसे रुपया लेनेका हक है; पर उसका खर्च कमसे-कम होना चाहिये।

जो लड़के अपने माँ-बापकी गाढ़े पसीनेकी कमाईको बेदर्दीके साथ उड़ाते हैं निम्न-लिखित वाक्य उनके लिये लाभजनक हो सकते हैं—

'वे कष्ट और कठिनाईके दिन थे। जाड़ेमें मुझे और मेरे पिताजीको अन्धेरेमें ही उठकर जलपान करना और उजाला होनेके पहले ही कारखानेमें पहुँच जाना और अन्धेरा हो जाने तक काम करते रहना पड़ता था। बीचमें दोपहरके भोजनके लिये थोड़ी देरकी छुट्टी मिलती थी। दिन पहाड़ हो जाता था, काममें भी कुछ मजा न मिलता था; पर इस काली घटामें भी एक प्रकाशकी रेखा थी। इस मजूरीसे मैं अपने मनमें यह अनुभव करने लगा, कि मैं अपनी दुनिया, अपने कुटुम्बके लिये कुछ कर रहा हूँ। तबसे मैं करोड़ों रुपया पैदा कर चुका; पर जो आनन्द मुझे अपने पहले हफ्तेकी मजूरी पाकर मिला था वह इन लाखों करोड़ोंसे नहीं मिला। उससे मैं अपने कुटुम्बका सहायक, रोटी कमानेवाला था और अपने माँ-बापपर सोलहो आने बोझ नहीं था।'' 'ऐन्ड्रू कारनेगी।' अपने ही पुरुषार्थसे उन्नतिकी चोटीपर पहुँचनेवाले इस व्यक्तिने ३५ करोड़ डालरसे अधिक अर्थात् एक अरब रुपया लोकोपकारके लिये दान दिया है।

जब मैं लण्डनमें था, प्रायः उसी समय यशस्वी ग्रन्थकार एच० जी० वेल्स भी वहाँ रहते थे। साउथ केनसिंगटनके नार्मल स्कूल आव सायंसमें पढ़ते थे, जहाँ उनकी फीस माफ हो गई और निर्वाहके लिए एक गिनी प्रति सप्ताहकी सहायता मिला करती थी। अपने आत्मचरितमें इन्होंने लिखा है—

'मेरे समयमें दोबार आधपेट खाकर रहनेवाले विद्यार्थी कमजोरीके कारण मूर्च्छित हो गये। साउथ केनसिंगटनमें मेरे स्वास्थ्यकी जो हानि हुई उसका फल मुझे सारी जिन्दगी भुगतना पड़ा। मुझे उसी एक गिनी प्रति सप्ताहकी वृत्तिपर गुजर करना पड़ता था। १८८७तक मेरा शरीर ऐसा 'डाँगर' हो गया था, कि लज्जा मालूम होती थी। पूरा भोजन न मिलनेसे ही मेरी यह दशा हो गई थी।'

सिनेमाकी आदत भी प्रायः शराबकी लत जैसी होती है। कितने ही लड़कोंके बारेमें मालूम हुआ है, कि वे नाश्ता बन्द करके सिनेमा जानेके लिए पैसा बचाते हैं। कालेजके कितने ही छात्रोंको काफी पौष्टिक भोजन भले ही न मिले; पर सिनेमा अवश्य जाना चाहिए। सिनेमाके तमाशे विद्यार्थियोंके अर्थ कष्टको और बढ़ानेके अतिरिक्त उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्यको भी नाश करते हैं। घन्टों उन्हें बन्द जगह और गन्दी हवामें बैठे रहना पड़ता है। आँखपर भी जोर पड़ता है। वासनाओंको उत्तेजित करनेवाले काल्पनिक दृश्योंकी ओर प्रबल रुचि इसकी सबसे बड़ी खराबी है।—इण्डियन रिव्यू।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

नवम्बरके दो सम्मेलन

पिछले नवम्बर मासमें दो सम्मेलन बड़े महत्वके हुए। नवम्बरके पहले सप्ताह-भर पंचभूत-त्रिदोष-परिषत्के लगातार आठ अधिवेशन काशी-हिन्दू-विश्व-विद्यालयमें हुए। फिर १० नवम्बरसे १४ नवम्बरतक पांच दिनतक इन्दौरमें अखिल भारतीय ज्यौतिष-सम्मेलन हुआ। १५ नवम्बरको विज्ञान-परिषत्का वार्षिकोत्सव हुआ। इस प्रकार नवम्बर मासके पहले पन्द्रह दिन भारतीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक जगत्में बड़े जोरोंसे विचार-मंथन हुआ। जिसका फल बहुत ही सन्तोषप्रद हुआ। ये सम्मेलन अपने ढंगके पहली बार ही हुए हैं। परन्तु इन्हें हम अन्तिम कदापि न कहेंगे। यह तो आरम्भ हुआ है, और बहुत ही कल्याणकारी आरंभ हुआ है। विद्वानोंके इसी तरहके सम्मेलन और विचार-विनिमय हरसाल होने चाहिए। इन सम्मेलनोंसे हमारा विमर्शक्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता जायगा और हम संसारकी वेगवती प्रगतिके साथ-साथ चलने लग जायँगे।

पंचभूत-त्रिदोष-परिषदें

आयुर्वेद-सम्मेलन मुद्दतसे अपने वार्षिक अधिवेशनमें इस प्रकारकी चर्चामात्र करके रह जाता था। अनेक वैद्य चाहते थे कि इस विषयपर पूरा विचार हो और आयुर्वेदमें यदि कोई त्रुटि हो तो उसे दूर करनेकी पूरी चेष्टा की जाय। परन्तु कुछ हो न पाता था।

हमारे सहसम्पादक स्वामी हरिशरणानन्दजी आयुर्वेद सम्मेलनोंमें आवाज उठाते थे, परन्तु जब इनकी सुनाई न हुई तो इन्होंने त्रिदोष-मीमांसा नामक ग्रंथ लिखकर आयुर्वेदानुयायिओंको खुली चुनौती दी कि पंचभूत और त्रिदोषकी शास्त्रीय धारणाओंको या तो ठीक सिद्ध करें अथवा उन्हें बदलें और आधुनिक विज्ञानके दृष्टिकोणसे उनमें सुधार करें। यह चुनौती ५००)के पुरस्कारसे पुष्ट की गयी और प्रतिमास आयुर्वेद संसारको इसकी चेतावनी जारी रखी गयी।

इस चुनौतीका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। स्वामीजी की उक्तियों और युक्तियोंका धैर्यपूर्वक ठीक-ठीक तर्कसंगत उत्तर देनेके बदले हमारे अनेक विद्वान् मित्र अधीर होकर स्वामीजीपर व्यक्तिगत आक्षेप भी करने लगे और इस प्रकार अपने विचार-दौर्बल्यका प्रमाण भी देने लगे। जो धैर्यवान् थे, उन्होंने त्रिदोष मीमांसापर ठंढे दिल से विचार किया और विद्वत्सम्मेलनका निश्चय किया। विद्वद्वर श्रीयादवजी त्रिकमजी आचार्यने त्रिदोष-मीमांसाकी प्रतियाँ मोल मँगवा-मँगवाकर विद्वानोंमें वितरण करायीं। फिर भी आज तक किसीने विधिवत् खंडनमें ग्रंथ लिखकर ५००) पुरस्कार लेनेकी चेष्टा न की और सम्मेलन होकर ही रहा। श्रीकाशी हिन्दू-विश्वविद्यालय इसके लिए समुचित स्थान चुना गया। कई तिथियाँ बदली गयीं। अन्ततः २ नवम्बरसे ८ नवम्बरतक एक सप्ताहतक विचार हुआ। उसका फल, चाहे हमारे परम मित्र स्वामी हरिशरणानन्दजीकी दृष्टिमें सन्तोषदायक न हो, फिर भी सम्मेलनकी दृष्टिसे हम भविष्यके लिये बहुत आशा-जनक समझते हैं, और नीचे अविकल उद्धृत करते हैं।

काशी-हिंदू विश्वविद्यालये सम्मिलितायाः पंचभूत-त्रिदोषपरिषदो निर्णयाः

(१) पंचभूतचर्चापरिषदोनिर्णयाः

तीन दिन पर्यन्त पञ्चमहाभूत परिषदमें पञ्चमहाभूत सिद्धान्तके सम्बन्धमें प्राच्यप्रतीच्य विज्ञानकी दृष्टिसे जहांतक विचारविनिमय हुआ है उससे हम लोग जिस निर्णयपर पहुँचे हैं वह यह है कि—

(क) प्रतीच्य वैज्ञानिकोंके पदार्थ वर्गीकरणका दृष्टिकोण एवं मुख्य लक्ष्य प्राचीन ऋषियोंके दृष्टिकोण एवं मुख्य ध्येयसे

अत्यन्त भिन्न है। ऐसा होते हुए भी परिषद्में होनेवाले वादविवादसे हम लोग एक ऐसी भूमिकाका अनुभव कर रहे हैं, कि आगे चलकर हमलोग ऐसे सम्मेलनके द्वारा किसी एक उपादेय निर्णयको प्राप्त कर सकेंगे, जो कि प्रत्यक्ष तथा अनुभावात्मक तर्कपर स्थित हो सकेगा।

(ख) इस समयतक प्रतीच्य वैज्ञानिकोंके द्वारा किये हुए बानवे ९२ मूलतत्त्वों एवं तन्मूलभूत विद्युतकणोंके वर्गीकरणकी दृष्टिसे पञ्चमहाभूत वर्गीकरण सिद्धान्तका विचार करनेसे परिषद् इस निश्चित मत पर पहुँच चुकी है कि इन वर्गीकरणोंका परस्पर कोई विरोध नहीं है।

श्री प्रमथनाथ शर्मा (महामहोपाध्याय)
फणिभूषणतर्कवागीश (महामहोपाध्याय)
सत्यनारायण शास्त्री वैद्य
श्री शंकर तर्करत्न
जि० श्रीनिवासमूर्ति (कैप्टन)
बालकृष्ण अमरजी पाठक (डाक्टर)
श्री मधुसूदन विद्यावाचस्पति
श्री गणनाथ सेन शर्मा (महामहोपाध्याय)
लक्ष्मीराम स्वामी
श्रीधर सर्वोत्तम जोशी (प्रोफेसर)
श्री राजेश्वरशास्त्री द्रविड़
श्री देवनायक आचार्य

(२) त्रिदोषचर्चापरिषदो निर्णयाः

१ सर्वायुर्वेदकार्यमूलभूतत्वात् त्रिदोषज्ञानं सप्रयोजनम्।

२ वातादीनां धातुत्वं दोषत्वं मलत्वं च अवस्थाविशेषेणाभिव्यज्यते। तच्च परस्पराविरुद्धम्।

३-४ सर्वप्राकृतकर्मसु सकर्तृत्वनियामकत्वे सति स्वातन्त्र्येण दूषणशीलत्वं दोषत्वम्। तच्च वातादिषु त्रिष्वेव नान्यत्र। तस्मात् त्रय एव दोषाः।

५ शक्तेर्द्रव्याधिष्ठितत्वेन स्वतन्त्रावस्थित्यभावात् वातादिनां न शक्तित्वं किन्तु द्रव्यत्वमेव।

६ पित्तकफयोरवस्थाभेदेन स्थूलत्वं (चक्षुरिन्द्रियग्राह्यत्वम्) सूक्ष्मत्वं (चक्षुरिन्द्रियाग्राह्यत्वम्) वायोस्तु पित्तकफापेक्षया सूक्ष्मत्वम्। अव्यक्तो व्यक्तकर्मा च इत्यभिधानात्। उपाधिनिष्ठस्यतु वायोर्बहिरिन्द्रियग्राह्यत्वमपि नीलं नभ इतिवत्।

७ अदृष्टोपगृहीतानि पञ्चमहाभूतान्येव वातादीनामुपादानानि। तदुत्पत्तिक्रमस्तु चरके शारीरस्थाने ४ अध्याये निर्दिष्टः। यथा 'तत्र पूर्वं चेतनाधातुः सत्वकरणो गुणग्रहणाय प्रवर्त्तते।......स गुणोपादानकाले अन्तरिक्षं पूर्वतरमन्येभ्यो गुणेभ्य उपादत्ते; प्रलययात्यये सिसृक्षुर्भूतान्यक्षरभूतसत्त्वोपादानः पूर्वतरमाकाशं सृजति; ततः क्रमेण अव्यक्तान् धातून् वाय्वादिकांश्चतुरः; तथा देहग्रहणेऽपि प्रवर्तमानः पूर्वतरमाकाशमेवोपादत्ते; ततः क्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातून् वाय्वादिकांश्चतुरः, सर्वमपि तु खल्वेतद् गुणोपादानमणुना कालेन भवति।'

८ वातादीनां स्वरूपं (तन्मात्रविषयकधीविषयः) चरकोक्तं वायोः 'रौक्ष्यं लाघवं वैशद्यं शैत्यं गतिः अमूर्तत्वं चेति वायोरात्मरूपाणि।' पित्तस्य 'औष्ण्यं तैक्ष्ण्यं लाघवं अनतिस्नेहो वर्णश्च शुक्लारुणवर्ज्यो गन्धश्च विस्रो रसौच कटुकाम्लौ पित्तस्यात्म रूपाणि।' श्लेष्मणस्तु 'स्नेहशैत्यशौक्ल्यगौरवमाधुर्यमात्स्न्यानि श्लेष्मण आत्मरूपाणि भवन्ति।' गुणाः कर्माणि च ग्रन्थोक्तान्ये।

९ वातादीनां प्रत्येकं पञ्चविधत्वं वास्तविकम्, तच्च स्थानकार्यभेदोत्पन्नं; कार्यस्वरूप भेदस्तु तन्निबन्धन एव।

१० रोगान् प्रति सदूष्याणां वातादीनां समवायिकारणत्वं सूक्ष्मरूपाणान्तु निमित्तकारणत्वम्। दोषदूष्यसम्मूर्छनायाश्च असमवायिकारणत्वम्। रोगविशेषान् प्रतिकीटादीनान्तु निमित्तकारणत्वम्।

श्री मधुसूदन विद्यावाचस्पतिः जयपुरम्
बालकृष्ण अमरजी पाठकः (डाक्टर)
लक्ष्मीराम स्वामी
गणनाथ सेन शर्मा
जि० श्रीनिवासमूर्तिः (कैप्टन)
सत्यनारायण शास्त्री वैद्यः
श्री राजेश्वर शास्त्री द्राविड़ः
श्रीदेवनायक आचार्यः

सभाया विस्तृतेतिवृत्त विवरणं तु शीघ्रमेव पृथक् संमुद्रय प्रकाशयिष्यते।

यादवजी त्रिकमजी आचार्यः मन्त्री।

त्रिदोष-मीमांसा और पुरस्कार

'त्रिदोष-मीमांसाके खंडनात्मक ग्रंथ पर ५००) पुरस्कार जो स्वामीजीने घोषित कर रखा है, वह तो अब भी यथा-पूर्व विद्वत्समुदायके सामने है। सम्मेलनने पुरस्कारकी शर्त्त तो पूरी नहीं की है। हमारे मित्र कविराज उपेन्द्रनाथदासजी न जाने क्यों बारम्बार उसे नष्ट करने और जला देनेका आग्रह कर रहे हैं। क्या नष्ट करने या जला देनेसे उसकी स्थापनाओं-का खंडन हो जायगा? क्या नासिकके अछूतोंने मनु-स्मृतिको और पूर्वकालके मुसलिमोंने हमारे धार्मिक ग्रंथोंको जलाकर उनका खंडन किया है? जलाने या अन्य प्रकारके अपमानसे कर्त्ताकी द्वेषबुद्धिमात्र सिद्ध होती है, उसकी बुद्धिमत्ता नहीं। यदि कविराजजीके मतसे सम्मेलनने त्रिदोष-मीमांसाका खंडन कर दिया है, तो उसकी पर्याप्तता मानकर कविराजजीको सन्तुष्ट हो बैठना चाहिए। कुछ अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। यदि वह समझते हैं कि उसने पर्याप्त खंडन नहीं किया है, तो स्वयं खंडनात्मक उत्तर-ग्रंथ लिखकर पुरस्कार लेना चाहिए। वह तो पुरस्कार ग्राहीके लिये जलनेपर भी अदाह्य बनी रहेगी, यदि उसकी स्थापनाएँ सत्य हैं तो विरोधीको सदा शूलसी चुभती रहेंगी, असत्य हैं तो विद्वानोंपर उनका प्रभाव ही नहीं पड़ सकता। असत्यमें जीवन कहाँ है जो घात-प्रतिघात कर सके? माया ग्रस्तको ही असत्य दुःखदायी होता है।

हम स्वामी हरिशरणानन्दजीको उनकी कृतिकी भारी सफलतापर सहर्ष बधाई देते हैं। काशीकी पंचभूत त्रिदोष संभाषापरिषद् उनकी ही उत्प्रेरणाका फल है और त्रिदोष-मीमांसाकी बदौलत हम प्रायः हर साल ऐसा विद्वत्सम्मेलन काशीमें देखेंगे। स्वामीजीको इस सत्प्रेरणाके लिये विद्वत्स-मुदाय जितना ही धन्यवाद दे थोड़ा है। जिस परस्पर सद्-विचार-विमर्शके अभावमें कर्नल बकले सदृश आयुर्वेदसे अनभिज्ञ और अनधिकारी विद्वान् आयुर्वेदको अवैज्ञानिक कह बैठनेकी धृष्टता करते हैं, उसको आपकी ही उत्प्रेरणाने संभव बनाया यह, थोड़ी बात नहीं है।

—रा० गौ०

अखिल भारतीय ज्यौतिष-सम्मेलन

हमारे पाठक हमारे पंचांगोंके मतभेद और अयुक्तता पर इसी पत्रमें कई बार लेख पढ़ चुके होंगे। ग्रहलाघवके बने चार सौ बरस हो गये। स्वयं गणेश दैवज्ञने अपने जीवनमें ही उसे बीजसंस्कार दिया। परन्तु उनके बाद बीजसंस्कारके अभावके कारण वेधसे उसकी गणनाका मेल नहीं मिलता। मकरंदादि अन्य करण ग्रन्थोंकी भी ऐसी ही दशा है। इस आवश्यकताको सभी सत्यप्रेमी अनुभव करते आये हैं, कि हमारी गणानाके फल वेधके अनुकूल हों। परन्तु सारे भारतके ज्योतिर्विदोंमें मतैक्य हो जाय तभी यह संभव है। विशेषतया (१) वर्षमान, (२) अयनगति, (३) अयनांश, (४) राशिचक्रारंभस्थान, (५) बाणवृद्धिरसक्षयका प्रश्न तथा (६) दृक्प्रत्यय—इन छः विषयों पर अखिल भारतीय मतैक्य स्थापना बिना हुए काम नहीं चल सकता। इस पंचांगैक्यके लिए बड़ी मुद्दतसे विद्वद्वर विद्याभूषण वेदरत्न पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैट यत्नशील रहे हैं। सन् १९२९में इन्दौरके महाराजा-धिराजकी कृपासे वहाँ एक सभा स्थापित हुई जिसका उद्देश्य यही था। इसके अध्यक्ष उक्त शास्त्रीजी चुने गये। शास्त्रीजी ज्योतिषवेदांगके मर्म्मज्ञ अन्वेषक एवं उद्भट विद्वान् हैं। आपके छः वर्षके परिश्रमका फल वह पंचवार्षिक रिपोर्ट है जो उक्त सभाकी ओरसे प्रकाशित हुई है। उन्होंने इस रिपोर्टको देशके प्रमुखविद्वानोंके पास भेजकर न केवल दो सौके लगभग अनुकूल सम्मतियाँ प्राप्त कीं, वरन् अपनेसे भिन्न मतवालोंके भी गंभीर अनुशीलनका पूरा अवसर दिया। जब देशके विद्वानोंके सम्मुख यह प्रश्न अपने विस्तृत रूपमें खड़ा हो गया, तब शास्त्रीजी स्वयं काशीमें आकर एक डेपुटेशन लेकर महामना पंडित मदन-मोहन मालवीयजीसे मिले और उन्हें न्याय-मण्डलका मण्डलाध्यक्ष बननेके लिये राजी किया। सम्मेलनका समय यद्यपि १० नवम्बरसे था, तथापि अक्टूबरके अन्तिम सप्ताह से ही दूर-दूरसे ज्योतिर्विद आकर इन्दौरमें ठहरे और ९ नवम्बर तक नित्य-नित्य दिन-दिनभर बैठकर विचार विनिमय करते रहे। सम्मेलन भी पूरे पाँच दिनतक बड़े समारोहसे हुआ। यों तो ज्यौतिष-सम्मेलन पहले भी हो चुके हैं, परन्तु यह सम्मेलन प्रतिनिधिसंख्यामें और पद्धतिमें पिछलोंसे कहीं अधिक महत्वका था। ४१ विद्वानोंके न्याय-मण्डलके समक्ष विविध पक्षोंके प्रतिपादकोंने पूर्व पक्ष और

विरोधियोंने उत्तर पक्ष रखे। अन्तिम निर्णय अभी स्थगित रखा गया। यह निश्चय हुआ कि पं० दीनानाथ शास्त्री तथा अन्य पंचांगकार अपने-अपने पंचांग बनाकर निश्चित अवधिके भीतर एकताके उद्देश्यसे तैयार करें। इन पंचांगों-पर न्यायमंडल विचार करके यह निश्चय करेगा, कि कौन पंचांग वेदोपयुक्त और ऐक्य-विधायक है। इसमें तो सबका मतैक्य था कि ग्रहलाघवको बीजसंस्कार देना आवश्यक है, परन्तु वह बीजसंस्कार क्या हो, इसका निश्चय पंचांग-निर्माण और उसकी वेधोपलब्ध शुद्धतापर ही निर्भर है। सम्मेलन-की अन्तिम बैठकमें शास्त्रीजीने अपने विपक्षियोंके जो उत्तर दिये उससे शास्त्रीजीकी अलौकिक विद्वत्ताका प्रमाण मिला और इनकी उस सम्मेलनमें भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। इस संबंधका प्रस्ताव भी पास हुआ। एक विद्वान्‌के प्रकृत योग्यताको भारतके चुने हुए विद्वानोंने माना, यह उचित ही हुआ। हम शास्त्रीजीको उनके परिश्रमकी सफलतापर और उनके उचित कीर्त्ति-विस्तारपर सादर बधाइयाँ देते हैं। बहुत कम लोग जानते हैं कि शास्त्रीजीने भोजन विश्राम आदिको छोड़ दिन-रात एक कर डाला, इस बुढ़ापेमें सारी रात जागकर सबेरे दो-दो घंटे सोकर फिर काममें जुट जाते थे। इतना घोर अमानुषिक परिश्रम अलौकिक आध्यात्मि-कता और तपस्यासे ही संभव है।

—रा० गौ०

दीक्षान्त भाषणोंकी धूम

इधर अनेक विश्वविद्यालयोंमें उपाधिदानोत्सव भी हुए हैं। दीक्षान्त भाषणोंमें आधुनिक शिक्षापद्धतिके पक्ष और विपक्षमें भाषण हुए हैं। यह तो प्रतिवर्ष होता रहता है। शिक्षा चाहे कितनी ही अच्छे प्रकारकी मान ली जाय, वह अत्यन्त खर्चीली है ही इसमें तो लेशमात्र सन्देह नहीं है। अभिभावकोंके ऊपर कितना भारी बोझ पड़ रहा है, सभी जानते हैं। और राष्ट्रके सिर पीछे आयकी बात पूछने लायक नहीं है। सिर पीछे ६ पैसे रोज़! और परिणाम ऐसा है कि जो पूँजी लगाकर लड़केको शिक्षा दी जाती है, शिक्षित हो जानेपर उसका सूद भी वसूल नहीं होता और शिक्षित भी होता है तो उसे कोरी-कोरी जानकारी होती है, व्यावहारिकता रत्तीभर नहीं आती।

वर्तमान शिक्षाके दोष

पढ़ा-लिखा होना हमारी मनोवृत्तिको झूठे आत्मसम्मान-से ऐसा भर देता है कि हम अपनी सेवा आप करते लजाते हैं, और परावलम्बी होनेमें ही अपनी शान समझते हैं। अपने घरमें चाहे हम अपने हाथसे झाड़ू लगा लें, परन्तु अपने द्वारपर हम अपने हाथसे झाड़ू न देंगे, चाहे वह कितना ही गन्दा पड़ा रहे, लीपना-पोतना या मरम्मत करना तो दूरकी बात है। इसीलिए कि हम पढ़-लिखकर बड़े आदमी हो गये। अपने हाथसे अपने कपड़े धो लेनेकी शिक्षा तो कुछ नौजवानोंको महात्मा गांधीसे मिली है और स्वावलम्बनके और पाठ भी उनसे बहुतोंको जो मिली या मिल रही है, वह अभी कलकी बात है, और वे लोग जिन्होंने इस पाठको पढ़ा है अंगुलियोंपर ही गिने जा सकते हैं। सारांश यह, कि आजकलकी शिक्षासे हम चाहे जो गुण सीख लेते हों, ये अवगुण तो हममें आ ही जाते हैं—

(१) ईश्वरमें और धर्म्ममें हमारी श्रद्धा नहीं रह जाती।

(२) गुरुजनोंमें हमारी श्रद्धा नहीं रह जाती, हम उन्हें तुच्छ समझने लगते हैं।

(३) परिश्रमके काम, वाणिज्य व्यापार या कारीगरी के कामको हम हेय दृष्टिसे देखने लगते हैं।

(४) हम अपनेको खामखाह बड़ा आदमी समझने लगते हैं।

(५) हम अपनी सेवा या काम करनेमें लजाने लगते हैं।

(६) अपने झूठे इज्जतका खयाल हमारा खर्च बढ़ाता है और व्यर्थकी विपदाओंमें फँसाता है, और मक्कारी सिखाता है।

ये छः दोष तो स्पष्ट ही हैं।

ये दोष कैसे दूर हों, दीक्षान्त भाषण करनेवाले विद्वान् यदि ऐसे उपाय विश्वविद्यालयों, उनके संचालकों एवं देशके शुभचिन्तकोंके सामने रखते तो वास्तविक देश-सेवा होती।

—रा० गौ०

सहयोगी-विज्ञान

चयन

हानिकारक शक्कर

[श्रीप्रभुदास-छगनलाल गांधी]

क्कर एक कुपथ्यकी चीज है। उसे अधिक मात्रामें खाकर बच्चे कहीं बीमार न पड़ जायँ इस बातकी चिंता और देखभाल समझदार माँ-बाप सदैव करते रहते हैं। बीस-पच्चीस बरसका अच्छा तगड़ा जवान भी अगर तमाम दिन शक्कर और मिठाइयाँ ही पेटमें झोंकता रहे तो उसका सारा शरीर क्षीण पड़ जाता है, पीला-पीला और बिल्कुल कान्तिहीन दीखने लगता है। इस अनुभवसे इस जमानेमें शायद ही किसी शहरका घर खाली होगा। यह सुना गया है कि आदमी चाहे चंगा हो चाहे बीमार, शक्करने उसे घातक नुकसान पहुँचाया है। किन्तु गुड़से घातक हानि होती कहीं नहीं सुनी। एक ही बारमें डेढ़-डेढ़ और तीन-तीन पाव गुड़ खा डालनेवाले कितने ही देहाती दीख पड़ते हैं, पर किसीको यह कहते नहीं सुना कि 'गुड़ खानेसे हमारा हाजमा खराब हो गया है, अब खाना हजम नहीं होता और सारा शरीर गल गया है।' गुड़ खानेमें अतिरेक करनेपर आदमीको तुरन्त उसका पता चल जाता है, शरीरमें जलन पैदा होती है, फोड़े निकल आते हैं और अपने आप वह फिर मर्यादामें आ जाता है।

लेकिन इस समय शरीरकी दृष्टिसे मैं शक्करकी विषाक्तता और गुड़की पौष्टिकता सिद्ध करने नहीं चला हूँ। यह कार्य तो वैद्यों और डाक्टरोंका है। इस वक्त तो मैं, मेरे देहातको चार वर्षके इस छोटे-से अरसेमें शक्कर कितनी हानि पहुँचा चुकी है और वह कितना निचुड़ गया है, इसके चंद आँकड़े देना चाहता हूँ।

मेरा कार्य-क्षेत्र तो खादीका है। बीसियों महीने सिर्फ एक ही देहातमें डेरा जमाये मैं पड़ा रहा। घरका कपास बेचकर मिलोंकी और विलायती धोतियाँ और उढ़नियाँ खरीदकर यह गाँव कितना घाटा उठाता है इसका सही अंदाजा लगाने और लोगोंको समझानेमें मैं मशगूल था। अपनी देहातरूपी नौकाको डुबानेवाले दूसरे भयानक छिद्रका मुझे भानतक न था। कानोंमें भनक पहुँचती तो थी, पर आँख उठाकर उस ओर देखनेका मुझे होश न था। ग्रामउद्योग-संघके बारेमें वर्तमान पत्रोंमें जो कुछ निकलता वह अक्षरशः ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ता और लोगोंके साथ बड़े चावसे उसपर बहस भी करता था। ग्रामउद्योग-संघ काकार्य आरंभ कर देनेका मनोरथ भी मैं करता रहता था, फिर भी मेरी मूढ़ता गयी न थी। अभी दिल्लीमें हरिजन कुटीरमें जब गांधीजी टिके हुए थे तब दो-एक दिनके लिए उनके पास जानेका मुझे मौका मिला था उस समय दो-तीन सज्जन गांधीजीके पास बहस करने आये थे कि 'आप गुड़ बनानेको तो कहते हैं, किन्तु किसानोंको गन्ना बेचनेके बजाय गुड़ बनाना मँहगा पड़ता है, अतः उसे बेचनेमें उन्हें टोटा उठाना पड़ता है।' मैंने अपनी बिल्कुल मामूली-सी जानकारीके आधारपर गांधीजीसे कहा कि हमारे देहातके किसानोंका तो यह कहना है कि हमें गुड़में मुनाफा है' किन्तु इससे अधिक ऐसा कुछ भी ज्ञान मैंने प्राप्त नहीं किया था कि जिसके बूतेपर इस विषयमें बड़े-बड़े वकीलोंसे मैं बहस कर सकता। यह मेरी खुशकिस्मती ही थी कि गांधीजीने मुझसे अधिक सवाल-जवाब नहीं किये। मैं अपने प्रमादपर पड़नेवाली उनकी डाँट-फटकारसे बच गया। उन्होंने इतना ही कहा कि 'मैं तो मानता

ही हूँ कि गुड़ बनानेमें नुक़सान हो ही नहीं सकता। यह सारी शिकायत तो इसलिए है कि इसकी कोई गहरी खोज-बीन नहीं की गयी।'

दिल्लीसे लौटकर मैंने गाँधीजीके कथनानुसार शक्करके मुकाबलेमें गुड़के आँकड़ोंकी पूरी जाँच शुरू की। शक्करकी मिलमें गन्ने बेचनेवालों, खँड़सारका काम करनेवालों और गुड़ बनानेवालोंकी परस्पर विरोधी दलीलें सुनी। अन्तमें भिन्न-भिन्न पक्षके चालीस किसानोंके सामने छान-बीन करके जो आँकड़े तैयार किये और सर्वानुमतसे पाई-पाईका जो हिसाब निश्चित हुआ वह यह है। यहाँपर एक बैलगाड़ीमें २० मन गन्ना भरा जाता है। प्रति बीस मनके तीनों तरीकोंसे क्या उत्पन्न होता है इसका जमा-खर्च निम्न प्रकार बताया है। मन ८० तोलेवाले सेरका माना है। भावमें कमी-बेशी होती रहती है, इसलिये २५ दिसम्बर, सन् ३४के रोज़ जो भाव था वही भाव इसमें दिया गया है। गुड़का भाव इसके १५ दिन बाद बराबर चढ़ता ही गया है।

२०ऽ मन गन्ना मिलमें बेचनेपर २५—१२—३४ की आमदनी —

	जमा		नाम
६।), ।–)	मनकी दर से २०ऽ मनके	१)	स्टेशनतक बैलगाड़ी ले जाने का दिनभरका किराया
		)।	धर्मादाके एजेण्टको
		–)।	फी गाड़ी दस सेर कूड़ेकी कटौतीके
		१–)।।	खर्च
		५=)।।	बचत
		६।)	

खंडसारीको २०ऽ मन गन्नेका रस बेचनेपर उसी दिन की आमदनी—

	जमा		नाम
५),२०ऽ,	मन गन्नेसे औसतन १३ऽ मन रस निकलेगा; इसके दाम ६२।।ऽ मनके २४) रुपयेकी दरसे	।।–)।।	कोल्हूका २०ऽमन गन्ना पेलनेका किराया
		।≡)।।	तीन मजदूरोंकी =)।। की दरसे दिनभरकी मजदूरी
		।।)।।	बैलोंका चारा और उनको पिलानेके पौन मन रसकी कीमत
		१।।–)।।	खर्च
		३।=)।।	बचत
		५)	

२०ऽ मन गुड़ बनानेमें इसी तारीखको आई हुई आमदनी—

	जमा		नाम
९।–)।।	बैलोंको पौन मन रस पिलानेके बाद बचे हुए १२।ऽ मन रसका औसतन २।।।ऽ४ सेर गुड़ बनेगा; उसके दाम फी मन ३।) की दरसे उस दिनके बाजार भावके मुताबिक	१–)।।	कोल्हू और कढ़ाईका किराया
		।।)	गुड़ बनानेवाले कारीगरको पाँच सेर गुड़के रूपसे
		।।)।।	बैलोंका खर्च खंडसारीके हिसाबके अनुसार
		।–)	कोल्हूपर काम करनेवाले २ मजदूरोंको; तीसरे मजदूरका काम कारीगर स्वयं करता है।
		२।≡)	खर्च
		६।।।=)।।	शेष
		९।–)।।	

फी एकड़ औसतन कम-से-कम दो सौ मन गन्ना पैदा होता है, अर्थात् किसानको गन्नेकी फी एकड़की पैदावारीका गुड़ बनानेसे ६९–) मुनाफा होता है। मिलोंको गन्ना बेचनेपर ५१।।–)की तथा खंडसारीको रस बेचनेपर ३४–)की आमदनी होती है। हमारे गाँवमें करीब तीन सौ एकड़ जमीनमें ईखकी खेती होती है। मुश्किलसे एक तिहाई किसान गुड़ बनाते होंगे। बाकीके किसान गन्ना या रस बेच डालते हैं। दोनोंका औसत घाटा फी एकड़ २५) ही मानें तो भी गाँवको गुड़ न बनानेके प्रमादके कारण कम-से-कम पाँच हजार रुपया सालाना जुर्माना भुगतना पड़ता है। सच पूछिए तो गुड़की आमदनी पूरे गाँवको, जो

ऊपर बतायी गयी है इससे कहीं अधिक मिलती है। फी एकड़ ६९-) तो सिर्फ गन्नेवालेको मिलता है। इसके अलावा गुड़ बनानेवाले कारीगर और कढ़ाई बनानेवाले देहाती लोहारको फी एकड़ १०) मजदूरी मिलती है। अर्थात् इस गाँवमें गुड़ न बनानेके कारण सात हजार रुपये सालाना फोकटमें ही जा रहे हैं, और वह भी इस सालके गुड़के मन्दे-से-मन्दे भावसे लगाने पर! दिसम्बरके बाद गुड़का भाव ४) मन तक चढ़ गया है। इस हिसाबसे इस वक्त फरवरीमें गुड़ बनानेसे फी एकड़ १००) या इससे भी अधिक गाँवको मिल सकता है। मिलें भी अब मनके ।-)॥ देती है, इसलिए वहाँसे ५८) मिलते हैं और खंडसारीसे तो ३४) ही मिल रहे हैं।

पुराने जमानेसे यहाँ खंडसारीसे कोल्हूपर तैयार रस बेचनेका रिवाज है। ६२॥ऽ मन रसके २४)रु०के हिसाबसे इस साल कतिकीमें भाव तय हुआ है। इस प्रकार निश्चित किये गये भावमें सालभर कोई चढ़ाव-उतार नहीं किया जाता। इस हालतमें खंडसारीवाले पहलेसे ही किसानोंको थोड़े-से पैसे पेशगी देकर उससे चौगुने-पचगुने दामोंका रस बेचनेका वादा उनसे लिखवा लेते हैं। ऐसे वादोंमें फँसा हुआ किसान अपने लिए चोरी-चोरी गुड़ बना ले और रस पी ले, इस बातको थोड़ी देरके लिए छोड़ दें। लेकिन अधबीचमें गुड़ बनाकर बेचनेका इरादा करने पर भी किसान उसे कर नहीं सकेगा। अगर करेगा तो अदालतमें घसीटे जानेसे गरीब अपना पिंड नहीं छुड़ा सकेगा। खंडसारी का पेशा अधिकतर लेन-देन करनेवाले छोटे-बड़े साहूकारही करते हैं। मगसिरमें तैयार होनेवाली ईखको वे सावन-भादोंसे भी पेशतर लिखवाकर कर्जा दे देते हैं। फलतः उन्हें मिलोंके मुकाबलेमें बहुतही सस्ते दामोंमें रस मिलता है। कर्जेके दलदलमें गलेतक फँसा हुआ किसान सब कुछ देखते हुए भी इस गोरखधंधेसे बच नहीं सकता। खरीफका लगान और साहूकारोंकी किस्तें चुकानेके लिए रुपयेका माल आठ आनेमें ही वह बेच देता है। उसके ख्यालसे बिना ब्याजके दो-चार महीनों तकके लिए कोई सौ-दो-सौ रुपये उधार दे दे, तो वह खरीफका लगान देते समय उसे अमृत मिलनेके बराबर है।

गुड़ बनानेमें इतना ज्यादा मुनाफा होनेपर भी उसे न बना सकनेका दुःख किसान यही बताते हैं, कि गुड़ बहुत धीरे-धीरे बिकता है, हाथ-के-हाथ उसके दाम नहीं मिलते। कर्जा चुकानेमें खंडसारीसे उन्हें मदद मिलती है। मिलवाले भी गन्नेको तौलकर तुरन्त ही रुपये दे देते हैं। किन्तु गुड़के तो कोई बड़े व्यापारी हैं ही नहीं। शहरके बाजारमें भी एक मुश्त २०ऽ मन गुड़ खरीदनेवाला कोई शायद ही मिलता है। फिर, करीब पाँच एकड़का गन्ना बेचकर सात-आठ दिनमें मिलवालोंसे पैसा मिल जाता है, जब कि उतनेही गन्नेका गुड़ बनानेमें महीने-के-महीने बीत जाते हैं। दूसरी यह भी जिरह लोग करते हैं कि गुड़का भाव डांवाडोल रहता है, मगर उनकी इस जिरहमें अधिक दम नहीं है। पार साल जब भाव बहुत गिर गया था, तब २।) मनके भावसे गुड़ बिका था। और गन्ना ।)॥ आनेके भावसे बिका था। इस हिसाबसे भी २०ऽ मन गन्नेकी ४।।)॥ आमदनी होगी और गुड़की ४॥।≡), अर्थात् गुड़में तो घाटा है ही नहीं। फिर देहाती मजदूरों और कारीगरोंकी रोजी खादीशास्त्रके अनुसार लगा ली जाय, तो साफही सवाया मुनाफा रखा हुआ है।

चाहे खंडसारीका खाँड़, बूरा या शक्कर हो, चाहे मिलकी चीनी हो, आर्थिक दृष्टिसे जैसे खादीके मुकाबलेमें बिलायती या मिलके कपड़े हानिकर हैं, वैसेही गुड़के मुकाबलेमें शक्कर हानिकारक है, यह बात ऊपरके तथ्यों और आँकड़ोंसे दर्पणकी तरह स्पष्ट मालूम हो जाती है।

[हरिजन सेवकसे]

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४२ { प्रयाग, मकरार्क, १९९२ विक्रमी । जनवरी, १९३६ ई० { संख्या ४

मंगलाचरण

आज बात है एक, बदलकर और हुई कल
खो-खोकर नरदेह, परखते जाते हैं फल
यद्यपि नव उपकरण, नये उपचार बनाये
रक्षा फिर भी नहीं मनुज तनकी कर पाये
अल्लोपैथी ही भला, कैसे वैज्ञानिक रही ?
परख-कसौटी पर सदा, क्या यह निकली ही सही ?
अटल अमल सिद्धान्त, अलौकिक विधिसे पाया
पूर्ण सफलता सहित रोगपर उसे लगाया
नित्य परीक्षामयी कसौटीपर कस देखा
हुई कहीं इक चूक, लाभपाते दस देखा
बक ले कोई कितनहीं चाहे मनमानी कहे
नितके परखे शास्त्रकी वैज्ञानिकता ठीक है
हरनेको त्रयताप आप तनधर जग आये
देहयंत्रको परख सहज उपचार बताये
रचके आठों अंग शास्त्र-तनको कर पूरा
छोड़ा प्रश्न न एक रोगके विषय अधूरा
धनि धन्वन्तरि देवप्रभु विश्ववन्द्य सुखके निलय
जड़ता जगकी नाशिये सुमति दीजिये, जयति ! जय !

—रामदास गौड़

बाजारकी ठगीका भंडाफोड़

[स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, अमृतसर]

अम्बर, नकली और असली

म्बरका जितना अधिक व्यवहार यूनानी चिकित्सक करते हैं उतना आयुर्वेदज्ञ नहीं करते। आयुर्वेदमें तो बहुत ही कम योग (नुसखे) ऐसे देखनेको मिलते हैं जिनमें अम्बरका उपयोग हुआ है।

यद्यपि निघण्टुकारोंने अम्बरके जो गुण दिये हैं वह यूनानी निघण्टुमें दिये गुणोंके बहुत कुछ समीप ले जाते हैं, तथापि इतना बोध होनेपर भी आयुर्वेदज्ञोंमें अम्बरका प्रचलन नहीं बढ़ा। अनुसन्धानसे इसमें दो कारण मिलते हैं। प्रथम कारण तो था नामका भ्रम।

हमारे निघण्टुओंमें इसका नाम मिलता है अग्निजार। अग्निजार क्या वस्तु है? मुझे अपने भ्रमणकालका अनुभव है कि अनेक वैद्य इसको अलभ्य, अप्राप्य वस्तुओंमें मानते चले आये हैं। जब वैद्योंको बतलाया जाता था कि अम्बर और अग्निजार एक ही वस्तु हैं तो वह सहसा विश्वास नहीं करते थे, और यह कहते थे कि अग्निजार तो समुद्र जलमें रहनेवाले नक्रका जरायु है। यह अम्बर जरायु रूप नहीं दीखता।

सम्भव है वैद्य, समुदाय इसका उपयोग करता तो उसका यह भ्रम दूर हो जाता। पर दूसरा कारण यह रहा है कि इसका उपयोग बहुत ही कम योगोंमें आया है। प्रायः कोई भी प्रचलित योग ऐसे नहीं पाये जाते जिसमें यह डाला गया हो। शायद कुछ वैद्य इसका स्वतन्त्रतया उपयोग भी कर लेते यदि यह साधारण मूल्यकी वस्तु होती। अम्बर प्रायः पहले तो ४०) ५०) रु० तोला बिकता था इसलिये किसी वैद्यका यह साहस न होता था कि इसको खरीदकर उसके गुण धर्मकी जाँच करता। इन्हीं कारणोंसे यह भ्रम बना रहा है।

अब कुछ दिनोंसे अनेक वैद्य यूनानी योगोंका उपयोग अधिकतासे करने लगे हैं यथा, जवारश अम्बरी, कुर्स अम्बरी आदि। तबसे इसका व्यवहार बढ़ा है। अभी भी कई वैद्य अम्बरको अग्निजार माननेमें हिचकिचाते हैं और इसमें प्रधानतः निम्न लिखित कारण देते हैं।

वह कहते हैं कि इस समयके अनुसन्धानसे ज्ञात होता है कि अम्बर समुद्रमें एक विशेष जातिकी मछलीसे जिसे 'ह्वेल' कहते हैं उसका कोई मद बताता है, कोई मुख-फेन कहता है और कोई आँतोंका मल निश्चित करता है। आयुर्वेदमें नक्रका जरायु बताया गया है। एक अन्य ग्रन्थ-कारने तो "द्वीपान्तस्थस्य वृषस्य फेनो रोमन्थजो अग्निजः, एष अम्बर नामधेयः" ऐसा पाठ भी मिलता है।

कहाँ ह्वेल मछली, कहाँ नक्र, कहाँ बैल! इस प्रकारके भिन्न-भिन्न मत इनके एकीकरणमें भ्रमका कारण बने हुए हैं और आगे भी बने रहेंगे।

इस भ्रमका कारण

इस भ्रमका प्रधान कारण तो प्रथम यह था कि यह वस्तु हमारे देशमें उत्पन्न नहीं होती थी। एक तो समुद्री जन्तुजात थी। समुद्री जल जन्तुओंके सम्बन्धमें हमारा प्राचीन ज्ञान बहुत ही थोड़ा था। दूसरे यह जलजन्तु भी भारतीय सागरके निवासी नहीं अन्य सागरोंके वासी थे। इसीलिये, जैसा कि किंवदन्तियों द्वारा सुना और फिर ऐसे व्यक्तियों द्वारा दोहराया गया जिनपर किसी कारण वशात् विश्वास था, तो निघण्टुकार वैसा ही दे दें तो आश्चर्य क्या? इसीका यह परिणाम है कि अप्रत्यक्ष रहनेके कारण ऐसी भ्रम और भूलें होती चली आयी हैं। यही नहीं। गोरोचनके सम्बन्धमें भी ऐसा ही भ्रम शास्त्रमें दिखाई देता है। गोरोचनके सम्बन्धमें निघण्टुकार लिखता है कि यह गौके मस्तकमें उत्पन्न होता है। यदि कोई

निघण्टुकार गोरोचनको निकलते समय देखता और देखकर लिखता तो कदापि ऐसी भूल न होती। गोरोचन गौकी पित्तप्रणालीमें बनता है न कि मस्तिष्कमें। पर सुनी सुनाई बातोंके आधारपर ऐसा ही हो सकता है।

अग्निजार अम्बर एक हैं

इस समयके अनुसन्धानसे जो कुछ ज्ञात हो रहा है वह यह है कि स्पर्मासेटी नामक वस्तु ह्वेल-मत्स्यके सिवाय अन्य किसी भी जल जन्तुद्वारा प्राप्त नहीं होती जो सुगन्धित हो जिसका उपयोग किसी औषधमें किया जाता हो। अम्बर ही एक ऐसा ह्वेल-मत्स्य-जन्य पदार्थ है जिसका उपयोग औषधमें होता है।

आधुनिक अम्बरका उपयोग यूनानी चिकित्सक सैकड़ों वर्षोंसे करते चले आ रहे हैं। उन्होंने इसको स्नायविक विकारों, मानसिक रोगोंमें तथा शारीरिक शक्तिहीनता, शिथिलतामें प्रायः उपयोजित किया है।

हमारे यहाँ जिस स्थानपर कस्तूरीका उपयोग होता है उन्हीं स्थानोंमें यूनानी चिकित्सक अम्बरका प्रायः उपयोग करते हैं। अम्बर स्नायुउत्तेजक और रक्तचाप-विवर्द्धक तथा शक्तिउत्पादक और उत्तापजनक शक्तिको देखकर ही आयुर्वेदज्ञोंने इसका नाम अग्निज, अग्निगर्भ, अग्निजार आदि नाम दिये। पूर्वकालमें चाहे अम्बर अलभ्य वस्तु रही हो, इस समय तो काफी मात्रामें आता है और इसका मूल्य भी काफी गिर गया है। अब अम्बरका भाव कहीं भी ४०-५० रुपया तोला नहीं। अच्छेसे अच्छे अम्बरका आजकल भाव २०)–२५) रु० तोलासे अधिक नहीं है।

जो वैद्य अग्निजारका उपयोग करना चाहें वह आधुनिक अम्बर नामधारी वस्तुका ही उपयोग करें। अम्बर और अग्निजार नामसे दो चीजें नहीं प्रत्युत एक ही वस्तु है।

अम्बर है क्या वस्तु ?

आधुनिक जल-जन्तु पकड़नेवाले नाविक, जो सीलोन अफ्रिकाके एक दो द्वीप, ब्राजील और माडागास्कर नामक देशके समीपस्थ समुद्रोंमें मछलियाँ पकड़ा करते हैं, उन्हें कभी-कभी समुद्र-जलपर या समुद्रके किनारे अम्बरके डले प्राप्त हुआ करते हैं। यह डले एक पावसे लेकर दो तीन सेर तकके पाये जाते हैं। कभी-कभी तो इससे भी अधिक बड़े मिलते हैं। यह डले ताजे हों तो कुछ नरम होते हैं जो हाथसे दबानेपर मोमकी तरह दब जाते हैं। यदि अधिक दिनतक समुद्री जलमें पड़े रहें तो समुद्रके क्षारीय जलके प्रभावसे इसके चर्बीले सिक्थ भागमें परिवर्तन आता रहता है। इसी कारण यह कुछ भुरभुरा हो जाता है। और जितना ही टूटनेमें अधिक भुरभुरा हो उतना ही वह अपने गुणोंको त्याग देता है।

इस प्रकारके डले जिन लोगोंको मिलते हैं वह ठेकेदारोंके पास ले जाते हैं। उन्हें ठेकेदार कुछ मुल्य देकर ले लेते हैं। यह चोरीसे बाहर विदेशमें निकलकर जाने नहीं पाते।

इन मछली पकड़नेवाले व्यक्तियोंका कथन है कि अम्बर मछलीके अन्दरसे निकलता है पर जलजन्तु विशेषज्ञोंको अनुसन्धानसे ज्ञात हुआ है कि ह्वेल मछली जब अत्यन्त क्षुधित रहती है और उसे जब उपयोगी वस्तुएँ खानेको नहीं मिलतीं तब वह समुद्री वनस्पतियोंको खाते है। इन समुद्री वनस्पतियोंमें एक वनस्पति ऐसी है जो सींगकी आकृतिमें उगती है। अर्थात् वह अधिक कठोर सकरकन्दसे बहुत लम्बी होती है। जब इस वनस्पतिको वह क्षुधित अवस्थामें खा जाती है तो, इसको वह पचा नहीं सकती! बल्कि इसके खाये जानेसे वह बीमार पड़ जाती है और उसको वह पचा न सकनेके कारण निकालनेकी चेष्टा करती है। उस समयका उसके उदरसे वमनद्वारा या मलमार्गसे निकला हुआ भाग अम्बर होता है। कईबार जो मरी हुई ह्वेल मिली है, उसके पेटको चीरकर जब आँतोंको देखा गया है तो उसमें अम्बरके डले खाद्य सामग्रीके साथ आंतोंमें लगे हुए मिले। यह डले छोटे-छोटे आकारसे लेकर दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस सेर तकके पाये गये और इनमें उक्त वनस्पतिका योग अधिक मात्रामें विद्यमान था। इससे अनुमान किया गया कि इस वनस्पतिके प्रभावसे ही यह ह्वेल बीमार होकर मरी है। और इसीके खानेके कारण ह्वेलके भीतर यह बनस्पति उसके आन्त्रिक चर्बीले भागसे संयुक्त होकर रसायनिक प्रक्रियासे यह अम्बरके रूपमें परिणत हो जाता है।

आजकल ह्वेलका काफी शिकार किया जाता है। पर

जो स्वस्थ ह्वेलें मारी जाती हैं उनमें अम्बर नहीं मिलता। जो बीमारीसे मरी मिलती हैं उनमें अक्सर अम्बर मिलता है। इसी आधार पर इस बातको मान लिया गया है कि ह्वेलकी बीमारीका कारण उक्त वनस्पतिका भक्षण है।

अम्बरकी बनावट

अम्बरकी डली प्रायः ऊपरसे भूरे वर्णकी श्यामता लिये ही होती है और तोड़नेपर कुछ चिकटी मोमवत् टूटती है। टूटनेपर अन्दरसे उसका वर्ण कई प्रकारका निकलता है। अच्छी डलीका वर्ण तो सफेदी लिये भूरा होता है और उसमें सफेद-सफेद छींटे दिखाई देते हैं। कुछ तोड़ भूरे काले होते हैं और उनमें भी सफेद छोटे-छोटे खसखस जैसे बिंदु (छींटे) नजर आते हैं। जिस अम्बरमें जितनी श्यामता कम हो, वह उतना ही अधिक अच्छी श्रेणीका समझा जाता है। जो जितना अधिक काला हो तथा टूटनेमें भुरभुरा हो वह उतनाही निकृष्ट समझा जाता है। कई डलियाँ तोड़नेपर भी अन्दरसे भूरी या काली निकलती है और उनमें श्वेत विन्दु या तो होते ही नहीं या अत्यन्त कम होते हैं। ऐसे अंम्बरका मूल्य बहुत ही कम होता है।

अम्बरमें गन्ध

अम्बर चाहे अच्छा हो या खराब सबमें अत्यन्त मन्द-मन्द मीठी गन्ध आया करती है। अम्बर तीव्र गन्धी द्रव्य नहीं। इस बातको कभी भूलना नहीं चाहिये। दूसरे अम्बर बहुत हलकी चीज़ है। इसका गुरुत्व ०.७८० से लेकर ०.९२६ तक पाया जाता है अर्थात् अम्बर जलसे हलका होता है। अम्बर जलमें नहीं घुलता, न मुँहमें रखनेपर मुँहकी लारमें ही घुलता है। दाँतोंसे चबानेपर चिकटा मोमवत् हो जाता है। यह मेदेमें भी जाकर नहीं घुलता। आँतोंमें जाकर पित्तके संमिश्रणसे घुल जाता है। स्पिरिट रेक्टीफाइड अलकोहल आदिमें घोले तो बहुत कम घुलता है। स्पिरिटको गरम करें तो यह फिर अधिक घुल जाता है और इसका उड़नशील भाग और कुछ चर्बी घुलित दशामें आ जाते हैं। जो अम्बरका उड़नशील और गुणदायक भाग होता है उसका नाम एम्ब्रीन है। यह वास्तवमें अम्बरका जौहर है जिसको निकालनेके लिये स्पिरिटको अधिक ठण्डक पहुँचाते हैं तो वह ठण्डा होकर श्वेत चमकदार पतली परतोंमें जम जाता है जिसे स्पिरिटसे भिन्न कर लेते हैं। अम्बरका तेलमें अधिक भाग घुल जाता है पर तेजाबोंका इसपर बहुत ही न्यून प्रभाव पड़ता है।

कृत्रिम विधिसे अम्बर बनाना

अम्बर अति प्राचीन कालमें जो अधिक मूल्यवान् होनेके कारण कठिनतासे मिलता था उस समय कुछ धूर्तोंने इसको कृत्रिम रीतिसे बनानेकी चेष्टा की थी। हमको एक प्राचीन हस्तलिखित अनेक कृत्रिम वस्तुओंको बनानेकी पुस्तक मिली है, उसमें इसके कृत्रिम विधिसे बनानेका निम्नलिखित विधान दिया है।

सद्योजात गौके बछड़ेका वह मल (गोबर) जो जन्म लेनेके पश्चात् ही त्यागें जिसके भीतर बाहरके स्तनोंसे दूध पीकर गोबर न बना हो, वही प्रथम गोबर लेकर उसमें भीमसेनी कपूर, केशर और उत्तम हिनाकी कुछ मात्रा, जो दी हुई है, मिलावे और सबको मिलाकर खूब कूटे। जब एक रूप हो जाय तो एक ऐसी डिबियामें बन्द करदे कि जिसमेंसे उसकी गन्ध बाहर न निकल सकै। उस डिबियापर कोई और बड़ी डिबिया चढ़ादे या उसे हाण्डीमें रखकर उसका मुख बन्द कर उस हाण्डीको गोबर या घोड़ेकी लीदमें २१ दिन दबादे। पश्चात् निकाले। उसका रंग अम्बरका सा होगा। उसको तोड़ने पर अम्बर जैसे ही कहीं-कहीं श्वेत बिन्दु दिखाई देंगे। गन्ध भी अम्बर जैसी ही होगी।

अम्बर बनानेका दूसरा नव्य विधान

आजकल वैज्ञानिकोंने अपनी रसायन शालामें अम्बर ग्रीस (Ambergries) नामसे एक ऐसा सुगन्धयुक्त द्रव्य तय्यार कर लिया है जिसकी गन्धको यदि हलका किया जाय तो ठीक अम्बर जैसा ही गन्ध देता है।

इस अम्बरग्रीसकी १-२ रत्तीमात्रा ही १०-२० तोला कृत्रिम अम्वरके बनानेमें लगायी जा सकती है, और इससे बहुत ही उत्तम गन्धका अम्बर बन जाता है। पर हम

स्वप्नोंका तात्पर्य्य

[पंडित दुर्गादत्त जोशी, रींगस, जयपुर राज्य]

स्वप्नके अर्थ-सम्बधमें बड़ा वाग्वितण्डा है। कोई स्वप्नको सर्वथा निरर्थक समझते हैं और कोई स्वप्नके अर्थके कायल हैं। हमारे देशमें कुछ पुराने विचारोंके व्यक्ति अपना इष्ट-स्वप्न अविलम्ब ज्योतिषीके निकट व्यक्त करते हैं और ज्योतिषी महाशय पोथी-पत्रा खोलकर उसका फलाफल कह देते हैं। संस्कृतके कई ग्रन्थोंमें स्वप्नोंका फलाफल लिखा है। ऋग्वेद, अथर्व्व-वेद और सामवेदके किसी-किसी मंत्रमें स्वप्नका विवरण आया है। आयुर्वेदके अनुसार कितने स्वप्न अफल हैं और कितनों ही का शुभाशुभ फल है। शास्त्रकार कहते हैं कि जिस रातमें शुभ-स्वप्न देखे, फिर उस रातमें न सोना ही उचित है। नहीं तो, स्वप्नका शुभाशुभ फल नहीं होता। अशुभ-स्वप्न देखा है, नींद उचट गयी है,—इस दशामें भी न सोना ही अच्छा है। घोड़ेपर चढ़ने, हाथीपर चढ़ने या पहाड़पर चढ़नेके स्वप्न-दर्शनका फल—अर्थलाभ। नर माँस-आहार करनेके स्वप्न दर्शन द्वारा उच्चाकाङ्क्षा फलवती होती है। स्वप्नमें परिपूर्ण-जल-पात्र-दर्शनके कारण, धन-पुत्र लक्ष्मी लाभ। स्वप्नमें हँसे तो घरमें दुःख-भोग। भैंसेपर चढ़कर दक्षिणकी ओर जानेका स्वप्न देखनेपर मृत्यु सुनिश्चित है। दाँत टूटनेका स्वप्न-देखना धनका नाश करता है, इत्यादि।

स्वप्नकी इस प्रकारकी व्याख्या पाश्चात्य देशोंमें भी प्रचलित है। अन्य विलायतोंमें भी स्वप्न-तत्व-सूचक अनेका-नेक पुस्तकें प्रस्तुत हैं। इन पुस्तकोंमें स्वप्नोंके अर्थ लिखे हुए हैं। कहना अनावश्यक है कि विज्ञानके हिसाबसे ऐसी आलोचनाओंका विशेष मूल्य नहीं।

सर्व्व-प्रथम प्रो० सिगमुण्ड फ्रैडने ही स्वप्नकी सङ्गत व्याख्या-निर्णयका पन्थ आविष्कार किया। क्रमशः स्वप्न व्याख्याका उक्त उपाय मनो-वैज्ञानिक पण्डितोंमें मान्य होता जाता है। उक्त उपायका नाम Free Association Method (अबाध-भावानुसङ्ग-क्रम) है। स्वप्न-द्रष्टा स्वप्न-दर्शनके उपरान्त यथासम्भव शीघ्र स्वप्नका लेख रखें। स्वप्नकी एक यह विशेषता है कि हम उसे तुरन्त भूल जाते हैं, इसलिए लिख रखना आवश्यक है। स्वप्न-द्रष्टाको निर्ज्जन घरमें बिछौनोंपर सुलाना चाहिए। व्याख्याकारी उनके सिरके पास कागज-पेन्सिल लेकर बैठ जाये। प्रथम द्रष्टा स्वप्नके सम्बन्धमें जो कहे, उसे लिख लिया जाय। स्वप्न-संक्रान्त कोई घटना वास्तवमें घटी थी या नहीं? क्यों स्वप्न दर्शन हुआ? स्वप्न दृष्ट व्यक्ति कौन-कौन हैं और उनके साथ द्रष्टाका क्या सम्बन्ध है? ये सब बातें प्रथम इसी प्रकार जानी जाँय। फिर द्रष्टाको आँख मूँद कर बिलकुल निश्चेष्ट सो जानेके लिए कहा जाय। स्वप्न बड़ा हो तो उसे छोटे-छोटे अंशोंमें भाग करना आवश्यक है। द्रष्टाको आदिसे एक-एक अंश एकके बाद एक सुनाये जाँय। प्रत्येक अंश सुननेके उपरान्त उसके मनमें जिस बात, अथवा जिस भावका उदय हो, उसे वह बतलावे। द्रष्टाको विशेष-रूपसे चेतावनी दे दी जाय कि वे कोई बात या भाव छिपाये नहीं। श्लील-अश्लील, उचित-अनुचित, आवश्यक-अनावश्यक सब जैसे मनमें आये अकपट कह जाये। व्याख्याकारी सब-बातें लिख

नहीं चाहते कि संसारमें कृत्रिम वस्तुएँ बनानेका प्रचार हो इसलिये इसपर अधिक प्रकाश डालना उचित नहीं समझते।

कृत्रिम अम्बरकी पहिचान

कृत्रिम अम्बर चाहे किसी विधिसे क्यों न बना हो, जिसमें मोम मिला हुआ न होगा वह सब घुल जायगा। उसमें कोई न कोई स्वाद अवश्य होगा। मोम मिश्रितमें भी स्वाद होगा। जलमें घोलनेपर कुछ न कुछ घुलेगा और उससे जलमें कुछ रंगत भी आवेगी। स्पिरिटमें और तेलमें इनकी घुलनशीलता भी असलीसे बिलकुल भिन्न होगी।

लें। कई बार द्रष्टाके मनमें ऐसी बातों या भावोंका उदय होता है, आपातदृष्टिसे जिनके साथ स्वप्नका कोई सबन्ध सूचित नहीं होता। द्रष्टा कुछ सोच-विचार न कर सकेंगे; जो मनमें आयेगा, कहना पड़ेगा। मनकी लगाम बिलकुल अलग कर देना ठीक है। मनको इस प्रकार छोड़ देना कितना मुश्किल है, पाठक उसकी एकबार परीक्षा करेंगे तो मालूम होगा। मनमें निश्चेष्टता आये बिना स्वप्नकी व्याख्या होना असम्भव है। स्वप्न-द्रष्टाके जीवनकी समस्त घटनाओंके जाने बिना भी कई बार स्वप्नका अर्थ लगाना कठिन हो जाता है। सारांश यह है कि स्वप्नकी व्याख्या करना सहज नहीं। प्रथम स्वप्न-द्रष्टाके सम्बन्धकी सब बातोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। उपरान्त उसके स्वप्न-का यथार्थ विवरण लिख लिया जाय और तदुपरान्त अबाध-भावानुसङ्ग-क्रमकी सहायतासे विश्लेषण करना उचित है। इस प्रक्रियामें विशेष धैर्य्य और समयकी आवश्यकता है।

सम्भव है, पाठक सोचते हों कि "आकलेश इशारा काफी" अर्थात् सङ्केतमात्रका ज्ञान स्वप्न-विश्लेषणके पक्षमें पर्य्याप्त है और स्वाभाविक ही वे ऐसे बिना मतलबके झञ्झटमें जाना न चाहेंगे। पर यह बात जोर देकर कही जा सकती है कि वे धैर्य्यपूर्वक कुछ दिन बन्धुबान्धवोंके स्वप्न-विश्लेषण करेंगे तो अवश्य मनुष्य-मनके कई नये तथ्योंका ज्ञान प्राप्त करेंगे। स्वप्न विश्लेपणमें अभ्यस्त-व्यक्ति बिना इस कठिन-पद्धतिकी सहायताके भी विशेष-विशेष स्थलोंपर स्वप्नका मोटा-सोटा अर्थ जान सकते हैं, पर उसमें भूलकी सम्भावना ही अधिक है। दो आदमियोंके एक ही तरहके स्वप्नोंका दो तरहका अर्थ होना कोई विचित्र नहीं।

अबाध-भावानुसङ्ग-क्रम

फ्रैड कहते हैं कि अबाध-भावानुसङ्ग-क्रम द्वारा हमारे मनके अनेक गुप्त-भाव प्रकट हो जाते हैं और उनसे अभिज्ञ व्यक्ति सहज ही मनकी धारा और स्वप्नका अर्थ समझ सकते हैं। बहुत छोटे स्वप्नके साथ भी मनकी अनेक चिन्ताएँ विजड़ित होती हैं। यह उपायद्वारा भली भाँति विदित होता है। स्वप्नमें जो देखा जाता है, फ्रैडने उसका नाम व्यक्त अंश—manifest content और स्वप्नके साथ संश्लिष्ट मनको जिन चिन्ताओं अथवा गुप्त भावोंका आभास पाया जाता है, उसका नाम स्वप्नका अव्यक्त-अंश latent content रखा है। इस अव्यक्त अंशकी प्राप्तिके बिना स्वप्नका अर्थ प्रकट होना सम्भव नहीं।

एक सच्चा उदाहरण देकर इस अबाध-भावानुसङ्ग-क्रमसे स्वप्नके व्यक्त-अंश और अव्यक्त अंशको समझाता हूँ। "क" बाबू मेरे एक मित्र हैं। वे चित्रकार और फोटोग्राफर हैं। उनके पिताकी अवस्था अच्छी है। "क" बाबूको रुपये-पैसे कमानेकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। काममें केवल मनोरञ्जनके लिए फोटोग्राफ उतारना और चित्रकारी करते हैं। उनकी एक चित्रशाला है। "क" बाबूकी प्रकृति अति निरीह है। हमने उन्हें कभी क्रोधित होते नहीं देखा। एक दिन बातोंके प्रसङ्गमें उन्होंने मुझसे अपना एक स्वप्न-विश्लेषण करनेके लिए कहा। पूछा "स्वप्न क्या था?" वे बोले, "इन दिनोंमें तो कोई स्वप्न देखा याद नहीं आता। हाँ, कोई तीन मास पूर्व्व एक बार स्वप्न अवश्य देखा था। उसमेंसे थोड़ा-सा अब भी याद है।" नीचे स्वप्न और उसका विश्लेषण दिया जाता है। पर यह विश्लेषण असम्पूर्ण है। विशेष-रूपसे विश्लेषण किये जानेपर सम्भव था कि स्वप्नके और भी अनेक अर्थ प्रकट होते। "क" बाबूने पूर्व्व कभी अबाध-भावानुसङ्ग-क्रमका अभ्यास नहीं किया। यह उनकी प्रथम-चेष्टा थी। इसलिए प्रथम-चेष्टामें उनके मनके गम्भीर-प्रदेशके भावोंको सही-सही समझ लेना एक प्रकारसे असम्भव था।

*स्वप्न—तीन तल्लेपर अवस्थित ष्टुडियोका पश्चिम-भाग टूटकर गिर-पड़ा।

स्वप्न बहुत छोटा है; इसलिये विश्लेषणके पक्षमें भी सुविधा-जनक है। स्वप्नका यह अंश ही manifest content—व्यक्त-अंश है।

"क" बाबू को निश्चेष्ट-भावसे सोकर, मनसे अन्य सब चिन्ताएँ दूर करके केवल स्वप्नकी ओर ही ध्यान देनेके लिए कहा। उन्हें यह भी सूचित कर दिया कि स्वप्नका

*स्वप्न-द्रष्टाकी किसी बातको परिवर्तित करना अनुचित है। इसलिए मैंने वही शब्द रखे हैं जो उन्होंने व्यवहार किये थे।

एक-एक अंश मैं उन्हें सुनाऊँगा। मेरे कहनेपर उनके मनमें जिन-जिन भावोंका उदय हो, उसे वे बिना विचारे कहे जाएँ। मैंने उनके सिरके पास बैठकर सब बातें लिख लीं।

स्वप्न को मैंने इन कई भागोंमें विभक्त किया—

(१) तीन-तल्ला,

(२) स्टूडियो,

(३) पश्चिम-भाग और

(४) टूटकर गिर पड़ा।

उन्हें एक-एक अंश सुनाये जानेपर उन्होंने जो-जो कहा था, वह निम्न प्रकार है—

(१) तीन-तल्ला—मेरा मकान; म—बाबूका तीन-तल्ला मकान; फ—का मकान; मुरारीपुखर; देशका मकान; इम्पीरियल-लाईब्रेरी; हाईकोर्ट; एसप्लानेड; जलपान न हुआ।

(२) स्टूडियो—स्काईलाइट; बड़े भाईका लड़का; बड़े भाईकी स्त्री; टेबिल; केमेरा; टालीकी छत; सीढ़ी; घुमाव-दार सीढ़ी; बाबा; नदी; चरण; विनोद दलाल; पूर्ण बाबू।

(३) पश्चिम-भाग - स्टूडियो; बाहरकी दिवाल; कौर्निस; स्टूडियोके पास भोजन बनानेकी जगह; उत्तरकी ओर टूटा हुआ आधा बना हुआ मकान; क्रिश्चियनोंका गोरस्थान; डाक्टर घोष; सरकुलर रोड; जे. सी. बोसका मकान।

(४) टूटकर गिर पड़ा—गोरस्थान घरके सामने; टूटी हुई कब्र; लड़के आदि खेलते हैं; छतके ऊपरकी खुली हुई जगह; फ--के घरके पास; बाबा देशके घर पर।

सब स्वप्न—तीन-तल्लेपर अवस्थित स्टूडियोका पश्चिम-भाग टूटकर गिर पड़ा। देखता हूँ, जैसे पड़ गया है। नीचेके कमरेमें बाबा हैं- —

ठीक नीचेके कमरेमें पार्टिशन टूट गया है; वही जो खा लिया है—चौबे नीचे बैठे हैं; मासी-माँको तकलीफ है, नानी-मा बरान्डाका घर खाली है, "फ" ढाका; ओआरी; धूल; रास्ता।

अबाध-भावानुसङ्ग क्रमकी सहायतासे ये भाव प्राप्त हुए हैं, किन्तु आपात-दृष्टिसे इनसे स्वप्नका अर्थ जाननेकी कोई सुविधा नहीं-हुई। किन्तु पाठक बादमें देखेंगे कि ये चिन्ताधाराएँ प्रथम असम्बद्ध जँचती हैं अवश्य, पर इन सबका ही अर्थ है।

"क" बाबूको आँख खोलनेके लिए कहकर जिन भावोंको लिखा था, उनमेंसे कुछको लेकर पुनः प्रश्न किए। इन प्रश्नोंके फलसे ये बातें ज्ञात हुईं।

(१) मेरा घर—बाबा कहते हैं कि मकान भाड़े देकर घर चला आ। मेरी जानेकी इच्छा नहीं। इस बिना पर बाबाके साथ मनोमालिन्य हुआ है।

म—बाबूका तीन-तल्ला मकान—इसमें कारखाना हो जानेके कारण मोहल्लेमें एक जञ्जाल-विशेष हुआ है। हम लोगोंके घर-द्वार, कपड़े-लत्ते धुँआसे काले होते हैं। म—बाबूसे कहनेपर भी कोई प्रतीकार नहीं हुआ।

फ-का मकान—तुम तो जानते ही हो कि यह मकान मैंने बनवाया था। इस सम्बन्धमें कुछ रुपये पैसोंके कारण फ-के साथ मेरा मनोमालिन्य हो गया है। हम लोगोंमें इस समय एक तरहसे बात-चीत बन्द है।

मुरारिपुखर—यहाँपर बम्बा हुआ था। वह बगीचा मैंने देखा है। इसके समीप की एक जमीन बेचना चाहता हूँ। बेच सका तो कुछ लाभ होगा।

देशका मकान—इसका और क्या बताऊँ।

जलपान न हुआ—आजकी सारी दोपहरी, इम्पीरियल-लाईब्रेरी और हाईकोर्टमें काटी है। दिन-भर कुछ भी न खाया गया, बड़ा ही कष्ट हुआ है।

(२) स्टुडियो, स्काईलाइट—ठीक अवस्थामें नहीं, मरम्मत करनी पड़ेगी।

बड़े भाईका लड़का—शैतानी करके टेबिल डालकर चीजें तोड़-फोड़ डाली हैं।

बड़े भाईकी स्त्री—बाबाके और घरके सबके विना मरजी बड़े भाईने विवाह किया है।

केमेरा—बेचना चाहता हूँ।

टालीकी छत—कुछ याद नहीं आता।

सीढ़ी, घुमावदार-सीढ़ी, बाबा—चढ़नेमें बड़ा कष्ट होता है; बाबा गिर न पड़ें।

चरण, विनोद दलाल, पूर्णबाबू—जमीन बेचनेको लेकर बड़ा गोलमाल मचाया है।

(३) **स्टुडियो; बाहरकी दिवाल**—मरम्मत करनेकी आवश्यकता है।

स्टुडियो; पासमें भोजन बनानेकी जगह, उत्तरकी ओर टूटा हुआ आधा बना हुआ मकान, क्रिश्चियनोंका गोरस्थान, डाक्टर घोष इत्यादि—कुछ भी स्मरण नहीं होता।

(४) **टूटकर गिर पड़ा**—बाबा ठीक नीचेके कमरेमें ही रहते हैं; स्टुडियोके गिर पड़नेसे वे दब जाएँगे।

गोरस्थान, घरके सामने टूटी हुई कब्र—विशेष कुछ याद नहीं आता।

ऊपर जिन भावोंका पता चला है, वे सभी स्वप्नके (latent content) या अव्यक्त अंश हैं। पाठक शायद अब भी स्वप्नका अर्थ नहीं समझ सके हैं। किन्तु स्वप्न-द्रष्टाके मनकी जो इच्छा इस स्वप्नमें चरितार्थ हुई है, वह अनेकोंमें पायी जाती है। इसलिए अभिज्ञ-व्यक्ति उसका अर्थ सहजमें ही समझ सकते हैं। पाठक अबाध-भावानुसङ्ग-क्रममें (१) चिन्हित अंशोंको दुबारा यों देखेंगे कि सबमें ही एक लड़ाई-झगड़े, गोलमाल और कष्टका भाव वर्त्तमान है। बापके साथ गोलमाल; फ-बाबू, म-बाबू, इत्यादिके साथ गोलमाल; हाई-कोर्ट और इम्पिरियल लाईब्रेरीमें कष्ट, इत्यादि।

२ रे अंशमें विरोधका आभास है। भाईके साथ बाबाका झगड़ा; दलालोंके साथ मतभेद, इत्यादि। पाठक लक्ष्य करेंगे कि इसी अंशमें बाबाके सीढ़ी परसे गिर पड़नेकी बात है।

३ रे अंशमें टूटी हुई दीवार, टूटा हुआ मकान और कब्रकी बात है। इसमें एक मृत्युका इङ्गित वर्त्तमान है।

४ थे अंशमें "क" बाबूकी चिन्ता-धारा विशेष कौतूहलोद्दीपक है। "बाबा ठीक नीचेके कमरेमें रहते हैं, ष्टुडियोके गिर पड़ने पर वे दब जाएँगे।" इसके बाद फिर कब्रकी बात है। इस चिन्ता-धारामें बापकी मृत्यु-कामनाका आभास वर्त्तमान है।

प्रथम अंशमें बापके साथ कलह, द्वितीय अंशमें दादा बाबाके साथ विरोध, तृतीय अंशमें कब्रकी बात, चतुर्थ अंशमें बाबाके दब जानेकी आशङ्का तथा पुनः कब्रकी बात है।

फ्रयेडके मतानुसार हमारे प्रत्येकके मनमें अनेक असामाजिक और अन्यान्य इच्छाएँ हैं। ये इच्छाएँ रुद्धदशामें रहनेके कारण सहजमें प्रकाशित नहीं होतीं। हमें उनका अस्तित्व भी ज्ञात नहीं रहता। ये रुद्ध इच्छाएँ ही स्वप्नमें काल्पनिक परितृप्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करती हैं। जैसे बापके प्रति भक्ति और प्रेमकी इच्छा हम सबमें है। वैसे ही बापके ऊपर एक विरुद्ध-भाव भी हमारे मनमें रहता है। बड़े आदमियोंमें 'बाप मरे' यह भाव अनेक समय प्रकट होता है। बापकी हत्या कर सिंहासन-लेनेके दृष्टान्त इतिहासमें विरल नहीं। जानवरोंमें भी बाप-बेटोंमें झगड़ा स्वाभाविक है, आदिम युगसे मनुष्य-मात्रमें इस विरोधका भाव प्रच्छन्न रहा है; केवल सुविधा-सुयोग पाते ही यह आत्मप्रकाश करनेमें सचेष्ट होता है। यह विरोध-भाव मनमें रुद्ध-दशामें रहता है। इसलिए इसका अस्तित्व हम आसानीसे नहीं जान सकते। केवल यही नहीं, किसीके ज्ञात करा देनेपर भी सहजमें मानना नहीं चाहते, किन्तु इसके अस्तित्वके परोक्ष प्रमाण प्राप्त करने कठिन नहीं हैं। बापके प्रति यथेष्ट प्रेम होते हुए भी अन-जानमें उनके प्रति वैर-भाव रहना कुछ विचित्र नहीं। "क" बाबूके स्वप्नमें वही प्रकाशित हुआ है। स्वप्नमें उन्होंने पिताकी मृत्यु-कामना की है। ऐसे सीधे स्वपनेका ऐसा बाँका अर्थ हो सकता है, इसपर कोई भी चट-से विश्वास न करेगा। किन्तु विभिन्न स्वप्नोंद्वारा ऐसी चिन्ता-धाराका अस्तित्व बारम्बार प्रमाणित होनेके कारण, स्वप्नका ऐसा अर्थ अस्वीकार करनेके लिए जी नहीं रहता। "क" बाबू भी स्वप्नका अर्थ सुनकर घोर आपत्ति करने लगे। बोले, "यह गँजेड़ी-पन है, विश्वासके सम्पूर्ण अयोग्य है।" वे और बापकी मृत्यु-कामना कर सकते हैं! मैंने उन्हें समझाया कि जानते-बूझते ऐसी इच्छा उनके मनमें थोड़े ही उठती है, अनजानमें ही उठती है। "क" बाबू जरा चुप रह कर बोले, "आश्चर्य्य! मुझे अब अच्छी तरह याद आता है कि मैंने पहले एक बार बाबाकी मृत्युका स्वप्न देखा था।" मैंने उन्हें और भी स्मरण करा दिया कि स्वप्नकी बात उठते ही उन्होंने प्रियजनोंकी मृत्युका स्वप्न क्यों देखा है, इसका कारण मुझसे पूछा था। इस प्रश्नके उपरान्त ष्टुडिओके स्वप्नकी बात उन्हें स्मरण हुई थी। विचारपूर्वक देखनेपर पठकोंको

ज्ञात होगा कि आबाध-भवानुसङ्ग-क्रममें जो भाव प्रथम सर्व्वथा असंलग्न प्रतीत होते थे वे एक ही चिन्ता-धारा द्वारा चालित हैं। पाठक आपत्ति कर सकते हैं कि यह मेल आकस्मिक है। किन्तु कुछ स्वप्नोंका इस विधिसे विश्लेषण करनेपर प्रत्येक स्थलपर ऐसे आश्चर्य्य-मेलको देखकर उन्हें स्वप्नके अर्थको गँजेड़ी-पन कहनेका साहस न होगा। हमारे मनमें जो वृत्तियाँ रुद्ध हैं, उनके सम्बन्धमें कुछ ज्ञात होनेके उपरान्त स्वप्न-विश्लेषण किया जा सकता है। सुप्त-चिन्ताका आभास प्राप्त हुए बिना स्वप्नका अर्थ प्रकट करना दुःसह है।

प्रसङ्ग कुछ विषयान्तर होता है तथापि मैं अबाध-भावानुसङ्ग-क्रमके सम्बन्धमें और भी कुछ कहना चाहता हूँ। मनके अनेक अज्ञात-भाव इस उपायसे जाने जा सकते हैं, इस पर प्रथम विश्वास करनेकी इच्छा नहीं होती। किन्तु जो चाहे परीक्षा कर इसके सत्यासत्यकी जाँच कर सकता है। कोई विषय भूल जानेपर या कोई विशेष घटना याद न कर सकनेपर अबाध-भावानुसङ्गकी सहायतासे अधिकांश स्थलोंपर उसकी स्मृति जगायी जा सकती है। फलस्वरूप इस साधनके सम्बन्धमें भी सन्देह नहीं रह जाता। अबाध-चिन्तामें वे सभी भाव जो एकके उपरान्त एक मनमें उदित होते हैं, वे आपातदृष्टिसे विच्छिन्न बोध होते हैं, तथापि स्मरण रखना चाहिए कि वे बिना सङ्गत-कारणके मनमें नहीं आते। एक उदाहरण देता हूँ। बोलपुर एक बार स्वर्गीय द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरसे मिलनेके लिए गया था। उनके एक नौकर का नाम कुछ अद्भुत था। अद्भुत जँचने पर भी थोड़ी देरमें ही मैं वह भूल जाता था। रातमें बातों ही बातोंमें नौकरकी बात उठी, उसका नाम नहीं याद आया सो नहीं याद आया। मैंने अबाध-चिन्ताकी सहायतासे नाम याद करनेका निश्चय किया, मनको निष्क्रिय कर जो कुछ मनमें आने लगा, लिख लिया, प्रथम मनमें आया—'वशिष्ठ' उसके उपरान्त 'इन्द्रजित'। ये दो नाम याद आये पर इन दोनोंमेंसे कोई भी उसका नाम नहीं था। तथापि दोनों नाम लिख लिए, तदुपरान्त मनमें आया—'योगेश्वरी' क्यों ऐसी अद्भुत बातें मनमें उदित होती हैं, समझ न सका, तथापि ये नाम ही बारम्बार मनमें आने लगे। जब इतना करके भी नौकरका नाम स्मरण न कर सका तब विरक्त होकर चेष्टासे निवृत्त हुआ, स्थिर किया कि कल नाम पूछ लूँगा। दूसरे दिन प्रातःकाल नाम सुनते ही ध्यान हुआ, हाँ, मुनीश्वर ही है, पाठक लक्ष्य करेंगे कि प्रथम ही मेरे मनमें पड़ा था "वशिष्ठ"—मुनियोंमेंके एक श्रेष्ठ मुनि! मुनीश्वरकी 'नी'का आभास इन्द्रजितकी 'इन' में है; केवल उलट गयी है मात्र, तदुपरान्त 'मुनीश्वर' का 'ईश्वर' 'योगेश्वरी'में आकर पड़ा है। अतएव देखा जाता है कि जो चिन्ताएँ प्रथम मनमें असम्बद्ध जँचती थीं, उनमें भी एक श्रृङ्खला है। पाठक इसे आकस्मिक ख्याल कर सकते हैं; किन्तु यदि बारम्बार ऐसे होते देखा जाय और यदि बहुसंख्यक व्यक्तियोंको भी ऐसा हो तो बात हँसीमें नहीं उड़ायी जा सकती। इस प्रकार अर्थ प्रकट करनेको कष्टकल्पना कहना अनुचित है। इसी कारण स्वप्नका अर्थ प्रकट करनेके लिए अबाध-भावानुसङ्गकी आवश्यकता है।

कभी-कभी देखा जाता है कि अबाध-भावानुसङ्गमें चिन्ता-धारा थमना नहीं चाहती। ऐसे स्थलोंपर जबरन चिन्ता-धाराको थमा देना पड़ता है। किन्तु यह अभिज्ञता सापेक्ष है कि चिन्ता-धाराको कहाँ थमाना चाहिए। साधारणतः, जब परीक्षाधीन-व्यक्तिकी चिन्ता बाहरी विषयों की ओर चालित हो तभी बन्द करना उचित है। मेरे एक मित्रको 'कुछ' बात सुनाई, उन्हें अबाध-भाव-प्रवाहमें मन को छोड़ देनेके लिए कहा, नीचे उनकी चिन्ताधाराका नमूना देता हूँ—

"मेंढक खाय, निमन्त्रण जाय, गङ्गाके घाटपर, सूर्य्य-ग्रहण, बहुत भीड़ हुई है, गाड़ी गई थी, ठाकुरके पास भीड़ हुई थी, आफिस साइकलपर जाता हूँ, सुकिया स्ट्रीट, एमहर्ष्ट स्ट्रीटकी मोड़, घोड़ा-गाड़ीका अड्डा, बहुसंख्यक गाड़ियोंका अड्डा, जल जमा है रास्तेमें, 'बरफ़ बिक्री', रोशनी धुँधली, साँप मेंढक खाता है, कबाब रोटी, जूतोंकी दुकान, जूते खरीदने पड़ेंगे।"

उपरिलिखित 'बरफ-बिक्री' की बात ध्यानमें आनेका कारण है—उस समय रास्तेमें कुलफी बरफ-वाला हाँक लगाता हुआ जाता था। आँखें बन्द थीं अतः स्वतः ही परीक्षाधीन-व्यक्तिको घरकी रोशनी म्लान बोध होगी, उन्होंने वही कहा था। इस परीक्षाके किञ्चित् पूर्व्व मेरे एक अन्य मित्रने कहा था कि बारान्डामें मेंढक आया है। हम देखते हैं कि 'बरफ' की बातके बादसे ही परीक्षाधीन-व्यक्ति

क्या आयुर्वेद अवैज्ञानिक है ?

कर्नल बकलेको चैलेंज

[श्री पंडित शालग्राम शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, लखनऊ]

आजकल अनेक एलोपैथ 'अवैज्ञानिक' कहकर आयुर्वेदका अपमान किया करते हैं। अभी उस दिन बनारसके मारवाड़ी अस्पतालमें आयुर्वेद-विभागका निरीक्षण करते हुए अस्पतालोंके इंसपेक्टर जेनरल कर्नल बकलेने यहाँतक लिख मारा कि आयुर्वेदिक पद्धति अवैज्ञानिक है, अतः उसपर खर्च करना दुरुपयोग करना है। आज हम इसी प्रकारके लोगोंसे दो दो बातें करना चाहते हैं।

सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म

उपनिषद्में लिखा है, कि सत्य विज्ञान और आनन्द ये ब्रह्मके स्वरूप हैं। सत्य विज्ञानात्मक होता है और विज्ञान सत्य स्वरूप होता है। जो सत्य नहीं वह कभी विज्ञानात्मक नहीं हो सकता और जो विज्ञानस्वरूप नहीं, वह कभी सत्यात्मक नहीं हो सकता। सत्य विज्ञान ही और विज्ञान सत्य है। जब हम किसी बातको असत्य कहते हैं तब उसके विज्ञान-स्वरूप होनेको अस्वीकार करते हैं और जब किसीको अवैज्ञानिक कहते हैं तब उसके सत्य स्वरूपत्व या सत्यात्मकताका तिरस्कार करते हैं। सत्यसे विज्ञान और विज्ञानसे सत्य कभी भिन्न नहीं किया जा सकता। सत्य विज्ञान आनन्दमय और ब्रह्मस्वरूप होता है।

साधारण ज्ञान जब हेतुहेतुमद्भाव, प्रयोज्य-प्रयोजक

की चिन्ताधारा आसपासकी चीजों और उस समयके प्रत्यक्षकी ओर गयी है। बस, इस जगह ही भाव-प्रवाहको रोकना चाहिए। अधिकांश स्थलोंपर परीक्षाधीन-व्यक्ति स्वयं ही चुप हो जाते हैं। कहते हैं, और कुछ भी मेरे मनमें नहीं आता। अभिज्ञ-व्यक्ति अवाध-भावानुसङ्गके समय आवान्तर विषय आते ही जान सकते हैं। यहाँ परीक्षाधीन-व्यक्तिकी प्रथम चिन्ता ही है—'मेंढक खाये'—इस परीक्षा के पूर्व मेंढककी बात होती थी; उसे वे तब भी भूल नहीं सके थे। उनका मनतक भी सम्पूर्ण निष्क्रिय नहीं हो सका था। परीक्षाधीन-व्यक्तिकी यह प्रथम अवाध-भावानुसङ्गकी चेष्टा है। उन्होंने अखबारमें थोड़ी देर पहले ही सूर्य्यग्रहण और भीड़की बात पढ़ी थी, ये चिन्ताएँ ही मनमें उठी थीं। अबाध-भावानुसङ्गके हिसाबसे इस परीक्षाका मूल्य अल्प है। कारण, देखा जाता कि परीक्षाधीन-व्यक्ति सम्पूर्ण निश्चेष्ट नहीं हुए। कुछ दिनके अभ्यासके उपरान्त इस उपायद्वारा मनके अन्तःस्थलकी अनेक सुप्त-चिन्ताधाराओंका ज्ञान हो सकता है। नये व्रतीको प्रथम अवाध-चिन्ताद्वारा विशेष फल प्राप्ति न भी हो सकती है।

अब "क" बाबू के स्वप्नपर पुनः आता हूँ, हमने उनका स्वप्न-विश्लेपण कर देखा है कि वे पिताकी मृत्यु-कामना करते हैं। अन्यान्य स्वप्न-विश्लेषणोंद्वारा भी देखा जाता है कि स्वप्नमें एक-न-एक रुद्ध इच्छा चरितार्थ होनेकी चेष्टा है। अवश्य, यह परितृप्ति काल्पनिक है। प्रत्येक कहते हैं कि समस्त स्वप्नोंमें ही किसी-न-किसी इच्छाका काल्पनिक-परितृप्ति-साधन देखा जाता है। स्वप्नका आलम्बन क्या है? इतनी देरमें हमने उसका किञ्चित् आभास पाया है। तृषातुर जल-पीनेका स्वप्न देखता है और अजीर्णरोगी देखता है—भोज-खानेका स्वप्न। फटी-गुदड़ी पर सोकर हम समय-समय पर लाख रुपयोंका स्वप्न देखते हैं। किन्तु सब समय सीधे-सीधे इन रुद्ध इच्छाओंकी काल्पनिक तृप्ति नहीं होती। यद्यपि, "क" बाबूने एक बार पिताकी मृत्युका स्वप्न सीधे-सीधे देखा है तथापि, हमारे आलोच्य उदाहरणमें वह विकृत-रूपमें ही प्रकाशित हुई है। यह विकृति क्यों होती है, कैसे होती है—फ्रैडने उसकी भी आलोचना की है। उसका जिक्र फिर कभी करूँगा।

भाव और कार्य-कारण भाव आदिके रूपसे विशिष्ट ज्ञानके रूपको प्राप्त होता है तब विज्ञानका रूप धारण करता है और जब यह विज्ञान दस, बीस, पचीस या अधिक बार अबाध्य सिद्ध होता है तब सत्यविज्ञान कहाता है। यह सत्यविज्ञान, आनंदमय और ब्रह्मके समान लोक-कल्याणका हेतु होता है। (बृहत्वाद् बृंहणत्वात् ब्रह्म)।

किसीको यह ज्ञात हुआ कि अमुक वनस्पतिकी पत्ती पीनेसे मूत्र अधिक मात्रामें आता है और जलोदरके रोगीका फूला हुआ पेट पचक जाता है, अथवा अमुक लताके मूलका क्काथ पीनेसे पसीना अधिक आता है और उससे पक्षाघातके रोगीके हाथ पैरोंमें क्रिया होने लगती है। यह एक साधारण ज्ञान हुआ। अब इस साधारण ज्ञानमें कार्यकारण भाव आदिकी विशेषताओंका विशिष्ट ज्ञान हो जाय अर्थात् मूत्रल ओषधिसे उदरस्थ जल किस प्रकार रुधिरमें मिलकर वृक्कमें पहुँचता है और वहांसे किस प्रकार छनकर मूत्राशयमें संचित होकर बाहर निकलता है, फलतः पेट पचक जाता है, अथवा प्रस्वेदकर ओषधिका पसीना बनानेवाली ग्रंथियों पर कैसा प्रभाव होता हैं और प्रस्वेद अधिक आनेके परिणाम स्वरूप शरीरके ज्ञानतन्तुओं और क्रिया-तन्तुओंपर क्या प्रभाव पड़ता है जिससे उसमें अकर्मण्यता आती है, इन बातोंका प्रयोज्य-प्रयोजक भाव और हेतु-हेतुमद्भाव आदिके रूपमें निर्णय करना विज्ञान कहाता है। फिर दस, बीस, पचीस रोगियोंपर उक्त ओषधिका प्रयोग करके यदि उसमें अबाध्यता सिद्ध हुई तो यह सत्य-विज्ञान कहाता है। इस सत्यविज्ञानके अनुभवसे उत्पन्न होनेवाला आनन्द अद्वितीय होता है। यह ज्ञाताके अतिरिक्त औरोंका भी कल्याण करता है।

यह सत्यविज्ञान आनन्दमय और ब्रह्म-स्वरूप है। जिस प्रकार ब्रह्म अनादि अनन्त और असीम है उसी प्रकार इस सत्यविज्ञानका न आदि है, न अन्त और न कोई सीमा। देश, काल, जाति, वर्ण आदिकी सीमाएँ इस सत्यविज्ञानको सीमाबद्ध नहीं कर सकतीं। समस्त देशों, सम्पूर्ण समयों सभी जातियों और सब वर्णोंमें इस सत्य विज्ञानका प्रकाश हो सकता है। कोल, भील, शबर सन्थाल आदि जंगली जातियोंमें भी यह ज्ञान-सूर्य चमक सकता है। आयुर्वेदके ऋषियोंको इस तथ्यका पूरा पता था, अतएव उन्होंने लिखा है कि गौ चरानेवाले, भेड़ चरानेवाले तथा अन्य वनचारी लोग विविध वनस्पतियोंसे परिचित होते हैं। उनकी शिक्षा उनसे भी ले लेनी चाहिये।

गोपालास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचरिणः।
मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते॥

परन्तु जिस प्रकार सत्य विज्ञान अनादि, अनन्त और असीम है उसी प्रकार उसके अनुभव करनेके साधन नहीं हैं। वे उससे ठीक विपरीत हैं। विज्ञान यदि अनादि अनन्त है तो उसके जाननेके उपाय सादि और सांत हैं। सत्य-विज्ञान असीम है तो उसके ज्ञानोपाय सब सीमाबद्ध हैं। वे साधन चाहे प्राकृतिक हों, चाहे कृत्रिम सब एकसे ही होते हैं अर्थात् विज्ञानके ठीक विपरीत। चक्षु सत्यविज्ञानका साधन है इससे रूप और रूपवान् द्रव्योंका यथार्थ ज्ञान होता है परन्तु जिस प्रकार रूपवान द्रव्य अनंत हैं उसी प्रकार चक्षु या उसकी शक्ति अनन्त नहीं। यह ठीक है कि चक्षुसे सत्य ज्ञान होता है परन्तु यह ठीक नहीं कि जो ज्ञान चक्षुसे होता है वही सत्य है। अथवा यह कि जितना सत्यविज्ञान है वह सब चक्षुसे होता है। ये दोनों बातें नहीं। विज्ञान अनन्त है और चक्षु शांत। रूप और रूपवान् द्रव्योंके अतिरिक्त भी सत्य विज्ञान है, जहाँ चक्षुकी कोई गति नहीं। गंध, रस, शब्द, स्पर्श आदिके विषयमें चक्षु असमर्थ है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियाँ भी जो ज्ञानके साधन हैं सीमाबद्ध हैं। मन भी असीम ज्ञानका साधन नहीं। अनुमेय पदार्थ भी हैं और केवल शब्दप्रमाण-गम्य भी हैं जहाँ प्रत्यक्ष तथा अनुमान इन दोनोंकी गति नहीं। सारांश यह कि सत्य विज्ञान ब्रह्मकी तरह अनादि, अनन्त और असीम है, परन्तु उसके अनुभव करनेके साधन आदिमान्, अन्तवान् और सीमाबद्ध हैं।

जिस प्रकार चक्षु श्रोत्र आदि ज्ञानके साधन हैं, उसी प्रकार होम्योपैथी एलोपैथी आदि आदि भी रोगविज्ञानके साधन हैं। जो बात और साधनोंके सम्बन्धमें सत्य है वही इनके सम्बन्धमें भी है। यह कहना मूर्खता है कि समस्त रोगविज्ञान एलोपैथीके ही अन्तर्गत है, अथवा एलोपैथीके अतिरिक्त और कहीं रोगविज्ञान है ही नहीं। जो बात अन्य साधनोंके सम्बन्धमें है वही रोग विज्ञानके साधनोंके सम्बन्धमें भी है।

सत्य विज्ञानकी एक यह भी विशेषता है कि इसका अनुभव हो जानेके बाद फिर उसके विरुद्ध जेहाद बोलनेका कोई असर नहीं होता। जिसने अपने किसी कुटुम्बी या रिश्तेदारको साँपके काटनेके बाद मंत्रशक्तिसे अच्छा होते देखा है उसे आप हजार समझाइये कि मन्त्रशक्ति अवैज्ञानिक और मिथ्या है, उससे सर्पदष्टपर कोई प्रभाव नहीं हो सकता, परन्तु आपके इस कथनका, उसपर कोई असर नहीं हो सकता। वह तो यही समझेगा कि मंत्रशक्तिके विषयमें आप अभी अज्ञ हैं और आपके साधन जिनके बलपर आप मंत्र शक्तिको मिथ्या बतलाते हैं शक्तिके सत्य विज्ञानको समझनेमें असमर्थ हैं।

लखनऊके डाक्टर हीरालाल पाठकके कानसे मवाद आता था। विज्ञान या वैज्ञानिकताके ठेकेदार ऐलोपैथ लोगोंने एक या दो बार आपरेशन भी किया, कानके ऊपरकी हड्डीतक काट डाली, परन्तु पीब आना बन्द न हुआ। अन्तमें वे कलकत्तेके प्रसिद्ध होम्योपैथ यूनन साहबके पास गये। उन्होंने कोई दवा एक मात्रा (बल्कि १ बूंद) दे दी। कानमेंसे बहुतसा पानी निकला और बहना बन्द हो गया। अब कोई हजार झख मारा करे कि होम्योपैथी अवैज्ञानिक है और उससे कुछ लाभ नहीं हो सकता, परन्तु, इस बकवासका डाक्टर हीरालालजी पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

जिसने दूध पीनेसे कफ खाँसीके बढ़ने और पेटमें वायु बढ़नेका स्वयं अनुभव किया है उससे कोई यदि यूनानी और आयुर्वेदको अवैज्ञानिक बताता हुआ कहे कि दूधसे न कफ बढ़ सकता है न खांसी, तो वह कब विश्वास करेगा ?

एक लड़कीको बड़ी चेचक निकली। दाने सब पक गये, ज्वर खूब बढ़ा। जलन, बेचैनी, अनिद्रा, मूर्छा, प्रलाप आदि उपद्रव भी हुए। उसी समय एक जंगली अपढ़ने सरसोंके समान दो दाने पानीमें घिसकर लड़कीके भाईसे अपनी उँगलियाँ भिगोकर रोगीके ऊपर छिड़कनेको कहा। भीगी उंगलियाँ रोगिणीकी जिह्वासे सिर्फ छुआ दी गयीं। १० मिनटमें ही बेचैनी, घबराहट, मूर्छा और दाह शांत हो गयी। ज्वर भी कम हुआ। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह हुआ कि इतनी ही देरमें व्रणोंके गड्ढे भरते दिखाई दिये। अब कोई विज्ञानका ठेकेदार एलोपैथ सिद्धवैद्यकको (कोटा राज्यमें प्रसिद्ध पद्धति को) अवैज्ञानिक बतावे तो वह प्रत्यक्षदर्शियोंको कैसे बहका सकेगा ?

लखनऊके मेडिकल कालेजमें सुना है देशी दवाओंकी परीक्षाका भी एक विभाग है। जहाँ एलोपैथ डाक्टर "साइन्टिफिक" ढंगसे परीक्षा किया करते हैं। उन्होंने घोषणा की है कि गुलबनफशेमें जुकामको दूर करनेवाला कोई तत्व नहीं है और न इन्द्रजौमें दस्त रोकनेवाली कोई चीज है। न तो यह सम्भव है कि जुकामके लिये लोग बनफशा पीना बंद कर दें और न यही सम्भव है कि पिया हुआ गुलबनफशा जुकाममें लाभ करना बन्द कर दे। यह कुछ भी न होगा, होगी सिर्फ उक्त परीक्षकोंकी अज्ञता और उनकी पद्धतिकी अपूर्णताकी घोषणा।

हम कर्नल बकलेको चैलेंज करते हैं कि वे आयुर्वेदके समान भिन्न भिन्न दवाएँ एलोपैथीमें दिखावें तो सही।

आयुर्वेदकी प्राचीन पुस्तक चरक सुश्रुतका प्रति संस्करण हुए आज २–३ हजार वर्ष हो चुके। उस अतिप्राचीन कालमें भी जिस आयुर्वेदने मूढ़गर्भ जैसे कठिन आपरेशनोंमें सफलता प्राप्तकी और बालको लम्बाईमें ८–८ जगहसे चीरनेके योग्य शस्त्र बनाये उसे वैज्ञानिकताके घमण्डी अवैज्ञानिक कहते हैं !

वैज्ञानिक चिकित्सकोंके हाथमें आज भी सिर्फ छुरी है। यदि किसीके सरमें दर्द हुआ तो खोपड़ी फाड़ दी, कानमें दर्द हुआ तो कनपटी फोड़ दी, आँख दुखी तो आँखका गुल्ला निकाल फेंका; और तो और यदि पेटमें कोई विकार हुआ तो सब दाँत उखाड़ फेंके। बस यही इनकी साइन्टिफिक चिकित्सा है !

करीब पाँच हजार वर्ष पूर्व महाभारतके युद्धमें जब भीष्म पितामह घायल हुए थे तब उनकी चिकित्साके लिये वैद्य लोग ही बुलाये गये थे। कमसे कम दस हजार वर्षोंसे भारतमें आयुर्वेदने सत्य विज्ञानका स्वरूप प्राप्त कर रखा है और उसके अनुभवसे करोड़ों पुरुषोंने आनन्द प्राप्त किया है और कर रहे हैं। जो पुरुष इस सत्य विज्ञानके विरुद्ध आवाज उठाता है उसके प्रमाण और साधनपर अविश्वसनीयताकी सम्भावना रहती है।

कर्नल बकलेको आयुर्वेदका कितना ज्ञान है ? उन्होंने इसका कितना अनुशीलन किया है ? यदि कुछ नहीं तो

व्यावहारिक अलोपैथीकी अवैज्ञानिकता

[रामदास गौड़]

१—स्वभाव स्वयं चंगा करनेपर तुला रहता है

वास्तविक चिकित्सक स्वभाव है जो शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये भरपूर उद्योगमें रहता है, और सबसे उत्तम चिकित्सा वही है जिससे स्वभावको सहायता मिले। जिस किसी उपायसे स्वभावके काममें बाधा पड़े वह अवश्य ही मिथ्या उपचार है और वर्ज्य है। चिकित्साके जितने उपाय प्रचलित हैं उनमें अनेकका लक्ष्य स्वभावकी सहायता है, परन्तु उन उपायोंका देशाकालपात्रके अनुसार सदुपयोग करनेवाले चिकित्सक कम हैं। ज्वर आया हुआ है, भूख नहीं लगती, परन्तु अनेक डाकटर लंघनके बदले दूध सागूदाना आदि देते हैं और उसे कुपथ्यके बदले "पथ्य" कहते हैं। प्यास तेज लग रही है, ठंढा जल देनेसे गरमी कुछ शान्त होगी, ताप मिटेगा, परन्तु या तो पानी मना कर देते हैं या गरम दिलवाते हैं। शुद्ध वायु और रोशनी लाभकारी है, परन्तु रोगी बेचारेको ईश्वरकी दी हुई यह नियामतें, जो स्वभावको सहायता देनेवाली है, कम मिलती हैं। यह मिथ्योपचारके दो एक उदाहरण हैं जिसके दोषी साधारणतया वैद्य, डाकटर, हकीम सभी पद्धतिके चिचित्सक होते हैं। यह प्रायः व्यवहारका दोष होता है, सिद्धान्तका नहीं। आयुर्वेदमें प्रकृतिकी सहायता तो एक खास बात है, परन्तु पाश्चात्य पद्धतिमें भी यह बात पूरी तौरसे मानी जाती है। यूनानी हकीमोंका यही सिद्धान्त है। सबसे पुराने हकीम बुकरात मशहूर हैं। संभव है कि इन्होंने आयुर्वेदकी शिक्षा पायी हो। एंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिकामें इनके सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन करते हुए उस निबन्धके लिखनेवालेने कहा है—

"बुकरातका एक दूसरा सिद्धान्त है जिसका प्रभाव अभी बना हुआ है। यह है, स्वभावकी स्वयं रोग-निवारण करनेकी शक्ति। परन्तु बुकरातकी यह शिक्षा न थी कि रोग-निवारणके लिये प्रकृति काफी है, क्योंकि बुकरात चिकित्सा और उपचारकी कलाको मानता था। उग्र रोगोंमें तो वह इतना जरूर मानता था कि वात पित्त कफमें स्वाभाविक विकार उत्पन्न होते हैं, पहले वह विकार विष और मलके रूपमें होते हैं, फिर इनका पाचन होता है, और अन्तमें वह शरीरके किसी न किसी मार्गसे निकल जाते हैं। चिकित्सकका कर्त्तव्य है कि इन विकारोंको पहलेसे समझ ले, स्वभावकी सहायता करे, या कमसे कम स्वभावके काममें बाधा न डाले, जिसमें चिकित्सककी सहायतासे रोगी रोगपर विजयी हो जाय। संकटकाल चिन्ताका विषय था और बुकरातके अनुयायी हकीमोंमें यही विशेपता थी कि संकटकालका अन्दाजा पहलेसे कर लेते थे और ठीक-ठीक बतला देते थे। कहा जाता है कि बुकरात फीसागोरसके सांख्यतत्त्वको भी मानता था और उसके अनुसार वह यह स्पष्ट बता देता था कि कितने युग्म या फुट दिनोंके पीछे संकटकाल आवेगा। इसके लिये कुछ हिसाब था। अंक-गणितकी सहायता ली जाती थी। बुकराती हकीमोंमें "बुहरान" अर्थात् संकटकालका भविष्यवाद एक विशेषता थी। इस गुणमें उनके मुकाबलेका आजतक कोई हुआ ही नहीं। निदानकी रीतियाँ अवश्य ही अपूर्ण रही होंगी क्योंकि रोगोंका वैज्ञानिक विवेचन, और देह-व्यवच्छेद आदिके आजकलकेसे उत्तम साधन उपलब्ध न थे। तो भी

इसे अवैज्ञानिक बतानेका उन्हें क्या अधिकार है? जिसका उन्हें कुछ ज्ञान ही नहीं उसके वैज्ञानिक या अवैज्ञानिक होनेका पता उन्हें कैसे चला?

कर्नल बकलेने भारतके प्राचीनतम विज्ञान आयुर्वेद का अपमान करके फिर भारतीयोंको यह याद दिलायी है कि परतन्त्रता कैसी घृणित वस्तु है।

रोगके लक्षणोंपर बड़ी गंभीरतासे और शुद्धता और बारीकीसे विचार किया जाता था और बड़ी चतुराई और कौशलसे उनका अर्थ लगाया जाता था। आजकल बुकरातकी रचनाओंमें नाड़ी-विज्ञानपर अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं।

चिकित्साके सिलसिलेमें उनके अनुयायी पथ्यपर विशेष ध्यान देते थे। रोगभेदसे बड़ी बारीकीके साथ पथ्य-भेद भी होता था। जीर्ण रोगोंमें तो पथ्योपचार, विशेष ढंगके व्यायामादि और स्वाभाविक रीतियोंपर निर्भर करते थे।"

इस अवतरणसे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक डाक्टरी उपचारोंके जन्मदाता बुकरात नहीं हैं। हमारे देशमें जिस तरह चरककी काष्ठ ओषधि प्रधान चिकित्सा प्रमुख रासायनिक नागार्जुनके समयमें रसप्रधान चिकित्सासे बदल गयी, उसी तरह पाश्चात्य देशोंमें भी यूनानके चरक बुकरातकी स्वभाव-प्रधान चिकित्सा आधुनिक रासायनिक रीतियोंमें डूब गयी। इस स्थलपर हमारा विषय यह निर्णय नहीं है कि किस-किस प्रकारसे भारतीय आयुर्वेद प्रकृत या विकृत रूपमें पाश्चात्य देशोंमें पहुँचा और किस प्रकार आधुनिक डाक्टरी-प्रथा विज्ञानके उत्तरोत्तर विकासके कारण अपने पुराने आयुर्वेदिक रूपसे नितान्त भिन्न पद्धति बन गयी है। हम इतना ही कहेंगे कि प्रचलित पाश्चात्य अलोपैथी बुकरातके सिद्धान्तोंसे बिलकुल अलग होते हुए भी इस बातको मानती है कि डाक्टरका काम है प्रकृतिकी सहायता। परन्तु व्यवहारमें इस बातपर अत्यन्त कम ध्यान देते हैं। प्रकृति तो चाहती है कि रोग उग्र रूप धारण करके मलों और विषोंको दूर करे। इसमें रोगीको अत्यन्त कष्ट होना बिलकुल स्वभाविक है—एकदम अनिवार्य्य है। परन्तु रोगीका लक्ष्य होता है कष्ट-निवारण। चाहे जैसे हो, वह यही चाहता है कि हम कष्टसे बचे रहें। विषयका अनावश्यक उपभोग करके जो अधिक अनुपार्जित सुख भोग चुका है उसके प्रायश्चित्तमें दुःख भोगना पसन्द नहीं। इस बातको वह बिलकुल भूल जाता है कि हमारे पूर्वकर्म्मोंका प्रायश्चित्त जरूरी है। सिरकी पीड़ा दूर करनेको चन्दन घिसनेकी दर्दसरी भी औरोंके माथे मढ़ता है।

> लोग कहते हैं कि सन्दल दर्दसरकी है दवा
> कूटना घिसना लगाना दर्दसर यह भी तो है!

२—आतुरताकी भूलें

रोगी बिलबिलाता है, छटपटाता है और उसकी सेवा करनेवाले हितू उसका कष्ट देख नहीं सकते। वह इसी उद्देश्यसे डाक्टर, हकीम, वैद्यको बुलाते हैं कि रोगीकी घबराहट और पीड़ा थमे, कष्टमें कमी हो। इस प्रधान लक्ष्यके साथ यह गौण उद्देश्य तो रहता ही है कि रोग दूर हो जाय। सच्चा समझदार और सर्वथा योग्य चिकित्सक तो स्वभावकी सहायता करनेवाली चिकित्सा करता है। रोगीका उपस्थित कष्ट उसके उपचारसे दूर भी हो जाता है और कभी प्रकृति द्वारा प्रेरित स्वास्थ्य-संकटकी उग्र दशा लाचार करता है कि चिकित्सक छेड़छाड़ न करे। ऐसी दशामें सच्चा चिकित्सक कष्ट निवारणको अपना प्रधान उद्देश्य नहीं रखता। और उभारकी दशाको दबानेकी चेष्टा नहीं करता। उसका लक्ष्य होता है स्वभावकी सहायता। परन्तु रोगी और उसके दुर्बुद्धि हितैषी प्रत्यक्ष देखते हैं कि चिकित्सकके उपायोंसे कष्ट रत्तीभर घटा नहीं, तो समझते हैं कि चिकित्सक अयोग्य है। दूसरा डाक्टर आया। इस बीच यदि संकटावस्थाका अन्त हुआ तो परमेश्वरकी दया और पहले डाक्टरका प्रभाव समझा जाता है। अन्त न हुआ तो दूसरा डाक्टर भी उपाय करता है। बुद्धिमान डाक्टर रोगको दबानेकी चेष्टा नहीं करता। यदि संकटावस्थाका अन्त हो गया तो दूसरे डाक्टरको रोग निवारणका यश मिलता है। न हुआ, तो तीसरा आया। परन्तु संसारमें सच्चे और निर्भीक बुद्धिमान चिकित्सकोंकी संख्या बहुत नहीं है। प्रायः अपने पेशे और नामके लिये चिकित्सक ऐसी ओषधि देता है, ऐसे उपचार करता है कि रोगकी उग्रता दब जाय और रोगीको कुछ आराम मिले। ऐसे उपायसे डाक्टरमें तुरन्त विश्वास उत्पन्न हो जाता है। साथ ही उग्रताके दब जानेसे या तो किसी और अंगमें उग्रतर रूपमें रोग उत्पन्न होता है, या जीर्णरोग होकर शरीरको स्थायी रूपसे रुग्ण कर देता है। रोगीको यह पता नहीं कि प्रकाश रूपसे चंगा करनेवाले डाक्टरकी ही यह करतूत है। ऐसे प्रिय दिखा अहित करनेवालोंकी संख्या थोड़ी नहीं है।

> सचिव वैद्य गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस।
> राज धर्म्म तन तीनिकर होइ बेग ही नास॥

रोगसे व्याकुल होकर रोगी तो केवल कुपथ्य ही नहीं माँगता, कभी कभी तो आत्महत्याके लिये तय्यार हो जाता है, परन्तु सच्चे वैद्यका काम है कि हित उपचार करे, चाहे वह कितना ही अप्रिय क्यों न हो। अपयश और रोजगारके न चलनेके डरसे रोगीका अहित नहीं करना चाहिये।

अनेक चिकित्सक बुरी शिक्षा और अपने अज्ञानके कारण भी रोगीका अनिष्ट कर देते हैं। चेचकका टीका, प्लेगका टीका या अन्य टीके, रोगनिवारणके लिये विषोंकी पिचकारियाँ, अंगहीन कर डालनेवाली शल्य-चिकित्सा, कड़ी कड़ी विषमय ओषधियाँ, उलटे प्रकारका पथ्य, इत्यादि अनेक मिथ्योपचार आजकलके सभ्य कहलानेवाले देशोंमें केवल प्रचलित ही नहीं हैं वरन् कानूनके बलसे जारी किये जाते हैं। इनसे क्या क्या दोष उत्पन्न होते हैं, इनका वर्णन अलग अलग प्रकरणोंमें किया जायगा।

१—टीका और विषकी पिचकारी

भारतमें कानूनके* बलसे सबसे भ्रष्ट और सबसे अधिक हानिकर उपचार जो प्रचलित है, वह सीतलाका टीका है। गायके थनपर विस्फोटक हो जाते हैं। उसका मवाद लेते हैं। मनुष्यकी बाँहपर दोहरा स्वस्तिक सुईसे बनाते हैं, और जब जरा जरा रक्त इस स्वस्तिकपर निकलता रहता है, वहीं मवाद लगा देते हैं। हिन्दूके लिये तो यह रीति अत्यन्त गन्दी है, परन्तु हानि यहींतक मर्य्यादित हो तो कुशल है। जिस प्राणीसे यह मवाद लिया जाता है उसके अनेक तरहके विषका भी शरीरमें इस तरह प्रवेश होता है। यह अत्यन्त घृणित और अत्यन्त हानिकर क्रिया है।

विस्फोटक क्या है? उग्ररोगद्वारा शरीरके विषोंका उद्गार। उसका मवाद उन विषोंसे भरा रहता है जिसे प्रकृति गायके शरीरसे बाहर कर रही है। मनुष्यकी अपेक्षा पशुओंका जीवन अधिक स्वाभाविक है। इसीलिये इनके शरीरके विष जो कुछ होते हैं प्रायः उग्र उद्गार शीघ्र निकल जाते हैं। विस्फोटकका मवाद शुद्ध एक ही प्रकारके विषका मवाद तो होता नहीं। फोड़ा तो जहर दूर करनेका साधन है—जहर चाहे जिस प्रकारका हो। इसी-लिये गायके स्तनके विस्फोटकके विषोंका संमिश्रण मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट कराया जाता है। पंचगव्यकी रीतिपर तो अनेक नयी रोशनीके लोग हँसते हैं, पर उन्हें टीकाकी रीतिपर जो विदेशी सभ्यताका हमारे ऊपर अत्याचार है, रोना चाहिये। इससे बालकके कोमल पवित्र शरीरमें अनेक तरहके विष इसलिये डाले जाते हैं कि वह चेचकके विषके आक्रमणसे बचा रहे। परन्तु बाहरसे आनेवाले काल्पनिक और आकस्मिक विषके लिये वास्तविक और उग्र विषोंका मिश्रण जबर्दस्ती उसके रक्तमें डाल दिया जाता है। इसके लिये काँटेसे काँटा निकालनेकी या "विषस्य विषमौषधम्" की अयुक्त युक्ति पेश की जाती है। यह बात हमें बिसर जाती है कि दुश्मन भी चढ़ाई कर सकता है, इस डरसे खलिहान जला डालना, खेतोंको ऊसर कर देना, गिरस्ती बरबाद कर देना बुद्धिमानी नहीं है। इसी तरह यह भी अकलमन्दी नहीं है, शायद कभी चेचक न हो जाय इसलिये उससे भी भयानक विषोंको अपने पवित्र शरीरमें स्थान दें। पहले तो हम स्वाभाविक युक्ताहार-विहारसे जीवन रखें तो हमें बाहरी आक्रमणका भय होना ही न चाहिये, क्योंकि कोई रोग बाहरी आक्रमणसे (बाहरी चोट आदिको छोड़) नहीं हो सकता। यदि हमारे घरके भीतर कूड़ा या मैला है, तो बाहरसे मक्खियाँ आके भिनकेंगीं और हमसे यह देखा न जायगा, हम जरूर कूड़ेको दूर कर देंगे। हम यदि कूड़ेको घरकी सफाईके लिये फेंकें और उसका कारण कोई मक्खियोंको समझ ले तो उसकी बुद्धिका क्या इलाज है! शरीरमें विष और मल अप्रमित मात्रामें मौजूद होनेकी हालतमें चेचक, हैजा, प्लेग इत्यादि रोगोंका होना अनिवार्य्य है। लोग घबराएँ नहीं और स्वभाविक जीवन और स्वभाविक चिकित्सासे काम लें तो इसमें उतनी मौतें न हों जितनी होती हैं। चेचक बाहरसे आक्रमणका फल कदापि नहीं है। हम अन्यत्र चर्चा कर आये हैं कि जब उसके विषका लेप कर लेनेसे भी ऐसे शरीरपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जो विषोंसे लदा

* सन् १८८० का ऐक्ट १३—वैक्सीनेशन ऐक्ट कहलाता है। टीका लगवानेसे पहली बार इनकार करनेवालेको पचास रुपयेतक जुरमाना होता है। दोबारा इनकार करनेवालेको छः महीने तककी कैद या एक हजार रुपये तक जुरमाना, अथवा दोनों—बारम्बार यही पिछली सजा हो सकती है। ले०

नहीं है तो उसे छूतकी बीमारी कहना तो डाक्टरीका प्रमाद है।

इसपर प्रश्न होता है कि प्लेग, हैजा, चेचक खास खास मौसिमोंपर फैलते क्यों हैं? अलग रखने और दूर रहनेसे यह रोग घट क्यों जाते हैं? यदि भीतरी कारणोंसे होते हैं, तो इनका फैलना असंगत है। इन बातोंपर विचार करना आवश्यक है।

देश, काल और निमित्तके अनुसार ही मनुष्य अपनी वृत्ति बनाता है। एक देश, काल और निमित्तवाले मनुष्योंका जीवन प्रायः समान होता है। उनके आचार-विचार प्रायः समान होते हैं, उनके आहार-विहारमें भी प्रायः एकता होती है, उनके दोष भी तारतम्यके साथ एक ही होते हैं। इतनी समानताके होते इसमें आश्चर्य ही क्या है कि सबको एक ही तरहके उग्र रोग प्रायः एक ही कालमें हों। बात यह है कि स्वभाव भी सबके शरीरमें समान रीतिसे काम करता रहता है, और रोगकी उग्रता और विषोंका उद्गार लगभग एक ही मौसिममें होता है। देश-काल-निमित्तकी समानताके कारण रोगका रूप भी समान होना स्वाभाविक है। हाँ, पशुमें जो विषोद्गार एक रूप धारण करता है, मनुष्यमें उसका दूसरा रूप धारण करना भी स्वाभाविक है। किसी किसी बातमें देश, काल और "स्वभाव"की समानतासे विषोद्गारमें भी समानता हो सकती है। प्लेगके विषयमें चूहे और मनुष्यमें समानता है। परन्तु और प्राणियोंमें कम है वा नहीं है। साथ ही समानता-मात्रसे सबका विषसे बराबर बराबर लदा रहना भी आवश्यक नहीं है। मेरे भाईको प्लेग हुआ था, उनकी शुश्रूषामें मैंने कोई बात उठा न रखी। वह मर गये। परन्तु पिष्टपिष्टके होते भी मुझे सिरमें पीड़ा भी न हुई। शहरमें कोसों आसपास एक भी चेचकका मरीज नहीं होता तो भी चेचक निकलती ही है। डाक्टर लिंडलारने उदाहरण दिया है कि मेरे पुत्रको ऐसी ही अवस्थामें देखनेमें अकारण ही चेचक निकली। इस तरहके एक नहीं सैकड़ों उदाहरण है। पहले-पहल कहीं देशमें चेचक न होते हुए भी आरंभ होती है तो कहांसे होती है? प्लेग चूहोंसे फैलता है तो आखिर चूहोंमें उसका आरम्भ कैसे होता है? अन्तमें अपना असंयम या अपने अपकर्म्म ही रोगका कारण ठहरते हैं। बाहरी आक्रमण एक भारी भूल है जिसके पीछे लोग अपनी देहमें चेचक, प्लेग, राजयक्ष्मा, गरमी, कोढ़ आदि बड़े विषम रोगोंके विष डलवाकर अपनी दीर्घायुको खोकर अकाल ही कालके गालमें चले जाते हैं। बुद्धिमान गृहस्थ चोर-डाकुओंके डरसे अपना धन नष्ट नहीं करता और एक डाकूसे अपनी रक्षा करनेके लिये घरमें बीसों डाकू नहीं बसाता। वह अपना किला मजबूत रखता है, अपनेको सुरक्षित रखनेके वह उपाय करता है जिससे धनकी वास्तविक रक्षा होती है, बरबादी नहीं होती।

भीतरी कारण जब एक ही देश-काल-निमित्तमें एकसे होते हैं, तब विषोद्गारका उग्ररूप भी एकसा हुआ करता है। इसे ही लोग फैलना समझते हैं। वस्तुतः रोगका फैलना कोई बात नहीं है। जिस महल्लेमें फैलता है उसमेंके सब लोग वहीं मर जाते हैं। भयके मारे बहुतसे लोगोंके भाग जानेसे महल्ला सूना हो जाता है। लोग समझते हैं अब मौतें कम हो रही हैं। परन्तु कारण यह है कि बीमार होनेवाले ही भाग गये और ऐसी जगहोंमें भागे जहाँ शायद जलवायु अच्छी मिली, प्रकाशमें, खुले मैदानमें, स्वास्थ्यकर जगहमें रहने लगे, संयम बढ़ गया, विषका लादना कम हो गया। तबदीली न हुई होती तो सबकी तरह इन भगोड़ोंकी देहमें भी विष लदते-लदते प्लेगके रूपमें विषोद्गार आरंभ हो जाता। किसी किसीके शरीरमेंसे विषोद्गारके श्रीगणेशमें भीतरी उभार आरंभ हो गया और ऐसी दशामें उन्होंने स्थानत्याग किया। फलस्वरूप भागने वालोंको भी और स्थानमें जाकर प्लेग हुआ। तीव्र प्लेगके समयमें अनेक काशीनिवासी सज्जनोंने अपने अपने महल्लेके समस्त रोगियोंकी शुश्रूषा और शवोंकी दाहक्रिया करना अपना धार्मिक कर्त्तव्य बना लिया था। अनेकको मैं अच्छी तरह जानता हूँ, जिन्हें बराबर यही काम करते रहते भी ज्वर न आया।

चेचकका टीका पुराना हो गया है। इसकी अपेक्षा क्षयरोग, डिफ्थेरिया, प्लेग आदिके टीके हालके हैं। यह सब परीक्षाकी अवस्थामें हैं। परन्तु परीक्षाके लिये जो साधन चाहियें वह उपलब्ध नहीं हैं। कौनसा देश या जाति केवल परीक्षाके लिये अपने जीवनको ऐसे अभ्यासकी पटिया बनावेगी जिसका सुफल निश्चित नहीं है। परन्तु

लोभी और अदूरदर्शी डाक्टर-समुदाय और रोजगारी लोगोंने, जिन्हें धन कमाना ही इष्ट है और पाप-पुण्यसे कोई मतलब नहीं, अपने प्रभावसे, व्यापारी कल बल छलसे, राज्यशक्तिसे, अनेक देशोंको और जातियोंको अभ्यासकी पटिया बना रखा है। यदि धन कमाना ही उद्देश्य न होता, यदि परीक्षाका सत्य परिणाम जानना ही इष्ट होता तो यह परीक्षाएँ जिस परिस्थितिमें की जाती हैं, न की जातीं। टीका लगवानेवाले बड़ी असावधानी और असंयमसे दिन बिताते और बहुत अस्वास्थ्यकर स्थानमें अस्वाभाविक ही सिद्धान्तोंपर रखे जाते। धूप, हवा, रौशनी, स्वच्छ जल आदिका सुभीता न होता और रोगीके सम्पर्कमें रखे जाते। इतनेपर रोग न होता तो समझा जाता कि टीका रोगसे रक्षाका सच्चा उपाय है। फल तो विपरीत यह होता है कि स्वास्थ्यके सभी सुभीतेके रहते हुए टीका लगाये लोग रोगके शिकार हो जाते हैं। अतः समझना चाहिये कि परीक्षाका सुखान्तक होना किसी प्रकार सिद्ध नहीं है। फिर ऐसी अनिश्चित परीक्षाके लिये हमारी देह अभ्यासकी पटिया क्यों बनायी जाय और विषोंसे अकारण क्यों दण्डित की जाय ?

कहा जाता है कि पाश्चात्य देशोंमें टीकेके प्रचारके बाद चेचक कितनी घट गयी ? परन्तु क्या केवल चेचक घट गयी ? और रोग नहीं घटे ? यदि सभी रोग घटे, तो और सबके घटनेका क्या कारण है ? यदि वह स्वास्थ्य-साधनोंकी उत्तरोत्तर उन्नति और स्वाभाविकताकी ओर अधिक झुकाव है, तो चेचकके लिये भी यही बात क्यों न कारण समझी जाय ? चेचकके टीकेका प्रचार हुए भारतमें भी एक युग गुजर गया। क्या आये दिन चेचक नहीं फैलती ? क्या साथही और फैलनेवाले रोग नहीं फैलते ? किस टीकेकी यहां कौनसी सुकीर्त्ति है ? कई बार टीका लगाये हुओंको क्या चेचक नहीं होती और नहीं मार डालती ? बात यह है कि यहां अस्वास्थ्यकर दशा सभी रोगोंका कारण है। स्वाभाविक जीवनके और सफाईके नियमोंका अपालन जबतक न मिटेगा, तबतक रोग न घटेगा। टीकेसे तो किसी दशामें लाभ नहीं। हानि उस दशामें अवश्यम्भावी है, जिसमें शरीरकी प्राण-शक्ति घटी हुई है और विषसे शरीर लदा हुआ है। जीर्ण रोग घर बनाये हुए है। स्वस्थ शरीरमें टीका लगते ही उभार हो जाता है और विष शरीरके भीतर रहने नहीं पाता। अनेक लोगोंको बारम्बार टीका लगाया जाता है पर उभरता नहीं। जीर्ण रोग अथवा विषाधिक्य अथवा प्राण-शक्तिकी क्षीणता उभार और उग्रता उत्पन्न होने नहीं देती। इसका उलटा अर्थ लगाया जाता है कि शरीर इतना पुष्ट है कि ऐसे उग्र विषका प्रभाव ही नहीं होता।

संवत् १९२७में जर्म्मनीमें चेचक इतनी जोरसे फैली कि एक लाख बीस हजार बीमार हुए और एक लाख मरे जिनमेंसे लगभग ९६ हजारके टीका लगवाये हुए थे और केवल चार हजार बिना टीकाके थे। १८ बरसकी लगातार खोज और अनुसन्धानके फलस्वरूप साम्राज्यके प्रधान अमात्य प्रिंस बिस्मार्कने अपने अधीन समस्त राज्योंको लिखा कि "असंख्य चर्म्मरोगोंका, जो देशमें फैले हैं, प्रत्यक्ष कारण टीका है, और चेचकका कारण और चिकित्सा अभीतक अज्ञात है। गोस्तन-विस्फोटकके मवादसे जिस सुफलकी आशा की जाती थी और समझा जाता था कि चेचक बन्द हो जायगी, वह पूरा धोखा साबित हुआ।"* इसी तथ्यके आधारपर प्रायः सभी जर्म्मन राज्योंने या तो टीका उठा दिया या कानूनको अत्यन्त ढीला कर दिया।

कण्ठमाला और गरमी पैदा करनेवाले विषोंका समूह ही चेचकके स्फोटकका मवाद है। जिस शरीरमें यह विष नहीं है, उसमें भी टीकाद्वारा इनका प्रवेश करा दिया जाता है। इस तरह इन विषोंको निर्मूल करनेके बदले पाश्चात्य डाक्टरी उपचार इन विषोंको जीवित रखता और फैलाता है। स्वाभाविक जीवन इन्हें निर्मूल करनेमें यत्नशील है, परन्तु पाश्चात्य डाक्टर विषोंके प्रचार और वृद्धिमें तत्पर हैं। इसीलिये जितने प्रकारके टीके हैं सभी मिथ्योपचार हैं, अत्यन्त अपवित्र हैं, मल और विष हैं, अत्यन्त घृणित हैं, इनसे सम्पर्क भी पाप है। चीन और तिब्बतवालोंकी मलमूत्रमय औषधि और भारतकी मूत्रमें शोधे औषधों पर हँसनेवाले पाश्चात्य देशीयोंकी यह वीभत्स चिकित्सा हर शौचप्रियके लिये घृणाका पात्र है और पाश्चात्य सभ्यताके शौचाचारका एक नमूना है।

डाक्टर (Cruwell)* क्रुवेलने लिखा है—"प्रत्येक

* लिंडलारसे उद्धृत।

गोस्तन टीकाका अर्थ है, **उपदंश रोगका संचार।** गोस्फोटक ढोरोंमें ही नहीं पैदा होता। मनुष्यके गरमीके विषसे संयुक्त हाथोंसे स्तनतक पहुँचता है, क्योंकि यह गायोंके स्तनोंपर मिलता है जो दुही जाती हैं। जङ्गलमें चरनेवाली गायोंमें घरेलू बैलोंमें कभी यह रोग नहीं पाया जाता। यदि ढोरोंका रोगविशिष्ट होता तो सबमें पाया जाता। ग्वालिन सारा नेनेज़के गरमीवाले हाथोंसे ही डाकटर जेनरवाले गोस्तन स्फोटकोंकी उत्पत्ति हुई थी।"

टीका लगाये हुई स्त्रियोंको प्रायः स्तनरोग हो जाता है। दूध सूख जाता है। बच्चे पाले-पोसे नहीं जा सकते। स्काटलैण्डमें कुछ बरस हुए ऐसा ही रोग भेड़ोंमें फैला। टीका लगाया गया। परिणामतः भेड़ें दूध नहीं पिला सकती थीं। टीका बन्द हो जानेपर धीरे धीरे यह शिकायत मिट गयी।

अनेक बालकोंके शरीरमें टीकेके बाद गरमी रोगके लक्षण दीखते हैं। शुद्ध और नीरोग जीवनवाले मा-बापको डाक्टर दोष लगाता है कि बालकका रोग उनके कदाचारका फल है। परन्तु वस्तुतः वह अपने दोषको मा बापके सिर ठोंक रहा है। उसका कारण टीका है।

देखा गया है कि स्वस्थ और नीरोग मनुष्यके टीका लगा और उसे किसी न किसी विषम जीर्ण रोगने धर दबाया। मिरगी, क्षय, श्वासमार्ग श्वासप्रणाली और गलेके रोग, पक्षाघात, योषापस्मार आदि बहुधा चेचककी टीकाके बाद ही पैदा हो जाते हैं।

और और टीके जो अब प्रचलित हैं, सभी इसी प्रकारके घृणित विष हैं और उनका परिणाम गोस्तन टीकेसे किसी प्रकार कम भयंकर नहीं है।

जिस तरह टीकेसे अपवित्र घृणित विष शरीरके भीतर पहुँचाया जाता है, उसी तरह सूईकी पिचकारीसे विष और प्रतिविष भी रक्तमें पहुँचाये जाते हैं, इनका परिणाम भी महाभयानक होता है। धुकधुकी बन्द होना, सुन्नबहरी (फालिज), मिरगी, मूर्च्छा आदि रोग इन विषों और प्रतिविषोंकी पिचकारीके बुरे परिणाम हैं। यह रोग यों न होते, परन्तु इन विषोंने एक रोग रोकनेको अनेक पैदा कर दिये।

हमने सूईकी पिचकारी द्वारा रोगोपचारको सूईसे टीका लगानेकी ही कोटिमें इसलिये रखा है कि दोनोंमें रक्तमें विषोंका प्रवेश कराया जाता है। विधिमें तनिकसा अन्तर है। परिणाम एक ही है। हम इन सब रीतियोंको मिथ्योपचार कहते हैं, अत्यन्त दूषित ठहराते हैं और इनसे बचनेकी सलाह हर आत्मसंयमी और सत्यप्रेमीको देते हैं।

४-शल्यचिकित्साका दुरुपयोग

शल्यकर्म्म अत्यन्त उपयोगी विधि है और शरीरकी रक्षाके लिये अनेक अवसरोंमें इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं। आजकल यह विधि इतने अद्भुत चमत्कार कर रही है कि पुरानी कहानियाँ सच्ची जँचने लगी हैं। हम इस विधिके विरोधी नहीं हैं। परन्तु आजकल इसका दुरुपयोगकी अत्यन्त बढ़ गया है। जितनी इसका उपयोगिता मनुष्यको लाभ पहुँचा रही है उससे हजारों गुना अधिक इसका दुरुपयोग हानि कर रहा है। लगभग सौ बरसोंके भीतरहीकी बात है कि ईथर क्लोरोफार्म, कोकेन, स्टोवेन आदि संज्ञाहीन करनेवाली औषधियोंके आविष्कारसे शल्यक्रिया बहुत आसान हो गयी है। इन औषधोंसे ज्ञाननाड़ियाँ स्तब्ध हो जाती हैं और रोगी निश्चेष्ट और बेहोश रहता है अथवा उसका अंगविशेष बेहोश रहता है। मोतियाबिन्दकी पथरी निकालते समय कोकेन डालकर आँखकी ज्ञाननाड़ियाँ ऐसी स्तब्ध कर दी जाती हैं कि होशमें रहते हुए भी रोगीको इस बातकी सुध नहीं होती कि आँखके कोयेपर क्या क्या क्रिया हो रही है। क्लोरोफार्मसे बेहोश किये हुए रोगीका अंग काट डालते हैं, उसे जरा भी सुध नहीं होती। इस सुभीतेके साथ साथ हानि यह है कि क्लोरोफार्मका प्रभाव शरीरपर अनिष्ट पड़ता है, और यदि इस विषको प्रकृतिने निकाल न दिया तो यह भी शरीरस्थ विषोंकी भयंकरताको बढ़ा देता है। हृदयके ऊपर इसका अत्यन्त अनिष्ट फल होता है। यह तो हुई बेहोश करनेवाली दवाकी बात।

पहले जब बेसुध करनेवाली दवाएँ न थीं, शल्यकर्म्मसे रोगीको कष्ट होता था। इस वेदनाको सहनेके लिये रोगी तैयार है या नहीं, वह इस वेदनाके पार जा सकेगा या नहीं, उसकी शल्यचिकित्सा अनिवार्य्य है कि नहीं, यह सब प्रश्न उस समय आजकी अपेक्षा अत्यधिक महत्वके थे और

यों ही कभी कोई बड़ी शल्यक्रिया होती थी। आज भी इन प्रश्नोंपर ध्यान देते हैं, पर स्पष्टतः उतना नहीं। आजकल अधिक प्रवृत्ति इस ओर है कि रोगीका अमुक अंग बेकार हो गया है, अच्छा होना असम्भव है, उसे काटकर निकाल देनेसे ही रोगी अच्छा होगा। जीभकी जड़की गाँठें सूज आयीं, कितनी ही दवा की गयी अच्छी नहीं होतीं, डाक्टर उन्हें काटकर निकाल देता है। पेटके उपांत्रमें सूजन है, पीड़ा है। काट कर अलग करो। खूनी बवासीर है। काटकर अलग कर दो। मैं एक रोगीको जानता हूँ जिसकी गुदा-नलिकाको डाक्टरने काटकर निकाल दिया था, और एक नली अँतड़ीसे लगाकर एक थैलीमें मलसंचय कराते थे। यदि बेहोशीकी दवाएँ न फैलतीं तो इस तरह सहज ही अंगहीन करनेवाले शल्यकर्म्मका भी उतना प्रचार न होता। मैं एक वैद्य मित्रको जानता हूँ कि जिनके दाँतोंमें पीड़ा हुआ करती थी। उनके डाक्टर मित्रने उनको राजी करके सारे दाँत निकालकर फेंक दिये और नकली दाँत लगा दिये जिनमें पीड़ा नहीं होनेकी।

यह अंग हैं, प्रकृतिने इन्हें काम सौंपा है। जब कभी विषोद्धार साधारण द्वारोंसे होना कठिन हो जाता है, स्वभाव नये अंगोंसे नये रास्ते बनाकर विषोंको निकाल बाहर करनेका प्रयत्न करता है, गाँठमें पीड़ा और सूजन इसी कारण है। पीड़ाको "वेदना" कहते हैं, क्योंकि वह सूचना देती है कि अमुक अंगकी असाधारण दशा है और हो सके तो बाहरसे भी मदद पहुँचाओ। यह गोहार है। आपने इस गोहारको कैसे सुना और क्या मदद पहुँचायी? आप उठे और दुहाई देनेवालेका ही सिर काट लिया। न रहेगा, न दुहाई देगा। दाँतमें पीड़ा हुई, जो आपके पेटके बिगाड़की सूचना दे रही है, आपको सावधान कर रही है। आपने दाँतोंको ही उखाड़ फेंका। न रहेगा बाँस न बाजेगी बाँसुरी। परन्तु आपने यह क्या किया? तारके चपरासीने बुरी खबर पहुँचायी तो आपने उठकर चपरासीको मार डाला, तारघरको नष्ट कर दिया। स्वभावने आपके शरीरमें अधिक विषके निकालनेका उपयुक्त मार्ग न पाकर दाँतोंकी जड़मेंसे और मसूड़ोंके द्वारा दूर करना चाहा और नाली बनायी। आपने खामखाह उसके काममें बाधा डाली और नाली बनती बनती आपने बिगाड़ दी। नये दाँत या नकली हाथसे वैसे काम कदापि नहीं होनेके। जैसे बिजलीके काम करनेवाले और रोशनीवाले तार आप अपने नये घरमें लगा लेते हैं वैसे ही नकली अंगोंमें नाड़ियों और धमनियों शिराओं आदिका सम्बन्ध संभव ही नहीं। अंगके निकल जानेसे स्वभावके काममें जो गड़बड़ पड़ जाता है, जो कमी आ जाती है, कदापि दूर नहीं हो सकती। इसलिये झटपट अंग कटवाकर फेंकना सब दशाओंमें बुद्धिमानी नहीं है।

रोगको दूर करनेका प्रयत्न अङ्गको दूर करनेमें नहीं है। सूजनसे अंग बताता है कि विषोद्धारका मुख उसी जगह बननेवाला है। पीड़ासे गुहार लगाता है कि स्वाभाविक उपचारोंसे सहायता करो। इसका उत्तर सहायता करना है—काटना नहीं है। इसलिये उत्तम उपचार है सहायता। शल्यचिकित्साके कारण भी उपस्थित हो सकते हैं। चोट लगनेमें, गोली खानेमें, जल जानेमें, शल्यक्रिया लाभ पहुँचा सकती है। शरीरके भीतरसे बाहरी द्रव्योंके दूर करनेमें तो यह विद्या अद्वितीय है। इससे वहीं काम लेना चाहिये जहाँ बिना इसके उपकारका और कोई साधन ही न बचा हो।

५—दबानेवाले उग्र औषधों और विषोंका व्यवहार

डाक्टरी इलाजका आजकल हमारे अभागे देशमें कानूनके सहारे प्रचार हो रहा है। बीमारीका इलाज गरीब आदमी कराना चाहे तो अस्पताल जाये। देशके धनका एक बड़ा अंश डाक्टरी दवाओं और उपकरणोंको खरीदनेके लिये विदेशोंमें खिंचता चला जाता है। हर जगह भरसक डाक्टरी अलोपैथीको ही प्रोत्साहन मिलता है। अलोपैथ ही सरकारी नौकर होता है। उसीकी सनदपर छोटेसे बड़े सरकारी-नीमसरकारी कर्म्मचारियोंको छुट्टियाँ मिलती हैं, नौकर रखे जाते हैं। भले चंगेको बीमार या पागल और बीमार या पागलको भी भला चंगा बनाना इन्हींके हाथोंमें है। इस पद्धतिकी रक्षाके लिये कानून बनाया गया है। डाक्टरीसंघ बना हुआ है। अलोपैथीकी शिक्षाके लिये बड़े खर्चसे मेडिकल कालेज बने हुए हैं जिनसे विदेशी व्यापारको सहायता मिलती है। शिक्षाकालमें कोई कोई अच्छा ईमानदार अध्यापक ठीक

सिद्धान्तोंकी शिक्षा देता और डाक्टरी पद्धतिकी त्रुटियाँ भी बताता है, और अनेक शिक्षित डाक्टर उस पद्धतिकी त्रुटियाँ जानते भी हैं, परन्तु धनका लोभ और पेशेकी कमजोरियाँ उन्हें लाचार कर देती हैं और वह मिथ्यो-पचारके शिकार बन जाते हैं। हम अन्यत्र दिखा आये हैं कि रोगको उभारकर विषको दूर करना और शरीर शोधन-द्वारा वास्तविक रोगका शमन ठीक चिकित्सा है, परन्तु यह जानते हुए भी अनेक अलोपैथ ठीक रीतिका इसलिये अनुसरण नहीं कर सकते कि रोगी लक्षणोंके उभारको देखकर समझेगा कि चिकित्सकने रोग बढ़ा दिया है और फिर डाकटरके हाथसे रोगी निकल ही न जायगा बल्कि डाक्टरकी बदनामी भी हो जायगी। इस दबावमें स्वयं पड़ डाक्टर प्रायः ऐसी दवा देता है कि रोगके लक्षण दब जाते हैं, विकार भितरा जाता है और रोग जीर्ण रूप धारण कर लेता है। रोगी समझता है कि डाक्टरने अद्भुत चमत्कारिक चिकित्सा की है और दवा देते ही आराम हो गया। डाक्टरमें उसे विश्वास हो जाता है और यह चिकित्सा पद्धति उसे भा जाती है।

स्वभाव बराबर इस कोशिशमें रहता है कि शरीरके भीतरी विषोंको फोड़े, फुंसी, जहरबाद, खुजली आदि चर्म्मरोगोंके रूपमें निकाल बाहर करे, परन्तु डाकटर पारा, सीसा, जस्ता, चान्दी आदि उग्र विषोंके औषध देकर उन्हें दबा देता है और निकलते हुए विष भितरा जाते हैं। सरदी जुकाम आदिपर भी अफीम आदि मादक और दूसरे उग्र संकोचक द्रव्य देकर जुकाम बन्द कर देना ही डाक्टरी विधि है। दस्त आने लगते हैं तो भी अफीम आदि रोकने-वाले औषध देकर बन्द कर देते हैं। इनसे कोठा स्थिर हो जाता है और सदाके लिये कब्जकी बीमारी हो जाती है। सूजाक आदिके मवाद या गरमीके नासूर या तो पिचकारी दे-देकर; या जलाकर या पारा, संखिया, अयोडीन (नैल) आदि उग्र विषमय दवाएँ खिलाकर बन्द कर दिये जाते हैं और स्वभाव शरीरके भीतरके उग्र मलों और विषोंको बाहर निकालनेमें असमर्थ हो जाता है। ज्वरवाले रोगोंको कृमिनाशिनी, शीतकारिणी दवाओंसे अथवा विषों और प्रतिविषोंकी पिचकारियाँ देकर दबा देते हैं। डाक्टरी निघंटु साफ कहता है कि यह ओषधियाँ रक्तकणोंको स्तब्ध और बेसुध कर देती हैं, हृदयकी गतिको मन्द कर देती हैं, और सभी प्राणचेष्टाओंको दबा देती हैं— हम कह आये हैं कि शरीरको शुद्ध करने और मलको निकालनेके यही उत्तम शस्त्र हैं जो इन ओषधियोंसे बेकार और अकर्मण्य हो जाते हैं। पीड़ा, निद्राभंग आदि भी मादक द्रव्योंद्वारा दूर किये जाते हैं, सो दूर करना तो क्या है रोगी नशेमें हो जाता है और विष निकलनेके बदले दब जाता है। मिरगी आदि मूर्च्छारोगोंकी चिकित्सा ब्रमिद मिली ओषधियोंसे की जाती है जिनका काम है नाड़ी-चक्रोंको और दिमागको स्तब्ध और संज्ञाशून्य कर देना। इनसे पक्षाघात, उन्माद, आदि रोग पैदा हो जाते हैं। रोगी अच्छा नहीं होता—

मरज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की

डाक्टरीमें चाईंचूआं, बालखोरा, गंजेपन आदि रोगोंका इलाज भी ऐसा होता है कि दिमागमें समाकर चक्कर, सिरदर्द, अपस्मार, बहरापन, आंखके रोग पैदा करता है। डाक्टरी पद्धतिके हमने कुछ ही उदाहरण यहाँ दिये हैं। शायद ही कोई प्रसिद्ध इलाज होगा जिसमें डाकटर दबाने-वाले उपचार न करता हो। उसकी पद्धति ही ऐसी है। उग्र विषोंका प्रयोग ही यह परिणाम लाता है। मनुष्यका शरीर विषोंका खजाना बन जाता है। परन्तु फैशनेबिल रोगी मरनेकी भी इच्छा करेगा तो इन्हीं विद्वानोंके हाथ! पाश्चात्य सभ्यताका यही फल है।

पाश्चात्य ओषधियोंने भारतकी प्राचीन आयुर्वेद विद्या-पर भी चढ़ाई की है। वैद्य भी चोरी चोरी **क्विनीन** और **टिंकचर अयोडिन** इत्यादि काममें लाते हैं। रोगियोंसे अपनी इस कुप्रवृत्तिको छिपाते हैं। कुनैनके रूप बदल देते हैं। हकीम भी डाक्टरी दवाओंका प्रयोग करने लगे हैं। इस विषयपर उर्दूमें पुस्तकें तैयार हैं। वैद्यों और हकीमोंमें डाक्टरी पद्धतिके यह अवगुण क्यों आये? वह क्यों डाक्टरीकी नकल करते हैं?

लगभग डेढ़ हजार बरस हुए कि औषध-निर्माणके रूपमें भारतवर्षमें आधुनिक रसायन शास्त्रका प्रचार हुआ। यद्यपि नागार्जुनके पहले भी अनेक रसायनशास्त्री हो गये हैं, तो भी पारे आदि धातुओंके रसों और यौगिकोंकी परीक्षाएँ

और प्रयोग नागार्जुनके समयमें इतना हुआ कि रसोंके प्रचारका आरंभ यदि उसी समयसे माना जाय तो अनुचित न होगा। सभी रस बड़े उग्र विष हैं, इसलिये इनकी अत्यन्त थोड़ी मात्रा रोगीको दी जाती है। रोगको दबाने और उग्र लक्षणोंको शमन करनेमें रस जादूका असर रखते हैं। अन्तिम कालमें भी यह एक बार बुझते हुए दीपकमें तेज़ झलक ला देते हैं*। परन्तु रस हैं विष। यह वास्तविक शमन करनेवाली दवाएँ नहीं हैं। इनका काम विषको दूर करना नहीं है। शरीरमें यदि यह दवाएँ ठहर गयीं तो विषोंकी संख्या और मात्रा बढ़कर प्राणकणों और रक्तकणोंको स्तब्ध, अचेत और प्राणशक्तिको क्षीण कर देती हैं और अगर न ठहरीं, स्वभावने वमन, विरेचन, स्वेदन आदिके द्वारा इन्हें निकाल बाहर भी किया तो प्राणशक्तिका अधिक परिश्रमके कारण ह्रास हुआ। सारा शरीर थक जाता है। साथ ही उलटी प्रतिक्रियाका आरंभ होता है। जैसे, अगर वमन विरेचन हुआ हो तो भूख मर जाती है और कब्ज हो जाता है। डाक्टर वैद्य प्रायः वमन विरेचन आदि क्रियाएँ इसी रीतिसे पैदा करते हैं और कब्ज़ दूर करनेके लिये इस विधिको सदुपचार ठहराते हैं। डाक्टर पारेका एक लवण देता है जिसे केलोमेल कहते हैं। यह पेटमें ठहर नहीं सकता। पेट और अँतड़ियोंके मलोंको अवश्य ही यह लिये दिये निकलता है। परन्तु इसे निकालती है प्राणशक्ति। विष खाकर हम प्राणशक्तिको लाचार करते हैं कि उसे चाहे इच्छा या समय हो या न हो, वह अवश्य ही उस विषको निकाल बाहर करे। पेटमें जो कुछ कच्चा या पक्का द्रव्य होता है उसमें पहले केलोमेल मिलता है और अन्तमें उनको लिये दिये बाहर होता है। अब थकी हुई प्राणशक्ति और बेगारसे थकी अँतड़ियाँ विश्राम लेती हैं। इसीको कब्ज कहते हैं। यह रस इस तरह कब्जका निवारण करनेवाली दवा नहीं है। इसकी प्रतिक्रिया स्वयं कब्ज पैदा करना है।

इस बहसपर कि विषको शरीरसे दूर करनेके लिये उद्योग करना चाहिये, न कि उसे दबाकर भीतर रखनेका प्रयत्न—वैद्य और डाक्टर कह बैठते हैं कि हम तो वमन विरेचन स्वेदन आदिसे विषको निकालनेका ही जतन करते हैं, हम तो स्वभावकी सहायता करते हैं। डाक्टर और वैद्य यद्यपि सहायता करनेकी ही नीयतसे वमन विरेचन आदि कराते हैं, तथापि व्यवहारमें वह चूक जाते हैं। शरीरमें विष किस स्थानपर है, क्या जिस अंगमें विष है उस अंगसे प्रकृति उसे निकालनेका कोई यत्न कर रही है, क्या वमन या विरेचन या स्वेदनसे वह विष बाहर हटाया जा सकेगा या कमसे कम स्वभावको कुछ सहायता दी जा सकेगी? इन बातोंपर पूरा विचार कम ही चिकित्सक करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि विरेचनादि क्रियाओंके बारम्बार होनेसे कभी कभी लाचार होकर स्वभावको और और अंगोंसे हटाकर विरेचनमार्गसे ही विषको दूर करना पड़ता है, पर इसमें कितनी प्राणशक्ति लगती है, कितनी कमजोरी आती है, यह रोगी ही अपनी दशासे स्पष्ट कर देता है। स्वभावके साथ इस क्रियामें दसमें नव प्रयोगोंमें तो अवश्य ही बलात्कार होता है। कभी-कभी इस जबर-दस्तीको जब प्राणशक्ति बरदाश्त नहीं कर सकती तो विरेचन नहीं होता, जुल्लाब पच जाता है, और विष अधिक उग्र रूप धारण करके दूसरी राह पकड़ता है या प्राणशक्तिका अत्यन्त ह्रास और जीवनका अन्त हो जाता है। औषधोपचार या अस्वाभाविक रीतिसे लाये हुए पेशाब और पसीनेकी परीक्षा करनेसे पता लगा है कि इस विधिसे उतना मल नहीं निकलता जितना स्वाभाविक स्वेद और प्रस्रावसे निकला करता है। बलात्कारजनित अधिक स्वेद और स्रावसे शक्ति क्षीण होती है। इसलिये वमन विरेचनादि उपचारोंका प्रयोग वैद्योंको अत्यन्त सावधानीसे खूब समझ-बूझकर करना चाहिये। जब विष आमाशय या पक्वाशयमें हो अथवा अन्नमार्गमें हो तब तो उसे निकालनेको वमन, विरेचन, वस्तिकर्म्म आदि देश-कालके अनुकूल करना ही चाहिये, परन्तु ऐसी दशामें भी रसों और धातव विषोंके बदले काष्ठौषधियों और बाह्योपचारोंसे काम लेना ही बुद्धिमानी है।

हैजा अत्यन्त उग्र रोग है। जहाँ इसमें दस्त और

---

* इसके सिवा वैद्योंको एक बड़ा सुभीता यह है कि सैकड़ों औषधियाँ एक बटुएमें लिये फिरते हैं। रोगीको नुसखा बँधवानेका बखेड़ा कम पड़ता है। रोगी समझता है कि हकीम डाक्टरकी अपेक्षा वैद्य अधिक सस्ता पड़ेगा और उसका इलाज छूमन्तरकी तरह लगता भी दिखाई देता है।

के बहुत होते हैं, वहाँ प्रायः रोगी बच जाता है। जहाँ वमन विरेचन अत्यन्त कम या नहीं होता, वहाँ हैजेका रोगी, उसके उग्र लक्षणोंके स्पष्ट या प्रकट होनेके पहले ही चल बसता है। शरीरके भीतर विषका सञ्चय पहलेसे हुआ है, उसपर मिथ्याहार-विहार अशुद्ध सम्पर्क आदिद्वारा विशेष विषोंका प्रवेश होनेसे सहनपरिमाणसे अधिक विष एकत्र हो जाता है। यदि रक्तमें प्रविष्ट विष असह्य मात्रामें है तो उलटकर अन्यमार्गकी ओर प्रवृत्त होता है और स्वभाव उसे वमन विरेचनादिसे दूर करता है। परन्तु यह क्रिया प्राणशक्तिपर निर्भर है। प्राणशक्ति जितनी बलवती होगी उतना ही इस क्रियामें सौकर्य्य होगा। जिसकी शक्ति प्रबल है उसकी संकटावस्थाको पार करके जीवनका दीपक फिर जलने लगता है। पर प्राणशक्ति क्षीण हुई तो यहाँतक कमजोरी हो सकती है कि शरीर रोगकी पहली चढ़ाईको, उभारकी अवस्थाको ही, सह नहीं सकता और उग्र लक्षणोंके प्रकट होनेके पहले ही शरीरान्त हो जाता है। यहाँ लाख औषध कीजिये, कोटि उपचार कीजिये, सारा उद्योग निष्फल हो जाता है। चिकित्सा तो प्राणशक्ति या स्वभावकी सहायतामात्र है। जीवनरक्षा उसके हाथोंमें नहीं है।

जहाँ-कहीं बीमारी फैलती है वहाँ वस्तुतः शरीरोंकी परीक्षा हो जाती है। शुद्ध अथवा प्रायः शुद्ध शरीरवालोंको विशूचिका होती ही नहीं। विशूचिकाके जीवाणुओंसे भरा गिलास पीकर स्वस्थ रहनेवाले प्रोफेसरका उदाहरण हम अन्यत्र दे चुके हैं। क्षीण प्राणशक्तिवाले विषोंसे लदे शरीर बाहरी चढ़ाईको सह नहीं सकते और धड़ाधड़ मौतें होने लगती हैं। जितनी ही अधिक सहनशक्ति हुई उतने ही अधिक उग्र लक्षण प्रकट होते हैं। यह लक्षण भी विषोद्गारके ही हैं। विष पर्य्याप्त परिमाणमें निकल गया और प्राणशक्ति अभी प्रबल है तो उग्र लक्षणोंका शमन हो जाता है और धीरे-धीरे सुस्ता-सुस्ताकर जीवनकी प्रमित और साधारण क्रियाएँ फिर होने लगती हैं। इस उग्रतासे प्रायः शरीर शुद्ध हो जाता है। स्वास्थ्यसंकटके बीत जानेपर रोगी इतना थका होता है, स्वभाव इतना हारा होता है कि उसे विश्राम चाहिये। स्वास्थ्यसंकटके समय चिकित्सककी चतुराई और बुद्धि सबसे अधिक काम कर सकती है। यह ताड़ जाना सहज नहीं है कि प्रकृतिको इस समय कैसी सहायता चाहिये। प्रायः दस्त के बन्द होनेकी दवा दी जाती है। कभ-कभी अन्तमें ऐसी दवा संकटावसरमें लाभदायक हो सकती है, परन्तु आरम्भमें ही वमन-विरेचनके बन्द होनेका अर्थ विषसंचय भी हो सकता है जिसका परिणाम आगे जाकर घातक हो सकता है।

मेरी दोनों लड़कियोंको १९७७ के सौर भाद्रपद मासमें हैजा हो गया। बड़ी लड़की बिना किसी औषधोपचारके अच्छी हो गयी। उसे ७-८ घण्टेतक कै दस्त हुआ। फिर अपने आप बन्द हो गया और शरीरमें गरमी आ गयी। बच जानेवालेके लिये डाक्टर कहते हैं कि इसे हैजा न था, हैजेका अतीसार था। अस्तु। तीन बरसकी छोटी लड़कीके दस्त कैके बन्द होनेके कोई लक्षण नहीं दीखते थे। दो दिनतक यही दशा रही। रोगीकी दशा बिगड़ती ही जाती थी। अन्तमें बन्द करनेकी दवा दी गयी। वमन-विरेचन दोनों बन्द हो गये। परन्तु एक दिन रातके बाद ही उसकी साँस तेज हो गयी और डाक्टरने देखकर बताया कि दोनों फुप्फुस प्रदाहकी दशामें हैं। कारण स्पष्ट था। विष रक्त और पेटमें रह गया था। अन्नमार्ग रुक जानेसे श्वासमार्गमें जमा हुआ और श्वासयंत्र बिगड़े। अब प्रदाहका इलाज होने लगा। हकीम और डाक्टर दोनोंने सलाह करके लक्षणोंके शमन करनेके उपाय किये। अन्तमें दोनोंकी राय हुई कि बच्चेसे हाथ धोना ही पड़ेगा। निराशाकी दशामें ओषजनवायुका मैंने स्वयं छत्तीस घण्टेतक भिन्न-भिन्न मात्राओंमें साधारण वायुद्वारा हलकी करके सेवन कराया। अन्तमें डाकटरने देखकर कहा कि फुप्फुसप्रदाह बिलकुल शान्त हो गया। अब लड़की बच गयी।

दो घण्टे बाद ही आँखें चढ़ गयीं, शरीर अकड़ गया, पीला और नीला पड़ गया, श्वास और हृदयकी गति बन्द हो गयी। देखनेमें मृत्यु हो गयी। इस समय झट उसके हाथ पैर कृत्रिम श्वास-प्रश्वासके लिये हिलाये गये और ओषजनवायुका प्रयोग किया गया। प्राण लौट आये। मेरे विचारमें आया कि पेटका विष फुप्फुसको छोड़ अब दिमागपर प्रभाव डाल रहा है। वस्तिकर्म्मसे यदि पेट साफ कर दिया जाय तो शायद कुछ लाभ हो। साथ ही फिर उसी मृतवत् दशाका भय था। जब दिमागपर पड़े हुए

विषके प्रभावसे कोई अनिष्ट दशा एकाएकी उपस्थित हो तब नीचेवाले अंगोंकी नाड़ियोंको एकदम चौंका देनेसे दिमाग बहुधा ठीक हो जाया करता है और विषका प्रभाव नीचेकी ओर प्रवाहित होने लगता है। इस हेतुसे मैंने तप्त जल तय्यार किया और वस्तिके प्रबन्धमें ही था कि फिर वही दशा उपस्थित हुई। देहके अकड़नेके साथ ही खींचकर उसकी दोनों टांगें तप्त जलमें डाल दी गयीं, तुरन्त ही पेटसे पिचकारीकी तरह बहुत अधिक परिमाणमें मल निकल पड़ा और रोगीकी अवस्था सुधर गयी। चार बार इसी प्रकार अत्यधिक विषैले दस्त हुए। बस इन्हीं दस्तोंसे दशा वस्तुतः सुधरने लगी और धीरे-धीरे लड़की अच्छी हो गयी। दवाओंने लक्षणोंको केवल दबा दिया था। परन्तु विषके निकालनेका प्रयत्न स्वभावतः अन्नमार्गसे ही होनेके कारण जबतक विरेचन नेचर निकाल न पायी तबतक बराबर बच्चेके प्राणोंका सङ्कट बना रहा। विष गया और जानकी जोखिम गयी। प्रायः **दवा देना** वास्तवमें **दबा देना** है और दवाका नाम दवा या दबा सचमुच बहुत ही सार्थक है।

पढ़नेवालेको भ्रम न हो इसलिये हम कह देना चाहते हैं कि हम ओषधिके व्यवहारके सर्वथा विरोधी नहीं हैं। ओषधिके उचित व्यवहारको हम आवश्यक समझते हैं। उग्र और विषैली ओषधियोंसे, जिनसे विष बढ़ता है और लक्षण दबते हैं, हमको घोर विरोध है। परन्तु हम काष्ठ-ओषधियों और होमियोपथिक ओषधियोंको अनेक अवसरोंपर अति आवश्यक समझते हैं। इसका विस्तृत वर्णन हम फिर कभी करेंगे।

६—बाह्योपचारोंकी भूलें

रोगी ज्वरमें भुन रहा है, पीड़ासे तड़प रहा है, प्याससे कण्ठ सूखा जा रहा है, पसीना नहीं होता पर वह जलन है कि शरीरपर पतला दुपट्टा भी सह नहीं सकता, पर उसकी शुश्रूषा करनेवाले उसे बढ़ाते जाते हैं, ठंढा जल नहीं देते, ताजा ठंढी हवा उसे लगने नहीं देते। समझते हैं कि किसी तरहकी ठंढक उसे नुकसान पहुँचावेगी, यह कितनी भारी भूल है! स्वभाव भीतरी जलनको घटानेके लिये बाहरी त्वचाकी राहसे गरमीको निकाल रहा है, और माँग रहा है ठंढा जल कि भीतर कुछ ठंढक आवे और ज्वर घटे, माँगता है हवा कि त्वचाकी गरमीको उड़ा ले जाय और घटा दे, परन्तु रोगीके मित्र उलटा समझ रहे हैं, स्वभावकी सहायता करनेके बदले उसका विरोध कर रहे हैं। साथ ही इसका उलटा उपचार करनेवाले भी स्वभावके विरोधी हैं। जहाँ केवल साधारण ठंढे पानीसे काम चल सकता है, वहां बरफकी तहकीतह चढ़ाकर केवल ठंढा ही नहीं करते बल्कि नाड़ीको ज्ञानशून्य और स्तब्ध कर देते हैं। पहला बाह्योपचार तो स्वभावकी सहायता नहीं करता था, परन्तु दूसरा तो निकलते हुए विषको दबा देता है, सफाई करनेवाली मलसे भरी नालियोंको बन्द कर देता है और उग्रताके लक्षणोंका शमन करके जीर्णरोगकी नीवँ रखता है।

ज्वरके रोगीको थोड़ा थोड़ा ठंढा जल धीरे धीरे पिलाइये कि उसे भीतरी शान्ति मिले। पसीना जबरदस्ती लानेके लिये ठीक उग्र जलनके समय उसे कपड़ोंसे लादकर तंग न कीजिये। उसके शरीरका ताप बाहरी हवासे घटेगा। ताप यदि बहुत ऊँचे दरजेका हो गया है, पीड़ित बेसुध हो रहा है, बकता-झकता है, उठ उठ भागता है, तब भी उसके सिरपर बरफ न बांधिये। ठंढे जलकी पट्टी बाँधना, सारे शरीरको ठंढे जलकी पट्टीसे ढककर ऊपरसे सूखे कपड़े लपेट देना इसलिये अधिक लाभकर है कि इस उपचारसे शरीरसे विषोद्‌गारकी वह उग्रता घट जायगी जो इन्द्रियोंको बेबस कर डालती है और संकटावस्थाको चिकित्साके काबूमें नहीं रखती, परन्तु साथ ही साथ उग्र दशाका शमन भी नहीं होता, कुछ हरारत घटकर ताप इतना हो जाता है कि रोगी सहज ही सह सकता है। १०७ से लेकर १०५ या १०४ का ज्वर इस ठंढे जलके उपचारसे घटाकर १०२ तक लाया जा सकता है। जलकी पट्टी स्वभावकी सहायता करती है। स्वभाव त्वचाको उसके चारों ओरके पदार्थोंसे अधिक गरम करके कुछ गरमी निकाल बाहर करना चाहता है। जलकी पट्टीने इस कामको आसान कर दिया। शरीरसे अधिक तापके निकलनेके लिये एक सहज मार्ग मिल गया। बरफ तो एकाएकी इतनी ठंढक लाता है कि सम्पर्कके स्थानपर रक्तका प्रवाह ही बन्द सा हो जाता है, राह ही रुक जाती है, विष या विषकी गरमी निकलना चाहे तो किस मार्गसे जाय। उसे भितरा जाना पड़ता है। इसीलिये

बरफसे वही हानि होती है जो उग्रताके लक्षणोंको शमन करनेवाली या रोगीको दबाकर भितरा देनेवाली दवाओंसे होती है। रोगी पानी माँगता है तो स्वाभाविक चिकित्सा यह भी नहीं कहती कि संयमसे काम न लिया जाय, पानी एकदम अधिकसे अधिक मात्रामें रोगीको पीने दिया जाय, या उसे बरफके पानीसे नहलाता रहे। असंयमसे वही परिणाम होगा जो बरफ या दबानेवाली दवाओंसे होता है। नहला देनेसे ज्वर बहुत घट जाता है, परन्तु प्रतिक्रिया बहुत भयानक होती है, ज्वर कभी कभी बहुत ऊँचे चढ़ जाता है। पट्टीमें यह गुण है कि वह स्वयं जल्दी ही तापके कारण गरम हो जाती है और शरीरसे थोड़े ही थोड़े परिमाणमें धीरे ही धीरे गरमीको निकालती है।

रोगाक्रान्त शरीरमें, विशेष रूपसे उग्रदशामें, शरीरके और सभी व्यापार शिथिल हो जाते हैं और उभारकी ओर सारी शक्तियाँ प्रवृत्त हो जाती हैं। इसीलिये बहुधा उभारकी दशामें भूख-प्यास नहीं लगती। कमज़ोरी मालूम होना तो उभारकी दशाका एक आनुषंगिक लक्षण है। परन्तु डाक्टर प्रायः कोई न कोई पथ्य अवश्य दिलवाता है कि रोगी कमज़ोर न हो जाय और रोगकी चढ़ाईका सामना करनेको शरीर सबल रहे। पहले तो डाक्टर यह भूल जाता है कि प्रकृति स्वयं अपना भोजन-भांडार बन्द किये हुए है, इस समय अगर हम आमान्न पहुँचाकर उसे रसोईका बन्दोबस्त करनेको लाचार करते हैं तो चढ़ाईके मैदानमें गये हुए काम करनेवालोंको लौटाना पड़ता है और महानसमें लगाना पड़ता है। इस उथल-पुथलसे चढ़ाईका सामना करनेमें असलमें स्वभाव कमज़ोर पड़ जायगा। दूसरे वह यह सैद्धान्तिक बात भूल जाता है कि प्राणशक्ति वस्तुतः अन्न या पथ्यपर निर्भर नहीं है। अन्नसे हम उसे बढ़ा नहीं सकते, उपवाससे घटा नहीं सकते। प्राणशक्ति संयम और योगसे बढ़ती है और असंयम और अयुक्त जीवनसे अवश्य घटती है। डाक्टरके सिवा शुश्रूषा करनेवाले भी इसी भ्रममें रोगीको पथ्य लेनेके लिये प्रलोभन दे देकर प्रवृत्त करते हैं और जिस समय रोगीको अन्नजल न चाहिये उस समय अन्नजल देकर रोगको अधिक कुपित कर देते हैं। उभारकी अवस्थामें लंघन ही रोगीके लिये सबसे उत्तम पथ्य है, और प्रकृतिके सर्वथा अनुकूल है। जहाँ भूख-प्यास अधिक लगती हो वहाँ काष्ठौषधियोंके रूपमें, हकीम वैद्योंका काढ़ा और जोशांदा औषध और पथ्य प्रायः दोनोंका काम करता है, यदि उभारकी अवस्थाको दबानेवाला न हो बल्कि संकटावस्थाको पार करनेमें प्रकृतिका सहायक हो।

लंघन या उपवास करनेवाले अपने शरीरको प्रायः असंयमसे भी बिगाड़ देते हैं। उपवास तोड़नेमें संयमपर जितना ही जोर दिया जाय उतना ही थोड़ा है। पहले तो उपवास तोड़नेका उपयुक्त समय आया कि नहीं, यही विचार परमावश्यक है। आनेपर भी उपवास तोड़ना वस्तुतः स्वभावको अपने असाधारण व्यापारोंसे हटाकर साधारण नितके व्यवहारोंमें लगाना है, इसलिये बहुत हलका, जलसरीखा, अत्यन्त थोड़ा, अच्छी तरह चबाकर या लालासे मिलाकर उदरके भीतर पथ्य ले जाना आवश्यक है। उपवास या लंघनपर तेज भूख लगती है तो रोगी सारा संयम भूल जाता है और जो पाता है, अपनी उदरदरीमें बड़े वेगसे पहुँचाता है। ऐसी दशामें उपचारियोंको उचित है कि रोगीकी पूरी रक्षा करें कि संयमके नियम टूटने न पावें।

किसीका सिर दुखने लगता है तो तुरन्त ही वैद्य या डाक्टर या ओषधि ढूँढ़ने लगता है। उपचारी बन्धु तुरन्त ही पीड़ा "बन्द" करनेके उपाय करने लगते हैं। पीड़ा तो भीतरी रोगजनित या अप्रमित विकारोंकी उग्र सूचना है। यह दूत है जो संदेसा लेकर आया है। इसे दूर नहीं करना है। उसका संदेसा सुनिये। यह प्रकृतिका पैगाम लेकर आया है कि देहदेशमें अमुक अंगमें अप्रमित विकार हो रहे हैं, मल या विष संचित हैं, आप स्वभावकी सहायता कीजिये, उपचारोंकी कुमक भेजिये। परन्तु उपचारी और चिकित्सक प्रायः रोगीकी पीड़ाका अर्थ न समझकर स्थानीय व्यथाको दूर करनेमें लग जाते हैं। प्रायः वह ओषधियाँ लगा देते हैं जिससे स्थानीय ज्ञाननाड़ियाँ बेसुध हो जाती हैं और यद्यपि पीड़ा होती रहती है, तथापि मालूम नहीं होती। मादक ओषधियाँ पिला या खिलाकर भी इसी तरहकी बेसुधी पैदा की जाती है। इससे वास्तविक रोगमें स्वभावको यथेष्ट सहायता नहीं मिलती। प्रकृतिकी अपील बेकार जाती है।

मिट्टी, जल, वायु, प्रकाश आदि हमारे संसारकी नीवें

हैं, हमारे शरीर इन्हींसे बने हैं। इन्हींसे स्थिर हैं इन्हींके सदुपयोगसे हम शरीरकी रक्षा कर सकते हैं। इनके उपयोगमें संयम अवश्य चाहिये।

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलक्खन लोग॥

असंयमसे अच्छी वस्तु कुवस्तु हो जाती है। सूतिकागृहके भीतर नवजात बालकके लिये तेज रोशनी नहीं चाहिये। अत्यधिक ठंढक या गरमी भी नहीं चाहिये, आँधी ऐसी हवा नहीं चाहिये। सौड़के घरमें पूरी सफाई परम आवश्यक है। पर साथ ही इसके हमारे देशके लोग सौड़का घर निहायत गन्दा चुनते हैं, जो अँधेरा हो, जिसमें हवा न जाती हो, नीचे सील हो। यों पोतलीप तो कर दी जाती है, परन्तु साधारण दशा जैसी रहती है वैसा काला चित्र यहाँ नहीं खींचा गया है। जम्हुएके डरसे सब दरवाजे बन्द रहते हैं और आने जानेवाले दरवाजेपर आग जलायी रहती है जिसमें अजवायन जलायी जाती है। अजवायनका जलाना बुरा नहींहै, उसका धुआँ और वायु कृमिनाशक है। परन्तु यदि पूरी सफाई रखी जाय, हवा-रोशनी शुद्ध स्वच्छ आनेका बन्दोबस्त रहे तो घरमें धुआँ करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। पूरी सफाई घरमें हो, नाल काटनेवालीके हाथ धुले हों, नाखून कटे और साफ हों, जितने सौड़में जाँय सभी शुद्ध स्वच्छ दशामें होंतो जम्हुआ सपनेमें भी नहीं आ सकता। अजवायनका धुआँ कुछ थोड़ासा धूपकी तरह हो तो हर्जकी बात नहीं है। परन्तु साधारणतया जितना धुआँ होता है उससे तो दम घुटने लगता है। चमायन जो सौड़में जच्चेकी सफाई सेवा आदिके लिये रहती है उसे भी नहा धोकर साफ कपड़े पहनकर जच्चेखानेमें रहना चाहिये। हिन्दुओंमें जन्म और मरण दोनोंको अशौचकी अवस्था मानते हैं। अशौचकी अवस्थामें जो लोग रहते हैं वह न तो किसीको छूते हैं, न कोई उन्हें छूता है। न कोई उनके यहाँ खाता है, न वह किसीके यहाँ खाते हैं। भिक्षातक न दी जाती है, न ली जाती है। कपड़ोंतककी धुलाई विशेष रूपसे होती है। यह सब इसीलिये होती है कि पुराने शरीरके विष और मलका सम्पर्क नष्ट हो जाय और नये शरीरमें, वा औरोंकी देहमें विषों और मलोंका प्रवेश न हो। दोनों अवस्थाओंमें हमारा शौचविधान और स्पर्शका बचाव सराहनीय है। परन्तु इस विधानको समझदारीसे बर्त्तनेकी जरूरत है और स्पर्शका बचाव भी करना उचित ही है। मिथ्योपचारके ही कारण हजारों बालकोंको जम्हुआ दबा देता है, और अजवायनका धुआँ बचा नहीं सकता। बल्कि यह धुआँ, बन्द दरवाजे और गन्दगी जम्हुआका कारण होती है। जम्हुआ और कोई चीज नहीं, बालकके शुद्ध रक्तमें बड़ोंकी असावधानीसे (प्रायः नाल कटनेके समय) बड़ोंके शरीरसे विषयका प्रवेश है। एकाएकी गर्भावस्थासे निलनेसे प्राणशक्तिपर बड़ा धक्का पहुँचा रहता ही है, मातापिता और पूर्वसंस्कारके कारण प्रायः प्राणशक्ति दुर्बल रहती है। बाहरका विष उसके लिये घातक हो जाता है।

नितके रहनसहनमें यदि मनुष्य शौचके नियमोंसे रहे और युक्ताहार-विहार युक्तचेष्टा और युक्तस्वप्नावबोधका पूरा ध्यान रखे तो रोगी होनेकी नौबत न आवे। रोगी होनेपर तो बाह्य और आभ्यन्तरिक संयम एवं स्वाभाविक उपचार ही जीवनकी रक्षाका कारण हो सकते हैं।

काशीकी पंचमहाभूत-त्रिदोष-परिषत्में क्या हुआ ?

[स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य]
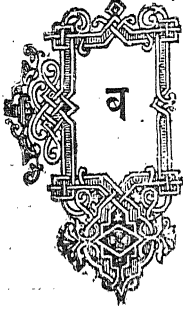
बड़ी प्रतीक्षाके पश्चात् काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयमें पञ्चमहाभूत त्रिदोष सम्भाषा परिषद् हो ही गयी। भारतके जितने प्रसिद्ध वैद्य थे प्रायः सभी पहुँचे थे। वैज्ञानिक पक्षके ज्ञाताओंमेंसे किसीको भी बाहरसे नहीं बुलाया गया था। हाँ, हिन्दू विश्वविद्यालयके प्रोफेसरोंमेंसे श्रीमान् दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी, एम० एस०-सी, श्रीयुक्त डा० जोशीजी, डी०, एस० सी०, और श्रीमान् डाक्टर घाणेकरको आमन्त्रित किया गया था। इनमेंसे प्रो० जोशीजी पञ्चभूत-सम्भाषा-परिषद्में तो आये। पश्चात् आप नहीं आये। प्रो० रामदासजी गौड़ भी अनेक कामोंको छोड़कर मेरे कहनेपर पञ्चभूत सम्भाषा परिषदमें सम्मिलित होते रहे। उधर पंचमहाभूत पक्ष-स्थापनके लिये श्रीयुक्त म० म० मधुसूदनजी झा तथा महामहोपाध्याय पं० गिरधरजी शर्माको भी आमन्त्रित किया गया था। बाहरसे आये वैद्योंकी उपस्थिति ३०० के लगभग थी। २ नवम्बरको मध्याह्न-पश्चात् भारत-भूषण श्रीयुक्त पं० मदनमोहन मालवीयजीने स्वागताध्यक्षके पदसे भाषण करते हुए वैद्य-मण्डली और पण्डित समुदायका स्वागत किया। फिर पञ्चमहाभूत सम्भाषा परिषदको आरम्भ करनेके लिये श्रीयुक्त प्रथमनाथ तर्कभूषणजीको प्रधान पदके लिये चुना और इस सम्भाषाको क्रमयुक्त चलानेके पक्ष और विपक्षके व्यक्तियोंको आमने-सामने बैठनेके लिये श्रीयुक्त मन्त्री दातार शास्त्रीजीने स्थान निश्चित किये। पक्षमें बोलनेवालोंमें म० म० श्रीयुक्त पं० गिरधरजी शर्मा, श्रीयुक्त कवि० उपेन्द्रनाथ दासजी, पं० हरिनाथजी शास्त्री, पं० मस्तरामजी शास्त्री, पं० गणेशदत्तजी शास्त्री, पं० धर्मदत्तजी आयुर्वेदालंकार, प्रो० गुरुकुल-कांगड़ी, अदि प्रमुख वक्ता थे। विपक्षमें श्रीयुक्त रामदासजी गौड़ एम० ए० (यद्यपि यह विपक्षी नहीं थे), स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, प्रो० जोशी, प्रो० घाणेकर, प्रो० कुलकर्णी आदि प्रमुख थे। समस्त विवाद हिन्दी भाषामें होना निश्चित हुआ। पंचमहाभूत-विचार-प्रयोजन, तथा उनके नाम और लक्षणपर पूर्वपक्षकी ओरसे जबतक कोई मत स्थिर न हो जाय तबतक उत्तर पक्षकी ओरसे उसपर कोई आक्षेप उठाया जा नहीं सकता था। अतः पहले दिन 'पञ्चमहाभूतोंका विचार किस प्रयोजनसे है' इसपर ही काफी समय नष्ट किया गया। तत्पश्चात् भूतोंके लक्षणपर विचार होने लगा। इसके भिन्न-भिन्न मतोंके द्वारा भिन्न-भिन्न लक्षण बताये जानेके कारण किसी मतका लक्षण निश्चित न हो सका। उधर समय सायंकाल ५ बजेका हो गया। इसीलिये यह विचार अगले दिनके लिये छोड़कर सभा समाप्त हुई। अगले दिनकी बैठकमें सांख्यमतसे निर्द्धारित 'पृथ्वी, जल तेज आदि महाभूतोंका शरीरसे सम्बन्ध है इसलिये पंचमहाभूतोंको जाननेका प्रयोजन है' ऐसा मानकर इनके सांख्यकथित लक्षण अधिककी सम्मतिमें माननीय दिखाई दिये। तब उत्तर पक्षकी ओरसे इसपर शंका करनेके लिये अवसर मिला।

आक्षेपकर्त्ताओंकी ओरसे परस्पर विचारके पश्चात् यह निश्चित हुआ कि एक ही व्यक्ति आक्षेप करे तथा वही बोले। यदि वह अपने पक्षमें दुर्बल दिखाई दे तब दूसरा व्यक्ति बोले, अन्यथा अपने आप न बोले। अतः उत्तर पक्षकी ओरसे निर्णायकोंमेंसे पं० देवनायकाचार्यजी शास्त्रीको बोलनेके लिये निश्चित किया गया। आपने 'पृथ्वी, जल, वायु आदि किन किन भौतिकोंसे बने हैं,' इस विषयमें अबतक कितने मौलिक पदार्थ पाये गये हैं, यह, और उनकी मौलिकताको अच्छी प्रकार वर्णन किया तथा इन सृष्टिके मौलिक पदार्थोंके वह निश्चित लक्षण बतलाये जो आजतक समस्त संसारके रसायनशास्त्री मानते हैं। इसका समर्थन प्रो० जोशीने बड़ी अच्छी तरह किया। यद्यपि आप हिन्दी अच्छी प्रकार नहीं बोल सकते थे तथापि आपने अपने संक्षेपसे भाषणमें माननीय सिद्धान्तोंका अच्छी प्रकार स्पष्टीकरण किया।

और आपने अपने कालेजसे सोडियम, पोटाशियम् मेंगनेशियम्, मेंगनीज़, पारद, ब्रोमीन आदि ५०-६० के लगभग मौलिक धातुएँ अधातुएँ जो लाये थे उनको दिखाकर उक्त विषयको हृदयङ्गम करानेकी चेष्टा की। परन्तु वैद्य-समुदायकी रुचि इन नव्य धातुओंको देखनेकी ओर विशेष झुकी दिखाई दी। इसी कारण उस समय यह कह दिया गया कि प्रोफेसर जोशीजी परिषदकी समाप्तिपर सबको यह धातुएँ दिखाकर इनके गुण-दोष तथा इनकी मौलिकताएँ बतलाएगें। इसलिये इस ओरसे लोगोंका ध्यान हटा दिया गया, तथा मुख्य विषयकी ओर खींचा गया। जोशीजी बैठ गये। उस समय उक्त विषयके साथ मन्त्रीजीने तीसरा प्रश्न छोड़कर चौथे प्रश्न 'भूतोंका स्वरूप और गुण धर्म' आदिका विवेचन भी साथमें सम्मिलित करके विचार करनेके लिए कहा। अधिक सम्मतिसे इसे भी दूसरे प्रश्नके साथ सम्मिलित कर लिया गया। और तीसरे प्रश्न-"**भूतानामेकैकेन्द्रियर्थाश्रयित्वम् अनेकेन्द्रियार्थाश्रयित्वम् वा**"को छोड़ दिया। खैर, जब पूर्वपक्षवालोंसे यह पूछा गया कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आदि पञ्चमहाभूत सृष्टिके मूल पदार्थ हैं या यौगिक तो इसका वह समाधान नहीं कर सके। और इस मतके प्रतिपादन करनेकी चेष्टा की कि वैज्ञानिकोंके जितने भी भौतिक पदार्थ हैं सबके सब पृथ्वी, जल, वायु आदिके अन्तर्गत आ जाते हैं। जितनी धातुएँ, अधातुएँ, हैं पृथ्वी तत्वसे बाहर नहीं। जितने भी तरल हैं वह जल रूपसे बाहर नहीं तथा जितने भी वायुरूप हैं वह वायुसे बाहर नहीं। कहनेको तो यह बातें कहीं गयीं, पर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या? इनके पास इसका समाधान सिवाय अनुमान लगानेके और कुछ नहीं था।

इस विवादने काफी समय लिया। अन्तमें प्रो० रामदास जी गौड़को इस विषयपर विशेष प्रकाश डालनेके लिये कहा गया। आपने पृथ्वी, जल, वायु, नामक भूतोंके संबंधमें शास्त्रका यह अभिप्राय बतलाया कि शास्त्रने पृथ्वी से ठोस और जलसे द्रव तथा वायुसे वायव्य इन पदार्थोंकी तीन अवस्थाओंकी ओर संकेत किया है। विश्वमें समस्त पदार्थ इन्हीं तीन अवस्थाओंमें बँटे दिखाई देते हैं। इस तरह इनके मौलिक या यौगिक होनेका प्रश्न नहीं रह जाता। अग्निमें भी पदार्थत्व है, आकाश इस समयका माना हुआ ईथर (Ether) है। जिसके माध्यमपर विश्वका व्यापार हो रहा है। यह पाँचों ही महान हैं। समस्त विश्वके पदार्थ इन्हींमें हैं—इन्हींसे हैं। इसीलिये यह पंचमहाभूत करके माने गये। आपके उक्त विचार वैद्यों और विद्वानोंको बहुत ही पसन्द आये और आपकी योग्यताकी सबों ने खूब प्रशंसा की।

इस विचारके पश्चात् ५. ६, ७, ८, ९, १० और ११ प्रश्न छोड़ दिये गये। १२वाँ प्रश्न एलीमेण्टसंज्ञक ९२ तत्व जो पाश्चात्य रसायनशास्त्रियोंके मौलिक तत्व माने जाते हैं वह माने हुए मौलिक पंचभौतिक हैं या नहीं। तथा इसके साथ ही १३ वां प्रश्न इलेक्ट्रोनप्रोटोन संज्ञक परमाणु मूलक पांचभौतिक हैं या नहीं, यह रखे गये। वैज्ञानिक पक्षसे मौलिक तत्वोंके लक्षण तथा उसके स्वरूपको पं० देवनायकाचार्य शास्त्रीने संस्कृतमें सूत्ररूप देकर बहुत ही अच्छी प्रकार पाश्चात्य रसायनशास्त्रका मत स्थापन किया। उक्त सूत्र हम विज्ञानमें आगे प्रकाशित करेंगे हैं।* और उनकी ओरसे कहा गया कि इस प्रकारके निश्चित लक्षण और स्वरूपका विशद वर्णन इन पंचभूतोंका नहीं, इनके लक्षण जो शास्त्रोंने किये हैं वह केवल मात्र भौतिक (पंचज्ञानेन्द्रिय-साध्य) हैं—तर्काश्रित हैं। इसपर वैज्ञानिकोंके उन सिद्धान्तोंका परिहास उड़ानेकी चेष्टा की गयी कि इनका कोई भी स्थिर मत नहीं। यह कल जिस तत्वको अच्छेद्य-अभेद्य मानते थे आज उनको तोड़ा जा चुका है और जिस तेज प्रकाशको पदार्थत्वरहित मानते थे, आज वह तौले नापे जा चुके हैं। जब वैज्ञानिकोंका कोई सिद्धान्त ही स्थिर नहीं हुआ तो उनके इस प्रकार बदलनेवाले मतोंको कोई महत्व नहीं दिया जा सकता। इनके वे सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं कहे जा सकते हैं। इसपर प्रो० कुलकर्णीने पाश्चात्य सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें यह बतलानेकी चेष्टा की कि यह सिद्धान्त किसी कल्पनाकी भित्तिपर नहीं खड़े किये गये हैं। यह अनेक व्यक्तियोंके परिश्रमका परिणाम हैं। यह विशेष महत्व देनेके योग्य हैं। इस प्रकारकी प्रशंसा वायोवृद्ध म० म० पं० मधुसूदनझा जीको अच्छी नहीं लगी। आपने अपने निर्णायक

* खेद है कि पं० देवनायकाचार्यसे वह सूत्र अबतक न मिल सके। मिलनेपर प्रकाशित किये जायँगे। रा० गौ०

पदके गौरवको विनष्ट करके, नियम-विरुद्ध उठकर बड़े रोषके साथ अपनी वक्तृता आरम्भ कर दी तथा अनेक भले बुरे प्रसंगरहित पूर्वपक्षानुकूल वार्ताकी झड़ी लगा दी। लोगोंने यद्यपि आपके इस भाषणको नैतिक दृष्टिसे पसन्द नहीं किया तथापि आपकी वयोवृद्धताको देखते हुए उत्तरपक्षवालोंने अति शान्तिसे काम लिया। इसके पश्चात् सभा विसर्जित हो गयी। तीसरे दिन फिर 'वैज्ञानिकोंके माने हुए एलीमेण्टोंमें भूतत्व है या नहीं? एलेक्ट्रोन प्रोटोन भूतत्वमें समाविष्ट होते हैं या नहीं' इसपर कुछ ही देर विचार होनेके पश्चात् जब प्रो० रामदासजी गौड़ने, तेजसमें तथा एलेक्ट्रोन-प्रोटोनमें द्रव्यत्व है, बताया, तो पूर्व पक्षवालोंने कहा कि तब तो इनमें भी भूतत्व है और यह पञ्चमहाभूतोंसे भिन्न नहीं हैं। इसको छोड़ दिया गया। इसके पश्चात् परमाणु और तन्मात्रा तथा इनके भेद, अभेदका प्रश्न रख दिया गया। इसीके साथ निम्नलिखित प्रश्न भी उपस्थित किये गये। १५—"**द्रव्यस्यगुणाश्रयत्वेन गुणाद्भेदोवा, गुण समुदायत्वेन तद्भेदोवा**"। १७—आकाशका स्वरूप यह भावरूप है या अभावरूप; यदि भावरूप है तो सावयव है या निरवयव। इसके अवयव कौन-कौनसे हैं? आकाशका लक्षण क्या है? शब्द और आकाश क्या है? ईथरका अन्तर्भाव किस महाभूतमें होता है? यदि होता है तो किस प्रकार? प्रश्न तो बड़े अच्छे ढंगके थे। पर उत्तर भिन्नमतिर्हि लोके थे। उक्त प्रश्नोंपर दार्शनिक पक्षसे श्रीगिरधर शर्माजी, श्रीउपेन्द्रनाथ दासजी, पं० वामनशास्त्री दातार, श्रीरुद्रदेवजी विद्यामहार्णव, और श्रीराजेश्वरशास्त्री आदि बोले। किन्तु सिवाय लम्बी-लम्बी वक्तृता देनेके भिन्न-भिन्न प्रश्नोंका स्पष्ट उत्तर किसीने कोई नहीं दिया। एलेक्ट्रोन प्रोटोनमें मात्रादि द्रव्यत्व सूचक गुण पाये जाते हैं, इसलिये वह पंचभूतोंके अन्तर्गत आ गये ऐसा कहा गया। यह पंचमहाभूतोंमें से किस भूतके अन्तर्गत हैं इसका भी उत्तर नहीं दिया गया। इस प्रकार मान लेने या कह देनेसे क्या यह पंचभूतोंके अन्तर्गत हो सकते हैं? दर्शनपक्षसे किसीने भी इसका समाधान न किया। आकाश और शब्दके प्रश्नपर जो-जो विद्वान् बोलनेके लिये खड़े होते थे एकका मत दूसरेसे नहीं मिलता था। कोई शब्दको आकाशका गुण मानता था तो कोई कहता था कि नहीं शब्द आकाशमें समवायि कारणसे है। उत्तरपक्षसे इसपर जो प्रश्न उपस्थित किये जाते थे उनके उत्तर देनेके लिये खड़े तो बहुत से विद्वान् होते थे पर वह उस असली प्रश्नका सीधा उत्तर न देकर समवायि कारण, असमवायिकारण, निमित्त कारण आदिके द्वारा उसे खींच-खाँचकर सीधा करनेकी चेष्टा करते थे।

आकाश और शब्दपर ही मैंने आक्षेप किया था कि शब्द आकाशका गुण नहीं। प्रथम तो आकाशका ही अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। जब गुणीका ही कोई अस्तित्व सिद्ध नहीं होता तो उसके आश्रयीभूत गुणकी उसमें सिद्धि कहाँ? मैंने बतलाया, शब्द वायुमें आघातका परिणाम है। वायुके माध्यमपर शब्दका संचार है। इसपर प्रो० कुलकर्णीजीने कहा कि शब्दका संचार पृथ्वीमें, जलमें, धातुमें सबमें होता है। शब्दके लिये यह भी माध्यम हैं। मैंने इसे स्वीकार किया कि यह शब्दके लिये माध्यम है। इनमें शब्दाघात वहन होता और एक स्थानसे दूसरे स्थान तक इनके आधारपर चला जाता है, किन्तु यह गुण इन सबोंका हुआ न कि आकाशका। पं० गिरिधर शर्माजीने कहा कि वायुकी विद्यमानता किसमें है? मैंने कहा आकाश या खाली स्थानमें। इसपर आपने उत्तर दिया कि बस वही अवकाश ही आकाश है जिसमें वायुके लिये स्थान मिला है। जिसने वायुको धारण किया है, उसीका गुण शब्द है, वायु तो इसका निमित्त कारण है, जैसे पृथ्वी जल, वायु आदि। बस, यहाँ इतने ही कथनके पश्चात् 'शब्द गुणमाकाशम्' की सिद्धि हो गयी। इस प्रकारके प्रश्नोत्तर होते थे।

एक स्थान पर प्रसंगवश पं० देवनायकाचार्य जीने वैज्ञानिक पक्षकी ओर से कह दिया कि वैज्ञानिक लोग तो अब विद्युतको ही जगत्का कारण मानते हैं। इसपर श्री प्रो० उपेन्द्रनाथ दास जी कहने लगे कि विद्युत् धाराके कानमें स्पर्शसे शब्द सुना जाता है, आँखमें लगनेसे रूप देखा जाता है, नाकमें लगनेसे गन्ध मालूम पड़ता है। जिह्वामें लगानेसे रसका अनुभव होता है; त्वचामें लगानेसे स्पर्शका अनुभव होता है तो विद्युत् भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँचो गुणोंके आश्रयीभूत पांचभौतिक द्रव्य ही है। विशेष इतना है कि इनके गुण अनुत्कट हैं, इसीलिये युक्तिद्वारा समझाया जाता है। उस समय इन

बातोंपर विचारका अवसर न था, न समय ही अधिक था। पूर्वपक्षसे बोलने वालोंमें २०-२५ से अधिक वक्ता थे, जो बोलने खड़े होते थे। प्रधान जी ध्यान ही नहीं देते थे कि वक्ता विषय पर बोल रहा है या विषयान्तरपर। एक-एक वक्ता अपने-अपने व्याख्यानके लिये काफीसे अधिक समय ले लेता था। हम सब वहाँ एकत्र तो हुए थे इस विचारसे कि इस समय जिन-जिन प्राचीन सिद्धान्तोंपर आक्षेप होते हैं वह आक्षेप किस आधारपर हैं; उनके समाधानकारक उत्तर होने चाहिये थे, न कि व्याख्यान। जिस गम्भीर विषयको भौतिक साधनोंसे ही समझनेके लिये हमारे पूर्वपुरुषोंने हजारों वर्ष व्यतीत किये, जिस गम्भीर विषयकी गुत्थीको सुलझानेके लिये वैज्ञानिकोंने शताब्दियाँ व्यतीत कर दीं, तब कहीं जाकर इस समयके दृढ़ आक्षेप-रूप प्रमाण हमारे सामने आ रहे हैं, उनका केवल वाक्य-विन्याससे इस प्रकार समाधान, सो भी कुछ घंटोंमें कर देना, सिवाय मनमोदकसे अपने मनकी तृप्ति कर लेनेकी चेष्टाके अधिक महत्त्वकी बात नहीं कही जा सकती।

वास्तवमें देखा जाय तो इस परिषद्का कार्य और विचारशैली ऐसे ढंगकी थी जिससे कोई भी व्यक्ति सत्य तक नहीं पहुँच सकता था। दार्शनिक पक्षके व्यक्तियोंको आधुनिक प्रयोगवादका कुछ भी ज्ञान न था। उन्हीं उड़ती हुई बातोंको, जिन्हें वे पत्रोंमें पढ़ लेते हैं, वह आधुनिक विज्ञान-वादका सिद्धान्त बताकर उसका खण्डन करनेकी चेष्टा करने या अपने पक्षका समर्थन ढूँढ़ने लगते थे। उदाहरणके लिये प्रोफेसर उपेन्द्रनाथ दासका उपरोक्त कथन ही काफी है। यथा—"वैज्ञानिक लोग तो अब विद्युत्को ही जगत्का कारण मानते हैं।" इस इतनी बातको आपने पढ़ लिया और आपने यह भी पढ़ा या सुना कि यदि मनुष्यके ज्ञानेन्द्रियोंके इस विद्युत् धाराका स्पर्श कराया जाय तो शरीरमें ज्ञानेन्द्रियोंमें अनुभवकी शक्ति बढ़ जाती है। बस, चट खड़े होकर कह डाला कि विद्युत् भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँचों गुणोंके आश्रयीभूत पांचभौतिक द्रव्य ही है। विशेषता इसमें इतनी है कि इनके गुण अनुत्कट हैं।

श्रीमान् प्रोफेसर साहब जी महाराज, आधुनिक वैज्ञानिक बातोंपर इस प्रकारकी कल्पना गढ़ना कि "अमुक वस्तुका यह रूप और कार्य है, इसलिये यह अमुक रूप गुण वाला ही है।" इससे आप सत्यता तक नहीं पहुँच सकते। आपने तो इस प्रकारकी कल्पना करके अर्थका महा अनर्थ कर डाला। हम यहाँपर आपको अतिसंक्षेपमें उक्त-बातका उत्तर देते हैं।

वैज्ञानिक विद्युत्को जगतका कारण मानते हैं। वैज्ञानिकोंने अपने प्रयोगोंद्वारा इस बातको मालूम किया है कि विद्युत्धाराके स्पर्शसे मानवी ज्ञानेन्द्रियोंमें विशेष अनुभव करनेकी शक्ति आती है। "इसका कारण क्या है? यह अनुभवकी शक्ति कैसे आती है?" इत्यादि बातोंपर वैज्ञानिक अच्छी तरह अनुसन्धान कर चुके हैं। सुनिये! विद्युत्को जगत्का कारण इसलिये माना गया कि विद्युत्-धारा वास्तवमें आधुनिक परमाणुके अंगीभूत इलेक्ट्रोन प्रोटोन नामक वस्तुसत्ताका पुंजमात्र ही है। विद्युत् धारामें इलेक्ट्रोन प्रोटोनका ही पुंज प्रवाहित होता है। इसी पुंजका धारावाहिक रूप विद्युत्के नामसे सम्बोधित किया जाता है। जब विश्वके कारणीभूत परमाणु इस पुंजसमूहमें बहनेवाले इलेक्ट्रोन प्रोटोनसे बनते हैं तो विद्युत और विश्वके कारणमें कोई अन्तर न रहा। अन्य भौतिक विज्ञानके प्रयोगोंसे भी विद्युत्, प्रकाश, उत्ताप, इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, आकर्षण आदि शक्तियोंकी एकता प्रयोगोंसे सिद्ध करता है। इनको एक दूसरेमें परिवर्त्तित करके भी दिखलाया जाता है। इन्हींके रूपान्तर रूपोंसे विश्व बना है और इन्हींके रूपान्तर रूपोंकी सहायतासे विश्वका जीवन व्यापार भी चल रहा है। इसको प्रयोगोंसे सिद्ध किया जा सकता है। इन्हीं बातोंको देखकर वैज्ञानिक विद्युत्को जगत्का कारण मानते हैं। अब रहा मनुष्य शरीरपर विद्युत्धारा-प्रभावका कारण और ज्ञानेन्द्रियोंके अनुभवशक्तिका बढ़ना। इसपर जो अनुसन्धान हुए हैं वह वैज्ञानिकोंको इस परिणामपर ले गये हैं कि मानवशरीरमें जो विशेष चेतनाका धर्म परिलक्षित होता है, यह चेतना शरीरिक गठनमें प्रादुर्भूत हुई एक प्रकारकी विद्युत् शक्ति है। यह शरीरके प्रत्येक घटकमें है और उन घटक-समूहोंसे बने शरीरमें वही सामूहिक रूपसे चेतनाका नाम धारण किये हुए है। यदि इस शारीरिक विद्युत्को बाह्य विद्युत्द्वारा प्रभावित किया जाय तो वह प्रभावित होती है। किसी विशेष क्रमसे उसकी बाह्य धाराका प्रयोग शरीरमें

किया जाय तो शरीरस्थ वैद्युतिक शक्तिकी कार्यकारिणी शक्ति बढ़ जाती है। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ जो विशेष रूपसे भौतिक प्रयत्नोंका ज्ञान शरीरको कराती हैं, विद्युत्धाराके स्पर्शसे उनमें विशेष शक्ति आ जाती है। इसीसे श्रवणकी शब्द ग्रहण शक्ति बढ़ जाती है, नेत्रोंके देखनेकी और जिह्वाके रसास्वादनकी, तथा त्वचामें स्पर्शसम्वेदनकी। इस प्रकार विद्युत् प्रयोगोंद्वारा देखे गये पंचज्ञानेन्द्रिय प्रभावका यह अर्थ नहीं है कि विद्युत् भी पंचभौतिक द्रव्य है। यहाँ पहली बात तो यह है कि विद्युत् जगत्का कारण और विद्युतका ज्ञानेन्द्रियोंपर प्रभाव ये दोनों प्रश्न ही एक दूसरेसे इतने भिन्न हैं जितना कि जमीनसे आसमान। प्रो० साहबने "मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ताहरीतकी" की कहावतको एक सेकेण्डमें कहकर सब कुछ पांचभौतिक सिद्ध कर दिया। कहना तो मुँहसे ही है। प्रयोगसे थोड़े ही किसीको जाँचना है! दूसरी बात साथमें यह भी है कि आपका मुँह थोड़े ही कोई पकड़ सकता है। इसी प्रकारके वक्तव्योंसे पञ्चमहाभूत परिषद्का अन्त हुआ। तीसरे दिन अन्तमें मनुष्यादि प्राणियोंके शरीरमें चेतना जो दिखाई देती है यह आत्मजन्य है या पञ्चभूतादि संयोग-विशेषसे—इस प्रश्नको उठाया गया। अभी पूर्वपक्षकी ओरसे दो तीन व्यक्तियोंने संक्षेपमें कुछ कहा था कि इतनेमें पंडितप्रवर मदनमोहन मालवीयजीने स्वयम् ही यह इच्छा प्रकटकी कि कल मैं इसपर कुछ बोलूँगा। मालवीयजीके भाषणकी इच्छाको सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न हो गये। और यह प्रश्न कलके लिये स्थगित करके सभाका कार्य समाप्त कर दिया गया।

चौथे दिन सभा लगी, कार्य्यारम्भ हुआ। कलका प्रश्न फिर दोहराया गया और पंडित जीसे प्रार्थना की गयी कि आप इसपर विशेष प्रकाश डालें। श्रीयुक्त महामना मालवीय जीने अनेक शास्त्रीय प्रमाण और प्रबल युक्तियोंसे आत्माके अस्तित्वपर प्रकाश डाला। आपने इस गम्भीर विषयका इतनी अच्छी तरह प्रतिपादन किया कि सभाका कोई भी पक्ष विपक्षका व्यक्ति ऐसा न था जो प्रभावित न हुआ हो। आपका भाषण आध घण्टासे अधिक हुआ। भाषण समाप्त होनेपर जब मैं बोलनेके लिये खड़ा हुआ तो कहा गया कि अब इसपर बोलनेकी कोई जरूरत नहीं रही। मैंने कहा वैज्ञानिक पक्षसे तो चेतनापर कोई प्रकाश ही नहीं डाला गया। वैज्ञानिक तो आत्माके अस्तित्वके सम्बन्धमें मौन हैं, पर चेतनाके सम्बन्धमें उन्होंने काफी अनुसन्धान किया है। इसलिये इसपर कहनेके लिये अवसर मिलना ही चाहिये। प्रधानजीने कहा, अच्छा बोलो।

चेतना भौतिक सत्ता है। इसको घटाया और बढ़ाया भी जा सकता है। इसमें परिवर्त्तन ला सकते और मिटा सकते हैं। इस बातको अनेक युक्तियोंसे बतलाया गया। (इस विषयपर हम किसी अगले अंकमें भिन्न लेख देंगे।) मैंने कहा चेतना तो शरीर गठनका धर्म सिद्ध होती है, चेतना शरीरकी रासायनिक रचनाका परिणाम है, जिसका लोप शरीरावयवोंकी विकृतिसे ही होता है। मैंने जब यह कहा था कि बरफमें दबकर मरे हुए प्राणियोंको जीवित किया गया है। इसपर श्रीयुक्त गणनाथसेनजी कविराजने कहा कि यह प्रयोग असफल रहा है। फिर मैंने कहा, जलमें डूबे हुए १२ घंटेके मृतप्राणीको जीवित किया गया है। अब तो रूसके एक वैज्ञानिकने मृत पुरुषको जीवित कर दिखलाया है। इस प्रकार इसपर तो अनेक प्रयोग हो चुके और हो रहे हैं जिनसे सिद्ध होता है कि चेतना आत्माका धर्म नहीं। वरना उसको वापस लाया जा नहीं सकता। मेरे वक्तव्यके पश्चात् इसपर अधिक विचार करना आवश्यक नहीं समझा गया। इसी लिये, पञ्चमहाभूत चर्चा परिषद्का कार्य यहाँ ही समाप्त कर दिया गया और मन्त्रीजीने घोषणा की कि अब त्रिदोष सम्भाषा परिषद्का आरम्भ होता है। इसपर प्रमथनाथ तर्कभूषणजीने प्रधानका स्थान रिक्त कर दिया और इस सम्भाषाके लिये माननीय महामहोपाध्याय श्रीयुक्त गणनाथसेनजी कविराजको अध्यक्ष बनाया गया और त्रिदोषका विचार रक्खा गया। अब, उत्तरपक्षकी ओरसे मुझे बोलनेके लिये कहा गया, क्योंकि त्रिदोषवादपर मैंने ही अधिक कुछ लिखा था। प्रथम प्रश्न रक्खा गया '**त्रिदोषके विचारका प्रयोजन।**' पूर्वपक्षसे कहा गया कि स्वामीजी तो त्रिदोषके विचारका प्रयोजन ही नहीं मानते होंगे। मैंने—कहा त्रिदोषके विचारका प्रयोजन मानता हूँ। अन्तर केवल हमारे और आपके विचारमें भिन्न दृष्टिकोणका है। हम इसको किसी और अभिप्रायसे मानते हैं, आप इसको कारण रूपसे मानते हैं। तब कहा गया जब प्रयोजनको मानते हैं तो इसपर झगड़ा ही कुछ

नहीं। इसीलिये दूसरा प्रश्न—क्या वात, पित्त, कफको दोषत्व धातुत्व, मलत्व है ? यदि दोषोंमें त्रिविधत्व है तो यह परस्पर विरुद्ध हैं या अनुकूल। इसपर अभी कुछ देर विचार होने ही पाया था, कि मेरी ओरसे यह प्रश्न उठाया गया कि प्रथम वातादि दोषोंका स्वरूप गुण, कर्मका निश्चय होना चाहिये। जबतक इस बातका ही ज्ञान न हो कि वात, पित्त, कफ हैं क्या वस्तु, तबतक उनके दोषत्व, धातुत्व, मलत्वपर विचार करना क्रमयुक्त न होगा। इसीलिये ३-४-५-६-७ प्रश्न छोड़कर आधा आठ और चौथाई ९ वाँ प्रश्न मिलाकर इसको विचारके लिये रक्खा गया।

पूर्वपक्षसे इसपर बोलनेके लिये सबसे पूर्व प्रो० उपेन्द्रनाथदासजी खड़े हुए। आपको प्रधानजीने बतलाया कि प्रथम वातादि दोषोंका स्वरूप वर्णन करिये। पश्चात् उनके गुण कार्यपर अपने विचार रखिये। वातका क्या स्वरूप है, पित्तका क्या स्वरूप है इसपर बोलते-बोलते कई बार आप विषयान्तरमें चले जाते थे। आपके विषयान्तर होते ही योग्य प्रधानजी आपको फौरन ही सचेत करते और पुनः प्रश्नकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करते थे। उस समय स्वयम् प्रधानजीने कहा कि तीनों दोषोंका स्वरूप क्या है ? प्रश्न तो यह है। केवल इसका ही प्रथम प्रतिपादन होना चाहिये। इसपर प्रो० धर्मदत्तजी तथा एक दो अन्य वैद्य भी बोले। अन्तमें पुनः प्रो० उपेन्द्रनाथदासजीने दोषोंके स्वरूपका निम्नलिखित प्रमाण दिया कि शास्त्र इस प्रकार दोषोंके स्वरूपका प्रतिपादन करता है। यथा—

वायुका स्वरूप—"रौक्ष्यं लघ्वं वैशद्यं शैत्यञ्च तिरमूर्तस्वञ्चेति वायोरात्मरूपाणि"। पित्तका स्वरूप-"औष्ण्यं तैक्ष्ण्यं लाघवमतिस्नेहो वर्णश्च शुक्लवर्जोगन्धश्च तिस्रो रसौ च कटुकाम्लौ पित्तस्यात्म रूपाणि।" श्लेष्माका स्वरूप"स्नेह शैत्ये शौक्ल्यरुणा गौरवमाधुर्ये मान्द्यानि श्लेष्म आत्म रूपाणि।)" इसपर मेरी ओरसे प्रश्न उठाया गया कि वायुको रूक्ष, लघु, विशद, शीत, अमूर्त्त आदिसे जो उसकी आत्मरूपता बतायी गयी है, इनमेंसे सूक्ष्म, लघु, विशद शीत आदिको तो गुण भी माना गया है। क्या रूपका रूक्ष लघु, विशदादि और गुणके, रूक्ष लघु विशदादि एक भावार्थ संज्ञक हैं या भिन्न भिन्न ? यदि वातके स्वरूपकी रूक्षता, लघुता, विशदता भिन्न है तो उसका क्या लक्षण है ? और गुणकी रूक्षता, लघुता, विशदता, शीतता आदिका क्या लक्षण है ? यदि यह एक हैं तो "गुणा शरीरे गुणिनां निर्दिष्टाः चिह्नमेव च।" जिसके शरीरमें गुण होते हैं उसको गुणी कहते हैं। गुणियोंका चिह्न गुण यहाँ पर किस प्रकार घटित होगा ? क्या यह प्रमाण गलत है ?

इसका कोई संतोषदायक समाधान नहीं किया गया।

जिस रूक्षता, लघुता, विशदता आदिको वायुका रूप माना है इन्हींको शास्त्रने आकाशका, अग्निका और भौतिक वायुका भी गुण माना है। पंचमहाभूत भिन्न भिन्न हैं, किन्तु उन सबोंके अनेक गुण एक हैं। फिर भौतिक वायुसे भिन्न देहधारक वायुके यह रूप बन गये हैं। क्या कोई विद्वान् इनकी संगतिको बतलानेकी चेष्टा करेंगे ? इसपर बोलनेके लिये कई वक्ता खड़े हुए परन्तु, उक्त प्रश्नोंके कोई सही उत्तर न देकर विधायक पक्षको ही दुहराते चले गये। त्रिदोषवादका प्रथम दिन इसीमें समाप्त कर दिया गया। कोई चार बजेके लगभग वातादिक गुण-कर्म-विवेचनके समय ही महामहोपाध्याय श्रीयुत गणनाथ सेनजीको शीत लगकर कुछ ज्वर हो गया। इसलिये आप अपना स्थान स्वामी लक्ष्मी रामजीको देकर चले गये और घंटेभरतक कुछ साधारण विचारके पश्चात् सभाका कार्य समाप्त हो गया।

अगले दिनकी बैठकमें तीसरा प्रश्न **"दोष ऐसी इसकी संज्ञाका कारण १४—दोष तीन ही क्यों हैं ? ५वां** वातादि दोष द्रव्यरूप हैं या शक्तिरूप ? ६—वातादि दोष स्थूलरूप हैं या सूक्ष्मरूप अथवा उभयरूप ? ७—वातादि दोषोंका उपादान क्या है ? और उपादान कारणसे इनकी उत्पत्तिका क्या क्रम दिखाई देता है ? इत्यादि कई प्रश्न एकसाथ पढ़कर सुना दिये गये। इसपर प्रो० उपेन्द्रनाथदासजीने तथा अन्य विद्वानोंने यह मत प्रकट किया कि शरीरको दूषित करनेके कारण इनकी दोष संज्ञा है। दोष तीन ही हैं, इसका हेतु कोई नहीं दिया गया। एक दोषका भी जिक्र आया किन्तु, उसको दोष न मानकर धातु ही मानना चाहिये, ऐसा कहा गया। पाँचवें प्रश्नके उत्तरमें कहा गया कि वातादि दोष द्रव्यरूप हैं, शक्तिरूप नहीं। तथा छठे प्रश्नके उत्तरमें कहा गया कि वातादि दोष स्थूल भी हैं और सूक्ष्म भी।

७वें प्रश्नके उत्तरमें कहा गया कि पाञ्चभौतिक देह होनेके कारण तीनों दोष भी पंचभूतात्मक ही उपादानसे हैं। इनकी उत्पत्तिके क्रमपर कोई विशेष प्रकाश न डालकर गोलमोल कह दिया गया। इसके पश्चात् समय था। इसी लिये ९वें प्रश्नका अधिक भाग जो रह गया था वह विचारके लिये उपस्थित किया गया। यथा, वातादि दोषोंके जो पांच प्रकार माने हैं वह वास्तविक हैं या काल्पनिक? यदि पंचविधत्व वास्तविक है तो वह स्थानकार्यभेदोत्पन्न हैं या स्वरूप भेदोत्पन्न। उपर्युक्त ३-४-५-६ और ७ प्रश्नोंपर उत्तरपक्षकी ओरसे कोई नहीं बोला क्योंकि यह विषय शास्त्रान्तर्गत ही था। ९वें प्रश्नपर मैंने कहा कि दोषोंका पञ्चविधत्व काल्पनिक है। और इनके स्थान और कार्य भी बहुत कुछ काल्पनिक हैं। इसपर काफी देरतक कोलाहल मचा रहा। शान्तिके पीछे जिन विद्वानोंने इनके पूर्वपक्षसे शास्त्रविधानानुसार स्थान बतलाये उनपर आक्षेप करनेके लिये काफी समय चाहिये था, किन्तु समय थोड़ा था। इसलिये अवसर ही न दिया गया। और इस विषयको गोलमोल बीचमें ही समाप्त करके सभा विसर्जित हुई।

तीसरे दिनके लिये मुख्य प्रश्न एक ही रह गया था। १०वां प्रश्न, वातादिदोष रोगके कारणत्वमें क्या दिखाई देते हैं तथा इनके साथ या इनमें कीटाणु आदि भी कारण हैं, या नहीं। इसपर पूर्वपक्षसे कहा गया कि वातादि दोष रोगके कारणत्वमें समवायि कारण है और आहार विहार-दोष तथा कीटाणु आदि निमित्त कारण हैं। उत्तरपक्षकी ओर से मैंने पूछा कि यदि वातादि दोष समवायि कारण हैं तो अभिघातादि आगन्तुक रोगोंके समय इनकी समवायि कारणता कैसे होती है? दूसरे रोगके पूर्व शरीरमें यह किस कारणरूपसे रहते हैं तथा उस समय यदि समतामें थे तो विषमतामें प्रथम निमित्त कारण होता है या पश्चात्। इस प्रश्नके उत्तर गोलमोल दिये गये। कहा गया कि कभी इनकी विषमतामें निमित्त कारण प्रथम होता है, तो कभी पश्चात् भी। इसका कोई नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। संक्षेपमें ही इसपर विचार होकर रह गया और तत्पश्चात् अन्य विचारार्ह विषयके प्रश्न उपस्थित किये गये। यथा, नूतन रोगज्ञानको आयुर्वेदमें संग्रहका प्रयोजन है या नहीं? नव्य आविष्कृत उपयोगी औषधियोंके संग्रहके प्रयोजनपर विचार हुआ। एक प्रश्न और भी था उसको नहीं पढ़ा गया। नूतन रोगोंके सम्बन्धमें पूर्व पक्षकी ओरसे अधिक व्यक्तियों-का यह मत था कि नव्यरोग कोई नहीं हैं। हमारे निदान शास्त्रमें सबोंका सूत्र रूपसे उल्लेख है। उनके कुछ लक्षणोंमें जो अन्तर पड़ गया है वह समयके फेरके कारण है। इसलिये हमें अपने शास्त्रोंमें ही इनके लक्षण ढूँढने चाहिये तथा पूर्वोल्लिखित किसी रोगके साथ मिलाकर उनके अन्तर्गत कर देना चाहिये। हम जैसोंका विचार था कि समयके फेरसे हरएक बातमें अन्तर आ चुका है। अनेक रोगोंके रूप और लक्षण बदल चुके हैं। इस विवर्द्धनशील संसारमें जिस प्रकार नयीसे नयी सृष्टि प्रादुर्भूत हो रही है, उसी तरह रोग भी हो रहे हैं। इनके निश्चित लक्षण निश्चित रूप देखे जाते हैं, इसलिये इनको किसी प्राचीन रोगोंके अन्तर्गत न करके भिन्न ही उल्लेख करना चाहिये। पर वहाँ हमारी बातको सुनता कौन था। इसके पश्चात् अनेक अंगरेजी औषधके सम्बन्धमें विचार चला। कुछ वक्ताओंकी राय थी कि विदेशी औषधको अपने निघंटुमें स्थान देकर उनका उपयोग करना चाहिये। कुछ इसके विरुद्ध थे। काफी देर विवाद होता रहा। इसके सम्बन्धमें मेरी सम्मति यह थी कि जितने भी विदेशी औषध उपयोगी हैं, उनके सत्व, क्षारोद (अलकलाइड)को स्वयम् बनानेका प्रथम विधान जानना चाहिये। जब हम उन्हें बना सकें तब उनका उपयोग हमें करना चाहिये। अर्थात् अपने हाथसे बने औषधका ही हमें उपयोग करना चाहिये। इसपर मैंने एक उदाहरण दिया। यह कि, रसभस्मोंके उपयोगका विधान यद्यपि आयुर्वैदिक नहीं, न इसे हम आर्ष चिकित्सा कह सकते हैं—रस भस्मोंमें पारा, शिंगरफ, हरताल, मैनसिल आदि अनेकों द्रव्य विदेशोंसे आते हैं। पूर्वकालमें भी आते थे। किन्तु उक्त द्रव्य विदेशी होनेपर भी हम उनके द्वारा स्वयम् औषध-निर्माण करने लगे। इसीलिये किसी भी वैद्यने अपने हाथसे बने इस इस प्रकारके अनार्षयोगोंके व्यवहारको निषिद्ध नहीं ठहराया। थोड़े ही समयसे रसचिकित्सा पद्धति हमारी आयुर्वेदिक चिकित्साके भीतर घुसकर उसपर अपना आधिपत्य जमा बैठी। और आज जिधर देखो वैद्योंमें इसी रस-चिकित्सा पद्धतिकी तूती बोलती है। इसी विधानसे यदि

हम एलोपैथी औषधके उपयोगसे काम लें तो मेरे विचारमें कोई आपत्ति नहीं उठनी चाहिये। यद्यपि इसपर थोड़ी देर विचार हुआ तथापि परिषद्‌ने कोई भी निश्चय नहीं किया। समय अधिक हो गया था। सभा यह कहकर विसर्जित हो गयी कि अगले दिन उक्त दोनों परिषदोंके परिणाम सुनाये जायँगे। इसके लिये १२ बजे अगले दिनका समय नियत किया गया।

अगले दिन जिन व्यक्तियोंको निर्णायक चुना गया था उनकी बैठकने जो परिणाम घोषित किया वह तो यथावत् रूपमें परिषद्‌की ओर ही से प्रकाशित होगा। यहां पर हम संक्षेपतः उसका सारमात्र देते हैं।* यथा—

"पाश्चात्य और प्राच्य सिद्धान्त एक दूसरेसे भिन्न हैं। उनकी और हमारी विचार शैली भिन्न है। यह एक दूसरेसे नहीं मिलती। पाश्चात्यका आरम्भक जड़वाद है, हमारा इसके विपरीत है। जो सिद्धान्त शास्त्रकारोंने निश्चित किये हैं वह बिलकुल ठीक हैं, उनमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं। पञ्चमहाभूतवाद और त्रिदोष सिद्धान्त दोनों ही सत्यके आधारपर स्थित हैं, यह निर्भ्रम हैं। इनको उसी प्रकार मानना चाहिये जैसा शास्त्र कहता है, इत्यादि।

परिषद्‌में जानेसे पूर्व मेरी यह धारणा हो रही थी, कि हजारों वर्षोंके पश्चात् वैद्योंको यह प्रथम बार सम्भाषा परिषद् करनेका अवसर मिला है, इसमें जब बड़े-बड़े गण्यमान्य आयुर्वेदज्ञ आयेंगे, जो इस समयकी स्थितिसे अवश्य ही परिचित होंगे, उन्हें अपनी भयंकर पतनावस्थाका अच्छी तरह ज्ञान होगा, वहाँपर शान्तिपूर्वक विचार विनिमय करेंगे। क्योंकि रिपोर्टरोंके लिये तो प्रथम ही बंदिश कर दी गयी है, विचार खुले शब्दोंमें होंगे। इसीलिये उसका परिणाम खूब सोच-विचारकर निकाला जायगा, जिससे वैद्यसमुदाय लाभान्वित होगा। आशा थी कि यहाँपर बहुत सी क्रान्तिकारी बातें हो जायँगी। परन्तु यहाँ आकर मेरी यह धारणा गलत ही सिद्ध हुई।

आधुनिक समयके प्रबल प्रमाणपूर्ण आक्षेपोंकी या तो उपेक्षा की गयी, बहुधा टाला गया। अनेक बातोंका कोई उत्तर ही न देकर प्रसंगको ही छोड़ दिया गया और अन्य प्रसंग ले लिये गये। मुझे ज्ञात हुआ था कि कुछ प्रश्नावली बाहरसे भी लेखबद्ध आयी थी। उनको पढ़कर सुनाया ही नहीं गया। जिन बातोंके उत्तर दिये भी गये, वह संपूर्ण एकांगी होते थे। खैर, विपक्षकी बात जाने ही दीजिये। स्वपक्षमें बोलनेवालोंका भी मतैक्य नहीं था। एक एक बात पर प्रत्येक विद्वान् भिन्न मत रखता था। कोई न्यायशास्त्र का आधार लेता था तो कोई सांख्यवैशेषिकका। इसी प्रकार त्रिदोषवाद पर भी काफी मतभेद प्रकट होता था। अनेक स्थलोंपर प्रश्नोंके उत्तर "सवाल दीगर, जवाब दीगर" वाली कहावतके अनुसार थे।

संसार बढ़ रहा है, संसारमें लोकसंख्या बढ़ रही है, लोग बढ़ रहे हैं, रोगविज्ञान बढ़ रहा है, ओषधियाँ बढ़ रही हैं, नयी नयी वनस्पतियोंका ज्ञान बढ़ रहा है, प्रयोग बढ़ रहे हैं, ज्ञान-विज्ञान संसारके साथ बढ़ रहे हैं। यह सब कुछ बढ़ता हुआ वैद्य अपनी आंखों देखते हुए भी अपनी दृष्टिमें महाभारतके अठारह अक्षौहिणी सेनासे अधिक अभी लोकसंख्या नहीं समझता, न माधवनिदानमें वर्णित रोगोंसे अधिक रोग, न चरक सुश्रुतमें वर्णित औषध और न वनस्पतियोंके ज्ञान विज्ञानसे अधिक ज्ञान-विज्ञान न हमारे रासायनिक प्रयोगोंसे अधिक इनका रासायनिक ज्ञान। इसी बात पर चिढ़कर हमारे निर्णयक पदकी अवहेला करते हुए पूज्यपाद महामहोपाध्याय पं० मधुसूदन जी झाने तो उस सम्भाषा परिषद्‌में स्पष्ट ही कह दिया था कि इस समय संसारका ज्ञान-विज्ञान बढ़ नहीं रहा प्रत्युत घटा रहा है! जितना भी हम अबतक जान पाये हैं अभी क्या पाश्चात्य देश हजारों वर्ष मूँड़ मारे तब भी उस तक नहीं पहुँच सकता। आप पादाघात करते हुए कहने लगे, "पाश्चात्योंको आता ही क्या है? अभी तो हमारी विद्याकी तुलनामें उनकी यह विद्या वर्णमालाके तुल्य आरम्भ होती है। अभी तो इनकी विद्या हमारी विद्या, ज्ञान-विज्ञानकी तुलनामें क, ख, ग, घ ही है" इत्यादि।

छोटे मुँह बड़ी बात निकालते संकोच तो होता है पर हमसे तो विना कहे रहा ही नहीं जाता। कोई भला माने चाहे बुरा, हमें तो खरी-खरी कहना है। हम बातें तो

* हम इसे दिसम्बरकी सम्पादकीय टिप्पणियोंमें उद्धृत कर चुके हैं। रा० गौ०

बड़ीसी बड़ी बनाना जानते हैं। तर्कशास्त्रमें इतने प्रवीण हैं कि ब्रह्मा भी यदि एक बार आ जाय तो उसके कान काटे बिना न छोड़ें; पर काम हमारे ऐसे नहीं हैं।*

जो आयुर्वेद संसार अपने ज्ञान-विज्ञानकी डींगें मारनेमें संकोच नहीं करता, कामकी दृष्टिसे उसकी दशा यह है कि चुपके चुपके दूसरोंके घरोंको झाँका करता है कि वह क्या कर रहे हैं। उनकी दवाइयोंसे छिपकर ही रंग, रूप, बदलकर ही लाभ उठाना जानते हैं, यही नहीं ऊपरसे हम उसे सदा ही तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते और कहते हैं। और सदा ही अपनेको निस्पृही, सर्वज्ञ, सन्तोषी, त्यागी बनकर दिखाई देनेकी चेष्टामें रहते हैं। किन्तु, काम हमारे यह हैं कि आयुर्वेदकी उच्चसे उच्च और साधारणसे साधारण परीक्षाओंमें "प्रत्यक्ष शारीरम्" "प्रत्यक्ष निदानम्" "हमारे-शरीरकी-रचना" "व्याधि-विज्ञान" जैसी क, ख, ग, घ, वाली विद्याकी नकलको [असलकी नकलको] पढ़ाना अपना गौरव मानते हैं। यही नहीं ओषधि-गुण-धर्म, शस्त्र, वनस्पति-शास्त्र-विधानको विशेष समझनेके लिये इसी क, ख, ग, घ वाली विद्याकी ओर ताकते हैं कि यह हमें क्या इशारा करती है। औषध-निर्म्माण-विधान तो इस क, ख, ग, घ विद्यावालोंका इतना पसन्द है कि हाथकी बनी गोलीको फेंककर मशीनकी चिकनी-चुपड़ीपर लट्टू हो जाते हैं। आयुर्वेदके पत्र-पत्रिकाएँ भी जिस आयुर्वेद विषयको वर्णन करते हुए आधुनिक क, ख, ग, घ विद्याकी पुट नहीं चढ़ाते तो उन लेखोंमें आनन्द नहीं आता। यद्यपि हम इस प्रकार सब ओरसे आधुनिक रंग-ढंगमें ऐसे रँग रहे हैं, यह रंग हमपर इतना चढ़ चुका है, कि कोई हिसाब नहीं, परन्तु हमसे कोई पूछे तो हमारी जिह्वा इस सत्यताको स्वीकार करनेके लिये तय्यार नहीं। रोगीको हम थर्मामीटर लगाते अवश्य हैं, पर यह कभी कहनेके लिये तय्यार नहीं कि यह भी लाभदायक वस्तु है। कुनैनको रंग चढ़ाकर बेचेंगे अवश्य, परन्तु पूछनेपर इसकी निन्दा अवश्य करेंगे।

इस तरह वैद्य-समुदायकी इस स्थितिको देखकर हम तो इस परिणामपर पहुँचे हैं कि आयुर्वेदज्ञ भयंकर सन्निपातिक स्थितिमें हैं। इनकी यह स्थिति मृत्युके समीप ले जानेवाली है। क्योंकि, इनकी विचारशक्ति, विवेकशक्ति नष्ट हो चुकी है। इनके अन्दर झूठा गौरव, झूठा आत्माभिमान, जात्यभिमान ठूस-ठूसकर भरा है। इसने अपने विचारोंको—रूढ़ियोंकी—चहारदीवारीमें ऐसी बुरी तरह कैद कर रक्खा है कि इसे संसारमें होनेवाली उन्नति अवनति दिखाई देती है; संसारका विवर्द्धित ज्ञान-विज्ञान अज्ञानताकी ओर बढ़ता दृष्टिगोचर होता है। अब जरा सामूहिक रूपसे संसारकी ओर देखिये।

आज २५वाँ वर्ष है वैद्य सम्मेलनको जन्म लिये। पूँछो तो जरा कि इसने अबतक आयुर्वेदोद्धारके लिये क्या कुछ किया है? सम्मेलन कहनेको तो अखिल भारतीय वैद्योंका सम्मेलन है, पर इसमें प्रतिवर्ष बाहरसे आनेवाले विद्वान् वैद्योंकी संख्या उँगलियोंपर ही गिननेके योग्य होती है। दो चार निःस्वार्थ सेवियोंको छोड़कर, इसमें आते वही वैद्य हैं जो या तो इसको अपनी मौरूसी सम्पत्ति समझते हैं और या वे जो इसे अपनी ख्याति प्राप्त करनेका साधन समझते हैं। अथवा हम जैसे दुकानदार अपनी अपनी फार्मेसियोंका प्रचार करनेके लिये प्रदर्शनीमें दिखलावेकी औषध-सूचीपत्रका बण्डल लेकर पहुँच जाते हैं और उन तीन दिनोंमें आगत वैद्योंपर जैसे तैसे अपना प्रभाव डालकर उन्हें अपने अपने चंगुलमें फँसानेकी चेष्टा करते हैं। इस प्रकार हम जैसे ही स्वार्थियोंका वहाँ जमघट हो जाता है। बस, मृत पुरुषोंके शोक प्रस्तावोंसे कार्यारम्भ होता है। उस समयसे लेकर ख्यातिप्राप्तिके इच्छुकोंकी यह चेष्टा बनी रहती है कि किसी न किसी प्रकार स्टेजपर पहुँचकर व्याख्यान झाड़नेका अवसर मिले। इसी व्याख्यान बाजीमें सम्मेलनकी इति-श्री हो जाती है।*

हम परिषद सम्बन्धी विषयपर कलम उठाना नहीं चाहते थे। हम इस प्रतीक्षामें थे कि परिषदका निर्णय हमारे सामने जब आवेगा तब कुछ लिखा जायगा। किन्तु प्रो०

---

* आपने यह दावा किया कि पारागंधकादि कई चीजें लेकर हम सूत विमान बनाकर दिखा सकते हैं। डाक्टर जोशीने ललकारा कि सभी चीजें यहीं मौजूद हैं। परन्तु आपने अपना दावा सिद्ध न किया। कितने दुःखकी बात है! रा० गौ०

* यह कितनी सच बात है जो प्रायः सभी सम्मेलनोंपर घटित होती है! रा० गौ०

नेत्र स्वस्थ रखनेके उपाय

(डा० रघुवीरशरण अग्रवाल, १५, दरियागंज, देहली)

आजकल आम तौरसे देखनेमें आता है कि बच्चोंकी आँखें कमजोर पायी जाती हैं और उनको ऐनककी जरूरत पड़ जाती है। डाक्टरोंकी यह प्रथा है कि वह जिस किसी की दृष्टि कमजोर देखते हैं ऐनक तजवीज कर देते हैं। बचपनमें तो दृष्टि अच्छी होती है परन्तु ज्यों-ज्यों तालीमका सिलसिला बढ़ता जाता है नेत्ररोग भी बढ़ता जाता है। इस नेत्ररोगके बढ़नेका कारण यह है कि विद्यार्थी अपने नेत्र स्वस्थ रखनेके उपाय नहीं जानते। उनको रातदिन अपनी किताबोंको रटने की फिक्र लगी रहती है। हम अपने इस लेखमें खास तौरसे ऐसी बातें बतलाते हैं जिनके प्रयोगसे बचपनसे बूढ़े होने तक भी नेत्र स्वस्थ रह सकें।

बचपन

जबसे बच्चा पैदा हो कमरेमें एक कड़वे तेलका चिराग या मोमबत्ती जलती रखनी चाहिये। चिराग जलता रखनेसे यह होता है कि बच्चा जब कभी जागृत अवस्थामें रहता है तो अपनी दृष्टि उसपर जमाये रखता है। उसमें उसको आनन्द मालूम होता है। यदि उस समय उस चिरागको बुझा दो तो बच्चा रोने लगता है और मजबूर करता है कि चिराग जलाना चाहिये। यह प्राकृतिक भाव है। इस प्रयोगसे बच्चोंके नेत्र स्वस्थ होते हैं, दृष्टि एकाग्र और तेज होती है।

बच्चोंको नित्य पाला हुआ काजल आँखोंमें लगानेसे नेत्रपीड़ा नहीं होती।

बच्चोंको पालने या झूलेमें झुलानेसे एक किस्मका मानसिक आराम मिलता है। यदि कोई काले रंगका खिलौना या और कोई मनोरंजक वस्तु पालनेपर लटका दी जावे ताकि बच्चेकी दृष्टि उधर रहे तो विशेष लाभ होता है। जिन बच्चोंको भिंगापन हो जाता है उनको इस प्रयोगसे ज्यादा लाभ होता है।

बच्चेको दूध पिलाते समय उसके चेहरेको ढक लेना चाहिये, चेहरा न ढका रहनेसे बच्चा बाहरकी वस्तुओंको दूध पीते समय देखने लगता है। ऐसा करनेसे उसके नेत्र दूसरी तरफको झुकते हैं कि यानी यदि वह अपनी दाँयी करवट से दूध पीता है तो आखें बांयीं ओरको करता है। यह बात हानिकारक है।

उपेन्द्रनाथदासजीने "आचार्य धन्वन्तरिमें" सम्पादकीय नोट देकर उसमें कुछ ऐसी बातें कह डाली हैं जो सत्यतापर पर्दा डालती हैं। इसीलिये मुझे विवश होकर लिखना पड़ा। मैं परिषद्में भी इस बातकी घोषणा कर चुका हूँ कि मैं आयुर्वेदका एक सच्चा प्रेमी सेवक हूँ। मैं जबतक जीवित हूँ, इसकी सेवा करूँगा। मुझे जो व्यक्ति आयुर्वेदका विरोधी समझते हैं, वह अपने दृष्टिकोणसे मेरे विचारोंको पढ़कर ऐसा समझते हैं। ऐसा समझना उनकी भूल है। हम तो आयुर्वेदको समयकी स्थितिके अनुकूल बनाना चाहते हैं। और इसमें जिन संशोधनों, परिवर्द्धनोंकी आवश्यकता है उनको करनो कराना चाहते हैं। इसी विचारसे प्रथम पुस्तक त्रिदोष-मीमांसा लिखी थी। इस परिषद्में सम्मिलित होकर हमने अच्छी प्रकार देख लिया है कि वैद्योंके पास इस पुस्तकमें दिये आक्षेपोंका कोई समाधानकारक उत्तर नहीं। प्रो० उपेन्द्रनाथदासजी तो कहते हैं कि इस पुस्तकका उत्तर इस परिषद्में मिल गया होगा। पंचभूत और त्रिदोषको भी अच्छी तरह समझ लिया होगा। श्रीमानूजी मुझे वहाँ न तो उत्तर मिला, न मैं आपके पिष्टपेषणसे कुछ समझ ही सका। बल्कि मैं तो इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि ५००) रु० के स्थानपर इस पुस्तकके उत्तरदाताको १०००) रु० की घोषणा की जाय। आशा है आप लेखबद्ध उत्तर देकर ५००) के स्थानपर १०००) की प्राप्तिकी चाह रक्खेंगे।

जिधरको सिरका झुकाव हो उधरको ही नेत्रोंका रुख होना चाहिये। चेहरेको कपड़ोंसे ढकनेके अलावा दोनों तरफसे दूध पिलाना चाहिये। बच्चोंको थोड़ी देर सूर्यकी ओर मुँह करके लिटाना चाहिये। जाड़ेमें तो किसी समय भी लिटा सकते हैं परन्तु गर्मीके मौसममें सिर्फ सुबहके समय ही लिटाया जा सकता है। सूर्यकी किरण बन्द नेत्रों पर पड़नेसे शक्ति बढ़ती है। नेत्रपीड़ा क्षणभरमें दूर होती है। यदि बच्चा धूपमें लेटनेसे रोता है तो गोदीमें भी इस भाँति लेकर हलके हलके झुमाया जावे कि सूर्यकी किरणें बच्चेके नेत्रोंपर पड़ती रहें। मुमकिन है कि बच्चा पहले तो एक या दो मिनट रोवे परन्तु फिर चुप हो जाता है। जिन बच्चोंके नेत्र जल्दी जल्दी दुखते रहते हैं, और उजालेमें आँखें नहीं खोलते उनको तो यह प्रयोग बड़ा ही लाभदायक है, फौरन ही फायदा नजर आने लगता है। इससे नुकसान यानी तकलीफ बढ़नेकी तो जरा सी भी बात नहीं है। जब बच्चे जरा बड़े होकर खेलने कूदने लगें तो उनके लिये आँखमिचौनीका खेल नेत्र और मस्तिष्क स्वस्थ रखनेके वास्ते बहुत अच्छा होता है। यह खेल इस तरह खेला जाता है कि एक बच्चा अपनी आखें बन्द करके दोनों हथेलियोंसे ढककर दीवारके सहारे खड़ा हो जाता है और बाकी बच्चे इधर उधर छिप जाते हैं तो आँखें मीचनेवाला बच्चा छिपे हुए बच्चोंको ढूँढ़ता है। तब बच्चे उस जगहको छूनेकी कोशिश करते हैं जहाँ कि बच्चेने आखें मीची थीं। यही आँख मीचनेवाला बच्चा किसीको अपनी जगह छूने देनेसे पहिले छू लेता है। तब वह दूसरा बच्चा चोर कहलाता है और अब वह आखें मीचता है। अकसर इस खेल में गलती यह होती है कि बच्चे आँख जब मीचते हैं तो आखोंको उँगलियोंसे दबा लेते हैं। ऐसा करनेसे आखोंपर जोर पड़ता है और हानि होती है, नेत्र कमजोर हो जाते हैं। यदि बच्चा आखें बिना जोर डाले ढकता है तो फायदा होता है। जिस बच्चेकी दृष्टि कमजोर हो उससे बार बार आखें मिचवायी जावें।

जब बच्चे पढ़ने लिखने योग्य हो जावें तब उनको नित्य दृष्टि जाँचनेवाला बोर्ड (Eye testing chart) १० फुट या २० फुटसे पढ़ना चाहिये। एक-एक आँखसे अलग-अलग पढ़नेसे ज्यादा लाभ होता है। जब एक आँखसे पढ़ा जावे तब दूसरी आँखको हथेलीसे नेत्रपर बिना दबाव डाले पढ़े। इस प्रयोगसे बच्चेके नेत्र कभी कमज़ोर नहीं होते। हरएक घरमें दृष्टि जांचनेवाला बोर्ड रहना चाहिये। जिन बच्चोंकी दृष्टि कुछ कमज़ोर भी होती है वह भी जल्दी ही इस प्रयोगसे ठीक हो जाती है। और यह अनुभव १५ या २० दिनमें ही हो सकता है। ज्यादासे ज्यादा ५ मिनटका सबक है।

अक्सर बच्चे जब ज़रा बड़े हो जाते हैं तब पलक मारनेकी क्रिया भूल जाते हैं। वह पढ़नेमें भी कई सफे पढ़नेपर भी पलक नहीं मारते। ऐसा करनेसे उनके नेत्र निर्बल होने शुरू हो जाते हैं। बच्चोंको यह सिखाना चाहिये कि वह हलके-हलके हर समय पलक मारते रहें। हर समय पलक झपकनेसे नेत्र स्वस्थ रहते हैं।

बच्चोंको पढ़ने-लिखने, सीने-पिरोने, कातने, सिनेमा देखने इत्यादि बातोंमें नेत्रोंका ठीक इस्तेमाल सिखाना चाहिये।

पढ़नेका तरीका

पढ़ते समय किताब आँखोंकी सीधमें न रक्खो बल्कि आँखोंसे नीचे रक्खो। धूपमें बैठकर न पढ़ो। क्योंकि जब धूप किताबके सफेपर पड़ती है तब उसकी चमक आँखोंपर पड़ती है और इस चमकसे नेत्र जल्दी थकते जाते हैं। पढ़ते समय धीरे-धीरे पलक झपकाते रहना चाहिये।

लिखनेका तरीका

लिखते समय दृष्टि कलमकी नोकके साथ-साथ घुमाना चाहिये और हलके-हलके पलक झपकते रहना चाहिये। लिखनेमें गलती यह होती है कि लिखते आगे को हैं और साथ-साथ पीछेके अक्षर भी देखते जाते हैं। यदि ठीक तरीकेसे लिखा जाता है तो ख़त अच्छा लिखा जाता है और यदि ग़लत तरीकेसे लिखा जाता है तो ख़त ख़राब आता है और नेत्र जल्दी थक जाते हैं।

सीने और पिरोनेका तरीका

सीनेमें दृष्टि सूईके साथ-साथ घुमानी चाहिये। जब सूई कपड़ेपर हो तब दृष्टि भी कपड़ेकी तरफ होनी चाहिये और जब सूई ऊपर आवे तब दृष्टि भी ऊपर आनी चाहिये। चलती सिलाई, मशीनकी सिलाईमें पलक झपकनेका ध्यान रखना चाहिये। जिन स्त्रियोंके सिरमें सीते-सीते दर्द होने

लगता है वे सीनेकी विधिका ध्यान रखते हुए सीयें तो उनकी यह तकलीफ जल्दी ही जाती रहेगी और अच्छा सीने लगेंगी।

कातनेका तरीका

कातनेका तरीका भी जानना जरूरी है। विधि-पूर्वक कातनेसे दृष्टि बढ़ती है। यदि तीस सालकी उम्रके बाद स्त्री कातती रहे तो उसकी दृष्टि कभी न गिरे और न मोतियाबिन्दकी शिकायत होने पावे। परन्तु यह बात नियमसे नित्यप्रति करनी चाहिये—चाहे थोड़ी सी देर ही कातना हो। कातनेमें दृष्टिको पूनीके साथ-साथ न घुमानी चाहिये। दृष्टि रुईमें जिस जगहसे बारीक तागा निकलता है उस जगह रखनी चाहिये। पूनीको अपने चेहरेकी तरफ लाना चाहिये। यदि पूनी और तरफ ले जानेकी बान पड़ी हो तो दृष्टिके बदले सिर घुमाना चाहिये। सामने कातनेवालेकी दृष्टि तकवे और पूनीके सीधमें रहेगी। यदि सीने और कातनेके साथ कोई गाना भी आनन्दसे गाया जावे तो अति लाभ होता है। जिनको सीते-सीते या कातते समय चक्कर आने लगता है या सिरमें दर्द हो जाता है वह कातनेमें यह गलती करती हैं कि दृष्टि तकवेपर जमाये रखती हैं, पलक झपकना भूल जाती हैं।

सिनेमा

जबसे बोलनेवाला सिनेमा चला है तबसे आम तौरपर सिनेमा देखनेकी चाट बढ़ गयी है। परन्तु सिनेमा नेत्रोंको हानिकारक बतलाया जाता है, और वास्तवमें यह देखनेमें भी आता है कि सिनेमा देखनेके बाद बहुतोंकी आँखोंमें लाली, दर्द और धुँधला दीखनेकी शिकायत हो जाती है। इसका कारण यह है कि वह अपनी दृष्टि पलक उठाये, बिना पलक मारे तसवीरकी तरफ जमाये रखते हैं। ऐसा करनेसे उनके नेत्रोंपर ज़ोर पड़ता है और नेत्र रोगोंकी शिकायक हो जाती है। यदि इन सिनेमा देखनेवालोंको सिनेमा देखनेकी रीति सिखा दी जावे तो कोई नेत्रपीड़ा न होने पावे और बजाय कुछ भी नुकसानके नेत्रोंको लाभ हो और उनकी तबीयतसे यह भ्रम भी दूर हो जावे कि सिनेमासे नेत्रोंको हानि होती है।

ऊपरवाली पलक उठाये रखने, पलक न झपकने और घूरते रहनेकी विधि ग़लत है और आम तौरसे लोग इसी तरह सिनेमा देखते हैं। तसवीरसे यह बात साफ-साफ मालूम हो जाती है। यह गलत तरीका है। ठीक विधि यह है कि ज़रा ठोड़ी ऊपरको रखो, ऊपरकी पलक नीचे रखो, पलक झपकते रहो।

पूजा करनेकी विधि

नित्य सुबहको सूर्यकी ओर नेत्र बन्द करके बैठनेसे दृष्टि बहुत तेज़ होती है। नेत्रपीड़ा, लाली, दर्द, चकाचौंध, आखें दुखना इत्यादि कष्ट बहुत जल्द जाते रहते हैं। और फायदा तो करीब-करीब हर एक १० मिनटमें ही दीख सकता है। हिन्दूधर्मने सूर्यको नेत्रका देवता माना है और वास्तवमें सूर्यसे नेत्रोंको बहुत ही लाभ होता है। नुकसानका तो नाम ही नहीं। नेत्र स्वस्थ रखनेके वास्ते कमसे कम १० मिनिट रोज़ सूर्यकी तरफ नेत्र बन्द करके आरामसे बैठकर भगवानका सुमिरन करो। अच्छा तो यह हो कि एक लोटा पानी भरकर अपने पास रक्खो और अपनी पूजा समाप्त करनेपर सूर्यकी ओर पलक झपकते देखते हुए जल नीचे धार बाँधकर गिराओ और गिरानेके बाद अपनी अंगुलियोंसे ज़मीनसे जलमें उँगली भिगोकर नेत्रोंके कोयोंपर लगाओ। ऐसा करनेसे और ज्यादा लाभ होता है। उस समय सूर्यकी ओर मुँह करके न बैठिये जब सूर्यकी किरणोंमें गर्मीकी तेज़ी आ जावे। जाड़ोंमें तो किसी समय भी बैठा जा सकता है। परन्तु गर्मीके मौसममें सिर्फ सुबहको ही बैठना चाहिये।

प्राकृतिक नेत्र-चिकित्सापर पुस्तकें

इस विषपर अनेक पुस्तकें अंगरेजीमें लिखी अमरीकासे मिलती हैं। परन्तु उनका समझना बड़ा मुशकिल है। भारतमें भी अब इस विषयपर ज़ोर दिया जा रहा है। अभी हालमें माइन्ड-ऐन्ड-विज़नकी पुस्तक इंगरेजीमें लिखी गयी है। यह पुस्तक अति सरल है। फोटो समेत दृष्टि ठीक करनेकी अनेक विधियाँ हैं। इससे जनता बहुत फायदा उठावेगी। हिन्दीमें इसके अनुवादकी कोशिश की जा रही है। यह पुस्तक चाँद कार्यालयसे ४) में मिल सकती है। [इस ग्रंथके लेखक स्वयं डाक्टर साहब हैं और १५, दरियागंज, दिल्लीसे यह उपयोगी पुस्तक मिल सकती है।] —रा० गौ०।

नेत्रोंकी प्राकृतिक चिकित्सा

[श्री हजारीलाल जड़िया, दिल्ली]

"वसुधैव कुटुम्बकम्" इसी अर्थको सार्थक करने वाला साम्यवाद, विश्वरूप भगवानकी सेवा, ये सब कुछ इसी मन्तव्यमें गर्भित हैं कि, प्रत्येक व्यक्ति अपने समस्त कार्यों को तृष्णासक्त स्वार्थसिद्धिके लिये नहीं, प्रत्युत् लोक-सेवा के भवसे करता रहे। डाक्टरी, वैद्यक, हकीमी, आदि चिकित्सा सम्बन्धी कार्य तो अनिवार्य रूपसे लोकसेवाके भावसे होना चाहिये। आजकल डाक्टर या वैद्य सबसे प्रथम व्यापारी होते हैं, पश्चात् डाक्टर या वैद्य। इस लोकमें यही एक ऐसी विषमता है जिससे लोक हितके बजाय अहितही बहुत होता दिखाई देता है। यह विषमता तभी मिट सकती है जब प्रत्येक डाक्टर या वैद्य अपनी जेबोंमें जानेवाले पैसोंको प्रधान न मानकर रोगीके कल्याणको ही प्रधान मानें और लोक समाज इसके भरण पोषणका भार अपने ऊपर ले। रोगचिकित्साकी वैभवसम्पन्नताके लिये व्यापार समझनेवाले लोगोंमें प्रायः सहृदयता नहीं होती। लेखकने स्वयं एक लखपती डाक्टरका प्रत्यक्ष उदाहरण देखा है, जिसने एक गरीब आदमीके पास आठ आनेमें केवल दो पैसेकी कमी होनेसे दी हुई दवाई वापिस छीन ली! रोगोंकी अधिक सृष्टि होने और रोगियोंको अपनी ओर उलझाये रखकर पैसा खींचते रहनेमें ही ऐसे चिकित्सक अपने धंधेकी सफलता समझते हैं। चिकित्साके मूल सिद्धान्तकी उच्चतापर दृष्टिपात करनेसे उक्त प्रकारकी मनोवृत्तिवाले चिकित्सक बड़ेसे बड़े अपराधी माने जाते हैं। सारांश, रोग चिकित्सा धन कमानेका व्यापार नहीं वरन् विशुद्ध लोकसेवाके सिद्धान्तपर ही स्थित है, जिन्हें धन कमाना हो उन्हें दूसरे दूसरे व्यवसाय करने चाहिये। आज डाक्टर और वैद्योंकी रक्खी हुई अलमारियोंमें दवाइयोंकी प्रचारकी इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी उन ग्रंथों और प्रकृतिके गूढ़ नियमोंके शोधका प्रचार एवं प्रोत्साहन देनेकी आवश्यकता है जिनकी जानकारीसे मनुष्य रोगोंसे बचता रहे और समय पड़नेपर प्राकृतिक चिकित्सासे ही अपने आप रोगमुक्त होने में समर्थ हो सके।

लेखक स्वयं वैद्य या डाक्टर तो नहीं है किन्तु प्राकृतिक चिकित्साकी विशेषताओं और उनकी सफलताओंके विषयमें कभी कभी कुछ पढ़ अवश्य लेता था। नेत्रोंकी प्राकृतिक चिकित्साके सम्बन्धमें इस लेखकको एक प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है, उसे जनहितकी दृष्टिसे प्रकाशमें लाना आवश्यक समझकर यह लेख लिखा है। मेरा बालक जो ९ वर्षीय है गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) में शिक्षा प्राप्त कर रहा है। वह लगभग ४—५ माहसे बहुत कुछ अंशोंमें अंधा हो चुका था। उसे २—३ हाथ दूर खड़ा हुआ मनुष्य भी दिखाई न देता था। अपने पाठ्यक्रमकी पुस्तक नाकके नजदीक लगाकर पढ़ता था। लिखना अन्दाजी तौरपर करता था। चलना फिरना आदि शरीरके आवश्यक कार्य अपनी श्रेणीके अन्य ब्रह्मचारीको देखकर कर लिया करता था। क्योंकि प्रायः इसे १ हाथकी दूरीका दिखाई देता था। यह बालक गुरुकुलके अध्यापकोंसे कम दिखाई देने और नेत्र पीड़ाकी शिकायत करता रहा। इसपर वहाँ मामूली इलाज होता रहा। बालक अपने सारे कार्य आपही करता रहा, इससे अधिकारियोंको यह जाँचनेकी शंकातक न हुई कि बालक किस दर्जे तक अंधा हो गया है। जब मैं स्वयं गुरुकुल गया तब इसकी बारीकियोंको देखा। पश्चात् नेत्रपरीक्षा करानेपर यह सब कुछ स्पष्ट हो गया। गुरुकुलकी चिकित्सा सम्बन्धी व्यवस्था सुधारने आये हुए कैप्टन रामचंद्रजी सिविल सर्जनने बालककी नेत्रपरीक्षाका प्रणाम प्रायः निराशाजनक बताया। अन्यान्य डाक्टरोंने भी इसे देखा और केवल ऊँचे नंबरोंका चश्मा दिया जिससे न तो दृष्टिको ही पूरी सहायता मिली और न नेत्रपीड़ा ही कम हुई। ऐसी ही स्थितिमें बालकने अपनी परीक्षा दी जिसमें कुल २५५ परीक्षांकोंमेंसे २२३ नंबर प्राप्त किये। व्याकरण, संस्कृत साहित्य तथा गणितमें प्रायः पूरे पूरे नंबर प्राप्त किये। परीक्षाके इस परिणामको देखकर एवं बालकके अंधेपनेकी अवस्था, दोनों समस्याओंके विचारसे मेरे हृदयमें जो मर्मांतक वेदना उत्पन्न हुई उसे लेखनी द्वारा वर्णन नहीं कर सकता।

सम्पादकीय टिप्पणियां

गंगा जमुनाके जलकी पवित्रता

अंग्रेजीके प्रबुद्ध भारतमें डाक्टर धीरेन्द्रनाथ रायने एक लेख लिखा है। उससे कलकत्तेके माडर्न-रिव्यूने अपने सितम्बरके अंकमें जो अवतरण दिया है, वह बड़े महत्वका है। गंगाजमुनाके जलकी पवित्रताके संबंधमें डाक्टर राय लिखते हैं—

" The wonderful mysticism which seems to surround these two great rivers has also some other reason which is supported by modern scientific investigation. The Hindus think that the Ganges and the Jumna are not just rivers. They are more than rivers. They are possessed of mysterious powers which are not found in any other rivers of the world. That this is true is borne out by renowned scientists of our time. For instances the distinguished bacteriologist, Dr. F. C. Harrison, Principal of Macdonald College, Mc. Gill University, Canada, writes in an article. ' Micro-organisms in Water ": " A peculiar fact which has never been satisfactorily explained, is the quick death (in three to five hours) of the cholera vibrio in the waters of the Ganges and the Jumna. When one remembers that these rivers are grossly contaminated by sewage, by numerous corpses of natives (often dead of cholera), and by the bathing of thousands of natives, it seems remarkable that the belief of the Hindus that the water of these rivers is pure and cannot be defiled and that they can safely drink it and bathe in it, should be confirmed by means of modern bacteriological research. It is also a curious fact that the bacteriologic power of tha Jumna water is lost when it is boiled and that the cholera vibrio propagates at once if placed in water taken from the wells in the vicinity of the river."

A very well-known French physician, Dr. D. Herelle, made similar investigations into the mystery of the Ganges. He observed some of the floating corpses of men dead of dysentry and cholera and was surprised to find " that only a few feet below the bodies, where one would expect to find millions of these dysentery and cholera germs '' there were no germs at all "He then took germs from patients having the disease and to these cultures padded water from the river (Ganges). When he incubated the mixture for a period, much to his surprise the germs were completely destroyed."

A British physician, Dr. C. E. Nelson, F. R. C. S., tells us of another striking fact. He says that " ships leaving Calcutta for England take their water from the Hughli River which is one of the filthy Ganges and the Ganges water will remain fresh all the way to England. On the

---

अस्तु, देहलीमें डा० आर० एस० अग्रवालकी जो दरियागंजमें रहते हैं प्राकृतिक नेत्रचिकित्साने जादू कर दिखाया। १०-१२ दिनके अंदर ही बालककी आँखें पूर्ववत देखने लगीं। दृष्टि निर्मल हो गयी। इसी प्रकार इस प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालीसे अनेक लोग लाभ प्राप्त कर रहे हैं। इस पद्धतिमें केवल पलकों और नेत्रोंका व्यायाम किया जाता है जो कि भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका होता है। लेखक स्वयं ८ वर्षसे चश्मा लगाता है इस संबन्धमें डाक्टर साहबने इसे भी जो नेत्र-व्यायाम बतलाया है उसके श्रीगणेशका परिणाम देखकर आशा है कि चश्मा छूट जायगा। डाक्टर साहबका कथन है— "बालकोंको यदि प्रारम्भसे ही पलक मारने और पुतलीको प्राकृतिक ढंगपर एक विशेष स्थितिमें रखनेकी शिक्षा दी जाय तो दृष्टि कभी मंद नहीं हो सकती। डाक्टर साहब स्कूल और कालेजोंमें जाकर भी इन बातोंका प्रचार किया करते हैं। डा० साहबकी इस प्राकृतिक नेत्रचिकित्सा-प्रणालीका प्रचार होना लोकहितकी दृष्टिसे अत्यंत लाभदायक है।

other hand, ships leaving England for India find that the water they take on in London will not stay fresh till they reach Bombay the nearest Indian port, which is a week closer to England than Calcutta. They must replenish their water supply at Port Said, Suez, or at Aden on the Red Sea.

When the veteran scientists of the West upon whom the sacred tradition of India has no influence at all, are surprised by the peculiar qualities of the Ganges and the Jumna waters, it is no wonder that the Indian people in general should hold that these rivers are sacred and possessed of mysterious powers.

हम केवल आवश्यक अंशका यहाँ भावानुवाद देते हैं।

"मैंकृगिल विश्वविद्यालय कनाडाके मकडोनल्ड कालिजके प्रिंसिपल डाक्टर हरिसन "जलके कीटाणु" नामके अपने एक लेखमें लिखते हैं कि जमुना और गंगाजलमें एक ऐसी विशेषता है जिसकी कोई संतोषदायक व्याख्या अबतक नहीं हो सकी है। वह यह है कि हैजेके कीटाणु बहुत शीघ्र, तीनसे पांच घंटे तकके भीतर ही इसमें मर जाते हैं। इन नदियोंमें शहरोंका मैला बहाया जाता है, हैजेसे मरे मुर्दे सभी इसमें बहाये जाते हैं, और हजारों लाखों आदमी इसमें नहाते धोते गन्दगी बहाते हैं, फिर भी हिन्दुओंका दृढ़ विश्वास है कि इनका जल अपवित्र या गंदा कभी हो नहीं सकता, वे बेखटके इस जलको पीते हैं और इसमें नहाते धोते हैं। इन बातोंको सामने रखकर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता है कि आधुनिक कीटाणु शास्त्र की खोजोंसे हिन्दुओंके विश्वासका समर्थन होता है। यह भी अद्भुत बात है कि जमुनाजल ज्यों ही उबाल दिया जाता है त्योंही उसका यह गुण नष्ट हो जाता है और आसपासके कुओंके जलमें तो हैजेके रोगाणु आसानीसे बढ़ने लगते हैं।

डाक्टर डी० हेरेल एक प्रसिद्ध फरासीसी वैद्य हैं। गंगाजलके बारेमें उन्होंने भी इसी तरहकी खोज की है। उन्होंने गंगाजीमें आमातिसार और हैजेसे मरे शव बहते देखा परन्तु उन शवोंके कुछही फुट नीचे जहाँ असंख्य रोगाणु होने चाहिये थे, वहाँ रोगाणुका नामोनिशान नहीं था। उन्होंने इस तरहके रोगियोंसे रोगाणु लिये, उनका पालन किया और उसमें गंगाजल छोड़ा और कुछ देरतक उसकी क्रिया होने दी। अन्तमें देखा तो सभी रोगाणु पूर्णतः नष्ट हो गये थे।

एक अंग्रेज डाक्टर सी० ई० नेल्सनका कहना है कि कलकत्ते से इंगलिस्तान जानेवाले जहाज हुगली नदीसे जल लेते हैं। यह नदी बड़ी गंदी है। परन्तु इसका जल इंगलिस्तान तक ताजा बना रहता है। कीड़े नहीं पड़ते। परन्तु इङ्गलिस्तानसे बम्बई आनेवाले जहाज जो जल लंडनमें भर लेते हैं वह बम्बई तक भी ताजा नहीं रह सकता, यद्यपि बम्बई कलकत्तेकी अपेक्षा एक सप्ताह कमकी राह है। उन्हें पोर्ट-सईद, स्वेज या अदनमें पानी लेना पड़ता है।

यह उन लोगोंकी गवाही है जो हिन्दू-परम्परा वा विश्वाससे प्रभावित नहीं हैं।

क्या हिन्दुओंका गंगाजलके सम्बन्धमें विश्वास विज्ञान से कुछ अंशतक समर्थित नहीं है? रा० गौ०

हमारा वैज्ञानिक साहित्य

अलमोड़ा जेलसे २८-७-३५ की तारीख देकर "हमारा साहित्य" शीर्षकसे "विशाल भारतमें" एक महत्त्वपूर्ण विचारोत्तेजक लेख लिखते हुए देशरत्न श्रीमान् पंडित जवाहरलालजी नेहरू लिखते हैं—

"हमें यह भी याद रखना है कि आजकलकी दुनियाँ और हमारा सारा जीवन विज्ञानमें बँधा हुआ है। इसलिये विज्ञानके सिद्धांत और उसके नये विचार तो हमें समझने ही हैं। मुझे इन बातों में बहुत दिलचस्पी रही है—खासकर भौतिक विज्ञान और उनके नये खयालातमें, जैसे 'रेलेटिविटी' (सापेक्षवाद) और क्वान्टम थ्योरी (अंशुमात्रा सिद्धान्त) 'जीव-विज्ञान', समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान और मनो-विश्लेषण (साइको-एनालिसिस)

इन सब विषयोंपर आजकल यूरोप-अमेरिकामें हजारों किताबें हर साल निकल रही हैं। उनमें बहुतेरी मामूली किस्मकी हैं, कुछ फिजूल हैं, लेकिन एक काफी तादाद ऊँचे दर्जेकी भी है। विदेशी अखबारों और पत्रिकाओंमें भी इन मजमूनोंपर बहुत अच्छे लेख निकला करते हैं। मैं आशा करता हूँ कि हिंदीमें इन विषयोंपर जो नयी पुस्तकें हैं, उनकी फेहरिस्त तैयार की जायगी। यह जाहिर है कि स्कूल और कालेजके विद्यार्थियोंके लिये जो किताबें इम्तहान पास करनेको लिखी जाती हैं, उनकी इस फेहरिस्तमें आवश्यकता नहीं।"

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४२ } प्रयाग, कुंभार्क, १९९२ वि० । फरवरी, सन् १९३६ ई० { संख्या ५

सदाशा

(रचयिता-साहित्यरत्न पं० भगवतीलाल श्रीवास्तव्य, "पुष्प," काशी)

आशाकी अमल अबोध अंगना सी ।
मायाकी मृदुल महान कल्पना सी ।
त्राताकी त्रिगुणमयी विडम्बना सी ।
योगीकी सफल प्रयत्न अर्चना सी ।

हों वैज्ञानिक विधियाँ,
विकसित सदैव सतत संस्कृति-मयी ।
विनाशे दुर्वृत्तियाँ,
नित जिसकी कला-आविष्कृति नयी ॥

प्राच्य और पाश्चात्य खगोलका विस्तार*

[रामदास गौड़]

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्त्तये ।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥

१. शेषशय्याका विस्तार

श्रीमद्‌भागवतके तीसरे स्कन्धके आठवें अध्यायमें सृष्टिका वर्णन है। यह विश्व-सृष्टि है, ब्रह्मांड-सृष्टि नहीं।

उदाप्लुतं विश्वमिदं तदाऽऽसीद्-
न्निद्रयाऽमीलितदृङ्न्यमीलयत् ।
अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः
कृतक्षणः स्वात्मरतो निरीहः ॥

"इदं विश्वं" इस अपने विश्वको कहा जिसमें हमारा ब्रह्मांड है। यह सब विश्व प्रलय-समुद्रमें डूबा हुआ था। अनन्त देशमें भगवान् शेष-शय्यापर सोये। विश्व-प्रलयमें विश्वको अपनेमें लय करके विश्वनाथ जिस अनन्त देशमें शेष-शायी थे वह कहाँ है, या कहाँ हो सकता है? यह बात उस प्रकरणसे समझमें नहीं आती। परन्तु यह अवश्य ही वर्णित है कि भगवान्‌की नाभिसे एक पद्मकोश प्रकट हुआ। भगवान्‌का शरीर शेषनागपर पसरा हुआ है। संभवतः उसके मध्यभागसे ही पद्मकोश प्रकट हुआ और वह कोश भी एक ऐसी लम्बी नालके सहारे बहुत ऊँचे उठा हुआ था जिसपर ब्रह्माजी प्रकट हुए। जान पड़ता है कि भगवान्‌का शरीर और शेषतल्प अनन्त देशमें अत्यन्त विस्तीर्ण होगा। कितना विस्तीर्ण? कुछ लिखा नहीं है। ब्रह्माजी चकित हो चारों ओर देखते हैं तो चार मुँह हो आते हैं। यह भी कितनी देर में? लिखा नहीं है। परन्तु विकास-सिद्धान्त इस विधिसे मुख बन जानेका पूर्ण पोषक है। समय और दूरी, काल और देश, इन दोनोंका पता देनेवाले ये पद्य विचारणीय हैं—

स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनाल नाडीभिरन्तर्जलमाविवेश ॥
नार्वाग्गतस्तत्खरनालनाल नाभिं विचिन्वन्स्तदविंदताऽजः ॥ १९
तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः ॥
यो देहभाजां भयमीरयाणः परीक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥ २० ॥

कमलनालके छिद्रोंके द्वारा ब्रह्माजी भीतर जलमें गये, बहुत खोजा, परिश्रम किया, पर आधारका पता न लगा। इस काममें एक कालचक्र घूम गया। श्रीधर स्वामीके अनुसार सुदर्शन चक्र सौ वर्षमें एक चक्कर पूरा करता है। "संवत्सर शतमतिक्रान्तमित्युक्तम्"। संवत्सर कितना काल हुआ? कालके मान तो अनेक हैं। फिर सुदर्शनचक्र पूरा चक्कर किस मानके सौ वर्षोंमें करता है? ब्रह्माजी सोकर उठे हैं अथवा ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई है? यहाँ तो "स्वयंभू" कहकर उनकी उत्पत्ति ही दिखायी गयी है। फिर क्या ये वही ब्रह्मांडनायक ब्रह्मा हैं जो ब्रह्मांडकी बारंबार रचना करते रहते हैं, अथवा विश्वनायक ब्रह्मा हैं जो विश्वकी रचना करते हैं? प्रसंगसे तो विश्वकर्त्ता ब्रह्मा ही दीखते हैं। इनकी आयु तो ब्रह्मांड नायककी आयुसे कहीं अधिक होगी? फिर, सुदर्शनचक्रके परिक्रमणसे बीता हुआ काल श्रीधर स्वामीके अनुसार सौ बरस भी माना जाय तो वह सौ बरस तो विष्णुके होंगे? यदि ऐसा मानें तो २ खरब ८८ अरब ब्राह्मवर्ष हुए। परन्तु ब्रह्माकी आयु उस वैष्णव मानसे भी सौ ही बरसोंकी होगी। अतः वैष्णव या ब्राह्म-वर्ष भी न मानें और सौ दिव्यवर्ष भी मानें तो मानव ३६ हजार वर्ष हुए। आधारका पता लगानेको ब्रह्मा ३६ हजार वर्षतक नीचे चले गये। फिर भी पता न लगा। मानववर्ष ही मान लें तो सौ बरसतक नीचे बराबर उतरते गये फिर भी आधारतक न पहुँचे। फिर ब्रह्माजी किस वेगसे नीचे उतरे होंगे? ब्रह्माजीका शरीर स्वयं कितना बड़ा था? कर्णिकमें ही जो शरीर स्थित होगा वह तो कमल-

* इन्दौरके अखिल भारतीय ज्योतिष सम्मेलनकी खगोल-विज्ञान परिषत्‌के अध्यक्षपदसे पढ़े जानेके लिये लिखा गया। रा० गौ०

के बीजसे बड़ा न होगा। फिर नालके छिद्रोंमेंसे होकर वह निकले तो वह तो बीजसे कहीं छोटे अत्यन्त सूक्ष्म परिमाणके शरीरवाले होंगे। सापेक्ष रीतिसे यदि कमल कमलनाल और कर्णिकाके आकारपर विचार किया जाय और कमल-नालकी लम्बाई समझी जाय तो क्या परिणाम निकलेगा? जिस कमलनालको थामकर या उसके सहारे रेंगकर सौ मानव-वर्षमें भी उसका अन्त नहीं मिलता उसकी लम्बाई कितनी होगी?

मान लीजिये कि घंटेमें एक मील ही नीचे उतरे होंगे और आकर्षण शक्तिका कोई प्रभाव न रहा होगा, तो भी सौ बरसोंमें आठ लाख चौंसठ हजार मील तै करना सिद्ध होता है। यदि दिव्य वर्षोंकी गणना मानें तो ब्रह्माजी ३१ करोड़ मीलसे अधिक जाकर भी कमलनालका पता न लगा पाये। ठीक मान न उपलब्ध होनेसे मीलोंमें उसकी लम्बाई वर्णन नहीं की जासकती और लिखनेवालेको यह इष्ट भी नहीं है। कमलकी चौड़ाई साधारण कमलनालकी लम्बाईका शतांश भी मानें, तो कमलकी कमसे कम चौड़ाई साढ़े आठ हजार मीलसे अधिक आती है जो हमारी धरतीकी चौड़ाई या व्यास ठहरता है। यदि कमल इतना बड़ा भी हुआ तो अनुपाततः ब्रह्माजी कितने बड़े हुए? ब्रह्माजीके शरीरका आयतन अवश्य ही सारे भारतवर्षके बराबर होना चाहिये।

२. क्षीरसागर कहाँ है?

जिसकी नाभिसे हमारी पृथ्वीके बराबर कमल निकला, उसका विस्तार भला कितना होगा? मान लो कि वह उतना ही लम्बा है जितना कमलनाल, तो हमारी पृथ्वी जैसे सौ पिंड पास पास रखे जायँ, तब कहीं नारायण के शरीरकी बराबरी होगी। यह सब कल्पना कमसे कम मानके आधारपर की गयी है। परन्तु भागवतकारका उद्देश्य इस अल्प मानसे नहीं है। वह कह चुका है कि अखिल विश्वका वह अपनेमें लय करके शयन कर रहा है। विश्वका विस्तार उसके शरीरसे अवश्य अधिक रहा होगा। परन्तु उसका विस्तार भी विश्वसे बहुत कम न होगा। इसी सूचनाके लिये शेष-तल्पके प्रसारकी कल्पना की गयी है। जिस देशमें यह घटना हुई वह देश अनन्त है। शेष ही अनन्त है, तो जिस देशमें शेषका प्रसार है, वह कितना अधिक अनन्त होगा? यहाँ अनन्तता भी सापेक्ष ही है। वह अनन्त देश कहाँ हो सकता है? यह नितान्त असम्भव नहीं है कि वह अनन्त देश हमारी दृष्टिसे बाहर, हमारे व्योम-मंडलसे भी बाहर कहीं हो। परन्तु हम इस अनन्त आकाशमें ही उसकी खोज क्यों न करें? वह क्षीर समुद्र, वह शेषनागकी शय्या, वह नारायणका पसरा हुआ शरीर, वह पद्मकोश क्या आकाशमें आज भी प्रत्यक्ष नहीं है? आकाश गंगा कहलानेवाली नीहारिका और उसका प्रसरण, उसके क्षीरवत् द्रव्य और तारापुंजोंका विस्तार, उसके भीतर अनन्त कोटि ब्रह्मांड क्या हैं? आजके पाश्चात्य खगोल-विज्ञानी क्या यह नहीं कहते कि हमारा विश्व यही आकाशगंगा है, जिसमें एक ब्रह्मांड हमारा भी है जो उसके प्रायः केन्द्र-देशमें स्थित है? यह आकाश गंगा एक कुंडल्याकार वक्रके रूपमें है और इस वक्रकी नाभि भी है। इस नाभिसे शक्तिस्रोत निकलकर अनेक ब्रह्मांण्डोंके केंद्रका निर्माण कर रही हो, यह कल्पना विज्ञानकी दृष्टिसे अनर्गल नहीं है। ऐसी पाश्चात्य कल्पनाएँ हमारी पौराणिक धारणाओंका समर्थन करती हैं और सृष्टिके सम्बन्धमें हमारी ये पौराणिक धारणाएं साधार हैं, निराधार नहीं।

३. पुराणोंमें सृष्टिकी कथाएँ

पौराणिक अनेक ऐसी धारणाओंमेंसे एकका ही उदाहरण यहाँ दिया गया है। लिंगपुराणमें ब्रह्मा और विष्णुका लिंगकी खोजमें अत्यन्त दीर्घकालतक व्यस्त रहना, समुद्रका मंथन, चन्द्रमाकी उत्पत्ति, वराहावतार, बलिवामनकी कथा, ब्रह्माकी सृष्टिकी अन्यान्य कथाएँ, दक्षप्रजापतिकी कन्याओंसे चन्द्रमाका विवाह, ग्रहोंकी उत्पत्ति, इत्यादि पुराणकी अनेक कथाएँ खगोलमें आज भी चित्रित हैं। इनका अनुशीलन करनेसे सृष्टिके रहस्योंका पता तो लगता ही है, साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि हमारे पूर्वजोंको खगोल-विज्ञानमें कितना रस था, वे उसका कितना गम्भीर अनुशीलन करते थे और हम आज उनके मार्गसे कितनी दूर जा पड़े हैं।

४. हमारे आकाश मंडलसे भी बाहर

हमारे प्राचीन साहित्य में अनेक स्थलोंसे यह स्पष्ट होता है कि खगोलके बाहर अनन्त देशके उन अंशोंतक भी उनकी कल्पना प्रविष्ट हो चुकी थी जिनकी खोज आजके अच्छेसे

अच्छे दूरगामी और सूक्ष्मान्वेषी यंत्रोंसे असंभव है। देखिये—

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्र तारकम्।
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः॥
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं।
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

क्या ऐसा कोई देश भी इस अनन्त आकाशमें है जहाँ सूर्य, चन्द्रमा, तारे कुछ भी नहीं चमकते; जहां बिजली नहीं चमकती और अग्नि? अग्निका तो प्रश्न ही क्या है? उसीकी ज्योतिसे सभी प्रतिफलन करते हैं, उसकी ज्योतिसे यह अखिल जगत प्रकाशित है।

आधुनिक खगोलविज्ञान क्या ऐसे देशकी भी कल्पना करता है वा कर सकता है जहाँ ऐसी ही अवस्था हो?

यहां सूर्यसे अभिप्रेत है द्रष्टाके ब्रह्मांडका नायक जो स्वयंज्योति है, चन्द्रमासे द्रष्टाके ब्रह्मांडके ग्रहोपग्रह जो प्रतिफलित ज्योति देते हैं, तारकम्से अन्य ब्रह्मांडोंके नायक जो द्रष्टाको दृष्टिगोचर होते हैं, "विद्युतः" से उन अनेक तरहकी बिजलियां जो विश्व रचनामें एलेक्ट्रोन प्रोटन पाजिट्रन, न्यूट्रन तथा फ़ोटोनके नामोंसे उपादान रूप मानी गयी हैं, और अग्निसे वह रासायनिक तेज जो स्थूल पदार्थोंके संयोग-वियोगसे प्रकट होता है।

न तद् भासयते सूर्य्यो न शशांको न पावकः
यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम।

भगवान्का वह धाम जहां ये बिजलियां भी नहीं चमकतीं कहाँ है?

हमारे संसारमें अग्निकी ज्योति तो संयोग-वियोगादि रासायनिक क्रियासे उत्पन्न होती है, उसका मूल उद्गम सूर्य्य ही सिद्ध होता है; परन्तु सूर्य्य तारोंके उत्तापका मूल कहाँ है? विज्ञान नहीं बता सकता। ग्रहों और चन्द्रमाओंमें भी सूर्य्य की ही ज्योति प्रतिफलित होती है। सूर्य्य और तारे प्रचंड उत्तापसे तप्त होनेसे अपने आप चमकते हैं। उन्हींकी ज्योतिसे यह विश्व चमकता है, जिसमें अनन्त अगणित ब्रह्मांड हैं। प्रत्येक ब्रह्मांडका विस्तार बड़ा है। उसका जानना सहज नहीं है। हमारे सौर ब्रह्मांडका व्यास लगभग दस अरब मीलके हो सकता है। हमारा ब्रह्मांड यदि सबसे छोटा मान लिया जाय और इसीके विस्तारके अनुमानसे और ब्रह्मांडोंका विस्तार यदि हम मान लें, तो प्रत्येक ब्रह्मांडका विस्तार कमसे कम दस-दस अरब मील का होगा। लुब्धक हमारे ब्रह्मांडसे सबसे पासका सूर्य्य है। उसकी दूरी हमसे नौ प्रकाशवर्षोंके लगभग है। अर्थात् लगभग पाँच नील मीलोंके है। वह भी हमारे सौर ब्रह्मांड सरीखा ही ब्रह्मांड अनुमित होता है। उस ब्रह्मांड और हमारे ब्रह्मांडके बीचका अन्तराल या अन्तरिक्ष विस्तारमें कमसे कम चार नील मील तो अवश्य होगा। यह विस्तार अपने ब्रह्मांडके विस्तारकी अपेक्षा चार हजार गुनाके लगभग होता है। इस अन्तरिक्षके भीतर न कोई ग्रह है, न तारा है न सूर्य्य है, न चन्द्रमा है। इसके भीतर कोई रासायनिक क्रिया भी संभवतः नहीं हो रही है क्योंकि कोई वस्तु पिंड नहीं है। इसमें आकाश पदार्थ अवश्य है। बिजलियाँ अवश्य होंगी क्योंकि आकाश पदार्थ ही इनका मार्ग है और प्रकाश भी यहाँ ग्रहोंका नहीं तो तारोंका तो दीखता ही है। यहाँ इस प्रकार तारे और बिजलियाँ अवश्य चमकती हैं। अतः यह वह देश नहीं है जिसका वर्णन अभीष्ट है। फिर भी इस विचार से बुद्धि चकराती है कि यदि इस विश्वमें असंख्य ब्रह्मांड इसी तरहके हैं जिनके बीचका अवकाश चार-चार नील मील है, तो हमारे समस्त विश्वका विस्तार कितना होगा? इसपर भी वैज्ञानिकोंने विचार किया है।

५. हमारे विश्वका विस्तार

ऐंस्टैन ने उस विश्वगोलकी त्रिज्याका अनुमान किया है जिसमें चक्कर लगाकर प्रकाश लौट आता है। यही हिन्दू ज्योतिषका खगोल सम्बन्धी प्राचीन अनुमान है। ऐंस्टैनके अनुसार इस विश्वका व्यास $१०^{१६}$ प्रकाशवेग है, अर्थात् $१०^{२१}$के लगभग मीलोंकी संख्या। प्राचीन हिन्दू ज्योतिष खगोलके व्यासकी लम्बाई **"१८ पद्म योजन"** बतलाता है। यदि एक योजन हम १० मीलके बराबर मान ल तो व्यासकी लम्बाई एक शंख अस्सी पद्म मील हुई। सुभीतेके लिये इसे हम लगभग २×१०^{१७} मील मान लेते हैं। इस प्रकार प्राच्य और पाश्चात्य मानोंमें कुछ अन्तर पड़ता है। इस अन्तरके कारण भी स्पष्ट हैं। उनको समझनेके लिये हमें विश्वसम्बन्धी प्राच्य और पाश्चात्य कल्पनाओंपर भी विचार करना चाहिये।

हमारा विश्व वह विशाल नीहारिका है जिसके दो खंडमात्रको हम आकाश-गंगाके रूपमें देखते हैं। प्रकाशकी गति विश्वके भीतर ही मर्य्यादित होती और बाहर न तो जा सकती और न बाहरसे आ सकती तो हम अपने विश्वसे बाहरकी नीहारिकाओंको कदापि देख न सकते। परन्तु आज तो पच्छाहीं ज्योतिर्विद् अपने विशालकाय दूरवीक्षण यंत्रके सहारे अनेक नीहारिकाओंके दर्शन कर सकते हैं। उनके दर्शनसे यह स्पष्ट होता है कि प्रकाशकी गति विश्वोंके बाहर अनेक विश्वोंतक है। यह संभव है कि यह दूरगामी किरणें साधारण प्रकाशकी किरणें न हों। कस्मिकांशु हों। परन्तु जो हो, ऐंस्टैनने जो यह बात मानी है कि प्रकाश इस अनन्त देशमें चक्कर लगाकर लौट आता है, सभी प्रकारकी किरणोंके लिये ठीक नहीं उतरने की। साथ ही यह मान लेना कि विश्व उतना है जितने भर प्रकाशका आवागमन होता है, दो कारणोंसे युक्ति-संगत नहीं है। एक तो यह कि अभीतक प्रकाशकी गतिकी सीमाका ठीक पता नहीं लगाया जा सका है। दूसरे यह कि प्रत्येक नीहारिका यदि एक एक विश्व है, तो प्रकाशकी गति जो अनेक विश्वोंतक विस्तृत है, उसकी सीमा नहीं बतला सकती। जीयनने अनन्त देशकी सीमाका पता लगानेकी कोशिश की,—विश्वकी नहीं,—और अटकल लगायी कि अनन्त देशके गोलाकार विस्तारका व्यास $१०^{२३}$ प्रकाश-वेगके लगभग है। अर्थात् $१०^{२८}$ मील। परन्तु यह अटकल भी अन्तिम नहीं है।*

हमारा विश्व वह विशाल नीहारिका है जिसके दो खंडमात्रको हम आकाशगंगाके रूपमें देखते हैं। ऐसी दूसरी नीहारिका हम देवयानी नक्षत्रमंडलकी ओर देखते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे विश्वसे उस विश्वतक अन्तरालका विस्तार कितना है। दो ब्रह्मांडोंके बीच जितना अवकाश है उसकी अपेक्षा तो अत्यन्त अधिक होगा। दो ब्रह्मांडोंके बीचका अवकाश चार नील मील माननेसे हमारे ब्रह्मांडके विस्तारका ४००० गुना ठहरता है। अतः यदि हम विश्वके विस्तारकी अपेक्षा दो विश्वोंके बीचका अन्तराल ४०००के वर्ग १,६०,००,००० वा एक करोड़ साठ लाख गुना मान लें तो यह अन्तराल ऐन्स्टैनके हिसाबसे १६×१०^{२२} अथवा सोलह हजार संख प्रकाश-वेग ठहरता है। प्रकाशवेग एक लाख छियासी हजार मील है। इस तरह इस अन्तरालका विस्तार ४ नील प्रकाशवर्ष हुआ। इसका अर्थ यह हुआ कि एक विश्वसे दूसरे विश्व तक जानेमें प्रकाशको ५ पद्म वर्ष लग जायँगे।

६. विश्वकी आयु क्या हो सकती है ?

परन्तु विश्वकी आयु क्या है ? कौन कह सकता है ? यदि विश्वकी आयु ५ पद्म प्रकाशवर्षसे कम है तो आज अपने विश्वके झरोखेसे जिन विश्वनीहारिकाओंके हम दर्शन कर रहे हैं, संभव है कि उनका प्रलय वा नाश हुए खरबों बरस बीत गये हों और हम आकाशके चित्रपटपर उनका अतीत ही चित्रित देखते हों ? विश्वोंकी उत्पत्ति, विकास और विनाशकी कहानी तो इस अनन्त आकाशमें चित्रित आज भी देखते हैं और उनकी दूरीका हिसाब लगाकर हम जान सकते हैं कि वह घटना जो हम आज देख रहे हैं, कब घटी। दूसरे विश्वोंका जब हम दर्शन कर सकते हैं तो इतना और भी निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इस विस्तृत ५ पद्म प्रकाशवर्षवाले अन्तरालके भीतर आकाश पदार्थ या ईथर अवश्य होगा जिसके मार्गसे ही प्रकाशकी विद्युत्चुम्बकीय तरंगें हमारी आँखोंतक पहुँचती हैं, चाहे उनके आनेमें ५ पद्मवर्ष ही क्यों न लग जाते हों। इस विशाल अन्तरालमें सूर्य्य, चन्द्र, तारा, अग्निका तो कहीं पता नहीं है। यह कुछ भी देख नहीं पड़ते। विद्युतोंमें विश्वसत्ताकी वस्तुके अभावमें एलेक्ट्रोन, प्रोटोन, पाजिट्रोन, न्यूट्रोन इन चारों विद्युतोंका भी कहीं पता नहीं हो सकता। नीहारीकाकी क्षीरवत् आभा हमारी आँखोंतक जो पहुँचती है वह भी फोटोनके कारण है, अथवा नहीं, यह कहना भी कठिन है। यदि फोटोन ही आदिसे अन्ततक है, तो निश्चय

* मेरी समझमें विश्वका विस्तार और हमारे ज्योतिःशास्त्रके खगोलका व्यास एक ही वस्तु है और वह १८ पद्म योजन है जो २×१०^{१७} मील के लगभग होता है। ऐंस्टैनने अपने विश्वके बाहरकी नीहारिकाओंको, जहाँसे प्रकाश यहाँतक पहुँचता है, सम्मिलित करके विश्वका विस्तार $१०^{२१}$ मीलके लगभग माना है। इस अटकलमें दो विश्वोंके बीचका अन्तर्देश भी शामिल है।
रा० गौ०

ही एक प्रकारकी विद्युत् तो चमकती है। अतः इस अन्तरालमें भी भगवान्का वह धाम, वह स्थान, नहीं है।

७. विश्वोंकी संख्या

विश्वोंकी भी संख्या अनन्त है। विश्वोंके बीचका अन्तरिक्ष या अन्तराल भी अनन्त है। यह सबका सब आकाशके अनन्त देशमें स्थित है। अतः आकाशके इस अनन्त देशके भीतर ही भगवान्का वह परमधाम है, यह कहना संभव नहीं है। और कहा भी है—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि

यह जितने विश्व हैं सबके सब तो एक ही चौथाईमें हैं। तीन चौथाईमें वह धाम है जिसका क्षय नहीं है। अतः जब ये अनन्त विश्व उस अखिल सत्ताके भीतर एक ही चरणमें है, तो क्या भगवान्की त्रिपाद्विभूतिमें वह धाम है? अन्ततः इससे अधिक कल्पना पंगु हो जाती है। इसीलिये हमारी समझमें "तद्धाम परमं मम" उसी त्रिपाद्विभूतिमें हो तो असंगत नहीं है।

आगे चलकर "तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" में धाम शब्दकी अपूर्व व्याख्या हो जाती है। धामन् शब्द ज्योतिके अर्थमें आता है। और उसीकी आभासे सबका आभास है और ज्योतिमात्र उसीकी अनुभा है, यह वाक्य उसी धामके अर्थको प्रकाशित करता है।

८. सर्गांशु क्या परमात्माकी ज्योति है?

आजकल वैज्ञानिकोंको एक विचित्र आभाका पता लगा है। यह आभा अनन्त देशसे अज्ञात मूलसे आती है। इसके सामने सभी बिजलियाँ स्तब्ध हो जाती हैं। इस आभाकी गति अव्याहत है। एक फुट मोटे सीसेके भीतरसे घुसकर यह अपना मार्ग बना लेती है और अक्षुण्ण और अक्षय्य रूपसे प्रवेश करती और निकलती है। अभी हालमें ही इन किरणोंका पता लगा है और इनका अनुशीलन हो रहा है। इनका नाम कास्मिक किरणें सर्गांशु या कस्मिकांशु है। बिजलीसे सबसे बलवती किरण जो निकाली जा सकती है, उससे एक-एक सर्गांशु हजारों गुना बलवान है। कौन कह सकता है कि यह उसी धामन्, उसी तेजसका एक रूप हो जिसकी अनुभासे समस्त ज्योतियोंकी सत्ता है—

"ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः तमसः परमुच्यते"

जिस ज्योतिकी अनन्त उज्ज्वलता और प्रचंडता हमारी असमर्थ चक्षुरिन्द्रियको तमोराशि सी दीखती है, परन्तु वास्तवमें जिसके कारण तमस् वस्तुतः सत्ताहीन है और सचमुच हमारी इन्द्रियकी परिच्छिन्नता और वास्तविक अज्ञानका नाम ही तमस् है।

खगोल की हमारी कल्पना अत्यन्त सीमित है। हमारी आँखें तो जितने प्रकाशको ग्रहण कर सकती हैं, उतनेको ही देखकर हम अपना सारा आकाश और सारा विश्व मान लेते हैं। हम अपने विश्वसे आवृत होनेके कारण अपने विश्वके तारे, अपने ब्रह्मांडके सूर्य्य, अपने पिंडके चन्द्रमा और अपने ही व्योममंडलकी बिजलीके प्रकाशको देखते हैं, और रासायनिक क्रियाओंसे प्राप्त अग्निके भी दर्शन करते हैं। परन्तु अपने विश्वसे बाहर अन्य विश्वोंकी तो कभी कभी झलक सी मिल जाती है, और वह भी दूरबीक्षण यंत्रद्वारा क्षीण सूक्ष्म मेघखंड सदृश। ये नन्हींसी कुंडल्याकार नीहारिकाएं संभवतः हमारे इस विश्वसे कहीं बड़ी हो सकती हैं। इनकी दूरी इतनी है कि नंगी आंखोंतक इनका तेज नहीं पहुँचता। ये असंख्य विश्व इसी अनन्त देशमें एक दूसरेसे अनन्त दूरीपर स्थित हैं। अतः हमारी आंखोंसे दीखनेवाले सूर्य्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्रमंडल, नीहारिका मात्र तक जो हम अपना खगोल मानते हैं वह एक खगोल है। इसी तरहके अनन्त खगोल भी हैं जो एक एक विश्वकी दृश्य देश-कल्पना हैं। खगोलोंकी महत्ता, अनन्तता, अनेकता आजकलके यंत्रोंके सहारे सिद्ध हो गयी है और विज्ञानकी बदौलत हमारी दृष्टि भी संभवतः उसी विस्तारको पहुँच रही है जो अपने प्राचीन ज्योतिष साहित्यके अज्ञानवश बहुत संकुचित हो रही थी।

९—संकल्पमें देशकाल कहनेकी महत्ता

हमारे ऋषियोंने इस भूलने-बिसरनेसे बचनेके लिये अनेक उपाय किये हैं। उन सब उपायोंका उल्लेख तो विषयान्तर होगा परन्तु एक उपाय जो प्रत्येक कर्म्मके आरंभमें उन्होंने बताया है अचूक है और प्रसंगानुकूल है। हिन्दूका प्रत्येक कर्म्म संकल्पसे आरंभ करता है। दुर्भाग्यवश इस विधिको भी हम बिसरा चुके हैं। भासके प्रतिज्ञा यौगंधरायणमें ब्राह्मण यौगन्धरायण जल लेकर अपनी प्रतिज्ञाके लिये संकल्प करता है। केवल कर्म्मकांडमें ही नहीं, किन्तु सभी महत्त्वकी प्रतिज्ञाओंमें जल लेकर दृढ़व्रती संकल्प करता

है और प्रत्येक संकल्पमें "देशकालौ संकीर्त्य" एक मानी हुई विधि है। देशकाल कहे विना संकल्पकी कोई स्थिति नहीं है। देशकालका जबतक ज्ञान न होगा कहनेवाला कहेगा क्या? देशकालका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। हमारी पृथ्वी १७ मील प्रति सेकंडके वेगसे सूर्य्यका परिक्रमण कर रही है, स्वयं अपनी धुरीपर घूमती है, सो अलग। मँडलाती है, सो भी अलग, और सूर्य्यके साथ ही साथ इस विश्वमें १० मील प्रति सेकंडकी गतिसे बढ़ रही है, यह उसकी चौथी गति है। एक क्षण भी एक स्थान पर नहीं रहती। संकल्पको मुखसे निकालते-निकालते हमारी धरती और उसके साथ हम ये चार प्रकारकी भयानक गति करते हुए एक विचित्र वक्र रेखा बनाते चलते हैं, और शायद संकल्पका पूरा उच्चारण करनेके कालमें सैकड़ों मीलकी लम्बाई का एक अद्भुत वर्त्तुल वक्र बना डालते हैं। आकाशके पटपर इस तरह हमारा संकल्प ईथरकी सूक्ष्म स्याहीसे वक्र रूपमें अंकित होता चलता है। अतः हम जो देशकाल संकीर्त्तन करते हैं वह यथार्थ हो, सच्चा हो, उसका वर्णन दृग्गणितके अनुकूल हो, तो उस वक्रका वर्णन सच्चा प्रतीक होगा, अन्यथा जो वक्र इस प्रकार बन रहा है, उसका हमारा वर्णन असत्य होगा। हमारा संकल्प सत्य न होगा। यदि हम सत्य संकल्प होनेके लिये जतन करें तो हमें बिना इस स्वाभाविक घड़ी, इस नक्षत्र-चक्रके ज्ञानके देशकालका पता नहीं लग सकता। आकाशकी यह घड़ी कभी बन्द नहीं होनेकी और सदा सच्चा और ठीक समय बतानेवाली है।

१०, विश्वव्यापी वक्रता

पृथ्वी गोल है, ब्रह्मांड गोल है, विश्व गोल है। सारा आकाश-मंडल गोल है, नक्षत्र-मंडल गोल दीखता है। परन्तु ऐन्स्टैनका कहना है कि देशमात्र गोल है और वस्तु-सत्ताके सान्निध्यमें उसकी वक्रता बढ़ जाती है। देशकी वक्रता हमारी विद्वन्मंडलीको बड़ी अद्भुत बात जँचेगी, परन्तु विश्वमें, इस आकाशमें ईथर और आकर्षणकी व्यर्थता बतलाकर देशकी वक्रताके एक मात्र आधारपर विज्ञानकी सभी गलतियाँ सुलझाकर इस विद्वान्ने गणितका अपेक्षावाद नामक एक नया विभाग ही उत्पन्न कर दिया है जिसने सारे विज्ञान जगत्में उथल-पथल मचा दिया है। उसने दिखाया है कि वस्तुके जैसे दैर्घ्य, वेध और प्रस्थ ये देशके तीन परिमाण हैं, उसी तरह कालावधि वा सत्ता भी वस्तुका ही चौथा परिमाण है। इन चार परिमाणोंमें ही वस्तुमात्रकी स्थिति है। वस्तु क्या है? इन्हीं चारों परिमाणोंका समूह, यह समस्त गोचर अगोचर विश्व। खगोल क्या है? वस्तुका यत्र-तत्र न्यूनाधिक समूहन जो हमें समष्टि रूपमें दीखता है।

११, शाश्वत इतिहासकी अक्षय पोथी

सृष्टिकी समस्त निधि इसी खगोलविद्यामें हैं। हमारी आँखोंके सामने मंथर गतिसे निरन्तर बदलता रहनेवाला यह चित्रपट हमें सृष्टिके भूत, भविष्य और वर्त्तमान तीनों कालोंका विस्तृत इतिहास बताता रहता है। हमारे वैदिक साहित्यमें इस चित्रपटको यथार्थ-रीत्या पढ़नेकी कुंजी है। परन्तु अत्यन्त लम्बे कालके बीत जानेसे इस कुंजीमें मोरचा लग गया है। इसके प्रयोगका ढंग हम भूल गये हैं। पाश्चात्य विज्ञान के चमक-दमकको देखकर हमें अपने उस अद्भुत अतीतकी सुधि आती है जब यह कुंजी चमकीली थी और हम इससे रहस्योंको खोल सकते थे। क्या वह समय फिर न आवेगा जब हम फिर इस कुंजीको काममें ला सकेंगे? हमारी विद्वन्मंडलीका ही यह काम है कि एक बार फिर इस रहस्य महार्णवके मरजीवे बनें और गहरे डूबकर वह मुक्ता और रत्न निकाल लावें जिनसे हमारे पूर्वज मालामाल और निहाल थे।

शायद हमारी अभिलाषा पूरी न हो सके। शायद हमारे प्राचीन साहित्यका मर्म न जाना जा सके। शायद उनके अनेक अंशोंकी तरह विद्यमान अंश भी लुप्त हो जायँ, नष्ट हो जायँ, परन्तु आकाशके ये चित्रपट अनन्त कालतक बराबर उलटते रहेंगे और वे दृश्य जो अनन्त इतिहासके परिचायक हैं दीखते रहेंगे। फिर भी शायद उन आँखोंका कभी फिर प्रादुर्भाव हो सके, जो इन्हें पढ़ सकेंगी, जो इन्हें देख सकेंगी, जो इनका अर्थ लगा सकेंगी, जिनको सत्यके सम्यक् दर्शनका सामर्थ्य होगा और जो फिरसे सारस्वत ऋषिकी तरह बिसराये हुए वेदोंका पुनरनुशीलन-परिशीलन करा सकेंगी, क्योंकि हम भूल बिसर भले ही जायँ पर न तो ये चित्रपट किसीके मिटाये कभी मिट सकेंगे और न इनकी कुंजी अनाद्यन्तवान् वेदोंका कभी विनाश हो सकेगा।

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म।

धार्म्मिक कृत्योंमें सूर्य्य-सिद्धान्त ही प्रमाण है

[ज्यौतिषाचार्य्य पं० बलदेव मिश्रजी, सौर-पंचांगकार]

प्राचीन समयसे इस देशमें दो मतका प्राधान्य है-सौर और ब्राह्म। सौरसे अर्थ है सूर्यसिद्धान्तसंमत और ब्राह्मसे अर्थ है विष्णु धर्मोत्तर पुराणान्तर्गत ब्रह्म सिद्धान्त संमत। घटी, दिनरात, मास, वर्ष, युग, कल्प सबके कारण साक्षात् श्री सूर्यनारायण हैं। उन्होंने अपने मुखसे जिस शास्त्रको कहा है वही सूर्य सिद्धान्त है। इसलिये सूर्यसिद्धान्त ज्यौतिष विषयमें प्रामाण्य है। ज्यौतिषियोंमें प्रख्यात वराहमिहिराचार्यने प्राचीन पाँच सिद्धान्तोंके ऊपर विचार किया है। उसीका नाम पञ्च-सिद्धान्तिका है। उसमें उन्होंने लिखा है "स्पष्टतरः सावित्रः" सूर्यसिद्धान्तको ही सबसे स्पष्ट कहा है। पाँच सौ वर्ष पहले मकरन्द नामके पण्डितने काशीमें सूर्यसिद्धान्तके आधारपर एक सारिणीकी रचना की—

"श्रीसूर्यसिद्धान्तमतेन सम्यक्, विश्वोपकाराय गुरुप्रसादात्।
तिथ्यादिपत्रं वितनोति काश्यामानन्दकन्दो मकरन्दनामा॥"

अभी उत्तर भारतमें बङ्गालसे लेकर पञ्जाबतक इसी सारिणीके आधारपर पञ्चाङ्ग बनते हैं। इससे भी सूर्य सिद्धान्तका ही महत्त्व प्रकाशित होता है। ज्यौतिषशास्त्रमें परमसुकृती पं० कमलाकरभट्टने १५८० शाकेमें सूर्य-सिद्धान्तके आधारपर सिद्धान्ततत्त्वविवेक लिखा है उसमें उन्होंने कहा है "वेद एव रवितन्त्रम्"। सूर्यसिद्धान्त वेद-स्वरूप है। इसमें तर्क करनेकी आवश्यकता नहीं तथा सूर्य सिद्धान्तसंमत ही धर्मकृत्याद्यनुष्ठान करना उचित है। वर्त्तमान समयमें ज्यौतिष-मार्तण्ड म० म० सुधाकर द्विवेदी जीने पञ्चाङ्गके प्रपञ्चमें यही निश्चय किया है कि सूर्य सिद्धान्तसंमत ही सब कृत्य होना चाहिये। इस प्रकार सूर्य-सिद्धान्तकी विशेषता प्राचीन समयसे लेकर अबतक देखनेमें आती है।

ब्राह्ममतका प्रारंभ ब्रह्मसिद्धान्तसे होता है। ब्रह्मसिद्धान्तके आधारपर ब्रह्मगुप्तने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त लिखा है तथा खण्डखाद्य नामका करणग्रन्थ भी बनाया है और ब्रह्मगुप्तके सिद्धान्तके आधारपर भास्कराचार्यने १०७२ शाकेमें सिद्धान्त-शिरोमणिकी रचनाकी है। परन्तु भास्कराचार्य भी अपने मतकी पुष्टिमें सूर्यसिद्धान्तका ही वचन उद्धृत करते हैं। इसलिये ब्राह्ममतपर भी सौरमतका ही प्राधान्य सिद्ध होता है।

कुछ लोगोंका ऐसा आक्षेप है कि प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त वास्तविक सूर्य्यसिद्धान्त नहीं है। यह आपेक्षिक नवीन है। इसमें मुख्य कारण यही बतलाते हैं कि प्रचलित सूर्य-सिद्धान्तमें अयनांशकी चर्चा है। आर्यमत, ब्रह्मगुप्त, लल्लादि सिद्धान्तोंमें अयनांशकी चर्चा नहीं है। अतएव यह नवीन है। तथा वराहमिहिरकी बृहत्संहितापर भट्टोत्पलकी ८८८ शाकेकी टीका है। उसमें सूर्यसिद्धान्तके जो वचन पाये जाते हैं वे प्रचलित सूर्यसिद्धान्तमें नहीं हैं। अतएव यह ग्रन्थ भट्टोत्पलके बादका है। भट्टोत्पलने जिन सूर्यसिद्धान्त वचनोंको उद्धृत किया है वही सूर्यसिद्धान्त प्राचीन है, ऐसा निश्चय नहीं किया जा सकता। और अयनांशकी चर्चा इसमें है यह बात उपलब्धिके ऊपरमें है। अन्य सिद्धान्त-कारोंको उपलब्ध नहीं हुआ होगा क्योंकि जब अयनांशा-भाव रहता है, तथा जब बहुत थोड़ा अयनांश रहता है उस समयमें इसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। जिस प्रचलित सूर्यसिद्धान्तको भास्कराचार्य ऐसे प्रख्यात प्राचीन सिद्धान्त-कार तथा कमलाकर ऐसे ज्यौतिषके प्रधान विद्वान् आर्ष समझें उस ग्रन्थमें संशय करना साहसका कार्य है। वर्त्तमान समयमें प्राप्त सूर्यसिद्धान्तका इतना समादर है कि ज्यौतिषी लोग स्नान पूजा करके इस ग्रन्थका पाठ करते हैं और ग्रहणादि पर्वोंमें इसका पारायण करते हैं। अगर यही बात हो कि प्राचीन सूर्यसिद्धान्त कोई दूसरा था तो जब तक वह ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता तथा उसका प्रामाण्य सिद्ध

इन्दौर ज्योतिःसम्मेलनपर एक विहंगम दृष्टि

[विद्याभूषण पं० दीनानाथशास्त्री चुलैट, वेदार्थ-तत्त्वज्ञ]

१. आरंभ कैसे हुआ

सम्मेलनका कार्यारंभ ता० १८ जनवरी, १९३५को स्वागताध्यक्ष श्रीमन्त किबे साहबकी सहकारितासे हुआ । अमरावतीमें पूज्य मालवीयजीसे भेट करके ज्यो० गोपीनाथ शास्त्रीने उनसे सभापतिपद स्वीकार करनेके लिये प्रार्थना की । आपने स्वीकृति भी दे दी थी, तो भी उनके अस्वास्थ्यके कारण अप्रैल, मई, अगस्त आदिकी तारीखें बदलती गयीं अन्तमें नवंबरके पहले पक्षका निश्चय हुआ । यह सम्मेलन गत नवम्बरकी १० से लेकर १५ तारीखतक लगातार छः दिनोंतक पूज्यमालवीयजीके सभापतित्वमें बड़े ही समारोहके साथ हुआ । विचार-विनिमय-कमेटीका काम तो पहलीसे नवीं नवम्बरतक, पहले ही नव दिनोंतक, बराबर दिन-दिन भर होता रहा कि उद्दिष्ट कार्यकी सफलताके लिये किसका क्या कथन है । इससे सभी समस्याएँ स्थिर हो गयी थीं ।

नहीं होता तब तक इतने दिनोंसे मान्य धर्मकृत्याद्यनुष्ठानमें ग्राह्य इस सूर्यसिद्धान्तमें अन्यथा बुद्धि किसीकी कैसे हो सकती है । गणित ज्यौतिष युक्तिका शास्त्र है, इसमें जितनी सूक्ष्मता हो उतना ही संग्राह्य होता है। सूर्यसिद्धान्तको आर्षग्रन्थ मानकर किसीका यह दावा नहीं हो सकता कि इस ग्रन्थमें कही हुई जितनी बातें हैं सब सूक्ष्मतर हैं। अगर कोई ऐसा कहे तो ज्योतिषियोंमें वह उपहास्य होगा, क्योंकि सूर्यसिद्धान्तमें लिखा है ''तद्वर्गतोदशगुणान्तदं भूपरिधिः स्फुटः'' अर्थात् व्यासवर्गको दशसे गुणाकर मूल लेनेसे परिधि होती है । यह परिधिमान सूक्ष्म नहीं है, इससे सूक्ष्म भास्कराचार्य का परिधिमान है जिन्होंने व्यासको ३९२८ से गुणाकर १२५० से भाग देकर परिधिमान कहा है । एवं ग्रहकी मध्यमाक्रान्तिमें स्पष्टशरका संस्कार करनेसे स्पष्टाक्रान्ति होती है । सूर्यसिद्धान्तमें मध्यमाक्रान्तिमें मध्यमशरका संस्कार कर स्पष्टाक्रान्ति बनायी गयी है जो स्थूल है, एवं अनेक स्थानोंमें सूर्यसिद्धान्तमें कहे हुए प्रकारोंसे अन्य अर्वाचीन सिद्धान्तकारोंके प्रकार ज्यादा सूक्ष्म हैं । इसलिये अन्य सिद्धान्त सूर्यसिद्धान्तकी अपेक्षा विशेष आदरणीय नहीं हो सकता । सूर्यसिद्धान्तमें कहे हुए प्रकारोंका आदर दो दृष्टिसे है । एक तो यह ग्रन्थ अति प्राचीन है साक्षात् सूर्यांशपुरुष मुखोच्चरित है, धर्मकृत्योंके लिये वही उपयुक्त है क्योंकि भारतवासी ऋषि मुनिके वाक्योंको ही धर्म समझते हैं, उनके कहनेके अनुसार कार्य करनेसे ही धर्म होता है । एकादशी तिथिमें उपवास करनेसे धर्म होता है, इसमें ऋषिवाक्य ही प्रामाण्य है । इसलिये सूर्यसिद्धान्तमें लिखी हुई जो बातें हैं उन्हींमें धर्मतत्व है । दूसरी बात यह है कि जितना ही सूक्ष्म विचार किया जाय गणित करनेमें उसमें ज्यादे श्रम होता है ''यद्यत् क्रियालाघवमत्र तन्त्रे, तत्तद्गुरुत्वाय भवोत्कृतीनाम् । क्रियागुरुत्वान्वितरां लघुत्वमहो विचित्रा गणितप्रशक्तिः'' और थोड़ी स्थूलता स्वीकार करनेसे गणित करनेमें श्रम कम होता है । इसीलिये सिद्धान्तग्रन्थोंके साथ-साथ करण-ग्रन्थोंकी उत्पत्ति हुई, जिनमें थोड़ी सी स्थूलता स्वीकारकर गणित प्रकार बतलाया गया है । इसलिये दयालु भगवान् श्रीसूर्यनारायणने कहीं-कहीं स्थूलता स्वीकार कर लोगोंका गणित-क्लेश दूर किया है । जिस विषयमें सूक्ष्मताकी आवश्यकता है वहाँ साक्षात् भगवान् श्रीसूर्यनारायणने कह दिया है कि इन विषयोंमें जितनी सूक्ष्मता हो सके वही ग्रहण करो जिससे दृग्गणितैक्य हो । दृष्टान्तके लिये ग्रहण, ग्रहयुति, श्रृङ्गोन्नति, ग्रहोंके उदयास्त इत्यादि । इस हेतु सूर्यसिद्धान्तमें कहे हुए प्रकारोंके अनुसार ही अपना धार्मिक कृत्य संपादन करना चाहिये । इस विषयको कमलाकरभट्टने स्पष्ट कर दिया है ''अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं यथार्काद्युक्तितः कुरु । गणितं यद्वि दृष्टार्थं तद् दृष्टयुद्भवतः सदा'' अर्थात् अदृष्ट फल तिथि नक्षत्रादि साधनके लिये सूर्यसिद्धान्त प्रकारसे ही काम लेना चाहिये और जिस विषयकी प्रत्यक्षता है यथा ग्रहणोदयास्तादि उसमें जिस प्रकारसे दृग्गणितैक्य हो वही करना चाहिये । अतएव धर्मकृत्याद्यनुष्ठानमें सूर्यसिद्धान्तको ही प्रामाण्य है ।

२. सौ में सत्तानबे विद्वानोंकी रिपोर्ट स्वीकार अपूर्व सफलता

इससे पाँच महीने पहले ही पाँच बरसोंके कामकी रिपोर्टकी दो सौ कापियाँ जून मासमें अभिप्रायार्थ अफ्रिका, गोआ, नेपाल और भारतके प्रमुख विद्वानोंके पास भेज दी गयी थीं, जिसपर उन्होंने अभिप्राय भेजे। उनकी पूरी फाइल प्रस्तुत थी। उनका सार इस पत्रके साथ देते हैं। अभिप्राय १६६ आये, जिनमेंसे छिटापक्षीय श्री० आपटे आदि पाँच अभिप्राय विरोधी हैं, किंतु संतोषकी बात यह है कि रिपोर्टमें गणित आदिकी गलती किसी एक विद्वान्ने नहीं बतायी है। इससे रिपोर्टमें जो ग्रहलाघवको बीज-संस्कार लिखा था वह सब सिद्धांत अकाट्य सिद्ध हो गये। साथ ही श्रीमान् मालवीयजीकी अगाध कृपासे न्यायमंडलकी स्थापना हुई और शुद्ध ग्रहलाघवसे सभी पंचांग बनाये जायँ, और वह इन्दौर मध्यरेखाके हों, यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इससे वर्षमान, अयनांश, अयनगति, आरंभस्थान, यह सब दृग्गणित शुद्ध ग्रहलाघवानुसारी रिपोर्टके अनुसार पास हो गये। इस प्रकार रिपोर्ट अखंडित ही नहीं सर्व-मान्य हो गयी और (पृ० १२-१३) भूमिकामें घोषित किये प्रकारसे न्याय-मंडलकी स्थापना होनेसे पंचांग-शोधनके कार्यकर्ताओंका उत्साह बढ़ गया, क्योंकि सत्यासत्य निर्णय करनेवाली जबाबदार संस्था निर्मित हो गयी है। पूज्य सभापतिके ओजस्वी भाषणसे एवं कार्यकुश-लतासे सम्मेलनको सफलता प्राप्त हो गयी है।

३. किये हुए काम का परिमाण

सम्मेलनके आरंभतक करीब १६०० पत्रव्यवहार हुआ है। १२५ तार दिये गये हैं। लगभग ४० अखबारोंमें लेख प्रतिलेख प्रश्नोत्तर आदि छपे हैं। यह आन्दोलन ८ मासतक सतत और जोरोंसे होता रहा है। बाहरसे पंडितोंके २२ लेख आये हैं। १०-१२ पुस्तकें छपीं उसमें गत सम्मेलनोंकी दो रिपोर्टें भी थीं।

४. उपस्थिति

इस सम्मेलनमें बड़ी संख्यामें दर्शकोंके अतिरिक्त न्याय मंडलके सदस्य ४१, प्रतिनिधि १७६ और ९६ नागरिक सदस्य उपस्थित थे।

५. आय-व्ययका ब्यौरा

सभाकी आय ३७२८।≈) व्यय ३६९२॥।-)॥। हुआ। शेष बचत ३५॥)। है। किंतु कार्यकर्ताओंको पारितोषिक और आगेके कार्यके लिये रु० ४००) की और आवश्यकता है। आगे काम चलानेके लिये जैसे हिन्दी, मराठी साहित्य समितिको श्रीमन्त होलकर सरकारकी प्रतिवर्ष मदद मिला करती है, ऐसी ही मदद इन्दौर पंचांगशोधन समितिको भी मिलनी चाहिये।

श्रीमन्त होल्कर सरकारकी पूर्ण सहायता मिलनेपर ही सम्मेलन सफल हो सका है। रिपोर्टकी २०० कापी बाँटनेमें पोस्टखर्चके लिये रु० १००) तथा पंचांग निर्माणमें रु० ४००) और सम्मेलनको रु० ५००) इस प्रकार कुल रु० १०००) तथा पंडितोंके सत्कारमें रु० ४००) हाऊस होल्डकी तरफसे दिये गये। इस प्रकार कुल रु० १४००) सरकारके खर्च हुए तथा अध्यक्ष आदिका स्वागतखर्च श्रीमन्त सरकारकी तरफसे किया गया। श्रीमन्त महा-राज साहबने स्वयं सहानुभूति प्रगट की।

श्रीमान् माननीय सर बापना साहबकी सूचना मिलने-पर पूज्य मालवीयजीसे सभापतित्व करनेका आग्रह किया गया और आपकी ही सलाहसे सभाका सब काम योग्य रीतिसे किया गया। सभामें रिपोर्टकी मान्यतासे और इन्दौर रेखांशके पंचांग बननेके ठहरावसे जो स्टेटका गौरव बढ़ा है, सो आपकी ही सलाहका फल है।

६. हमारे धन्यवादके पात्र

रावराजा श्रीमान् सेठ सर हुकमचंदजी, वैद्यराज श्रीखयालीरामजी, राज्यभूषण हीरालालजी, राज्यरत्न शिव-सेवकजी तिवारी, श्रीमन्त सरदार किबे साहब, श्रीमान् सेठजी जगन्नाथजी छावड़ीवाले, पंडित मूलचंदजी मऊ, इत्यादिने अविरल प्रयत्न किया है। इसलिये ये लोग ज्योतिर्विदोंके शतशः धन्यवादके पात्र हैं।

दृश्यादृश्यवादनिर्णय

निरयन गणना ही ठीक है

[दैवज्ञ-वाचस्पति श्री दाऊजी दीक्षित]

आजकल पचांग-एकीकरणका आंदोलन इतस्ततः चल रहा है, विशेषकर इन्दौरमें। यह आन्दोलन कार्यमें कहाँतक सफलता प्राप्त करेगा, इसमें सन्देह ही है, कारण पाश्चात्य पद्धतिका अनुसरण करनेवाले विद्वानोंका यह अभिप्राय मालूम होता है कि नवीन परिपाटीसे वेधोपलब्ध सूर्य चन्द्रादिपरसे पंचांग बनाना सम्प्रति कालमें ठीक है, जैसा कि आजकल दक्षिण प्रान्त पूना बम्बई आदिमें केतकी ग्रहगणित आदिसे तिथिपत्र कुछ समयसे बन रहे हैं। ये लोग प्रत्यक्ष गणनाको बड़ी युक्तियोंद्वारा सिद्ध कर रहे हैं और ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं जिसमें भारतीय गणक लोग भी उनकी पद्धतिका अनुगमन करें। भविष्यमें उन लोगोंके विचारमें जो कुछ भी परिवर्तन हो, परन्तु परिवर्तनमें वे लोग महर्षियों तथा आचार्यों द्वारा निर्णीत दृश्यादृश्य-गणना भेदके कारणपर कुछ भी ध्यान न देकर महर्षि तथा आचार्योंके सिद्धान्तोंमें स्थूलत्व दोष देते हैं। यहाँतक कि सूर्यसिद्धान्तादिमें बतलाये हुए वर्षमानमें ८॥ पलका अन्तर बतलाते हैं। उन्हें मालूम होना चाहिये कि सूर्यसिद्धान्तादिमें जो वर्षमान कहा गया है, यह आज भी निरन्तर प्राचीन वेध क्रियासे है, क्योंकि 'अथसमायां भूमाघमीष्टकर्कटकेन त्रिज्यामितांकैरंकितेनेत्यादि' प्राचीन वेध परिपाटीसे सिद्धांतोंमें प्रतिपादित एक सौर वर्षमें सावनदिनादि आज भी उसी तरह उपलब्ध होते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। परन्तु पाश्चात्य पद्धत्यनुयायी विद्वान् नूतन प्रकारसे उपलब्ध एक सौर वर्षमें नूतन सावनदिनादि मानना तथा प्रत्यक्ष गणनाद्वारा ही पंचांग बनाना स्थिर कर चुके हैं। ऐसी दशामें प्रश्न यह होता है कि उक्त पद्धतिसे प्राप्त तिथ्यादि साधन हमारे धर्म-कर्मादिमें समुचित हैं या नहीं। क्योंकि सिद्धान्तकारोंके मतसे तो नलिकादि यंत्रोंसे वेध प्राप्त बीज विशिष्ट ग्रहसे ही पंचांग बनाकर यज्ञादि तथा जातकादि समस्त कार्योंका काल निर्णय करना चाहिये।

ध्यानं ग्रहोपदेशात् बीजं ज्ञात्वा सुदैवज्ञैः।
तत्संस्कृतग्रहेभ्यः कर्तव्यौ निर्णयादेशौ ॥

अन्यच्च—

अनंत सुधारसकरणे विजयलक्ष्मीटीकायाम्—
जीवभौमार्किभोगीन्द्राः बीजदानेन संस्कृताः।
निरन्तराधुना सूर्य-सिद्धान्तादवगम्यते ॥

तत्रैव—

योगो ग्रहाणां ग्रहणं रवीन्द्वोस्तिथेस्तुबीजंग्रहदर्शनंच।
नित्योदयास्तौ खलु खेटभानां युतिश्च तेषां स्वचरोदयास्तौ ॥

अन्यदप्युक्तं सिद्धान्तरत्ने—

प्राचीनादित्यसिद्धान्तात् बीजसंस्कारसंस्कृताः।
धर्मपर्वादिकार्येषु ज्ञेयागणकपुंगवैः ॥

इत्यादि ग्रहगोलज्ञोंके कथनसे ग्रहोंमें समय-समयपर जो कालजन्य शिथिलत्व दोष आते रहते हैं उनके निरसनार्थ बीजसंस्कार कहा गया है। इसलिये बीजसंस्कृत ग्रहोंपरसे ही पंचांग आदि निर्माण कर व्रतयात्रोत्सव जातकादिका निर्णय करना चाहिये।

अपने प्राचीन सिद्धान्तज्ञोंकी कीर्ति स्थिर रखनेके लिये सूर्यसिद्धान्तोपदिष्ट मार्गसे संसाधित ग्रहोंमें कालान्तर-जन्य दोषको निकालकर (अर्थात् बीज-संस्कार देकर) रविचन्द्रादिसे तिथिपत्रादि साधन करना समुचित है। ऐसा न कर पूर्वाचार्योंके कथनकी अवहेलना करते हुए एक नवीन योजना करना कहाँतक न्यायसंगत होगा? बीज-संस्कृत ग्रहोंको ही आचार्योंने भूकेन्द्रीय ग्रह निरन्तर माना है। इसलिये बीजविशिष्ट ग्रह ही पंचांगनिर्णयमें उपयुक्त हैं। इसपर कुछ विद्वानोंका यह कथन हो सकता है कि पृथ्वीके चल होनेपर भी आचार्योंने भूकेन्द्रको स्थिर माना

है और उसीपरसे किया हुआ ग्रहानयन भी स्थिर ही होगा। अतः बीज संस्कार देना अयुक्त होगा। लेकिन ऐसा नहीं है। इसका उत्तर यह है कि भूकम्पादि दैवी उत्पातोंसे भूकेन्द्र भी कभी कभी हिल जाता है इसको भी ग्रहगोलज्ञ भलीभांति जानते थे। उक्तंच सिद्धान्तरत्ने—

प्रचलित केन्द्रः काले भूगर्भस्यापित्वविकृतेन।
भूम्युत्पाताः विविधा अग्निनीरवायुसंवर्षं धूमैश्च॥
उत्पद्यन्ते ग्रहाणां दोषाः कालान्तरेऽपि गत्यादौ।
कारणमेतत्तदाने वीजस्योक्तं महर्षिभिः पूर्वम्॥

अतएव भूकेन्द्रीय ग्रहमें बीज संस्कार देना आवश्यक है। शास्त्रकारोंने इन ग्रहोंकी अदृश्य संज्ञा बतलायी है। इसके अतिरिक्त भूपृष्ठस्थित द्रष्टा सूर्यकेन्द्रोत्पन्न दीर्घवृत्तमें जिस विन्दुमें ग्रहको देखते हैं वह दृश्यग्रह कहलाता है, वह दृग्ग्रह अन्य संस्कारविशिष्ट अन्य कार्योंमें विहित है। अतः बीज-संस्कृत भूकेन्द्रीय ग्रहसे वह दृश्यग्रह विभिन्न बिन्दुमें देख पड़ता है। इसका कारण यह है कि भूपृष्ठ-स्थित द्रष्टाकी दृष्टि भूवायुके गुरुत्वाघातसे ठीक-ठीक लक्ष्यको न पाकर उससे भिन्न स्थलमें पड़ती है। ज्योतिर्वैज्ञानिकोंके मतसे ज्यों-ज्यों पदार्थ पृथ्वीके अति सन्निकट होते जाते हैं त्यों-त्यों उन पदार्थोंमें भूतत्वजन्य गुणदोषकी वृद्धि होती है और ज्यों ज्यों पदार्थ भूमिसे दूर होते जाते हैं त्यों-त्यों उन पदार्थोंमें भूतत्व-संबंधी गुणदोष भी कम होते जाते हैं।* जैसे पृथ्वीसे ऊपर भू आदि सप्तवायु उत्तरोत्तर हैं। उनका जैसे जैसे पृथ्वीसे बिशेष दूर सम्बन्ध होता गया है वैसे वैसे उनमें भूतत्त्वजन्य दोषाभाव होता जाता है। इसलिये 'प्रवह' का वहन सम्यक् निर्मल है और भूवायुका विशेष सम्बन्ध पृथ्वीसे ही है। इसलिये पृथ्वी तत्त्वमें जो गुरुत्व गुण है वह भूवायुमें भी कुछ अंशोंमें संगधर्मसे प्राप्त होता है। इस कारण भूवायुके वहनमें उस गुरुत्वाघातसे वास्तव बिन्दुमें ग्रहको भूपृष्ठस्थित द्रष्टा नहीं देख पाता। किन्तु अन्य बिन्दुओंमें ही देखता है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए हमारे पूर्वाचार्योंने सूर्यसिद्धांतादिमें प्रतिपादित मतको अपनाया है। इत्यादि कारणोंसे बीजसंस्कृत ग्रह धार्मिक जगत्में लेना चाहिये, इससे कोई सायनवादी ज्यौतिषी यह न समझे कि बीज-संस्कृत ग्रह चल (सायन) होते हैं। किन्तु वे शुद्ध भूकेन्द्रीय निरयण ग्रह कहलाते हैं। सायन दुराग्रही गणकोंका विचार सायन मतसे ही पंचांग बनानेका है तथा वे चल संक्रमणसे धर्मादि करनेपर जोर देते हैं, वह सर्वथा अमान्य है। उक्तं च—

तास्तेव पुण्यातिशयं मुनीन्द्राः वशिष्ठमुख्याजगदुर्महान्तः।
सद्युक्तियुक्तं च विलोक्यतेऽतः परं न चैतद्व्यवहारयोग्यम्॥

इन वचनोंसे निरयनगणना ही व्यवहारमें लेना मुख्य है। इसके अनेकानेक प्रमाण हैं जो समय पड़नेपर दिये जा सकते हैं। हमारे सिद्धांतोंसे लाये हुए बीजसंस्कृत सूर्यकी गति और आपके नूतन प्रकारोपलब्ध सूर्यकी गति परस्पर भिन्न होनेसे प्रतिदिन मासादिमें अयनांशका भी भिन्न होना निर्विवाद है। ऐसे ही नूतन यन्त्रादिसे वे वेध-द्वारा सायन चन्द्र आदि ग्रहोंका मदनोच्चपातादि प्राप्त और प्राचीन ग्रंथानुसार निरयणचन्द्रादि मदनोच्च पातादिका अन्तर अयन भोग कल्पनामें भी अनंत दोषापत्ति है।

वस्तुतस्तु वेधोक्त तथा नूतन अन्य संस्कारविशिष्ट ग्रहोंका हमेशा सान्तर होना सम्भव होनेसे सायन गणना व्यवहारमें लेना असंगत ही है। इसलिये हमारे ग्रह-गोलज्ञोंने जो परम्परासे बीजयुक्त निरयण गणना स्वीकार की है, वही ठीक है।

---

* आजकल ऐंस्टैनका सापेक्षवाद भी ऐसी ही बातका समर्थक है। रा० गौ०

पुनर्जन्मको सिद्ध करनेवाला एक दृढ़ प्रमाण

कुमारी शान्ताकी विलक्षण स्मृति

(उषा-सम्पादक पं० जीवनलालजी 'जीवन')

पुनर्जन्म भारतीय दर्शन-शास्त्रोंका एक गहन प्रश्न है। सांख्य, योग, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक और वेदान्तशास्त्रोंके अतिरिक्त स्मृति, पुराण आदि ग्रन्थोंमें भी इसकी विशद चर्चा है। सनातन धर्मके दृष्टि-कोणसे तो "पुनर्जन्म पर विश्वास रखना" आस्तिकताका एक प्रधान लक्षण है। प्रत्येक सनातन-धर्मानुमोदित ग्रन्थने पुनर्जन्मका समर्थन किया है। बौद्ध-धर्मके "दीर्घनिकाय", "मंझिमनिकाय" एवं "विनय-पिटकादि" ग्रन्थोंने भी इस विषयपर अपना मत स्पष्ट किया है और पुनर्जन्मको माना है। परमात्माके दस प्रधान अवतारोंमें गिने जानेवाले भगवान् बुद्धजीने गाथा ग्रन्थोंमें स्वयं अपने १०० बार जन्म लेनेकी बात कही है और अपने अनेक जन्मोंकी कथाएँ बौद्ध भिक्षुओंको सुनायी हैं। जैन-धर्म-प्रवर्त्तक तीर्थङ्करोंने भी पुनर्जन्मको माना है और जैन-धर्म शास्त्रोंमें इसका विवेचन है। सिख धर्मके आदि संस्थापक गुरु नानकजीने भी पुनर्जन्मको सत्य मानकर उसपर अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगा दी है और प्रत्येक सिख गुरु उसका समर्थन करता रहा है। अन्य छोटे-छोटे सम्प्रदाय और मतोंने भी पुनर्जन्मकी सत्यतापर कभी अविश्वास नहीं किया। और इस प्रकार भारतभूमिमें उत्पन्न होकर संसारमें फैलनेवाले प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय, मत और धर्म-ग्रन्थने पुनर्जन्मका होना सिद्ध किया है। अतएव यह सर्वानुमोदित है।

परन्तु कोई यह न समझे कि भारतीय (हिन्दू) अपने धर्मग्रन्थोंसे स्वीकृत इस विषयपर अन्धविश्वास रखते हैं, प्रत्युत भारतमें १०–२० वर्षके अन्तरसे ऐसी अनेक प्रत्यक्ष घटनाएँ होती रहती हैं जिनकी शोधका परिणाम सदैव सच्चा निकलता रहा है और यूरोपके तथा संसारके विभिन्न देशोंमें भी ऐसे सैकड़ों स्त्री-पुरुष जन्म ले चुके हैं जिन्होंने अपने पहिले जन्मके सप्रमाण हालात सुनाकर संसारको चकित कर दिया है और ईसाई धर्म एवं इस्लामके इस अज्ञान-पूर्ण कथनको भारी ठेस पहुँचायी है कि—"पुनर्जन्म नहीं होता।" संसारके धर्मोंमें केवल ईसाई धर्म और इस्लाम ही ऐसे धर्म हैं जो पुनर्जन्मको नहीं मानते, परन्तु बार-बार होनेवाली प्रत्यक्ष घटनाओंने उनको डांवांडोल कर दिया है।

आजका युग प्रत्यक्षवादका समर्थक युग है। किसी धर्म ग्रन्थके शब्दोंपर चलनेवाला युग नहीं। प्रत्यक्षवादका सहायक विज्ञान है और जो विषय विज्ञानसे सिद्ध न हो वह संसारको मान्य नहीं होता। एक दिन वह था जब वैज्ञानिक लोग ईश्वर और पुनर्जन्म दोनोंको नहीं मानते थे; परन्तु विज्ञान अब वहीं नहीं रहा और अधिक आगे बढ़ चुका है। अब वह ईश्वरकी आवश्यकता स्वीकार करने लगा है और पुनर्जन्मपर भी विश्वास करने लगा है। इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटानिकामें वर्णित पुनर्जन्मोंकी सच्ची घटनाओंने वैज्ञानिकोंके विश्वासको भी बदल दिया है और इस प्रकार पुनर्जन्मका प्रश्न अब सर्वानुमोदित हो गया है। केवल एक इस्लाम ही इस विषयमें पीछे है और वह पिछड़ा हुआ ही रहेगा क्योंकि उस धर्ममें आँखोंसे देखकर, बुद्धिसे काम लेकर, कुरानके विरुद्ध अपने दिलमें किसी भावनाको उत्पन्न करना ही कुफ्र है और कुरानमें पुनर्जन्म है ही नहीं। अस्तु !

समय समयपर ऐसे अनेक बालक भारतमें उत्पन्न हो चुके हैं जिन्होंने अपने पूर्वजन्मके हाल सुनाकर संसारको चकित किया है। इधर २०-२५ वर्षमें कोई नयी घटना ऐसी नहीं सुनी गयी थी और पाश्चात्य सभ्यताके अन्धविश्वासी पुनर्जन्मका हास्य उड़ाने लगे थे; परन्तु दिल्लीमें उत्पन्न कुमारी शान्ताकुमारीने प्रत्यक्ष प्रमाण देकर पुनर्जन्मके न माननेवालोंको आश्चर्यचकित कर दिया। शान्ताकुमारीके पूर्वजन्मके समाचार सभी समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। आज हम अपने 'विज्ञान'के पाठकोंके सामने भी शान्ताकुमारीका वर्णन रख रहे हैं।

शान्ताकुमारीका जन्म बाबू रंगबहादुर माथुर (कायस्थ) चीरेख़ाना, दिल्लीके यहाँ सन् १९२६ ई०में हुआ था। शान्ताने जबसे बोलना आरम्भ किया वह कुछ बड़बड़ाया करती थी। वह कहा करती—"मैं चौबन हूँ, मेरा घर मथुरामें है—" इत्यादि। कुछ दिनों तक तो माता-पिताने उसकी इस प्रकारकी बातोंपर कोई ध्यान न दिया परन्तु जैसे-जैसे वह अधिक बोलने लगी और बाल-स्वभावके अनुसार अपने माँ-बाप और साथी बालकोंसे अपने पूर्व जन्मके समाचार कहने लगी वैसे-वैसे प्रायः सभी उसे पागल समझने लगे, और मुहल्ला चीराख़ानाके बालक उसे "चौबन" कह कर चिढ़ाने लगे। किसीने उसकी सत्य बातोंकी ओर ध्यान न दिया। शान्ताकुमारी नौ वर्षकी हो गयी।

गत सन् १९३५ ई० की वर्षा ऋतुमें मुहल्ला छत्ता मदनगोपालमें किसी सज्जनके घर कथा हो रही थी, बाहरसे आये हुए एक पण्डितजी कथाका पाठ करते थे। कथा-श्रवण करनेके विचारसे कुमारी शान्ता भी अपनी माता आदिके साथ वहाँ गयी थी। पण्डितजीको ग़ौरसे देखकर कुमारी शान्ताने अपनी माताको पण्डितजीका नाम बतलाया और कहा कि यही पण्डितजी मथुरामें मेरे घरपर आया करते थे और मैं उनको ख़ूब दान-दक्षिणा दिया करती थी।

कुमारी शान्ताके इन शब्दोंकी परीक्षा लेनेके विचारसे उसके वे शब्द पण्डितजीको सुनाये गये। एक नौ वर्षीया अनजान कन्याके मुखसे अपना नाम सुनकर पण्डितजी बड़े चकित हुए। उन्होंने शान्तासे और भी कुछ प्रश्न किये। पण्डितजीको विश्वास हो गया कि यह कन्या अपने पूर्व-जन्मका हाल जानती है। पण्डितजी द्वारा पूर्वजन्मके पतिका नाम पूछे आनेपर उस अबोध कन्याने कहा कि "मैं पतिका नाम अपने मुखसे न कहूँगी परन्तु लिख दूँगी।" कन्याके इस उत्तरको सुनकर लोग चकित हो गए। कन्याने पेन्सिलसे अपने पूर्व जन्मके पति "पं० केदारनाथ चौबे" का नाम लिख दिया। वास्तवमें वे कथावाचक पण्डित जी, मथुरामें पं० केदारनाथ चौबेके घर बहुधा जाया करते थे और चौबेजीकी स्त्री उनको दान-दक्षिणा देती थी।

पण्डितजीकी प्रेरणासे मथुरावासी पं० केदारनाथ चौबेको एक पत्र लिखा गया और उनको दिल्ली बुलाया गया। इस पत्रके उत्तरमें चौबेजीने लिखा कि पहिले मेरा छोटा भाई कन्यासे मिलेगा और उसके प्रश्नोंका यदि सत्य उत्तर दिया गया तो मैं भी अवश्य आऊंगा। निदान चौबेजीके छोटे भाई कन्या शान्ताकुमारीको देखनेके लिये आये। कुमारी शान्ताने उसे देखते ही कहा कि "यह मेरे देवर हैं।" उसने जो-जो प्रश्न किये उन सबके सही उत्तर शान्ताने दिये। कुछ दिनके बाद ता० ११ नवम्बर १९३५के दिन पण्डित केदारनाथ चौबे अपने पुत्र सहित मथुरासे दिल्ली आये। पण्डितजीको देखते ही कुमारी शान्ताने ठीक उसी तरह अपना मुख छिपानेका प्रयत्न किया जैसा कि भारतीय स्त्रियाँ अपने पतिके सामने लज्जावश किया करती हैं। वह अपने पूर्वजन्मके पतिके चरणोंसे लिपट गयी, अपने पुत्रको गलेसे लगाकर प्यार किया और अपने खेलनेके अच्छे-अच्छे खिलौने, खाने-पीनेकी वस्तुएँ लाकर उसे दीं। पण्डित केदारनाथजीने कुमारी शान्तासे पचासों प्रश्न किये, गली-मोहल्लेके निवासियोंके और रिश्तेदारोंके नाम और हालात पूछे, ऐसे अनेक प्रश्न किये जिनका उत्तर उनकी स्त्री ही जानती थी। पण्डितजीके प्रत्येक प्रश्नका उत्तर कुमारी शान्ताने ठीक-ठीक दिया। पं० केदारनाथजी जब जाने लगे तो कुमारी शान्ता बड़ी विकल हुई और मथुरा चलनेके लिये आग्रह करने लगी।

पं० केदारनाथके चले जानेके पश्चात् दिल्ली शहरके सुप्रतिष्ठित सज्जनोंकी एक समिति इसलिये बनी कि वह शान्ताकुमारीको अपने संग मथुरा ले जाकर उसकी कही हुई बातोंकी ख़ूब तहक़ीक़ात करे। उस कमेटीमें दिल्ली शहरके प्रधान नेता ला० देशबन्धु, पं० नेकीराम शर्मा, बाबू ताराचन्द माथुर एडवोकेट आदि १९ व्यक्ति थे।

कमेटीके मेम्बरोंके साथ कुमारी शान्ताको लेकर शान्ताके पिता बाबू रंगबहादुर भी मथुरा गये। मथुरा जानेके लिये जैसे ही शान्ताकुमारी ट्रेनमें सवार हुई उसका उदास-सा रहनेवाला चेहरा प्रसन्नतासे खिल उठा। जब मथुराका स्टेशन निकट आनेवाला हुआ तब वह प्रत्येक स्थान, पेड़ आदि चिन्होंको बड़े ग़ौरसे देखने लगी और ज्योंही मथुराका स्टेशन आया त्योंही वह—"मथुरा आ गयी मथुरा आगयी"—कह कर प्रफुल्लित हो उठी।

मथुरा स्टेशनपर हजारों स्त्री-पुरुष, कुमारी शान्ताको लेनेके लिये आये थे। इन्हीं आये हुए मनुष्योंमें शान्ताके पूर्व जन्मके जेठ भी थे। उन्होंने आगे बढ़कर शान्तासे

पूछा कि—"क्या मुझे पहिचानती हो।" कुमारी शान्ताने उनके पैर छुए और कहा कि "ये मेरे जेठ हैं।"

स्टेशनसे जब मथुरा शहरकी ओर चलने लगे तब सबसे आगे कुमारी शान्ताका तांगा रक्खा गया था जिसमें लाला देशबन्धुजी, पण्डित नेकीराम शर्मा और बाबू ताराचन्द ऐडवोकेट भी थे। तांगेवालेसे कह दिया गया था कि वह लड़कीके बताये हुए रास्तेपर ही चले और जहाँ वह रुकनेको कहे रुक जाय। कन्याके बताये हुए मार्गपर ही तांगा चलने लगा। पहिले वह सड़क तारकोलसे बनी हुई न थी और हालहीमें नयी बनायी गयी थी। इस परिवर्तनको देखकर कुमारी शान्ताने कहा कि पहिले यह सड़क इतनी अच्छी बनी हुई न थी। सड़कके किनारे बने हुए पुराने मकानों और इमारतोंको भी शान्ताकुमारीने पहिचाना परन्तु जो इमारतें इन ९ वर्षोंके भीतर तैयार हुई थीं उनको उसने नया ही बताया। कुछ देर बाद कुमारी शान्ताने कहा कि "अब 'होली दरवाज़ा' आनेवाला है।" और जब उससे पूछा गया कि "होली दरवाज़ेकी क्या पहिचान है" तब उसने कहा कि "उसपर घड़ी लगी हुई है।" ज्योंही होली दरवाज़ा दिखाई दिया, शान्ता तुरन्त कह उठी—"होली दरवाज़ा यही है, होली दरवाज़ा यही है।"

होली दरवाजेसे तीन-चार सड़कें फूटती हैं। शान्तासे पूछा गया कि अब कहांसे चलें। उसने उत्तर दिया कि "सीधे चले चलो।" ताँगा सीधे रास्तेपर चलने लगा। सड़कके दोनों ओर बने हुए मन्दिरों और इमारतोंको पहिचानकर उसने उनके नाम बताये। अन्तमें उसने ताँगेवालेसे एक गलीमें चलनेको कहा, परन्तु ताँगा वहाँ न रुक सका, और आगे जाकर रुका। इसपर शान्ताने कहा कि "हम अपनी गली पीछे छोड़ आये हैं, उसी गलीमें चलो।" ताँगा लौटाया गया और उसी गलीके सामने सब लोग उतरे। कुमारी शान्ता आगे थी और सब पीछे। अनेक गलियोंके मोड़ पार करती हुई शान्ता अपने पूर्व जन्मके मकानके सामने जा खड़ी हुई और उसने कहा कि—"पहिले यह मकान सफेद पुता हुआ था परन्तु अब पीले रंगसे पोता गया है।" वास्तवमें यह बात भी ठीक थी।

कुमारी शान्ता निर्भय होकर उस मकानमें चली गयी। उसने उस कमरेको भी पहिचाना जिसमें वह रहा करती थी। कुमारी शान्ता कहा करती थी कि 'उसके मकानमें कुँआ है। कुआँ आँगनकी सतहसे मिला हुआ था और अब उसपर पत्थर पाट दिये जानेसे उसका कोई चिन्ह न था। यह पूछनेपर कि 'कुआं कहाँ था' शान्ता ठीक उसी स्थान पर जा खड़ी हुई। पत्थर निकलवाकर देखा गया तो वास्तवमें अबतक कुआँ मौजूद था। उसी समय मथुराके एक सज्जनने कन्यासे पूछा "जाज़रूर" कहाँ है? मथुराकी भाषामें "जाज़रूर" पाखानेको कहते हैं। मथुराके सिवाय यह शब्द कहीं प्रचलित नहीं है। कन्याने तुरन्त एक ओर इशारा करके बताया कि इस मकानका "जाजरूर" यह है।

पश्चात् कन्याको उसके माता-पिताके घर ले जाया गया जहाँ उसने अपने माता-पिता और भाइयोंको पहिचाना। फिर वहाँसे लौटकर ताँगा द्वारकाधीशके मन्दिरके सामनेसे गुज़रा। लड़कीने द्वारकाधीशको प्रणाम किया। जब तांगा विश्रान्ति-घाटकी ओर जाने लगा तो लड़कीने कहा कि 'वहाँ बड़े-बड़े कछुए होंगे। विश्रान्ति-घाट पर पहुँचकर शान्ता ताँगेसे उतर पड़ी और उसने यमुना-जल अपने ऊपर छिड़का। फूल और नारियल यमुनाजीमें चढ़ाया।

इसके पश्चात् शान्ताकुमारीको उसके उस दूसरे मकानमें ले जाया गया जहाँ वह रुपयोंका गड़ा हुआ होना कहा करती थी। उसके बताये हुए स्थानपर खोदे जानेपर रुपये रखनेका बर्तन तो अवश्य मिला, परन्तु उसमें रुपये न थे। किसीने शायद पहिले ही निकाल लिये हों।

कुमारी शान्ता ने अपने पूर्व जन्मके ससुर, जेठ, देवर, भाई, माता-पिता, रिश्तेदार, पड़ोसी और सहेलियों सभीको पहिचाना, और इस प्रकार संसारके सामने भारतीय धर्मों के प्रतिपादित सिद्धान्त और भारतीय अटल विश्वासको प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया।

शुद्ध नाक्षत्र सौर गणनाकी प्रधानता

[ज्यौतिषाचार्य्य विद्याभूषण पंडित दीनानाथ शास्त्री चुलैट]

१. सायनवादसे बहकनेवालोंका भ्रम

इस समय भारतमें जो पंचांग शोधन संबन्धी वाद चला हुआ है उसमें मुख्यतया सायनवाद भी है। इस समय भारतमें कई विद्या विशारदोंकी ऐसी धारणा हो गयी है कि ग्रह लाघवादिके पंचांगमें लिखे ग्रहण एवं युति आदि प्रत्यक्ष चमत्कारोंमें कई घड़ीका अंतर होने लग गया है। बर्जेस, व्हिटेन, थीबो एवं कोलब्रुकने सूर्यसिद्धान्तके और पंचसिद्धांतिकादिके अँग्रेजी भाषान्तर करके एवं मद्रासके पंडित कन्नूपिल्लाई द्वारा भारतीय सिद्धांतोंके बड़े-बड़े कोष्टकोंद्वारा शुद्ध गणितसे उसमें गलती पायी जाती है। इसलिये अब हमें पुरानी ज्योतिष प्रणालीको परित्याग करके सायन तारीखोंके शुद्ध गणितको अंगीकार करना चाहिये। इसीमें हमारे पंचांगोंकी उन्नति है। और उससे भी व्यक्तिगत फायदा है कि नाटिकल आॅलमनाक आदि बने बनाये अँग्रेजी पंचांगपरसे सायनमानकी जंत्रियाँ बनने लग जायँ कि जिसमें हमको कुछ भी परिश्रम करना न पड़े, और रेखांतरके अंक घटाकर अपने पंचांग बना लिये जायँ। उसके द्वारा हम कह सकते हैं, यह देखिये युति, ग्रहण, लोपदर्शन, उदयास्तादि प्रत्यक्ष चमत्कार हमारे मतके ग्रंथ या पंचांगोंसे कैसे बराबर मिलते हैं।' इस प्रकार पाश्चात्य संसारमें अपना गौरव बढ़े। यह अंतरंग उद्देश्य है और यही तो हमारे ज्योतिःशास्त्र और पंचांगकी उन्नति है। यह बहिरंग उद्देश्य बिना परिश्रम सायनके ही अवलंबसे पूरा हो सकता है। ऐसा वे समझते हैं।

लेकिन संस्कृत विद्या-विशारद, धर्मशास्त्र और त्रिस्कंध ज्योतिषके धुरंधर विद्वान् इसे हमारी अवनति समझते हैं। क्योंकि ज्योतिषकी सच्ची उन्नति वेधद्वारा हुई है और पाश्चात्य देशोंमें इसीके आश्रयसे हो रही है। गत ४०० वर्षके पूर्व सब बातें प्रत्यक्ष वेध-गणितसे मिलती थीं। लेकिन अब आजकल उस वेधक्रियाको छोड़नेसे कुछ अंतर पड़ने लग गया है। जो कुछ लिखा है सो सत्य है, आर्षवचनको हम चालन नहीं दे सकते हैं," ऐसी भ्रमपूर्ण बातोंका उसी ग्रंथको चालन देकर दृग्गणितैक्य करनेमें उसी ग्रंथके पंचांग-साधनमें भूल नहीं हो सकती, प्रत्युत उपयोग होते रहनेसे हमारे प्राचीन शोधकी संस्कृति बनी रह सकती है। सायनसे हमारी संस्कृतिकी अपरिमित हानि है।

२. अपनी संस्कृतिकी रक्षा आवश्यक है

भारतमें ज्योतिःशास्त्रकी उत्पत्ति, प्रगति और इसका रक्षण श्रुति-स्मृति-पुराण-धर्मशास्त्रके समन्वयके कारण हुआ है। इसलिए धार्मिक व्रतोपवास, पैतृक श्राद्धतिथि, विवाह यात्रादि, मूहूर्तादि कार्योंके अंदर जो जो बातें देखी जाती हैं उनके लिये उपयोगी पंचांग बनते रहना चाहिये। चाहे उसमें विदेशीय दृक्प्रत्ययकी सूक्ष्मताकी तुलनामें भले ही उन्नति न मानी जाय, किंतु उसीसे हमारे ज्यौतिषका आस्तित्व बना रहता है। और उनमें चालन देकर दृक्प्रत्ययसे मिला लिया जाय तो जो शुद्ध नक्षत्र-पद्धति वैदिककालसे आजतक प्रचलित है उसके आधारसे आज हमें मानव इतिहासका तीन लाख वर्षका कालानुक्रम भी ज्ञात हो सकता है। यह हमारे लिए बड़े गौरवकी बात है।

३. नाक्षत्र वर्षमानकी महत्ता क्यों है ?

सायनकी असमर्थता

सायनके उपयोगमें हमारा विरोध नहीं है। सायनको उपकरण माना जा सकता है। किंतु सायन वर्षमान या उसके आधारका पंचांग नहीं माना जा सकता, क्योंकि वह शास्त्रशुद्ध नहीं है। सूर्यका चक्र, ३६० अंशका भोग, प्रदक्षिणा-कालके भगण दिन, नाक्षत्र वर्षमानमें ही पूर्ण होते हैं। वही वर्षमान शुद्ध कहला सकता है कि चाहे हजारों लाखों वर्ष क्यों न हो जाय आकाशका स्थान-निर्देश नाक्षत्र वर्ष माननेसे अविचल रह सकता है। और वही मान रहना चाहिये क्योंकि उसके द्वारा दूसरे चलित मानके वास्तविक गतिको हम जान सकें। आज जो अयन-वर्ष-गति

५०-२ बतलाते हैं सो मुख्य नाक्षत्रके अंतरसे है। इसी तरह सब ग्रहोंकी मध्यम गति, उच्चपात आदिके मूलांक शुद्ध रह सकते हैं। सायन वर्षमानके मूलांक चाहे आज निश्चित कर लेवें पर दस वर्षमें ही उसमें कालांतर देनेकी आवश्यकता हो जाती है। और जिन स्थिर तारोंके आधार-पर वेध लिये जाते हैं वह सब तारे प्रतिवर्ष प्रतिदिन अब कहाँ हैं (नाटिकल आल्मनाक पृष्ठ ३०२–५२६) यह लिखे बिना वेधका काम नहीं चलता। किंतु यह बात वर्तमानके लिये ही है। दस पाँच हजार वर्ष पहलेके तारोंके संयोग-वियोगके दर्शक प्रमाण उपलब्ध होते हुए भी उसका कालनिश्चय न होनेसे तत्कालीन खगोलिक स्थितिका दृश्य केवल सायनसे हमें मालूम नहीं हो सकता।

उदाहरणके लिये पहले पच्छाहीं खोजको लीजिये। बाबिलोनियाके भूस्तरोंमें मिले हुए कुछ लेख हैं जो कि सेल्यूकिडन कालके १८९ (ईसापूर्व सन् १२४।२३) वर्षमें ऐरु (अप्रैल-मई) महीनेकी २०वीं रातको शुक्र ऊर्ध्व आकाशके पूर्व भागमें दिखाई दिया। उसके ४ गजपर मेषके मस्तक प्रदेशकी पश्चिमकी तारा दिखाई दी थी। इसी वर्षके अबू (जुलाई-अगस्त) मासकी २६वीं रातको मंगल पूर्व आकाशमें दीखा था। उसपर मिथुनके मुखके पश्चिम ओरकी तारा ८ इंचपर थी। इसी वर्षके इसी महीनेके चतुर्थ दिनमें सायंकालके समय बुधका वृषभ राशिमें अस्त हुआ था। सेल्फ वर्ष २०१में तिश्रुतीरिवष्ट-चाह = आश्विन महीनेकी आठवीं रात्रिमें मंगलका उदय तुला राशिमें हुआ। (Astromisches and Babylon सन् १८८९में प्रकाशित।)

दूसरा उदाहरण वाल्मीकि रामायणका है (भाषांतर न देते हुए मूल श्लोक कुछ लिखता हूँ) "त्रिशंकुलोहितांगश्च बृहस्पति बुधावपि ॥ दारुणा सोममभ्येत्य ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः ॥ (अयोध्याकांड ४१-१०) नक्षत्राणिगतार्चींषि ग्रहाश्चगततेजसः ॥ विशाखश्च सधूमाश्च" (तत्रैव पृ. ६३) आरण्यकांडे रामोक्तिः। "एवचैवमृगः श्रीमानृयश्च दिव्यो नभश्चरः ॥ उभावेतौ मृगौदिव्यौ तारामृग महीमृगौ" (४३-३७ पृ. ४५) "रोहिणी शशिनाहीना ग्रहवद्भृष दारुणः ॥ (४६-६) जग्राहरावणः सीतांबुधः खेरोहिणीमिव (४९-१६ पृ. ५३-१)" किष्किन्धा कांडे "बालिसुग्रीव-युद्धस्तु बुधांगारकयोरिव (पृ. ६६ श्लो. १७) दक्षिणां-दिशमभिजिन्नक्षत्रसन्मुखम् (पृ. ६३ श्लो. १५) सुंदरकांडे च ग्रहेणांगारकेणैव पीडितामिवरोहिणीम् (१५-२१) रोहिणी धूमकेतुना (१९-९) (रामयजुर्वेदीये यजुर्वेदो-पनीतश्च ३५-१४) लंकाकांडेच—'उत्तराफल्गुनोह्यद्य श्वस्तु-हस्तेनयोक्ष्यत' (४-५) 'सार्वभौमेन भूतेशो द्रविणाधि-पतिर्यथा' ॥ (४-१९) "उशनाच प्रसन्नार्चिरनुत्वांभार्ग-वोगतः ॥ ब्रह्मराशि विशुद्धश्च शुद्धाश्च परमर्षयः ॥ अर्चिष्मंतः प्रकाशंते ध्रुवंसर्वे प्रदक्षिणं ॥ ४८ ॥ त्रिशंकुर्वि-मलोभाति राजर्षि सपुरोहितः ॥ पितामहः पुरोस्माकं इक्ष्वाकूणां महात्मनां ॥ ४९) विमलेच प्रकाशेते विशाखे निरुपद्रवे ॥ नक्षत्रंपरमस्माकं इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥५०॥ नैर्ऋतं नैर्ऋतानांच नक्षत्रमतिपीड्यते ॥ मूलोमूलवता स्पृष्टो-धूप्यते धूमकेतुना ॥ ५१ ॥ कालेकाल ग्रहीतानां नक्षत्रं ग्रहपीड़ितम् ॥ ५२ ॥ (सर्ग ४ युद्धकांड)"

इसी सिलसिलेमें सूर्यके ऊपरसे शुक्र ग्रहके जाते समय भेद-युति-गणितसे सूर्यके ऊपर काला दाग दिखाई देता है, उसका उल्लेख रामने किया है—"आदित्ये विमले नीलंलक्ष्यं लक्ष्मण दृश्यते ॥ (सर्ग ४.)। इत्यादि। इस प्रकार इसमें ताराग्रह युति कही है। इनमें कुछ प्रत्यक्ष हैं कुछ उपमार्थक हैं। कई कार्योंके तिथिमास ऋतु कहे हैं। पुराणग्रंथोंमें राम तथा कृष्णकी कुंडली कही गयी हैं। जबतक तत्कालीन गणित करके निर्णय न किया जाय तबतक उसे कल्पित नहीं कह सकते।

तीसरा उदाहरण महाभारतका है। उसमें तो अनेक श्लोक उस कालके आकाशकी स्थितिके दर्शक हैं। नक्षत्र-ग्रह-युतिके प्रमाण बहुत हैं। राशिका प्रदेश (३० अंशका) बड़ा होनेसे उसकी युतिके उल्लेख कम मिलते हैं। "ऐन्द्रे-चंद्र समायुक्ते मुहुर्ते भिजिदष्टमे ॥ दिवामध्य गते सूर्य तिथौ पूर्णेतिपूजिते ॥ समृद्धयशसंकुंती सुषाव प्रवरं सुतम्. (आदिपर्व १२१-६) इत्यादि।

* रामायण और महाभारतके प्रसंगमें विद्वान् लेखकने पचासों श्लोक उद्धृत किये हैं। विज्ञानके पाठकोंके सुभीतेके लिये मैंने उदाहरणकी भाँति थोड़े से ही रखे। शेष छोड़ देनेका दायित्व मुझपर है।　　रा० गौ०

४. सायनवादियोंकी भयानक भूलें

इसे सिवाय इन्दौर पंचांग कमेटीकी रिपोर्ट भाग २ पृष्ठ १७८-१८५में वनपर्व अ. २३०के वे श्लोक कहे गये हैं कि जिनका अर्थ ज्यो० शंकर बालकृष्ण दीक्षितको (भारतीय ज्यो. पृ. ११० देखो) नहीं लगा था। यह कथा शतपथ ब्राह्मणमें भी है। उसीसे ली हुई बहुत प्राचीन है। रिपोर्टमें अनेक प्रमाणोंसे इसका काल शक पूर्व ५४, ६९८ बर्षका बताया गया है। दीक्षितजी सायनबादी थे। उसी लिये इन्होंने भारतीय युद्धका काल (भा. ज्यो. पृ. ११९—१२७) शक पूर्व १,५०० बर्षका बताया है और श्री. रा. विसाजी रघुनाथ लेले साहबने शक पूर्व ५,१०६ वर्ष बताते हुए निरयण और सायन, दोनों प्रकारसे एक एक ग्रहकी दो दो स्थितियां बतलायी हैं। लेकिन शुद्ध सूक्ष्म गणितसे यह सब गलत है क्योंकि इनसे भारतोक्त सब ग्रह स्थिति नहीं मिलती। बिना चित्राभिमुख आरंभ-स्थानके उनकी लिखी दोनों पद्धतिसे तारा संख्या भी नहीं मिलती। जैसे हस्तके ५ तारे, विशाखाके २, मृग नक्षत्रके अंतर्गत पुंज (पावक = सोम) जिन्हें तारोंका जत्था कहते हैं, इत्यादि कोई बात नहीं मिलती है। आपने नाक्षत्रसे भिन्न वर्षमान लेकर अयनांश + ९४।५९ बतलाया है। लेकिन वह हानसेन प्रोक्त अयनगति और संस्कार द्वारा चैत्रीयमानसे ७५।२६'।२" शुद्ध अयनांश आता है। उससे आपके गणितमें १९।३३ का अंतर है। झिटासे कहें तो भी शक १८०७ के दृश्य सायनांतर ९७।३४।३५ नाक्षत्रमें मिलानेसे पूर्वोक्त सायन मान ही आता है। अर्थात् रोहिणी (आल्डिबरान्) भोग ४५।५७ में ७५°।२६' अयनांश कम करने पर ३३०।३१=रोहिणी सायन भोग आता है। अर्थात् नक्षत्र ५ घटी ३९ पल २७ कम करने पर पूर्वा भाद्रपदाके चतुर्थ चरणमें आल्डिबरानको सायन भोगके साथ आपका लिखा हुआ सायन गुरु (६।१७।४७) नहीं आता। न निरयण भोगके साथ मिलता है। तथा गुरुको श्रवणमें बतलाया सो नाक्षत्र मानसे उत्तराषाढ़ाके दूसरे चरणमें आता है।

ऐसा ही गलत गणित ज्यो० वेंकटेश बापूजी केतकरने (भा. ज्यो पृ. १२४ में) बताया है। आपने महाभारत कालको शक पूर्व २६६२ में माना है और अयनांश ४ ३।५"७ बताया है। किन्तु शुद्धनाक्षत्र ज्योतिर्गणित (केतकरकेही लिखे) पृ. ८६के अयनगति और संस्कारसे अयनांश + ३९°।२९'।५१" आता है। इसमें चैत्रीय मानसे ४°२७' तथा झीटा मानसे ०।२९ + झीटाकी निजगति संस्कारका अंतर है। उनमें भी निश्चित मतैक्य नहीं है। दीक्षितजी अपने ग्रंथमें उसी भारतके कालकी शकपूर्व १५०० वर्ष, केतकरजी २६६२ वर्ष, लेलेजी ५३०६ वर्ष बतलाकर अशुद्ध (स्थूल) गणिताधारसे नाक्षत्र मानको अनुपयुक्त बतलाना चाहते हैं। जैसे आज सूर्य सिद्धांतीय ग्रहवेधमें नहीं मिलते हुए निरयण माने जाते हैं, उसी तरह आकाशको बिना देखे भारतकालमें भी एक नक्षत्रका नाम दूसरे तीसरे नक्षत्रोंमें देना अयुक्त नहीं समझते। तो प्रश्न होता है कि हस्तके पांच तारेमें द्रोणकी स्थिति, चित्रा स्वातीके बीचमें पापग्रह, आदि उपमा युक्त युतिको वह कैसे समझ सकते हैं।

यदि कहे कि सूर्यसिद्धांतकारने ही निरयण माना है। तो ऐसी बात नहीं है। उनका वर्षमान जिस उद्देश्यसे बड़ा है वह शुद्ध हो सकता है। शुद्ध ३६५।१५।२२।५७, नाक्षत्र वर्षमान करके सब गणित करनेमें ग्रन्थका शोधन होकर उसका दृश्य गणितमें अस्तित्व कायम रह सकता है। इस प्रकारका सुधार करनेसे उपर्युक्त रामायण भारत-कालीन तथा प्रथम उदहरणमें लिखी बाबीलोनियाके आकाशकी स्थिति क्या थी मालूम हो सकता है। इतना ही नहीं। स्थिरप्राय नाक्षत्र वर्षमान, शुद्ध सायन वर्षमानोप-करण एवं परमक्रांतिकी चक्रगति-ज्ञान, तीन साधनोंसे लाखों वर्षका वैदिक याङ्मयका यथार्थ काल मालूम हो सकता है। क्योंकि आकाशमें जो चित्र राशि नक्षत्र विभाग माने गए हैं सो लाखों वर्ष ऐसेके ऐसे रहते आये हैं और उसी आधारपर मेषाकृति मेष अश्वमुखाकृति अश्विनी ऐसे राशि नक्षत्र माने गये हैं। उनपर जब ग्रह प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा, तब उन राशि नक्षत्रों पर ग्रहकी स्थिति बतलायी है।

वस्तुतः आकाशमें जो प्रत्यक्षमें ग्रह और अनंत तारा-गण दीखते हैं वह सब नाक्षत्र हैं। इसलिए नाक्षत्रको ही दृश्य गणित कहना चाहिये। और सायन गणित यंत्रोंके सहारे नापे जानेके कारण अनुमानिक है। किंतु सायनवादी लोग सायनको प्रत्यक्ष, नाक्षत्रको अनुमानिक मानते हैं।

यह बड़ा आश्चर्य है। इतना ही नहीं। सायनवादी तो इतना कह बैठता है कि ज्यौतिषके ग्रंथोंमें सायन माना है! किंतु ऐसा कहना बिल्कुल गलत है। रोमक सिद्धान्त (पांचसिद्धांतिका संग्रहीत) और नित्यानंदकृत सिद्धांतराज इन दो ग्रंथोंके अतिरिक्त कुल भारतीय सिद्धांत ग्रंथों एवं १८ संहिता ग्रंथोंमें भगण कुदिनादिमानोंके द्वारा किसीने भी सायन नहीं कहा है। वरन केंद्रीय भागोंमें स्थूलता आनेसे, प्राचीन सायनसे नव्य सायनके कालांतरके कारण, इसके मान और भी दूर हो गये हैं। इसीलिए नाक्षत्रसे अयन गति ५०.२ है, तो सिद्धांतोंसे अयनगति ५८-७५ आती है। ज्यो० दत्तात्रेय वामन जवखेडकर अपने 'सायन निरयन वाद' नामक पुस्तक (पृष्ठ ३२) में अयन गति ५९.४, ५८.६, ५८.७. ५८.८, ५९.९ और ६० बिकला बराबर कहकर, भरसक किसीका किसीसे जिसमें मेल न हो, ऐसे शुद्ध नाक्षत्रके स्थानमें, याने निरयण मानमें अनेक पक्षभेद पैदा कर दिये हैं। इधर दक्षिण प्रांतीय गोकर्ण निवासी ज्यो. पं. वेंकट रमण शर्माजीने अपनी 'अयन मीमांसा' नामक संस्कृत पुस्तकमें सिर्फ एक विपुव संक्रांति पुण्यकाल मानाहै। कुछ ग्रंथकारोंने नाक्षत्र सक्रांतिके साथ लिखा उसकी ओटमें आपने मुहूर्त-चिंतामणिके संक्रांति प्रकरणके श्लोक 'तथायनांशा खरसाहताश्च स्पष्टार्कगत्या विहिता दिनाद्यैः॥ मेषादितःप्राक्चलसंक्रमास्युः दिनेजपादौ बहुपुण्यदस्ते ॥ ९ ॥ पियूषधारा टीका प्रोक्त आक्षेप तो लिख दिया है, किन्तु "सायन संक्रमस्य सर्वत्र नोपयोगः"का जवाब कुछ भी नहीं दिया है। किंतु सायनमान सर्वथा खंडित कर दिया गया है ।। ऐसेही उसी मुहूर्त ग्रंथमें "नक्षत्राणां तारासंख्यास्वरूपंच" जो लिखा है उसकी क्या गति है? श्रवणको, नीलवर्ण तारेवाले पुंजको, विष्णु देवता मानते आये हैं। जैन देवताओंकी श्रवण नक्षत्रमें प्रतिष्ठा करनी लिखी है। अब मैं पूछता हूँ कि सायन मानसे नंबरवारीका श्रवण नक्षत्र किसे मानते जावें, क्योंकि अयन गतिपरसे संपातका १ नक्षत्र पीछे हटना ९५६ वर्षमें तथा ५८-७५ से साढ़े आठसौ वर्षमें होता है, ऐसेही निरयण वर्षमान ८।३३ पलविपल अधिक होनेसे ५६१४ वर्षमें एक नक्षत्र आगे बढ़ता है। तब इन दोनों चलमानोंसे कभी कोई नक्षत्र न तो आगे स्थिर होता है न एक वाक्यता होती है। न कहीं प्रचार है न कुछ आधार है। लेकिन "वेदमें यों लिखा है, शास्त्रमें त्यों लिखा है," ऐसा लिखकर बेचारे ज्यौतिष शास्त्रसे अनभिज्ञ भोलीभाली जनताको अयुक्त मार्ग बताकर स्वयं भूल रहे हैं।

यदि कहें कि संहिताकारोंने सायनराशि मानी हो, सो भी आधार नहीं है। क्योंकि आकृति पुंजके साथ सभी ग्रहोंके नक्षत्र-चारके सैकड़ों प्रमाण हैं। जैसे "ऐंद्रस्य शीतकिरणो मूलाषाढा द्वायस्य चायातः ॥५॥ दक्षिण पार्श्वेण गतः शशी विशाखाकराश्वयोः पापः ॥ मध्येनतु प्रशस्तः पितृ देव विशाख योश्चापि ॥६॥ षडनागतानि पौष्णा द्वादश रौद्राच्च मध्ययोगीनि ॥ ज्येष्ठाद्या निनवक्षीण्युडुपतिनातीत्य युज्यन्ते ॥७॥ (बृहत्संहितायां चंद्रचारः) ऐसा ही गर्ग संहिता, ब्रह्मगुप्त सिद्धांतमें और सिद्धांतशिरोमणिमें भी लिखा है) भित्वामघां विशाखां भिदन्भौमः ॥९॥ दक्षिणतो रोहिण्यः ॥१०॥ इत्यादि।

इस प्रकार नक्षत्र पुंजके दक्षिण उत्तरमें ग्रहोंकी युतिका शुभाशुभ फल कहा है तथा योगताराके साथ भेदयुति कही है। तब सायन लेनेमें तारासंख्याके एवं तारोंकी रश्मिके अनुसार नक्षत्र देवताओंके नाम निर्देश आदि सब व्यर्थ हो जावेगा। यदि चैत्र वैशाख आदि मास नक्षत्र प्रयुक्त पौर्णिमावाले (योगारूढ) नहीं लिये जायँ तो 'ज्येष्ठ शुक्लाष्टम्यातु नक्षत्रे भगदैवते (बृहत्संहिता २२-२ पृ० १७१) गर्गोक्तसे ज्येष्ठ शुक्ल ८ को पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र, तथा पुराण ग्रंथोक्त भाद्रपद कृष्णाष्टमी रोहिणी नक्षत्रमें कृष्ण जयंती, चैत्र शुक्लाष्टमी पुनर्वसुमें राम जयंती, चित्रामें हनुमत् और नृसिंह जयंती, लक्ष्मी पूजन, विजया दशमी, धनिष्ठाशमी-पूजन, इत्यादि इतिहासपुराणके द्योतक एक वर्षमें करीब १०० व्रत हैं जिनका नक्षत्र देवताओंसे संबंध है, उन सबको उठा देना पड़ेगा। इसका परिणाम यही हो सकता है कि जिस धर्मशास्त्रसे आजतक ज्योतिः शास्त्रका रक्षण हुआ है उसे त्यागनेसे हमारे धर्मशास्त्र और ज्योतिशास्त्रका लोप हो जायगा। इसलिए जब कि हमें आजतक की भारतीय संस्कृतिका रक्षण करना है एवं कालगणितके द्वारा ज्योतिः शास्त्रकी उन्नति करना है, तो शुद्ध नाक्षत्र मानको ही कायम रखना चाहिये, और चैत्रीय अयनांशद्वारा शुद्ध

पंचांगके पाँचों अंग क्या हैं ?

उनका महत्व और उसको शुद्ध रखनेके उपाय

[ज्योतिर्विद प० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस्-सी०, एल्० टी०, विशारद, रायबरेली]

न्दुओंके जितने पर्व, उत्सव और संस्कार हैं सबके समयका निश्चय पंचांगोंके द्वारा होता है। पंचांगके मुख्य अंग पाँच हैं; वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करण।

वार—वारको सभी जानते हैं। इनके नाम सात ग्रहोंके आधारपर रखे गये हैं। रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार और शनिवार। रवि और सोमको आजकलकी वैज्ञानिक परिभाषामें ग्रह नहीं कहते।

तिथि—तिथिसे हमको यह पता लगता है कि चंद्रमा सूर्यसे कितने अंतरपर है। जिस समय सूर्य और चंद्रमा ठीक एक दिशामें रहते हैं उस समय अमावास्या होती है, उस समय दोनोंका अंतर शून्य होता है। जब चंद्रमा सूर्यसे १२ अंश पूर्वकी ओर दूर हो जाता है उस समय प्रतिपदा या परिवा तिथिका अंत होता है और द्वितीया या दूइज लगती है। जिस समय वह २४ अंश दूर हो जाता है उस समय दूइज समाप्त हो जाती है और तृतीया या तीजका आरंभ होता है। इसी प्रकार बारह-बारह अंशके अंतरपर तिथियाँ बदलती हैं। जब चंद्रमा सूर्यसे १८० अंश दूर हो जाता है उस समय पन्द्रहवीं तिथि पूर्णिमा या पूर्णमासीका अंत हो जाता है। उस समय सूर्य चंद्रमा एक दूसरेसे भिन्न दिशामें हो जाते हैं इसीलिए पूर्णमासीके दिन जब सूर्य पच्छिममें अस्त होता रहता है तब चंद्रमा पूर्वमें उदय होता रहता है। अमावससे पूर्णमासी तककी पन्द्रह तिथियोंमें चंद्रमाकी कला बढ़ती हुई देख पड़ती है। इसलिए चंद्रमाके आकारको देखकर भी तिथिका पता स्थूल रूपसे लगाया जा सकता है। इन पन्द्रह तिथियोंकी अवधिको शुक्लपक्ष कहते हैं। पूर्णमासीको चन्द्रमा पूरा गोल देख पड़ता है। इसके बाद चन्द्रमाकी कलाएँ घटने लगती हैं; उसका उदय पूर्वमें सूर्यास्तके बाद होता है और प्रतिदिन उदयका समय

सायनका उपकरण रखना चाहिये। यद्यपि नाटिकल आल्मनाकमें प्रतिवर्ष स्थिर तारोंके विपुवांश क्रांति सायनमानके दिये जाते हैं, सो भूपृष्ठीय उदयास्त लग्न एवं ऋतु परिवर्तनके लिए योग्य है। तथापि उनके नाम नाक्षत्र ही दिये जाते हैं। जैसे आलफाटारस = आल्दिबरान (रोहिणी) बैल = वृषभ राशिका तारा। हुडं नंबर १,२ कामाग्नी = कृत्तिकाके निकटका तारा जिसका उल्लेख 'हेडो अवया" वाजस-संहिता (१३-४५) में भी आया है। कैन्सर = कर्कराशि अक्वारिअस (पानीवाला भिस्ती) कुंभराशि एरिअस मेषराशि, इस तरह १२ राशि और कुल खगोलिक चित्रोंके वही प्राचीन नाम हैं जो वेदोक्त राशियोंके चित्रोंसे ठीक-ठीक मिलते आये हैं। सिर्फ सूर्यचंद्रके कदंब-सूत्रीय भोग शर देते हैं, सो सायन है। आरंभ स्थान संपात होनेसे इनके अंशादि मान ३०-३० के अलग अलग राशि विभागको नहीं बतलाते हुए भी मेषादि नाम दे दिये हैं। यह सायन रूप है। इस प्रकार नाक्षत्र मानको त्यागनेसे प्राचीन इतिहासका लोप हो गया है।

५. उपसंहार

पंचांगका कुल गणित वर्षमान, महीने, तिथि, नक्षत्र आदि दृक्प्रत्यय-शुद्ध सूक्ष्म गणितके नाक्षत्र मानसे करना चाहिये, और चैत्रीय अयनांश और अयनगति द्वारा सायन उपकरणका उपयोग करना चाहिये। इससे प्राचीन परंपरा कायम रहते हुए पंचांगका शोधन हो सकता है।

—:०:—

क्रमानुसार पीछे हटता जाता है। पूर्णमासीके उपरान्त कृष्णपक्षका आरंभ होता है। जब चन्द्रमा सूर्यसे १८० + १२ अंश पूर्वकी ओर दूर हो जाता है तब १६वीं तिथि अथवा कृष्णपक्षकी प्रतिपदा समाप्त होती है और जब १८० + २४ अंश दूर हो जाता है तब १७वीं तिथि अथवा इस पक्षकी द्वितीया समाप्त होती है, इत्यादि। सूर्यसे चंद्रमाका अंतर सदैव सूर्यसे पूर्वकी ओर लिया जाता है। जब यह अंतर ३६० अंशका होता है तब सूर्य और चंद्रमा फिर एक ही दिशामें आ जाते हैं और अमावास्या होती है। इसलिए एक अमावस्यासे दूसरी अमावस्या तकके समयको अमान्त चान्द्रमास और एक पूर्णिमासे दूसरी पूर्णिमातकके समयको पूर्णिमान्त चान्द्रमास कहते हैं। उत्तर भारतमें पूर्णिमान्त चान्द्रमास माना जाता है और दक्षिण भारतमें अमान्त चान्द्रमास। मलमासकी गणना उत्तरभारतमें भी अमान्त चान्द्रमाससे की जाती है। इसीलिए मलमासके बारेमें बहुतसे लोगोंको भ्रम हो जाता है कि पहले महीनेका शुक्लपक्ष और दूसरे महीनेका कृष्णपक्ष क्यों मलमासमें आ जाता है।

नक्षत्र—नक्षत्रसे हमको यह ज्ञात होता है कि चंद्रमा आकाशमें किस स्थानपर है। चंद्रमा, सूर्य, मंगल, बुध इत्यादिके मार्ग प्रायः गोल हैं इसलिए आकाशमें इनके स्थान निश्चय करनेके लिए हमको एक विन्दु ऐसा स्थिर करना पड़ता है जहाँसे सबके स्थानोंकी गणना की जा सके। इस विन्दुको आदि विन्दु कहना चाहिए। इस बातको तो सभी लोग मानते हैं कि यह आदि विन्दु क्रान्तिवृत्तपर होना चाहिए क्योंकि क्रान्तिवृत्त आकाशका वह वृत्त है जिसपर सूर्य वर्षमें एक चक्कर लगाता हुआ देख पड़ता है और इसीके पास चंद्रमा, मंगल, बुध इत्यादि ग्रहोंके भी गोलाकार मार्ग हैं। परन्तु इस बातमें मतभेद है कि वह विन्दु कहाँ माना जाय। क्रान्तिवृत्तका पता आकाशमें उन तारों या नक्षत्रोंसे लगाया जाता है जो इसके आसपास पड़ते हैं। तारोंकी पहचान उनके भिन्न भिन्न समूहोंसे की जाती है जिनसे एक विशेष आकृति बन जाती है। इन तारा-समूहों या नक्षत्रोंके नाम अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी इत्यादि हैं। क्रान्तिवृत्तके इस प्रकार २७ या २८ विभाग किये गये हैं। चन्द्रमा एक दिनमें प्रायः एक नक्षत्र चलता है और पूरे क्रान्तिवृत्तका चक्कर २७ दिन १९ घड़ी १७ पल और ५९ विपलमें अथवा २७ दिन ७ घंटा ४३ मिनट १२ सेकंडमें कर लेता है। इसी कारण क्रान्तिवृत्तके २७ या २८ विभाग किये गये हैं। जैसे चन्द्रमाकी गतिके कारण क्रान्तिवृत्तके २७ या २८ विभाग किये गये हैं वैसे ही चन्द्रमा और सूर्यकी* संयुक्त गतिके कारण इसके १२ विभाग भी किये गये हैं क्योंकि सूर्य जितने कालमें एक चक्कर लगा लेता है उससे लगभग १० दिन पहले ही चन्द्रमाके १३ चक्कर हो जाते हैं जिसमें १२ चान्द्रमास पूरे होते हैं। क्रान्तिवृत्तके इन १२ विभागोंको राशि कहते हैं। एक राशिमें ३० अंश या सवा दो नक्षत्र होते हैं। राशियों और नक्षत्रोंका आदिविन्दु एक ही है।

योग—क्रान्तिवृत्तके आदि विन्दुसे सूर्य और चंद्रमाकी दूरियोंका योग जब १३ अंश २० कला होता है तब पहला योग विष्कम्भ समाप्त होता है। जब आदि विन्दुसे दोनोंकी दूरियोंका योग २६ अंश ४० कला होता है तब प्रीति नामक दूसरा योग समाप्त होता है। इस प्रकार २७ योगोंकी गणनाकी जाती है। योगोंकी गणनामें सूर्य और चंद्रमाकी संयुक्तगतिका उसी तरह विचार किया जाता है जैसे तिथिकी गणनामें उनकी वियोगात्मक गतिका विचार रहता है। हाँ, तिथिकी गणनामें आदि विन्दुका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु योगकी गणनामें आदिविन्दु मुख्य रहता है। आदिविन्दुके भिन्न होनेसे योगोंमें भिन्नता पड़ती है, परन्तु तिथियोंमें नहीं।

करण—कुल करण ११ हैं जिनमें ७ चल हैं और ४ अचल। चल करण आधी-आधी तिथिपर बदलते हैं इसलिए एक चान्द्रमासमें चल करणोंका आठ फेरा पूरा होता है, ४ अचल करण कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके उत्तरार्ध, अमावास्या और शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके पूर्वार्धमें ही होते हैं।

---

* सूर्यकी यह गति उसकी यथार्थ गति नहीं है वरन् प्रत्यक्ष गति है। यथार्थमें पृथ्वी ही सूर्यकी एक परिक्रमा ३६५ दिन १५ घड़ी २२ पल ५७ विपल अथवा ३६५ दिन ६ घंटा ९ मिनट १० सेकंडमें करती है, परन्तु हमको पृथ्वी चलती हुई मालूम नहीं पड़ती वरन् सूर्य ही चलता हुआ देख पड़ता है। इसलिए सुविधाके लिये यही कहा जाता है कि सूर्य चलता है।

यही पाँच बातें पंचांगमें मुख्य होती हैं। इनके सिवा ग्रहोंकी स्थिति तथा पर्व और उत्सवोंकी सूची भी रहती है। विवाह, मुंडन आदिके मुहूर्तोंका निश्चय भी इन्हींके द्वारा किया जाता है। इसलिए अब पाठकोंके समझमें आ गया होगा कि हिन्दू धर्मके माननेवालोंको पंचांगकी कितनी आवश्यकता पड़ती है और यह भी समझमें आ गया होगा कि पंचांगोंकी सारी गणना आकाशमें चलनेवाले सूर्य, चंद्रमा आदि ग्रहोंकी स्थितिपर आश्रित है। इसलिए वही पंचांग शुद्ध कहा जा सकता है जो सूर्य, चन्द्रमा आदिकी स्थिति ठीक-ठीक बतलावे।

अब यह प्रश्न किया जा सकता है कि जब पंचांगकी गणना आकाशमें चलनेवाले सूर्य, चन्द्रमा आदिसे ही की जाती है तब उसके लिए किसी प्रपंच या वादविवादकी क्या आवश्यकता है। सूर्य, चंद्रमा आदिके जो यथार्थ स्थान हों वही पंचांगमें भी दिये जाने चाहिए। स्वाभाविक उत्तर यही है। हमारे ज्योतिष सिद्धान्तके जितने ग्रन्थ हैं उनसे यही सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वाचार्योंने सूर्य, चन्द्रमा आदिके निरीक्षणसे ही उनकी चाल निश्चित की थी और जैसे-जैसे इनकी चालोंमें अंतर देख पड़ने लगा तैसे-तैसे उनमें सुधार भी करते जाते थे। परन्तु लगभग पौने-तीन-सौ वर्ष हुए आचार्य कमलाकरने इस वैज्ञानिक परिपाटीको बिलकुल बदल देनेका प्रस्ताव उपस्थित किया। आपने वसिष्ठ सिद्धान्तके

> इत्थं माण्डव्य सङ्क्षेपादुक्तं शास्त्रं यथोदितम्।
> विस्रस्ती रविचन्द्राद्यैर्भविष्यति युगे युगे॥

श्लोकमें 'विस्रस्ती'की जगह 'विस्तृती' पाठ करके उसका अर्थ ही उलट दिया और यहाँतक लिख डाला कि—

> अदृष्ट फल सिद्ध्यर्थं यथार्कायुक्तितः कुरु।
> गणितं यद्दिदृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवतः सदा॥

मध्यमाधिकार श्लोक ३२६

परन्तु कमलाकरजीके इतना लिखनेपर भी बंबई, राजपूताना आदिके पंचांग बनानेवाले ग्रहलाघव और काशीवाले मकरंद-सारणीके अनुसार ही पंचांग बनाते रहे। ग्रहलाघवमें तो गणेश दैवज्ञने सूर्यसिद्धान्तकी गणनामें बहुत कुछ सुधार कर दिया था। मकरंद सारणीमें भी बीजसंस्कार देकर सूर्यादि ग्रहोंकी चालोंमें पर्याप्त संशोधन कर दिया गया था। इसलिए यह कहनेमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि कमलाकरजीकी बात उनकी पुस्तकमें ही रह गयी थी उसका प्रचार नहीं हो पाया था। उनके श्लोकका प्रचार तो आरंभ हुआ है इसी विक्रम शताब्दीके द्वितीय-पादके अंतमें जब म० म० आचार्य सुधाकर द्विवेदीने सं० १९४७ वि० में अपना पंचांग चलाया।

अब देखना चाहिए कि आचार्य सुधाकर द्विवेदीजी स्वयं सूर्यसिद्धान्तके विषयमें क्या लिखते हैं। 'इसमें संशय नहीं कि आजकल जो प्रचलित सूर्यसिद्धान्त है वह सच्चा सूर्यसिद्धान्त नहीं है।* दूसरी जगह लिखते हैं 'भारतवर्षमें तो आजतक सिद्धान्त ग्रन्थोंमें हिपार्कसकी रीतिसे ग्रहगणना चली आती है।† 'पंचांग विचार'के अंतमें आप लिखते हैं, 'मेरा यही सिद्धान्त है कि जिस-जिस देशमें जिस जिस सिद्धान्तमें मूल मानकर पंचांग बनते चले आ रहे हैं उन्हीं मूलोंपरसे उस-उस देशमें अब भी बनना चाहिए। मूलानुरूपगत करण ग्रन्थोंमें यदि अशुद्धि हो गयी हो तो उसे मूलानुसार शोध डालना चाहिए।

अब पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं कि आचार्य सुधाकरजीके विचार कहाँतक मान्य हो सकते हैं। आप एक जगह यह कहते हैं कि प्रचलित सूर्यसिद्धान्त सच्चा सूर्य-सिद्धान्त नहीं है, दूसरी जगह यह कहते हैं कि जिस-जिस प्रान्तमें जो जो सिद्धान्त प्रचलित हैं उस-उस प्रान्तमें वही ठीक मानकर उन्हींके अनुसार पंचांग बनाये जायँ अर्थात् मद्रास प्रान्तमें आर्यमतानुसार और बम्बई प्रान्तमें ब्रह्म-सिद्धान्तानुसार और उत्तर भारतमें सूर्यसिद्धान्तानुसार। इसका तो यह अर्थ हुआ कि पञ्चाङ्गोंका एकीकरण ही उचित नहीं है। इसी विचारसे आपने काशीमें सूर्यसिद्धान्त-के अनुसार बिना कुछ बीजसंस्कार दिये हुए पंचांग बनाना आरंभ किया। पता नहीं आपके जीवनकालमें उस पंचांगका कितना प्रचार था। परन्तु जबसे हिन्दू विश्वविद्यालयकी छापके साथ 'विश्वपञ्चाङ्ग'का अविर्भाव हुआ तबसे आचार्य सुधाकरजीकी प्रणाली अधिक चालू हो गयी। विश्वपंचांगमें तिथि, नक्षत्र और ग्रहोंकी गणना निर्बीज सूर्यसिद्धान्तके अनुसार होती है और ग्रहण, युति और ग्रहोदय, ग्रहास्त

* देखो पञ्चाङ्ग विचार पृ० ४८ † पृष्ठ ११

आदिका गणित नाटिकल अलमैनेकके आधारपर किया जाता है। ग्रहोंकी गणनामें वेधसिद्ध गणनासे बहुत अंतर पड़ जाता है। जिस समय शुक्र पच्छिममें अस्त और पूर्वमें उदय होता है उस समय तो विश्वपंचांगमें इसका जो स्थान दिया रहता है उससे पन्द्रह-पन्द्रह अंशके अंतरपर वह देख पड़ता है। बृहस्पति और शनिके स्पष्ट स्थानोंमें भी ५ या ६ अंशका अंतर देख पड़ता है। परन्तु इस पंचांगके विद्वान् सम्पादक इसीको ठीक समझते हैं, यद्यपि प्राचीन आचार्योंका ऐसा मत नहीं था जैसा कि विश्वपंचांगके सम्पादकोंका है। यदि ऐसा मत होता कि सूर्यसिद्धान्तके गणितमें कोई हेर-फेर नहीं हो सकता तो मकरंद सारणीके कर्ता बीज संस्कार क्यों देते; और गणेश दैवज्ञ ग्रहलाघवमें क्यों बतलाते कि—

सौरोर्कोपि विधूच्चमङ्क कलिकोनाऽब्जो गुरुस्त्वार्यजो
ऽसृग्राह्व च कुजं ज्ञकेन्द्रकमथार्येसेषुभागः शनिः।
शोक्रं कन्द्रमजार्यमध्यगमितीमे यान्ति दृक्तुल्यतां।
सिद्धेस्तैरिह पर्व धर्म नयसत्कार्यादिकं त्वादिशेत् ॥*

और इसकी टीका करते हुए आचार्य मल्लारि सं० १६८२ वि०में क्यों लिखते—

"...इति तेभ्यः पक्षेभ्याः साधिता इमे ग्रहाः दृशि तुल्यतां दृग्गणितैक्यं यान्ति'''इहास्मिन् ग्रन्थे सिद्धैस्तैर्ग्रहैः पर्व धर्म नयसत्कार्यादिकमादिशेत्। पर्व ग्रहण धर्म्मो यज्ञानुष्ठानैकादशी व्रतादिकम्'''सत्कार्यं शुभं कार्यं व्रतबन्धादि· विवाहादि। एभ्यो ग्रन्थेभ्य एतदुत्पन्न तिथ्यादेरेवादिशेत् अयं भावः। यतो यस्मिन् यस्मिन् काले यद्यद् दृग्गणितैक्यकृत्तदेवग्राह्यं घटमानत्वात्।"†

गणेश दैवज्ञके पिता आचार्य केशवने उनसे भी पहले लिख दिया था—

कथमपि यदिदं चेद् भूरि कालेश्लथस्यान्
मुहुरपि परिलक्ष्येन्दु ग्रहाघृक्षयोगम्।
सदमल गुरु तुल्य प्राप्त बुद्धि प्रकाशेः
कथित सदुपपत्त्या शुद्धिकेन्द्रे प्रचाल्ये ॥‡

इतना ही नहीं आचार्य कमलाकरने ही अपने ग्रन्थ सिद्धान्त-तत्वविवेकमें बतलाया है कि लेखकोंके प्रमादसे सूर्यसिद्धान्तके गणितमें कुछ अंतर हो गया है और बतलाया है कि सूर्यकी मन्द परिधि या मन्दफल क्या लेना चाहिए।*

इन सब अवतरणोंसे सिद्ध होता है कि प्राचीन आचार्योंको सूर्य चंद्रमा आदिके गणितको शुद्ध रखनेके लिए वेधोपलब्ध प्रमाण ही मान्य था और किसी ज्योतिष ग्रन्थके प्रमाणको वे तभी मान्य समझते थे जब उसमें दृक्सिद्ध गणितसे कोई अंतर न हो। हर्षकी बात है कि भारतवर्षके सभी विद्वान् आचार्य सुधाकर द्विवेदी अथवा उनकी परिपाटीपर चलनेवाले विश्वपंचांगके सम्पादक महोदयके मतको नहीं मानते। महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्तके विद्वान् प्रायः सब यह मानते हैं कि भारतीय ज्योतिष सिद्धान्तको शुद्ध रखनेके लिए अर्वाचीन ज्योतिष सिद्धान्तकी सहायता लेनेकी आवश्यकता है। वहां ऐसे कई पंचांग बनते हैं जो संशोधनके समर्थक हैं। वेंकटेश बापू केतकरका केतकी पंचांग, लोकमान्य तिलकका चलाया हुआ पटवर्धनीय पंचांग आदि इसके उदाहरण हैं। वहाँ यदि मतभेद है तो इस बातमें कि राशिचक्रका आरम्भस्थान क्या माना जाय, अयनांश क्या हो, अयनगति क्या मानी जाय और सौर वर्षका मान क्या हो। इसी बातके विचारके लिए वहाँ कई सम्मेलन हुए परन्तु कोई एकमत सबको मान्य नहीं हुआ।

राशिचक्रके आरंभ स्थानमें मतभेद होनेके कारण महाराष्ट्र प्रान्तमें मलमासोंका बड़ा झगड़ा पड़ता है, कोई आषाढ़ मासको मलमास मानता है तो कोई वैशाख या भाद्रपद मासको, जिससे व्यवहारों और पर्वोंके निश्चय करनेमें लोगोंको बड़ी असुविधा होती है।

उत्तर भारतमें इसकी चर्चा आचार्य बापूदेव शास्त्रीजीने चलायी थी और नवीन पद्धतिसे पंचांग बनानेकी परिपाटी भी चलायी थी, परन्तु उसका प्रचार अधिक नहीं हुआ।

इन्हीं सब बातोंपर विचार करनेके लिए इन्दौर सर-

---

* ग्रहलाघव मध्यमाधिकार श्लोक १६,

† वही ग्रहलाघव आचार्य सुधाकर द्विवेदीद्वारा सम्पादित।

‡ म० म० आचार्य सुधाकर द्विवेदी सम्पादित गणकतरंगिणी पृष्ठ ६३।

* सिद्धान्त-तत्व-विवेक, स्पष्टाधिकार, श्लोक २११-२२५।

ज्योतिर्विज्ञानमें भारत किसीका ऋणी नहीं है

बाबुल और यूनानसे हमारा ज्योतिष कहीं प्राचीन है

[ज्यौतिषाचार्य्य पं० दीनानाथशास्त्रीका महत्त्वपूर्ण व्याख्यान]

[इंदौरके अखिल भारतीय ज्योतिषसम्मेलनकी अन्तिम बैठकमें सायनवादी ज्योतिषियोंने कहा कि भारतीय ज्योतिष यूनान और बाबुलकी संस्कृतियोंका ऋणी है। राशिचक्र दिनोंके नाम और विभाग एवं गणित और ज्योतिषकी अनेक बातें हमने विदेशियोंसे सीखी हैं। आज भी सायनवाद विदेशियोंसे गृहणीय है। इसपर विद्याभूषण पं० दीनानाथशास्त्रीने उत्तरपक्षमें जो व्याख्यान दिया, वह उक्त सम्मेलनका सबसे अधिक महत्त्वशाली, विद्वत्तापूर्ण, रोचक, और प्रमाणपुष्ट भाषण था। उसका सारांश यहाँ हम विज्ञान पाठकोंके लाभार्थ देनेका लोभ संवरण नहीं कर सकते। रा० गौ०]

१. उपक्रम। ऋतु और मासोंका पता

मेरे पूर्व वक्ता सायनवादी और क्षिटावादियोंने जो प्रमाण बतलाये वह मौलिक या नये नहीं हैं। ज्यो० दीक्षित आदिके ग्रंथोक्त एवं सायन पंचांगोंकी प्रस्तावनासे उद्धृत और हमारे बनाये वेदकालनिर्णय, युगपरिवर्त्तन तथा रिपोर्ट और प्रकाशित लेखोंमें बार-बार मिले हुए हैं। वेदमें नक्षत्र ज्योतिष और खगोलविज्ञान भरा हुआ है। श्रीमन्त इन्दौर सरकारके कृपा प्रसादसे बने हुए यह दो माडेल हैं। (सब दिखलाते हुए) देखिये इस नकशेमें क्रांतिवृत्तके मध्य भागमें चित्रा = त्वाष्ट्र इंद्र, स्वाती = सरस्वती वाग्देवी, और भूतप (बुटिज) पुंजके मध्यके तारेसे उत्तर कदंबको छेदकर आरंभ स्थानपर रेखा जाती है। यही आरंभ स्थान है। इसी चित्राभिमुखबिन्दुसे चला हुआ सूर्य फिरसे वहीं आवे वही नाक्षत्र सौरवर्ष है। इस संबंधमें वेदमें कहा है कि "ऋतून् यजे ऋतु पतीन् आर्तवान् उत हायनान्॥ समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतयेयजे॥१॥ ऋतुभ्यसवा आर्तवेभ्यः मास्भ्यः संवत्सरेभ्यः॥ धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे॥२॥ (अथर्वसंहिता ३-१०-९-१०)" इसमें धाता विधाता = चित्रास्वाती युक्त भूतप पुंजकी समृद्धिसे तथा ऋतुपति २७ नक्षत्र देवताओंसे आर्तव और हायनिक दोनों प्रकारके ऋतु, मास, संवत्सर आदि कहे हैं। "चंद्रमाषढ्ढोतास ऋतून्कल्पयति॥ पूर्वापरं ऋतूरन्योविदधज्जायते पुनः" मंत्रोंमें चान्द्र ऋतुएँ भी कही गयीं है जो कि "हे हे चित्रादि ताराणां परिपूर्णेन्दु संगमे॥ मासाश्चैत्रादयोज्ञेयाः पंचाद्रि दशमास्तृकैः॥ पौर्णिमासमें चित्रा युक्त चैत्र, इसी तरह विशाखासे वैशाख, ज्येष्ठासे ज्येष्ठ आषाढ़ासे आषाढ़, इसी तरह श्रविष्ठा, भाद्रपदा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशीर्ष, पुष्य, मघा, फाल्गुनीसे श्रावणादि चान्द्रमास अभीतक चित्रादिके अन्वर्थक कहाते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें चित्राके आगे पीछे ऋत सत्य नामक पुंज कहे हैं। ऋतं च सत्यंचाभीद्धात्तपसः अधि संवत्सरो अजायत॥४॥ × धाता यथापूर्व मकल्पयत्॥ इस ऋक् मन्त्रमें ऋत सत्य पुंजांतर्गत चित्राधातासे संवत्सरका चक्रभोगपूर्ण होना कहा है।

कारने कई वर्ष हुए पंचांग-संशोधन-कमेटीका निर्माण किया था और इस कमेटीका सभापति पं० दीनानाथशास्त्री चुलैटको बनाया था, जिन्होंने ५,६ वर्षतक लगातार परिश्रम करके इन्दौर-पंचांग-शोधन-कमेटीकी रिपोर्ट दो भागोंमें तैयारकी है जिसकी चर्चा अन्यत्र की गयी है। इसी रिपोर्टके परिणामोंको निश्चय करनेके लिए गत कार्तिक मासमें इंदौरमें ज्योतिष सम्मेलनका आयोजन किया गया था जिसमें जो प्रस्ताव पास हुए हैं वे अन्यत्र दिये गये हैं।

यही शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षमान है। सायनमें अयन गतिसे कम और केंद्रीयमें उच्च गतिसे अधिक भाग आ जानेसे वह संमिश्रमानके उपकरण कहा सकते हैं, सौर वर्ष नहीं। क्योंकि उसमें चक्र भोग ३६०° शुद्ध नहीं रहता है। स्थिर नक्षत्रोंसे ही सायनका चरममान निर्धारित होता है। इतना ही नहीं, कालनिर्णयमें भी उसका उपयोग हो सकता है। जैसे सहयोगी भाईने षडशीतिका नाम तो कह दिया किंतु यह क्या बात है और कब प्रचलित हुई थी, यह मैं स्पष्ट करके बतलाता हूँ।

२. "छियासी" संख्याकी खोज

पौलिश सिद्धान्त [शक पूर्व ६३३६ वर्ष] में इसका उल्लेख यों है—

"शेष तुलादौ विषुवत् षडशीति मुखं तुलादि भागेषु।
षडशीतिमुखेषुरवेः पितृ दिवसायेऽवशेषाः स्युः॥१॥
षडशीति मुखं कन्या चतुर्दशेऽष्टादशे च मिथुनस्य।
मीनस्य द्वाविंशेषड्विंशे कार्मुकस्यांशे ॥ २ ॥
उदगपमं मकरादौ चैत्रक शरदादयश्च सूर्य वशात्।
द्विभवनकाल समानं दक्षिणमपमंच कर्कटकात् ॥३॥
(पंचसि०)

(पंचसिद्धांतिका ३-६०) इसका अर्थ निम्नलिखित कोष्ठकसे स्पष्ट होता है।

अयन, अपम, संक्रमण	सूर्यकी राशि औरअंश	षडशीति प्रमाण	महीने और आरंभ
वसंत विषुवदिन =	तुला वृश्चिक धन ८।२६	८६ + ४ = ९०	आश्वि. का. मार्ग०कृष्ण १२
उत्तर परमक्रांति दिन =	मकर कुंभ मीन ११।२२	१७२ + ८ = १८०	पौष मा. फा. कृ. ८
शरद्विषुव दिन =	मेष वृषभ मिथुन २।१८	२५८ + १२ = २७०	चै. वै. ज्ये. कृ. ४
दक्षिण परमक्रांति दिन =	कर्क सिंह कन्या ५।१४	३४४ + १६ = ३६०	आ. श्रा. भा. शु. १५

पाठका संशोधन निम्नलिखित तुलनात्मक कोष्ठकसे ज्ञात होगा।

पंचसिद्धांतिका	पुस्तकोक्त अशुद्ध पाठ	संशोधित शुद्ध पाठ	संशोधकका नाम
पृष्ठ २० श्लोक १०	मेखोदय काल समे	शेषोदय काल समे	म० म० पं० द्विवेदी १
१५१ ६१	मेख तुलादौ विषुवत्	शेष तुलादौ विषुवत्	१ चुलैट शास्त्री
१४ २१	अयनोन युताऽक्षज्यां	अपमोनयुनाऽक्षज्यां	म० म० पं० द्विवेदी २
३८ १०	इष्टे हनि बुध्यायन	इष्टे हनिबुध्वापम	,, द्विवेदी ३
४० २४	अयनांशर्कांक तुल्या	अपमांशर्कांक तुल्यां	,, द्विवेदी ४
१५२ ६३	उदगयनं मकरादौ	उदगपमं मकरादौ	२ चुलैटशास्त्री
प्रस्तुत श्लोक ६०	वृत्तक शिशिरादयश्च	चैत्रक शरदादयश्च	३ चुलैटशास्त्री
से ६३ तक	दक्षिण मयनं च	दक्षिण मपमं च	४ चुलैटशास्त्री

इसी षडशीतिके प्रचारके द्योतक और भी प्राचीन वचन निर्णयसिंधु आदिमें संग्रहीत उपलब्ध होते हैं। "षडशीत्याख्यं तुलामेषयोः ॥ प्रोक्तं तद्विषुवं झषेयन मुदक् कन्यागते दक्षिणम् (समाप्यत इति शेषः)"—दीपिकामें ऐसा लिखा है। इससे स्पष्ट होता है कि शकपूर्व १५,००० वर्ष हुए जब आश्विनके आरंभमें चित्रा नक्षत्रपर वसंत संपात होता रहा है, तब पितृयानके शेष दिनोंमें भाद्रपद शुद्ध १५ से अमावास्या पर्यंत १६ दिनमें (अन्तिम पक्ष) पितरोंके श्राद्ध दिन माननेकी प्रथा शुरू हुई। यह आश्विन मास नाक्षत्र है। षडशीतिके ८६ दिनके राशि अंशादि अर्थसे श्राद्ध दिन उपपन्न होते हैं। म० म० पं० सुधाकर द्विवेदीजीको इसका तात्पर्यार्थ मालूम न हुआ, इसीलिये वे ऐसे

महत्वके श्लोकोंका अर्थ नहीं कर सकते थे। खैर, इससे भी नाक्षत्र वर्षमान और सायन उपकरण लेना ही सिद्ध होता है। सूर्यसिद्धांतमें भी "अयनाभिदाः। तत्संस्कृताग्रहात् क्रांतिच्छाया चरदलादिकम्" सायनोपकरणके कार्य और भ (नक्षत्र) गण (प्रदक्षिणा) काल अलग कहा है।

३. मेषादि राशियोंका पता

वेदकालीन काल-ज्ञान-दर्शक सुपर्णचिति आदि पंचांग ईंटोंके बनाये जाते थे। एक एक वर्षमें उसीपर इष्टकोपधान [चिति-चयन] पीढ़ियोंतक करते रहनेसे हजार स्तरकी चिति सहस्र संवत्सर यज्ञसे ही पूर्ण होती थी। "प्रत्यक्षाहि श्रुतयः श्रौतेषु प्रवर्तंते स्मार्तेषु स्मरणं" यह कर्काचार्यका कथन श्रौतस्मार्त विधिका दर्शक और शुद्ध नाक्षत्र दृश्य पंचांगका समर्थक प्रचलित है। वसंत शारद विषुवदिनोंमें जौ-चावलका होम उत्तरायण दक्षिणायनका दर्शक है। २७ नक्षत्र देवताओंके उदयास्त लंघन दृश्यके द्योतक "मित्रस्य वरुणस्याग्नेः" अनुराधा शततारका कृत्तिका, "विश्वेदेवा अदितिः" उत्तराषाढा पुनर्वसु, "स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः॥ स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टिनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु॥" मरुत्वान् इन्द्र चित्राके सन्मुख पूषा रेवतीके मध्यमें उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, पुष्यके सन्मुख श्रवण नक्षत्र देवताओंकी प्रार्थना की गयी है। "वायवस्य देवोवः सविता" वाजस संहिताके आरंभमें हस्त स्वातीके मध्यके चित्रा देवकी प्रार्थना कही है। "द्वादशारं बवर्तिचक्रं" "सचंतयदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवोऽरामविंदन्" इन ऋचाओंमें बारह राशीकी अराओंका आरंभ चित्राभिमुख बिन्दुरूप आरंभ स्थानपर सूर्यके आरेपर कहा है। "नक्षत्राणि रूपं अश्विनौव्यात्तम्" "त्वष्ट्रारूपाणामधिपतिः" याजुष मंत्रोंमें नक्षत्रोंके रूप विभागको निश्चित करनेवाला अश्विनी मेषारंभ स्थानका दर्शक चित्रा तारा कहा है। प्रचारमें भी "चित्राणि साकं दिविरोचनानि" "यथा-पृथिव्याश्चित्राणि देव ग्रहाणि वा नक्षत्राणि" चित्रासे ही चित्र (आकृति विशेष) नकशे, चैत्रादि मास नाम अन्वर्थक प्रचलित हैं। सारांश, क्रांतिवृत्तमें चित्राके सिवा दूसरा कोई तेजस्वी तारा ही नहीं है। अतएव वैदिक कालसे आज तक शुद्ध नाक्षत्रमान और राशि चक्र चित्रा तारेसे ही परिगणित होते आये हैं।

मेरे पूर्व वक्ता भाईने कहा कि "राशि और वार ग्रीक और बाबिलोनियासे भारतमें आये हैं" ऐसा ही सब आधुनिक विद्वान् कहते हैं और ज्ञानकोशादि ग्रंथोंमें ऐसा लिखा भी है। लेकिन यह सब बात गलत है। राशियोंके खगोलके और नक्षत्रोंके हजारों मंत्र और वर्णन चारों वेद ब्राह्मण, भारत, रामायण पुराणोंमें मौजूद हैं। उन्हींकी छन्दावस्था खाल्डियन लेख, प्राचीन दन्तकथाओंमें एवं संसारके धार्मिक ग्रंथोंमें चर्चा है। सायन वक्ता भाईने "मकर राशि पश्चिमः" जो कहा है सो वर्णनद्रेष्काण संबंधका है। (नकशा देखिये)। राशि संबंधका वर्णन "मकरो मृगास्यः" जैसा है वैसा ही वेदमें कहा है "यदक्रंदः प्रथमं जायमान उद्यन्समुद्रादुतवापुरीषात्॥ श्येनस्यपक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महिजातंते अर्वन्॥" (ऋ. सं० २-३-११) "अक्रंद [शब्द न करनेवाली, जलचर] मकर राशि पूर्वाषाढा जल देवता शततारका समुद्र देवताके बीचमें फैली हुई भी है, किंतु ऊपर गरुडके पंख और हरिण मुख युक्त दो बाहूके भूचरके चिन्ह जलचरको लगे हुए शोभा देते हैं।" इसी तरह "नृमिथुनं सगदं सवीणं" के संबंधमें "भरते फेनमूदन्॥...अंजशी कुलशी वीर पत्नी पयोहिन्वा-नाउद्भिर्भरन्ते॥ (ऋ० सं० १-७-१८) भरत (ओरायन) पुंजके निकटमें जो फेन दिखाई देता है उस (आकाश गंगा) के निकटमें वीर पुरुष और उसकी पत्नी (दिखाई देती) है उसके हाथमें सोंटा और बर्छी है"। इस प्रकार मिथुनका वर्णन है। आर्द्रा रुद्रका तारा यहीं होनेसे मिथुनको शिव-पार्वती, वृषभ राशिको नंदीश्वर उसके दोनों सींगोंके तारोंके बीचमें होनेसे नंदीश्वरके दोनों सींगोंके बीच शिवमूर्तिके दर्शन करते हैं। वासुकी शेषके शिरपर जीव (गुरुपुष्य) यानी कर्कराशि=पृथ्वी तुल्य धारणकी हुई दीखती है। आकाशमें लाल रंगके तारे (आर्द्रा ज्येष्ठा रोहिणी), नीले तारे (ब्रह्महृदय रीगेल, प्रद्रवा, चित्रा ग भरत), हरे तारे (लुब्धक, अभिजित्, श्रवण) पीला तारा (स्वाती) सफेद तारे (मघा, उ० फा०, फोमहूत) दिखाई देते हैं।

४. तारों और नक्षत्रोंके नामोंका कारण

विष्णु, गरुड़वाहन, दूर्वांकुर श्यामवर्ण, पुराणोंमें कहे गये हैं। "उभाहि हस्ता वसुनापृणस्वा" चित्रमें वामन विष्णुके दोनों हाथोंपर गरुड़के दोनों पंख आच्छादित हैं। इसी तरह वाजस संहितामें कहा है। मानों हस्तिशुंडाकृति धनिष्ठा गजेंद्रको मकरराशि नीचे खींच रहा हो। उसको छुड़ानेके लिये विष्णु जा रहे हैं। इसीका रूपक गजेंद्रमोक्ष कथा है। श्रवणका शर + २९°·३ और क्रांति सदा उत्तर होनेसे "अच्युत," अक्षांशसे अधिक होनेसे "अधोक्षज" कहाते हैं। श्रवणपुंज आकाशगंगामें होनेसे, ऊपर अभिजित् स्वर-मंडल ब्रह्माका कमंडलु होनेसे, त्रिविक्रम (तीन तारे) विष्णुके चरणसे उत्पन्न गंगा ब्रह्माके कमंडलुसे आर्द्रा रुद्रशिवके जटामें आयीं। भरत भगीरथ गंगा लाये। ऐसी कथा चालू हुई है। कदंबके निकटके (ड्राको) कालीयके शिरपर शौरीका पाँव है। इससे कालीयमर्दन, चित्रा नीलवर्ण कृष्णावतार, (हैड्रा) वासुकीका अल्फर्ड शेषावतार, षडंश पुंजमें कोई तारा न होनेसे (कन्या राशि) देवकीके षड्गर्भका नाश कंसने किया। कथा चली। स्वातीकी समिधा अंजनवृक्ष, देवता वायुके निकटका भूतप, पुरुषाकृति जिसका दहिना पाँव उठा हुआ है, अंजनीनंदन वायुपुत्र हनुमान् कहलाये। श्याम शबल द्रोणागिरि कहा गया।

पुनर्वसुके पोलक्स क्यास्टर तारे राम लक्ष्मण, प्रश्वाके दो तारे भरत शत्रुघ्न, बाकी ययाति, देवयानि, शर्मिष्ठा, भुजगधारी, नरतुरंग आदि, और १२ राशिके जो चित्र हैं, इनका विस्तृत वर्णन वेदमें है। भरतको आगे मृगशीर्ष कहने लगे। "भरतो नाम राजा मृगोभवन्मृगसंगाद्ध-तार्थः" (भागवत) इसी वास्ते भारतमास और मार्ग-शीर्षमास एक ही बात है। इंद्रकी अमरावतीपुरीके परिखा रूप आकाश गंगा "आकाश गंगया देव्यावृता परिख-भूतयः" कही गयी है। सो वृषपर्वापुंजपर ध्रुव स्थान हो, तभी वहाँ आकाशगंगा हो सकती है। अतः गणितसे भारत-का काल शक पूर्व १८ हजार वर्षका निश्चित होता है। जयन्ती नक्षत्रोंसे दशावतारोंके आकाशके स्थान ज्ञात हो जाते हैं।

५. चारों विंदुओंकी खोज

"भगो अर्यमा सविता पुरंधिः" अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत' "इयं नार्युपब्रूते लाजाना व-पंतिका' आदि विवाहके मंत्र लाजाहोम सब कन्याराशिके निदर्शक हैं। सप्तर्षि, गर्ग, मनु, पराशर, कश्यप, वृषाकपि, शुक, शृंग, कण्व, पाणिनि, नल, गौतम, अहल्या, इंद्र, यम, शिव, मृकंडु, शाकल, भरद्वाज, कुबेर आदि जो तारोंके नाम हैं, सो उन-उन नामके ऋषियोंने उनका शोध लगाया तथा उसपर जब संपातकी स्थिति थी, तब उन ऋषियोंका जन्म पृथ्वीपर हुआ था। ऐसे ही राजाओंके चरित्र देव = ताराओंके वर्णनसे मिलाये गये हैं। इसलिये खगोलिक घटनाओंका दृश्य वेद पुराणोंमें वर्णित है। उनका संबंध पृथ्वीके प्रसिद्ध और खगोलद्रष्टा पुरुषोंसे लगाया गया है। जैसे कि अब भी हर्शल नेपच्युन नामक ग्रह, हालेका धूमकेतु आदि नये नाम रखे गये हैं। इसलिये इसी नाक्षत्र पद्धतिके सहारे कूट वेदमंत्रोंका अर्थ कैसे लग जाता है। सो रिपोर्टमें बताया गया है। वसंतसंपात पहले आगे बढ़ता था। शकपूर्व २,२०,६९९ वर्षमें पुनर्वसुपर इसकी वाम गति हो गयी "वामं वसुरूपा वर्तत तत्पुनर्वसोः पुनर्वसुत्वं" इस वास्ते अदितिको पुनर्वसु कहने लगे। भारतमें ही उत्तर ध्रुवकी स्थिति थी। इससे हर्शल, लिव्हेरियरकी परमक्रांति गति संस्कार नहीं मिलता, किंतु हानसेनकी चक्रगति निश्चित होती है। इस प्रकारके शोध-शुद्ध नाक्षत्र पद्धतिसे ही लग सकते हैं।

६. सातों दिनोंकी खोज

वेदकाल-निर्णय, युगपरिवर्तन और रिपोर्टमें इन बातों-का विस्तृत वर्णन किया गया है। श्रीमन्त इन्दौर सर्कारके उदार आश्रय मिलनेसे हमने कई नकशे बनवा लिये हैं। इसमें सुपर्णचितिके चित्रके नीचे वार-क्रम विमर्शका चित्र दिया गया है। उससे स्पष्ट होता है कि वैदिक जमानेमें जो समिधा 'अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, न्यग्रोध, उदुंबर, शमि, के सात दिनमें सात हवन किये जाते थे उसे आगे वार नामसे कहने लगे हैं। "पालाशं ब्राह्मणोभिषिंचति, न्यग्रोधे-राजन्यं, उदुंबरे वैश्यं अभिषिंचति"। इस अभिषेक मंत्रमें "सोमवारके दिन ब्राह्मण, गुरु शुक्र-वारको क्षत्रिय अभिषेक करें तो शुभ फल होता है" ऐसा कहा है। ग्रहोंकी मंद शीघ्र गतिके अनुक्रमसे होरा-

वार भारतमें ही निश्चित हुए थे। इसलिये राशि और वार ही क्या कुल व्यवहारोपयोगी ज्योतिष, खगोल-विज्ञान, और गणितका शोध भारतमें ही हुआ था और यहींसे मिश्र-देश, ग्रीक, बाबिलोनियामें गया है। "एकया च दशभिः" यह धारा गणितका मूलमंत्र है। "एकंचमेत्रयश्चमे" यह वर्ग वर्गमूल (एकोत्री) का गमक है। "चत्वारश्च अष्टौ च" यह ४ का पहाड़ा है। इतना ही नहीं, चारों वेद उस समयके ज्ञानकोश हैं। उसमें भी आधेसे अधिक भाग ज्योतिःशास्त्रका ऐतिहासिक रूपदर्शक है। वैदिक बातोंकी पूर्ति पुराणोंके ऐतिहासिक घटनाके वर्णनसे की गयी है। इसलिये १ लाख वेद, ४ लाख पुराण, १ लाख भारत, ४ लाख षडंग और श्रौतस्मार्त ज्योतिष, और १ लाख त्रिस्कंध ज्यौतिष, इस प्रकार ११ लाख श्लोकोंमें जिन राशि, नक्षत्र वारादिका उल्लेख अनेकानेक प्रकारसे उपलब्ध होता है उन्हें हम औरोंसे लिया हुआ किस प्रमाणसे कह सकते हैं। हमारे देश भारतवर्षके इस वाङ्मय एवं विज्ञानका कुछ भाग अन्य देशोंमें भी उपलब्ध हुआ। बस इसी आधारपर "यह वहाँसे लिया, वेदमें यों-यों लिखा है" इत्यादि कहना युक्तिसंगत नहीं है। खैर यह मेरा नया शोध है। आधुनिक विद्वान् ज्यो० केतकर, पं० दीक्षित, लो० टिलक, म० म० सुधाकर द्विवेदीने जिन बातोंको गूढ़ मानकर अर्थ करना छोड़ दिया था उसका भी अर्थ लगाकर परमक्रांतिकी वक्रगति आदि कुल बातें मैंने नये सिरेसे बतायी हैं। आप विद्वानोंके ध्यानमें आनेके लिये यह सेल्यूलाइडपर विपुवांश-क्रांतिदर्शक ध्रुवसूत्रीय रेखाओंके नीचे तारोंके स्थिर भोगशार दर्शक कदंब सूत्रीय रेखाओंपर बनाये हुए आकाशके पूर्व पश्चिम गोलार्धके दो नकशोंके माडेल सेवामें दिखलाये जाते हैं। [दिखाकर] इसमें चक्रको घुमानेसे आजकी तथा शकपूर्व २३।५४।७६ हजार, इस तरह दो तीन लाख वर्ष पूर्वकी, आकाशके भिन्न-भिन्न कालीन खगोलिक दृश्य-स्थिति प्रत्यक्ष दिखाई देती है। रिपोर्टमें तो स्कंदका स्वर्गारोहण, ययातिका स्वर्गसे पतन, गणितसे सिद्ध करके बताया है। उस वर्णनके आकाशकी स्थिति आज भी हम इस मॉडेलमें प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इसीके द्वारा वेद पुराणादिकोंकी एवं पाश्चात्य दंतकथाओंकी ऐतिहासिकता बतला सकते हैं कि इसके द्वारा जटिल विषय भी बिना गणितके सहारे चित्रको प्रत्यक्ष देखकर समझ सकते हैं। इसके द्वारा तारोंकी निज गतिका भी पता लग सकता है। जैसे भाद्रपदाके ४ तारोंमेंसे एक अल्फेण्ट नामक तारा ऋग्वेदके समयमें देवयानीके "चतुष्कपदीयुवतिः" जटाओंमें था वही तैत्तिरीय ब्राह्मणके समयमें "अहेर्बुध्नियमंत्रंमेगोपाय—चतुः शिखंडायुवतिः" जटाओंके नीचे शिरमें आ गया था और इस नकशेमें देखिये बाँयीं आँखके ऊपर तथा ग्रीक नकशोंमें आँखपर बताया गया है। इस प्रकार तारोंकी निजगति, परमक्रांतिमान, वसंत-संपात तथा महापात चक्र इन सूक्ष्म गणितागत चार प्रमाणोंसे चाहे जितनी प्राचीन खगोलिक बातकी जाँच हो सकती है।

आजतकके विद्वानोंको कालमापनमें एक वसंत-संपात चक्रका ही उपयोग ज्ञात हुआ था। उसका चक्र ही कुल २६ हजार वर्षका होनेसे तथा गणनामें चल स्थिर मानका महत्त्व ध्यानमें न आनेसे छः सात हजार वर्षके पूर्वकी ऐतिहासिक बातको जाँचनेके लिये उनके पास कुछ साधन नहीं था। लेखकके इस शोधसे वह त्रुटि अब दूर हो गयी है। घड़ीके क्लाक मिनिट आदि स्थिर अंकोंसे अंकित तख्तीपर छोटी बड़ी सुईयोंके घूमनेके सापेक्षांतरसे जैसे ठीक काल-ज्ञान हो सकता है, उसी तरह इस स्थिर चलमान दर्शक मॉडेलमें दो तीन प्रमाणोंकी एक वाक्यतासे निश्चित काल-ज्ञान हो सकता है।

७. उपसंहार

गणेश दैवज्ञके बाद भारतवर्षीय ज्योतिःशास्त्रकी प्रगति कुंठित हो गयी है। और पाश्चात्य देशमें दूरबीन और आकर्षण सूत्रके बलपर ज्योतिःशास्त्रकी बहुत ही प्रगति हो गयी और हो रही है। ऐसी स्थितिमें भी भारतके शिरको समुन्नत करनेवाली यही एक वेदार्थ-ज्ञानदर्शक प्राचीनतम इतिहासकी निर्णायक स्थिर चल ज्योतिष गणना पद्धति है। इसको ध्यानमें लाकर इसे समुन्नत करना हर एक विद्वान्का कर्त्तव्य है। हमें नाटिकल आल्मनाककी नकल करनेकी आवश्यकता नहीं है। किंतु वह जैसा सूक्ष्म और संसारके उपयोगी बनाते हैं वैसा हमें अखिल भारतवर्षोपयोगी पंचांग, उक्त शुद्ध नाक्षत्र पद्धतिसे ही बनाकर उसके बनानेके कोष्ठक ग्रंथ भी बनाना चाहिये, ताकि अग्रिम वर्षमें हर एक

इन्दौर ज्योतिष-सम्मेलनके मन्तव्य

यह सम्मेलन कार्तिक शुक्ल १५, मार्गशीर्ष कृष्ण १, २, ३, ४, ५, संवत् १९९२ वि० में इन्दौरमें हुआ था जिसमें नीचे लिखे प्रस्ताव* स्वीकृत हुए—

१—गणेश-दैवज्ञ-प्रणीतम् ग्रहलाघवाख्य करणम् पंचांग साधनोपयोगीति सर्वैः स्वीक्रियते, परंच तत्र कालस्य महत्वतो ग्रहगतौ स्थूलत्वमापद्यत इत्यतः करणमिदं संस्कार्यमिति सर्वेषां समुपस्थितानाम् विद्वज्जनानाम् अनुमतम् ।

२—कथं संस्कार्यमिति जिज्ञासायाम् तत्र तावत् बीजं देयमित्यपि स्वीकृतम् ।

३—बीज-संस्कार-विषये एके कतिपयान संस्कारान्–सूचितवन्तः । अन्ये चान्यान् । एवं संस्कार द्वैविध्ये उभयोर्मतयोरनुयायिभिः पृथक् पृथक् स्वाभिमत प्रकारेण पंचांगपत्रम् विरच्य न्यायमंडलस्य पुरतः उपस्थापनीयम् । परस्ताच्च न्यायमण्डलं पञ्चांगानि समीक्ष्य स्वाभिप्रायसंवलितानि तानि भाविनि ज्योतिषसम्मेलने निर्णयार्थं समुपस्थापयिष्यति ।

अपिच सौर मकरन्द कामधेन्वादि करण ग्रंथान्तर साधितान्यपि पञ्चाङ्गपत्राणि ये विद्वान्सो न्यायमण्डले समुपस्थापयिष्यन्ति तत्तत्पंचांग विषयेऽपि न्यायमण्डलम् स्वाभिप्राय पुरस्सरम् सम्यङ्निर्णयाय सम्मेलनपुरतः प्रेषयिष्यति । अवन्त्या दशकलाधिक त्रयोविंशत्यंशाक्षांशेभ्यः एकोनषष्ठ्यधिकाष्टादश शताब्दीय्यं पंचांगपत्रं विधेयम् ।

४—धर्म्माद्यनुष्ठानादि विधौ प्राचीनार्षसाधिताभ्याम् स्फुट रवि चन्द्राभ्याम् लब्धा या तिथिः सैव ग्राह्या अन्यत्र दृश्य विधौ सूक्ष्मा तिथिः साधनीया ।

५—नाक्षत्र सौरवर्षमानं मध्यम सावन दिनात्मकम् यत् सूर्यसिद्धान्तोक्तं तद् ग्राह्यम् । तत्र वेधोपलब्धौ विसंवादश्चेत् तयोन्तर रूपं बीजं दृश्य कृत्ये देयम् ।

६—सूर्य सिद्धान्ते यद् राशि चक्रारंभ स्थानं तदेव ग्राह्यम् ।

७—अयन-गति-मानं वास्तविकं वेधोपलब्धं ग्राह्यं ।

८—अयनांशाः वास्तविका वेधोपलब्धा ग्राह्याः ।

९—ग्रहसाधने दृक् प्रत्ययार्थं यावन्तः संस्काराः यदा यदावश्यकास्तावन्तो बीजरूपेण ग्राह्याः ।

१०—इस सम्मेलनमें धर्म्म कृत्योपयोगी पंचांगके लिये निरयण मान ही ग्रहण करना चाहिये तथा सायन संक्रांति भी लिखी जानी चाहिये ।

११—खगोल विज्ञान जगतमें भारतवर्षको उसके प्राचीन गौरवयुक्त स्थानपर पहुँचानेके लिये और इस प्रयोजनसे कि हमारे श्रौत स्मार्त कार्य यथोचित समयपर हों और सारे संसारमें ज्योतिषका उत्तमसे उत्तम लाभ प्राप्त होसके इस सम्मेलनकी सम्मतिमें प्राचीन और अर्वाचीन साधनोंसे सम्पन्न ऐसी एक वेधशालाका स्थापित होना देशमें अत्यंत आवश्यक है। अतएव यह सम्मेलन देशके समस्त राज्याधिकारी श्रीमन्त तथा अन्य धनी मानी सज्जनोंसे और

* यह प्रस्ताव पं० गोपीनाथ शास्त्री चुलैट, सम्मेलनके प्रधान मंत्री द्वारा प्राप्त हुए । प्रायः यही प्रस्ताव पं० मुरलीधर ठाकुर द्वारा भी प्राप्त हुए थे जो पुनरुक्तिके कारण अलग नहीं छापे जाते ।

ज्योतिषी थोड़े ही समयमें दैनिक ग्रह स्पष्ट युक्त शुद्ध सूक्ष्म गणितका पंचांग बना सकें । अपना अहोभाग्य समझता हूँ कि पूज्य मालवीयजी जैसे कुलपति, विद्वान, नीतिज्ञ और उत्कट देशप्रेमी, नेताग्रगण्य हमें सभापति मिल गये हैं । आपने घोषितकर दिया है कि इसी भूमध्य रेखांशके स्थानमें वेधशालाकी स्थापना की जाय, तो पैसेकी कमी नहीं है । कार्य करनेवाले चाहियें । इसलिये हमको भी लेख पंचांग, ग्रंथ आदि प्रकाशित करके वेधगणितज्ञकी योग्यताको जनताके ध्यानमें लाना चाहिये । अंतिम प्रार्थना यह है कि शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षमान और चैत्रीय आरंभ स्थानकी अखंड परंपराकी रक्षा करनी चाहिये । उसीकी उन्नतिसे हमारी संस्कृतिकी उन्नति है ।

ज्योतिष शास्त्रके प्रेमी विद्वानोंसे तथा समस्त विद्याप्रेमी भाइयोंसे निवेदन करता है कि ऐसी वेधशाला स्थापन करनेके लिये स्थानीय कोषसे धन संग्रह करनेमें सहायता दें और उसका ठीक-ठीक रीतिसे कार्य जारी रखनेके लिये वार्षिक दानसे भी सहायता करें।

१२—पिछले कई वर्षोंसे पंचांग समिति निर्माण कराके पंचांग शोधनके कार्यमें श्रीमंत महाराजाधिराज राज-राजेश्वर सवाई श्री यशवन्त राव महाराज होलकर बहादुर और उनकी सरकारने जो ज्योतिष-शास्त्रको परमोज्वल करनेमें सहायता दी है उसके लिये यह सम्मेलन उनका हार्दिक धन्यवाद करता है, और आशा करता है कि इस पुण्य कार्यके पूरा होनेतक श्रीमंत महाराजकी सरकार अपनी सहायता जारी रखेगी।

१३—यह सम्मेलन सरदार किबे साहबको धन्यवाद देता है जिन्होंने इस सम्मेलनके होनेमें बड़ी सहायता की है और ज्योतिष शास्त्रके लिए अनेक विषयोंकी समालोचना की है। पंचांङ्ग शोधनके कार्यमें पिछले सात आठ वर्षोंसे वि० भू० पं० दीनानाथशास्त्री चुलैटने जो पाण्डित्यपूर्ण अविरत परिश्रम किया है उसका यह सम्मेलन अभिनन्दन करता है और इसके लिये उनको धन्यवाद देता है।

१४—यह सम्मेलन निश्चय करता है कि मण्डलका कार्य संचालन करनेके लिये निम्नलिखित सज्जनोंकी एक कार्य-कारिणी समिति निर्वाचित की जाय। इस समितिका प्रधान कार्यालय हिन्दूविश्वविद्यालय काशीमें होगा—

सभापति—महामना पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय, बनारस
उपसभापति—म० म० पं० हाथीभाई शास्त्री, जामनगर
" —वि० भू० पं० दीनानाथशास्त्री चुलैट अध्यक्ष इंदोर पंचांग शोधन कमेटी, इंदौर
प्रधान मंत्री—श्रीमंत सरदार मा० वि० किबे, इंदौर
संयुक्त मंत्री—ज्यो० भू० पं० गोपीनाथ शास्त्री चुलैट, अध्यक्ष तत्वज्ञान संचारक सोसायटी, एलिचपुरबरार
सहायक मंत्री—श्रीयुत जनार्दन सखाराम करंदीकर, पूना
सदस्य—ज्योतिषाचार्य पं० मुरलीधरजी ठाकुर, काशी
" ज्योतिषाचार्य्य पं० रामयत्नजी ओझा, काशी विश्वपंचांग कर्ता।
" ज्योतिषाचार्य्य पं० बलदेवजी मिश्र, काशी
" ज्योतिषा० पं० रामव्यासजी पाण्डे, हि० वि० काशी
" पण्डित श्यामाकान्तजी पाठक, जब्बलपुर
" पण्डित गोविन्द सदाशिव आपटे, उज्जैन
" " शंकरदादा रा० ज्यो० ग्वालियर
" " विष्णुदत्तजी शर्मा, बीकानेर
" " काशीनाथ गोपाल भगूरकर, उमरावती
" " दुर्गाचरणजी शुक्ल ज्योतिषाचार्य्य, कानपुर

शोक प्रस्ताव

प्रथम दिन ता० १० नवम्बर सन् १९३५ ई० को निम्नलिखित शोक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

१—श्रीमान् व्यंकटेश बापूजी केतकर, बीजापुर, पं० हरीरामजी ज्योतिषी इंदौर, पं० सुन्दरदेवजी, काशी, ग० भा० विष्णुगोपाल नवाथे; म० म० पं० मुरलीधरजी झा, काशी, ज्यो० मा० पं० अमृतरामजी शास्त्री, बड़ोदाके उठ जानेसे भारतीय ज्योतिषको जो हानि हुई है उसके लिए यह सम्मेलन दुःख करता है और ईश्वरसे प्रार्थना करता है कि वह उनकी आत्माओंको शान्ति तथा उनके कुटुंबीजनोंको संतोष दे।

२—यह सम्मेलन डाक्टर सरयूप्रसादजीके स्वर्गवास-पर शोक प्रकट करता है जिन्होंने हिन्दी साहित्यकी आजन्म सेवा की है।

युग परिवर्तन अर्थात् कलियुगका अंत और सतयुगका आरंभ

(ज्यो० पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस्-सी०, एल० टी०, विशारद, रायबरेली)

प्रचलित सूर्यसिद्धान्त तथा अन्य अनेक ज्योतिष-सिद्धान्तके ग्रन्थों और मनुस्मृतिका मत है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग नामक चतुर्युग या महायुग १२,००० बारह हज़ार दिव्य वर्षों तथा ४३,२०,००० तैंतालीस लाख बीस हज़ार साधारण सौर वर्षोंका होता है। इस मतके अनुसार १९९२ विक्रमीयमें कलियुगके ५०३६ वर्ष बीत गये हैं और अभी इसके ४,२६,९६४ वर्ष शेष हैं। इस मतको इस शताब्दीके कुछ विद्वान् नहीं मानते और समय-समयपर उन्होंने अपने मत भी प्रकट किये हैं कि १२००० दिव्यवर्ष साधारण सौरवर्ष समझने चाहिए। परन्तु किसीने निश्चयपूर्वक यह नहीं बतलाया था कि कलियुगका कब अंत हो गया और सतयुग चल रहा है।

इसी विषयको लेकर उपर्युक्त ग्रन्थके लेखक पं० गोपीनाथशास्त्री चुलैटने बड़ी विद्वत्तापूर्वक यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि एक चतुर्युगमें १२,००० साधारण सौर-वर्ष होते हैं। आपके मतसे संवत १९८१ विक्रमीय तथा १८४६ शाकेके पौषमासकी अमावस्याको कलियुगका अंत हो गया और इस समय सतयुगकी संधि चल रही है, तथा संवत् २३८१ विक्रमीयमें सतयुग शुद्धरूपेण लग जायगा। इस मतके प्रमाणके लिए आप महाभारतके वनपर्वका श्लोक १८८ उपस्थित करते हैं जो यह है—

> यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्य बृहस्पतिः।
> एक राशौ समेष्यंति प्रवत्स्यति तदा कृतम् ॥

इस श्लोकका साधारण अर्थ यह है कि जब चन्द्रमा, सूर्य तथा पुष्य नक्षत्रका बृहस्पति एक राशिपर आजाते हैं तब कृतयुग अथवा सतयुगका प्रवेश होता है। विद्वान् लेखक कहते हैं कि तिष्यका अर्थ पुष्य नक्षत्र नहीं है वरन् पौषमास है (पृष्ठ १०७), जिसके समर्थनमें आप बृहत्-संहिताका यह श्लोक उपस्थित करते हैं,

> तिष्यादि च युगं प्राहुर्वसिष्ठात्रि पराशराः।
> बृहस्पतेऽस्तु सौम्यान्तं सदा द्वादश वार्षिकम् ॥

और इसका भावार्थ यह बतलाते हैं, "इसमें तिष्यमें यानी पौषमें बृहस्पतिके उदयसे युगका आरंभ होकर सौम्यान्त यानी मार्गशीर्ष पर्यन्त १२ वर्षका युग कहा है। इसीको 'बृहस्पतिके उदयसे इसे पौष नामक संवत्सर भी कहते हैं। इन प्रमाणोंसे तो स्पष्ट ही हो गया कि यहाँ १२ वर्षके युगारंभमें जो तिष्य शब्द है सो पौष महीनेके अर्थमें कहा गया है। पौषमासमें सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति एक राशिपर बारह वर्षमें आते हैं। किंतु एक अंशमें तो बारह हज़ारवर्षमें ही आते हैं। इसलिये पौषके ही अर्थमें तिष्य कहा गया है। सो यही योग पौषमें आया है" पृ० १०७।

इन अवतरणोंसे शास्त्रीजीका यह मत प्रकट हो जाता है कि आज सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति जिस राशिमें हों उसी राशिमें वे बारह वर्षके बाद फिर आजाते हैं। परन्तु बारह हजार वर्षमें तो बिल्कुल एक ही अंश पर हो जाते हैं। जैसे कि १९८१ विक्रमीयकी पौष कृष्ण अमावस्याको हो गये थे। यदि शास्त्रीजी यह बतला दिये होते कि किस गणनासे सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति बारह हजार वर्षमें एक अंश पर आ जाते हैं तो ठीक होता क्योंकि बृहस्पतिकी जो गति मानी जाती है उससे तो ऐसा योग १२,००० वर्षमें नहीं पड़ता। उदाहरणके लिए मैं संक्षेपमें अपनी गणना दिये देता हूँ।

यदि एक सौर वर्षमें ३६५·२५६३७४ दिन माने जायँ तो १२,००० वर्षोंमें ४३८३०७६·४८८ दिन होते हैं। बृहस्पतिका भगण काल ४३३२·५८४८२१ दिन अर्वाचीन मतसे होता है इस लिए इसका १०११ भगण (फेरा) ४३८०२४३·२५४ दिनमें पूरा होता है। शेष बचते हैं २८३३·२३४ दिन जिसमें यह ८ राशिके लगभग और चल सकता है। इस लिए १२००० वर्षमें बृहस्पति तो सूर्यके साथ हो नहीं सकता।

अब देखना चाहिए कि १२,००० वर्षोंमें चन्द्रमा सूर्यके साथ होता है या नहीं। एक चान्द्रमासमें २९·५३०५८८

ग्रन्थकर्त्ता—पं० गोपीनाथशास्त्री चुलैट; प्रकाशक—सावतराम रामप्रसाद फर्मके मालिक बा० कृष्णलाल गोयनका—अकोला (बरार)। पृष्ठ संख्या २८+२१६ मूल्य २)

दिन होते हैं। यदि इससे १२,००० वर्षके दिनोंमें भाग दिया जाय तो शेष होता है २८-४९४६८८ दिन, जिससे सिद्ध होता है कि चन्द्रमा १ दिन पीछे सूर्यके साथ होगा।

इस तरह सिद्ध होता है कि १२,००० वर्षोंमें न तो सूर्य चन्द्रमा ही एक राशि और अंश पर आते हैं और न बृहस्पति ही। इस लिए मेरे विचारसे तो शास्त्रीजीके १२,००० वर्षके युगमें, सूर्य चन्द्रमा और बृहस्पति एक राशि और अंशपर नहीं आ सकते। आपका मुख्य प्रतिपादित विषय यही है परन्तु आपने इसको सिद्ध करनेके लिए गणितका कोई उदाहरण नहीं दिया इसलिए पाठकोंकोतो संबोध नहीं हो सकता कि शास्त्रीजी कहाँतक ठीक कह रहे हैं।

पृष्ठ ११३में आपने मन्वन्तरावतारोंका वर्णन किया है और बतलाया है कि स्वायंभुव मन्वन्तरमें सृष्टिके आदिसे ८,५६,८०० वर्षतक था जिसमें हंस (वायुचर प्राणि) का प्रादुर्भाव हुआ। उसके बाद स्वारोचिष मन्वन्तरमें जो सृष्टिसे १७,१३,६०० वर्षतक था मत्स्यावतार अर्थात् जलचर प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार उत्तम मन्वन्तरमें कच्छप, तामसमें वराह, रैवतमें नरसिंह, चाक्षुषमें वामन और वैवस्वतमें परशुराम, रामकृष्णादिका प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार सृष्टिके आदिसे वैवस्वत मन्वन्तरतक ५४,८१,६०० वर्ष बीत जायंगे। शास्त्रीजीका यह मत बड़ा ही अपूर्व है और डारविनकी विकास-कल्पनासे बहुत कुछ मिलता जुलता है। इसपर भी अधिक प्रकाश डालनेकी आवश्यकता थी।

पृष्ठ ११५ से १२६ तक १२ पृष्ठोंमें सारिणी है जो निस्सन्देह बड़े परिश्रमसे तैयार की गयी है। इसमें बतलाया गया है कि वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके २८ युग जो बीत गये हैं उनके सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगके २८ फेरे कब-कब पूर्ण हुए और उन-उन समयोंमें अयनांश, अयनगति, सांपातिक वर्षमान, सांपातिक नक्षत्र और मास और वेदव्यास कौन-कौन थे। यहाँ मुझे एक बात खटकती है जिसकी चर्चा करना मैं आवश्यक समझता हूँ। शास्त्रीजीने यह मान लिया है कि इस समय अयनकी जो वार्षिक गति है वह १२००० वर्षोंमें २·७१ विकलाकी दरसे बढ़ती जा रही है। इसका सूत्र यह है।

५०·२५६३५१ + ·०००२२२५१ व

इस गणनासे आप इस परिणामपर पहुँचे हैं कि इस वैवस्वतमन्वन्तरके ११वें महायुगके आरंभमें अयनकी वार्षिक गति −१·४८ विकला और १०वें महायुगके आरंभमें +१·२३ विकला थी। इसके पहले यह धनात्मक थी। मैं समझता हूँ कि जो भौतिक कारण इस समय वर्तमान हैं जिनसे वार्षिक अयनगतिका उपर्युक्त सूत्र स्थिर किया गया है वे कारण सदा ऐसे ही नहीं रहे हैं, क्योंकि सूर्य, चन्द्र आदिकी भौतिक दशा लाखों वर्ष पहले भी ऐसी ही नहीं थी। इसलिए अयनगतिका यह सूत्र लाख वर्ष पहलेके लिए भी लागू नहीं हो सकता। इसलिए जबतक शास्त्रीजी यह सिद्ध न कर दें कि इस समय जो कारण वर्तमान हैं वही लाखों वर्षतक उसी नियमसे अपना प्रभाव डाल सकते हैं तबतक यह श्रम करना व्यर्थ है।

वैदिक पंचांगोंका स्वरूप और वैदिक पंचांगोंकी रचना नामक अध्यायोंमें आपने बड़ी विद्वत्ताके साथ यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि वेदमंत्रोंमें ज्योतिषके सिद्धान्त भरे पड़े हैं और ऐसा कोई ज्योतिष विषय नहीं है जो वेदमंत्रोंमें न हो। आपने संक्षेपमें दिखलाया भी है कि किन मंत्रोंसे ज्योतिषकी कौन-कौनसी बात सिद्ध होती है। यहाँ आपको चाहिए था कि उन मंत्रोंका भावार्थ ही नहीं देते वरन् अन्वय करके विस्तार के साथ दिखाते कि उनका अर्थ क्या है। यदि साथ ही साथ यह तुलना भी कर देते कि अन्य प्राचीन आचार्योंने उनके जो अर्थ किये हैं वे उतने युक्तिसंगत नहीं हैं जितने शास्त्रीजीके नवीन अर्थ, तो शास्त्रीजीकी बात अधिक प्रामाणिक समझी जाती।

इस अध्यायमें आपने सुपर्णचितिकी व्याख्या कई पृष्ठोंमें पूरी की है परन्तु चित्र कहीं नहीं दिया है यद्यपि यह संकेत मिलता है कि अमुक पृष्ठमें है। चित्रके अभावमें यह सब वर्णन निरर्थक हो जाता है।

ज्योतिषसम्बन्धी प्रमाणोंकी चर्चा संक्षेपमें यही है। इनसे यह सिद्ध नहीं होता कि युगपरिवर्तन हो गया है। इसके सिवा आपने ऐतिहासिक घटनाओंसे यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि अट्ठाइसवाँ कलियुग कब लगा। आप कहते हैं कि जब सिंधमें मुसलमानोंका आक्रमण हुआ तभीसे इस कलियुगका आरंभ हुआ (पृष्ठ ९७–१०४);

और जबसे हमारा देश, हमारा धर्म, हमारे शास्त्र, इत्यादिका अभ्युत्थान हम नहीं करेंगे तो कौन करेगा'' की भावना आरंभ हुई तबसे 'कृतके संधिका परिवर्तन नहीं तो क्या है'' (पृष्ठ १०५) ।

'युगानुकूल मनुष्योंकी आयुष्य' नामक अध्यायमें आप उस मतका खंडन करते हैं जिससे यह समझा जाता है कि "अयोध्यामें ११ हज़ार वर्ष तक रामराज्य रहा। भागवत पुराणमें ध्रुवकी ३६ हज़ार वर्षकी, प्रियव्रतकी अर्बुद वर्षकी आयु कही गयी है। इससे कृतयुगमें बहुत बड़ी आयु होनी चाहिए।" (पृ० १२८) आप कहते हैं "सहस्र संवत्सरमें कहे हुए शास्त्रानुकूल 'अहर्वै संवत्सरः' के अनुसार यह दिनके अर्थमें वर्ष कहे गए हैं। इस हिसाबसे ३६ वर्षमें तेरह हज़ारके करीब दिनात्मक वर्ष होते हैं। इससे निश्चित होता है कि रामचन्द्रका अनुशासनकाल ३६ वर्षका होना चाहिए। और जब लवकुशने इनके दरबारमें रामायण सुनाई तब रामायणके कथनानुसार श्री रामचन्द्रकी अवस्था ६० वर्षके करीब थी। इस सिद्धान्तसे ठीक ठीक अनुमित होता है कि ९० से १०० वर्षके भीतर ही श्री रामकी आयुष्य थी (पृ० १३५) ।

आपके मतसे "मनुष्यकी परम आयु सौ वर्षकी है किंतु कलियुगमें 'न च कश्चित त्रयोविंशति वर्षाणि जीविष्यति [वि० पु० ४।२४।२५] त्रिंश द्विंशति वर्षाणि परमायुः कलौ नृणां [भा० पु० १२-१] प्रायः पचीस तीस वर्षमें ही कई गत हो जाते हैं। अर्थात् उक्त वर्षसंख्या आयुकी औसत है। वर्तमानमें खानाशुमारीसे मनुष्यकी मृत्युकी औसत २३ वर्ष ही निश्चित है" [पृ० १३५]

ध्रुव और प्रियव्रतके संबंधमें आप कहते है 'कोई व्यक्ति नहीं हुए हैं। किंतु इनकी कथा तारोंके कालके उपलक्षमें कही गयी है।...केवल एक रूपक है"। [पृ०१३६]

अंतिम अध्यायमें अपने शास्त्रोंका प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि कमलाकर भट्ट लिखित निर्णयसिंधुका कलिवर्ज्य प्रकरण स्मृतिबाह्य है और इसका आधार प्राचीन स्मृतियोंमें कहीं नहीं हैं, विवाहका पुराना आदर्श 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी'...नहीं है, कन्यादान मुख्य नहीं है वरन् पाणिग्रहण संस्कार मुख्य है। पिताके अनुमोदनको ही कन्यादान कहा है' (पृ० १५१), प्राचीन कालमें बूढ़ोंको भी बूढ़ी स्त्री मिल जाती थीं अर्थात् कोई भी अनाश्रमी नहीं रहते थे" (पृ० १६४); 'विधवाको सिवा गृहस्थाश्रमके कोई आश्रम नहीं है'; 'गौतमादि स्मृतियोंमें व्यभिचार करनेपर स्त्रीको प्रायश्चित्त देकर शुद्ध कर लेनेका विधान है, किंतु इतने परसे वह पतित यानी जाति बहिष्कृत नहीं हो सकती और स्त्रीसे भी ज्यादा व्यभिचारका प्रायश्चित्त पुरुषको कहा है (पृ० १६६); स्त्रियोंमें नैसर्गिक शुद्धता होती है इसलिए व्यभिचार करनेपर भी यह दूषित नहीं हो सकती और "अत्रि, यम, वशिष्ट, देवल, नारद शातातप· मनु, याज्ञवल्क्य आदि कुल स्मृतियोंकी आज्ञा स्त्रीके त्याग· को सर्वथैव मना करती हैं" (पृ० १८२); वैदिक कालमें पशुहिंसा नहीं थी; इत्यादि ।

अंतिम निवेदनमें आप कहते है 'यह कलिवर्ज्य प्रकरण और इसका माहात्म्य तथा इसका बताया भविष्य सब श्रुति स्मृति बाह्य है; भागवतके द्वादश स्कंधमें ही देखिए जहां कलियुगका वर्णन है वे तीन अध्याय वोपदेव पण्डितकी बनायी है; इसी प्रकार अन्यान्य विद्वानोंने भी कलिप्रभावसे प्रेरित हो सब ही पुराणोंमें तत्कालीन प्रक्षेप मिला दिये" (पृष्ठ २१४)। "हमारे इस ग्रन्थको जो बाह्य दृष्टिसे देखेगा वह यह सोचने लगेगा कि यह ग्रंथ घोर कलियुग प्रवर्तक है या सतयुग प्रवर्तक, क्योंकि विधवाविवाह, समुद्रयात्रा, नियोगविधि, स्पृश्यास्पृश्य, स्त्रियोंका सतीत्व एवं खानपान आदि किसी भी बातमें यह तो दोष ही नहीं बताता। क्या ऐसा ही सतयुग होता है"(पृ०२१४) इसका उत्तर आप इस प्रकार देते हैं, "संघशक्ति बिना भेदभाव मिटे नहीं होती, वैमनस्यको हटाये बिना भेदभाव नहीं मिटता, मानसिक वैमनस्य कलिमें उत्पन्न हुई निराधार कल्पनाको बिना नेस्तनाबूद किये नहीं मिटता और जब हम वेदकालीन सच्चा पुरातन प्रकाश वैदिक रहस्यमें देखते हैं तब वही दिखाई पड़ता है जो हमारे इस ग्रंथमें जगह-जगह कह आये हैं (पृ० २१५) ।

इन अवतरणोंसे सिद्ध होता है कि शास्त्रीजीके विचार कितने युग-परिवर्तनकारी हैं। मैं धर्मशास्त्रका विद्वान् नहीं हूँ इस लिये इनपर मैं अपनी सम्मति कुछ नहीं दे सकता। पाठक स्वयम् विचार करें। मैं इस विषयमें केवल इतना ही कह सकता हूँ कि कलियुग समाप्त हो गया हो या नहीं,

विज्ञानपरिषत्का वार्षिक अधिवेशन

प्रयागकी विज्ञान परिषद्का वार्षिकोत्सव शुक्रवार १५ नवम्बर १९३५ को ५। बजे शामको प्रयाग विश्वविद्यालयके फिजिक्स लेकचर थियेटरमें लखनऊ विश्वविद्यालयके जीवविज्ञान-विभागके आचार्य डा० करमनारायण बाहलके सभापतित्वमें मनाया गया। सदस्यों और अन्य सज्जनोंके उपस्थित होनेपर ५। बजे शामको प्रो० रामदासजी गौड़ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि आजके अधिवेशनके लिए डा० करमनारायण सभापति चुने जावें, जो स्वीकृत हुआ। डा० करमनारायण साहबने सभापतिका आसन ग्रहण किया। मंत्रीने गत वर्षकी रिपोर्ट जो परिषद्की कौन्सिलकी १४ अकटूबर १९३५वाली बैठकमें स्वीकृत हुई थी पढ़कर सुनायी। रिपोर्टकी समाप्तिके पीछे सभापतिने डा० गणेशप्रसादकी मृत्युपर निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया जो सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

विज्ञान परिषद्का यह सालाना जलसा डा० गणेशप्रसादकी अचानक मृत्युपर शोक प्रगट करता है। डा० गणेशप्रसाद इसके सभापति थे और जबसे परिषद स्थापित हुई तभीसे इसके मान्य सदस्य चले आते थे। परिषद्को अपने काममें उनसे बड़ी ही सहायता मिलती रही और उनकी मृत्युसे परिषद्को बड़ी हानि पहुँची है।

इसके पश्चात डा० सत्यप्रकाशजीने "आजकलका पारस" विषयपर एक रोचक व्याख्यान दिया।

व्याख्यान समाप्त होनेके पश्चात् निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

(२) परिषद्का यह जलसा श्री गोविन्दचंद्रको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने परिषदके हिसाबोंकी जाँच की।

परिषत्की वार्षिक रिपोर्ट

श्रीमान् सभापति महोदयकी सेवामें—

विज्ञानपरिषद्को स्थापित हुए इक्कीस वर्ष हो चुके हैं और "विज्ञान"को चलते हुए बीस वर्ष पूरे हो चुके हैं। इन वर्षोंमें काम करनेवालोंके और धनके अभावसे परिषद उतना काम नहीं कर सकी जितना कि इसके जन्मदाता इससे आशा करते थे। उनकी इच्छा थी कि उन सब विषयोंपर जो स्कूलमें पढ़ाये जाते हैं पढ़ाईके योग्य पाठ्य पुस्तकें तैय्यार हो जातीं और विज्ञानके अनेक अंगोंपर रोचक पुस्तकें लिखी जातीं जिससे देशके लोगोंमें विज्ञान पढ़ने और पढ़ानेका उत्साह पैदा हो जाता, रुचि बढ़ती। विज्ञान द्वारा यह काम तो कुछ हुआ, परन्तु संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य ही हुआ कि यदि परिषद् पुस्तकें न निकाल सकी तो क्या, देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक पुस्तकें निकलने लगी हैं और यदि मांग बढ़ती गयी तो आशा है कि परिषद्का बोया हुआ बीज फल लावे और उसके उद्देश्योंकी पूर्त्ति भी हो जावे।

इस वर्ष परिषद्की लगभग ३०५०) की आमदनी हुई। खर्चा भी ३० सितम्बरतक इतना ही हुआ। आमदनीमें १२००) की वह रकम शामिल है कि जो पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसीसे विज्ञापनके लिये मिली। फार्मेसीसे विज्ञापन छपाईके हिसाबमें दो वर्षमें ३०००)के लगभग रुपया मिला। यदि गवर्नमेन्ट और फारमेसीकी सहायता न हो तो काम चलना कठिन हो जावे। हम दोनोंके बड़े कृतज्ञ हैं। पुस्तकें २००) की बिकीं। यदि जो पुस्तकें बिकती हैं छपवा ली जावें तो इनकी बिक्रीसे कुछ आमदनी हो सकती है।

समयानुसार जैसी आवश्यकता हो सामाजिक नियमोंमें फेरफार करना हमारा परम कर्तव्य है। यह धारणा रखकर कि कलियुगमें ऐसी बुराइयाँ होती ही हैं उन बुराइयोंको दूर करनेका प्रयत्न न करना अधर्म है।

पुस्तककी भाषाके विषयमें मुझे अधिक नहीं कहना है। शास्त्रीजीने मराठी स्कूलोंमें शिक्षा पायी है और ऐसे प्रान्तमें रहते हैं जहाँकी भाषा शुद्ध हिन्दी नहीं कही जा सकती। इसपर भी आपने हिन्दीमें अपने विचार प्रकट करनेकी कृपा की है इसके लिए आप हिन्दी भाषा-भाषियोंके धन्यवादके पात्र हैं। इसलिए पुस्तकमें भाषाकी जो त्रुटियाँ रह गयी हैं क्षम्य हैं।

परन्तु आजकलकी दशा देखते हुए तो पुस्तकोंका छपवाना कठिन ही जान पड़ता है। प्रो० रामदास गौड़ ही "विज्ञान" का सम्पादन करते रहे। आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा, तिसपर भी किसी अंकके निकलनेमें बहुत विलंब नहीं हुआ। बड़े ही शोकके साथ लिखना पड़ता है कि गणिताचार्य डा० गणेशप्रसादजी परिषद्‌के सभापतिकी अचानक मृत्युसे परिषद्‌को भारी हानि पहुँची। कौंसिलने निश्चय किया कि उनकी स्मृतिमें विज्ञानका विशेष अंक निकाला जावे। ३० सितम्बरके पहले इस अंकको निकल जाना चाहिए था परन्तु कुछ कारणोंसे रह गया। अब अकटूबरके अंततक अवश्य ही निकल जावेगा।

—सालिगराम भार्गव

अगले वर्षके पदाधिकारी

अगले वर्षके लिये परिषत्‌के नीचे लिखे पदाधिकारी चुने गये—

सभापति—डाक्टर कर्म्मनारायण बाहल, डी० एस्-सी, लखनऊ विश्वविद्यालयके जीवविज्ञान विभागके अध्यक्ष।

उपसभापति—(१) डाक्टर शशिभूषण दत्त, डी० एस्-सी०, रीडर, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय।

(२) प्रोफेसर सालिगराम भार्गव, एम्० एस्-सी०, भौतिक विज्ञान विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय।

प्रधानमंत्री—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी० रीडर गणित विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय।

मंत्री—प्रोफेसर ब्रजराज, एम्० ए०, बी० एस्-सी० एल्-एल्० बी०, कायस्थपाठशाला इंटरकालिज, प्रयाग।

कोषाध्यक्ष—डाक्टर सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, रसायन विभाग; प्रयाग विश्वविद्यालय।

स्थानीय कौंसिलर

(१) डाक्टर श्री रंजन, एम्० एस्-सी०, पी-एच्० डी०, रीडर, वनस्पति विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय।

(२) श्री कन्हैयालाल भार्गव, रईस, कीडगंज, प्रयाग।

(३) डाक्टर नीलरतधर, डी० एस-सी०, प्रयाग विश्वविद्यालय।

(४) प्रोफेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम्० एस्-सी०, कायस्थ पाठशाला इंटर-कालिज, प्रयाग।

बाहरी कौंसिलर

(१) डाक्टर निहालकरण सेठी, डी० एस्-सी०, आगरा।

(२) श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस्-सी०, एल० टी०, विशारद, हेडमास्टर, गवर्नमेंट हाई स्कूल, रायबरेली।

(३) प्रोफेसर रामदास गौड़, एम० ए०, बड़ी पियरी, बनारस शहर।

(४) श्री स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, दी पंजाब आयुर्वेदिक फारमेसी, अकाली मारकेट, अमृतसर।

(५) श्री हीरालाल खन्ना, एम्० एस-सी०, प्रिंसिपल विश्वंभरनाथ सनातन-धर्म्म इंटरकालिज, कानपूर।

इस प्रकार पदाधिकारियोंका चुनाव होनेके अनन्तर श्री रामदास गौड़के प्रस्तावपर और श्री सालिगराम भार्गवके अनुमोदनपर सभापति महोदयको हार्दिक धन्यवाद दिया गया, और सभा विसर्जित हुई।

—सालिगराम भार्गव

——०——

विज्ञानके पिछले पचीस बरस

१—विहंगम दृष्टि

(रामदास गौड़)

१. सम्राट् पंचमजार्जका स्वर्गवास सम्राट् अष्टम एडवर्डका युगारंभ

अंग्रेजीका नया वर्ष संसारके लिये कैसा होगा, कहना कठिन है। उसका आरंभ तो बहुत बड़ी घटनाओंसे हो रहा है। युरोप और अफ्रिका दोनों संस्कृतियोंके महान संघर्षका आरंभ तो पहलेसे हो चुका है। इधर जनवरीके दूसरे ही पखवारेमें ब्रिटिश साम्राज्यकी सबसे भारी अशुभ घटना सम्राट्के निधनरूपमें हो गयी।

ब्रिटिश राजा त्रिगुणातीत है। विधानके निर्माण, व्याख्या और व्यवहार, ये तीन गुण शासन-शक्तिरूपी प्रकृतिके हैं। ब्रिटिश राजा प्रकृतिसे परे पुरुष है, अतः उससे किसी दलके रागद्वेषका सम्बन्ध नहीं। व्यक्तिके निधनपर वह निर्गुण ब्रह्मकी तरह अजर-अमर भी हैं। ब्रिटिश नियमसे सिंहासन कभी सूना नहीं होता। अतः "दि किंग् इज़् डेड, लांग् लिव् दि किंग" कहनेकी प्रथा है। लोकप्रिय पूर्व सम्राट् पंचम जार्जके वैयक्तिक निधनसे वियोग-पीड़ित वर्तमान् सम्राट् और राजमाता एवं राजपरिवारके साथ हमारी पूर्ण सहवेदना और सहानुकम्पा है। भगवान् गतात्माको पारलौकिक शान्ति और सौख्य प्रदान करे और वर्तमान सम्राट्को चिरायु करे।

२. नाशके उद्योगोंमें सफलता

दिवंगत ब्रिटिश सम्राट्के राजत्वकालकी महत्ता अनेक बड़ी बड़ी घटनाओंके कारण इतिहासमें अमिट रूपसे अंकित रहेगी। सबसे बड़ी घटना है युरोपका महासमर जिसमें अपरिमित जननाश हुआ। विज्ञानकी उन्नति जगत्के उपकारके लिये होती है, परन्तु इस महासमरमें जनताके सबसे बड़े अपकारका कारण विज्ञान हुआ। पिछले बीसों बरसोंके वैज्ञानिक विकाससे लाभ उठाकर आततायियोंने अग्निबाण, बमगोले, मशीनगन, पनडुब्बे, पनगोले आदिके प्रयोग किये। पिछले पन्द्रह बरसोंके विकाससे विमानोंके अनेक प्रकार और कई तरहके हवाई जहाज बने। इनका तो समरमें पहले-पहल प्रयोग हुआ। फलतः विमान-गमनमें भारी उन्नतिकी नींव पड़ी और उड्डानविद्याकी खोजका संघटन हो गया, जिससे तबसे लेकर अबतक विकासकी धारा अविरलरूपसे बहती रही।

समरके समयसे ही रणोपयोगी अन्वेषण रसायन और भौतिक विभागोंमें संसारके सभी समुन्नत देशोंमें जारी रहा और अबतक भाँतिभाँतिके अनुसन्धान होते रहे हैं।

इस महासमरमें यद्यपि विज्ञानके अनेक खोजी विद्वान् मर मिटे, तथापि विज्ञानने स्वयं ऐसे लम्बे कदम बढ़ाये कि आश्चर्य्य हुए बिना नहीं रहता।

३. ऐन्स्टैनका समर्थन

यह बात बड़े मारकेकी है कि जिस साल वर्साईकी संधि हुई और विश्वराष्ट्रसंघकी स्थापना हुई, उसी साल अर्थात् सन् १९१९में वह सूर्य्यग्रहण हुआ जिससे ऐंस्टैनके सापेक्षवादका समर्थन हुआ। उसी साल विश्वकी व्यापक भौतिक कल्पनाका जन्म हुआ। उस सूर्य्यग्रहणका छायाचित्र लिया गया जिससे प्रकाशके त्रोटनकेद्वारा सूर्य्यकी अपेक्षा तारे बाहरकी ओर ठीक उसी तरह हटेसे दीखे जिस तरह ऐंस्टैनने हिसाब लगाकर पहलेसे बता रखा था और इस तरह ऐंस्टैनकी एक विशेष धारणाकी पुष्टि हुई। इससे पहले जो बात एक बड़े आदमीकी निजी कल्पना समझी जाती थी, उस वर्षसे एक नये विचारयुगका अग्रगामी सिद्धान्त माना जाने लगा। अब तो इस जड़

जगत्के सम्बन्धमें जितने विचार किये जाते हैं, सबकी तहमें ऐंस्टैनका सापेक्षवाद जड़ जमाये हुए पाया जाता है।

४. एडिंग्टनका विश्वव्यापी मूलांक

इस पुष्टिके दस बरसके भीतर ही ऐसा प्रतीत होने लगा कि गत कई शताब्दियोंके सम्मिलित प्रयत्नसे भी जो बात पहले नहीं जानी गयी थी अर्थात् विश्वकी भौतिक रचना, उसके रहस्योंमें भी मनुष्यका प्रवेश हो सकेगा। प्रयोगशालामें परमाणुके संघटनका पता भी इसी दशकमें लगा। परमाणुकी भीतरी रचना और ऐंस्टैनके जगत्की कल्पना दोनोंके गठजोड़ेसे कुछ यह अनुमान नये ढंगसे होने लगा कि आकाशके असंख्य ज्योतिःपिंडोंके रूप और प्रकाशका विकास कुछ और ही प्रकारसे हुआ है। अब कल्पना आगे पीछे भूत और भविष्य दोनोंके विस्तीर्ण क्षेत्रमें स्वतंत्रतासे दौड़ने लगी, दोनोंकी अटकल लगायी जाने लगी, और देशकी अनन्तताका गठजोड़ा मनुष्यके विकासोन्मुखी मनसके साथ हो गया। छायामापन और छायाचित्रणकी विधियाँ भी स्वच्छन्दतासे काममें आने लगीं। अनन्त देशके कोने-अंतरेतक और आकाशीय महापिंडोंके गर्भतक ज्ञानका दीपक लेकर टटोला गया और ऐंस्टैनके सिद्धान्तोंकी ऐनकसे तथ्योंकी परीक्षाका प्रयत्न हुआ। दूरवीक्षणयंत्र और प्रयोगशाला दोनोंका पूरा सहयोग हुआ। इसका फल एडिंग्टनके "प्रसरणशील विश्व" नामक नये ग्रंथमें निकला जिसमें उन्होंने विश्वमूलांक $१०^{७९}$ निकाला है, अर्थात् इस विश्वके एलेक्ट्रोनों और प्रोटोनोंकी पूर्ण संख्या मालूम की है।

५. विश्वकी कल्पना

पहले तो ऐसा समझा गया कि ऐंस्टैनके नये विचारोंसे वैज्ञानिक जगत्में एक क्रान्ति सी हो गयी और सर ऐज़क न्यूटन अब कहींके न रहे। परन्तु, स्वयं ऐंस्टैनने कभी ऐसे निष्कर्षकी बात नहीं सोची, अपनी जान उन्होंने न्यूटनके सूत्रोंका सुधारमात्र किया और उसकी न्यूनताएँ पूरी कीं और उनकी धारणा यह है कि विचारके विशेष प्रकारके सतत विकासमें प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकारके विचारोंके अलग-अलग स्थान हैं।

फिर भी इतना तो मानना पड़ेगा कि पिछली ईसवी शताब्दीमें जो कल्पनाएँ दृढ़ और सर्वथा सिद्ध समझी जाने लगी थीं उन्हें धक्का जरूर लगा, उनकी जड़ें कई जगह ऐसी हिल गयीं कि उनकी फिरसे मरम्मत करनेकी जरूरत पड़ गयी। जड़-जगत् अब अनन्त शून्य देशसे घिरा सान्त वस्तु नहीं रह गया। अब जड़ जगत् सान्त परन्तु प्रसरणशील हो गया जो सब तरहसे परिपूर्ण और एकरस समझा जाता है। पुराने न्यूटनवाले संश्लेषणमें स्पष्ट निश्चय और पुष्टता थी और न्यूटनके सूत्र देखनेमें कड़े और उकठेसे लगते थे। परन्तु प्लांकके क्वांटमवादसे उन नियमोंकी कड़ाई मर गयी और उनमें एक प्रकारकी अनिश्चितता जन्मी और लचीलापन आ गया।

६. गणित और जीवविज्ञान

पिछली शताब्दीमें लोग सोचते थे कि न्यूटनका संश्लेषण तो अन्तिम और निर्णीत है ही, भविष्यमें विज्ञानके विकासमें ऐसे सूत्र निकलेंगे जो इन सूत्रोंका समर्थन करते हुए जीवनकी समस्याओंके और अंगोंकी पूर्णतामें सहायक होंगे और विश्वके समस्त नियमोंका पारस्परिक समन्वय हो जायगा। ऐंस्टैनके विचारोंने इस आशाको पूर्ण करनेमें बहुत कम सहायता दी और जीवविज्ञानने तो कुछ भी सहायता न दी। गणितके विकासने तो अपनेको अधिकसे अधिक विस्तीर्ण क्षेत्रोंमें फैलाया और सर जेम्स जीयन्सने तो उसके व्यावहारिक पहलूकी भारी विजय प्रत्यक्ष दिखायी है। यद्यपि गणितकी चढ़ाई जीवविज्ञानके गढ़पर काफी जोरोंसे हुई है और काम करनेवालोंकी सेना जीवविज्ञान विभागमें बहुत बढ़ गयी है, तो भी जैसा संश्लेषण न्यूटनने भौतिकीय ज्योतिर्विज्ञानमें किया वैसा जीवविज्ञानमें कोई कर न पाया। उसकी शक्तियाँ अधिकाधिक बिखरीसी रहीं और विशेषज्ञताकी ओर उसकी प्रवृत्ति अधिक रही।

७. जीवविज्ञानका विकास

डारविनके नियमोंके साथ मेंडेलके सूत्रोंको भी सन्निविष्टकर लिया गया, परन्तु वंशानुक्रमकी प्रकृति और विविधताके कारण अब भी अनुसन्धानके विषय हैं, अभी इनकी सचाई निश्चयात्मक रूपसे मालूम नहीं की गयी है। डारविन और मेंडेलके सूत्रोंका परिणाम यह नहीं हुआ कि

सम्पादकीय टिप्पणियां

इन्दौरके ज्योतिष-सम्मेलनके प्राण विद्याभूषण पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैट

पूज्य मालवीयजीके सभापतित्वमें इन्दौरका अखिल भारतीय ज्यौतिषसम्मेलन गत नवम्बरके पहले पाखमें लगातार छः दिनोंतक हुआ। विचारविनिमय समितियाँ तो पहलेसे दस दिन बराबर छः छः घण्टे रोज काम करती रहीं। उन दिनों तो मैंने देखा कि उस सम्मेलनके प्राण पं० दीनानाथ शास्त्री दिन-रात कार्याव्यस्त रहते थे। रात भर सोते न थे।

इस सम्मेलनके लिये सात-आठ बरस पहलेसे शास्त्री-जी परिश्रम करते रहे हैं। ज्योतिःशास्त्रके तीर्थ एलीचपुरसे इन्दौर आकर शास्त्रीजीने इन्दौरमें इसकी जोत जगायी। पंचांगोंके एकीकरणके लिये कमिटी बनी। इन्दौराधीशका आश्रय मिला। प्रधान अमात्य सर सिरेमल बापना, सरदार किबे आदिने बड़ी सहायता की। शास्त्रीजीकी विद्या, उनके त्याग, उनकी तपस्याको पहचाना। फिर भी, उन्हें स्थानीय एवं प्रान्तीय स्वार्थी पंडितोंके साथ घोर संघर्षमें काम करना पड़ा है। आपने अपूर्व धृतिके साथ काम किया। रूढ़िवादियोंका एक ओरसे और पाश्चात्य-प्रेमियोंका दूसरी ओरसे विरोधी और प्रतिगामी संघर्षको ध्वस्त करते हुए आपने विजय प्राप्त की। यह बड़े मारकेकी बात है। आपके अनवरत परिश्रमका कुछ पता या तो उन्हें लगेगा जो पाँच बरसोंकी रिपोर्ट पढ़ेंगे या जिन्होंने उन्हें इस सम्मेलनमें

सुस्थापित सिद्धान्तोंसे निष्कर्ष निकाले जायँ। केवल इतना ही हुआ कि खोजी लोग विस्तारकी बातोंपर अधिक ध्यानसे विचार करें और बारीकीसे परीक्षा करें। इस विषयमें आज भी अधिकसे अधिक प्रयोग और परीक्षाएँ हो रही हैं। आगमसे नहीं, निगमनसे काम लिया जा रहा है।

महासमरके समय जीव वैज्ञानिकोंका एक दल इस विचारका बन गया था कि जीवनके रासायनिक और भौतिक पहलुओंपर ही अनुसन्धान करके हम जीवनके रहस्योंका मर्म्म नहीं समझ सकेंगे, बल्कि जीवन अपने आप उत्पन्न होनेवाली वस्तु है। बर्गसनने मनोवैज्ञानिक पहलूसे जीवनके रहस्योंपर विचार करनेकी प्रणालीपर जोर दिया। जीव वैज्ञानिक पहलूसे उन्होंने किसी हदतक लमार्कके इस भावको फिरसे जगाया कि जिस दिशामें फैलनेका सुभीता मिलता है उसी दिशामें जीवनका प्रसार होता है और जीवनकी इस कोशिशका परिणाम वंशानुक्रमसे एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीतक चलता हुआ देखा जाता है। इस समय अधिकांश जीवविज्ञानी इस बातको नहीं मानते। परन्तु, रसायनशास्त्रसे नहीं बल्कि दर्शनशास्त्रसे अपने विचार लेकर, विचारकोंका एक दल वास्तविक जीवनके अनुशीलनके साथ जीव-रसायनमें जो प्रगतिशील काम हो रहा है उससे उसका समन्वय करनेमें लगे हुए हैं। स्वर्गीय प्रोफेसर पैट्रिक गेडीजने यह भविष्यवाद किया था कि बीसवीं शताब्दीमें जीवनकी विजय होगी और यह जीव-विज्ञानका ही युग समझा जायगा। ऐसे लक्षण दीख रहे हैं कि संभवतः यह भविष्यवाद ठीक उतरे। इतनी बात तो प्रत्यक्ष है कि आज सर्वसाधारणकी प्रवृत्ति समस्त जीवनकी एकता माननेकी ओर है, चाहे यह कोरी दार्शनिक कल्पना ही क्यों न हो और चाहे हमें उसका रहस्य अभी न मालूम हो तो भी किसी-न-किसी विधिसे काल पाकर नीचे दरजेके जीवन-से ही ऊँचे दरजेके जीवनका विकास हुआ है।

८. उपसंहार

विज्ञानका विकास प्रत्येक क्षेत्रमें गत पचीस बरसोंमें बड़े वेगसे हुआ है। प्रत्येक क्षेत्रकी प्रगति व्यक्ति और समष्टि दोनोंके पारस्परिक सम्बन्ध और ज्ञानविज्ञानकी एकताकी ओर ले जानेवाली हो रही है। हमने इस लेखमें केवल विहंगम दृष्टि दी है। आगेके लेखोंमें प्रत्येक विषयको अलग-अलग लेकर उसके विकासका प्रसार दिखानेका प्रयत्न किया जायगा।

प्रत्यक्षतः कार्य्यव्यस्त देखा। साठ बरसकी अवस्थामें काममें यह लगन, इतनी कड़ी मेहनत और इस दरजेकी सहनशीलता दुर्लभ है।

यह सब होते हुए भी आपका "तपःस्वाध्याय" विलक्षण है। वेदार्थ-तत्त्वज्ञ आप सरीखा इस समय भारतमें नहीं है। आपने इस संबंधमें अन्वेषण करके गणितद्वारा वेदोंकी प्राचीनता अबसे तीन लाख बरस पहले ठहरायी है। इसी क्रमसे ब्राह्मणोंका, सूत्रोंका, उनके भाष्योंका, भारतीय समरका, कालमान ज्योतिष और गणितके आधारपर निश्चित किया है। शास्त्रीजी जैसे विद्वान् हमारे देशकी विभूति हैं और प्राच्य विज्ञानके विद्वद्दल हैं। आपकी तपस्याकी सफलतापर हम सादर अभिनन्दन करते हैं। परमात्मा आपको चिरायु करे और सत्यज्ञानके प्रसार एवं प्रचारमें आपको पूर्ण सफलता दे। रा० गौ०

पंचांगोंका एकीकरण

हमारे देशमें पंचांगोंका भारी महत्त्व है। पाश्चात्य देशोंमें वह "नाटिकल अलमानाक" वा "नाविक पंचांग" इसलिये कहलाता है कि उसका उपयोग मुख्यतः समुद्रयात्रामें होता आया है। परन्तु हमारे देशमें धर्म्मार्थ काममोक्ष चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्तिमें पंचांग एक आवश्यक वस्तु है। ऐसी दशामें जैसे देशकी संस्कृति एक है, पंचांगका भी एक होना आवश्यक है। इस बातपर सैकड़ों बरसोंसे प्रयत्न होता आया है। पिछले सम्मेलनमें ही जाकर करण ग्रंथोंको बीजसंस्कार देनेका पूरा निश्चय हुआ है और यह ठहराया गया है कि जिस चालनसे वेधोपलब्ध गणित मिले और तदनुकूल निरयण पंचांग बने, उसीको सर्ववादिसम्मत माना जाय। पंचांगोंके प्रस्तुत होनेपर न्यायमंडल जिसको शुद्ध स्वीकार कर लेगा, उसीका दिया चालन प्रमाण माना जायगा और सम्मेलनद्वारा स्वीकृत होगा। यह पद्धति समीचीन है और सभी वैज्ञानिकों द्वारा समर्थनके योग्य है। रा० गौ०

आचार्य्य धन्वन्तरिकी घुड़कियाँ

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें सम्मिलित पंचभूत परिषत्के निर्णायकोंने स्पष्ट कर दिया है कि प्राच्य और प्रतीच्य दृष्टिकोण अत्यन्त भिन्न हैं और दोनोंके वर्गीकरणोंमें परस्पर कोई विरोध नहीं है। साथ ही उन्होंने यह आशा प्रकट की कि आगेके सम्मेलनोंद्वारा वह "किसी एक उपादेय निर्णयको प्राप्त कर सकेंगे जो कि प्रत्यक्ष तथा अनुभवात्मक तर्कपर स्थित हो सकेगा।" यह निर्णय सर्वमान्य है, अत्यन्त समीचीन है और विशेषतः "प्रत्यक्ष तथा अनुभवात्मक"वाली बात प्रत्येक वैज्ञानिकके लिये सन्तोषदायक है।

इस परिषत्में जो कुछ "संधाय संभाषा"में हुआ उसके वर्णनमें आचार्य्य धन्वन्तरिने कुछ भ्रमात्मक बातें लिखीं जिनका स्वामी हरिशरणानन्दजीने अपने उस लेखमें जो विज्ञानके पिछले अंकमें प्रकाशित हुआ, बड़ी योग्यतासे निराकरण किया। उनकी भाषा संयत थी। उसे पढ़कर कोई नहीं कह सकता कि उन्होंने किसीको गालियाँ दीं। "आचार्य्य धन्वन्तरि"का उनपर यह दोषारोप कि वे गालियाँ देते हैं, व्यर्थ है। झगड़ा मोल लेनेवाले प्रायः इसी विधिका प्रयोग करते हैं। क्या सहयोगीका यही उद्देश्य है? उसकी घुड़कियाँ विनयकी सीमासे बाहर हैं।

सहयोगीने हालमें जाने गये विद्युत्कणोंके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न कर डाले हैं, जिनके उत्तर वह चाहता है। आचार्य्य महोदयसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे विज्ञानके पिछले चार-पांच बरसोंके अंक पढ़ डालें और आगे भी बराबर पढ़ते चलें तो उनकी शंकाओंका समाधान सुगमतासे हो जायगा। विज्ञान इन्हीं विषयोंको समझानेके लिये तो निकलता ही है। उनके जितने प्रश्न हैं सबका उत्तर मिल जायगा। जैसे आयुर्वेदशास्त्रका अध्ययन करनेको समय श्रम और तपस्या चाहिये वैसे ही भौतिक विज्ञानका अध्ययन करनेको भी समय श्रम और तपस्याकी आवश्यकता है। एक-एक विज्ञानके अध्ययनमें जिन्होंने जीवन लगा दिया है, उनकी तपस्याका मूल्य समझना चाहिये। यदि आचार्य्य महोदय चाहें कि कोरे तर्कसे, आपसकी बहससे, थोड़े ही समय, श्रम और तपस्यासे, बहुत थोड़ा मूल्य देकर वह सम्पत्ति प्राप्त कर लें, तो संभव नहीं है। प्राच्य विद्वान्के लिये जैसे तपस्या चाहिये वैसे ही प्रतीच्यके लिये भी चाहिये। वस्तुतः सत्य एक ही है, उसे देखनेके दृष्टिकोण भिन्न हैं। अपनेसे भिन्न दृष्टिकोणसे देखना और उसी मार्गसे चलकर उसी सत्यतक पहुँचना बिना प्रयास संभव नहीं है।

सत्य एक ही है तो पूरब-पश्चिममें भेद क्यों दीखता है ?

सच्चा वैज्ञानिक अपनेको सर्वज्ञ और निर्दोष नहीं मानता। वह अत्यन्त विनम्र होता है। वह सदा यही कहता रहता है कि "विज्ञानके अगाध पारावारके किनारेकी कंकड़ियोंसे अधिक हमने नहीं बटोर पाया है।" उसके पास सर्वज्ञ और सर्वसामर्थ्य-सम्पन्न तपस्वी ऋषियोंकी विद्याका सहारा नहीं है। वह खोजता है, अनुभवकी कसौटीपर कसता है, और ठीक निगमन विधिसे ही अन्तिम निष्कर्षपर पहुँचता है। प्राच्यविधि भी यही है। ऋषियोंने इसी विधिसे काम लिया है। जिस तरह बाह्यकरणोंको सहायता देनेके लिये उसने सूक्ष्मातिसूक्ष्म उपकरण बनाये, ऋषियोंने उसी तरहके बाहरी उपकरण भी बनाये और योगसाधनसे अपने शरीरमें ही सूक्ष्म उपकरण विकसित किये। इन्हीं बाहरी और भीतरी इन्द्रियोंसे काम लेकर अनुभव किया और सत्यतक पहुँचे। उनके निष्कर्ष भिन्न दृष्टिकोणसे स्थापित हुए हैं। तिसपर उनकी भाषा भी किसी अतीतयुगकी है इसीलिये सत्यका कुछ भिन्नरूप दीखता है। (१) ऋषियोंकी भाषाके अत्यन्त प्राचीनकालकी होने, (२) आनुषंगिक साहित्यके विनष्ट हो जाने और (३) शिक्षण-परम्पराके टूट जानेके कारण—आज जिस तरह हम शास्त्रोंका अर्थ लगाते हैं, ठीक-ठीक अर्थ वही है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

यदि विज्ञानके किसी निःसंशय अटल और अखंड निष्कर्षके विरुद्ध कोई शास्त्रीय बात हो, तो मैं ऋषियों और शास्त्रोंपर अक्षुण्ण आस्था रखते हुए यही कहूँगा कि मैंने शास्त्रीय बातको यथार्थतः समझा नहीं। उसका अर्थ सत्यके विपरीत समझना मेरी भूल है।

मैं समन्वयवादी हूँ। मेरे विचारमें केन्द्रस्थ सत्यके मार्ग दोनों ही हैं। समझका फेर ही मतभेदका कारण है। परन्तु समन्वय करनेमें उतावली नहीं चाहिये। यह मार्ग अत्यन्त कठिन है। बड़े-बड़े चतुर इसमें चूक जाते हैं। इसका विनयन बड़ी तपस्या माँगता है। प्रसिद्ध तपस्वी महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे महाविद्वान् और योगी वेदोंमें विज्ञानके तथ्य निकालनेकी कोशिशोंमें कितने चूके, सभी जानते हैं। अतः समन्वयके कंटकाकीर्ण मार्गमें सावधानीसे चलना चाहिये। साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि विज्ञान विकासपथानुगामी है। उसकी धारणाएँ भी बड़ी सावधानीसे स्वीकार की जाती हैं। ऐन्स्टैनके जगत्प्रसिद्ध सिद्धान्त भी अभी कसौटीपर कसे ही जा रहे हैं। उतावलीसे निश्चयपर आ जाना विद्वज्जनोचित विनयनके विपरीत है।

अनुवादकी भयंकरता। तज्जनित भ्रान्ति

पाश्चात्य सिद्धान्तोंके समझनेमें पारिभाषिक शब्दोंके भ्रान्त उल्थोंसे बड़े भयंकर प्रमाद उत्पन्न हो गये हैं। अँग्रेजीका "एलिमेंट" शब्द ऐसा ही है। हम नहीं जानते कि यूनानी विद्वानोंमें, जिनसे यह शब्द अँग्रेजीमें आया है, "एलिमेंट" शब्दके अर्थकी व्यापकता कितनी थी। परन्तु अँग्रेजीमें तो यह जिस अर्थमें आया है उस अर्थमें उसका अर्थ "तत्व" करना भारी भूल है। रसायन विज्ञानने "एलिमेंट"की धारणाका तो खंडन किया है, परन्तु "तत्व" की धारणाका खंडन नहीं हुआ है। दार्शनिक "तत्व" यूनानियोंका "एलिमेंट" नहीं है। जान पड़ता है कि चार्वाकके चार भूतोंका वाद लेकर ही यूनानी दर्शनोंका विकास हुआ है। वहाँ पाँचवाँ भूत, आकाशतत्व नहीं है। हमारे दर्शनोंमें "तत्व"की धारणा बहुत सूक्ष्म है। साधारणतया जिसे हम पृथ्वी, जल आदि कहते हैं, वे तो पंचीकृत हैं। बात यह है कि पृथ्वी, जल आदिके अभिधेय पदार्थ "तत्व" नहीं हैं। इनके लक्ष्यार्थ ही तत्व हैं। भौतिक विज्ञानमें पदार्थकी घन, द्रव, वायव्य, आग्नेय, ये चार अवस्थाएँ मानी हैं। पाँचवीं वस्तु वा वस्तुकी अवस्था वह ईथरको मानते हैं जो ओतप्रोतभावसे सर्वव्यापक है। वह देशमात्रमें परिपूर्ण है, उसीसे सारा अवकाश भरा हुआ है। यह काल्पनिक वस्तु है, क्योंकि इसपर प्रयोग होना संभव नहीं है। परन्तु इसकी कल्पना करके अनेक सिद्धान्त, अनेक सूत्र इसीके आधारपर सत्य निकले हैं। इन्हीं पाँचों को हम क्रमशः पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश कहते हैं। हम यदि इतना समझ लें तो वैज्ञानिकोंको पाँचों तत्वोंकी धारणामें कोई विरोध नहीं रह जाता। पृथ्वीका लक्ष्यार्थ घन, जलका लक्ष्यार्थ द्रव, वायुका लक्ष्यार्थ वायव्य, अग्निका लक्ष्यार्थ आग्नेय और आकाशका लक्ष्यार्थ

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०।३।५॥

भाग ४२ } प्रयाग, मीनार्क, संवत् १९९२ वि०। मार्च, सन् १९३६ ई० { संख्या ६

मंगलाचरण

भगवद्वचनावली

नहिकश्चित् क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत्
कार्य्यतेह्यवशः कर्म्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः
तस्मादसक्तः सततं कार्य्यं कर्म्म समाचर
असक्तोह्याचरन्कर्म्म परमाप्नोति पूरुषः
स्वे-स्वे कर्म्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः
स्वकर्म्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्

—श्रीमद्भगवद्गीता

जो कुछ अपना है उसकी रक्षा

क्षेमकी चिन्ता

१. जीवनके लिये जरूरी बात

प्राणियोंका जीवन सच्चा है। जन्मसे लेकर मरण तक मनुष्य जीता है।

जीवनका लक्षण विशेष रूपसे अपनी और अपने वंशकी रक्षाके लिये निरन्तर जतन करते रहना है।

खाना-पीना, पहिरना ओढ़ना, घर-द्वार, सफाई, मलमूत्रका त्याग, इत्यादि **शरीर-यात्राके** काम कहलाते हैं। ये कर्म्म अपनी रक्षाके लिये किये जाते हैं। मन-पर काबू रखना और ईश्वरको उपासना करना अपने भीतरी मनुष्यकी रक्षाके लिये जरूरी है। ये कर्म्म भी अपनी रक्षाके लिये जरूरी हैं।

अच्छी सन्तानका पैदा करना, उसका पालन-पोषण, रक्षा, और उसे उत्तम बनानेका जतन करते रहना यह वंशकी रक्षा है। इसीमें समाजकी भलाई और रक्षा है।

२. हर आदमीका कर्तव्य

इसलिये "**रक्षा**" मुख्य बात है। सबको **रक्षाकी** शिक्षा पाना जरूरी है। हर आदमीका जरूरी कर्त्तव्य है कि **अपनी रक्षा, और समाजकी रक्षा करना** सीखे। **हरेक मनुष्यके दो कर्त्तव्य हैं, अपनी रक्षा और समाजकी रक्षा।** हर जिम्मेदार आदमीको चाहिये कि सोनेसे पहले अपने दिनभरके कामको सोचे कि मैंने **अपनी रक्षा और समाजकी रक्षाका** क्या-क्या काम किया। और सोकर उठे तो सोचे कि अपनी रक्षा और समाजकी रक्षाके लिये मुझे आज क्या-क्या करना चाहिये।

बात यह है कि बिना कुछ किये आदमी एक क्षण भी नहीं रह सकता। फिर बिना सोचे विचारे काममें लगेगा तो काम ही खराब होगा।

३. राजा और पिताका कर्त्तव्य

पिताकी सन्तान उसके बच्चे हैं। राजाकी सन्तान उसकी प्रजा है, समाजपति या प्रजापतिकी सन्तान समाज है। रक्षाकी शिक्षा जैसे पिता अपने बच्चोंको देता है, राजा अपनी प्रजाको, समाजपति अपने समाजको, देता है।

४. चार वर्णोंकी सृष्टि

संसारमें समाजके चार विभाग हैं। समाज चाहे मनुष्यका हो और चाहे मनुष्येतर प्राणियोंका। ईश्वरने ये चार विभाग जीवनके नियमके द्वारा कर दिये हैं।

पहला विभाग है, शिक्षाका। प्राणिमात्रको दोनों तरहकी शिक्षा मिलनी चाहिये। बड़ोंका काम है कि छोटों-को, अशिक्षितोंको सिखावें। इसे **दान** इसलिये कहते हैं, कि जिसके पास नहीं है, उसे हम देते हैं। सिखानेवाला बड़ा है, क्योंकि "बढ़ा" है, वृद्ध है, उसके पास वह है जो उसके पीछे आनेवालेके पास नहीं है। वह इसीलिये "अग्रज" बड़ा भाई कहलाता है। पिता भी सन्तानको सिखाता है। इसीलिये सिखानेवाले बड़े हुए। शरीरमें भी दिमाग सारे शरीरको सिखाता है और दिमागके ही अनु-सार शरीरके सभी अंग काम करते हैं।

रक्षा दूसरा काम है। यह भी बड़ेका ही काम है जिसमें बल-बूता है। बच्चा बड़ा होता है तो रक्षाके काम अपने आप कर लेता है।

जीविका तीसरा काम है। यह भी समर्थका काम है। बच्चे और बूढ़े यह काम नहीं कर सकते।

सेवा चौथा काम है जो थोड़ा बहुत सभी कर सकते हैं।

इस तरह चार तरहके लोग सारे संसारमें पाये जाते हैं। हमारे देशमें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रके नामसे चार वर्ण हैं।

विज्ञान इन चारोंपर विचार करेगा।

शिक्षा-रक्षा ये दोनों अपने धनको, बलको, योग्यता-को तथा अन्य सुखके साधनोंको बचाकर रखने और उनसे पूरा लाभ उठानेका जतन करते हैं।

५. शिक्षा-रक्षा दोनों ही क्षेम हैं

हम इस अंकमें क्षेमकी ही चर्चा करेंगे। **जीविका-**

सेवा इन दोनोंका काम धनका बलका, योग्यताका और अन्य सुखके साधनोंका उपार्जन, जुटाना, इकट्ठा करना है। इन दोनोंको हम योग कहेंगे।

६. क्षेमका विचार पहले क्यों ?

कहनेमें योग-क्षेम समासमें योग पहले आता है। यह सच भी है कि पहले आदमी सामग्री जुटाता है, तब उसका सदुपयोग, भोग, और उसकी रक्षा होती है। यही स्वाभाविक भी है। कोई समाज इन दोनोंके इस क्रमके बिना एक क्षण भी जी नहीं सकता।

७—हमारे देशका योगक्षेम

बिगड़ा हुआ है। जुटानेके साधन और साधक दोनों ही अयोग्य हो गये हैं। रक्षा, सदुपयोग और भोगकी विधियाँ भी बिगड़ गयी हैं? योगको योग्य बनाना है और क्षेमकी विधियोंको सुधारना है।

भगवान्‌की कृपासे कुछ न कुछ तो जुटता ही है, परन्तु उससे भी ठीक-ठीक काम नहीं लिया जाता। विधि ठीक कर ली जाय, उस थोड़ेसे भी ज्यादासे ज्यादा लाभ उठाया जाय, तो सुख तो तुरन्त बढ़ जाय। और थोड़ेकी भी ठीक रक्षा सीख जानेसे जब आमदनी बढ़ेगी, तब हम उससे और ज्यादा सुख उठा सकेंगे। इसीलिये क्षेम हमारे देशके लिये पहली बात है। इसीलिये हम पहले क्षेमका ही विचार करते हैं।

८—हम सुखको कैसे बढ़ावें ?

इच्छा भर भोगकी सामग्री मिलनेसे हमें पूरी तृप्ति होती है। पूरी तृप्तिसे ही पूरा सुख मिलता है। संसारकी सामग्रीमें हम जितनेकी इच्छा करते हैं उतनी तो कभी मिल नहीं सकती। क्यों ? क्योंकि हमारी इच्छामें तो कोई रुकावट नहीं हो सकती, जितनी चाहें हम बढ़ा सकते हैं, परन्तु सामग्री तो थोड़ी ही है, एक हदतक ही इकट्ठी हो सकती है, अपनी इच्छानुसार बढ़ायी नहीं जा सकती।

इच्छा भर सामग्री न मिलनेसे हमें पूरी तृप्ति नहीं होती, पूरा सुख नहीं मिलता।

अगर हम सुखका हिसाब गणितसे समझना चाहें तो यों समझ सकते हैं।

सामग्रीको हम भाग मानलें और इच्छाओंको हर तो $\frac{\text{सामग्री}}{\text{इच्छाएं}}$ = तृप्ति = सुख, यह समीकरण बनता है। सामग्री-परिमित होती ही है। भागमें जितना है उतनी ही तो मिलेगी। इच्छाएँ तो अपरिमित हैं, हम जितनी चाहें बढ़ावें। हर जितना ही बढ़ेगा, तृप्तिका मूल्य उतना ही घटता जायगा। इच्छाएँ बढ़ती हैं, तो सुखको हर लेती हैं, मान लीजिये कि सामग्री एक है और इच्छाएँ सौ, तो सुखका मूल्य हुआ $\frac{१}{१००}$, अर्थात् प्राप्त सामग्रीसे हमें शतांशही तृप्ति मिली।

सामग्री मनचाही रीतिसे बढ़ायी नहीं जा सकती, परन्तु इच्छाएँ घटायी जा सकती हैं। यदि भाग ज्योंका त्यों रहे और हरको हम घटाते जायँ, तो सुखकी कामना अर्थात् तृप्ति बढ़ती जायगी। जैसे सामग्री एक ही रहे और इच्छाएँ सौकी जगह घटकर नब्बे रह जायँ, तो तृप्ति होगी $\frac{१}{९०}$ जो $\frac{१}{१००}$ से अवश्य ही अधिक है। इच्छाएँ इसी तरह घटकर ९० से ८०, ८० से ७०, ७० से ६०, ६० से ३०, ३० से १०, और १० से २ हो जायँ तो तृप्ति भी $\frac{१}{९०}$ से $\frac{१}{८०}$, $\frac{१}{८०}$ से $\frac{१}{७०}$, $\frac{१}{७०}$ से $\frac{१}{६०}$, $\frac{१}{६०}$ से $\frac{१}{३०}$, $\frac{१}{३०}$ से $\frac{१}{१०}$ और $\frac{१}{१०}$ से बढ़कर $\frac{१}{२}$ हो जाय। इच्छा ज्यों-ज्यों घटती जाती है त्यों-त्यों तृप्ति बढ़ती जाती है। इच्छा दोकी हो और सामग्री एक ही हो तो तृप्ति आधी होती है। **इच्छा घटाकर एक कर ली जाय तो एक सामग्रीसे ही पूरी तृप्ति हो जायगी, पूरा सुख मिल जायगा।**

जितना मिले उतनेपर ही तृप्त हो जाना पूरा सुख है।

यही "सन्तोष" है।*

९. क्षेमका मार्ग

अब जो कुछ सामग्री अपनी है, चाहे वह धन हो,

* सुख यदि संतोषसे भी अधिक बढ़ाना हो तो इच्छा घटाते चलो। भाग सामग्री बढ़ती ही जायगी। सामग्री एक ही रहे और इच्छा शून्य हो जाय तो अनन्त आनन्द, अनन्त सुख प्राप्त होता है—

$$\frac{\text{सामग्री}}{\text{इच्छा}} = \frac{१}{०} = \infty$$ = अनन्त सुख। आध्यात्मिक साधकके लिये ही यह अन्तिम निष्कर्ष है। साधारण सांसारिक मनुष्यके लिये जो प्रवृत्तिमार्ग पर आरूढ़ हैं, सन्तोषवाला ही समीकरण पर्य्याप्त है।

बेकार रहना महापाप है

"मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्म्मणि"

१—जीवनका लक्षण कर्म्म है

जीते रहनेका लक्षण है कर्म्म, चाहे वह जीनेवालेकी इच्छासे हो चाहे बिना इच्छा।

कोई आदमी बिना कर्म्म किये एक क्षण भी रह नहीं सकता। सोतेमें भी कर्म्म करता रहता है। साँस लेना, भोजन पचाना, रक्तका संचार, शरीरकी वृद्धि और ह्रास—इस तरहके सैकड़ों काम शरीरके भीतर सोते हुए भी होते रहते हैं।

जागतेमें तो मनुष्य इन सैकड़ों कामोंके सिवा खुली आँखोंसे बराबर देखता, कानोंसे सुनता, और दूसरी इन्द्रियोंसे कुछ-न-कुछ करता रहता ही है, चाहे यह काम व्यर्थ करे चाहे प्रयोजनसे करे।

२. बेकारीके भाँति भाँतिके रूप

साधारणतया आदमी बेकार कामोंमें अधिक लगा रहता है, अपना समय खोता है।

जिनके पास खानेको है दूसरोंकी कमाईसे लाभ उठाते हैं, उन्हें तो कभी-कभी समय काटना कठिन हो जाता है। इसलिये वे तमाखू आदि पीते हैं और धनको धुएँमें फूँकते हैं। शराब भंगादि पीते हैं, गप लड़ाते हैं, ताश, गंजिफे, शतरंज, कैरम, गोटी आदि भाँति-भाँतिके समय और स्वास्थ्यका नाश करनेवाले खेल खेलते हैं। आवारा घूमते हैं। उपन्यास और कहानियोंमें धन, स्वास्थ्य और समय खोते हैं। कनकौआ, पशु और पक्षी लड़ाते फिरते हैं। इनसे कहो कि यह अवगुण हैं, तो हर आदमी अपनी लतकी हिमायतमें वेद-पुराण, कुरानहदीस और "उलमायदीन" और आचार्य्योंका ढेरों प्रमाण देने लगेगा और पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जायगा। परन्तु **ये सब राष्ट्रका घोर अपराध कर रहे हैं और परमात्माके आगे घोर पाप। ये समाज को लूट रहे हैं।**

दूसरे लोग ऐसे भी हैं जिनके पास खानेको है, परन्तु निश्चिन्त नहीं हैं, कुछ परिश्रम करते हैं, कमाते हैं। फिर भी अपने खाने भरको कमाकर संतुष्ट रह जाते हैं। अपने बाकी बचे समय और पुरुषार्थको किसी उद्यममें नहीं लगाते। वह अपनी फुरसतका समय निरुपयोगी

चाहे बल, चाहे विद्या हो चाहे सेवा, उसकी रक्षा करना, उसे नष्ट न होने देना, उसे उत्तमसे-उत्तम काममें लाना, उससे अधिकसे-अधिक मूल्य पाना, उससे अधिकसे अधिक तृप्ति, उससे अधिकसे-अधिक सुख पाना हमारा उद्देश्य है। हमारी इच्छाएँ अधिकके लिये तब ही होनी चाहिये जब हम अपने साधनोंसे सुखकी सामग्री बढ़ा सकें।

यदि हम बढ़ानेका जतन नहीं कर सकते तो इच्छा करना अपने सुखको वृथा ही घटाना है, बरबाद करना है।

परन्तु बढ़ानेका जतन तो हम पीछे करेंगे। पहले यह तो हम सोचें कि जितनी सामग्री हमारे पास है, **उतनेकी रक्षा हम भरपूर कर रहे हैं, उतनेसे हम सोलहो आना लाभ उठा रहे हैं?**

रक्षा हम नहीं करते, बरबाद करते हैं, तो बढ़ाकर क्या करेंगे? क्योंकि हम बढ़ाते जायँगे, और सामग्री बरबाद होती जायगी तो हमारा जतन निष्फल जायगा।

जो हमारे पास है, उससे सोलहों आना लाभ हम नहीं उठाते, तो हम उसे अंशतः बेकार ही रखते हैं। यही दशा है तो हम सामग्री बढ़ाकर क्या करेंगे, उसे भी तो अंशतः बेकार रखेंगे। तब भी हमारा जतन निष्फल जायगा।

इसी लिये, जो हमारे पास है—चाहे वह बुद्धि हो, चाहे बल हो, चाहे धन हो, चाहे सेवा हो—हमें उसकी रक्षा करना चाहिये, उसे नष्ट न होने देना चाहिये, उससे अच्छेसे अच्छा काम लेना चाहिये, उससे अधिकसे अधिक मूल्य पाना चाहिये, उससे अधिकसे अधिक तृप्ति, अधिकसे अधिक सुख, पाना चाहिये।

कामोंमें खोते हैं। वह अगर अपनी फुरसतसे पूरे सोलह आने फायदा उठाना चाहें तो उठा सकते हैं, परन्तु वे इस बातपर ध्यान नहीं देते कि हम **समाजसे जितना लेते हैं उतना उसे दे नहीं रहे हैं। इस प्रकार ये समाजको, बिना जाने ही ठग रहे हैं या उसकी चोरी कर रहे हैं।**

तीसरे लोग ऐसे हैं जिनके पास खानेको नहीं है। परन्तु जीविकाका सहारा है। उन्हें मजूरी काफी मिल जाती है। मजूरी करके भी उन्हें फुरसत मिलती है कि उसका सदुपयोग करें, परन्तु आलस्यसे और अज्ञानसे उसका सोलहों आना लाभ नहीं उठा सकते। वह अधिक कमाकर अपना सुख बढ़ा सकते हैं और समाजको लाभ पहुँचा सकते हैं, परन्तु उनका आलस्य और अज्ञान बाधक होता है। **ये भी समाजको अपने दोषसे हानि पहुँचाते हैं।**

चौथे लोग ऐसे हैं जिन्हें काम ही नहीं मिलता। सुखकी सामग्रीका तो प्रश्न ही नहीं है, जीवनकी सामग्री, खाना-कपड़ा ही नहीं मिलता। वे काम न मिलनेसे बेकार रहते हैं। भूखों मरते हैं। ऐसे लोग हमारे दरिद्र देशमें भरे हुए हैं कि सालके-साल बीत जाते हैं पर भरपेट आहार नहीं मिलता। तन ढाकनेको चीथड़ा नसीब नहीं होता। खेतोंमें काम करते हैं, उससे मुश्किलसे देहकी रक्षा भर खाना मिलता है।

ये समाजके वह अंग हैं जो लुटे हुए हैं। ये प्रजापतिकी वह सन्तान हैं जिन्हें समाजने अपनी बेपरवाईसे बुरी दशामें रखा है और जिनका हक छीनकर उन्हें दे दिया है जो उसका दुरुपयोग करते हैं। समाजके ऊपर इन असंख्य सन्तानोंकी दुर्दशाकी जिम्मेदारी है। राज्य इस महापातकका भागी है। राज-समाज दोनोंका कर्त्तव्य है कि समाजके इस अंगको सँभाले।

ऐसे बेकारोंकी संख्या हमारे देशमें भारी है। संसारभरमें किसी देशमें यहाँके आधे भी ऐसे बेकार नहीं हैं। पैंतीस करोड़की आबादीमें कमसे-कम बारह करोड़ आदमी खेतीपर काम करनेवाले हैं। परन्तु खेतीका काम सालमें छः महीनेके औसतसे ही होता है। अधिक नहीं, तीन ही महीनेकी बेकारी मानें, तो तीन करोड़ खेतिहर, हट्टे-कट्टे काम-काजी, पूरे साल बेकार रहते हैं। इतनी भारी बेकारी भारतके सिवा कहाँ है ?

३. काम बहुत है, तब भी ऐसी बेकारी !

ऐसी घोर बेकारी देशमें छायी हुई है, तब भी **काम बहुत है**। काम इतना है कि सारी बेकारी दूर हो सकती है, और फिर भी काम चुक नहीं सकता। मायाका परदा हमारी आँखोंपर ऐसा पड़ा हुआ है कि हमें सूझता नहीं कि क्या काम करें। खाना उपजाना खेती-बारीसे ही हो सकता है। इसमें किसानोंका समाज लगा रहता है, परन्तु अनाज भी इतना नहीं उपजा सकता कि विदेशोंसे आना बिलकुल बन्द हो जाय। और देशवाले बीघा पीछे जितना उपजाते हैं हमारे देशवाले उससे कम उपजा पाते हैं। यह रही खानेकी बात। अब कपड़ेकी ओर देखिये। नंगे और चीथड़ोंमें बसर करनेवाले हमारे देशमें करोड़ों हैं, पर वे चीथड़े भी प्रायः विदेशोंके चीथड़ोंके चीथड़े हैं। चीथड़े भी इकट्ठे करके विदेशवाले उन्हें धोते, फिरसे धुनते, कातते, कपड़े बुनते और दरिद्र भारतके हाथ सस्ते बेचते हैं, और वे ही यहाँके दरिद्र पहनते हैं और लत्ते-लत्ते उड़ जानेपर उन्हें छोड़ते नहीं। जिन लोगोंकी दशा कुछ अच्छी है वे भी विदेशी कपड़ोंसे ही तन ढकते हैं। इस तरह उन कपड़ोंके बदले अपने देशके बाहरके मजूरोंको भोजन देते हैं और आप भूखों मरते हैं। कितना भारी व्यामोह है !

आप भूखों मरना और अमीर नौकरको मजूरी देकर उससे वह काम लेना जो हम आप कर सकते हैं, कितनी भारी बेवकूफी है।

पर, आज हमारा देश यही मूर्खता कर रहा है

आप कहेंगे कि "यह मूर्खता वह लाचार होकर कर रहा है।"

नहीं ! यह बात सोलहो आना ठीक नहीं है। लाचारी थोड़ी है, अपनी मूर्खता बहुत ज्यादा है।

हमारी मूर्खता केवल विदेशी चीथड़ोंसे ही अपना सिंगार करनेमें नहीं है।

कोई तमाखू पीनेको हमें लाचार करता है ? कोई जबरदस्ती नशा खिलाता है ?

कोई दियासलाई, मिट्टीका तेल और विदेशी लम्प, लालटेन व्यवहार करनेको हमें लाचार करता है ?

कोई हमें बीड़ी सिगरेट जबरस्ती पिलाता है ?

हम न पियें तो चाय क्या कोई जबरदस्ती पिला देगा?

बैसिकिल, मोटरकार, रेल आदि सवारियोंपर हम आप बैठते हैं। कोई हमें पैदल चलनेको मना कर देता है ?

विदेशी फ़ैशनपर रीझकर हम आप पतंगोंकी तरह जल मरते हैं। यह हमारी मूर्खता है। कोई और हमें लाचार नहीं करता।

यह सारी विदेशी चीज़ें विदेशी पूँजीसे विदेशी मजूर तैयार करते हैं और हम दरिद्र भुक्खड़ अपनी मूर्खतासे मजूरोंकी मजूरी, पूँजीपर मुनाफ़ा, वहाँसे-यहाँतककी ढुलाई, इत्यादि खर्च विदेशोंको भेजते हैं और खुद भूखों मरते हैं। इसका कारण अपनी मूर्खता है।

देहातके लोग इस तरहकी मूर्खता जितनी करते हैं, शहर और कस्बोंके लोग उससे कहीं ज्यादा करते हैं।

गरीब लोग इस तरहकी मूर्खता जितनी करते हैं, मध्यमवर्गके गृहस्थ और अमीर लोग उससे कहीं ज्यादा करते हैं।

४. विदेशी चीज़ोंका इस्तेमाल हमारी बेकारीका बड़ा भारी कारण है

हमारे कामकी जितनी वस्तुएँ हैं जिनके बिना हमारा जीना नहीं हो सकता, हमें खुद तैयार करनी चाहियें और अपनी स्वदेशी वस्तुओंको ही काममें लाना चाहिये।

हम यह व्रत कर लें, तो हमारे लिये काम हो काम है।

अपने खानेभरके लिये अन्न, पहिरनेभरके लिये कपड़ा और इनकी पूरी तैयारीके और सब सामान हम अकेले कहाँ कर सकते हैं ? मिलकर ही ये सारे काम हो सकते हैं।

काम बहुत है। देशमें तो अभी खद्दर कुछ भी नहीं बनता। सूत कातनेका ही काम इतना ज्यादा है कि करोड़ों-को बेकारीकी शिकायत न रहे। और वस्तुओंकी तो बात ही अलग है।

स्वदेशीका कठोर व्रत देश कर ले, तो बेकारी रफ़ू-चक्कर हो जाय।

५. काम बहुत है। काममें लग जाओ

एक-एक क्षण अनमोल धन है। इस धनको कारबारमें लगाना हम जानें तो हमें लाभ ही लाभ है।

हमारा एक-एक शरीर एकाध अश्वबलका चलता-फिरता इंजन है। इस इंजनसे ठीक और पूरा काम लेना हम जानें तो हमें लाभ ही लाभ है।

ईश्वरने हमें पूँजी दी है, इंजन दिया है। हर मनुष्यके पास ये दो चीज़ें हैं। काममें न लानेसे ही वह दरिद्र है। यह दरिद्र मनुष्यकी कितनी भारी मूर्खता है।

यह पूँजी और यह यंत्र हमें अपनी रक्षा और समाजकी रक्षाके लिये मिले हैं। दोनोंके लिये इनका ठीक-ठीक इस्तेमाल करना ही ईमान्दारी है।

यह दोनों हमें व्यक्ति और समाजकी रक्षाके लिये मिले हैं, इन्हें दोनों कामोंमें न लगाना बे-ईमानी है।

इन्हें केवल अपनी रक्षामें लगावें और अपने ही भोग-विलासमें खर्च करें तो हम समाजका हक मार लेते हैं। समाजकी चोरी करते हैं। भोगविलासीको अन्तर्मुख होकर सोचना चाहिये कि हम कितनी चोरी कर रहे हैं।

इन्हें काममें न लाकर हम अपनेको और समाजको दुखी रखते हैं, तो आत्महत्याके दोषी होते हैं।

जीवन स्वभावसे ही कर्म्ममय है और इसी लिये है कि उसे उत्तमसे-उत्तम काममें लाया जाय। हम काममें नहीं लाते तो स्वभाव-विरोधी काम करते हैं। स्वभावके विपरीत काम करनेसे पतन होता है, हम गिर जाते हैं।

और पातक किसे कहते हैं? जो काम हमें ऊँचेसे नीचे गिरावे वह पातक है। चोरी, बेईमानी, स्वभावके विपरीत काम, ये सभी गिरानेवाले हैं। बेकारीमें ये अनेक अवगुण हैं। इसीलिये बेकारी सचमुच महापातक है।

बेकार न रहो। एक पल न खोओ। कामकी बान डालो। निरन्तर कुछ न कुछ करते रहो, चाहे उस कामकी मजूरी भले ही न मिले। लाभ तो होगा ही।

हाँ, काम भी करने लायक ही करो। जो करने लायक न हो उसे कभी मत करो।

घोर परिश्रमसे बिपतके दिन काट दिये

१. फ्रांसका उदाहरण

संवत् १९२७की बात है। ठीक पैंसठ बरस हुए कि फ्रांस और जर्म्मनीमें बड़ा भयानक समर हुआ। इस लड़ाईमें फ्रांस बुरी तरहसे हारा और जर्म्मनीकी सेना फ्रांसके भीतर घुसती चली आयी और उनकी राजधानी पारीपर घेरा डाल दिया। पारी नगरके निवासी बड़ी मुसीबतमें फँसे। बाहरसे सम्बन्ध टूट जानेसे लोग भूखों मरने लगे। कहते हैं कि जब वहां खानेकी तंगी हुई तो वैज्ञानिकोंने कूड़े और मलमूत्रसे भोज्यपदार्थ निकाले। परन्तु आखिर लाचार होकर उन्होंने आत्म-समर्पण कर ही दिया। उस समय जो संधि हुई वह फ्रंकफुर्टकी सन्धिके नामसे मशहूर है। इस सन्धिमें तीन शर्तें थीं; उनमेंसे एक तो बड़ी बेढब थी। वह यह थी कि फ्रांस जर्म्मनीको हर्जाना दे। वह हर्जाना भी थोड़ा न था। वह था लगभग तीन अरब रुपये!

यह तीन अरब रुपये तीन बरसके भीतर चुका देने थे, और जबतक फ्रांस न चुकावे तबतक जर्मन-सेनासे घिरा रहे और उस घिरे रहनेका भी खर्च दे।

इस महासंकट से उबरना फ्रांसके लिये महाकठिन था। जर्म्मनीने तो यह शर्त्त इसलिये रखी थी कि फ्रांस उजड़ जाय और तीन बरसके बाद जर्म्मन साम्राज्यका एक अंश बन जाय।

परन्तु क्या जर्म्मनीका मनोरथ पूरा हुआ?

नहीं।

फरासीसी जातिने इतनी भारी कीमतको भी अपनी आजादीके सामने तुच्छ समझा। यह कीमत दे ही डाली और तीन बरसके भीतर ही चुकता कर दिया।

सो कैसे?

सारी फरासीसी जातिने मिलकर जोर लगाया। सारी जातिने घोर परिश्रमका बीड़ा उठाया। मजूरोंने आठ घण्टेके बदले सोलह घंटे काम करनेकी ठानी। किसानोंने अपना परिश्रम दूना कर दिया। किरानियोंने दफ्तरोंमें दिनरात एक कर दिया। राष्ट्रपतिसे लेकर साधारण कुलीतक दूना काम करने लगे। एड़ीसे चोटी तकका पसीना एक करने लगे।

पूरे तीन सालतक फ्रांसमें मेहनतकी धूम थी। काम, काम, काम, और फुरती और तेजीका राज था। तीन बरसतक एक आदमी कहीं बेकार घूमता या ऊँघता, गप्पें मारता या आलस्यमें धुएँ उड़ाता नहीं दीखा। एक ही धुन थी। मेहनत करो, मेहनत करो, नहीं तो जर्मनोंके बँधुए हुए।

"छाओ, छाओ, छाओ! काहूकी चीत न चलाओ।"

सारा फ्रांस कार्य्यालय बन गया था। लोग सोना, खाना आराम तक भूल गये। काममें लिप्त रहने लगे।

फ्रांसके निवासियोंने तीन बरसमें तीन अरबसे ज्यादा कमाया?

जर्मनीने समझा था कि तीन अरब देकर फ्रांस दरिद्र हो जायगा और जर्मनी समृद्ध।

परन्तु हुआ क्या? ठीक इसका उलटा। तीन बरसमें तीन अरब रुपया जर्मनीको देकर फ्रांस समृद्ध होगया और जर्मनी दरिद्र।

"यह चमत्कार कैसे हुआ?"

"वह भी सुनिये।"

"जर्मनीवालोंने बिना परिश्रमका धन पाया। खूब उड़ाया। आरामसे रहनेकी आदत पड़ी। परिश्रम कम हुआ। कमाई कम होने लगी। फिर धन कहाँसे जुटे?"

"और फ्रांसवाले?"

"फ्रांसवाले मेहनतके शिकंजेमें तीन बरस तक कसे गये। मेहनतका शीराज़ा बँध गया। उनकी बान पड़ गयी कि कसके मेहनत करें और किफायतसे रहें। उन मुसीबतके तीन बरसों पीछे भी यही हाल रहा। खूब कमाने लगे, किफायतसे रहने लगे, धन बटोरने लगे। दरिद्रता मिट गयी। धनवान होगये।

सारा राष्ट्र,—जर्मनीकी कड़ाईकी बदौलत सारा राष्ट्र, मेहनती, किफायती और धनवान होगया।

बुराईसे भलाई भी कभी-कभी यों पैदा होती है।

अब तख्ता पलटा। जर्मनीको अपने कारबारको बढ़ानेके लिये जरूरत पड़ी। उसके पास धन न था। फ्रांस खुशीसे कर्ज देने और धन लगानेको तैयार हो गया। अब धीरे-धीरे जर्मनीके कारबारमें फ्रांसके धनवानोंकी पूँजी लग गयी। आर्थिक रीतिसे जर्मनी फ्रांसकी मुट्ठीमें आ गया। तीस बरस हुए दोनोंमें एक लड़ाई छिड़नेवाली थी। यह देखकर फ्रांसने कहा "हमारे सब रुपये लौटा दो।"

इसका जवाब उस समय जर्मनी न दे सका। लड़ाई रुक गयी। रुपये लौटानेकी चिन्ता हुई।

गत महासमरके पहले, अर्थात् सात बरसोंमें, कहीं जर्मनी फ्रांसके आर्थिक बोझसे अपनेको हलका कर सका।

फ्रांसने तीन बरस जो कष्ट उठाया जर्मनीको सात बरसमें उसका बदला सहना पड़ा! "इस हाथ दे, उस हाथ ले।"

२. क्या हम भी ऐसा कर सकते हैं

"फ्रांसके उदाहरणसे क्या हम यह समझें कि हम भी उसी मुसीबतमें हैं?"

"हम तो उससे कहीं ज्यादा मुसीबत में हैं।"

"कैसे?"

"यों समझिये।"

फ्रांसको घेरनेवाली फौजको केवल तीन बरस खर्च देना पड़ा और तीन अरब रुपये।

विदेशी पूँजीवाले और विदेशी मजूर अपने रोजगार और व्यापारका घेरा हमारे चारों ओर सैकड़ों बरससे डाले हुए हैं। बारी-बारीसे और साथ-साथ भी विदेशी हमें चूसते हैं। देखिये आजकल जापानी रोजगारका कैसा जबरदस्त घेरा पड़ा हुआ है। अपने आलस्य, अपने संगठनके अभाव, अपने व्यसन, अपने परावलम्बन, इत्यादि इत्यादि अपने असंख्य मूर्खताओंके दंडके रूपमें विदेशियों-को हम अरबों रुपये देते आये हैं और देते रहेंगे, और छुटकारा न मिलेगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि हमारी मूर्खताओंके छूटनेकी न तो कोई मीयाद है और न विदेशी रोजगारी अपना बस रहते हमें चूसना छोड़ेंगे।"

"जब स्वराज्य हो जायगा, तब तो हम कानूनके बलसे रोजगारियोंका चूसना बन्द कर देंगे।"

"यह आपकी खाम खयाली है। जिन देशोंमें स्वराज्य है, क्या वे ही इस चुसाईसे बचे हुए हैं? विदेशी रोजगा-रियोंका चूसना तो तभी बन्द होगा जब हमारे आदमी मिनटोंकी कीमत समझेंगे, बेकार न रहेंगे, मेहनत करना सीखेंगे, अपने पावों खड़े होंगे, स्वदेशीके कट्टर व्रती होंगे, धनवानोंकी मायासे बचेंगे और धनवान भाई धनका सदुपयोग करेंगे।

जब तक ऐसा न होगा, दुनियाकी कोई ताकत हमको दरिद्रताके गर्त्तसे निकाल न सकेगी।"

क्या भारतके राष्ट्रको एक मत होकर फरासीसियोंकी तरह दूने परिश्रममें लग जाना चाहिये? यह तो थोड़े ही लोगों पर लागू होगा, क्योंकि अधिकांश लोग तो बेकारीसे बेतरह पीड़ित हैं। फिर मेहनत क्या करेंगे। मेहनत करनेको पेट भरनेकी भी तो जरूरत है।"

"हम कह चुके हैं कि काम बहुत है। हम जानते नहीं कि क्या करें। हममें आलसी और आराम-तलब भी हैं। ऐसी कोई अचानक मुसीबत आ पड़े जैसी फ्रांसमें आयी थी, तो सबका स्वभाव बदल जाय।"

"या शायद सुधारक लोगोंका जतन सफल हो जाय और लोगोंको ठीक तरहकी शिक्षा मिलने लग जाय!"

"कुछ भी हो, बिना एकदम स्वभावमें परिवर्त्तन हुए वह अवस्था आ नहीं सकती। हम आगे चलकर उन सब बातों और सुधारोंपर विचार करेंगे, जिनसे देशकी सम्पत्तिकी रक्षा हो और वह अच्छेसे-अच्छे काममें लगायी जा सके।"

"पर ऐसी मुसीबत या संकटकी बाट देखना क्या जरूरी है? क्या हम सुधारकी राहसे चलकर ठिकाने नहीं लग सकते?"

"क्यों नहीं। मैं तो समझता हूँ कि हर आदमी अपनेको सँभाले-सुधारे। इस बातकी परवा न करे कि हमारा भाई या पड़ोसी सुधरता है या नहीं।

पैसेकी माया बड़ी बलवती है

किफायत सीखो

१. खरीदनेकी ताकत

"भारत तो गावोंका देश है। शहर तो थोड़े हैं। गाँव सात लाख हैं। गाँवके रहनेवाले खेतीबारी करते हैं। उन्हें खेतमें इतना काफी काम नहीं मिलता कि वह पेटभर खा सकें। फिर वह जीवन की और जरूरतोंकी चीजें कहांसे इकट्ठी करें। खरीदनेकी ताकत उनमें नहीं है। किसी ढ़बसे खरीदनेकी ताकत बढ़े तो उनकी दशा सुधरे।"

"पैसे हों तब तो यह बात हो! पैसे तो बहुत महँगे हो रहे हैं।"

"तो क्या यह सच है कि पैसे सस्ते हो जायँ तो खरीदनेकी ताकत बढ़ जाय?"

"इसमें क्या शक है। सस्ते हो जायँगे तो हमारे पास ज्यादा पैसे होंगे। हम ज्यादा खर्च कर सकेंगे। खरीदनेकी ताकत बढ़ जायगी।

"पैसे सस्ते हो जानेका मतलब समझे? पैसे सस्ते होंगे तो सारी चीजें जो पैसेके बदले मिलती हैं, महँगी हो जायँगी। मान लो कि पैसे दूने सस्ते हो गये, तो चीजें दूनी महँगी हो जायँगी। जो चीज एक पैसेमें पहले मिलती थी, दो पैसेमें मिलने लगेगी। इसका अर्थ है कि महँगी बढ़ जायगी।"

"यह तो आप ठीक कहते हैं, परन्तु किसानको ऐसी हालतमें उतने ही अनाजके दूने पैसे मिलेंगे।"

"इन ज्यादा पैसोंका वह क्या करेगा?"

"वह कपड़ा, लालटेन, मिट्टीका तेल, दियासलाई, छाता, जूता, आदि सभी कुछ खरीद सकेगा और भरपेट भोजन करेगा।"

"अनाजके सिवा सभी चीजें वह मोल लेता है, तो पैसे तो उसके पाससे निकलकर रोजगारियोंके पास चले जायँगे। अनाज तो वह खरीदने न जायगा, क्योंकि वह तो अनाज उपजाता ही है।"

"तो अनाजके पैसे बच जायँगे। वह पेटभर खाने तो लगेगा।"

"नहीं महाराज। वह तो भूखे रहना पसन्द करेगा और पैसेके लालचसे अपना भोजन भी बेच डालेगा। उसे तो पैसोंका टोटा रहेगा ही। वह अरबोंका करजदार है। पेट काटकर महाजनको देगा। मुकदमेंबाज पैसे देखकर टूट पढ़ेंगे और उसके पैसे लूट लेंगे। फिर उसे बिरादरी और समाज दबाकर कामकाजमें, तीज त्योहारमें, मेहमानदारीमें, करनी करतूतमें, पैसे खर्च करा देंगे। इस खरीदनेकी बढ़ी हुई ताकतका लाभ किसानको न होगा।"

"फिर, किसको होगा?"

"ज्यादा तो विदेशी चूसनेवालोंका लाभ होगा।"

"तो इसलिये आप क्या चाहते हैं कि खरीदनेकी ताकत नहीं बढ़नी चाहिये।"

"जरूर बढ़नी चाहिये। परन्तु उस ताकतको बचा रखने, बटोरकर आये दिनोंके लिये जमा रखनेमें और ठीक तरहसे काममें लानेमें लाभ है। ब्रह्मचर्य्य पालनकी जरूरत है।"

२. अर्थशास्त्रका ब्रह्मचर्य्य

"यह ब्रह्मचर्य्यकी भी अच्छी कही। मौके बे-मौके सभी जगह आप एक ही राग अलापते हैं। ब्रह्मचर्य्यसे और पैसोंसे क्या सम्बन्ध?

"यह अच्छी तरह समझनेकी बात है। पहले ब्रह्मचर्य्य क्या है, यही समझ लीजिये।"

"वह तो समझा हुआ है। यही ना, कि संतान-

अगर छूतसे रोग फैलते हैं, तो क्या सुधार भी छूतसे न फैलेगा? मेरा तो विश्वास है कि जरूर फैलेगा।

भलाईकी राहमें हम दो कदम भी आगे बढ़ें तो बेहतर है। थोड़ा भी लाभ, हानिसे तो अच्छा ही है।

"स्वल्पमत्यस्य धर्म्मस्य त्रायते महतो भयात्"
"थोरेहु धारे धरम यह, करत दूरि भय भूरि"

उपजानेवाली-अपनी-ताकतकी रक्षा की जाय, उसे भरसक खर्च न किया जाय ?"

"बस ? यह तो ब्रह्मचर्य्यका एक हिस्सा है, और ठीक ही बात है, पर सारा ब्रह्मचर्य्य इतना ही है, यह खयाल दुरुस्त नहीं है ?"

"तो सारा ब्रह्मचर्य्य क्या है ?"

"मनुष्यमें अनेक शक्तियाँ हैं जिनका उपयोग वह अपनी और अपने वंशकी रक्षामें करता है। परन्तु अपनी शक्तियोंको वह व्यर्थ बरबाद भी कर सकता है और संयम और किफायतसे काम ले, आये दिनके लिये उन्हें बटोर रखे, तो भारी-भारी काम कर सकता है और उनसे ज्यादासे ज्यादा लाभ उठा सकता है। "ब्रह्म" है "ताकत", और "चर्य्य" है उसे-ठीक ठीक ढंगसे चलाना या उपयोग। इसलिये सारा ब्रह्मचर्य्य है **अपनी सारी ताकतोंको बटोर रखना, उनकी रक्षा करना और उन्हें बढ़ाना, और बहुत जरूरत पड़नेपर ही उन्हें संयमसे खर्च करना।** वंश-रक्षावाली ताकतकी रक्षा और संयम ब्रह्मचर्य्य है, सही, पर सारा ब्रह्मचर्य्य नहीं है, क्योंकि वह सारी ताकत नहीं है।"

"खूब कहा ! ठीक है ! ब्रह्मचर्य्यको आज आपसे मैंने ठीक समझ पाया है। अब मैं समझ गया कि पहला आश्रम ब्रह्मचारीका क्यों है। वह अपनी शक्तियोंका संचय करता है कि गृहस्थ होनेपर उनसे सोलहों आना लाभ उठावे। ऋषियोंकी बुद्धिमानीकी मैं दाद देता हूँ। हाँ, अब आर्थिक ब्रह्मचर्य्यकी बात मुझे समझाइये।"

"वह तो स्पष्ट हो गया। खरीदनेकी ताकत बढ़े मगर उसकी रक्षा कीजिये। खर्च करनेकी उतावली न कीजिये। बचा रखिये। कारखानेवाला अपने मालको खपानेके लिये तो चाहेगा कि आप तुरन्त खर्च करें और खूब खर्च करें। परन्तु आप मूर्ख क्यों बने। आप अपनी ताकतको बचा रखिये, क्रयशक्तिकी रक्षा कीजिये।"

"यह बात तो हम हर हालतमें कर सकते हैं। पैसे महँगे हैं तो भी, और सस्ते हों तो भी।"

(३) पैसोंकी ताकत

"पैसे महँगे होते हैं तो हम सहजमें आर्थिक ब्रह्मचर्य्यके पालनमें लग जा सकते हैं। सस्ते हुए तो पैसेकी झूठी माया हमारे ब्रह्मचर्य्य पालनमें बाधा डालती है। तब पैसे बचाना मुश्किल हो जाता है। पैसे ज्यादा पास हुए तो खर्च करनेमें हिचकिचाहट कम होती है। और लोग भी दबाते हैं कि अधिक खर्च करो। खर्च करानेकी जितनी प्रवृत्तियाँ हैं सभी मिलकर जोर लगाती हैं, और हम पैसे बचा नहीं सकते।

इसलिये पैसोंका महँगा रहना ज्यादा अच्छा है।"

"पैसे महँगे हुए तो सभी चीज़ें सस्ती होंगी। सस्ता पानेका भी तो फायदा है।"

"हाँ, सस्ता पानेका फायदा है, और जीवनकी आवश्यक वस्तुओंको तो लोग बिना खरीदे रह नहीं सकते।"

"खरीदते ही हैं। खरीदनेकी शक्ति घट गयी, यह तो व्यर्थकी पुकार है।"

"तो फिर यह चिल्लाहट क्यों, कि 'खरीदनेकी ताकत घट गयी है" ?

"यह चिल्लाहट उन लोगोंकी है जो मिलोंमें थोक माल तैयार करके जबरदस्ती गले लगाना चाहते हैं, परन्तु जीवनमें उनकी आवश्यकता नहीं है। यह पुकार उनकी है जो गरीबोंको उतना नहीं चूस पाते जितना कि पैसोंकी सस्तीपर चूस सकते।"

"तो पैसोंके सस्ते होनेमें हमारा कोई लाभ नहीं है !"

"किसीका कोई लाभ नहीं है। पैसोंका मायाजाल सबको समझमें नहीं आता। बड़े-बड़े अर्थशास्त्री इसके जालमें फँसे झूलते रहते हैं। जिसके हाथोंमें सिक्का है, वह जब चाहे सारे बाजारमें महँगी फैला दे, या सस्तीका राज कर दे, **पैसा महँगा, चीजें सस्ती। पैसा सस्ता, चीजें महँगी** यही पैसेकी माया है।"

"परन्तु यह मायाजाल तो प्राचीन कालसे चल रहा है।"

"होगा प्राचीनकालसे। परन्तु इधर पाँच-सात सौ बरसके इतिहाससे तो पता चलता है कि डेढ़-दो सौ बरस पहले तो पैसा अत्यन्त महँगा था। बल्कि यदि इस तरह भी कहें तो ठीक ही होगा कि **प्राचीन कालसे आजतक पैसा सस्ता ही होता चला आया है। महँगी बढ़ती ही चली आयी है।**"

"पहले तो देहाती लोग पैसेके स्थानमें अनाज देकर चीज़ें लेते थे।"

"वह बहुत अच्छा था। क्योंकि अनाजकी जरूरत सबको होती है। जो लोग खेती नहीं करते थे, वह अपने मालसे बदलकर अनाज ले लेते थे। परन्तु माल भी वह खुद तैयार करते थे।"

"परन्तु आज तो सारा माल विदेशोंसे ही आता है। इसलिये कपड़ा, छतरी, जूता, दियासलाई, लालटेन वगैरा तो अनाजसे मिलते ही नहीं। पैसे सस्ते हैं, इसी मायासे मोहित होकर ज्यादा पैसोंके लोभसे अपने देसी माल भी लोग पैसोंपर बेचने लगे।"

"सचमुच बड़े अचरजकी बात है, कि पैसा हाथों-हाथ गुजरनेके सिवा किसी-काममें नहीं आता, परन्तु लोग उसपर जान देते हैं, क्या कुछ करनेको उतारू हो जाते हैं, यह क्या रहस्य है?"

"इसी रहस्यको मैं पैसोंकी माया कहता हूँ। पैसा क्या है, जरा सोचिये तो! यह तो अदला-बदली करनेके लिये एक पैमाना है। छः पैसेमें सेर भर आटा मिलता है, दो सेर आलू मिलते हैं, एक ताला मिल जाता है, कपड़े सीनेके डोरेके छः गोले मिल जाते हैं। इस तरह छः पैसेकी कीमतसे सिद्ध हुआ कि

आटा ऽ१ = आलू ऽ२ = १ ताला = डोरे के छः गोले= छः पैसे।

इनमेंसे कोई चीज़ किसी चीज़से बदली जा सकती है। पैसे अदलाबदलीके साधन हैं। पैसे न हों, परन्तु केवल पहली चार चीज़ें हों, तब भी अदला-बदली हो सकती है। फिर भी हाथोंहाथ गुजरनेका सुभीता, रखनेका सुभीता, इन दो सुभीतोंके कारण सामग्रीसे सिक्का ज्यादा अच्छा समझा जाता है। पैसेमें इतनी ही अच्छाई है। असली धन तो पहली चारों सामग्री हैं और खरीदनेकी ताकतका पैमाना और उसकी मूर्त्ति छः पैसे हैं।

ताकत घट गयी, अर्थात् पैसे कम हो गये अर्थात् पैसे महँगे हो गये अर्थात् सब चीजें सस्ती हो गयीं। आधी ताकत घटीं, तो दूनी सस्ती हुईं अर्थात्

आटा ऽ१ = आलू ऽ२ = १ ताला
= डोरेके छः गोले = तीन पैसे।

अब देखिये कि वस्तुतः चीज़ें न तो सस्ती हुईं, न महँगी। अब भी सभी चीजोंकी कीमत पहली सी ही है। कीमत पैसेकी ही बदली।

फिर भी हम समझते हैं कि चीज़ें दूनी सस्ती हो गयीं! कितनी बड़ी खामखयाली है! यही पैसेकी माया है।"

"पैसेकी माया तो कुछ समझमें आयी। परन्तु क्या आपने इस हिसाबमें भूल नहीं की? भाव तो सामग्रीका एक सरीखा नहीं रहता। बदला करता है। अनाजका, फल तरकारियों आदिका, रूईका, डोरेका पैदावारके हिसाबसे भाव बराबर बदलता रहता है!"

"ठीक है। मैंने जानबूझकर उदाहरणमें पैदावार तथा कमीबेशी और आमद और खींचके अनुसार भावके चढ़ाव-उतारकी बातकी चर्चा नहीं की। बात यह है कि अनाज फल तरकारी आदिकी पैदावार स्वभावसे घटती-बढ़ती है और आमद और खींचसे भावमें चढ़ाव-उतार होता ही रहता है। परन्तु पैसे की कमी-बेशीसे भावकी बेशी-कमी बिक्रीकी सारी सामग्रीमें समानरूपसे होती है। पैदावार तथा आमद और खींचका प्रभाव सारी सामग्रीपर समानरूपसे कभी पड़ ही नहीं सकता। हर चीज़पर इनका प्रभाव बिलकुल अलग-अलग पड़ता है। इसीलिये पैसेकी माया समझनेके लिये हमने इनका विचार जानबूझकर छोड़ दिया।"

४. इस मायासे बचें कैसे?

"अच्छा, तो पैसेकी इस मायासे बचनेका भी उपाय है?"

"है क्यों नहीं? पहली बात यह है कि जो पैसे मिलें भरसक उन्हें बचा रखिये और बहुत विचार करके और हाथ रोककर खर्च कीजिये। रुपये बहुत जमा हो जायँ तो उन्हें देशको लाभ पहुँचानेवाले कामोंमें खूब सोच-विचार-कर लगाइये जिसमें उससे अधिकसे-अधिक आत्मरक्षा और अधिकसे-अधिक जाति-रक्षा हो।

दूसरी बात यह है कि देनेके लिये पैसेके बदले वह चीज़ें भरसक दीजिये जो आप खुद बनाते या उपजाते हों। अपनी बनायी या उपजायी वस्तुको ही सिक्केकी जगह बरतिये। ऐसी चीज़ें भरसक कम या मत इस्तेमाल कीजिये

हमारी आर्थिक दशाका दर्पण
कैसे सुधारें ?

"हमारी आमदनी इतनी कम है कि हमारे पास खर्च भरको तो पैसे मिलते ही नहीं और आप कहते हैं, पैसे बचाओ। देखिये, हरिजन सेवकके १५ फरवरी, १९३५ के अंकमें श्रीचन्द्रशंकर प्राणशंकर शुक्लका लेख जो "हरिजन बंधु"से उद्धृत हुआ है, पढ़ने लायक है—

हिन्दुस्तानियोंकी औसत आय

हिन्दुस्तानियोंकी दैनिक औसत आयकी गणना पहले-पहल, आजसे ६५ वर्ष पहले, स्व० दादाभाई नवरोजीने की थी। तबसे आजतक ऐसी कई गणनायें हो चुकी हैं। अध्यापक खुशाल शाहने अपनी एक पुस्तकमें इन सबका उल्लेख किया है, उसके बाद होनेवाली गणनाके अंक भी उसमें जोड़ देनेसे यह सारिणी बनती है—

जिनके लिये पैसे खर्चना जरूरी हो। किसी जमानेमें लगान भी अनाजमें दिया जाता था। आज भी कई जगह लगानका कुछ भाग अनाजमें दिया जाता है। इसमें बहुत ज्यादा सुभीता है। पैसेकी मायासे वह उतना ही बच सकेगा जितना ही कम पैसोंसे काम लेगा।

तीसरी बात यह है कि बिदेसी सामग्री कदापि न खरीदिये, क्योंकि बिदेसी मालके बदले पैसे देना बहुत जरूरी है। बिदेसी माल खरीदनेसे पैसोंकी रक्षा न हो सकेगी। अपने देशी मालके खरीदनेमें पैसे लगें भी तो वह आपसमें ही रह जायँगे। और स्वदेशी भी यहाँतक कि अपने पड़ोसी या गाँव, या पड़ोसके गाँव या जिले की बनी सामग्री हो। इतनेके बाहरका माल भी लेना ही पड़े तो पासके जिले या पासके प्रान्तका हो। इससे दूरके बाजारमें खरीदने जाना बिदेसी माल खरीदनेके बराबर है। स्वदेशीके इस भावकी रक्षामें भी पैसोंकी मायासे रक्षा है।".

"कुछ लोगोंका मत है कि खूब खर्च करो कि अधिकसे-अधिक कमानेको तुम्हें लाचार होना पड़े।"

"यह तो ठीक है कि जब न रहेगा तब कमानेको लाचार होना पड़ेगा। यह तो व्यक्तिकी बात हुई, परन्तु बेकारोंकी भयानक संख्या देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि कमानेको हम लाचार होंगे तो जरूर कमा ही लेंगे। आज कमाई सहज काम नहीं है।

बड़ा कठिन समय आ गया है। इससे भी कहीं कठिन आनेवाला है। आजके धेले पैसे बचे रहेंगे तो आगे चलकर बड़े कीमती ठहरेंगे। इसीलिए "पैसे बचाओ।"

"हैं कहाँ, जो बचावें ?"

जो कुछ थोड़े बहुत हैं उन्हींकी रक्षा करो।

"कैसे रक्षा करें ?"

कम खरच करो, हाथ रोककर खरच करो। अत्यन्त जरूरी होनेपर भी विचार करो कि क्या खरच रोक नहीं सकते। रोक सको तो जरूर रोको।

भिगोये चने खा सके तो ईंधन खर्च करना वृथा है। ईंधन बटोरकर ला सके तो लकड़ियाँ खरीदना वृथा है। घरके कूड़ेसे भी ईंधन पात मिल सकता है। फिर ईंधन भी कम खर्च करो।

"कपड़े अपने हाथसे मेहनत करके धो लिया करो तो धुलाई बचे और सफाई भी रहे।

दिनके उजालेमें काम करो। रातकी अँधेरीमें सोवो, आराम करो, कथा वार्ता करो, भजन करो, गाओ बजाओ, दीयेकी जरूरत न पड़े। पैसे बचें। रातको रोशनीकी क्या जरूरत ?

मोटा खाओ, मोटा पहनो। अपने हाथसे भला बुरा जैसा बने सी लो। फिर हमारे देशमें इतने ज्यादा कपड़े बिना भी तो चल सकता है ?

चरखा कातोगे। सूतसे भी पैसे बचेंगे। अपने सारे काम अपने हाथ करोगे तो पैसे बचेंगे। जैसे हो वैसे, समय बचाकर, मेहनत करके, किफायत करके, कम खर्च करके पैसे बचाओ। साथ ही जीवनकी भी रक्षा करो।

गणना करनेवाले	गणनाका सन्	प्रत्येककी औसत-आय वार्षिक	दैनिक
दादाभाई नवरोजी	१८७०	२० रु०	३॥ पैसे
बैरिंग बार्बर	१८८२	२७ „	४॥। „
डिगबी	१८९८-९	१८.९ „	३। „
लार्ड कर्जन	१९००	३० „	५। „
डिगबी	१९००	१७.४ „	३ „
फिण्डले शिराज	१९११	५० „	८॥। „
वी० एन० शर्मा	१९११	८६ „	१५ „
खुशाल शाह	१९११-२२	४६ „	८ „
गिलबर्ट स्लेटर	१९२७	७० „	१२। „
कुमारप्पा	१९३१	१४ „	२॥ „
विश्वेश्वरैया	१९३५	५० „	८॥। „

इस प्रकार फी आदमी औसत-आयकी बड़ी-से-बड़ी संख्या ८६) वार्षिक यानी १५ पैसे रोज है, और छोटी-से-छोटी संख्या १४) वार्षिक यानी २॥ पैसे रोज है। १९०० में डिगबीने दैनिक औसत-आयका जो हिसाब लगाया था, वह भी ३ पैसे रोज अर्थात् २॥ पैसेसे बिलकुल मिलती हुई ही है। लार्ड कर्जनका लगाया हुआ हिसाब भी ५। पैसे रोजके हिसाबसे आगे नहीं गया। पहले वक्तोंमें आजकी बनिस्वत सस्ताई थी; आमदनी कम थी तो वैसे ही खर्च भी कम था। आज खर्च तो बहुत बढ़ गया है, लेकिन आमदनीमें बहुत वृद्धि नहीं हुई। अध्यापक खुशाल शाह जिन्होंने रोजमर्राकी औसत-आय ८ पैसा बतायी है, उन्होंने एक अन्य स्थानपर बहुतेरे अंकोंकी छानबीनके बाद बारीकीसे हिसाब लगाकर यह निष्कर्ष निकाला है कि हिन्दुस्तानमें एक आदमीको पूरी खूराक खानेके लिए साल भरमें कम-से-कम ९०) चाहिएँ। फिर यह तो सिर्फ खूराकका ही खर्च हुआ, दूसरे खर्चोंका इसमें शुमार नहीं है। लेकिन हिन्दुस्तानियोंकी औसत-आय तो, उन्हींकी गणनाके अनुसार, सिर्फ ४६) रु० ही है। ऐसी हालतमें यह स्पष्ट है कि हिन्दुस्तानी लोग अधभूखे रहते हैं। फिर, यह ध्यान रहे कि, इस औसत-हिसाबमें आरामसे रहने और दिनमें चार वक्त भोजन करनेवाले भी शामिल हैं— इसलिए, इसका मतलब यह हुआ कि, बहुतोंको तो दिन-भरमें एक जून भी पेट भरके खाना नसीब नहीं होता।

औसत-आयका जो नक्शा ऊपर दिया गया है उसमें एकको छोड़कर बाकी सब अंक सरकारी रिपोर्टों आदिमें दिये हुए अंकोंके ही आधारभूत हैं। अध्यापक कुमारप्पाने १९२९में गुजरात-विद्यापीठकी ओरसे मातर ताल्लुकेके ५४ गाँवोंकी जाँच की थी, और तीन महीनेतक गाँवोंमें रहकर वहाँके हरेक कुटुम्बकी आगे-पीछेकी आर्थिक स्थितिकी बारीकीसे जाँच-पड़ताल करके १,२१५ कुटुम्बोंके बारेमें अंक इकट्ठे किये थे। उन अंकोंकी गणना करनेपर उन्होंने यह अनुमान निकाला कि ताल्लुकेवालोंकी औसत-आय वार्षिक १४) रु० यानी २॥ पैसे रोज है। अगर यह कहा जाय कि मातर ताल्लुका गरीब है इसलिए उसकी आय इतनी कम है, तो इसका जवाब यह है कि मातर ताल्लुकेसे समृद्ध ताल्लुके हिन्दुस्तानमें बहुत कम ही मिलेंगे। अलबत्ता निर्धनतामें मातरसे बाजी ले जानेवाले ताल्लुके बहुत-से मिल जायेंगे।

यह गणना देते हुए अध्यापक कुमारप्पाने अपनी जाँच रिपोर्टमें लिखा है—

इस सारे ताल्लुकेमें फी कुटुम्ब औसत-आय ६७) रु० वार्षिक है। पुरुष, स्त्री और तीन बच्चोंका एक कुटुम्ब मानें तो, फी आदमी १००) वार्षिक अन्न-वस्त्रका खर्च समझकर, फी कुटुम्ब ४००) वार्षिक चाहिए। फिर दवा-दारू, शिक्षा, सामाजिक खर्चों वगैरःको भी लें तो फी कुटुम्ब ६००) की जरूरत है। लेकिन हमने जिन १२-१५ कुटुम्बोंकी जाँच की उनमेंके १४ कुटुम्ब ६००) सालकी कमाई करते हैं। ८६१ कुटुम्बोंको या तो घाटा रहता है, या १००) सालसे कमकी आमदनी होती है। ये लोग जिन्दा कैसे रहते हैं, यही बड़े भारी आश्चर्यकी बात है। ९८.८ सैकड़ा खर्चका ऊपर जो कम-से-कम परिणाम बताया गया है, उससे भी इनकी आमदनी कम है। इस प्रकार दो आदमियोंको जितनेमें रहना चाहिए उतनेमें हजार आदमी रहते हैं!"

यह है हमारे देशके विधाता किसानकी निर्धनता! फी आदमी २॥ पैसे रोजकी औसत-आय! अर्थात् सबको तो २॥ पैसे रोज भी नहीं मिलते। **इसका मतलब यह हुआ कि हिन्दुस्तानमें हजारों आदमियोंको पेट भर अन्न खानेको नहीं मिलता। इस आमदनीमें**

एक पैसेकी भी वृद्धि हो तो वह आशीर्वादके समान है। ग्राम-उद्योगोंको पुनर्जीवन देनेकी प्रवृत्ति के पीछे एक उद्देश यह भी है। 'हरिजन-बन्धु'से]

"यह लेख तो सचमुच हमारी आर्थिक दशाका दर्पण है। परन्तु जिन्हें भरपेट एक जून भी आहार नहीं मिलता हम उनसे पैसा बचाने को तो कहते नहीं। औसतके हिसाबमें तो ज्यादा आमदनीवाले भी शामिल हैं। इसलिये हमारा मतलब यह है कि पैसा वे सब लोग बचावें जो बचा सकते हैं।

जो लोग भरपेट भोजन करते हैं, वह आधा पेट खाकर पैसे बचावें और बचे पैसे ऐसे धंधोंमें लगावें जिनसे भूखों मरनेवालोंको मजदूरीके रूपमें भोजन मिले। यह होगा त्याग, बलिदान।

जो लोग भरपेट भोजन करते हैं और मन चाहा पहनते हैं, और बचे पैसे जमा करके दरिद्रोंको धंधा और मजूरी देनेमें लगाते हैं, वे भी कुछ त्याग करते हैं, कुछ बलिदान करते हैं।

है। देखिये, १८ जनवरीके "हरिजन सेवक"में श्रीहरिभाऊ-जी क्या कहते हैं—

"ग्रामोंकी दशापर हमारे बड़प्पनको अभीतक दया ही आयी है। उनसे कुछ सीखनेकी नम्रता अभी इस गांधीयुगमें भी हमने नहीं पायी है। उनसे हमें सबसे पहले सीखना है तितिक्षा। जाड़ेमें एक फटे कम्मलमें रात गुजार देना, गरमियोंमें कड़ी धूपमें दिनभर कड़ा काम करना, हाथपर रखकर रूखी मोटी रोटी और चटनीसे पेट भर लेना, और हाथका सिरहाना रखकर गाढ़ी नींद सो जाना। पाठक चौकेंगे—यह तो तुम उन्नतिका काँटा पीछे घुमा रहे हो, सभ्यताकी अब तककी कमाई को बट्टेखाते लिख देना चाहते हो;—नहीं मैं मूढ़ अनुकरण करनेकी सलाह नहीं दे रहा हूँ। सच्चे ग्राम सेवककी मनोवृत्तिको दिशा दिखा रहा हूँ और उसे अपना वास्तविक स्थान पानेकी ओर संकेत कर रहा हूँ। स्वच्छता, सुघड़ता, सौन्दर्य, सभ्यता, बहुतेरे बाह्यसाधनोंकी गुलामीका नाम हरगिज नहीं है। प्रकृतिदत्त शरीर और इन्द्रियोंका पूरा उपयोग होनेके बाद ही मनुष्य-निर्मित साधनोंका उपयोग करनेसे व्यक्ति समाजके लिये विशेष उपयोगी, और स्वतंत्र हो सकता है, अन्यथा यह भारभूत
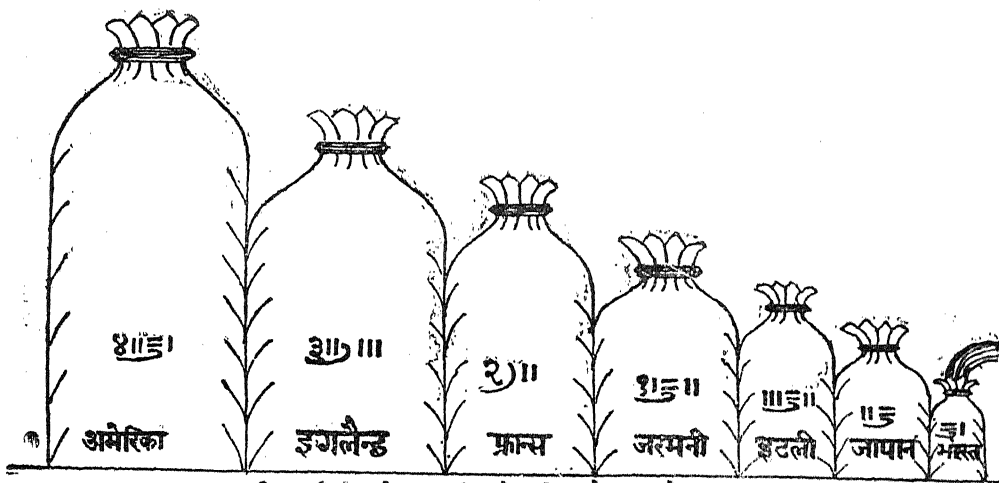
भिन्न भिन्न देश वासियों की औसत दैनिक आय

जो लोग अपने धनको बढ़ानेके लिये जमा करते या अपने ऐशो आरामके लिये अपनी जरूरतसे ज्यादा खर्च करते हैं, वह समाजसे जितना लेते हैं, उतना उसे नहीं देते। समाजका बहुत बड़ा अंग दुर्दशामें हो और हम उसीसे अधिक लेकर उसे न लौटावें, यह ईमान्दारी नहीं

होकर ही रहेगा। समाजको देना कम और लेना अधिक, यह चोरी है। (कमसे कम) ग्रामसेवकको इस चोरीसे अपनेको बचाना चाहिये।

"सचमुच जो अधिक पैसे कमाते हैं या ज्यादा पैसे-वाले हैं वह समाजके ऋणी हैं। उन्हें चाहिये कि फालतू पैसे समाजको इस तरहपर लौटावें कि धंधोंकी मजूरीके

स्वदेशीका कठोर व्रत लो

कट्टर होकर पालन करो

१–रक्षाबन्धन

"रक्षाबन्धन" ? 'यह बेवक्तकी शहनाई ! सावनके अभी पाँच महीने हैं । अभी तो होली है ।'

जी, होली तो हमारी हो ली । घर फूँक तमाशा देखना क्या बाकी है ? अब हमें नित्य रक्षाबन्धनकी जरूरत है । जरा समझिये । यह वह तागा नहीं जिसे मन्त्र पढ़कर कलाईमें बाँधते हैं । अपनी रक्षाके लिये अपने ऊपर बन्धन लगाना ही सच्चा रक्षाबन्धन है ।

"वाह ! रक्षाबन्धनका तो यह अच्छा अर्थ किया । अच्छा, तो क्या बन्धन बाँधे ?"

रक्षाबन्धनमें सूत्र कलाईपर बाँधते हैं । हमारे रक्षाबन्धनके सूत्रसे पहले मनको बाँधिये, फिर वचनको और फिर तनको । फिर आपकी रक्षाके जिम्मेदार हम हैं । परन्तु बाँधिये सच्चे दिलसे और खूब दृढ़ ।

"अच्छा ! हम तैयार हैं, पर आपका वह सूत्र क्या है, कहाँ है ?"

"लीजिये । सूत्र है—स्वदेशीका व्रत ।"

"अरे ! यह तो वही लाये पुराना खटराग !"

"जी ! खटराग ही समझकर तो सब कुछ खोया है अबसे चेतो । स्वदेशी बरतनेमें ही पूरी रक्षा है ।"

"मगर हम विदेशी तो बहुत कम बरतते हैं ।"

"अजी विदेशीका तो नाम न लो । पहले यह देखो कि स्वदेशीका पक्का पोढ़ा व्रत कर लेनेसे प्राणसंकटमें तो न पड़ोगे । देखो बिना खाये, पिये, पहने काम नहीं चलता । खाने-पीने-पहिननेमें तो स्वदेशी रहो, पक्के स्वदेशी । फिर और जितने काम हैं जहाँ स्वदेशी न देखो मत करो । मर तो जाओगे नहीं ।"

"अच्छा माना कि स्वदेशी पहनेंगे । एक तार भी विदेशी न होगा, रंग भी स्वदेशी होगा । डोरा हम कातकर बट लेंगे, पर सुई ? सुई तो स्वदेशी मिलती नहीं ।"

"न मिले तो कट्टर स्वदेशी व्रतवाला बे-सिये शुद्ध संस्कार-विहित कपड़ा पहनेगा, अशुद्ध सिये कपड़ेसे तबतक परहेज करेगा जबतक अपनी सुई न बना लेगा ।"

रूपमें वह समाजके पास लौट भी जाय और उनके इस पुण्यकार्य्यके बदले कुछ व्याज, सूद या मुनाफा भी मिल जाय । हम दान करनेको नहीं कहते ।"

"आप तो ऐसा नुसखा बताते हैं जिसमें बहुत पैसे लगें । धंधोंका कारखाना तो वही खोल सकता है जिसके पास बहुत रुपये हों । थोड़े पैसेवाले यही काम कैसे करें ?"

"वह तो बतलाया । कट्टर और घोर स्वदेशीका व्रत कर लो । स्वदेशी भी ऐसा जो घर-घर बने । मिलोंका स्वदेशी नहीं । इस विधिसे पैसे ठीक स्थानपर पहुँच जायँगे । इसमें कोई भारी त्याग नहीं है, और अपने गरीब भाइयोंकी परवरिश भी है ।"

"और विदेशी चीजें खरीदनेमें विदेशी मजूरों और गरीब भाइयोंकी परवरिश है । वह भी तो बुरा नहीं है !"

"वह तो सचमुच बुरा न होता अगर विदेशी मजूर हमारे यहाँसे ज्यादा गरीब होते । उलटे, वह विदेशी मजूर जिनके जेबमें हम पैसे भर रहे हैं, हमारे अनेक पैसेवालोंसे भी ज्यादा अमीर हैं । अमेरिकाके अनेक मजूर मोटरकारपर चलते हैं । गाँधीजीने मैंचेस्टरके बेकार मजूरोंका रहन-सहन देखा था जो हमारे यहाँके अनेक मध्यवर्गवालोंसे अच्छा था । अंग्रेजोंकी रोजाना औसत आमदनी भारतीयोंके औसत माहवारी आमदनीसे ज्यादा है । विदेशी माल खरीदकर विदेशी मजूरोंपर कृपा करनेकी जरूरत नहीं है । स्वदेशीका व्रत लेकर अपने दरिद्र भाइयोंपर कृपा दरसाइये और बरसाइये ।"

"तब तो जरूर पैसोंको स्वदेशीपर ही लगाना चाहिये । जो वस्तु स्वदेशी न मिले, उसे लें ही नहीं, और पैसे जितने बच सकें उतने बचाकर शुद्ध स्वदेशीपर ही खर्च करनेको रखें ।"

२—स्वदेशी रोशनी

"अच्छा यह भी माना। क्या मिट्टीके तेल बिना चल सकेगा ?"

"यह अच्छी कठिनाई उपस्थित की। भाई ! क्या मिट्टीके तेलकी चालके पहले हम रोशनी करना नहीं जानते थे ?"

"हाँ दीये जलते थे, परन्तु तेल महँगा जो पड़ता है।"

"भ्रमकी बात जल्दी समझमें नहीं आती। दो रुपयेकी लालटेन विदेशी खरीदी, बत्ती विदेशी ली जो महीनेमें दो पैसेसे कम न हुई। चिमनियाँ नित्य फूटती रहती हैं। महीनेमें चार लीं तो आठ आनेकी हुई। मिट्टीका तेल दो आने बोतल भी हो तो आठ आने महीने कमसे कम यह भी हुआ। लालटेन साफ करो, बत्ती काटो नित्य। और सब कुछ विदेशी बरतो। लालटेनका पेंदा आये दिन टपकता रहता है, तेलकी हानि। साल भरमें निकम्मी हो जाती है। लालटेनके दाम महीनेपर बाँटो तो ढाई आने महीने हुए। अब एकलालटेनका खर्च महीनेमें कुल १≡) हुआ। यह कुल विदेशी सामान हुआ। इतने झंझटोंपर भी उसकी ठेपी खोयी रहती है। आग लगनेका डर बना रहता है।

"देखो मिट्टीके दीये अपना भाई गाँवका कुम्हार बनाता है, एक पैसेमें एक कोड़ीसे भी ज्यादा देता है। अपनी रुईसे अपने हाथसे बत्ती बट लो, बहुत थोड़ा तेल डालो। आजकल जलानेका देसी तेल ≡)॥ बोतल है, महँगा है देखनेमें, परन्तु जलनेमें सस्ता पड़ता है। रेंडीका तेल और भी अधिक सस्ता पड़ता है, क्योंकि यह तेल ठहरकर जलते हैं। मिट्टीका तेल जलता क्या उड़ता जाता है। जलनेका हिसाब देखो तो मिट्टीका तेल ।) बोतल पड़ा और रेंडीका तेल =) बोतल। महीनेमें बीसतक दीये फूटें तो एक पैसा खर्च हुआ, ज्यादा नहीं। देशी दीयेसे दीया पीछे आठ आना महीना भी खर्च नहीं पड़ता।

"फिर रातमें अधिक दीयोंका काम ही क्या है ? रेंडीका तेल जलाया तो सारी रोशनी स्वदेशी हो, विदेशीका नाम नहीं। आग लगनेका डर कम है। आँख खराब न हो।

"हाँ, और आँख खराब होती है यह तो भूल ही गये।"

"जी, वह तो उड़ाऊपनका सिलसिला है। मिट्टीके तेलसे लोग कहते हैं कि रोशनी तेज होती है, पर आँखकी मारी जाती है, जिस बड़ी हानिका कोई हिसाब नहीं। हमारी आँख फूटे, और अंधेर यह कि ऐनकोंकी बदौलत हमारा धन फिर विदेश जाय। स्वदेशीका हर तरहपर नाश हो। देशी दीये जलाओ और आँखोंको और पैसोंको बचाओ।

३—अपनी स्वदेशी दियासलाई

"और दियासलाइयोंका क्या बन्दोबस्त होगा ?"

"दियासलाइयाँ तो देसी भी बनती हैं। परन्तु हम फिर भी अपनी प्राचीन दियासलाइयाँ क्यों न बरतें ? उनसे ज्यादा स्वदेशी क्या होगा ?"

"वह प्राचीन दियासलाइयाँ क्या हैं ?"

"मुझसे सुनिये। आजकलकी माचिस तो लगभग अस्सी बरस ही पुरानी हैं। परन्तु हम तो सतयुगसे आग जलाते हैं। क्या अस्सी बरसोंसे ही हम आग जलाने लगे हैं ?

हमारी सहज दियासलाई है चकमक पत्थर। इसका एक टुकड़ा अपने पास रखो। एक मुड़े हुए सिरकी लोहेकी मेख लो। वह भी अपने पास रखो। बस इसी मेखसे चकमाककी पत्थरीपर मारो तो चिनगारियाँ निकलती हैं। बस, इन चिनगारियोंको जलानेके कागजपर, गुलपर, या गंधककी सलाईपर ले लो, यह चीज़ें जल जायँगी। आग या दिये जला लो।"

"यह गुल, जलानेका कागज आदि क्या हैं ?"

"यह सहजमें बननेवाली चीज़े हैं। पुरानी खराब रूई या चीथड़ेको कोयलेके चूरेके घोलमें तर करके सुखा लो। शोरेके घोलमें कागज, चीथड़ा, रुई आदि तर करके सुखा लो। यह गुल बन गया। इसपर चिनगारी पड़ते ही आग पकड़ लेती है। चीथड़े या रुईपर ही चिनगारी पड़े तो फूंकनेसे आग पकड़ लेती है। बिना गुलके काम चल सकता है, पर गुलमें आसानी होती है। गंधकी दियासलाईका भी यही हाल है। सनईकी सलाइयाँ बराबर-बराबर काटकर उसकी गड बना लो और गडके सिरोंको बराबर करके पिघली हुई गंधकमें डुबोकर निकाल लो। यह गंधकी दियासलाइयाँ हैं। इनके गंधकी सिरेपर एक चिनगारी पड़े तो यह बल उठेगी। बस, चकमाककी पथरी

त्योहारोंमें किफायत

स्वदेशी बरतो

"जब किफायतका यह हाल है, तब त्योहारोंमें आपकी रायमें कोई धूमधामकी जरूरत ही नहीं, या यह कि त्योहार मनाये ही न जायँ।"

त्योहार मनाये जरूर जायँ मगर त्योहार मनानेमें भी ऐसी किफायत बरती जाय कि हरड़ लगे न फिटकिरी और रंग आये चोखा। खर्च कमसे कम हो और आनन्दमें फीकापन भी न रहे।

यह भला कैसे हो सकता है? खूब खर्च करनेसे ही तो त्योहारकी खुशियोंके सामान मिलते हैं। दावतें खाना खिलाना अच्छे कपड़े पहनना, पहिराना, नाच तमाशे आदि देखना दिखाना, यही त्योहार है और यह सभी मद खर्चके हैं। बच्चोंके लिये खिलौने मोल लेना। गाना बजाना धूम धाम सभी तो खर्च करनेसे होंगे?

"यह तो ठीक है, किया जायगा सबकुछ, परन्तु किफायतसे। खानेकी चीज़ें जहाँ अपने घरमें दस तरहकी बनती थीं, वहाँ एक दो तरहकी खास चीज़ें बनेंगी।

कपड़े तड़क भड़कवाले न होंगे तो सादे साफ़ सुथरे ही पहनेंगे। गहनोंकी जरूरत न होगी। घर-घर दावतें न होकर गाँवमें एक जगह इकट्ठे होकर चन्दा लगाकर इकट्ठी दावत मन चाहे तो कर लेंगे, नहीं तो अभी दावतें उड़ा दी जायँगी। इकट्ठे होकर खेलकूदमें गाने-बजानेमें किसी खर्चकी जरूरत नहीं है। बिना खर्चके पूरी खुशियाँ मनायी जा सकती हैं। भर पेट हँसनेकी सामग्री हम चाहें तो सोचकर बिना दाम कौड़ी जुटा सकते हैं। बच्चोंके लिये तरह तरहके खिलौने बड़े लोग खुद मन लगाकर बना सकते हैं। खरीदना जरूरी भी समझें तो शुद्ध स्वदेशी ही खरीदें।

"कुछ भी किफायत कीजिये त्योहारोंमें तो खर्च बढ़ा ही रहेगा। कहावत है कि आठ बार और नव त्योहार। हमारे देशमें तो नित्य त्योहार होते रहते हैं।"

"वाह! यह तो सुभीतेकी ही बात है कि हमको नित्य हँसी खुशीके दिन रहते हैं। त्योहारका असल मतलब है हँसी और खुशी। यह दोनों बातें अधिक तो मनपर निर्भर हैं, बाहरी सामानपर बहुत कम। रोटी कपड़ेकी चिन्ता न हो, घरमें कोई बीमार न हो, चरखा, मथानी, चक्की और बच्चोंके शब्द घरमें सुनाई देते हों, तो हमारे मनमें हँसी खुशी होनी ही चाहिये। परन्तु घरमें कलह करनेवाले प्राणी हों, मन मनहूस हो, तो किसी बातकी चिन्ता न होते हुए भी हँसी खुशी नहीं होती। और चिन्ता तो हँसी खुशीकी दुश्मन है। इसीलिये तकलीफमें भी

युगों चलेगी। गुल या गंधकी सलाइयां खर्च होंगी। माचिजके मुकाबलेमें कितनी सस्ती हैं!"

"हैं तो सस्ती, पर सिगरेट जलानेका सुभीता तो नहीं है।"

"सिगरेट बीड़ीका तो पीना ही ठीक नहीं है, परन्तु गंधकी दियासलाईसे हम वही काम ले सकते हैं। उसे रगड़ कर न जलाया चिनगारी निकालकर जला लिया। चकमाक तो बरसातमें भी बिगडनेकी चीज़ नहीं है।"

"जरा कुछ तरद्दुद है, जरूर। पर देखनेमें अच्छा नहीं लगता। फैशनके खिलाफ सा लगता है। मानों हम सभ्यतामें सौ बरस पीछे चले गये।"

"यही बात तो चरखेमें भी है। परन्तु अब तो दकियानूसी होते हुए भी चरखेसे लाभ हो रहा है। यही चकमाककी वैज्ञानिक क्रियामें भी है।"

"क्या चकमाकसे आग बनाना वैज्ञानिक क्रिया है?"

"अवश्य, कुछ दिनों पीछे फैशन दियासलाइयों (माचिज) को भी खदेड़ देगा। परन्तु हमें फैशनके रोगसे बचे रहकर, वह काम करना चाहिये जिससे हमारा आर्थिक ब्रह्मचर्य्य सहजमें सध सके।"

"शहरोंमें चकमाकपर लोग चमक उठेंगे, पर देहातोंमें तो यह खूब चल सकता है।"

जबरदस्ती खुश रहनेकी कोशिश करो। कष्टमें भी भरपेट हँसने और ठट्ठा मारकर हँसनेकी आदत डालो।

इससे तकलीफ़ रफूचक्कर हो जायगी। कष्ट भाग जायगा कमसे कम कुछ देरके लिये चिन्ता चूहड़ी चली जायगी।

आधा पेट खाकर भी रहो और चीथड़े भी लपेटनेको हों तब भी खूब हँसो। भरपेट हँसो। इससे बढ़कर त्योहार नहीं। यह हँसी खुशी दुःख और दरिद्रताको डंडोंसे मारकर भगा देगी। यही सच्चा त्योहार है।

कलह करनेवाले घेरे भी तो खूब हँसो और इतना हँसो कि उसकी प्रबल वेगकी धारामें कलहका कूड़ा बह जाय और ऐसा बह जाय कि ढूँढ़े न मिले। इस युक्तिको परख देखो, बावन तोला पाव रत्ती ठीक न निकले तो कहना।"

"चिन्ता चूहड़ीको भगानेके लिये ही तो लोग नशा खाते और पीते हैं और नाहक बरबाद होते हैं।"

"जी! सचमुच यह भारी बेवकूफी है। पैसा भी बरबाद, तन्दुरुस्ती सत्यानाश और दरिद्रताको न्योता यह तीनों दोष नशासेवनमें है। बस मेरे नुसखेसे काम लें तो एक भी दोष पास न फटके और नशासेवनके पापसे भी बचें।"

"त्योहारोंमें लोग शराब भंग आदिसे अपनेको बेहोश कर लेते हैं।"

"यह तो बड़ी बुरी बात है और लोगोंका भ्रम है। इससे तो त्योहारका आनन्द उन्हें कुछ भी नहीं मिलता। इसके बदले बेदाम कौड़ीका नशा है हँसोका फौवारा, हँसीमें लोटपोट हो जाओ तो आनन्दका आनन्द आता है और त्योहारका मजा भी मिलता है।

इसीलिये जब हँसो तभी त्योहार है।

"अच्छा हमने माना इस साल होलीका उत्सव किफायतसे क ंगे, परन्तु होली तो जलेगी, चतुःषष्ठिदेवीके दर्शन तो करेंगे, और अनेक शिक्षावाले काम तो करेंगे।

"हाँ, धार्मिक काम तो रुक नहीं सकते और शिक्षावाले काम तो रोकने ही नहीं चाहिये चाहे त्योहार उसी धूमसे मनावें या न मनावें। पर जो खराब काम हम त्योहारके नामपर करते हैं उनमें रुकावट डालना और लोगों को उनसे रोकना तो हमारा तीसों दिनोंका काम है।"

"त्योहार पर और खराब काम, इसका क्या मतलब।"

"यही नहीं समझे होलीमें नशाखोरी, गाली गलौज और फूहड़ हँसी दिल्लगी, बुढ़वामंगलपर इसी तरहका असंयम और व्यभिचार, कजलीके समयका फूहड़पन, दीवालीके समय जुएका खेल, यह सब क्या खराब काम नहीं हैं?

"जरूर! मगर, जब धूम न मचायेंगे तो उसकी खराबियाँ क्यों होगी?"

"तो भी जिनकी नशेबाजीकी कुटेव पड़ी है वह नशा बिना रहेंगे नहीं और जिनका मन ही गन्दा है वह गाली बकनेके लिये ही नशा पीलेंगे कि बहाना मिल जाय कि हम तो नशेमें थे, जाने क्या वाही-तवाही बक गये। इसी तरह जुआड़ी तो कभी नहीं मानते, चोरी छिपे खेलते ही हैं पर दीवालीमें खुले खेलते हैं। इसीलिये इन कुटेववालोंको सीख देनेका काम तो नहीं छोड़ना चाहिये।

"तब तो आपके त्योहारको धूमसे मनाने और न मनानेमें बहुत थोड़ा अन्तर रहा!

"यह बात तो नहीं है। अन्तर बहुत कुछ है। हम बहुत दावतें न खायेंगे न खिलावेंगे, न बहुतसे पकवानों और मिठाइयोंके तैयार करनेमें पैसे बरबाद करेंगे। इस तरह पैसे बचेंगे और संकटके लिये रखे जायंगे। परन्तु जितना मनावेंगे फिर वह चाहे कोई त्योहार हो, पूरे स्वदेशी ढंगसे मनावेंगे।"

"त्योहार तो सभी स्वदेशी ढंगसे मनाये जाते हैं, उनमें विदेशीपन क्या होता है?"

"क्यों नहीं। पहले रक्षाबन्धन ही लीजिये। ब्राह्मण जो सूत्र बांधता है वह तकली या चरखेका नहीं होता, मिलका या विदेशी सूत और रेशमका होता है। क्या यह खराब बात नहीं है? जनेऊ तक मिलके सूतका लोग पहनते हैं! जन्माष्टमीमें भगवानके शृङ्गार में कितनी विदेशी वस्तुएँ बरतते हैं, जरा सोचिये तो सही। दशहरा, दुर्गापूजा और होलीके त्योहारपर भी लोग नये कपड़े बनवाते हैं, परन्तु ऐसे अवसरपर सबसे ज्यादा ख्याल चाहिये कमखर्चीका और जो कुछ लाचार हो खर्च भी

सफाई और किफायत

१. कपड़ेकी सफाई

"भला यह तो बतलाइये कि सफाई तो बहुत ही जरूरी बात है। उसमें किफायत बरतनेसे तो स्वास्थ्यकी बरबादी है।"

"सफाई रखनेमें यदि अपनी मेहनत खर्चकी जाय तो कम खर्चमें ज्यादा सफाई होगी, यह तो निश्चय है। हम अपने घरकी सफाई झाड़ बुहार जितनी अच्छी तरह अपने हाथोंसे कर सकते हैं, मजूर या मजूरिनोंसे कभी हो नहीं सकता। लिपाई पुताईके कामका भी यही हाल है। देखो अनाज सस्ता हुआ परन्तु किसी मजूर या कारीगरने अपनी मजूरी नहीं घटायी, और घटाते क्यों? पैसा सस्ता था तब लोग झट पैसे देकर काम लेते थे। इधर फजूल-खर्चीकी पड़ी हुई बानसे लोग लाचार हो छोटे-मोटे काम भी अपने हाथसे न कर औरोंसे करवाते रहे हैं। जब कारीगरों और मजूरोंको काम न मिलेगा वह मजूरी जरूर घटायेंगे।"

"धोबियोंने भी तो मजूरी नहीं घटायी है!"

"इसीलिये तो कपड़े भी अपने ही हाथ धो लेने चाहिये।"

"परन्तु अपने हाथों वह सफाई तो नहीं आती।"

"वह सफाई? उसके न आनेके कई कारण हैं। एक तो उतनी मेहनत नहीं की जाती। दूसरे वह सब उपाय नहीं बरते जाते। तीसरे नये धोबीमें पीढ़ी दरपीढ़ीके पुराने धोबीकी कुशलता न आवे तो आश्चर्य ही क्या है। फिर भी हमारा मतलब तो सफाईसे है, सफेदीसे नहीं।'

"आखिर सोडा तो विदेसी होगा और साबुन भी सोडेसे ही बनता है?

"जब सोडा और विदेशी साबुन लगाया तो स्वदेशीपन क्या रहा? सोडेकी जगह रेह या सजीमट्टी काममें लाओ। रेह क्या है, सोडा मिली मिट्टी। यह मिट्टी चौगुनी काममें लाओ। इस मिट्टीकी ढुलाई भर लगती है। पाँच सेर कपड़छन रेहमें छटाँक चूना मिलाकर घोल लो, कपड़ोंको उसमें खूब सौंदो। खूब भिगोकर धूपमें रखदो। दिन भरकी धूपसे भट्टी देनेका काम हो जायगा। फिर कपड़ोंको पहली बार अच्छी तरह पटको कि तानेबाने दोनोंकी ओर खिचाव और चोट पड़े। या लकड़ीकी मुंगरीसे खूब उलट पलटकर पीटो, फिर निचोड़ो और फिर मुँगरीसे पीटो और फिर निचोड़ो। अब पानीमें अच्छी तरह खंगालो। फिर पछारो फिर खँगालो। इस तरह थोड़ा-थोड़ा पछारते और खँगालते निचोड़ते, फिर भिगोते पछारते, खँगालते निचोड़ते रहो, जब निचोड़नेपर साफ पानी गिरे, समझो कि धुल गया। फैलाकर सुखा लो। परिश्रम और पानीका खर्च है।"

"इस विधिसे दाग धब्बे तो छूटेंगे नहीं।"

"दाग धब्बे तो पहले छुड़ा लेने होंगे तभी पटकना होगा। तेलके और तेल या चिकनाई मिले धब्बे तो रेह चूना, या साबुन मलने और चुटकियोंके बीच रगड़नेसे छूट जायेंगे। खटाईके धब्बे भी इसी तरह मिट जायेंगे। रोशनाईके धब्बे चूकके रससे या नीबूसे भी साफ हो जाते हैं। खारके धब्बे किसी खटाईसे मलनेसे छूट जाते हैं। साधारणतः धोबिया साबुन मलकर चुटकियोंके बीच रगड़-रगड़कर धोनेसे धब्बे छूट जाते हैं।

"कीमती कपड़े भिगोकर साबुनसे धोने चाहिये। खासकर ऊन और रेशम धोनेको रीठी भिगोकर रातभर रहने दो सबेरे उसीसे मलकर कपड़ेको साफ करो। खारसे ये कपड़े जल जाते हैं।"

"मगर धोबिया साबुनमें भी तो सोडा डालना पड़ता है?"

"खुद बना लो। पाँच सेर रेह खूब कपड़छन करके लो। पावभर पत्थरके चूनेकी बरी लेकर पानीमें बुझा लो। उसमेंसे कंकड़ियाँ आदि निकालकर साफ करलो। इसमें अब छानी हुई रेह मिलाकर लोहेके एक कड़ाहेमें साढ़े

कीजिये तो शुद्ध स्वदेशीपर। त्योहारोंपर सजावटमें सादगी और किफायत चाहिये परन्तु स्वदेशीका सिद्धांत किसी मौकेपर भूलने न पावे। बस यह याद रहे कि (१) पैसे कमसे-कम खर्च हों और (२) जो कुछ खर्च हों वह स्वदेशपर ही खर्च हों।"

पाँच सेर पानी देकर नरम आँचमें दो घण्टे पकाओ कि सों-सों करे, उबले नहीं। और खूब चलाते रहो, फिर आँच और कम करके उसमें धीरे धीरे आध सेर रेंडीका तेल डालो और खूब चलाते रहो, जब सब एक दिल हो जाय तब आँच हटा दो और एक घंटेके लगभग लोहेकी खुरचनीसे चलाते और घोंटते रहो। अब गाढ़ा हो जायगा। इसे किसी ऊँची बारीकी थालीमें या किसी काठकी किश्तीमें उँडेलकर समतल जगहमें रख दो। आठ-दस दिनके बाद इसकी टिकिया काट लो। ज्यादा खर्च नहीं और दस सेर साबुन, धोबिया साबुन, मिल जायगा।"

"हाँ! यह तो जरूर पैसे बचानेवाली स्वदेशी विधि है। सस्ती विधि हो तो आदमी कपड़े रोज धोकर ही पहना करे।

"कपड़े तो रोज धोने ही चाहिये। जो कपड़े बदनसे लगे रहते हैं, उनमें पसीना लगता है। चाहे साबुन मिले या न मिले उन कपड़ोंको नित्य पानीमें देर तक भिगोकर खूब पीट-पीटकर धो डालना जरूरी है। इनके ऊपरके कपड़े चाहे दो-दो चार-चार दिनोंपर धोये जायं तो हर्ज नहीं है।"

बिना साबुनके सफेद तो न होंगे!"

"न हों! धुलना ही मुख्य सफाई है, केवल सफेदी सफाई नहीं है।"

२. शरीरकी सफाई

"यह तो कपड़ेकी सफाई हुई। परन्तु बदनकी सफाई बिना कपड़े तो जल्दी-जल्दी मैले हो जायँगे।"

"कपड़े मैले हो जायँगे वह तो थोड़ी बात है, परन्तु गन्दा रहनेवाला बीमार हो जायगा, भाँति-भाँतिके रोगोंसे उसका जीवन घट जायगा, आदमी रोगी, दुबला और दुःखी रहकर जल्दी मर जायगा।"

"इसलिये उसे भी साबुन चाहिये। क्या धोबिया साबुन काम देगा?"

"नहीं, उसे साबुन साधारणतया नहीं चाहिये। यदि उसे कोई चर्म्म-रोग हो तब तो साबुनकी जरूरत है। शुद्ध जल चाहिये। सिरसे पैरतक अच्छी तरह मल-मलकर प्रत्येक अंग अच्छी तरह उसे धोना चाहिये। दाँत, जबान, मुँह साफ करनेको दातौन। मंजन व्यर्थ है। दातौन न मिले तो कोयलेके चूरे या रेतेसे अच्छा मंजन नहीं है। दाँतोंको रोगसे बचाये रहनेके लिये अधिकसे अधिक नमक और तेल मलकर कुल्ली करना काफी इलाज है। मंजनोंके जालमें फँसकर पैसे मत बरबाद करो। आँतों और दाँतोंको सफाई रखनेवालोंको दाँतके रोग नहीं होते।"

"आँतोंकी सफाई कैसे?"

"नित्य नियमसे प्रातःकाल उठते ही शौच क्रियाकी बान डालना आवश्यक है। मलद्वारको चिकनी मिट्टी लगाकर पाँच बार धोना, फिर बायें हाथको अकेला ही मिट्टीमें रगड़-रगड़कर दसबार धोना, फिर दोनों हाथोंको मलकर सातबार धोना बहुत जरूरी है। आदत डालकर नित्यके शौचाचारसे कब्ज़ बवासीर आदि नहीं होते। और जो लोग बस्तिकर्म्म जानते हैं वह वस्तिक्रियासे कभी-कभी पेट साफ कर ही लेते हैं।"

"दातौनकी विधि तो बड़े किफायतकी है ही, साथ ही देखा है कि कुछ लोग एक ही कूँची अनेक बार बरतते हैं।"

"यह तो गन्दगी है। कूँची हमेशा ताज़ी बनानी चाहिये और सुबह-शाम दोबार दातौन करनी ही चाहिये और दो-बार स्नान जिससे न बन पड़े वह एक बार स्नान करे और दूसरी बार बदन ही पोंछ डाले।"

"अँग्रेजी विधिसे भोजन करनेवाले तो मुँहतक नहीं धोते, उनसे दो बार दतौनकी बात कहना तो ज्यादती है।"

"भोजन करनेकी विधि तो मनुष्य मात्रकी एक ही है, यानी खूब चबाचबाकर खाना। हाँ, मुँह धोना ही तो मनुष्यता है। डाक्टर तो कहते हैं कि जब खाना खा चुको तब भी दतौन करो, ब्रशसे दाँत खूब साफ करो अच्छी तरह कुल्ली करो, नाक मुँह आँख सभी कुछ साफ करके रगड़के पोंछ डालो।"

३. आस-पासकी सफाई

"आस-पासकी सफाई भी तो जरूरी है।"

"इसमें क्या शक है। हर आदमी अपना शरीर और कपड़े तो साफ रखे, मगर घरद्वार गली-कूचोंमें गन्दगी रहे, तो वह जरूर बीमार होगा। इसलिये अपने बदन और कपड़ोंकी सफाईके सिवा खुद तो सफाईकी आदत डाले और अपने आस-पास सफाई भी रखे।"

"सफाईकी आदतका क्या मतलब ?"

"आस-पासकी सफाई तो अधिकतर आदमियोंकी सफाईकी आदतपर निर्भर है। हम सफाईकी आदत रखें तो आसपास एक तो साफ रहेगा और अगर न रहेगा तो हम साफ कर लेंगे। रेलकी यात्रामें हमने देखा है कि हमारे भाई जहाँ बैठते हैं वहीं थूकते खखारते हैं, खाकर जूठे पत्ते, छिलके, आदि उसी जगह फेंक देते हैं, केलेके छिलके गिरा देते हैं जिनपर औरोंके पाँव फिसलते हैं और वे गिर जाते हैं, टट्टीमें ठीक तरहपर बैठना और पानीका इस्तेमाल नहीं जानते, उस जगह ऐसी गन्दगी कर देते हैं कि पासपड़ोसमें भी बैठना असंभव हो जाता है। आलस न करें और ज़रा सावधानी बरतें तो इनमेंसे एक प्रकारकी भी गन्दगी होनी जरूरी नहीं है।"

रेलमें ही क्या, गलियों सड़कों और अपने घरद्वार बाग बगीचोंमें भी तो लोग ऐसी ही गन्दगी करते हैं।"

"हाँ, यह बिलकुल सच है। लोग समझते हैं कि सड़कपर झाड़ू लगती ही है, इसलिये हम पत्ते, रद्दी कागज, छिलके आदि फेंक दें तो आखिर तो बुहारा जायगा ही। परन्तु यह नहीं सोचते कि जबतक झाड़ू न पड़े तबतक गन्दगी रहेगी, मक्खियाँ भिनकेंगी; बीमारी फैलेगी। सड़कके दोनों ओर नालियाँ हैं, परन्तु थूकने खखारनेके लिये नालियोंतक जानेका कष्ट नहीं करते। जहाँ-तहाँ थूक देते हैं। कई देशोंमें यह सब अपराध माना जाता है, जुरमाना होता है। हमारे आचारशास्त्र भी इसे पाप कहते हैं, परन्तु शिक्षा न होनेसे हम इन जरूरी बातोंपर भी ध्यान नहीं देते।"

"यह भूलें तो शिक्षित भी करते हैं।"

"हमारे देशमें हर पढ़ा-लिखा आदमी शिक्षित समझा जाता है, मगर हमें दुःख है कि हमारे मदरसोंमें इन जरूरी बातोंकी शिक्षा नहीं मिलती। शऊर और सफाई तो शिक्षकोंको ही नहीं आती।"

"पढ़े-लिखे आदमी भी जगह-जगह थूकते और मल-मूत्र त्यागनेतकमें अपने आस-पासकी खतरनाक गन्दगीका ध्यान नहीं रखते, फिर बे-पढ़ोंकी तो बात ही क्या है।"

"शहरोंमें तो इसका कुछ प्रबंध भी रहता है, देहातोंमें तो कुछ भी नहीं।"

"सब शहरोंमें एक सा प्रबन्ध भी तो नहीं है। कहीं कुछ अच्छा है, कहीं बुरा। पैसे ज्यादा खर्च करके फिर भी वहाँ गन्दगी कम करनेका प्रबन्ध होता रहता है। देहातोंमें तो बिना पैसेके कुछ परिश्रम करके ही उत्तम प्रबंध कर सकते हैं।"

"सो कैसे ?"

"लोग बागोंमें, खेतोंमें, ऊसरमें फरागत होनेके लिये सीधे बैठ जाते हैं। मैलेपर मक्खियाँ बैठती हैं। यह अपनी टांगोंमें मैला लपेटे भोजनपर भी बैठ जाती हैं। थूक खखारका भी यही हाल होता है। इस तरह लोग गंदा भोजन करके रोगके शिकार होते हैं।"

"ऐसा तो शहरोंमें भी होता है।"

"जी हाँ, सभी जगह इस तरहकी गन्दगी है। इसका सहज इलाज है। अगर मलमूत्र त्यागनेके बाद ही उसे राख या मिट्टीसे ढक दें तो मक्खियाँ न बैठें और गन्दगी न फैले। इसमें थोड़ी सी मेहनत है, और खर्च कुछ भी नहीं।"

"सफाईमें खर्च करनेके बदले शायद सफाईसे लाभ भी उठाया जा सकता है।"

"सफाईसे नहीं, बल्कि मलसे, बहुत लाभ उठाया जा सकता है। शहरोंमें म्युनिसिपलिटी चाहे तो मलमूत्रको खादका रूप देकर लाखों रुपये कमा ले। देहातोंमें खेतोंमें, जिन्हें परती छोड़ रखा हो, लम्बी नालियाँ खोदकर उसमें मलमूत्र त्याग कराया जाय, और हर बैठनेवाला मलत्यागके बाद नालीके ऊपर जमा की हुई मिट्टी उसमें गिरा दे, तो मक्खियोंसे भी बचाव रहे और मल कुछ दिनों पीछे अपने आप खाद बन जाय। इस तरह नालियाँ खोद-खोद पाट पाट-सारे खेतको खादमय कर दिया जा सकता है। लोग गाड़ियों खाद मोल लेकर मजूरी देकर खेतामें डलवाते हैं। इसमें खर्च लगता है। ऊपर बतायी विधिसे खेतमें खाद वहींकी-वहीं तैयार हो जाती है, सारा खर्च बच जाता है। परदेका प्रबन्ध भी सहज है। उठाकर इधर-उधर ले जायी जानेवाली कई-कई टट्टियाँ बना ली जा सकती हैं। जिस किसी खेतमें ऐसी टट्टियाँ होंगी उसमें औरत मर्द बड़े चावसे जायँगे। इससे गाँव भरमें गन्दगी घट जायगी और खेतोंका भी फायदा है।"

"शहरोंमें तो भंगियोंका बन्दोबस्त रहता है, परन्तु देहातोंमें ऐसा बन्दोबस्त न होनेसे सफाईमें कमी रहती है।"

"यह बड़े खेदकी बात है कि जो काम हर एक मनुष्यका है, उसे करनेके लिये मनुष्योंकी एक जाति बना दी जाय। भंगियोंकी जरूरत देहातोंमें तो है ही नहीं। जैसी उठौआ टट्टी हम बतला चुके हैं उसमें भंगीका क्या काम? गोबर लीद आदि तो एक गड्ढेमें इकट्ठा करके कीमती खाद बनायी जा सकती है। मवेशीका मूत्र भी गड्ढोंमें बटोरकर खाद बनायी जा सकती है। गावोंमें घर-घर बेकारोंकी भरमार है। सब मिलकर सफाईका काम बाँट लें और गाँवोंको सदा साफ रखकर स्वर्ग बना दें।"

"हम अच्छे-अच्छे घरोंमें देखते हैं कि मकड़ियोंने अपने घर बना रखे हैं, जाले तने हुए हैं, कोनों अँतरोंमें कीड़े-मकोड़े भरे पड़े हैं, चीज़ें गँजी हुई हैं बेतरतीब, सामानपर इंच-इंच भर मोटी गर्दगुबारकी तह जमी हुई है, बरतनोंपर दाग पड़े हुए हैं, गरज़ कि हर चीज़ इस बातको गवाह है कि किसीको सफ़ाईका ध्यान नहीं है। बगैर एक नौकर या मजदूरिनके यह काम हो नहीं सकता और नौकर रखनेको पैसे कहाँ हैं?"

"जी! नौकर-मजदूरनीकी एक ही कही। जिनके घरोंमें दस-दस नौकर हैं उनके यहाँ भी तो ऐसी गंदगी देखनेमें आती है। और देखनेमें आती है उनके घर भी जिनके यहाँ एकसे अधिक आदमी नौकरीके लिये मारे-मारे फिरते हैं, घंटों धुआँ उड़ाते हैं, भंग या शराबमें पड़े गैन रहते हैं, आलसमें पड़े पहरों दिन चढ़े उठते हैं, घंटों बाल सँवारते और कंघी करते हैं। यह इसीलिये कि हमें बेकारी का रोग सताता है। काम हमारे सामने है, हमारी गली हमारा द्वार, हमारा चबूतरा, हमारा बरामदा, हमारी कोठरी हमारा आँगन सब गन्दा है, परन्तु हम ऐसे इज्जतदार हैं कि गन्दगी और आलसमें पड़े सड़ते हैं, बेकारीका रोना रोते हैं, पर अपने हाथ झाड़-पोंछ नहीं करते। अपने आस-पासकी सफाईसे हमारी इज्जत चली जायगी। मानों गन्दगी हमारी इज्जतकी निशानी है।"

"बात ठीक कहते हैं। जरूरत है हर आदमीको अपने चारों ओर सफाई-सफाई देखनेके लिए क्षण-क्षण जागरूक रहने की। जिन्हें कहीं काम नहीं मिलता उन्हें तो पहले हमारे आस-पासकी सफाई ही पहला और जरूरी धंधा है। यह धंधा करके अपना आलस तो छुड़ावें। काम तो उनकी केहुनियोंके पास उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। उन्हें अपना खास समय इस काममें नित्य देकर बाकी समयके लिये जीविकाका धंधा खोजना चाहिये।"

४. सफाई हर एकका कर्त्तव्य है

"आप कहते हैं कि सफाईसे बीमारी नहीं आती, परन्तु हमारा अनुभव है कि बड़े साफ सुथरे बँगलोंमें बड़ी सफाईसे रहनेवाले अमीरोंके घर हैजा हुआ और आदमी मर गये।"

"हैजा शायद पास पड़ोससे आया होगा। बंगलेका रहनेवाला खुद तो साफ रहता और अपने घर और उसके आसपासकी सफाई कर सकता है, पर कोठीके पास ही जो गरीब लोग गन्दगीसे रहते हैं या आलसी अमीर भी जो गन्दगीसे रहते हैं उनकी छूतसे कहाँ बच सकता है। पड़ोसकी मक्खियोंसे मच्छरोंसे कीड़ों-मकोड़ोंसे कहाँ बच सकता है। इसीलिये हर आदमीका कर्त्तव्य है कि सारे गाँवकी, सारे मुहल्लेकी सफाईपर निगाह रखे, और वास्तविक सफाईके काममें हाथ बटावे, तब कहीं जाकर वह पूरा स्वास्थ्य भोग सकेगा। आत्मरक्षाके लिये समाजकी रक्षा, और समाजकी रक्षाके लिये अपनी रक्षा, करते रहना प्रत्येक व्यक्तिका कर्त्तव्य है। अपना और समाजका अन्योऽन्याश्रय सम्बन्ध है।"

"यह आपने खूब कहा। कोई करोड़पती कोठीवाल अपने पाँच रुपयेके चौकीदारके रहन-सहनको सुधारनेमें भूल करे तो प्रकृति उसे प्राणदंडतक दे सकती है। प्रकृतिका न्याय कितना कठोर है, कितना भयंकर है!"

"हाँ, और कोठीवालको उचित है कि अपने दरिद्र पड़ोसियोंका बड़ा ध्यान रखे और उनकी उचित सफाईमें पूरी मदद दिया करे—यदि कोठीवालको अपनी जान प्यारी है।

स्वदेशी रंग और छपाई

१. रंग

"आपका कहना तो नहीं माना गया। होलीका त्योहार तो बेतरह मनाया गया।"

"क्या मनाया गया? कह सकते हो कि होलीकी वही चहल-पहल रही जो पहले रहा करती थी?"

"मगर यह न समझना कि मेरे मना करनेसे रंग फीका रहा। मना करनेकी तो जरूरत ही न थी। असलमें चोखे रंगका सामान ही कहाँ था।"

"मगर जो रंग उड़ा विदेशी था!"

"मैं मानता हूँ। बात यह है कि लोग अपने रंगोंको भूल गये। रंगरेज अपनी कला बिसार बैठे और विदेशी बुकनी बरतने लगे। नहीं तो, इन जहरकी बुकनियोंके फैलनेके पहले संसारमें रंगनेकी कलाके हमीं उस्ताद थे।"

"मगर वह रंग आवें कहाँसे?"

"वह रंग गये कहाँ? यों कहो कि हम उन्हें भूल गये। पलाशके जंगलोंमें गाड़ियों टेसू आजकल बेकार सूखता है। उबालकर इससे पीला रंग निकालते थे। मसालेमें काम न आती तो हम हल्दीको भी भूल जाते। हरसिंगारका केसरिया रंग भी जानी हुई चीज है। कुसुमसे लाल-पीले दोनों रंग निकलते हैं। शहाब अबतक मशहूर है। पतंग मजीठ और लाखसे लाल रंग, कसीस और हलदीसे हरा, नासपाल तूतिया कसीससे आसमानी नीला आदि, नीलसे नीला, फिर इन्हीं रंगोंके सामानकी कमी-बेशीके मेलसे फिटकरी हड़ आदिकी जमीन बनाकर रंगनेसे इतने प्रकारके रंग बनते हैं कि अकल दंग हो जाती है। परन्तु इनमें कला है जो रंगरेज भूल गये, परिश्रम है जिससे लोग भागते हैं, और बुकनीमें कुछ भी नहीं है, और हानि यह कि पैसे विदेश चले जाते हैं।"

"तब तो हम आप खुद रंगें तो अच्छा है।"

"बेशक! घरकी देवियोंको रङ्गीन साड़ियाँ पहनानेके लिये खुद हमें रंगनेका काम कर लेना चाहिये। और जबतक हम अपने रंग न रंग लें तबतक विदेशी रंगको छोड़कर शुद्ध सफेद कपड़े पहनें।"

"और होलीमें खेलनेको टेसू उबालकर घड़ों रङ्ग तैयार करना कोई बात ही नहीं है।"

"रंगोंके लिये नुसखे कहाँ मिलें?"

"जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ" अभी कुशल है। बूढ़े रंगरेज अभी मौजूद हैं। नहीं तो डाक्टर रायका "देशी रंग" या साबरमती आश्रमसे रंगनेके नुसखेवाली पोथी मँगवाकर देखिये और मनमाने रंग बनाइये। उन्हींके आधारपर नये-नये रंग निकालिये। इस कलाका फिरसे उद्धार हो जाय।"

"आपका यह प्रस्ताव एक दृष्टिसे तो बहुत अच्छा है। हम रंगोंके लिये दूसरोंके भरोसे क्यों रहें। कोई सत्रह-अठारह बरस हुए, युरोपीय महासमरके समय रंग कितने महँगे हो गये थे, उस समय जिन व्यापारियोंके स्टाकमें रंग था, वह तो मालामाल हो गये और देशकी चमक-दमकवालोंकी रंगीनी फ़क़ हो गयी। देशी रंग बरतनेमें हमारा पैसा देशमें ही रहेगा।"

२. कपड़ोंकी छपाई

"और छपाईका काम भी तो इन्हीं रंगोंसे होता है?"

"हाँ, कपड़ोंकी छपाईके काममें भी प्रायः यही रंग लगते हैं। अँग्रेजीमें छींट शब्द प्रचलित है। छींटोंकी छपाई संसारमें हमारे ही यहाँकी प्रसिद्ध थी। आज भी देशमें छपाईका काम उत्तम प्रकारका होता है।"

"वास्तवमें रंगाने और छपवानेकी तो ज़रूरत नहीं है। परन्तु कला और सौन्दर्य्य दरिद्रतामें भी हमारा मन खींच लेते हैं, और रंगाई और छपाईका धंधा जो भाई करते हैं, उन्हें पैसे मिल जाते हैं। इसलिये इन कलाओंको प्रोत्साहन मिलना चाहिये।"

"हम तो चाहें तो रंगने और छपाईका काम बिना विशेष कठिनाईके अपने घर ही कर ले सकते हैं।"

"रंगाई तो अपने घरमें कर सकते हैं, और प्रायः लोग कर ही लेते हैं, परन्तु छपाईके लिये ठप्पे भी चाहिये।"

"जिस तरह लोग भली बुरी रंगाई अपने घरकर लेते हैं, उसी तरह अपने हाथसे काटे हुए ठप्पे बनाकर छींट भी छाप सकते हैं।"

"परन्तु इस काममें देशी रंग बरते जायँ तो घर-बाहर कहीं भी काम हो पैसे बरबाद न होंगे।"

उचित आहारसे आत्मरक्षा और समाजरक्षा

१. खाने-पीनेमें शुद्ध स्वदेशी बरतो

"और सब बातोंमें जो कुछ हो, पर खाने-पीनेमें तो हमारा स्वदेशी अभी बचा हुआ है।"

"कहीं कुछ! आप बेखबर खाने-पीनेमें लगे ही थे कि विदेशीपन रेंगकर आपकी थालीमें फैल गया। आपको पता ही नहीं!"

"सो कैसे?"

"सुनिये। रोटियोंका गेहूँ आस्ट्रेलियासे, भातका चावल रंगूनसे, घी और नमक युरोपसे, चीनी जावा और मारिशससे आकर आपके रग-रगमें संचारकर रहे हैं और आप अब भी स्वदेशी भोजनकी डींग हाँक रहे हैं?"

"तो क्या अनाज भी हमारे देशमें कम पैदा होता है?"

"जी नहीं, ज्यादा पैदा होता है। परन्तु सुभीतेसे सस्ते भावोंपर विदेश चला जाता है। आस्ट्रेलिया आदिमें बहुत ज्यादा होता है और वहाँ खानेवाले अत्यन्त कम हैं। भारत ही निकट है जहाँ सुभीतेसे खपत होती है।"

"खानेवाले तो यूरोपमें बहुत हैं। चीनकी भरी बस्ती है।"

"इनकी दूरी बहुत है। फिर भारतसे जेठके ही महीनेसे गेहूँ विलायत जाने लगता है। आस्ट्रेलियासे कुआर-कातिकमें आता है। यहाँ मालगाड़ीसे करावीतक की ढुलाई खूब घटा दी जाती है। सब तरहसे उधर बहावका सुभीता कर दिया जाता है। अनाज ढाल पाकर बह जाता है। पर इन बातोंमें क्या धरा है? हमें तो स्वदेशीकी चिन्ता है।"

"तो हमें अपने अनाजको बचाना चाहिये।"

"बचे कैसे? देनकी मारसे दरिद्र किसान खड़ा फसिल बन्धक कर देता है, तय्यारीपर बिना बेचे पोत कैसे चुकावे साहूकारको क्या दे? बस, विदेशी गिद्ध मालकी ताकमें रहते हैं, उड़ा ले जाते हैं। इस रोगसे बचना बड़ा कठिन है। तो भी यह ख्याल रखा जाय कि किसान अपने साल भरकी खरची रखकर ही बेंचे और यहाँके पूँजीपति अनाजकी रक्षाके लिये ट्रस्ट बना लें और उसकी खपत देशमें ही करावें, तो रक्षा हो सकती है।"

"और घी नमक शक्कर?"

"घी तो वनस्पतिके नामसे ऐसा फैला कि उससे बचना कठिन हो गया है तो भी हमारे व्यापारी स्वयं ईमान्दारी बरतें और धर्म्मकी रक्षा करें तो कुछ मुश्किल नहीं है। व्यापारियोंका संघ या मंडल कड़ा संघटन करे, किसीको विदेशी घी, खांड, नमक मिलाकर न बेचने दे न ठगीका व्यापार करे, न करने दे, कड़ा दंड बैठावे, पोलखोल दे तो यह चीजें स्वदेशी नामसे बिकने ही न पावें और हम स्वदेशीके धोखे विदेशी न लें। असल बात यह है कि सस्ता वनस्पति घी देशी घीमें मिलाकर बेचा जाता है और लोग ठगे जाते हैं।"

"तो विदेशी घी, नमक, शक्कर हमारे देशमें आवे ही क्यों?"

"खैर, वह आवे भी तो हमारा क्या हर्ज है हमारे देशमें जो विदेशी लोग हैं उन्हें तो अपने देशकी चीजें लेनेकी वैसी ही चाट होगी जैसी हमें स्वदेशी बरतनेकी होनी चाहिये। फिर उनके लिये विदेशी चीजें आवें और वह बरतें तो क्या बुराई है। परन्तु हम क्यों न स्वदेशी बरतें?

"यह तो आप न्यायकी बात कहते हैं। परन्तु जो विदेशीका मेल करके स्वदेशीके नामसे बेचते हैं, यह उनकी बेईमानी है।"

"हमें इसी ठगीसे बचना चाहिये। हम देशी चीनी देशी नमक देशी घी बरतें और देशी अनाज खायँ बस इस व्रतके पालनकी पूरी कोशिश होनी चाहिये।

२. चक्की, ऊखल और कोल्हू

"जब आप स्वदेशीपर इतने उतारू हैं तो आपके सम्प्रदायमें तो कलका आटा, बासी नहीं ताजा भी, खाने लायक नहीं समझा जायगा, क्योंकि वह "कलका" है?"

"नहीं, वह तो स्वदेशी ही है, क्योंकि उसमें पूँजीश्रम और कच्चा माल सभी देशी हो सकते हैं। परन्तु हम ऐसे सभी कलोंके विरोधी हैं जिनसे हमारे बेकारोंकी रोटी मारी जाती है।"

"क्यों ? कलमें हमारे देशके ही मजूर तो लगते हैं ?"

"यह ठीक है, पर इसमें जो भेद है आप नहीं समझे। हमारे देशमें हट्टे-कट्टे किसान सालमें कमसे कम तीन और अधिकसे अधिक नव महीनेतक बेकार रहते हैं। इस बेकारीका हिसाब लगानेसे मालूम होता है कि तीन करोड़से ऊपर आदमी हमारे देशमें सालभर सदा बेकार रहा करते हैं। भूमंडलपर ऐसी भयानक बेकारीवाला कोई सभ्य देश नहीं है। इससे हम ऐसे दरिद्र हैं कि आदमी पीछे छः पैसे रोजपर गुजर करते हैं। फिर ऐसे देशमें कोई ऐसी कल चलाना जो एक आदमीसे अधिक दो आदमीका भी काम कर डाले, महापाप है, क्योंकि हर एक कल एक एक आदमीको बेकार कर देगी। कल आजकल इसीलिये चलायी जाती है, कि कमसे कम मजूर लगाकर ज्यादासे ज्यादा काम निकाला जाय, परन्तु हमारे देशकी भयानक बेकारी यह माँगती है कि ज्यादासे ज्यादा मजूर लगाकर उतना ही काम निकाला जाय जितनेकी हमारे देशको ज़रूरत है। ऐसी दशामें कलसे हमें कल नहीं मिलेगी। इस जमानेकी सारी बेकली किसी न किसी शकलमें इसी कलकी करतूत है। इसी सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर आटेकी कलको भी हानिकर समझना चाहिये। इससे पिसनहारियोंका रोजगार छिन गया। दो पैसे, तीन पैसे पसेरी वह भी पीसती थीं। आज मूर्ख लोग अपने गाँवसे चार-चार कोसपर सिरपर गेहूँ जौ लादकर ले जाते हैं और पिसवा लाते हैं परन्तु अपने घर चक्कीमें पिसवाकर इस दोहरी हानिसे नहीं बचते।"

"आप ठीक कहते हैं। घर-घर चक्कियाँ फिरसे चलनी चाहिये।"

"और ऊखल भी। मिलमें धान छटता है तो हमारे किसानोंका धन घटता है। ऊखलका काम फिरसे जारी हो। कितना सहज काम है और उसकी मजूरी क्यों खोयी जाय ? बस, यह काम अपने हाथों कीजिये और कमसे कम अपने घरकी रसोईसे तो "कलजुग"को मार भगाइये।"

"आप ठीक कहते हैं। घरमें स्त्रियाँ बेकार रहती हैं। छः आने मन आटेकी पिसाई मिलवाले लेते हैं। घर आटा पिसे तो यह छः आने बच जायँ।"

"और डाक्टरसे पूछिये तो बतावेगा कि बहू बेटियाँ चक्की चलावें तो व्यायाम हो, फिर योनि रोगोंसे बची रहें और बच्चे होनेमें जोखिम और कष्ट कम हों। इस तरह दवाके और डाक्टरोंकी फीसके पैसे भी बचें। और आये दिन बेरी-बेरी रोग न हो।"

"हाँ, यह बेरी-बेरी रोग सुना है कि मिलछांटे चावलसे पैदा होता है।"

"यह ठीक वर्णन नहीं है। किन्तु उन चावलोंका अवश्य सम्बन्ध है। बात यह है कि मिलमें पालिश करनेमें चावलोंके ऊपरी सतहपर रहनेवाला पोषकतत्त्व रगड़ खाकर नष्ट हो जाता है। मिलके आटेमेंका भी पोषकतत्त्व अधिक मात्रामें नष्ट हो जाता है। यह तत्त्व न मिलनेसे इनके खानेवालोंको बेरी-बेरी रोग होनेमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं होती।"

"तो, स्वास्थ्य-रक्षाके लिये भी हाथका पीसा आटा, हाथका कूटा चावल खाना जरूरी है। इससे अधिक भाई बहिनोंको काम मिलता है। उनकी बेकारी घटती है, और सबके स्वास्थ्यकी रक्षा भी होती है।"

"अच्छा, चीनी और शक्कर ?"

"चीनी और शक्कर, विशेषकर सफेद खांड़ तो पोषक-तत्त्व बहुत कम रखती है और हानिकर है। गुड़ अधिक स्वास्थ्यकर है। ब्रिटिश मेडिकल जर्नलतक चीनीके बदले गुड़खानेकी सिफारिश करता है। और अपने खँडसाल उत्तमसे उत्तम गुड़ तैयार कर सकते हैं। खाँड़के लिये परि-श्रम भी हो और परिश्रम करके उलटे उसका पोषकतत्त्व ही हम खो दें, यह कैसी मूर्खता है।"

"हमें अपनी चक्की, ऊखल और कोल्हुओंका फिरसे उद्धार करके बेकारी घटाना और स्वास्थ्य और धनको बढ़ाना चाहिये।"

"अपना स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिये हमें किस तरहका भोजन करना चाहिये ?"

"हमारे भुक्खड़ देशमें यह बड़ा विकट प्रश्न है, क्योंकि हममेंसे एक बड़ी संख्याको मनचाहा भोजन मिल ही नहीं सकता। जिन्हें नहीं मिल सकता, उन्हें तो मोटा सूखा जैसा मिले उसीपर गुजर करना पड़ता है। उनके लिये "चाहिये"वाला सवाल ही नहीं उठता। फिर भी जिन्हें कुछ मिल सकता है और जहाँ पसन्द भी काम कर सकती है, वहाँ प्रत्येक मनुष्यको अपने अनुकूल आहार मालूम कर लेना चाहिये। "जीवन संदेश"में बिहारके किसानोंके लिये

एक लेखमें "हमारी ग्रामीण जनताका आहार कैसा हो" इस विषयका एक लेख है। उसे हम यहाँ अविकल उद्धृत करते हैं—

३. हमारी ग्रामीण जनताका आहार कैसा हो ?

विहारकी ग्रामीण जनताके खाद्यको कमसे कम परिवर्त्तन और खर्च करके किस प्रकार वैज्ञानिक दृष्टिसे निर्दोष और प्रायः पूर्ण बना सकते हैं यह प्रश्न आज बहुतोंके मनमें उठ रहा है।

इस सम्बन्धमें सबसे पहले यह जान लेना चाहिये कि साधारणतः वे क्या खाते हैं ? हम यह मान ले सकते हैं कि बहुत गरीब लोग भी सालभर एक शाम चावल और एक शाम ऋतुके अनुसार कभी अलुआ, कभी मकई, कभी जौ-केराई आदि खाते हैं। दाल यदा-कदा मिलती है और वह भी खेसारी, केउटी आदि की। चनेकी दालका व्यवहार बहुत कम है। साग तरकारी बरसात और जाड़ेमें जब मिलती है तब खाते हैं। अन्यथा नमक ही उनका एक मात्र व्यंजन है। फ़सल अच्छी हुई तो बीजू आम, कटहल, बरहड़ आदि स्थानिक फल भी खानेको कुछ समयतक उन्हें मिल जाता है। दूध, दही, माँस आदि प्रोटीन-प्रधान खाद्यों और घी, तेल आदि स्नेह द्रव्योंका प्रायः अभाव ही रहता है। दलहन जो खाते हैं वे प्रोटीन-की दृष्टिसे हीन हैं जैसे खेसारी, केउटी आदि। कहीं-कहीं कुछ ऐसे अन्न भी खाये जाते हैं जिनका परिपाक और रस-पाक ठीक नहीं होता जैसे कोदो।

ऐसे आहारके न्यूनता-दोषको दूर करनेके लिये १ छटांक अच्छे दलहन (चना, मसूर या मूंग) की अंकुरी का व्यवहार नित्य होना चाहिये। भूँजाका प्रचार बहुत है, इसे छोड़ना चाहिये; भिगोया अन्न भूँजेसे लाख दर्जे अच्छा है। दूध-दही डेढ़ पाव या आध सेर और वह न हो तो सेर सवा सेर दूधी या मट्ठा। गुड़ ½ छटांक और तेल ½ छटांक भी होना चाहिये। इसके अतिरिक्त सबसे आवश्यक बात है साग और कन्दमूल फलोंकी काफ़ी मात्रा। यह आधा कच्चा और आधा रांधकर खाया जाना चाहिये। सामान्यतः इतना ही सुधार यदि ग्रामीण जनताके खाद्यमें हो जावे तो उनका शरीर रोगोंसे लड़नेमें अधिक क्षमताशील रहेगा और मानसिक-विकास भी अच्छा होगा।

दूसरे पृष्ठपर एक चक्रद्वारा दिखाया गया है कि इतने ही हेर-फेरसे देहातके लोगोंके आहारको किस प्रकार हम संमजस बना सकते हैं। र० च०

[जीवन सन्देशसे]

काफ़ी मेहनती मनुष्यके लिये पूर्ण दैनिक आहारका एक नमूना

खाद्य	वजन छटांक	कीमत	कितना 'ग्राम' किस खाद्य-तत्व का है ?				
			प्रोटीन	स्नेह	कार्बोज	केलोरी	
चावल (हाथ कुटा)†	६	)॥	२६.२०	१.०२	२६७.६	११९०	इनको भूनकर या सत्तू बनाकर खाना अनुचित है; भात सटका भात या खिचड़ी या रोटी या दरिया के रूपमें खाना चाहिये।
जौ	२	)।	१३.४८	६.७२	७९.२४	४६०	
मटर	२		७.४०	०.६८	१६.००	११२	
दाल (मिलावटी)*	२	)।	२६.००	३.६६	६४.८०	४००	
	८	≈)				१९६२	कुछ चना अंकुरीके रूपमें लेना चाहिये
मूंगफली................	½	)½	७.३०	१०.९२	६.९०	१५५	मूंगफलीकी जगह तीसी खाई जा सकती है
साग (पत्रशाक)	३	)।	३.०६	०.३६	४.९२	३६	इसमें आधा कच्चा खाना चाहिये
कन्द मूल फल (तरकारी)	२		१.००	०.१२	९.०४	४०.	
गुड़	½	)।	०.०८	——	२५.००	१००.	
तेल	½		——	२८.००	——	२५२	
दूधी (या मट्ठा)	१६	)½	३०.७२	२.५६	४४.८०	३२०	दूधीका दही भी बनाकर खा सकते हैं
जोड़	३४½	≈)॥।	११४.५२	५७.३४	५२१.३०	३०६५	जिन्हें मछली आदि मिले वे दाल और दूधीको आधा घटा सकते हैं
मछली या मांस या अंडा*	१	)।	११.००	२.३०	—	६४	

† चावलके बदले अलुआ (शकरकन्द) लगभग तिगुनी खायी जायगी और तब दूधीको सवा गुना कर देना होगा। जब एक शाम मकई खायी जाय तो साग और दूधी दोनोंको सवाया कर देना उचित है। आम और कटहलके दिनोंमें उनका खूब उपयोग होना चाहिये।

"आप केवल किसानोंपर अधिक ध्यान देते दीखते हैं। देशमें और लोग भी तो हैं।"

"बेशक! हमें देशके अधिक आबादीका अधिक ध्यान चाहिये ही। परन्तु हम तो प्रत्येक वर्गका विचार करते हैं और हमारी कोशिश यही रहती है कि सभी वर्ग आपसमें मिलजुलकर रहें।"

"तो आहारके सम्बन्धमें ऐसे सुधार बताइये जो औरोंके लिये भी उपयोगी हों।"

"अवश्य! अब भरपेट भोजन करनेवालोंकी दृष्टिसे विचार कीजिये।"

जिनको मिल सकता है वह अधिकांश खाना ही नहीं जानते। वह बहुधा अपने पाचनशक्तिसे अधिक खाकर अपने पाचनयंत्रसे अधिक काम लेते और उसे थका डालते हैं, विविध रोगोंको न्योता देते हैं और अपनी आय और आयु दोनोंको घटा लेते हैं। साथ ही वह बहुतसे पैसे भी बेकार बरबाद कर डालते हैं। इसलिये हर आदमीको अपने आहारके सम्बन्धमें पूरे संयम नियमसे काम लेना चाहिये। मोटी तौरसे यह थोड़ेसे नियम सबको पालन करने चाहिये।

(१) भोजन नित्य निश्चित समयपर ही करो। उन समयोंके सिवा अन्य समयोंमें कुछ न खाओ।

(२) पेटभर कभी न खाओ। भूख कुछ रहते ही खानेसे हाथ रोक लो।

(३) जितना तुमको खाना है उससे जरा भी ज्यादा मत परसवाओ।

(४) रोगी होनेपर खाना बन्द कर दो। बिल्कुल उपवास न कर सको तो फलके रस या जौके पानीपर गुजर करो। हर रोगका आधा इलाज उपवास है।

(५) भोजनमें भरसक क्षारकी मात्रा अधिक रखो और बादी चीज़ें, तेज मसाले, खटाइयाँ, आदिसे भरसक बचो।

(६) भोजन अत्यन्त सादा रखो और वही खाओ जो सहजमें पच सके।

(७) जो कुछ खाओ खूब चबाकर मुँहकी रालसे अच्छी तरह सनकर जब ग्रास पतला हो जाय तभी निगलो।

(८) भोजनकी सामग्रीमें हरे शाकों पत्तियों और फलोंकी अच्छी मात्रा हो। पकायी चीज़ोंसे यह चीज़ें कच्ची ज्यादा अच्छी होती हैं।

(९) भाड़में भुने दानोंसे कभी गुजर न करो। स्वादमें ये भले ही अच्छे हों पर इनका पोषक गुण नष्ट हो जाता है। भिगोये अंकुर निकलते दाने बड़े अच्छे पोषक और तृप्ति देनेवाले होते हैं। जिस पानीमें ये भीगे हों उसे भी पी जाओ।

(१०) भोजन करती बेर पानी न पीयो। भोजनसे घंटेभर पहले या बादको इच्छानुसार पानी पीयो।

(११) कबज रहता हो तो सबेरे सोकर उठते ही बासी आध सेर या तीन पाव पानी बिना प्यासके ही पी जाओ। इससे पेटकी स्वाभाविक सफाईमें मदद मिलेगी।

इन नियमोंके सिवा यह याद रखो कि तुम्हारा भोजन अधिक क्षारमय हो। इसके लिये "हेरल्ड आफ़ हेल्थ"में डा० मेनूकलका एक लेख पढ़ने लायक है। उसका उल्था "हरिजन-सेवक"से यहाँ उद्धृत है।

४. आपकी प्रकृति आम्ल है या क्षार?

आपकी प्रकृति आम्ल है, यह कहनेका क्या अर्थ है? सारी प्रकृति आम्ल हो जाय तब तो मनुष्य जीवित ही न रहे। रोग-रहित स्वस्थ शरीर ही विशेषकर क्षारमय होता है। शरीरमें रासायनिक रीति से ८० प्रतिशत क्षारतत्त्व और २० प्रतिशत आम्लतत्त्व होने चाहिए। इस चार और एक के प्रमाण के सुरक्षित रखनेका अर्थ है आरोग्यकी रक्षा करना और दीर्घजीवी होना।

हमारा रहन-सहन, हमारा संयम-असंयम, आहार-विहार इस चार और एककी मात्राको न्यून या अधिक कर देता है। तो भी आम्ल और क्षारप्रकृतिकी रचनामें मुख्य रीतिसे भाग लेनेवाले तत्त्व हमारे खान-पानसे बनते हैं, जिसमें फोस्फरस, सल्फर (गंधक), क्लोरीन, आयोडीन, आर्सेनिक, ब्रोमाइन हो वह आम्ल-पोषक, और जिसमें पोटेशियम, सोडिअम (सोडा), केल्शियम (चूना), लोहा, तांबा आदि हो वह क्षारपोषक है। इससे तो साधारण मनुष्यके ज्ञानमें बहुत वृद्धि नहीं होती, पर ये तत्त्व हमारे आहारके पदार्थोंमें जिस रीतिसे विभक्त हैं उसे ध्यानमें रखकर आम्लपोषक और क्षारपोषक आहारों और पीनेकी वस्तुओंकी सूची नीचे दी जाती है—

आम्लपोषक	क्षारपोषक
मछली	फूल गोभी
पशु पक्षीका मांस	करमकल्ला, गाजर, चुकंदर

अंडा	सेलरी नामक साग
पनीर	चिचेंड़ा
अनाज (गेहूँ, चावल, मकई, आदि)	जैतून (पके हुए)
रोटी	प्याज
दालें	हरी मटर
सूखा मेवा	आलू
सफेद खांड़	लौकी, कद्दू
मिठाई मात्र	मूली, चौराई, पालक, मैथी आदि भाजियाँ
चाकलेट	टमाटर, शलगम
चाय कॉफी	लगभग तमाम फल
मुरब्बे	सेव, जरदालू या खुबानी
तली हुई चीजें	पूरी तरहसे पके हुए केले
नशेकी चीजें	खजूर, अंगूर, अंजीर, मुनक्का आदि
उबाला हुआ दूध	नीबू, संतरे, मोसंबी आदिका रस
खीर	आडू, नासपाती, अलूचा
	कच्चा दूध
	छाछ

अब अगर आपको यह देखना हो कि आपकी प्रकृति क्षार है या आम्ल तो नीचेके प्रश्नोंके उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्नके 'हाँ'के जवाबके १० अंक रखिए, और फिर उन्हें जोड़ डालिए। इससे यह मालूम हो जायगा कि आप मुख्य रीतिसे आम्ल प्रकृतिवाले हैं या क्षार प्रकृतिवाले।

आम्लपोषक	क्षारपोषक
दाँतों वगैरामें कोई खराबी है?	दाँत, नाक, गला वगैरा साफ है न
तमाखू पीते हो?	तमाखू आदिका व्यसन तो नहीं है न?
दारू वगैरा पीते हो?	दारू ताड़ीसे मुक्त हो न?
रोज पांच तोलासे अधिक दाल मछली, मांस अंडा खाते हो?	पांच तोलासे अधिक दाल, मछली, मांस आदि नहीं खाते हो न?
चावल, अनाज, रोटी आदि अधिक स्टॉर्चवाले पदार्थ खूब खाते हो?	स्टॉर्चवाले पदार्थ कम खाते हो न? (जैसे कि चावल, गेहूँ आदि)
घी तेलमें तले हुए पदार्थ खाते हो?	तले हुए पदार्थोंका त्याग किया? है न?
ताजा फलोंसे दूर भागते हो?	रोज एकबार फलाहार करते हो न
कच्चे हरे सागोंसे दूर भागते हो?	हरे साग (पकाये हुए और कच्चे) अच्छी तरह खाते हो?
पानी कम पीते हो?	पानी अच्छी तरह पीते हो?
कोष्ठबद्धता है क्या?	दो-तीन बार शौच जाते हो?
एस्पीरीन जैसी औषधियोंका उपयोग करते हो?	एस्पीरीन जैसी औषधियों को जहर समझते हो न?
चिंता, क्रोध बारबार करते हो?	चिंतामुक्त और प्रसन्न रहते हो न?
घरमें पड़े रहते हो?	बाहर खुली हवामें खूब कसरत करते हो न?
रतजगा करते रहते हो क्या?	जल्दी सोकर खूब गाढ़ी नींद लेते हो न?

शरीरमें आम्ल क्रिया किस प्रकार चल रही है इसका विचार यह देखकर किया जा सकता है कि कितने निरर्थक आम्ल पदार्थ शरीरसे निकला करते हैं। हमारे फेफड़े प्रति घंटा ३० क्वार्ट कारबोनिक एसिड हवा बाहर निकालते हैं। इतनी सब हवा शकर, स्टार्च, चरबी और प्रोटीनवाले आहार जो पचाने पड़ते हैं उसके परिणाम-स्वरूप निकलती है। यदि आहारमें इन पदार्थोंकी विशेषता हो तो गैस काफी बाहर निकालना पड़ता है। हाथपर-हाथ धरे बैठे रहें और भोजन खूब डटकर करें, तो इसका परिणाम यह होगा कि हमारा शरीर आम्लप्रधान प्रकृतिका बन जायगा।

शरीरके आम्ल मलोंका तीसरा भाग तो फेफड़ोंके द्वारा निकलता है और शेष दो-तृतीयांश भाग मलमूत्र और पसीनेके द्वारा निकलता है।

अगर यह मालूम पड़ जाय कि मूत्रमें आम्लकी कितनी मात्रा है तो यह मालूम हो जाय कि शरीरमें आम्लका कितना प्रमाण है। आरोग्यकी जाँच करानेके लिए बारबार यह परीक्षा होनी चाहिए। साधारणतया मूत्र थोड़ा आम्ल तो होता ही है। जिसमें अधिक आम्ल हो उसमें रुधिरकी अपेक्षा १०० से १००० गुना आम्ल मूत्र होना चाहिए। इतनी मात्रामें मूत्रपिंड (किडनी) को आम्ल-विसर्जन करना पड़े, और इतना अधिक उसपर जोर पड़े तो वह अवयवोंको रोगी बना देगा। इस अनारोग्यसे इन अवयवोंकी रक्षा करनेके लिए प्रकृति यह करेगी। साधारणतया आम्ल पदार्थ शुद्ध रीतिसे शरीरमेंसे नहीं निकलें, इससे उन्हें निकालनेको वह तैयार हो जाती है या तुरन्त उन्हें क्षार पदार्थोंसे बांध लेती है, या ऐसा करती है कि जिससे वह शरीरमेंसे कम-से-कम नुकसान करके

निकलें। जब शरीरमें आहारकी चीजें बहुत क्षार पदार्थोंवाली नहीं होतीं, तब प्रकृति रुधिर और शरीरके अन्य तंतुओंमेंसे क्षार खींचती है। दाँत और हड्डे इन क्षारोंसे भरे हुए होते हैं। इनमेंसे चूना इस तरह खिंचता जाता है कि दांत और हड्डे निर्बल पड़ते जाते हैं। फिर निस्सत्त्व अवयवोंमेंसे इस कमीकी पूर्ति होती जाती है। इन अवयवोंमेंसे क्षार खिंचता जाता है तब ये अवयव दुखते हैं, सूजन चढ़ जाती है, और इसका यह परिणाम होता है कि गठिया और बातके अनेक प्रकार शरीरमें घर कर बैठते हैं।

आम्ल पदार्थोंकी थोड़ी मात्रा स्नायु और मज्जाकी रचनाके लिए आवश्यक है। पांच तोले मांससे अथवा एक बड़े अंडेसे या पांच तोले दही और उसके साथ डबल रोटीके दो टुकड़ोंसे अथवा बिना छने हाथके पिसे आटेकी एक छटांक रोटीसे यह मात्रा प्राप्त होती रहती है। इससे अधिक आम्ल पदार्थोंके लेनेसे भी आम्ल-प्रकृति बढ़ती है।

यह तो ऊपर बता ही दिया है कि क्षार किस प्रकारके सागों और फलोंसे प्राप्त होते रहते हैं। इन क्षारोंसे आम्ल पदार्थोंको यथेष्ट रीतिसे मारना ही समतोल आहारका उपाय है। एक प्रसिद्ध डाक्टर लिखता है—"कोई प्राकृतिक मौत नहीं होती। प्राकृतिक कारणोंसे होनेवाली जो मौतें कही जाती हैं वे सब शरीरमें आम्लकी अधिकतासे ही होती हैं।"

इस अधिकताको रोकनेके लिए आम्ल पदार्थोंको बांधनेवाले क्षार पदार्थ प्रकृतिको पूरे पड़ते जाने चाहिए, और क्षारपोषक रहन-सहन और आदतें डालते जानी चाहिए।

ऊपर जो जमा और नामेकी बाजूमें प्रश्न दिये गये हैं उनके जवाब देकर आप सहज ही यह निर्णय कर सकते हैं कि आपकी जमावाली बाजू खाली है या भरी हुई। इसलिए यदि आपको अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करनी है तो आपको यह समझ लेना चाहिए कि किन आहारोंको तो हमें बढ़ाना है और क्या-क्या आदतें छोड़नी हैं और कौन कौन-सी आदतें डालनी हैं। इतना तो बारबार समझ लेना चाहिए कि हरी साग भाजियाँ ही स्वास्थ्यकी प्रथम रक्षक हैं। इसलिए हमें अपने आहारमें एक भाग अन्न तो चार भाग फल और हरी पत्तियाँ या हरे साग लेनेकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये। स्वास्थ्यका यह प्रथम और अंतिम नियम है।

"आपने तो ये नियम देकर स्वादिष्ट भोजनका कचूमर निकाल दिया और मनुष्यको पशु बना दिया।"

"आपने यह खूब समझकर नहीं कहा। इन संयमके नियमोंको ध्यानमें रखते हुए आप सभी तरहका भोजन कर सकते हैं। किसी तरहके भोजनका निषेध कब किया गया? जैसे आप एक ही समय तली हुई चीज़ें, सूखे मेवे और मांस आदि भी खाकर स्वादके पीछे अम्ल ही अम्ल शरीरमें भर लें, तो यह तो संयम न हुआ। इनके साथ हरे शाक, हरे फल, नीबू सन्तरे आदि खाइये, अम्लोंकी मात्रा घटा दीजिये। एक बार अम्लपोषक वस्तुएँ अधिक खाइये तो दूसरी बार केवल क्षार-पोषक खाकर कमी पूरी कर दीजिये। आप तो यह समझ बैठे कि मानों स्वादिष्ट भोजन अम्ल ही होते हैं। क्षारपोषकोंमें स्वाद ही नहीं होता। बात तो ऐसी नहीं है।

"अच्छा। भोजनपानके कुछ नियम ऐसे बताइये कि जिन्हें भोजनकी कठिनाई नहीं वे संयम-नियमका पालन करके स्वास्थ्यरक्षा कर सकें।"

"इस तरहके नियम प्रायः स्वास्थ्यरक्षाकी पुस्तकोंमें दे रखे हैं। परन्तु सुभीतेके लिये मैं 'जीवन-सखा' नामके एक स्वाभाविक चिकित्साके नये प्रयागी सहयोगीके एक अच्छे लेखसे अवतरण देता हूँ।"

५. भोजनके कुछ नियम

जल-पानके नियम

पानी पीना भी भोजनमें सम्मिलित है। काफ़ी मात्रामें जल-पान स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है, पर भोजनके साथ पानी नहीं पीना चाहिए। भोजनके एक घंटा पहले और दो घंटे बाद पानी पीना बहुत हितकर होगा।

जाड़ेके मौसममें ५ बजे और गरमीमें ४ बजे प्रातः उठकर लगभग आध सेर ठंडा जल पीना बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इस पानीसे पेट साफ़ होकर दस्त साफ़ आता है और लगातार सेवन करते रहनेसे क़ब्ज़की शिकायत दूर हो जाती है, हाज़मेकी ताक़तमें बढ़ती होती है, अर्श रोग नहीं होने पाता, शरीरका ताप नियमित रहता है, आँखकी ज्योति बढ़ती है, जुकाम जाता रहता है, गरमीमें प्यास कम लगा करती है और चित्त ठंढा और शान्त रहता है। इस जलके सेवनसे, जिसे उषःपान कहते हैं, अन्य बहुतसे लाभ हैं, किन्तु यहाँ अधिक न बढ़ाकर केवल यही कह देना काफ़ी है कि उषःपान करते रहनेसे आदमी वैद्य-

डाक्टरोंकी खुशामद करनेसे और उनको भेंट-स्वरूप रुपया चढ़ानेसे बचा रह सकता है।

नाश्ता और भोजन

सुबह उठकर कुछ खानेकी आवश्यकता मालूम होनेपर मिठाई, नमकीन और उम्दा टी-सेटमें सजी हुई विषैली चायके बदले यदि एक संतरा अथवा अमरूद या कुछ किशमिशका इस्तेमाल किया जाय या थोड़ा दूध पी लिया जाय तो वह बहुत लाभदायक होगा। ऐसा हल्का नाश्ता हाज़मेको ख़राब नहीं करता। वह खूनको साफ़ और पुष्ट रखकर चेहरे और आँखोंमें अद्भुत कान्ति पैदा कर सकता है। पर याद रहे कि ऐसा नाश्ता भी तभी किया जाये जब कि आवश्यकता हो।

हल्के नाश्तेके कमसे-कम ३ घंटे बाद भोजन करना चाहिए। यदि तीन घंटेसे भी अधिकका अंतर हो तो अच्छा है। भोजनमें जहाँतक हो सके सादगी होनी चाहिए और खानेकी चीज़ें यदि दो से अधिक न हों तो और भी अच्छा है, क्योंकि नाना प्रकारकी वस्तुओंके गुण भी भिन्न-भिन्न होते हैं, जिसका असर हाज़मे और स्वास्थ्यपर अच्छा नहीं पड़ता। उनके पचानेमें भी मेदेको बहुत शक्ति लगानी पड़ती है, जिससे आगे चलकर कमज़ोरी होती है। भोजनके साथ चटनी, खटाईका सेवन स्वास्थ्यकर नहीं है। इन वस्तुओंसे आँतों और मेदेमें हल्की जलन पैदा होती है और इनके लगातार सेवनसे कई दुःसह रोग आ घेरते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारके तथा मिर्च, मसाला, चटनी इत्यादिके साथवाले भोजनसे पाचन-शक्ति कम होकर अजीर्ण और फिर कोष्ठबद्धता अर्थात् क़ब्ज होने लगता है। क़ब्ज़ सब रोगोंकी जड़ है, क्योंकि मलका हमारे शरीरसे नित्य उचित मात्रामें निकल जाना हमारे स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है। यदि क़ब्ज़ रहनेके कारण पेटमें मल जमा रहता है तो उसके सड़नेसे हमारा खून दूषित होकर अनेकों रोग उत्पन्न करता है। मन्तव्य यह है कि सारे रोगोंकी जड़ है अजीर्ण और क़ब्ज़। उससे बचना हमारे लिए बहुत आवश्यक है। सो खानेमें सादगी होनी चाहिए।

> मनु भगवानने कहा है—
>
> अनारोग्यं अनायुष्यं अस्वर्ग्यञ्चाति भोजनम्।
> अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत्परिवर्जयेत्॥
>
> अर्थात्
>
> **अति भोजन रोगको बढ़ानेवाला, आयुको कम करनेवाला और स्वर्गीयताके विरुद्ध है। वह पुण्यके प्रतिकूल और लोक-रीतिके विपरीत है—इसलिए अति भोजनको छोड़ना चाहिए।**

भोजनके बाद कमसे कम ६ घंटेतक कोई दूसरी चीज़ न खानी चाहिए, क्योंकि पूरे भोजनको हज़्म होनेमें कमसे कम ५ घंटे लग जाते हैं। तीसरे पहरको, आवश्यकता होनेपर, थोड़ी मात्रामें फल (फल जहाँतक हो सके एक ही प्रकारका हो) खाना फ़ायदेमन्द होगा। इसके ३ घंटे बाद रात्रिका भोजन।

रात्रिका भोजन सोनेसे कमसे कम तीन घंटे पेश्तर कर लेना चाहिए, ताकि सोने जानेके समयतक वह कमसे कम आधा हज़्म हो चुके। इससे नींद अच्छी आती है और चित्त प्रसन्न रहता है। रात्रिका खाना दिनके खानेसे सूक्ष्म और हल्का होना चाहिए क्योंकि दिनके अधिकांश भागमें हम लोग काम करते रहते हैं, परन्तु रात्रिके अधिकांश भागमें हम सिर्फ़ सोया करते हैं। रात्रिको सोते समय आधा गिलास गरम पानी पी लेनेसे क़ब्ज़वालोंको लाभ प्रतीत होता है।

भोजनमें क्षारकी अधिकता

भोजनमें वनस्पति और फलोंकी अधिकता होनी चाहिए, ताकि हमारे शरीरमें क्षारकी वृद्धि हो और जिससे हमारा खून साफ़ और चमकदार तथा नीरोग रहे। इससे शरीर स्वस्थ और कान्तिमान होगा। आम्ल (खटाई) प्रकृतिवाले भोजनोंसे हमारे शरीरमें खटाईकी वृद्धि होगी और खूनमें गन्दगी बढ़ेगी, जिससे शरीर सदैव रोगी और चेहरा फीका रहेगा। इस बातका ध्यान सदैव रखना चाहिए कि खाद्य-पदार्थमें क्षारकी मात्रा फ़ी सदी ८० हो।

भूखसे कुछ कम ही सदैव खाना चाहिए। फल इत्यादि लाभकारी वस्तुएं भी पेट भर जानेपर नहीं खाना चाहिए, क्योंकि फिर वे बजाय लाभके हानि करती हैं। अगर चार रोटीकी भूख हो और फल भी खाना यथेष्ट हो तो रोटी कम खाय और बाक़ी भूखको फलोंसे पूरा करे। मगर यह कभी न करे कि चार रोटी भी खाय और ऊपरसे फल

नशेके पीछे देशका नाश

हर तरहका नशा छोड़ो

१. तमाखू, बीड़ी, सिगरेट

"आप स्वदेशीका उपदेश करके बड़ा उपकार कर रहे हैं। देखिये, जबसे स्वदेशीकी चाल चली अब बीड़ीकी बिक्री अच्छी होती है और सिगरेटकी चाल घट गयी है।"

"मगर यह न समझिये कि खोटी चाल हो मगर स्वदेशी हो तो उसकी रक्षा उचित है। तमाखू तो किसी रूपमें सेवन करना बुरा है, चाहे स्वदेशी ही क्यों न हो।"

"मैं मानता हूँ। परन्तु सिगरेटके पैसे विदेश जाते हैं और बीड़ीके और जरदा सुंघनीके अपने देशी भाईकी जेबोंमें। इतना तो लाभ है।"

"यह सही है। पर आप इस बातको क्यों भूले जाते हैं कि मैं पैसोंके बचानेके उपायपर जोर दे रहा हूँ। इसीमें तो रक्षा है। अगर रोटीकी तरह तमाखू भी जरूरी चीज होती तो मैं स्वदेशी बीड़ीकी सिफारिश करता। परन्तु तमाखूमें तो वृथा पैसे फूँके जाते हैं। तमाखूकी जरूरत रत्तीभर नहीं है।"

"पर तमाखूसे क्या पैसे बचेंगे!"

"यह खूब कहा, आदमी पीछे एक धेला बचे तो भी जिस देशकी आय छ पैसे हैं उसके लिये धेला छोटी रकम नहीं है, आमदनीका बारहवाँ भाग है और सैकड़ा पीछे साढ़े आठके लगभग होता है। 'प्रताप'ने तो लिखा है कि भारतमें सालमें दो अरब रुपयेसे ऊपरकी रकम तमाखूके पीछे खर्चकी जाती है। अब सोचिये कि जिन किसानोंके सिरपर आठ दस अरबका ऋण लदा हो वह दो अरब हर साल तमाखूमें फूँके, कैसी भारी और भयंकर मूर्खता है।"

"इस हिसाबसे तो हमारा देश नित्य ५५॥ लाखसे ऊपर धुएँमें उड़ा देता है और आदमी पीछे एक पैसा रोज खर्च होता है। यह तो भारी रकम है।"

भी। वह तो फिर भूखसे अधिक हो जायगा और आमाशय पर एक भार सा होकर असह्य हो जायगा। अन्तमें अपचकी शिकायत रहने लगेगी।

तरकारियोंमें लाभदायक भाजियाँ हैं लौकी, तरोई, परवल, मूली, करमकल्ला, पालक, चौराई, बथुआ और सब प्रकारके शाक। भोजनमें शाकभाजीका आधिक्य होना ज़रूरी है। इससे हमारे शरीरको न केवल विटामिन ही मिलते हैं वरन् कई प्रकारके लाभकारी क्षार मिलते हैं, जो हमारे लिए बहुत आवश्यक हैं। शाक खानेवालोंको कब्ज़की शिकायत नहीं रह सकती। कन्द भाजी पेटके लिए बहुत हितकर नहीं होती क्योंकि वे हज़म होनेमें भारी होती हैं। अतएव स्वस्थ रहनेके लिए यह उपयोगी होगा कि आलू, शकरक़न्द, अरबी (घुइया) इत्यादि तथा अन्य बादी पैदा करनेवाली तरकारी जैसे बैगन, गोभीका फूल, गाँठगोभी, काशीफल (कोहड़ा) इत्यादिका सेवन अधिक न किया जाय।

फलोंके लिए यह प्रश्न उठ सकता है कि फल महँगे पड़ते हैं और प्रत्येक मनुष्य फल नहीं खा सकता। परन्तु हमारे भारतवर्षमें फलोंकी कमी नहीं है। बढ़िया फल जैसे सेव, अंगूर, अनार इत्यादि तो बहुत लाभदायक अवश्य हैं, किन्तु सस्ते फल जैसे अमरूद, नीबू, ककड़ी, शरीफ़ा, फालसा, जामुन, बेल, आँवला, संतरा, ख़रबूज़ा, तरबूज़, गन्ना, आम इत्यादि इत्यादि अनेकों सस्ते फल हैं जिनसे हम लोग लाभ उठा सकते हैं। गाजर और टमाटर तरकारियोंमें शामिल होते हुए भी यदि कच्चे खाये जायँ तो वे शरीरको पुष्ट बनानेमें बहुत सहायक होंगे। फ़सलके अनुसार फलोंका पर्याप्त मात्रामें सेवन नित्य ही करना चाहिए। फलोंसे हमें विटामिन नामक पदार्थ बहुत काफ़ी मात्रामें मिलता है, जिसकी आवश्यकता हमारे शरीरको बहुत है।

सहज और स्वाभाविक इलाज करो

१. डाक्टरीकी माया

"जब जानपर आ बनती है तब तो स्वदेशी विदेशीका भेद नहीं हो सकता। यह बाततो आप मानेंगे ?"

"किसी हदतक यह सही है कि जानपर जब आ बनती है तब यह भेद नहीं रखा जा सकता। पर इस बातको विदेशी दवा इलाजके जारी रखनेके लिये बहाना बना लेना अपने आपको धोखा देना है। सभी तरहके इलाज देशी विधिसे हो सकते हैं। दवाएँ तो हमारे देशमें हर जगह मौजूद हैं। हम उन्हें भूल गये हैं। जहाँ सूजन हुई हम कालीजीरी पिंडोर मिट्टी आदिका लेप, सेंक, एरंडके पत्तेका प्रयोग आदि भूल गये और टिंचर आयोडिनकी ही याद आती है, जो सुलभ नहीं है। इस भूलका कारण यही है विदेशीपन। स्वदेशीपन, जिसका रग-रगमें रहना हर देशके लिये स्वाभाविक है, हमारे ख्यालमें भी न रहा।"

"तो क्या आपका मतलब है कि हम विलायती दवा इलाजके बदले स्वदेशी ही दवा इलाजपर भरोसा रखें ?"

"भाई, भारतका क्या हलका है ? दरिद्रता भारी कष्ट भारी, खर्च भारी, कर्ज भारी और फजूल खर्ची भी भारी।"

"मैं तो समझता था कि शराब गांजा अफीम आदिमें ही फजूल खर्ची होती है। परन्तु तमाकू तो सबका चचा निकला।"

"यह सभी राक्षसी मायाकी चीजें हैं। इनसे किसीका रत्तीभर लाभ नहीं है और नुकसान तो सरासर है।"

"फिर तो नशेकी चीजोंमें तमाखूको भी शामिल करना चाहिये और हुक्का सिगरेट बीड़ीका भी बहिष्कार करना चाहिये।"

"और सुँघनी सुरती किवाम जरदा भी तो वही चीजें हैं। इनसे भी-भाँति भाँतिकी हानियाँ हैं। लोगोंको इनकी लत बेतरह लगी हुई है। नर-नारी बूढ़े जवान बच्चोंतकको तमाखूके भूतने नहीं छोड़ा है। इसे छोड़ोगे नहीं तो भारत-का कल्याण कठिन है।"

"ठीक है। नशेकी सारी चीजें छूट जायँ तो दरिद्रता तो जरूर कुछ न कुछ घट जाय।"

"चायकी नयी लत बड़े जोरोंसे फैल रही है। जगह-जगह चायबाजीके विज्ञापन नहीं देखते ! इसी विज्ञापन-बाजीसे लोग ठगे जा रहे हैं और चायके चपरगट्टू बन रहे हैं।

"और कहवा काफी ?"

अजी, इतना काफी नहीं है ? रोटियोंको तरसनेवाले देशसे इन दैत्योंको दूर करो।"

"बड़े खर्चसे चायके गुन गाये जाते हैं। तरह-तरहके ढंगसे इस लतका प्रचार हो रहा है।"

"नशेके विरुद्ध तो कानून बन जाना चाहिये कि नशेका सेवन समाजका अपराध मान लिया जाय।"

"जब समाजमें नशा सेवन करनेवालोंका पक्ष प्रबल होगा तब ऐसा कानून कैसे बनेगा ? नीति और सदाचारकी शिक्षा फैलनी चाहिये, लोगोंको नशेका दोष समझना चाहिए, जब आम तौरपर नशेबाजी हानिकर समझी जायगी, तब लोग इस लतसे लजायँगे, अपराध करेंगे भी तो चोरीसे। तब कानून भी बन सकेगा। इसलिये नशा निषेधका तो प्रचार होनेकी जरूरत है।"

"कुछ लोग शराब, अफीम, भंग आदिको तो दवा कहते हैं।"

"हां, इनका प्रयोग दवामें होता है, सही, परन्तु दवा कहनेवाले तो केवल बहाना करते हैं। वह तो नशेके लिये सेवन करते हैं। यह चीजें दवाओंमें जिस मात्रामें पड़ती हैं या दी जाती हैं, उस मात्रामें इनसे नशा नहीं होता।

नशेकी मात्रामें सेवन करनेसे दिल-दिमाग और पेट तीनों प्रधान अंग बिगड़ जाते हैं और पैसे बिगड़ जाते हैं सो अलग। इनसे बनता कुछ भी नहीं। इसलिये नशेमें तन, मन और धन सब तरहका नाश है। लाभ रत्ती-भर भी नहीं।

बेशक ! क्या आपका ख्याल है कि देशी इलाज या आरोग्य विधिसे ज्यादा आदमी मरते हैं और डाक्टरीसे कम ?"

"मैं तो यही समझता था ।"

"यह आपकी भारी भूल है । डाक्टरी विद्याके बड़े बड़े विशारदोंने माना है कि दसमें नव मौतें डाक्टरी इलाजकी भूलोंसे होती हैं । इसकी सभी दवाएँ विदेशोंमें बनती हैं, और हमारे स्वभावके अनुकूल नहीं होतीं । हमारी देशी दवाएँ सहज सुलभ सस्ती और हमारे स्वभावके अनुकूल होती हैं । कम पैसे लगते हैं और देशमें रहते हैं । परन्तु बहुतसे स्वाभाविक उपचार तो ऐसे हैं कि जिनमें कुछ भी खर्च नहीं है ।"

"देहातोंमें घूमनेवाले और दवा देनेवाले डाक्टर अनेक जिलोंमें रखे गये हैं । उनसे सुना है कि बहुत लाभ हो रहा है ।"

"शायद होता हो परन्तु हमारी समझमें तो उन डाक्टरों और दवा बेचनेवालोंको ही अधिक लाभ होता है क्योंकि न तो वह दवाएँ कहीं देहातमें मिलती हैं और न डाक्टरी विद्यासे किसीको शिक्षावाला लाभ मिलता है । कहीं वैद्य इसी कामपर रखे जाते और वह देहातोंकी ही लता गुल्म घासपात वाली दवा देते तो जरूर अधिक देहातियोंको लाभ पहुँचता, लोग उपचार सहजमें सीख लेते और दवाओंके लिये न तो बहुतसे पैसे लगते और न दूरसे मंगवाना पड़ता ।

"यह तो उचित मालूम होता है, परन्तु न जाने क्यों यह उपाय नहीं किये जाते । शायद इसलिये कि वैद्य लोग थर्मामीटर और स्टीथस्कोप काममें नहीं लाते ।"

"थर्मामीटर और स्टीथस्कोपकी एक ही कही ! नाड़ी देखकर चतुर वैद्य तो इन यंत्रोंसे अधिक बता सकता है । नाड़ी अच्छी देख सकनेवाले डाक्टर भी इन यंत्रोंके मुहताज नहीं होते ।

"तो क्या इन यंत्रोंको आप व्यर्थ समझते हैं ?"

व्यर्थ क्यों ? धनवानोंको तो यही नहीं बल्कि रक्तचाप नापने आदिके यंत्र भी चाहिये । बात यह है कि यह सभी बिलायती विज्ञानके ढकोसले हैं । जिसे नाड़ीका अच्छा ज्ञान है वह बिना विष्ठा और मूत्रका विश्लेषण किये, पेटके भीतरके रोगोंका एवं रक्तके विकारोंका पता लगा सकता है, रक्तचाप और ताप जानता है, हृदय और फुफ्फुसके विकारोंका पता रखता है । उसे किसी यंत्र और विश्लेषणकी आवश्यकता नहीं है । इन ढकोसलोंको ढोनेके लिये उसे बकसोंकी जरूरत नहीं । उसकी झोलीमें कुछ ओषधियाँ हों तो बहुत है । गरज कि थर्मामीटर आदिमें पैसे बिगाड़ना बड़ी मूर्खता है । डाक्टरी इलाज तो मरीजका हर तरहका मुंडन है । भाई, इसमें हमारे बड़े पैसे लुटते हैं । इससे बचना चाहिये" ।

"आदमी बीमारीसे लाचार हो जाता है, तब डाक्टरोंके पास जाता है, नहीं तो पैसोंका मोह और अच्छे रहनेकी लालसा किसे नहीं है । इसलिये बिना पैसे खरचे इलाजकी विधि बतलाइये कि आदमी स्वस्थ और सुखी रहे ।"

"हाँ, ऐसी विधियाँ हैं और एक पैसेकी भी दवा खानेकी जरूरत नहीं है । "स्वाभाविक पानी, हवा, मिट्टी, आगके प्रयोगसे, उपवाससे, पथ्याहारसे, व्यायामसे, मालिशसे, कौड़ी बिना खरचे रोग मिटते हैं । देशी ओषधियोंके सेवनमें भी पैसे कम लगते हैं । हकीमी और वैद्यक विद्याएँ अभीतक अपूर्ण नहीं सिद्ध हुई हैं । इन उपायोंसे अपना स्वास्थ्य भी बचाओ और पैसे भी ।"

२. स्वाभाविक इलाज

"यह विधियाँ देशमें प्रचलित हो जायँ तो बड़ा उपकार हो । क्या आप कुछ विस्तारसे इनका वर्णन कर सकते हैं ?"

"यह सभी प्राकृतिक या स्वाभाविक चिकित्साके अन्तर्गत हैं जिनका विस्तारसे वर्णन पोथियोंमें है । इनके सिवा स्वाभाविक-चिकित्सा या नेचर-क्योर सम्बन्धी दो मासिक-पत्र भी निकलते हैं । "जीवन-सन्देश" मुजफ्फरपुरसे और "जीवन-सखा" प्रयागसे । महात्मागांधी स्वयं एक निपुण स्वाभाविक चिकित्सक हैं । उनका लिखा आरोग्य-साधन इसी विषयका एक प्रामाणिक ग्रंथ है । फिर यह स्वाभाविक चिकित्सा कोई नयी विद्या नहीं है । आयुर्वेदके अन्तर्गत है ।

जल-चिकित्सा लुई-कूनेका प्रसिद्ध ही है । इस विषयपर आचार्य्य श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदीकी छोटीसी पुस्तिका है । इसके अतिरिक्त कई पुस्तकें इस विषयपर प्रकाशित हो चुकी हैं । केवल स्नानकी विधियोंसे ही रोग-निवारण होता

है । आयुर्वेदमें जल-पानकी विशेष विधियाँ हैं । ऊषःपानकी चर्चा हम अन्यत्रकर चुके हैं ।

जल-चिकित्साके साथ-साथ गीली मिट्टीका प्रयोग, पानीकी पट्टी आदिका भी प्रयोग बताया गया है ।

हवासे चिकित्साकी विधिमें प्राणायामके साथ अनेक व्यायाम भी हैं जिनसे अनेक रोग अच्छे होते हैं ।

भपारा देकर, सेंककर, स्वेदन आदिकी विधियोंसे आग या आँचके द्वारा भी इलाज करते हैं ।

उपवाससे, अथवा विशेष प्रकारके पथ्याहार या फलाहार आदिसे, तो प्रायः सभी रोग दूर होते हैं ।

व्यायामके द्वारा स्वयं अपने शरीरका मर्दन करके अथवा दूसरेके द्वारा मर्दन या मालिश कराकर लोग रोग-मुक्त हो जाते हैं ।

इन विधियोंमेंसे अनेककी थोड़ी बहुत जानकारी देहातके रहनेवालोंतकमें होती है । दवा दर्बनके लिये उनके पास पैसे कहाँ हैं ? वे इन्हीं विधियोंसे अच्छे होते हैं । पासके उगे हुए पौधोंसे भी वह सहज ओषधियोंका काम लेते हैं ।

ज्वर हुआ तो वे लंघन (उपवास) और स्वेदन या पसीनेसे अपनेको अच्छा कर लेते हैं ।

दस्त आने लगे तो भी लंघनसे ही अच्छे हो जाते हैं । खेतोंपर परिश्रम करते रहनेसे उन्हें कब्ज़ होता ही नहीं । हुआ भी, तो उषःपान आदि जलचिकित्साद्वारा उसे अच्छा कर लेते हैं ।

सरदी-जुकाम आदि तो मिथ्याहारके ही रोग हैं । इनके लिये भी देहाती लंघन करता है । देहाती कहावत है कि जुकामकी दवा है, "नास, मास, उपवास" । नास है सुँघनी, नक-छिकनो पत्तियाँ मलकर सूँघनेसे छींकें आती हैं । मांस खानेवाले इस आहारसे अच्छे होते हैं । परन्तु अन्तिम उपवास सबसे अच्छी दवा है ।"

"भोजन द्वारा मामूली स्वाभाविक चिकित्साके विषयमें कुछ थोड़ेसे विस्तारकी और आवश्यकता है ।"

"इसके लिये मैं फिर 'जीवन-सखा'के इस सम्बन्धके लेखका अधिकांश यहाँ देता हूँ !"

३. भोजन और चिकित्सा

भोजनोंमें सुधार और उसके नियमित सेवनसे तो हमारे कई कष्ट बिना किसी प्रयासके ही दूर हो जायँगे । किन्तु फिर भी हमें उस मशीनको कुछ विश्राम अवश्य देना चाहिए, जिससे हम अपनी तमाम उम्र अनवरत काम लिया करते हैं । यही नहीं बल्कि हमारा जीवन उसी मशीनपर निर्भर है । वह है हमारा मेदा । इसलिये हमें चाहिए कि सप्ताहमें अथवा १५ दिनमें तो अवश्य ही एक दिन निराहार रहें । ऐसा उपवास अधिक नहीं एक ही दिनका हो । हमारी पुरानी प्रथाके अनुसार एकादशीका व्रत हमारे समाजमें अतीत कालसे प्रचलित रहा है । मेरे विचारसे उपवासको इस प्रकार आरम्भ करना चाहिए । उपवास रखनेके पहिलेवाले दिनको सुबहवाला भोजन कुछ सूक्ष्म मात्रामें किया जाय, संध्याको भोजन न किया जाय बल्कि थोड़ी मात्रामें संतरा जैसे किसी हल्के फलका सेवन किया जाय । दूसरे दिन सुबहका भोजन क़तई न किया जाय । संध्याको फिर थोड़ेसे हल्के फल खाये जायँ और तीसरे दिन (उपवासका दूसरा दिन) हलका भोजन कम मात्रामें किया जाय । इससे आमाशयको काफ़ी आराम मिलेगा और साथ ही हमारी पाचनशक्तिमें अद्भुत वृद्धि दिखाई देगी । उपवासवाले दिन तीसरे पहरको एनिमा (जिन लोगोंको प्राप्त हो सके) ले लेना अधिक उपयोगी होगा ।

यह तो रही हमारे भोजनकी दैनिक दिन-चर्या । मगर अब मैं आप लोगोंके सामने वह उपाय रखना चाहता हूँ जिससे हम लोग कष्टसे शीघ्र ही छुटकारा पा सकते हैं । हमारे शरीरमें यदि कोई भी और कहीं भी रोग हो तो उसका कारण पेटकी खराबी ही होगा । यह मैं पहिले बता चुका हूँ कि पेटकी खराबीसे लहू दूषित हो जाता है और वही दोष रोगका रूप धारण कर शरीरके किसी न किसी अंगसे निकलनेकी कोशिश करता है । पेड़की एक शाखाके सूखनेपर उचित है कि जल पेड़की जड़में डाला जाय न कि केवल उसी शाखापर जो सूख रही हो । अतएव हमें भी रोगका उपचार पेट सम्हालनेसे ही आरम्भ करना चाहिए ।

कब्ज़

सबसे पहिले मैं क़ब्ज़को दूर करनेका उपाय बताता हूँ । क़ब्ज़ तमाम रोगोंकी जड़ कहलाता है । आजकलके सभ्य, आराम-तलब, शौक़ीन और स्वादभक्त बाबू लोगोंका चिरसाथी क़ब्ज़ स्वास्थ्यका एक महाविकट शत्रु है । ऐसे

बाबुओंमेंसे शायद ही कोई ऐसा मिले जिसे क़ब्ज़ महाशयने न अपनाया हो।

सबसे पहले अपने मिज़ाजको दुरुस्त करने और क़ाबूमें लानेकी आवश्यकता है, अर्थात् हमें चाहिए कि हम अपनी मानसिक शक्तिको प्रबल बनायें। क़ब्ज़ रहनेसे ठीक-ठीक मल-त्याग और गन्दगी ख़ारिज नहीं होती। मलके सड़नेसे विकार उठकर दिमाग़ तककी ख़बर लेता है। आँखोंमें जलन होती है, सिरमें मीठा-मीठा दर्द हुआ करता है, बहुधा कुछ समय बैठे रहनेके बाद उठनेसे चक्कर आ जाया करता है, चित्त सदैव खिन्न और चिन्तित रहा करता है। हमें चाहिए कि हम अपने स्वभाव और मनमें दृढ़ता लावें और यह सोचनेकी आदत डालें कि हमारी पाचन क्रिया-ठीक हो रही है, मलत्याग उचित मात्रामें होने लगेगा और हम अवश्य ही उन्नति करेंगे। नित्यप्रति थोड़े समयतक ऐसा विचार करनेसे हमारी मानसिक शक्ति दृढ़ हो जायगी और हमारी पाचन-क्रियापर उसका अपूर्व असर पड़ेगा।

क़ब्ज़को दूर करनेके लिए तीन दिनतक निराहार उपवास और उसके बाद १० रोज़तक केवल फलाहार अत्यन्त लाभदायक होगा।

उपवासके दिनोंमें नित्य सुबह और शाम या कमसे कम एकबार एनिमा लिया करे जिससे महीनोंकी जमी हुई गन्दगी बाहर निकल जाय।

शौचके लिए रोज़ दो बार सुबह और शाम जाना चाहिए। शौचके लिए बैठनेपर मल निकालनेके लिए ज़ोर नहीं लगाना चाहिए बल्कि धीरे-धीरे मानसिक शक्तिद्वारा मलको बाहर निकालनेका प्रयत्न करना चाहिए। पहले कुछ दिन तो कामयाबी न होगी मगर ६ या ७ दिनमें पाख़ाना दोनों वक्त मामूली तौरपर होने लगेगा।

उपवासके दिनोंमें प्यास लगनेपर पानी आहिस्ता-आहिस्ता काफ़ी मात्रामें पी सकते हैं। यदि हो सके तो नींबू निचोड़कर पानी पीवे।

क़ब्ज़को दूर करनेके लिए जुलाब या दस्तावर चीज़का प्रयोग ठीक नहीं हैं। ऐसी ओषधियोंसे उपवास और एनिमाके लाभ ख़ाकमें मिल जायेंगे।

उपवासके बाद फिर उचित भोजनका व्यवहार करे।

अनीमिया (ख़ूनकी कमी)

एक सप्ताह केवल फलाहारपर रहे। उसके बाद २ से ३ हफ़्तेतक फल और दूधपर रहे। (दूध दिनमें आध सेरकी मात्रासे प्रारंभ करे और फिर सेरभरतक पिये)। इसके बाद स्वास्थ्य-वर्द्धक आहारका सेवन करे।

एनिमा नित्य लिया जाय जबतक मामूली तौरसे मल-त्याग न होने लगे। प्रातःकाल खुली हवामें लगभग घंटेभर टहले और व्यायाम करे। चिन्ता और दुःखमय समाचारोंसे बचा रहे।

ज़ुकाम

यह हम लोगोंको अपने आहारमें सुधार करनेके लिए प्रकृतिकी ओरसे चेतावनी रूप है।

जब हमारे शरीरमें ख़राबियाँ पैदा हो जाती हैं और ख़राबी मल-मूत्रके रूपमें बाहर नहीं निकल पाती तो ख़ूनको साफ़ करनेके लिए प्रकृति ज़ुकाम पैदा करती है। इसके-द्वारा हमारे शरीरकी खराबियाँ नाक और कंठके रास्ते शरीरके बाहर निकलती हैं। ज़ुकामको रोकनेके लिए हमें कभी गरम चीज़ोंका इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। गरम दवाओंसे हमारा ज़ुकाम सूख जाता है मगर ख़राबी शरीरमें ही बनी रहती है और आगे चलकर अनेकों रूप धारण कर सकती है, जिससे प्राण संकटमें पड़ सकते हैं। इसलिए मरीज़को चाहिए कि वह शरीरसे ज़हर निकाल फेंकनेमें प्रकृतिकी सहायता करे। उसे चाहिए कि वह दो तीन दिनका उपवास करे और नींबू या सन्तरेका रस गरम पानीके साथ दिनमें चार-पाँच बार पीता रहे। उसके बाद तीन या चार दिन फलाहारपर रहे। उपवासके समय एनिमाका प्रयोग आवश्यक है।

दस्त लगना

दो अथवा तीन दिनका उपवास और बीच-बीचमें संतरे नीबूका रस सेवन किया जाय। उसके बाद दो तीन दिन मठेका सेवन और फिर फलाहार। एनिमा नित्य दो बार इस्तेमाल किया जाय। जबतक दस्त आना बन्द न हो जाय काफ़ी आराम ले।

मन्दाग्नि

एक सप्ताह अथवा १० दिनतक फलाहार और हरी भाजी अर्थात् शाकपर रहे। इसके बाद स्वास्थ्यवर्द्धक आहार

खाता रहे। कुछ समय बाद फिर फलाहारपर रहे। फिर स्वास्थ्य-वर्द्धक भोजन करे। इसी प्रकार फलाहारको दुहराता रहे। उपवासके समय खासकर और जबतक आँतें पूरा काम न करने लगें तबतक एनिमाका प्रयोग करे। प्रातः खुली जगहमें टहले। मानसिक शक्तिको बढ़ावे और हल्का व्यायाम करता रहे।

ज्वर

जबतक ज्वर रहे निराहार उपवास करे। तब धीरे-धीरे फलाहारपर जाये, इसके बाद धीरे-धीरे ही स्वास्थ्यप्रद आहारपर। एनिमाका नित्य प्रयोग करता रहे। नीबूको गरम पानीमें निचोड़कर दो-दो अथवा तीन-तीन घंटोंपर पीता रहे, जिससे खून साफ हो। इससे पेशाब उतरेगा और पाखाना भी साफ़ होगा। रज़ाईके अन्दर गरम पानीकी बोतलें रखकर पसीना निकाले। इसके ज़रिये बहुत सी खराबी बाहर निकल जायगी। रोगीको खुले हुए कमरेमें रहना चाहिए, जिससे उसे साफ़ हवा मिलती रहे। नाक और मुँहको छोड़ सारे बदनको कम्बल अथवा रज़ाइयोंसे ढके रहे। रोगीको बन्द कमरोंमें नहीं रहना चाहिए। नुक़सान होनेकी संभावना तभी है जब बदनका हिस्सा खुला रहेगा। इसलिए शरीरको अच्छी तरह ढककर खुले कमरेमें रहे। अगर हवा ज़ोरदार नहीं है तो शरीरको बहुत ढकनेकी भी जरूरत नहीं है। अगर ताप बढ़ जावे तो फ़लालैनके टुकड़ेको ठंडे पानीमें भिगोकर सिर और पेटपर रक्खे। बदनको कुनकुने पानीसे रोज़ एकबार पोंछ देना चाहिए। इससे बदनके छेद खुले रहेंगे और गन्दगी बाहर निकलती रहेगी। बुखार दूर करनेके लिए किसी दवाकी जरूरत नहीं है।

अगर ज्वरके शुरूमें उपवास और एनिमाका प्रयोग किया जाय तो यह निश्चय है कि ज्वर जल्दी ही जाता रहेगा और किसी प्रकारका उपद्रव नहीं होने पायेगा। ज्वर छूटनेपर एक दो दिन फलोंके रस और दो-तीन दिन फल और शाक-भाजीपर रहना चाहिए।

छोटा उपवास

रोगमें उपवास करनेकी तारीफ जितनी भी की जाय थोड़ी है। रोगको दूर भगानेके लिए यह अत्यंतावश्यक और सुगम उपाय है। क्योंकि मनुष्य खाना न खानेसे अपने शरीरके भीतर बाहरसे वस्तु पहुँचाना बन्दकर देता है और प्रकृतिको सफाईका काम करनेके लिए पूरा मौका देता है।

सफाई अर्थात् शरीरसे खराबियोंको निकालनेकी ही रीतिसे प्रकृति शरीरसे गन्दगी और जहरको निकाल फेंकती है। यह गन्दगी और जहर हमारे अनुचित आहार-व्यवहारके कारण वर्षोंसे इकट्ठे होते रहते हैं और हमारे अंगके अवयवोंको अपना कार्य करनेमें रोकते हैं। इन विषोंके निकल जानेसे हम स्वास्थ्यकी ओर अग्रसर होते हैं और शीघ्र ही बल प्राप्त कर सकते हैं।

उपवास थोड़े समयका ही करना चाहिए—एक साथमें ज्यादासे ज्यादा तीन दिनका, यदि कोई प्रबल रोग नहीं है, तो। उपवासके समय संतरेका रस अथवा नीबूका रस पानीके साथ दो-दो, तीन-तीन घंटोंपर पी सकते हैं। इसके अतिरिक्त कोई और चीज न खानी चाहिए।

अनुपयुक्त भोजन विषसे भी ज्यादा ख़राब है। विष तो तत्काल प्राण-नाश करता है, लेकिन अनुचित भोजन रटा-रटाकर जान लेता है।

उपवासके दौरानमें मलको नित्य एनिमाद्वारा बाहर निकालते रहना चाहिए, जिससे विष और गन्दगी बाहर निकलती रहे। कुछ लोग एनिमाको हानिकारक बताते हैं, पर मलको बाहर निकालनेके लिए इससे अधिक सुगम उपाय और कोई नहीं है। उपवासमें प्रकृति शरीरके हर हिस्सेसे बिकारको निकालकर खून और मेदेमें फेंकती है, इसलिए उपवासमें एनिमा लेनेसे यह विकार बाहर निकलते रहते हैं। लगातार कई महीनेतक एनिमा लेनेसे हानि हो सकती है, पर दो-तीन हफ़्तेके व्यवहारसे कोई हानि नहीं होती।

जहाँतक मुमकिन हो सके उपवासमें अधिक शारीरिक परिश्रम न किया जाय, लेकिन साधारण हालतमें सुस्त पड़ा रहना भी ठीक नहीं है। उपवासमें कदाचित् निम्नांकित कष्ट मालूम हो। हलकी हरारत—यदि यह मालूम हो तो थोड़ा गरम पानी पीले। सुस्ती, सरमें दर्द, मूर्छा, नींद न आना, हृदयकी धड़कनका बढ़ना—यदि इनमेंसे

देश और कालके संकोचसे हानि

१. टाँगोंसे काम लो ?

"पच्छाहीं सभ्यतासे चाहे और कितने ही अवगुण फैल गये हों, पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि उससे देश और कालकी दूरी घट गयी है। पाँच सौ मीलपर दुर्घटना हुई उसकी खबर दमके-दममें लग गयी और दिन-रात दौड़कर इतनी दूरीपर मदद भी पहुँचायी जा सकी।"

"जैसे मदद जल्दी पहुँचती है वैसे ही हानि भी झटपट की जा सकती है। लाभ भी है और हानि भी। परन्तु कई हानियाँ बड़ी जबरदस्त हैं। अनाजकी ढुलाई विदेशोंको यहाँ अकाल रहते भी सस्ते और सुभीतेकी दरोंसे हो जाती है और देशके भीतर ही इतनी कड़ी ढुलाई लगती है कि अकाल पड़नेपर पीड़ित प्रान्तोंको अनाज महँगा ही पड़ता है। इससे भी जबरदस्त हानि यह है कि लोग अपाहिज हो गये। पैदल चलना पसन्द नहीं करते। देहातके लोग जो दिन भरमें दो-दो मंजिल तय करते थे आज स्टेशनोंपर चार-पाँच कोस जानेके लिये भी चार-चार घण्टे गाड़ीकी बाट देखते रह जाते हैं और पैसे ऊपरसे खर्च करते हैं और बैठे-बैठे अपाहिजकी तरह यात्रा करके व्यायामके लाभको भी खो देते हैं और पैसोंको भी। पैदल चलनेकी बान छूट गयी, सब लोग आलसी हो गये। थोड़ेसे कामके लिये भी झट रेलपर सवार हुए, चल दिये।

"डाकखानेसे भी तो बड़ा सुभीता है?"

"क्यों नहीं। परन्तु चिट्ठियोंके इतने सहजमें आने-जानेसे झगड़े बढ़ गये। आपसमें लिखा-पढ़ीके द्वारा वैमनस्य

कोई चिन्ह मालूम पड़े तो कोई चिन्ता न करे, क्योंकि जैसे-जैसे उपवासका समय बीतता जायगा ये कष्ट अपने आप दूर होते जायंगे।

जुबानका मैला होना और मुँहका बदजायका होना—ये मामूली चिन्ह हैं और यह बतलाते हैं कि सफाईका काम ठीक तौरसे हो रहा है।

उपवासको बड़ी सावधानीके साथ तोड़ना चाहिए। यदि फौरन ही उसके बाद कोई भारी चीज़ अथवा मामूली खाना भी खा लिया जाय तो उपवाससे जितना लाभ हुआ है वह हानिमें बदल जायगा। उपवास तोड़नेके दिन संतरे या अनार या अंगूर या टमाटरका रस ही केवल इस्तेमाल किया जाय, सन्ध्याको थोड़ी मात्रामें संतरा ले सकते हैं। दूसरे दिन प्रातः १ या २ संतरेका रस या थोड़ेसे अंगूर; दोपहरको टमाटर, मूली और गाजरका सैलड या एक दो सेव; शामको लौकी, मूली, अथवा पालकका साग बिना मसालेका और बहुत कम घीमें बना हुआ या गाजर, किशमिश आदि। तीसरे दिन ऊपर कहे हुए भोजनके अतिरिक्त लगभग आध सेर दूध, मगर वह भी तीन चार बारमें थोड़ा-थोड़ा करके पिया जाय। चौथे दिन आधे पेट बिना छने हुए गेहूँके आँटेकी रोटी और तरकारी। इस प्रकार निराहार तीन दिनका उपवास भी एक सप्ताहके लगभग ले लेगा। दैनिक भोजनपर वापस आनेमें जल्दी नहीं करनी चाहिए। ऐसा उपवास मेरी समझमें यदि प्रति तीसरे मास किया जाय तो बहुत अच्छा हो। कुछ समय ऐसा उपवास कर लेनेपर और आगे उचित भोजन करते रहनेसे हमारा शरीर स्वस्थ हो जायगा।

आशा है कि पाठकगण उपरोक्त रीतिसे, जो कठिन नहीं है और जिन बातोंकी जानकारी हर खासो-आमके लिए जरूरी है, अपनी तन्दुरुस्तीमें काफी उन्नति कर सकेंगे। स्वास्थ्यकी महिमा पूरी तौरसे वही जान सकते हैं जो अब अस्वस्थ हैं और यह प्रयास उनके लिए खासकर किया गया है। परन्तु स्वस्थ मनुष्योंको भी इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि वे ऐसी ही वस्तुओंका सेवन करें, जिनसे उनके स्वास्थ्यमें दिन प्रतिदिन उन्नति होती रहे। कहीं ऐसा न हो कि उनको ठोकर लग जाय। बुद्धिमानी यही है कि पहिलेसे ही सावधान रहें। सीधी सादी और प्राकृतिक रीतिसे रहनेसे केवल स्वास्थ्य ही नहीं बढ़ता बल्कि पैसेकी भी काफ़ी बचत होती है।

जल्दी ही फैलता है, ठगी बढ़ती है। भलाई कम होती है, बुराई ज्यादा। तारका भी यही हाल है। बात यह है कि रेल डाक तार सभी देश और काल घटानेवाले साधन हैं, और स्वयं बिलकुल निर्दोष हैं, भलाई बुराई दोनोंमें इनसे सुभीता होता है। संसारमें बुराईकी प्रवृत्ति अधिक होनेसे इनसे बुराई अधिक हो जाती है। इसलिये इनसे नीतिकी निगाहसे तो हानि ही अधिक हुई। और पैसे जो इनपर ज्यादा खर्च होते हैं सो अलग। हमारा काम बिना सवारी किये, बिना चिट्ठी लिखे, बिना तार दिये चल सके तो हमें चाहिये कि हम अपने पैसे गाढ़े समयके लिये बचावें।"

"बिना तार दिये लीडरोंका स्वागत कैसे हो? बिना चिट्ठी लिखे 'पुरोगम' (प्रोग्राम) कैसे बने? जुलूसका प्रबन्ध कैसे हो? महाराज, रेल तार डाक तो जरूरी चीजें हो गयी हैं!"

"लीडरीकी तो सच्ची पहचान यह है कि लोग स्वागत के लिये सदा तैयार रहें। शबरी अपने जीवनभर भगवान रामचन्द्रकी प्रतीक्षामें रही। दंडक बनमें ऋषि मुनि बराबर स्वागत करते रहे, कभी लक्ष्मणजीको तार देनेकी जरूरत न पड़ी। कृष्ण भगवान्का, भगवान् बुद्धका, भगवान् ईसाका, भगवान् मुहम्मदका बिना तार चिट्ठीके ही स्वागत सम्मान होता रहा। आज महात्मा गांधीका भी इसी प्रकार सम्मान और स्वागत होता है, वह छिपकर चुराकर आते जाते हैं, पुरोगम नहीं बताते तो भी भीड़ से बचना कठिन हो जाता है। मेरा विश्वास है कि आप लीडरम्मन्योंके खयालसे कह रहे हैं। मैं तो यह कहनेकी ढिठाई करता हूँ कि जैसे रेल तार डाकका प्रयोग हम बहुत घटा सकते हैं वैसे ही लीडरोंकी लतको भी हम कम कर सकते हैं।"

"तब तो घड़ी, फौंटेन-पेन, अटाची आदि वस्तुएँ भी आपकी दकियानूसी समझमें व्यर्थ ही होंगी।"

"भाई! यह चीजें लीडरोंके लिये जरूरी होंगी, मैं इस बातपर विवाद नहीं करता। परन्तु साधारण लोगोंका काम तो बिना घड़ी और फौंटेन-पेनके चल सकता है, और अटाचीके लिये तो पैसे किसके पास हैं? और बेदाम भी मिले तो उसमें रखनेको सामान कहाँ है?

२. अपना जीवन अनमोल कैसे बनावें?

"आप घड़ी भी नहीं चाहते, तो शायद आपके निकट समयका मूल्य कुछ भी नहीं है।"

"किसी हदतक यह सच है कि छः पैसे रोज कमानेवालेके समयका मूल्य कुछ नहींके बराबर है, क्योंकि मूल्य प्रायः पैसोंसे ही आँका जाता है। इसलिये बेचारा एक घड़ीका मूल्य छः सात रुपये कहाँसे लावेगा? समयका मूल्य कुछ नहीं, और बतानेवालेकी मजदूरी इतनी ज्यादा! जितने बड़े बालेमियाँ नहीं, उनसे कितनी बड़ी पूँछ है। घड़ीके सहारे जितना समय वह बचा सकेगा, उसकी कीमत जोड़ी जाय तो उस घड़ीके दाम दस बरसमें भी वसूल न होंगे। इसलिये हम तो भाई बिना घड़ीके ही अच्छे। स्टेशनपर तो जायँगे ही नहीं, और अगर गये भी तो घंटेकी जगह दो घंटे पहले पहुँच जायँगे तो क्या बिगड़ जायगा। साढ़े तीन करोड़ बेकारोंके समयके क्या दाम हैं? कमाई हो भी तो घंटेमें साढ़े चार पाई मात्र! इसलिये कभीके थोड़ेसे समयकी बचतके लिये घड़ीपर पैसे बरबाद करना मूर्खता है।"

"आखिर वक्त का अन्दाजा कैसे हो?"

"घड़ी के वक्त का अन्दाजा कैसे होता है? सूरज से ही तो घड़ी मिलायी जाती है और समय शुद्ध किया जाता है। वह सूरज चांद तारे तो कहीं गये नहीं हैं! जिनके पास घड़ी नहीं है वह समयका कितना ठीक अन्दाजा करते हैं, यह तो नित्यका अनुभव है। आकाशकी यह घड़ी तो हमारे सामने बराबर चलती रहती है। कभी बन्द नहीं होती। पैसे खर्च नहीं होते। फिर भी ठीक-ठीक कितने बजे हैं, यह जानना हो तो "नतांश-दर्पण"से काम लीजिये। एक-दो-आनेकी धूप घड़ी है।*

"यह तो बिल्कुल सही है कि जिसकी दिनभरकी मजूरी छः पैसे हैं, उसके समयका मूल्य कुछ नहींके बराबर है। यह हमारी औसत दैनिक आमदनी है, इसलिये हमारे दिनभरकी औसत कीमत है! ओः! कैसी निर्धनता है।"

"और यह दिनभर हमारे जीवनका अंश है। अतः भारतीय मनुष्यके जीवनका मूल्य कितना थोड़ा हो गया। इसीलिये तो जरूरत है कि हमारे पास जो थोड़ी सम्पत्ति है उसे खोनेके बदले उसकी रक्षा करें और उसे सँभलकर, अत्यन्त आवश्यक होने पर ही खर्च करें। इसीलिये तो जरूरत है कि अपने जीवनका मूल्य बढ़ावें।

*इस सस्ती घड़ीका वर्णन अन्यत्र दिया गया है। रा० गौ०

छोटी छोटी वस्तुओंमें स्वदेशी और किफायत

"स्वदेशीका व्रत निबाहना फिर भी बड़ा कठिन दीखता है। विचार कीजिये तो पद-पदपर विदेशी वस्तुएँ मिलती हैं और वह भी जरूरी ही मालूम होती हैं। अब लिखने पढ़नेमें ही लीजिये, बिना निब पेंसिल, कागज, कलम, स्याही, आलपीन आदिके काम चल ही नहीं सकता। बटन भी विदेशी बनते हैं। आइना, कंघी, हजामत बनानेके अस्तुरे, चाकू, कैंची, बच्चोंके हजारों तरहके खिलौने, कहाँ तक गिनाऊँ बिसातखानेका बिसातखाना विदेशी है। कहाँतक स्वदेशी व्रतका पालन कराइयेगा?"

"भाई, व्रत तो मुश्किल होनेसे ही व्रत कहलाता है। आसान हो तो उसके पालनपर जोर देनेकी जरूरत क्या है? यह सच है कि हमें पद-पदपर विदेशी वस्तुओंका ही सामना करना पड़ता है। इतना ही नहीं, हमारे घर विदेशी वस्तुओंसे ही भरे पड़े हैं। एक फैशनवाले भले आदमीकी बैठक देखिये तो, मेज, कुरसी, कलमदान, किताबें, फोटो, परदे चटाई आदि सभी सामान विदेशी होते हैं। यों पूछिये कि स्वदेशी क्या है, तो अधिकांश उत्तर मिलेगा कि स्वदेशी कहीं नहीं है। हमारी सलाह

"कैसे?"

"अपने हर मिनटकी कीमत बढ़ाकर। अभी तो छः पैसेमें हम छः घंटे कसकर मेहनत करते हैं। एक मिनटकी कीमत हुई $\frac{1}{60}$ पैसा मात्र। यदि हम उतने ही समयमें बारह पैसे कमायँ, या दूने समयमें भी बारह पैसे कमायँ, तो हमने अपने दिनभरकी कीमत दूनी कर दी। हमारे जीवनका मूल्य दूना हो गया। हम अपने जीवनके हर क्षणमें कोई न कोई मूल्यवान काम करते रहें, तो हमारा जीवन अनमोल हो जाय।"

३-चिट्ठीपत्री और अख़बार

"अच्छा। घड़ीकी जरूरत नहीं है। फौंटेनपेनके बदले पेंसिल-कलम है ही। अटाचीकी जगह झोलेसे काम चलेगाही। रेल, मोटरकार, विमान होते हुए भी अभी हम पाँव-पाँव चल सकते हैं। तार दिये बिना भी चला सकते हैं। मगर अखबारोंका पढ़ना ज्ञानके लिये और पत्र व्यवहार काम-काजके लिये जरूरी है। आखिर चिट्ठियाँ बिना भेजे तो काम नहीं चलता?"

"पहले जब डाककी वर्त्तमान पद्धति संसारमें नहीं चली थी तब किस कामका हर्ज होता था?"

"तो क्या कोई पद्धति पहले भी चलती थी?"

"रेल तार डाकको तो अभी पूरे सौ बरस भी नहीं हुए। इससे पहले क्या यात्रा नहीं होती थी या समाचार नहीं आते जाते थे। सब कुछ होता था पर धीरे धीरे।

अब बहुत जल्दी होता है। मनको कुछ कालके लिये सन्तोष दे लो कि हम अभी रेल तार डाकके उसी सौ बरस पहलेकी अवस्थामें हैं। इनका खर्च घटाकर नहींके बराबर कर दो। जब आमदनी थोड़ी हो, खर्च भी थोड़ा कर देना पड़ता है।

"सभ्यताकी घड़ीकी सुईको फेरकर आप सौ बरस पीछे ले जाना चाहते हैं?"

"क्या हर्ज है? अभी तो यही निश्चित नहीं है कि सभ्यताकी घड़ी ठीक रास्तेपर चल रही है या नहीं, या उलटी तो नहीं चल रही है। फिर और देशोंके लिये वह अनुकूल भी चल रही हो, परन्तु हमारे लिये तो उसकी गति सर्वथा प्रतिकूल है। हम तो सभ्यताके पीछे, लुट गये, बरबाद हो गये, क्योंकि विदेशीका ही नाम सभ्यता है, और स्वदेशीका बर्बरता। यह सत्य पद-पदपर प्रत्यक्ष हो रहा है। हमारा कल्याण हमारी बर्बरतामें अर्थात् स्वदेशीमें ही है। जब हमारे पास धनका संचय हो जायगा तो हम सुभीतेसे सभ्य हो लेंगे।

"अखबार पढ़नेकी लत भी किसी नशेसे कम नहीं है। अख़बारोंमें कामकी बात बहुत कम रहती हैं। सनसनीदार समाचार और मादक सामग्रीसेही अखबार भरे रहते हैं। झूठी उत्तेजक खबरें भी रहती हैं। नशेकी तरह इनके पढ़नेकीभी आदत लग जाती है। समय और पैसा बरबाद होता है। धन्य हैं वे, जो इस लतसे मुक्त हैं।"

यह नहीं है कि इन सब चीजोंको एकदम समाप्त करके दंड कमंडलु धारण कर लीजिये और साबुन स्नो आदि छोड़कर भस्म रमा लीजिये। बस इतना ही कीजिये कि जो अपने पास है उसे घिसपिस खर्च हो जाने दीजिये, परंतु अबसे सही, अबसे ही, उनमेंसे एक भी चीज मत खरीदिये। अगर पासका कोई सामान नष्ट हो जाय तो उसकी जगह स्वदेशी और पक्के स्वदेशीको ही दीजिये। मेज कुरसी टूट जायं तो जाजिम या दरी बिछाइये।"

"मामा, परन्तु इन सबकी जगह स्वदेशी चीजें मिलती कहाँ हैं?"

"पहले तो खोज करनेपर अपने देशकी बनी प्रायः सभी चीजें जिनकी जरूरत पड़ती है, मिल जायँगी। निब, पेंसिल, कलम, कागज, स्याही, आईना, कंघी, अस्तुरे, चाकू, कैंची आदि सभी चीजें भली या बुरी, स्वदेशी बनती हैं और खोजनेसे मिल जाती हैं।"

"मैं तो बहुत खोज कर चुका हूँ, मुझे तो बाजारमें विदेशी ही वस्तुएँ दीखती हैं।"

"यह सच है। परन्तु जब आपकी तरह सभी गाहक स्वदेशी खोजने लगें और विदेशी न खरीदें तो दूकानदार आप ही स्वदेशी खोज-खोजकर रखने लगेंगे। विदेशी वस्तुएँ बिकेंगी नहीं तो वह रखकर करेंगे क्या? मैं तो जब कभी किसी बिसातखानेको देखता हूँ तो मुझे इतने तरहकी हाथसे बन सकनेवाली चीजें दिखाई पड़ती हैं कि मैं अपने देशके असंख्य बेकारोंके फूटे भागोंपर निराश होनेका कोई कारण नहीं देखता।"

"यह तो आप ठीक कहते हैं। परन्तु हम आज देशी सुई और आलपीन मांगेंगे तो वह कहांसे देंगे?"

"वह सुई तो स्वदेशी दे सकेंगे, परन्तु बहुत महँगी देंगे। हमको चाहिये कि हम विदेशी सस्ती न लेकर स्वदेशी महंगी लें। अभी स्वदेशी सभी चीजें महंगी पड़ेंगी क्योंकि उनकी तय्यारीमें खर्च ज्यादा पड़ेगा। स्वदेशी चीजोंमें वह सफाई, चोखाई और बढ़ियापन न होगा, जो विदेशी वस्तुओंमें हम देखते हैं, पर हमें इसकी परवाह न करनी होगी। हम घटिया स्वदेशी मालसे ही काम चलावेंगे। हठ पूर्वक सारा देश स्वदेशीका व्रत करने लगे तो बनानेवालोंका हाथ दो चार बरसमें ऐसा मंज जायगा कि स्वदेशी चीजें विदेशीसे ज्यादा चोखी बनने लगेंगी। जबतक हो सके तबतक हम ऐसा करें कि विदेशी खरीदें ही नहीं। आलपीनका काम कांटेसे, तिनकेसे, भी चल सकता है। सुइयाँ कोई होशियार लोहार बना सकता है।

चाकू कैंची आदि स्वदेशी बनते हैं। कागजकी मिलें विदेशी पूँजी और विदेशी बन्दोबस्तसे चलती हैं। शुद्ध स्वदेशी तो नहीं होतीं, परंतु बहियोंका अरवली कागज जिसका बनना बन्द हो गया था, अब कालपीमें फिरसे बनने लगा है। यह बहुत टिकाऊ और बड़ा मजबूत होता है। मिलका कागज दस बरसमें पुराना हो जाता है पर अरवली कागज सौ डेढ़ सौ बरसमें भी उतना पुराना नहीं दीखता। इस हिसाबसे महँगा नहीं है, सस्ता है। अपने लिये चिट्ठी पत्रीके लिये वही कागज लेना चाहिये। जब इसकी माँग बढ़ेगी, उसका बनना भी बढ़ेगा और बेकारोंको काम मिलेगा, बेकारी घटेगी।"

"यह तो स्वदेशीकी छीछालेदर हुई। आप कागजमें स्वदेशी नहीं बरत सकते। किताबें, कापियाँ, अखबार इनका इतना भारी प्रचार है कि इनसे विदेशीपन नहीं जा सकता। विद्या तो जैसे मिले लेनी ही होगी। भला, लिखने पढ़नेका अभ्यास भी इस व्रतके पीछे आप छोड़वा देंगे।"

"नहीं, लिखना पढ़ना तो छूट नहीं सकता। अच्छी विद्या तो लेनी ही होगी। परन्तु इन अच्छे सिद्धान्तोंकी रक्षा करते हुए उसकी बुराईसे बचना भी चाहिये। जो विद्या हमको झूठी राहपर ले जाती है और हमें घर रहते भी विदेशी बना देती है उसका त्याग करना सब तरहसे उचित है। परन्तु एक बातके समझनेमें प्रायः लोग भूल करते हैं—शिक्षा विभागमें अत्यधिक पुस्तकों, कापियों आदिका बदलते रहना, अत्यधिक प्रचार इसीलिये है कि इसमें इन सामग्रियोंके व्यवसायियोंका स्वार्थ है। पचास साठ बरस पहले इतनी कापियाँ नहीं चलती थीं। पटिया, तख्ती, वस्ली आदिका प्रचार था। छापेखानेके प्रचारके पहले पत्रानुमा पोथीके पत्रे गुरुजीसे छात्र लेकर नकलकर लेते थे। इस तरह पोथी भी लड़कोंके पास हो जाती थी, लिखनेका अभ्यास भी हो जाता था और पाठ नकल

स्वावलम्बन और स्वदेशीके लिये जर्म्मनीकी कड़ी कोशिश

लकड़ीसे अनेक वस्तुएँ बनानेके चमत्कार

[डा० गोरखप्रसाद, डी० एस० सी०]

जरमनीके आविष्कारक और कारखानेवाले एक विशाल कार्यमें जुटे हुए हैं—यह कि बाहरसे किसी प्रकारके मालके मँगानेकी आवश्यकता ही न रह जाय। एक दूसरेके सहयोगसे और अपने महान कौशलके कारण अबतक इस दिशामें उन लोगोंने कई कठिनाइयोंपर विजय पायी है—और भविष्यमें वास्तविक युद्धमें भी उनको विजय अवश्य ही इन्हीं आविष्कारोंके द्वारा मिलेगी।

१. लकड़ीसे चीनी आटा और चरी सिरका और पेट्रोल

आजतक सबसे बड़ी विजय जो उनको मिली है वह मानहाइम—राइनाउमें बरगिन-नामक कारखानेका बन जाना है। इस कारखानेमें रद्दी लकड़ीसे चीनी बनती है और अब वहाँ चीनी इतनी सस्ती बनती है कि वह नफ़ेमें बेंची जा सकती है। इस नवीन रीतिके कारण जरमन लोग लकड़ीके छिलकेसे मिठाई बना सकेंगे, अपने मवेशियों को लकड़ीके बुरादेसे बनी चरी खिला सकेंगे, अपने तरकारीमें गोंदसे बना सिरका छोड़ सकेंगे और अपनी मोटरोंमें जंगली पेड़ोंकी सूखी डालियोंसे बना पेटरोल भर सकेंगे। बरगिन कारखानेको, जो पूरा भानमतीका कारखाना जान पड़ता है, डाक्टर फ्रीडरिश बरगियस, नोबुल-पुरस्कार बिजेताने बनवाया था। उनके सहकारी फ़्रिट्स कोख़, प्राफ़ेसर एरिक हेगलुड और ई० फ़ेवर हैं।

२. लकड़ीकी चीनीसे शराब

बरगिन कारखानेसे प्रत्येक सप्ताह ३५०० मन चीनी, २००० मन चरी और २५० मन सिरका निकलेगा। इच्छानुसार कुछ चीनीके बदले गुड़ भी बनाया जा सकता है। यही नहीं। थोड़ी ही और कार्रवाईसे चीनीको शराबमें बदल दिया जा सकता है। सवा मन चीनीसे ४ गैलन शत प्रतिशत विशुद्ध शराब निकलती है। कारखानेकी ओरसे इस नवीन चीनीका दाम सात आने सेर रक्खा गया है, जो जरमनीमें विदेशसे आयी चीनीके दामके मुकाबले किसी प्रकार अधिक नहीं है।

बरगियस रीतिसे बनी चीनी किसी भी बातमें गन्नेकी चीनीसे विभिन्न नहीं है। स्वाद वही होता है और पोषण-शक्ति भी वही होती है। यह चीनी अवश्य "कृत्रिम" रीतिसे बनती है, परंतु यह "चीनीके सत्त" (सैकरीन) की जातिकी नहीं है जिसमें मिठास खूब होती है, परंतु पोषण-शक्ति नाम मात्र भी नहीं होती।

३. यह चीजें रद्दी लकड़ी, कुनाई और बुरादेसे बनती हैं

रही उन पदार्थोंकी बात जिनसे यह चीनी बनती है। इस संबंधमें भी बरगियसका आविष्कार प्रायः उतना ही चमत्कारिक है जितना उसके सहकारी बॉशका हवासे शोरेका तेज़ाब बनाना था। क्योंकि नवीन शराब, सिरका, चीनी और चरी ऐसे पदार्थोंसे बनते हैं जिनका चुक जाना प्रायः असंभव है और जिनका उपयोग इसके पहले किसी कामके लिए नहीं हो सकता था। ये रद्दी लकड़ीसे बनते हैं—वास्तविक रद्दी लकड़ीसे, जैसे रंदा करनेसे और आरी चलानेसे निकली कुनाई, या ईंधन चीरनेसे निकली चैलियोंसे, या इसी प्रकारकी अन्य रद्दी लकड़ीसे।

परंतु लकड़ीसे भोज्य-पदार्थ बनाना, यद्यपि बड़ा ही आश्चर्यजनक है, विदेशसे आनेवाले सब मालके विरुद्ध

करनेमें ही याद हो जाता था। समय बहुत लगता था सही परन्तु समयका सदुपयोग था। बनियोंके यहाँ पुड़िया बाँधनेको जाकर कागज अपनी दुर्दशा नहीं कराता था। वह पत्तोंसे काम चलाते थे। कागजका बड़ा विनाशक रोजगार है। परन्तु हमें इन बातोंसे क्या। हमारी चले तो हम फिर वही दिन लावें कि कागज और पोथियोंके पीछे कमसे कम पैसे खर्च हों।"

ठाने हुए जरमनीके युद्धका यह तो भी केवल एक अंग है। जरमनीमें बिकनेवाले प्रत्येक मालपर "जरमनीमें बना" ऐसी मुहर लगानेके काममें महासमरमें एक दूसरे आविष्कारने भी बड़ी मददकी है। यह बहुत दिनोंसे प्रसिद्ध है। सभी जानते हैं कि बॉश और बरगियसने कोयलेको कैसे "तड़काया" जिससे पेटरोल उत्पन्न हुआ और उनकी "पितृभूमि"* विदेशी पेटरोलके बंधनसे सदाके लिए मुक्त हो गयी।

४. कांच जो गिरकर न टूटे, लचे, आरीसे चाकूसे कटे

इस वर्ष, बॉश–बरगियस रीतिसे पेटरोल बनानेमें जो चीज़ें बच रहती हैं उनके उपयोग करनेकी जो रीति निकाली गयी है वह कुछ कम आश्चर्यजनक या महत्वपूर्ण नहीं है। उसी सस्ते-से-सस्ते पत्थरके कोयलेसे जरमनीके रंगके कारखानोंने इस वर्ष प्याले और तश्तरियाँ, डिबियाँ और डिब्बे, आतिशी शीशे, सिगरेट-होल्डर, मूँगे और मोती, और मोटरोंमें लगानेके लिए कभी-भी-न-टूटनेवाले शीशे बनाकर बेंचना शुरू किया है। इस प्रकार एक बार फिर जरमनीके आविष्कारकोंने विदेशी चीज़ोंकी लंबी सूचीपर वार करके उसे ख़ासा छोटा कर डाला है। ये सब चीज़ें जिस पदार्थसे बनती हैं वह "कुंस्ट हार्ट्स"—अर्थात् कृत्रिम रजन" कहलाता है। वह हज़ारों चीजोंके बनानेमें लकड़ी, धातु, हाथी-दाँत, सींग, चीनी मिट्टी और शीशेके बदले काममें लाया जा सकता है।

इस नवीन पदार्थसे सबसे अधिक आश्चर्यजनक वस्तु जो बनी है वह है "प्लेक्सी ग्लास"। यह एक प्रकारका ऐसा शीशा है जो लचानेसे लच जायगा पर टूटेगा नहीं। यह साधारण शीशेकी ही तरह स्वच्छ होता है और इसके भीतर मज़बूतीके लिए किसी प्रकारका तार आदि नहीं पड़ा रहता। नाज़ी सरकारके "हिटलर सड़कों" पर चलनेवाले सब नवीन मोटर-लारियोंमें यही शीशा लगाया गया है।

---

* जरमन लोग अपने देशको "फ़ादरलैंड" (पितृभूमि) कहते हैं।

प्लेक्सी–ग्लास सस्ते मेलके पत्थरके कोयलेसे बनता है। इसको १९४ दरजा फ़ारेनहाइटतक गरम करनेसे (अर्थात् खौलते पानीसे कुछ कम ही आँच दिखानेसे) यह इच्छानुसार मोड़ा जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक विशेष सुविधा यह भी है कि यह पक्के लोहेकी क़लमसे हा कट जाता है। इसके लिए हीरेकी क़लमकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इस शीशेके गुण साधारण जनताको चक्करमें डाल देते हैं क्योंकि यह शीशा लकड़ी काटनेकी आरीसे चीरा जा सकता है।

"कुंस्ट हार्ट्स" दो मेलका बनता है। एक तो फ़ेनोल, पत्थरके कोयले और एक फ़ारमैल्डिहाइड-कंडेंसेंटके रासायनिक संयोगसे बनता है। इसे "फ़ेनोल हार्ट्स" कहते हैं। हालमें जितने भी बिलियर्ड-बाल, छातेकी मुठिया, सिगरेट-होल्डर, रंगीन चश्मे, या न टूटनेवाले शीशे जरमनीमें बिकनेके लिए बने हैं वे सब फ़ेनोल हार्ट्ससे बने हैं।

दूसरा मेल "ऐमिनो-हार्ट्स" है। यह भी फ़ेनोल-हार्ट्सकी तरह बनता है परंतु इसके बनानेमें फ़ेनोलके बदले यूरियाका प्रयोग किया जाता है। सब नवीन चाकूके बेंट, रेडियोके बक्स, स्विचबोर्ड, फैंसी बटन, बिजलीके सामान, यहाँतक कि न टूटनेवाले प्याले और तश्तरियाँ इस नवीन पदार्थसे बनायी जा रही हैं।

५. लकड़ी और कोयलेका आहार, आराम और श्रृंगार भी

जरमनी केवल अपने जंगली लकड़ियोंको सुबह, दोपहर और शाम खाकर ही नहीं संतोष करेगी, वह कोयलेको अपने आभूषणों और खिड़कियोंमें लगाने लगी है।

नवीन वस्तुओंका आविष्कार युद्धका केवल एक अंग है। दूसरा अंग एक वस्तुके बदले दूसरेसे काम चलाना है। उदाहरणार्थ, जरमन भूमिमें कई एक अत्यंत वांछनीय धातु नहीं हैं। परंतु जरमनीके प्रसिद्ध कारोबारमें ये धातु बहुतायतसे लगे हुए हैं। वे बाहरसे मँगाये गये थे। हिटलरने आज्ञा दी है कि जरमन रेलवेमें जहाँ कहीं भी ताँबा, राँगा या जस्ता लगा हो निकाल लिया जाय। यह "परिवर्तन" "आयोजना" छः महीनोंसे बड़ी ज़ोरोंसे चल रही है। प्रत्येक वस्तु जिसकी आवश्यकता लड़ाईमें पड़ती

है बचायी जा रही है। रेलवेके ताँबेके बॉयलरोंसे लेकर बिजलीके तारपर लपेटे हुए सूततक संकटमें पड़े "पितृभूमि" के लिए बचाया जा रहा है।

६. धातुओं बिना भी काम चलेगा

हिटलरकी एक बृहद् आयोजना बातकी बातमें बड़ी सी सशस्त्र फौज तैयार करनेकी ही है। इसके लिए ताँबे, राँगे और जस्तेकी सख्त जरूरत है, पर बाहरसे अधिक मात्रामें इस समय इनका मँगाना असंभव है। हिटलरको उसके अद्वितीय परिवर्तन आयोजनाके कारण इन धातुओंके हजारों मन सरकारी रेलवेके मरम्मत करनेके कारखानोंमें पड़े पुराने पुरजोंसे मिल गये हैं।

पहला हुक्म जो उपरोक्त आयोजनाके सिलसिलेमें निकला वह यह था कि ताँबेके बॉयलर बनाना ग़ैर-कानूनी है। अबतक वे भीमकाय बॉयलर ताँबेके ही बनते थे और ताँबेके बराबर कोई भी अन्य धातु इस कामके लिए योग्य नहीं समझा जाता था। अब ये बॉयलर फ़ौलादके बनते हैं। कुंस्ट हार्ट्सके बॉयलर बनानेका भी प्रयोग (experiment) किया गया है और इस ओर भी सफलता मिली है। पीतलका उपयोग भी ग़ैर-क़ानूनी करार दिया गया है और जहाँ कहीं भी यह धातु पहलेसे लगी थी वहाँसे यह जब्तकर ली गयी है। यहाँतक कि सिगरेटोंकी राख झाड़नेके लिए जो तश्तरियाँ रेलके डिब्बोंमें लगी रहती थीं और जिनकी पॉलिशकी हुई चमक सिगरेट पीनेवालोंके दिलको खुश कर दिया करती थी अब निकाल ली गयी हैं।

फूलका उपयोग भी गैर-कानूनी ठहराया गया है क्योंकि इसमें तो ताँबा, राँगा, जस्ता--तीनों—पड़ते हैं, इससे घंटे और घंटियोंकी आवाज ही बदल गयी है, क्योंकि फूलकी सुरीली आवाजके बदले अब लोहेके टना-टनकी आवाज़का जमाना आ गया है—फौजके खजानेके लिए इंजनोंमें लगे नंबर और नामके अक्षरतक भी उखाड़ लिये गये हैं। ये पहले पीतल या फूलके बनते थे, परन्तु अब इन धातुओंके बदले एक खास तौरसे सस्ते अलुमिनियमका उपयोग किया जाता है जिसका नाम "सिलुमिन" रक्खा गया है। कपड़े और टोप टाँगनेकी खूँटियाँ और हल्के असबाब रखनेके ब्रैकेट भी सरकारी फौजकी भट्टीमें पहुँच गये हैं क्योंकि ये भी पीतलके बनते थे। यहाँतककी स्टीम निकलनेके पीतलवाले वाल्व भी निकाल लिये गये हैं और पीतलके बदले नवीन "कुंस्ट हार्ट्स" लगाया गया है।

इसी प्रकार ताँबेके तारका उपयोग भी नियम-विरुद्ध है। इसके बदले विशेष रीतिसे बने "स्यूरालुमिन" के तार लगाये जाते हैं। इस धातुको अल्युमिनियममें बहुत थोड़ा सा ताँबा और मैंगनीज डालकर बनाया जाता है। परंतु सबसे अधिक उल्लेखनीय परिवर्तन बिजलीके तारोंपर लपेटे जानेवाले इंसुलेशनमें हुआ है। विदेशी मालोंके विरुद्ध आंदोलनमें सबसे कठिन कार्य रुईकी आयको कम करना था। इसलिए १९३५से जरमन रेलगाड़ियोंमें जितना भी बिजलीका तार लगा है सबमें या तो कागज़ या नकली रेशम लगाया गया है।

७. कट्टर-स्वदेशीका अपूर्वरूप। पेट्रोलके बदले प्रोपेन

केवल अपने ही देशमें उत्पन्न हुए मालसे सब काम चलानेके युद्धमें एक और विजय जो जरमनोंको मिली है और जिसका पता बहुतोंको नहीं है वह म्यूनिखमें प्राप्त हुई है। यहाँपर पेटरोलके बदले मोटर-गाड़ियोंको प्रोपेन गैससे चलानेका सफल प्रयोग हुआ है। म्युनिसिपैलिटीकी जितनी भी मोटर-लारियाँ हैं वे तीन महीनेसे प्रोपेन गैससे चल रही हैं। वे केवल संतोषजनक रीतिसे चल ही नहीं रही हैं, गैसके उपयोगसे ३२ प्रतिशत बचत भी होती है। प्रोपेन तरल पदार्थ नहीं है। वह सचमुच गैस है और कोयलेको बरगियस रीतिसे "चटखा" कर अन्य पदार्थोंके बनाते समय यह आपसे आप बन जाता है। जिस उपचारसे कोयलेसे किरोसीन बनता है उसीसे प्रोपेन भी बन जाता है। इस गैसमें "कोल गैस" की अपेक्षा एक लाभ यह है कि यह कोल गैसकी तरह जहरीला नहीं है।

८. विदेशी बहिष्कारके लिये अपना गन्दा तेल बचाओ

परंतु सबसे अधिक प्रभावशाली आंदोलन जो विदेशी-मालको रोकनेके सिलसिलेमें हुआ है वह दक्षिण जरमनीका "अपना गंदा तेल बचा रक्खो" नामक आंदोलन है।

सस्ते विदेशीसे महँगा स्वदेशी क्यों अच्छा है ?

(१) सस्ता विदेशी माल

"आपने कहा कि सस्ते विदेशीसे महँगा स्वदेशी अच्छा है। यह बात समझमें नहीं आती।"

"पहले यही समझ लीजिये कि विदेशी माल सस्ता क्यों आता है। जापानी देशमें मशीनोंके द्वारा सस्ता माल थोकका थोक तैयार कर लेते हैं। उनके देशमें उसका कुछ अंश ही खपता है। परन्तु इतना तो अवश्य खप जाता है कि मालपर उनकी लागत निकल आती है और बचा माल उन्हें मुनाफेमें पड़ जाता है। यह माल मानों उन्हें बिना दाम ही तैयार मिला। अब इस तैयार मालको वे कम किराया लेनेवाले अपने ही जहाजोंपर लादकर भारतमें भेज देते हैं। तैयारीकी लागत बहुत कम बैठी, अपने जहाजपर किफायतसे माल कलकत्ते पहुंचा। वहाँ महसूल देकर भी हमारे देशमें उनका माल सस्ता पड़ा। अपने देशमें माल बेचकर लागत तो वह वसूल कर ही चुके हैं, अब ढुलाई और महसूल चुकानेके बाद उन्हें जो ही अधिक दाम मिल जायँ वह नफाही नफा है। बहुधा देखा गया है कि महसूल ज्यादा कर देनेपर भी वह अपना माल नफेके साथ यहाँ बेच लेते हैं।

आपने जापानी धोतियाँ खरीदीं और बजाजको दाम दिये। बजाज आपके देशका है, उसने थोड़ीसी दलाली पायी, अपने यहाँके मजूरोंने रुपयेमें कुछ कौड़ियाँ मजूरी पायी। सरकारने महसूल पाया। बाकी सारी रकम जापान गयी। तैयार कराईसे लेकर जहाज द्वारा कलकत्तेतक पहुँचवाई तक सारे पैसे जापान गये। खरीदारके पल्ले कम टिकाऊ मालके सिवा कुछ न पड़ा। सस्ते विदेशी मालको खरीदकर आपने अपने पैसे समुन्दर पार भेज दिये।

उन धोतियोंको देखिये। उनके हर धागेमें आपकी भारतीय रुई है। यह रुई वह यहाँसे खरीदकर अपने जहाजपर लादकर जापान ले गये। वहीं ओटी, धुनी, काती, बुनी गयी। उस रुईपर सारी मजूरी जापानियोंने ली। देशने कच्चे मालके लिये थोड़ासा उनसे जो दाम पाया था, उसे भी उन्होंने मुनाफेके रूपमें आपकी जेबसे निकाल लिया।

आपने सस्ता विदेशी खरीदा तो जापानका रोजगार खड़ा कर दिया और अपने देशके सारे पैसे गँवाये।

२. सस्ती विदेशी खांड़से महँगी लाल शक्करमें अधिक लाभ

सस्ते विदेशीका एक और उदाहरण लीजिये। लगभग छत्तीस बरस पहले हमारे देशमें सभी जगह देशी खँड-स्यालें थीं। गन्ना पेलकर देशी कड़ाहोंमें रस पकता था, राब बनती थी, शीरा अलगा कर लाल शक्कर अलग की जाती थी। फिर इस लाल शक्करको सफेद खाँड़में परिणत किया जाता था। मिलें नहीं थीं, पत्थरके बड़े-बड़े कोल्हू थे, पेलनेवाले बैल थे। और खाँड़ बनानेवाले थे मजूरोंके हाथ-पाँव। खाँड जो तैयार होती थी, सस्ती बिक जाती थी।

इस आंदोलनमें वैज्ञानिकोंका काम तो नाममात्र ही है; असल काम प्रचार करनेवालोंके जिम्मे है। इन लोगोंकी रट है "एक रत्ती भी पुराना तेल खराब न जाने पाये"। इसमें सरकारी सहायता भी है। बवेरिया सरकारने अपनी ओरसे प्रबंध किया है कि मोटरोंमेंसे निकला सब पुराना तेल विशेष कारखानोंमें भेज दिया जाय। वहाँ उनका 'पुनर्जन्म' होता है।

६. अखबारोंकी स्वदेशी प्रचारमें पूरी मदद

शंका समाधानके लिये बवेरियाके समाचार पत्र बराबर लिखा करते हैं कि "पुनर्जन्म पाये तेलके उपयोगमें जरा सी भी हिचक न करनी चाहिए। जाँचद्वारा पता चला है कि ठीक तरहसे शुद्ध किया हुआ पुराना तेल नये तेलसे कई बातोंमें बढ़कर है, क्योंकि नये तेलमें ये सब संशोधन नहीं किये जाते जो पुनर्जीवित तेलमें किये जाते हैं।"

—पापुलर मिकैनिक्ससे

गन्नेकी खेती यहाँकी खास चीज थी । युरोपमें गन्ना कहाँ ?

जर्म्मनीवालोंने चुकन्दरसे खाँड़ निकाली । गन्नेमें जहाँ १५-२० प्रतिशत खाँड़ निकलती है, चुकन्दरमेंसे मुश्किलसे ५ प्रतिशत निकलती है । जहाँ गन्ना खड़ा होता, चुकन्दर लाजसे धरतीमें गड़ जाती । पर वाहरे जर्म्मनी, उसने कूटनीतिके पावोंपर गन्नेके मद्मुकाबिल चुकन्दरको खड़ा कर दिया । चुकन्दरसे चीनी निकालकर गन्नेकी खाँड़का मुकाबला करना सहज न था । फिर भी जर्म्मन सरकारने उस समय भारतके बाजारोंपर कबजा करनेका पक्का निश्चय कर लिया । उसने अपने चुकन्दरकी चीनीवालोंको भारतमें जर्म्मन चीनी बेचनेके लिये २० प्रतिशत रायलटी देना स्वीकार कर लिया । सौ रुपयेकी चीनी बेचनेवालेको जर्म्मन सरकार बीसरुपये इनाम देने लगी, तो बेचनेवालोंने चीनी इतनी सस्ती लगा दी कि यहाँकी देशी चीनी उसके मुकाबले महँगी हो गयी । बाजारमें जर्म्मन चीनीकी तूती बोलने लगी । उसने देशी चीनीको बाजारसे खदेड़ दिया । खँड़सालें धड़ाधड़ बन्द होने लगीं । फिर गन्नेकी खेती भी बहुत घट गयी । जिधर देखो उधर बम्बइया चीनी,—क्योंकि बम्बई ही इसका जहाज उतरता था,—बम्बइया चीनी फैल गयी । देशी खाँड़ नेस्तनाबूद हो चली । एकबार खँडसाल बन्द हुई तो फिर खोलनेकी हिम्मत किसे पड़ती है । ऊखकी खेती एकबार फसिलपर छोड़ा, तो फिर साल भरकी तो छुट्टी हुई । और फिर बोवें भी तो दूसरे साल कहीं तैयार होगी । इसलिये गन्नेकी खेती जो घटी सो घटी । बम्बइया चीनीका जब बाजारपर एक छत्र राज हो गया, तब जर्म्मन पैकारोंने चीनीका भाव धीरे धीरे चढ़ा दिया, और जर्म्मन सरकारने और व्यापारने जितने रुपये चीनीके व्यवसायको हथियानेमें लगाये थे वह रुपये भी वसूल कर लिये और आगेके लिये बम्बइया चीनीकी चाट, उसकी खींच, भी बढ़ा दी, और अपने रोजगारको कुछ बरसोंके लिये तो जरूर ही दृढ़ कर दिया ।

उस समय बम्बइया चीनीके विरुद्ध आन्दोलन चला, और ज़ोरोंसे चला । परन्तु जो हानि हो गयी उसका प्रतीकार कहाँ !

जिन लोगोंने चुकन्दरकी चीनी खरीदी उन्होंने सस्ते विदेशीसे तत्काल मुँह भलेही मीठा कर लिया, मगर "परिणामे विषोपमम्" कितने पैसे खिच गये और कबतक खिचते रहे, क्या हिसाब है !

उस समय जो लोग देशी खाँड़, लाल शक्कर या गुड़ खाते रहे, और यह चीजें बम्बइया चीनीके मुकाबले महंगी थीं,—वह वास्तवमें महँगे स्वदेशीपर पैसे लगाते रहे । यह पैसे अपने देशमें ही रहे । इनका कोई अंश बाहर नहीं गया । ये पैसे कुछ न कुछ गन्ने बोवाते रहे, रस पेलवाते रहे, गुड़, राब और खांड़ बनवाते रहे, बची-खुची, इक्की-दुक्की खँडसालें चलवाते रहे और फिर भी अनेक भुक्खड़ भाइयोंको दो मुट्ठी अन्न दिलवाते रहे !

जर्म्मनी जानेवाले पैसोंने भारतका क्या हित किया ?

"बम्बैया चीनीसे परहेजकर गुड़ या लाल शकरको जो अपनाते थे वह इस दृष्टिसे नहीं कि देशका पैसा बचायें, वह तो बम्बइया चीनी खाना अधर्म्म समझते थे ।"

"उनका समझना परिणामतः कुछ भी बेजा नहीं था । हमें तो स्वदेशीको अपना धर्म्म बना लेना चाहिये । जिस किसी क्रियासे स्वदेशी व्रतको हानि पहुँचे उसे अधर्म्म समझना चाहिये । मैं तो देखता हूँ कि हमारे धर्म्म भीरु अपनी धर्म्म-भीरुतासे देशको अधिक लाभ पहुँचाते हैं । कहीं हमारे यहाँ चौके-चूल्हेकी पाबन्दी न होती तो आज लकड़ीसे बने आटेकी सस्ती रोटियोंसे* जर्म्मनी हमारे भंडार भर देता और छः पैसे-रोजके हम मजदूर वही रोटियोंपर गुजर करने लगते और अपाहिज हो जाते । भला हो चौके चूल्हे जात-पाँतका जिसने बड़ी रक्षा कर रखी है ।"

३. सस्ते विदेशीमें ठगी

"सस्ते विदेशी सौदेमें क्या हम और तरहपर नहीं ठगे जाते ?"

"जी हाँ, इस बातको तो कभी भूलना न चाहिये । विदेशी व्यापारी जानते हैं कि भारतके लोगोंकी खरीदनेकी ताकत घटी हुई है । वे सस्ती चीजोंपर टूट पड़ेंगे । इसीलिये वे विशेषकर भारतके लिये नकली और खराब माल सूरत-शकल-स्वादमें मनोहर बनाकर अच्छे डिब्बोंमें भर देते हैं । उसकी मनोहरता और सुन्दर पैकिंगकी सवाई कीमत

---

* डाक्टर गोरखप्रसादका इसी विषयपर लेख अन्यत्र देखिये ।
—रा० गौ०

महँगे स्वदेशीमें भी किफायत है

"आप हर बातमें किफायतका उपदेश करते हैं, परन्तु अभी आप कह रहे हैं कि महँगा स्वदेशी अच्छा है। अर्थात् स्वदेशी खरीदो, चाहे महँगा भी क्यों न मिले। यह तो किफायत नहीं हुई ?"

"मैं तो किफायतके उपदेशमें कभी किफायत नहीं करता। मैं यह कब कहता हूँ कि आप महँगी स्वदेशी चीज खाम-खाह खरीदिये ? आप विदेशी चीज सस्ती भी मत खरीदिये, यह एक बात हुई। वैसी ही स्वदेशी चीज महँगी मिलेगी। उसके खरीदनेमें भी आप जरा रुककर विचार कीजिये कि क्या उस चीजके खरीदे बिना आपका काम चलेगा ही नहीं। यदि चल सके तो उसका खरीद जरूर टाल दीजिये। अगर खरीदे बिना किसी तरह काम ही न चल सके तो पहले विचार कीजिये कि मैं जो कुछ खरीदता हूँ उससे सारे पैसे हमारे देशमें ही रह जायँगे या नहीं फिर ऐसी ही वस्तु भरसक खरीदिये जिससे आपका एक पैसा भी देशके बाहर न जाय।"

"परन्तु फिर भी विदेशीके मुकाबले स्वदेशी चीज तो महँगी ही मिलेगी !"

"यह सच है कि अभी हमें स्वदेशी वस्तु महँगी पड़ेगी। कारण यह है कि हमें तो स्वदेशी व्यापारको बढ़ाना है, व्यवसाय और उद्योगको उसकाना है। जब हमारे स्वदेशी व्रतसे स्वदेशी वस्तुएँ धड़ल्लेसे तैयार होने रख लेते हैं, और उसपर लिख देते हैं "मेड-स्पेशली-फ़र-इंडिया" विशेषकर भारतके ही लिये बना"। यहाँके सौदागर गर्वसे हमको दिखलाते हैं कि देखिये "यह खास आप लोगोंके लिये बनकर आया है" और हम हैं कि इस वाक्यपर फूले नहीं समाते और यह बात तो कभी कल्पनामें भी नहीं आती कि ये विदेशी व्यापारी हमें बेव-कूफ़ बनाकर पैसे लूट रहे हैं। सस्ते विदेशी सौदेका साफ अर्थ है ठगा जाना। स्वदेशी दवाओंमें भी बेहद ठगी होती है, परन्तु वह सस्तेपनमें विदेशियोंके भी कान काटती हैं। आठ आनेसेर सिलाजीत, या सालिब मिसरी और चार आनेमें कस्तूरीका मिलना उसकी असलीयतका दर्पण है। परन्तु हमें ऐसी वस्तुओंसे विशेष प्रयोजन है जो हम अपनी आवश्यकताओंके लिये या ऐशो-आरामके लिये चाहते हैं। ऐसी चीज़ें स्वदेशी ही अच्छी मिलती हैं, यद्यपि महँगी होती हैं। विदेशी वस्तुओंमें हम खराब चीजें भी पाते हैं, ठगे भी जाते हैं और सारे पैसे विदेशको चले जाते हैं। महँगी स्वदेशी वस्तुएँ असली मिलती हैं और एक-एक पैसा देशमें रहता है, अपने उन भाइयोंके पास कुछ न कुछ पहुँचता ही है जिन्हें उन पैसोंकी जरूरत है और जिनको हमसे पानेका हक है।

"कुछ न कुछ पहुँचता है, यह तो सन्तोषकी बात नहीं है। स्वदेशीव्रत तभी सार्थक है, जब अधिकांश उन्हें मिले।"

"यह बिल्कुल सच है। हम जब स्वदेशी वस्तुओंकी जबरदस्त खींच पैदा करेंगे, तो हमारे व्यापारी उन वस्तुओंको मँगवाने और बनवानेका जतन करेंगे, तब हमारे देशके करोड़ों बेकारोंको काम मिलेगा, वह मजदूरी करेंगे, और हमारे पैसे उनके पास जायँगे।"

"हमारी खरीदनेकी ताकत बढ़ानेवाली बात जो बड़े-बड़े अर्थशास्त्री और व्यापारी कहा करते हैं, वह अपने मतलबसे।"

"बेशक ! स्वदेशी खरीदनेकी हमारी ताकत ऐसी दिशामें बढ़नी चाहिये कि हमारे अधिकसे अधिक संख्यामें बेकार भाइयोंको काम मिले और उस कामके बदले उन्हें दो मुट्ठी अन्न अधिक मिले। नहीं, तो हमारी ताकत बेकार जायगी।

"दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्"

इसलिये स्वदेशीका व्रत कठिन व्रत है। इसमें हमारे विचारकी आँखें सदा खुली रहनी चाहिये। हमको बराबर देखते रहना चाहिये कि हम अपने एक-एक पैसेका ठीक उपयोग कर रहे हैं या नहीं, उसकी पूरी-पूरी कीमत पा रहे रहे हैं या नहीं। खर्च न करना बेहतर है, परन्तु खर्च करना ही हो तो उसकी पूरी उपयोगितापर विचार कर लो।

लगेंगी तब वह सस्ती भी हो जायँगी। उन्हें आगे चलकर सस्ती, और अच्छी होते हुए भी सस्ती, करनेके लिए इस समय हमें वही काम करना है जो चीनीवालोंके साथ जर्म्मन सरकारने किया था। उसने उन्हें बीस रुपया सैकड़ा रायलटी दी थी। हम भी बीस रुपया सैकड़ा रायलटी देंगे।"

"कैसे?"

"मानलो कि हर चीजका दाम हम पंचमांश अधिक देते हों तो हम अपने वस्तु बनानेवाले स्वदेशी कारीगरको बीस रुपया सैकड़ा अधिक तो दे ही रहे हैं।"

"इस तरह तो जो कोई महँगा स्वदेशी खरीदता है, मानों बेचने और बनानेवालेको रायलटी देता है।"

"बेशक। मगर हमें ऐसा उपाय करना चाहिये कि बनानेवालेको ही यह बढ़ावा अधिकांश मिले। बेचनेवाला तो बहुधा बीचका दलाल ही होता है। अभी हालमें खद्दरके भावको इसी लिये चढ़ाया गया है कि कातनेवालों को मजूरी कम मिला करती थी, अब कुछ अधिक मिला करे। इस तरह कातनेवालेको जब मजूरी भरपेट मिलेगी तब बेकार रहनेवाले कहेंगे कि भाई कताई तो पेट भरने भरको मिल जाती है, बेकार क्यों रहें, आओ, चरखा नहीं है तो तकलीपर ही कातकर कुछ मजूरी पैदा करें।"

"मगर बात तो वही रही। यानी महँगा तो खरीदना ही पड़ता है।"

"महँगेपनका ठीक-ठीक क्या अर्थ है, अच्छी तरह समझना चाहिये।"

हम अपने बच्चोंके लिये दूधमें, उनकी रक्षाके लिये उचित आहार और पहिरावेमें, कोताही नहीं करते, क्योंकि उनके पालन-पोषणमें वंशकी रक्षा है। हम स्वयं अपनी रक्षाके लिये उचित साधनोंका प्रबन्ध करते हैं, उसमें खर्चमें किफायत नहीं करते क्योंकि इसमें आत्मरक्षा है। हम जो सम्पत्ति रखते हैं, जिस सम्पत्तिका उपार्जन करते हैं, वह इसीलिये कि हम उससे आत्मरक्षा और समाजकी रक्षा करें। इन दोनों कामोंमें जितने पैसे पूरे तौरपर खर्च हों वही सफल हैं।

हम जिस समाजकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं उससे अपनी रक्षा भी पाते हैं। पैसे भी हम समाजसे पाते हैं। यदि हम कुछ पैसे समाजको किसी रूपमें लौटा देते हैं, तो असलमें अपने पवित्र कर्त्तव्यका पालन करते हैं। हम अपने समाजसे कोई चीज लेते हैं, तो उसके बदले दाम देते हैं। यदि उतना ही दाम देते हैं जितनेका वह माल है, तो समाजको कुछ नहीं देते। परन्तु यदि हम अधिक दाम देते हैं, तो समाजको उसका दिया कुछ अंश लौटा देते हैं। **यही है स्वदेशी वस्तुके लिये अधिक दाम देना।** स्वदेशी वस्तुके हमने ज्यादा दाम दिये तो वह हमें महँगी नहीं पड़ी, बल्कि हमारे ऋणपरिशोधमें सहायक हुई।

अब हम विदेशी वस्तुके सस्तेपनपर जरा ध्यान दें। हमने विदेशी वस्तु सस्ती भी खरीदी तो उसके पैसे कहाँ गये? हमारे समाजकी वस्तु होती तो उसके दाम हमारे समाजको मिलते, तो हमने जो सम्पति समाजसे पायी, उसका लौटना होता! परन्तु हमने उलटा किया। **हमने पैसे पाये अपने समाजसे और उन्हें भेज दिया विदेश, अर्थात् उस समाजके पास भेजा जिसके ऋणी हम नहीं हैं इस तरह हमने अपने समाजको ठगा और विदेशी समाजसे ठगे गये। विदेशी-समाजसे सस्ती चीज जो हमने ली अपने जान उसे ठगा, परन्तु हमारे लिये वह सोलहों आना महँगी ठहरी।**

इस तरह विदेशी सस्ती भी हमारे लिये बहुत महँगी है।

स्वदेशी महँगी चीज खरीदनेमें हम अपने समाजको उसका ऋण लौटाते हैं। इसलिये वह महँगी चीज भी वास्तवमें हमारे लिये सस्ती ही है।

इसीलिये जब हम स्वदेशी महँगी चीज भी खरीदते हैं तो विदेशी सस्तीके मुकाबले किफायतसे ही काम लेते हैं।

"जहाँ तक राष्ट्रियताका सम्बन्ध है, आपकी दलील सही है। हम अपने समाजके जरूर ऋणी हैं, और हमारा सलूक भी हमारे समाजके साथ इसी प्रेम और ममत्वके भावका होना चाहिये। परन्तु क्या आपके खयालमें दुनियाँ बड़े वेगसे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्शकी ओर नहीं चली जा रही है? क्या जिसे हम विदेश कह रहे हैं वह

स्वदेशी फैशनमें भी किफायत

"स्वदेशीका नुसखा तो पहिरावेमें भी कम खर्च करता है। विदेशीका सूट साठ सत्तर रुपयोंमें तैयार होता है। स्वदेशीका बीस पच्चीसमें ही बन सकता है।"

"इतना ही नहीं, क्योंकि सूट तो विदेशी ही ठहरा, उसका कपड़ा चाहे भले ही स्वदेशी हो। आप फैशन बदल दें तो उससे भी ज्यादा किफायत हो।"

"फैशन बदलनेमें क्या ज्यादा किफायत है। पारसी कोटमें जितना कपड़ा लगता है, क्या शेरवानी या अंगरखेमें कम लगता है? पतलून और पाजामेमें फरक ही क्या है? फतुही और वास्कट तो एक ही चीज है। दिल्लीवाल जोड़ा और बूटमें क्या अन्तर है?"

"आप तो एक विदेशी फैशनको छोडकर दूसरेकी चर्चा करते हैं। हमारा देश गरम है। सालमें आठ महीने तो धोती और चद्दर दो ही कपड़ेमें आरामसे गुजर हो सकता है। कोट, वास्कट, कमीज, नेकटाई, कालर, पतलून, ब्रीचेज, मोजे आदिके ढकोसले तो सर्द मुल्कोंके लिये हैं। हममें जो मूर्ख हैं, या गुलाम हैं वे ही सर्द मुल्कोंकी व्यर्थ नकल करके पैसा, आराम और स्वास्थ्य तीनों बरबाद करते हैं। ज्यादासे ज्यादा एक कुरता हमारे लिये बहुत है।"

"कुरतेकी जगह कमीज हो तो क्या हर्ज है?"

"और कोट क्यों नहीं? अरे भाई कुरतेकी सिलाईसे कमीजकी डेवढ़ी और कोटकी छः गुनी देनी पड़ती है और नखरोंतिल्लोंमें कपड़ा भी ज्यादा लग जाता है। कमीज और कोटका रूप भी कोई विशेष सुन्दर नहीं। कुरता आपको क्या नापसंद है?"

"नहीं। नापसन्द तो नहीं है। परन्तु लड़के नखरे तिल्लेवाले कपड़े ज्यादा पसन्द करते हैं।"

"लड़कोंकी बुद्धिका भी आपने खूब प्रमाण दिया। अजी लड़कोंको आप खुद जैसा पहिनकर दिखाते हैं वैसी ही उनकी पसन्द भी हो जाती है।"

"गरमियोंमें तो एक कुरता भी सहा नहीं जाता। कुरतेके बनवानेमें जो सिलाई लग जाती है चद्दरमें वह नहीं लगती। कुरता कम टिकाऊ भी ठहरता है। फिर चद्दरके पुराने होनेपर उससे और अनेक काम ले सकते हैं। कुरतेसे वह सब सदुपयोग सम्भव नहीं है।"

"मगर क्या चद्दर ओढ़े कचहरियों, दरबारों और सभाओंमें भी जा सकते हैं?"

"चद्दरने क्या जुर्म किया है जो उसका प्रवेश इन जगहोंमें नहीं हो सकता? पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर चद्दर ओढ़े लाट साहबके यहाँ गये। वहाँ द्वारसे ही लौटा दिये गये। उनमें स्वाभिमानकी मात्रा काफी थी। उन्होंने चद्दरके सिवा और कुछ पहने उनसे मिलनेसे इनकार किया। अन्तमें लाटको लजाकर चद्दरधारी विद्यासागरसे मिलना ही पड़ा। यह तो अस्सी बरसकी बात है। पर

आवाजाईके सुभीते और वर्त्तमान सभ्यता-जनित देशकालके संकोचसे स्वदेशसे ही नहीं हो गये हैं? अब तो मैं समझता हूँ कि देशप्रेम अपनी संकुचित सीमासे बाहर फैल गया है और राष्ट्रियता अन्ताराष्ट्रियतामें बदल रही है।"

"व्यक्तियोंमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्'का उदारभाव तो सदासे चला आया है, परन्तु समाजमें तो अभी उसके लक्षण कहीं नहीं दीखते। विदेश-प्रेम जैसा अनोखा पदार्थ तो अभी तक सामूहिक भावोंके कल्पनाक्षेत्रमें भी नहीं आ सका है। समाजवादका आन्दोलन अन्ताराष्ट्रिय भाव अवश्य रखता है, परन्तु वह एक दार्शनिक वादमात्र है। व्यवहारमें तो रूस जैसे समाजवादी राष्ट्रमें भी वह अन्ताराष्ट्रियता नहीं है। जर्म्मनी और इटलीने तो इस अन्ताराष्ट्रिय भावको पावोंतले कुचल डाला है, और वर्त्तमान इटली और हबशका समर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। फिर ताली एकही हाथसे नहीं बजती। भारतकी दरिद्रता संसारमें प्रत्यक्ष है। पर किसी चूसनेवाले देशने कोई व्यावहारिक सहानुभूति कभी सपनेमें भी प्रदर्शित की है? फिर औरोंकी ओरसे हमारे लिये "वसुधैव कुटुम्बकम्" के भावको अपनानेका उदार प्रस्ताव केवल फुसलानेका साधन नहीं तो क्या है? यह एक ऊँचे आदर्शका सरासर दुरुपयोग है"।

खेल तमाशेमें किफायत

"विदेशी खेलमें लड़के आजकल बहुत खर्च करते हैं। क्रिकेट, फुटबाल, हाकी, टेनिस, बैडमिंटन, वालीबाल आदि खेले बिना खाना नहीं पचता और इनमें इतना खर्च कि मातापिता लुटे जा रहे हैं।"

"विदेशी विधिकी शिक्षामें खर्च-ही-खर्च इसीलिये है कि उस विधिका लक्ष्य यही रहता है कि रोजगार खूब चले। शिक्षाकी बदौलत कागजका, छापेका, किताबोंका, खेलकी सामग्रीका सभी तरहका रोजगार चलता है जिसमें विदेशी वस्तुएँ अत्यधिक बिकती हैं।"

"कठिनाई यह है कि दौड़ धूपवाले स्वदेशी खेल लोग भूल गये हैं।"

"परन्तु उनके फिरसे चलानेमें क्या देर लगती है? फुटबालके बदले कबड्डी, क्रिकेटके बदले गेंदबल्ला, हाकीके बदले गुल्ली-डन्डा, आदि अनेक खेल हैं। इन देशी खेलोंमें खर्च कुछ नहीं और व्यायाम उतना ही है। डंबेल और डेवलपर खरीदकर पैसे बरबाद करनेके बदले बिना किसी यंत्रके भांति-भांतिके व्यायाम हैं। दंड, बैठक, मुगदर, मल्लखंभ आदिमें विदेशी वस्तुओंकी अपेक्षा कम ही खर्च है।"

"इतनी कुशल है कि इन उड़ाऊ खेलोंका प्रचार शहरमें ही है। देहातवाले तो इन खेलोंके बिना ही अच्छे रहते हैं।"

"देहातवाले तो कबड्डी आदि खेल नहीं भूले हैं। परन्तु उन्हें खेलके बदले खेतीबारीका काम ही ऐसा रहता है कि खूब व्यायाम हो जाता है। दंड बैठकमें कुछ विशेष लाभकारी काम नहीं होता, परन्तु खेती और बागबानीमें, कुएं तालाब खोदनेमें, घर बनाने, गलियां सड़क आदि तैयार करनेमें, घर पोतने, कुएँसे पानी निकालकर धोनेमें, झाड़ू देने और सफाई करनेमें, आटा पीसने, धान कूटने,

---

अभी कलकी ही बात है कि स्वयं स्वर्गीय सम्राट् पंचम जार्ज खद्दर-चद्दरधारी हमारे हृदयसम्राट् महात्मा गांधीसे मिले। जो स्वदेशीका व्रत पालन करनेमें दृढ़ हैं और अपने स्वदेशी रूपका आदर और अभिमान नहीं छोड़ते, भगवान् उनकी प्रतिष्ठा रखते हैं।"

"जब बीसवीं सदीका अप-टु-डेट फैशन ही आपने नहीं रखा तब तो छड़ी, ऐनक, फौंटेनपेन, कलाईकी घड़ी, नकली दांत, नकली आंख वगैरह सभी चीजें फजूल हो गयीं।"

"बेशक। छड़ी लाठी आदि तो आवश्यकतापर निर्भर हैं। परन्तु कलाईकी घड़ी, नकली दांत, नकली आंख आदि तो निरी निरर्थक वस्तुएं हैं। ऐनक तो मोतियाबिन्दवाला लगावे तो ठीक है, नहीं तो थोड़ीसी शिकायतके लिये ऐनकोंपर पैसे फेंकना मूर्खता है। बटनकी जगह-कपड़ेकी घुण्डी या बन्द ज्यादा किफायतकी चीज है। कीमती बूटोंकी जरूरत क्या है? नंगे पाँव रहनेमें या सस्ती चट्टियां चप्पल आदिमें ज्यादा आराम होता है, पैसे बचते हैं।

"परन्तु जाड़ोंमें तो चद्दरसे काम नहीं चलेगा।"

"क्यों न चलेगा। चादर तो तब भी कामकी चीज होगी। कम्मल, दोहर, दुलाई, रजाई भी तो चद्दरके ही रूपान्तर हैं। हां, कोटपतलूनकी जगह बंडी, पाजामा और मोजेतक खद्दरके पहन सकते हैं। बालाक्लावासे कंटोप लाख दरजे अच्छा है। स्वेटरमें जितने पैसे लगते हैं उससे कममें बंडी बनती है।"

"छाते तो विदेशी ही बनते हैं।"

"बेशक! छतरी बिना तो काम चल सकता है। मोटा तौलिया या अंगौछा भिगोकर निचोड़ लो और सिरपर उसे रख लो तो जेठ बैसाखकी कड़ी धूप और झुलसानेवाली लूमें छतरीसे अधिक आराम मिलेगा। हमारे देशके पुरुष लोग बहुत सह सकते हैं सो तो छतरी लगाते हैं, परन्तु देखो कि स्त्रियां छतरी बहुत कम लगाती हैं यद्यपि जमदग्निजीने जूते और छतरीका आविष्कार अपनी स्त्री रेणुकाके लिये किया था। अब हम लोग ऐसे जनाने हो गये कि बिना जूते छतरीके हमारा काम नहीं चलता।"

दाल दलनेमें, रुई धुननेमें, परिश्रम और व्यायाम भी होता है और काम भी होता है। कोरे दंडबैठकमें कोई उपयोगी काम नहीं होता। इसलिये किफायत इसीमें है कि मेहनतका कोई उपयोगी काम करे। अपने अनमोल समयके जितने ज्यादा दाम मिल सकें उतने ज्यादा दाम लें। क्रिकेट खेलने वाला तो व्यायाम जरूर करता है, परन्तु इस व्यायामसे कुछ और कमाता नहीं, अपने पैसे भी गंवाता है।"

"तो फिर सिनेमा, नाटक आदि जो देखते हैं उन्हें तो व्यायामका लाभ नहीं मिलता।"

"वह तो प्रत्यक्ष ही चारों ओरसे लुटते हैं, धन भी देते हैं चरित्र भी बिगाड़ते हैं, आंखें भी खो बैठते हैं जिनकी कीमत एक एक राजसे भी ज्यादा है। जो लोग इन विदेशी तमाशोंमें अपनेको और देशको बरबाद कर रहे हैं, खासकर आजकल, वह तो निश्चय ही देशद्रोह कर रहे हैं। सिनेमासे तो देशका धन लुटता है, कला नष्ट होती है, चरित्र बरबाद होता है। इसे तो तुरन्त बन्द करना चाहिये।

"सिनेमा भी तो एक बहुत ऊँची कला है। इसका विकास हालमें ही हुआ है। यदि शुद्ध स्वदेशी चित्र हों, भारतमें ही तैयार हुए हों, यहींकी पूंजी हो, यहींका परिश्रम हो, तो सिनेमाको प्रोत्साहन देनेमें क्या बुराई है ?"

"सिनेमाकी पैदाइश तो कलकी है। परन्तु यह पूँजी पतियोंका उद्योग-धंधा है। बड़े पैमानेपर होनेवाला काम है, व्यक्तिगत नहीं है। यदि स्वदेशी सिनेमा स्वदेशी-मिलोंके कपड़ोंकी तरहकी कला है, तो व्यक्तियोंका नाचना, गाना, बजाना, अभिनय खद्दरकी तरह है जो दरिद्र व्यक्तियोंका पोषक है। इसलिये स्वदेशी सिनेमासे भी लाख दरजे बेहतर गवैयों, नाचनेवालों, बजानेवालों और नटादिकोंको प्रोत्साहन देनेमें ही कलाकी सच्ची उन्नति है। और नाचना, गाना-बजाना, अभिनय आदि तो भारतीय प्राचीन कलाएँ हैं। कलाओंको अवश्य प्रोत्साहन मिलना चाहिये। यह बिलकुल ठीक बात है। देश तो भूखों मर रहा है और हम हैं कि इन कलाओंके प्रोत्साहनपर मर रहे हैं। भूखे भजन न होइ गोपाला। रोममें आग लगी हो और नीरो चैनकी बंशी बजाये, इसमें क्या संगति है ? इस समय यह काम करना है जिसमें भारतीय जीते रहें, जब भारत जीता जागता रहेगा तो अपनी मरी कलाओंको फिर जिला लेगा। गाना बजाना नाचना अभिनय समुन्नत करनेमें देर न लगेगी। हम पहले मनुष्य तो हो लें, जीते तो रहें, फिर तो मनुष्यता और जीवनकी सामग्री इकट्ठी कर लेंगे। मेले तमाशे बाजार सब कुछ जमा लेंगे।"

"आपने सीनेमा और रेडियोके सदुपयोगपर शायद ध्यान नहीं दिया है। देखिये, आजकल हम चाहें तो शिक्षाका उत्तमोत्तम काम किफायतसे सीनेमा द्वारा ले सकते हैं। जैसे रसायनशास्त्र पढ़ाना है, तो सारे विज्ञानकी डोलती बोलती तस्वीरें बना लीं, प्रोफेसरके व्याख्यान और साथ ही उसके दिखलाये प्रयोग, हम इस रूपमें स्थायी कर सकते हैं। युनिवर्सिटीकी क्या जरूरत है ? सारे संसारकी सैर और देश-देशकी भाषाएँ और वहाँके लोगोंके रहनसहनका प्रत्यक्ष दृश्य और श्रव्य जो हमें सैकड़ों बरस और हज़ारों रुपयेमें नहीं प्राप्त हो सकते मिनटों या घंटोंमें और कुछ ही पैसोंके खर्चमें प्राप्त हो सकते हैं।"

"और रेडियो ?"

"और रेडियोद्वारा हम घर बैठे संसारके बड़ेसे बड़े पुरुषका भाषण सुन सकते हैं और दूर-दर्शन द्वारा घर बैठे दुनियाकी सैर कर सकते हैं।"

"इन चमत्कारोंमें क्या सन्देह है! जितना आपने वर्णन किया उससे कहीं अधिक दूरतक इनकी पहुँच हो सकती है, यह मैं मानता हूँ। परन्तु हमें इन चमत्कारोंकी चकाचौंधमें अपने आपको भूल न जाना चाहिये। युनिवर्सिटीकी जिस तरहकी शिक्षाको सीनेमा सुलभ कर देता है, वह उनके लिये ठीक ही है जो सांस्कृतिक शिक्षा चाहते हैं, परन्तु हमारी विशाल जनताको इतनी ऊँची शिक्षाकी जरूरत नहीं है। हमारी विशाल जनताको जिस तरहकी शिक्षा चाहिये वह कम खर्चमें, बड़ी किफायतसे, पुरानी विधिसे हो सकती है। सिनेमाके विशाल व्ययकी जरूरत नहीं है। इसी तरह रेडियो भी विलास-मात्र है। जो इन साधनोंको काममें लाना चाहते हैं, एक ओर तो उनका उद्देश्य है पैसे कमाना और दूसरी ओर है हमारी आवश्यकताओंका नितान्त अज्ञान। जिनको एक जून भी भर पेट अन्न नहीं मिलता, जो खरपात फैलाकर अपने हाथके सहारे सिर रखकर धरतीपर सोते हैं, हाथमें लेकर नमक

खद्दरमें किफायत

"खद्दर तो स्वदेशी मिलोंके कपड़ोंके मुकाबले महँगा भी पड़ता है और मोटा भी। पर देखता हूँ कि स्वदेशीके बदले आप लोग खद्दरका ही प्रचार करते हैं। स्वदेशी और खद्दर दोनोंसे जब देशमें ही पैसा रहता है तो खद्दरपर इतनी ममता क्यों दिखायी जाती है ?"

"मिलका मुनाफा अधिकांश अमीर मिल-मालिकोंको मिलता है जो मोटरकार, सिनेमा, एव सैकड़ों विलासकी विदेशी सामग्रीमें अपना धन बर्बाद करते हैं और पानीकी तरह विदेशोंकी ओर बहा देते हैं। मिल-मजूरोंको बहुत थोड़ा अंश मिलता है। खद्दरका मुनाफा और मजूरी दोनों देशके गरीबोंमें थोड़ा-थोड़ा करके बँट जाते हैं। किसान, ओटनेवालियाँ, कत्तिनें, धुनिये, बुनकर, रंगरेज, धोबी, छीपी, बेचनेवाले सभी अपने देशके दरिद्र लोग हैं। खद्दरकी एक एक पाई इन्हींमें बँट जाती है। यह लोग भूखों मरते हैं। इनकी कमाईका जो हिस्सा विदेश जाता है वह अमीरोंके मुकाबले बहुत ही कम है। इसलिये महँगा खद्दर लेकर हम सैकड़ों भुक्खड़ भाइयोंकी मदद करते हैं। सस्ता स्वदेशी लेकर हम अमीरोंको विलायती विलास खरिदवानेमें मदद देते हैं।"

"तब तो निस्सन्देह हमें खद्दर ही खरीदना चाहिये और ज्यादासे ज्यादा खरीदें तो अपने दरिद्र भाइयोंकी ज्यादासे ज्यादा मदद करेंगे।"

"यह तो सही है, पर अभी खद्दर काफी नहीं बनता। खद्दरके पहननेमें भी किफायत बरतनेकी जरूरत है।"

"खद्दर पहननेमें क्या किफायत बरती जा सकती है ?"

"खद्दरकी धोतियाँ भी लोग पाँच-पाँच गजकी और ४४ इंच पनहेकी लेते हैं। यह पनहा ज्यादा होता है और धोती बहुत भारी हो जाती है। साधारणतया ४० इंचका पनहा स्त्रियोंके लिये भी काफी होता है। स्त्रियोंके लिये पाँच गज ठीक है, परंतु पुरुषोंके लिये तो साढ़े तीन गज ही काफी हैं। उनके लिये ३६ इंचका पनहा बहुत है। साथ ही धोतियोंकी गफ बिनावट व्यर्थ है।"

"अच्छा, तो आप सबको लंगोटीबन्द महात्मा बनानेकी फिक्रमें हैं ?"

"जी नहीं, यह अच्छी खासी धोतियोंके नुसखे हैं। महात्माजीकी लुंगी घुटनेसे ऊपर रहती है।"

"परंतु बाजारमें ४० इंच पनहेकी धोतियाँ नहीं मिलतीं।"

"आप इसी पनहेकी मांगें और दूसरी न लें तो ४० इंचवाली भी बनने लगेगी।"

"परंतु खद्दर काफी नहीं बनता, यह भी तो कारण हो सकता है।"

"इस रुकावटको दूर करना हर खद्दर पहिरनेवालेका काम है। जो खद्दर पहने वह सूत काते। एक तोला नित्य नियमसे कातनेवाला अपने लिये खद्दर तैयार कर रहा है। आदमी पीछे एक तोला सूत पूरे छः महीने कातना चाहिये। फुरसत मिले तो ज्यादा कातिये और दूसरोंको लाभ पहुँचाइये। जिन किसानोंको महीनों बेकार रहना पड़ता है वह बेकारीके सारे समयमें सूत कातें तो उनकी दरिद्रता दूर

रोटी खाते हैं, जिनके तनपर लज्जा ढकनेको मुश्किलसे एक फटी लँगोटी है, जिनके छप्परमें इतने छेद हैं कि झोंपड़ीमें हवा धूप और पानीसे बचाव नहीं हो सकता, उनसे आप विटामिनोंका, आहारकी मात्राका भोजनके ठीक तरहसे पकाने और खानेकी विधिका, मसहरीके ठीक इस्तेमालका, घरके हवादार होनेका, कपड़ोंको धोते और बदलते रहनेका, सिनेमामें वर्णन करेंगे या रेडियो द्वारा बम्बईके सुन्दर गाने-बजाने सुनावेंगे तो उन गरीबोंको आपकी बुद्धिपर अवश्य ही दया आवेगी और वह आपको अपना कितना बड़ा हितैषी समझेंगे, यह आप ही सोच लें। यह सब तो उन्हें जलेपर नमक छिड़कनेके बराबर होगा। भाई, बन पड़े तो इन व्यर्थके ढकोसलोंके बदले उन्हें दो मुट्ठी अन्न दो। सीनेमा और रेडियोसे विदेशोंकी जेबें आप अवश्य भरेंगे। देखिये, इसमें देशके पैसोंकी कितनी बड़ी हानि है। इससे तो भरसक हमें बचे रहना चाहिये।"

हो जाय। आठ घंटे सूत कातनेवाला १२ नम्बरका आध-पाव सूत रोज काते तो दो आने रोज उसकी मजूरी हुई। तीन महीने ऐसा करे तो वह १२) कमा लेता है। परन्तु थोड़ी बहुत फुरसत तो नित्य मिलती है। जितने घंटे रोज कातेगा उतने पैसे रोज कमायगा। उसकी औसत आमदनी दो घंटे रोजकी कताईसे चौथाई बढ़ जायगी और खद्दरकी उपज बढ़नेसे सारे देशमें गरीबोंमें धन बट जायगा और इस धनकी बँटाईका खर्च कुछ न होगा।"

"धनकी बँटाईका क्या सवाल है?"

"मान लीजिये कि सब मिलके मालिक निश्चय कर लें कि हम मिलोंसे मिले धनको देशमें बराबर बाँट दें तो किसान पीछे अगर दो दो पैसे बाँटने हों तो बँटाईका खर्च बहुत लग जायगा। संभव है कि उन्हें आधा भी मुश्किलसे मिले। परन्तु खद्दर गाँव-गाँवमें तैयार हो सकता है और उसके पैसे हर किसानको सहजमें ठीक हिस्सेवार अपने आप बँट जाते हैं।"

"ठीक है। और मिलवाले देशको अपनी कमाई बांटने ही क्यों लगे, यद्यपि न्यायकी बात तो यही है कि देशका धन बराबर-बराबर बँटे जिसमें सैकड़ोंके भूखों मरने और एकके सम्पत्तिके अजीर्ण होनेकी विषमता मिट जाय और भाई-भाईमें अधिकसे अधिक पंजेके अँगुलियोंकी ही बड़ाई छोटाई रहे।"

"यह आप बहुत ठीक समझे। सचमुच खद्दर ही एक उपाय है जिससे दो भारी लाभ हैं, एक तो यह कि देशकी उपजी सम्पत्ति देशवालोंमें ही समान रूपसे बँट जाती है, दूसरे यह कि विदेशी लूटसे बिना किसी अधिक खर्चके अपनी रक्षा हो जाती है।"

"बिना खर्चके तो अभी रक्षा नहीं होती, क्योंकि आप ही कहते हैं कि महँगा खद्दर ही खरीदो जिसमें दरिद्र भाइयोंको लाभ पहुँचे। इस तरह खर्च तो बहुत होता है।"

"इस बातको जरा गौरसे समझिये। हमसे और कपड़े बनानेवाले सभी विदेशोंसे आर्थिक लड़ाई चल रही है। वह कपड़ेद्वारा हमारे पैसे लूटते हैं और हम पैसोंके बचानेमें लगे हैं। अपनी रक्षाके लिये किला, तोप, गोली, बारूद, फौज, हथियार आदिपर खर्च करके विदेशी चढ़ाईका जब मुकाबला करते हैं तब यह नहीं देखते कि हम कितना धन इस काममें फूँक रहे हैं। हमारी आर्थिक लड़ाईमें हमारा गोली बारूद फौज हथियार तोप किला सब कुछ चरखा और खद्दर है। खद्दरपर हम जो कुछ खर्च करते हैं वह धन तो हम फूँकते नहीं हैं, भाइयोंमें बाँटते हैं। परन्तु जो यह समझे कि हम फूँकते हैं उसे भी उचित है कि इस फूँकनेका भी कोई हिसाब न करे।"

"यह तो ठीक है, पर आप जो दस रुपया घंटा कमाने-वालेको भी चरखा कातनेको कहते हैं यह बात समझमें नहीं आती।"

"इसीलिये समझमें नहीं आती कि देशकी वास्तविक स्थिति आप आँखें खोलकर नहीं देखते। अब फिर वही लड़ाईवाला उदाहरण लीजिये। लड़ाईमें यह नहीं देखा जाता कि किसकी जान कितनी प्यारी है, कौन कितना कमा सकता है, बड़े छोटे गनी गरीब सभी फौजमें भरती हो जाते हैं और देशकी रक्षाके लिये एक करोड़पती भी एक अदने सिपाहीकी तरह बन्दूक लेकर निकल पड़ता है। इसी निगाहसे देखिये तो चरखा चलाना भी इस समय सबका धर्म्म है। जब हम विदेशी कपड़ोंको देशसे निकाल बाहर कर चुकेंगे तब हमारे पहननेको कातनेवाले तो करोड़ों बेकार भुक्खड़ हैं जिन्हें चरखेसे रोटी कपड़ा दोनों मिलेगा। उस समय अगर हम केवल अपना ही काता पहनेंगे तो उनके साथ अन्याय होगा, तब तो हमें उनका ही काता पहनना पड़ेगा। पर अभी तो नर-नारी बूढ़े-जवान-बच्चे सभी भेद-भाव छोड़ कातें और खूब कातें, इसीमें हमारी विजय है।"

"नव सिखुए कातेंगे रस्से। वह किस काम आयेंगे?"

"वह? दरियाँ बनेंगी? कालीनें बनेंगी। तौलिये, दुसूती, बिछौने, चादर, सभी कामकी चीजें होंगी। फिर सदा नौसिखुए क्यों रहेंगे? दस बरस पहलेके खद्दरसे अब मिलान कीजिये। आकाश पातालका अन्तर हो गया है।"

"आपने लड़ाईका अच्छा उदाहरण दिया। सचमुच खद्दर ही हमारा भारी हथियार है।"

"हरबे हथियारकी लड़ाई और खद्दरकी लड़ाईमें एक और भारी भेद है और खद्दरकी लड़ाईमें ज्यादा किफायत है, इसपर भी आपने ध्यान दिया?"

"नहीं। वह क्या?"

शिक्षाकी विकट समस्याएँ

सुलझानेके कुछ उपाय

१. शिक्षामें स्वदेशी

"हम सब बातोंमें स्वदेशीका व्रत पालन कर सकते हैं, परन्तु शिक्षामें नहीं, क्योंकि विद्या तो जहाँसे मिले वहींसे लेना उचित है। प्राचीन कालमें भी हमारे देशके लोग विद्याके लेनदेनमें झिझक नहीं रखते थे। ज्योतिषमें यवन सिद्धान्त ताजक आदि इसके प्रमाण हैं।"

"यह तो बहुत ठीक है। विद्या, कला, गुण जहाँसे मिले, रत्न समझकर संग्रह उचित है। आपने ज्योतिषका अच्छा उदाहरण दिया। "जामित्र", "मुद्दा दशा" आदि शब्द जो आज संस्कृत रूपमें दीखते हैं, असलमें विदेशी हैं, इन्हें स्वदेशी रूप दे दिया गया है। पहले भी हमारे देशके विद्वान् विदेशी विद्याओं और कलाओंका परिशीलन करते थे। परन्तु वह न तो अपनी भाषा बदलते थे न भेष। वह सीखी हुई बातोंको अपनी भाषामें व्यक्त करते थे और उसे स्वदेशी रूप दे देते थे। दो और दो मिलकर चार होते हैं, हिन्दीमें भी, अंग्रेजीमें भी और चीनी जापानीमें भी। फिर दो और दो चार जोड़नेके लिये अंग्रेजीकी कोई जरूरत नहीं। किसी विद्याके सीखनेके लिये अंग्रेजीकी आवश्यकता क्यों पड़ने लगी? परन्तु शिक्षामें भी विदेशीपन ऐसा घुस गया कि संस्कृतकी उत्तम शिक्षा पानेको काशीसे लोग विलायत जाने लगे और अरबी पढ़नेको यूरोपियन प्रोफेसर बुलाया जाने लगा। परन्तु यह तो भारी ढकोसला है। खिचड़ी पकानेको मिट्टीकी हाँडी, काँसेका बटुआ और सोनेकी पतीली सभी बराबर हैं, परन्तु कोई कहे कि पहले सोनेकी पतीली लाओ तब हम खिचड़ी पकाना सिखावें तो निश्चय ही वह सिखाना नहीं चाहता। विद्या या कला विदेशी भी हो तो भी उसे सीखनेको विदेशी भाषा या भेषकी जरूरत नहीं है।"

"क्या विदेशी विद्वान यहाँसे अच्छी संस्कृत जानते हैं?"

"यहाँका कोई मुकाबला नहीं है। विदेशी विद्वानोंकी लगन और मेहनतको हम सराहते हैं परन्तु माँके दूधकी बराबरी किसी औरका दूध नहीं कर सकता। हमारे देशकी हमारी विद्या माँका दूध है। हमें विदेशी विद्या सीखनेको विदेश जाना पड़े तो और बात है।"

"परन्तु विदेशके पढ़े-सीखे अनेक लड़के आये, कारखाने खोले कोशिशें कीं पर कारखाने चले नहीं, यह क्या बात है?

"इसका भेद यह है कि कोई कला सीखने विदेश जाओ, विदेशी व्यवसायी अपना असल गुर कभी नहीं बताता। सिखाना तो दूर रहा, विदेशीको वह अपने कारखानेमें घुसने भी नहीं देता। यहाँ भारतमें ही जो विदेशी गुणी रखे जाते हैं वे ही क्या अपना हुनर किसीको जल्दी सिखाते हैं। इसीलिये जो बाहर सीखने जाता है अपनी कलामें कुशल होकर नहीं आता। और कुशल होकर यहाँ आया भी तो विदेशी व्यवसायियोंको जो सुभीते यहाँ मिलते हैं, स्वदेशीको कहाँ मिलते हैं? इसीलिये स्वदेशी कारखाने नफेके साथ चल नहीं सकते।"

"यह तो आपने ऊँची अथवा व्यावसायिक शिक्षाकी बातें कहीं। स्कूलोंमें भी तो अंग्रेजीके बिना काम नहीं चलता"—

"—यद्यपि स्कूलोंमें पढ़ाये जानेवाले किसी विषयके लिये अंग्रेजीका ज्ञान आवश्यक नहीं है। नियम भी आजकल ऐसा है कि अपनी मातृभाषामें कई पर्चोंके लिये शिक्षा दी जा सकती है और पर्चोंके उत्तर भी दिये जा सकते हैं। परन्तु अपालनमें ही ये नियम प्रतिष्ठित हैं। यह

"वह यह है कि जब लड़ाई नहीं होती तब हथियार-बन्द सिपाही मक्खियाँ मारते रहते हैं पर खद्दरकी आर्थिक लड़ाईवाले सिपाही तो निरन्तर सूत कातते रहते हैं। उनका एक क्षण भी बेकार नहीं जाता। इसलिये सिपाही भी बने तो आर्थिक लड़ाईका खद्दरी सिपाही।"

कितने कुतूहलकी बात है कि फिर भी हमारे ही शिक्षालयोंमें हिन्दी और संस्कृतके परचेतक अंग्रेजीमें आते हैं, मानों अंग्रेजी मातृभाषा है और हिन्दी और संस्कृत पराची भाषा! परीक्षक और परीक्षार्थी दोनोंकी मति मारी गयी है।"

"यह तो मूर्खताकी हद है, परन्तु किसीको सूझती नहीं।"

"न सूझनेका कारण है कई पीढ़ियोंसे अंग्रेजीकी दासता। होना तो यह चाहिये कि अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी साहित्यके परचे हिन्दीमें या और प्रान्तीय भाषाओंमें आया करें।"

"है तो यही स्वाभाविक और सीधी बात, परन्तु यह उलटी बात इतनी मुद्दतसे चली आ रही है कि स्वाभाविक और सीधी बात उलटी सी लगती है।"

"लड़के पढ़कर तैयार होते हैं, तो नौकरी भी तो नहीं मिलती।"

"ठीक है। फिर उस शिक्षामें पैसे क्यों बरबाद करो, जिसमें दीन-दुनियाँ दोनोंमेंसे एक भी न सधे?"

"करें क्या? बच्चोंको पढ़ाना जरूरी है और शिक्षाकी और कोई सस्ती विधि नहीं है?"

"सस्ती विधि क्यों नहीं? अपने बच्चोंको आप खुद पढ़ाइये और वही चीजें पढ़ाइये जिनकी सचमुच जरूरत है और जिनसे वह अपनी और दूसरोंकी भी सेवा कर सकें और जीविका भी कमा सकें?"

"मैं पढ़ाऊँगा तो नौकरी कैसे मिलेगी? स्कूलमें पढ़ेगा तो सनद मिलेगी जिसे देखकर अफसर नौकरी देंगे।"

"यह भारी भूल है। स्कूलके सभी पढ़नेवालोंको नौकरियाँ कहाँ मिलती हैं? और नौकरी भी सनदके बलपर कहाँ मिलती है? भारत तो किसानोंका देश है। यहाँ सार्वजनिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि अच्छेसे अच्छा किसान तैयार हो जो माल उपजाना और कपड़े तैयार करना सबसे अच्छा जानता है। इन दो कामोंके सिवा और भी पेशे और रोजगार हैं। पढ़ना लिखना और हिसाब थोड़ा-थोड़ा जान लेनेसे सभी रोजगारों और पेशोंमें मदद मिलती है। परन्तु पढ़ने-लिखनेके कामकी ही नौकरी सभी करना चाहें तो कैसे मिल सकती है!"

"तब तो शिक्षाका ढंग बदलना चाहिये।"

"बेशक! शिक्षाका ढंग अभी तो अलबेला है। कारण यह है कि उसका सूत्र ऐसोंके हाथमें है जो देशकी वास्तविक आवश्यकताओंपर ध्यान नहीं देते। जब वह ध्यान नहीं देते तब हम तो ध्यान दें। हमें चाहिये कि हम बच्चोंकी शिक्षाको पूरा स्वदेशी बना दें!"

२. शिक्षामें किफायत

"आपकी यह राय बड़ी अच्छी है कि लड़कोंको वह व्यवसाय या कारबार सिखाना चाहिये जिससे स्वतन्त्र रूपसे जीविका चला सकें और मामूली लिखना-पढ़ना-हिसाब तो सबको जानना चाहिये। परन्तु इस तरहकी शिक्षा तो कहीं मिलनेका बन्दोबस्त नहीं है, कोई चाहे तो उपाय क्या करे?"

"उपाय भी हमारे ही हाथोंमें है। हम लोगोंको शिक्षाकी विधि बदलनी पड़ेगी। कमसे-कम-खर्चमें अधिकसे-अधिक बन्दोबस्त करना पड़ेगा। थोड़ा-बहुत ऐसा बन्दोबस्त है भी।"

"कहाँ है? मैं तो कहीं नहीं देखता।"

"जो है वह इस प्रकार है। सुनिये। सोनार, लोहार, कुम्हार, बढ़ई, धोबी, कसेरा, ठठेरा, कोइरी, जुलाहा, नाई, छीपी, रंगरेज, धुनियाँ, हलवाई, किसान, राज-मजूर सभी पेशेवाले अपने बच्चोंको अपना-अपना पेशा और काम सिखाते हैं। कोई-कोई लिखना पढ़ना भी थोड़ा-थोड़ा सिखा देते हैं। यह सभी बिना पढ़े लिखे भी अपना काम चला लेते हैं। अनेक तो बड़े कुशल कारीगर भी निकल आते हैं। यह बन्दोबस्त हर एकका निजी है। किसी सरकारने इनकी शिक्षाका बन्दोबस्त नहीं किया है। बोर्डोंकी मिडिलवाली शिक्षा इन पेशोंके विरुद्ध है। उससे पेशेवाले अपने काम भूलकर नकली बाबू बनकर दर-दर मारे-मारे फिरते हैं, 'नावकरी' (बेइज्जती) खोजते रहते हैं, और उसी दरिद्रतामें अपनी इज्जत समझते हैं। आजकलके ढंगकी स्कूली पढ़ाई लोअर-प्राइमरीतक ही जीवनके कारबारके लिये काफी है।"

"परन्तु लोअर-प्राइमरीकी ही पढ़ाई सबको कहाँ सुलभ है? हर किसान अपने लड़कोंको पढ़ाना चाहता है, पर साधन कहाँ है?"

"जितनी थोड़ी पढ़ाई दरकार है उतनेके लिये बन्दोबस्त करना मुश्किल नहीं है। कालिजोंमें पढ़नेवालोंको तीन मासकी और स्कूलोंमें पढ़नेवालोंको दो मासकी लम्बी छुट्टी गरमियोंमें मिलती ही है। यह अनमोल समय बेकार न खोकर लोअर प्राइमरीभरकी शिक्षा हर किसानको पढ़नेवाले लड़के दे सकते हैं। लड़के इस धर्म्मके कामपर कमर बाँध लें तो यह काम मुश्किल नहीं है। इस छुट्टीकी पढ़ाईमें अवस्थापर ध्यान न देकर सबको शिक्षा दी जाय। अगर साथ-ही-साथ धुनाई-कताईकी शिक्षा भी दी जाय तो इससे बढ़कर सुलभ और किफायतका कोई उपाय ही नहीं है।"

"मगर किताबें, पटिया, स्लेट, पेंसिलें, कलम, कागज, रुई, धुनकी, चरखा आदि सामान बिना धनके कहाँसे आवेगा ?"

"इन चीजोंका थोड़ा बहुत बन्दोबस्त तो पढ़नेवाले ही कर लेंगे और शायद गाँववाले पढ़ानेवालोंको रूखासूखा अन्न भी दे सकें। परंतु जो लोग गाँववालोंका उपकार करनेके लिये जायँ उन्हें तो आपही सस्तेसे-सस्ता उपाय कर देना चाहिये। पटिया, स्लेट, पेंसिल, कागज आदिकी जगह समतल धरतीपर धूल या राख फैलाकर अंगुलियोंसे लिखनेका काम लिया जा सकता है। सरकंडेका या नरकटका कलम और नागफनीकी फलीकी लाल रोशनाईकी दवात और पत्तोंका कागज, और खपरेको घिसकर बांसकी खपच्चीसे बनायी हुई तकली, बाँसकी फलठीकी मूंजसे बांधी हुई धुनकी (जो आज भी काममें आती है), इनके पैसे नहीं लगते। फिर असली शिक्षा तो पढ़ने-लिखनेपर निर्भर नहीं है। वह तो जबानी भी हो सकती है। हिसाबमें सबसे उत्तम तो वही है जो जबानी सीखा और किया जाता है। बजाज या बनियेका लड़का दर समझकर जो दाम तुरन्त बता देता है, पढ़ेलिखे उसके लिये पेंसिल कागज ढूँढते हैं।"

"परन्तु स्कूल और कालेजके लड़के तो आप इन विधियोंको नहीं जानते। वह सिखावेंगे क्या ?"

"यह सच है। परन्तु काम कामको सिखाता है। वह अगर इस देशोपकारपर तुलकर निकल पड़ेंगे तो उन्हे सीखते देर न लगेगी।"

"आपने देहातोंके लिये यह नुसखा तजवीज किया है। परन्तु शहरवाले क्या करें ?"

"शहरवालोंके लिये तो और भी सहज है, क्योंकि जो लड़के स्कूलों और कालेजोंमें शहरमें ही पढ़ते हैं, उन्हें किसी छुट्टीकी तलाश नहीं है। वह तो शहरमें नित्य किसी समय पढ़ानेका बन्दोबस्त कर सकते हैं। परन्तु यह याद रहे कि शहरके अमीरोंके लिये नहीं, केवल गरीबोंके लिये यह उपाय होने चाहिये।"

"ठीक है। अमीर लड़कोंके लिये तो पढ़ानेवाले होते ही हैं। गरीब लड़कोंको पढ़ाना पुण्यका काम होगा। मुफ्तका यह पुण्य-कार्य्य वे ही लड़के कर सकेंगे जिनके पास खानेको है। परन्तु जब वह पढ़ाने लगेंगे तो उनके स्वयं पढ़नेका समय खर्च होगा।"

"पढ़ानेका काम अनेक लड़कोंके लिये बड़ा उपयोगी होगा। वह पढ़ाना सीखेंगे, अपना भूला-चूका दोहरावेंगे। दूसरोंको पढ़ानेसे अपनी बुद्धिका विकास होता है और भूले पाठ याद हो जाते हैं। यह लाभ पढ़ानेवाले लड़कोंको सहजमें मिलेगा। पढ़नेका समय जो इस काममें खर्च होगा उससे उन्हें काफी लाभ होगा।"

३. शिक्षा किस तरह दी जाय ?

"पढ़े-लिखोंकी बेकारी आजकल इतनी बढ़ी हुई है कि लोग सोच रहे हैं कि पढ़ा-लिखाकर क्या करें ? सरकारने महामाननीय सर तेजबहादुर सप्रूकी अध्यक्षतामें एक बेकारी समिति बनायी। उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है। उसके अनुसार कार्य्य हो तो बेकारी बहुत कुछ घट जाय।"

"इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षितोंकी बेकारी घटानेकी विधियाँ समीचीन हैं, और संयुक्तप्रान्तकी सरकार उसपर अमलकरे तो शिक्षितोंका बड़ा लाभ हो सकता है। अनिवार्य्य प्रारंभिक शिक्षासे तो किसानोंको भी लाभ हो सकता है। परन्तु हमें क्या इस इंतजारीमें रहना चाहिये कि सरकार सुधार करे तो हम सुधरें ? कोई चम्मचसे हमारे गले उतारनेको तैयार हो तभी हम सुधारकी दवा पियें ! यह तो अच्छी दशाके लक्षण नहीं हैं।

"तो क्या हम भी कुछ कर सकते हैं ?"

"क्यों नहीं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम स्वयं अपने पाँवों खड़े हों। देखिये, लोहार, बढ़ई, धोबी, कुम्हार,

संस्कारोंमें भारी खर्च और ऋणका भारी बोझा

संस्कारोंमें किफायत

"बच्चोंके जन्ममें, मुंडन कनछेदनमें, जनेऊमें, व्याह बरातमें, खुशी मनानेके लिये रुपया पानीकी तरह बहाया जाता है। तीज त्योहारपर भी लोग खुले हाथों खरच करते हैं। और तो और मरनेपर भी बड़े खर्चसे ज्योनार किया जाता है। यह ऐसे अवसर हैं जिनपर आदमी लुट जाता है। क्या इससे बचनेका भी कोई उपाय है?"

"इन अवसरोंपर खर्चके सम्बन्धमें ऐसा कुछ भ्रम फैला हुआ है कि लोग कर्ज लेकर खर्च करते हैं। आप लुटते हैं और भावी संतानके लिये भी दरिद्रताका बीमा कर जाते हैं। है यह समझका फेर। जन्म, मुंडन, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, विवाह और प्रेतकर्म सभी संस्कार हैं। इनका विहित रीतिसे होना जरूरी है। परन्तु विहित रीतिमें उतना खर्च नहीं है जितना लोग ऊपरी दिखावोंके काममें करते हैं। विहित रीतिमें भी शास्त्रोंने जगह-जगह धनहीन अवस्थाके लिये गुंजाइश रखी है। कहीं-कहीं दरिद्रके लिये संस्कारका काल हटाना भी विहित है। फिर व्यर्थके लेन-देन और ज्योनारोंमें धन फूंकना कहीं भी विहित नहीं है। दूसरोंको दिखाने और प्रसन्न करनेको और अपनी बड़ाई करानेको लोग ऐसा करते हैं। परन्तु यह विचार व्यर्थ है। जहाँ देश विपत्तिके सागरमें डूबा हुआ है वहाँ किसीका धन उड़ाने या उड़वानेका उद्योग करना भारी देशद्रोह है। कोई ऐसा करे तो समाजको चाहिये कि उसे रोके। जहाँ—

सोनार, थवई आदिके लिये कहाँ मदरसे खुले हैं। बढ़ई पढ़ा लिखा नहीं भी होता तो भी कितनी बारीकीसे कामकी नाप जोख करता है। बात यह है कि सब अपने खान्दानी पेशेको बिना समाज या सरकारकी मददके सीख लेते हैं। यह सच है कि बहुतसी कलाएँ, बहुतसे पेशे, विविध प्रकारकी होड़ोंके कारण दब गये, मर गये, या मरणासन्न हैं। उन्हें उभारने या फिरसे जगानेके लिये सामूहिक प्रयत्नकी आवश्यकता है। परन्तु जो काम हम अभी व्यक्तिगत प्रयत्नसे कर सकते हैं उनमें क्यों चूकें। जैसे, सूत-कातना किसी जातिका पेशा न था। चारों वर्णके नरनारी बच्चे बूढ़े सूत कातते थे। परन्तु आज इस कलाका लोप हो गया है। हम इसको सब मिलकर फिरसे जिला सकते हैं। अकेले इस कामसे ही बहुत भारी बेकारी दूर कर सकते हैं। चरखा और तकलीका प्रचार बहुत आसानीसे कर सकते हैं।"

"लिखना-पढ़ना-हिसाब थोड़ासा, दो तीन साल तक सीखकर किसानका बेटा खेती और कारीगरका बेटा अपनी खान्दानी कारीगरी सीखे और करे। जब अठारह बीस बरसकी उमरतक अपने काममें दक्ष हो जाय तब चाहे तो अधिक पढ़े लिखे। इस सिद्धान्तसे समाजकी बहुत कुछ कठिनाई दूर हो सकती है।"

"क्या उसे अपरप्राइमरी या मिडिलतक भी पढ़ना अनावश्यक है?"

"मैं तो समझता हूँ कि वह सारी विद्या सर्वसाधारणके लिये अनावश्यक है जिसकी जरूरत उसे अपने जीवन या पेशे या कारबारके लिये नहीं पड़ती।"

"मामूली पढ़ना लिखना तो थोड़े ही समयमें आ सकता है। इसलिये आजकलकी पद्धतिमें तो वृथा ही बहुतसा समय लगाया जाता है।"

"इसमें क्या सन्देह है। बहुत सा समय, बहुतसे पैसे और बहुतसा परिश्रम बेकार जाता है। मैं जो विधि बता रहा हूँ उसीमें ज्यादा किफायत है। किसानका बेटा अपर तक पढ़ते ही खो जाता है, बाबू बननेकी चिन्तामें घुला जाता है, नौकरियोंके पीछे दरदर ठोंकरें खाता है, परन्तु हलकी मूठ थामनेमें अपनी बेइज्जती समझता है। इस तरह धन और जीवन दोनों ही बरबाद होता है और बेटा हाथसे निकल जाता है। इस बरबादीसे बचो। शिक्षा भलेके लिये होनी चाहिये। बरबादीके लिये नहीं।

जहाँ जो कुछ कर्तव्य हो वहाँ यह देखकर खर्च करना चाहिये कि क्या और कितना खर्च किये बिना काम हो ही नहीं सकता। देशपर आठ दस-अरब रुपयोंका कर्ज हो तो जबतक उससे उऋण न हुआ जाय तबतक किसी काममें रुपये पैसे बरबाद करना देशद्रोह है।"

"मगर जो लोग अमीर हैं, वह कब मानते हैं ?"

"यह सब जानते हैं कि झूठ बोलना पाप है परन्तु बहुत कम लोग झूठ बोलनेसे परहेज करते हैं। जो नहीं मानते, वह पाप तो करते ही हैं और उसका कुफल भी भोगते हैं। परन्तु जो मानते हैं वह तो पापसे बचते ही हैं और सचाईका नमूना सबके सामने रखते हैं, सचाईका प्रचार करते हैं। ठीक इसी तरह वह अमीर लोग जो देशद्रोह समझकर ज्योनारोंमें, नाचोंमें, आतशबाजियोंमें, बगीचे लुटानेमें, दान-दहेजमें रुपये नहीं लुटाते बल्कि इसके बदले दरिद्रोंको काम और मजूरी देकर मदद करते हैं, वह सच्चे देशभक्त हैं। वह पापसे, देशद्रोहसे, बचते हैं, और पुण्य कर्म करते हैं। माना कि ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं, पर इनकी देखादेखी और लोग भी सीखेंगे और देशका कल्याण करेंगे। तीज त्योहार, खेल खिलौने, मेले तमाशेमें जो कुछ खर्च करे वह देखकर करे कि (१) क्या बिना इतना खर्च किये काम न चलेगा और (२) क्या इस खर्चका पैसा हमारे देशके दीन दुखिया भाइयोंको मिलेगा ? इन दो प्रश्नोंको हर खर्चके अवसरपर अपनी कसौटी बनावे और जब पहलेका उत्तर "नहीं" और दूसरेका "हाँ" निश्चित रूपसे मिले तभी खर्च करे अन्यथा हाथ रोक ले।"

"आपने कसौटी तो अच्छी बतायी, परन्तु आप तो जानते हैं कि प्रायः सभी जातियोंमें तिलक और दहेजके नामपर बड़ी-बड़ी रकमोंका लेनदेन होता है।"

"अपने देशका यह भारी दुर्भाग्य है। समाजके नेताओंको चाहिये कि इन कुरीतियोंको उठा देनेके लिये आन्दोलन करें, युवकोंपर दबाव डालें, युवकोंसे धरना दिलवावें, एवं रुकावट डालनेके अन्य उपाय करें। इतना सब करनेपर भी कुरीतियाँ सर्वथा उठही जायँ, यह संभव नहीं है। दब जायँगी। लोभी लुटेरे चोरीसे लेंगे और गरजमन्द देनेवाले दिये बिना न रह सकेंगे। देखिये, अमेरिकामें क्या शासन-यंत्र किसी देशकी अपेक्षा दुर्बल है ? परंतु डाकुओंके मारे वहां अमीरोंकी जानके लाले पड़े रहते हैं, और सारा कानून और पुलीस हाथपर हाथधरे रह जाते हैं।"

"अमेरिकाकी तो बात न्यारी है, परन्तु दरिद्र भारतमें समाजके वह लोग जो इस तरहके लोभमें फँसते हैं बहुत समझदार श्रेणीके हैं, उन्हें तो देशकी दशा देखते हुए इन कुरीतियोंसे बचना चाहिये।"

"जरूर। परन्तु आप जिस वसुधैव कुटुम्बकम्‌के भावके फैलनेकी बात कहते हैं, वह होता तो यह कुरीतियां होतीं ? बात यह है कि हममें सामूहिक भावना नहीं आयी है। हम भारतके मानव समाजको ही अपना परिवार समझते, तो भी इस लोभकी प्रवृत्तिसे बच न सकते। क्या आप यह नहीं देखते कि भाई-भाई थोड़ीसी सम्पत्तिके लोभसे एक दूसरेका गला काटते हैं, बाप-बेटेमें सिर-फुटौवल होती रहती है। यह बातें तो स्वाभाविक हैं। इन दोषोंसे सृष्टि कभी मुक्त नहीं हो सकती।

"हमें तो केवल आपद्धर्म समझकर सम्प्रति अधिकसे अधिक आत्मसंयमसे काम लेना चाहिये।

२. करजका बोझ

"बड़े लोग प्रायः वही समझे जाते हैं जिनके पास धन है। धनी होनेका लक्षण है खास मौकोंपर खूब खर्च करके शान दिखाना। और बड़े बननेके लोभसे दरिद्र लोग कर्ज लेकर खर्च करते हैं और अपनी दरिद्रता बढ़ाते हैं। फल यह हुआ कि हमारा देश बीसों अरब रुपयोंके ऋणसे लदा हुआ है। इससे बचनेका भी कोई उपाय है ?"

"सचमुच ऋण तो हमारे देशकी सारी विपत्तियोंका लगभग आधा भाग है। हमारा किसान समुदाय तो ऋण सागरमें चोटीतक डूबा हुआ है। हमारे प्रान्तमें हालमें ऋणियोंके उद्धारके लिये कानून बना है कि महाजन जो सूदके नामसे भांति-भांतिसे उनका खून चूसते हैं, उससे बचाव हो और महाजनका मूल धन भी न डूबे, परन्तु जो एक जून भरपेट अन्नतक अपने लिये नहीं जुटा सकता वह ऋणका मूल धन ही कहाँसे अदा करेगा।"

"इतनेपर भी तो वह अधिकाधिक क़रजदार होता जाता है !"

"बस, इस बढ़ते हुए रोगको रोकना तो हमारा आपका मुख्य काम है। समाजको ऐसे कठोर नियम बना देने चाहियें कि किसी विवाहमें पाँच रुपयेसे अधिक खर्च न

साहूकार और करजदार] [सुधाके सौजन्यसे

हो, किसी मुंडन, कर्णवेध आदि संस्कारमें एक रुपयासे अधिक कोई खर्च न करे। गरीब अमीर सबके लिये ये नियम आवश्यक कर दिये जायँ। फिर कोई बड़ा बननेके लिये करज न लेगा। लेनेकी जरूरत भी न पड़ेगी।"

"परन्तु कर्जेका अधिक बोझ तो लगान देने और खेती करनेके खर्चके कारण है।"

"यह भी किसी हदतक सही बात है। इसके लिये अधिक सुभीतेकी बात यही होगी कि लगान और मालगुजारीका लेनदेन अनाज या पैदावारमें हो। फिर तो कर्ज

एक एक मिनिट हमारा अनमोल जीवन है

मिनिटोंकी रक्षा करो, जीवनकी रक्षा हो जायगी

"आप चाहते हैं कि लोग जहाँतक बन पड़े अपना काम आप करलें, परन्तु इतना समय कहाँ मिलता है? एक वकील या डाक्टर या इंजीनियरके मिनिटोंकी कीमत जितनी होती है मजदूर उतनी कमाई सालभरमें भी नहीं करता। इसी तरह और रोजगारियोंका भी हाल है।"

"समय न मिलनेकी शिकायत हर हालतमें दुरुस्त नहीं होती। यह सच है कि बहुतेरे पेशेवालोंके समयकी कीमत बहुत होती है, पर उन्हींके सारे समयका हिसाब लगाइये तो पता चलेगा कि वह भी चौबीसों घंटे कमाई नहीं करते। साधारण नियम है कि आठ घंटे काम करे, आठ घंटे सोवे और बाकी आठ घंटेमें खाना-पीना नहाना-धोना पूजापाठ जी-बहलाना बातचीत गपशप आदि अनेक काम होते हैं। चौबीसों घंटे कोई काम करे तो पागल हो जाय और आराम ही आराम करे तो मर जाय। इसलिये अगर कोई चाहे तो अपनी दिनचर्य्याको खूब निचोड़कर बहुत कुछ समय निकाल ले सकता है।"

"एक बात और भी है। जिन पेशेवालोंके मिनिटोंकी कीमत ज्यादा होती है उनकी गिनती बड़ी नहीं होती। किसान और मजूरोंकी गिनती तो बहुत बड़ी है। भारतकी आबादीमें सौमें अस्सी भागसे अधिक यही हैं, परन्तु इनके समयकी कोई कीमत ही नहीं। इनमेंसे तीन करोड़ तो जीवनकी घड़ियाँ बेकार काटते हैं।"

"परन्तु यही सौमें अस्सी आदमी अपने मिनटोंको कीमती बना सकते हैं।"

"सो कैसे?"

"अपनी बेकारी मिटाकर। हर आदमीको खाना और कपड़ा चाहिये। खाना तो खेतोंमें काफी उपजता है; परंतु कपड़ा मिलोंसे आता है यही बेकारीका प्रधान कारण है। हर बेकार मिनिटको मजूर और किसान तकली कातनेमें लगावे तो उसके मिनिटोंके दाम खड़े हो जायं। पैसा घंटामें तो कोई कसर ही नहीं। यों तो अरबपतियोंके मिनटोंके दाम कई कई रुपये हैं परन्तु सम्पत्ति बराबर बराबर बांटी जाय तो किसी एक मनुष्यके मिनिटकी कीमत रुपयोंमें नहीं आंकी जा सकती। परन्तु हर आदमी हर संभव मिनिटको कमाईमें पूरे तौरपर लगाता रहे तो सम्पत्तिका बंटवारा किसी हद्तक बराबर जरूर हो जाय और किसी एक आदमीके पास अत्यधिक धन न जाने पावे। जैसे हर आदमी अपने और अपने अधीनोंके कपड़ेके लिये धुने, काते और किसी भाईसे बुनवाले तो रूई ओटने, धुनने, कातने और बुननेकी मिलें बेकार हो जायँ और जो रुपये मिलमालिक खींच लेते हैं वह मजूरों और किसानोंमें बँट जायँ।"

"परंतु जो मजूर किसान नहीं हैं उनके लिये तो मिलें चलेंगी?"

लेनेकी जरूरत इस मतलबसे भी न पड़ेगी। रही खेती करनेके खर्चकी बात, सो वहाँ भी पैसोंके बदले अनाजके ही लेनदेनसे काम होना चाहिये। महाजनसे बीजके लिये अनाज लेनेका दस्तूर आज भी है। गरज यह कि पैसेकी मायासे किसान जितना ही बचेगा, उतना ही कर्जके बोझसे भी वह बचेगा। तीज त्योहारपर भी उसे अपनी शक्तिके बाहर कभी खर्च नहीं करना चाहिये।"

"परन्तु पहलेका करजा?"

"पहलेका करजा तो उसे या तो धीरे धीरे चुकाना ही पड़ेगा या तो कर्जके नये कानूनोंसे उसे सहायता लेनी पड़ेगी या दिवालियेके कानूनका उसे आश्रय लेना पड़ेगा। क्षेमकी जिस नीतिकी हमने अब तक व्याख्या की है, उसके बलसे देश अधिक समृद्ध हो जाय तो अवश्य ही बहुत कुछ करजा पट जा सकता है।"

"क्यों चलेंगी ? पहले तो मजूर और किसान जो बेकार हैं वह सूत ही कातनेमें अपनी बेकारीका समय बिता दें तो, इतना सूत कते कि भारत नंगा न रहे। तीन करोड़ आदमी आठ घंटे रोज तीन महीनेतक १२ नं० का सूत अगर आधा पाव कातें तो १५ करोड़ आदमियोंसे अधिकको कपड़े मिलेंगे। बाकी २० करोड़के लिये कपड़े चाहिये। अब देखिये कि एक कपड़ेकी ही जरूरत ऐसी है जो हमारे सब बेकारोंको काम भी देती है और सर्वसाधारणके बचे-खुचे समयको भी काममें लानेकी उसमें गुंजाइश है। अब जो मजूर किसान बेकार नहीं हैं, काम करनेके दिनोंमें भी उनके पास इतना समय बचता है कि वह दो घंटे रोज सूत कात सकते हैं, मान लो कि कामके समयमें १५ करोड़ मजूर किसान सालमें छ महीनेतक दो घंटे रोज सूत कातते हैं। सूत १२ नं०का और तौल २॥ तोला या आधी छटाक मान लें तो इनसे ही ३५ करोड़ आदमियोंके लिये पहननेको कपड़े मिल जा सकते हैं। इस तरह हमारे मजूर और किसान अपने मिनटोंका आदर करें और कातनेपर उतारू हो जायँ तो ५० करोड़ आदमियोंको कपड़े पहना दें।"

"सुनते हैं कि पहले सारी दुनियामें भारतसे ही कपड़े जाते थे।"

"कमसे कम यह तो ऐतिहासिक सत्य है कि हमारे यहाँका कपड़ेका वैदेशिक निर्यात बहुत भारी था। आज भी इतने हाथोंकी मजबूतीवाले भारतमें सारे संसारकी लाज ढँकनेकी शक्ति है।"

हमने मजूरों और किसानोंके ही कातनेका हिसाब किया परन्तु और पेशेवाले भी तो कात सकते हैं। बनिया दूकानपर खाली न बैठा रहे, तकली चलाता रहे। भिखमंगा तकली चलाता जाय और चक्कर भी लगावे। साधु संन्यासी चरखा या तकली कातते रहें और भगवानका भजन भी करते रहें। अहीर, गड़ेरिये ढोर चराते रहें और तकली भी चलाते रहें। यह लोग दो-दो काम मजेसे साथ ही कर सकते हैं और निचोड़कर अपने जीवनको दूना कर सकते हैं। चौकीदार, चपरासी, पुलिसके सिपाही, फौजके सिपाही, खेत रखानेवाले अपना समय बरबाद करते हैं। यह लोग अपने जीवनको दूना कर सकते हैं और समयको कीमती बना सकते हैं। बहुतसे लोग नित्य घंटों हुक्के सिगरेट आदिके नामसे अपना अनमोल जीवन और गाढ़े कमाईका धन दोनों फूँकते रहते हैं।"

"आपका तो अजीब हिसाब है ? तमाखू पीनेवाला अपना जीवन कैसे बरबाद करता है ?"

"कई तरहसे। मान लीजिये कि एक आदमी बीस बरसकी अवस्थासे घंटाभर रोज धुआँ उड़ानेमें लगाता है और सत्तर बरसकी उमरमें उसके पास मौतका परवाना आता है। वह हिसाब लगावे तो पता लगेगा कि वह दो बरस एक महीनेके समय भर दिन रात धुएँ उड़ाता रहा है। वह एक मिनिट भी ज्यादा जीना चाहे तो जीने न पायगा। परन्तु वह नहीं जानता कि उसने दस लाख चौरानबे हजार चार सौ मिनिट धुएँके बादल बनानेमें खर्च कर डाले हैं। यह तो बरबादी हुई अनमोल जीवनकी। उसने साथ ही साथ एक-एक पैसे रोजके हिसाबसे सूद मिलाकर तीन सौ रुपयेके लगभग धुएँमें उड़ा दिये। फेफड़ेको कमजोर करके उसने अपना दो ढाई बरसका जीवन जो घटा दिया वह ऊपरसे। अगर छ पैसे रोजकी औसत आमदनी मानकर ३००) की कीमत राष्ट्रीय समयके सिक्कोंमें लगावें तो नौ बरससे कुछ कम हुए। ५० बरसतक घंटेभर तमाखू पीकर उसने लगभग १३ बरस अपने अनमोल जीवनके बरबाद कर डाले। सत्तर बरसोंमें तेरह बरसोंको धुएँमें उड़ा देनेवाला कोई अच्छा कारबारी नहीं समझा जा सकता। परन्तु हममेंसे हजारों आदमी इस तरह अपने जीवनको बरबाद करनेमें आगा पीछा नहीं करते।"

"यह राष्ट्रीय समयका पैमाना कैसा ?"

"भाई, समाज मात्रका समय राष्ट्रका समय है। व्यक्तियाँ मिलकर ही राष्ट्र बनाती हैं। इसलिये प्रत्येक व्यक्तिपर यह जिम्मेदारी है कि वह अपना जीवन, अपना समय, राष्ट्रका समझे और धरोहर जानकर इसे बरबाद न करे, उसे अपकर्म्ममें या अकर्म्ममें न लगावे, उसका एक-एक क्षण अच्छेसे अच्छे और उपजाऊसे उपजाऊ कार्य्य और सत्कार्य्य कर्म्ममें लगावे। राष्ट्रकी दैनिक आमदनी आज छः पैसे रोज है। व्यक्तिकी कमाई इतनी ही है। इसलिये रुपयोंको अगर समयके सिक्कोंमें भँजावे तो एक रुपयेमें पौने ग्यारह दिन आये। राष्ट्रके समयकी कीमत इसी तरह लगायी जानी चाहिये। जब राष्ट्र अपनी मेहनतसे और

स्वदेशीका प्रचार कमखर्चीका उपाय

"आप कमखर्ची और स्वदेशीपर इतना जोर देते हैं, और इसमें स्वदेशीके व्यापारियोंका बड़ा लाभ है, तो भी बड़े अचरजकी बात है कि स्वदेशी वस्तुओंके कहीं विज्ञापन नहीं देखनेमें आते। दूकानदार भी इसमें कोई रस नहीं लेते। जिस चढ़ा-ऊपरी और प्रचारसे व्यापार बढ़ता है, स्वदेशीके व्यवसायियोंमें उसका कहीं नामोनिशान नहीं है।

"बड़े खेदके साथ मानना पड़ता है कि यह बात बिलकुल सच है। कुछ विचित्र बात है कि देशमें बड़ी उदासीनता और उपेक्षा है, कोई जादू या टोना सा हो रहा है कि अपना स्वार्थ जानते हुए भी व्यापारी मोहित है और कुछ भी कर नहीं रहा है। स्वदेशी चीज अच्छीसे अच्छी और सस्तीसे-सस्ती होते भी लोग न जाने क्यों विदेशी चीजोंपर टूटे पड़ते हैं। इस मोह-मायाका बलपूर्वक निराकरण करना पड़ेगा! हमारी जरूरतें बढ़ी हुई दिखायी पड़ती हैं, उन्हें घटाना पड़ेगा। हम झूठी चमकदमकपर रीझ जाते हैं, टिकाऊपनपर ध्यान नहीं देते, हानिका खयाल नहीं करते। इस उलटी समझको सुधारना पड़ेगा।"

"हम स्वदेशी वस्तुएँ चाहें भी तो जल्दी सूझती नहीं और ठीक मिलती नहीं, और हमें यह भी पता नहीं होता कि मिलेंगी कहाँ।"

"हममें यह लगन, यह आग्रह चाहिये कि हम स्वदेशी ही लेंगे, चाहे जहाँसे मिले। फिर हमें यह भी उचित है कि हम तैयार करनेवालोंसे उसमें सुधार करावें। कुम्हार जो बरतन ठीक विधिसे बनाना भूल गये हैं वह थोड़ासा समझानेसे ठीक बनाने लगेंगे। जैसे मिट्टीके दीये वह ऐसे बनाते हैं जिनमेंसे तेल सहजमें ही जरासी असावधानीपर जरा टेढ़ा होनेपर गिर जाता है। उसके किनारे जरा उठे और भीतरको मुड़े हों तो ऐसा न हो। दीवटोंका इस्तेमाल और दीयोंको हवासे बचानेके उपाय लोग भूल गये हैं। घरकार अब वैसे दीवट नहीं बनाते। पहले गंधकी दियासलाइयाँ मेहतर बनाकर बेचते थे। चकमाककी पथरीपर कील या लोहेके टुकड़ेसे मारनेपर चिनगारियाँ निकलती थीं और गंधकी सलाई पकड़ लेती थी। परन्तु यह सस्ता और सहज ढंग लुप्त हो गया। कलम सरकंडेके हम अब भी बना सकते हैं। स्याहीके लिये विदेश जानेकी जरूरत नहीं। देशी कागज टिकाऊ और सुन्दर हाथसे बनता था। लोग उसे भूल गये। शहरके जीवनने तो हमें स्वदेशमें रहते विदेशी बनाया ही था, हमारे देहातोंका जीवन भी बिगड़ गया। परन्तु फिर भी निराश होनेकी जरूरत नहीं है। हम स्वदेशी और कमखर्ची इन दो जरूरी बातोंपर फिरसे तुल जायं और व्रतकी तरह पालन करें तो गये दिन जरूर लौट आवेंगे।

सबके सुभीतेके लिये हम एक सूची उन कारखानोंकी यहाँ देते हैं जो देशी वस्तुएँ तैयार करते हैं, जिन्हें हम बढ़ावा दें तो हमारा बहुत काम चल सकता है। हमारे शहर और जिलेके बोर्डोंका ध्यान कमखर्ची और स्वदेशीकी ओर जाय तो वह इस दिशामें बड़ा काम कर सकते हैं। कोई यंत्र नहीं जो भारतमें न बन सकता हो, कोई कल पुरजा नहीं जो यहाँ न ढल सकता हो। बोर्डोंमें लाखों रुपये विदेशी वस्तुओंपर खर्च होते हैं। उनकी जगहपर

कोशिशसे अपनी औसत आमदनी बढ़ावेगा तो समयके सिक्केकी कीमत भी बढ़ेगी। हमारी औसत आमदनी एक रुपया रोज हो जाय तो एक रुपयेमें एक दिन आया। परन्तु हमारा औसत जीवन २३ बरस है और औसत आमदनी छः पैसे रोज। इस तरह हर भारतीयकी जिन्दगीकी औसत कीमत कुल सवा पाँच सौ रुपये ही ठहरे! हमारी जान कितनी सस्ती है!"

"अच्छा! अब मैं समझा। हम चाहें तो काम दूना करके समयकी कीमत दूनी कर दें। अपनी राष्ट्रीय आमदनी बढ़ावें तो समयकी कीमत बढ़े, हमारी जानकी कीमत बढ़े।"

"इसमें क्या शक है। दरिद्र देशका औसत जीवन इसीलिये घट जाता है। आइये हम लोग समयकी कदर करें, उसकी कीमत समझें, उसमें किफायत करें, उसकी रक्षा करें, इसीमें राष्ट्रके जीवनकी रक्षा है। इसलिये मिनिटोंको वृथा न गँवाओ। इसीमें दीर्घायु होनेकी कुंजी है।"

स्वदेशीपर ही खर्च हो तो कमखर्ची तो निश्चय ही समझो। जो कारखाने स्वदेशी चल ही रहे हैं उन्हें इन बोर्डोंकी ओरसे बढ़ावा मिलने लगे तो स्वदेशी वस्तुएँ बड़ी जल्दी तैयार हों और फैलें।

कौन सी स्वदेशी वस्तु कहाँ किसके यहाँ मिलती है इसका संक्षिप्त परिचय देनेका यहाँ प्रयत्न किया गया है

अगरबत्ती।

(१) कस्तूरी अगरबत्ती, मुँबई स्वदेशी कोआपरेटिव स्टोर्स, बम्बई। (२) सरदेसाई ब्रदर्स, बीलीमोरा। (३) भागवत एँड कम्पनी, कोल्हापुर।

कागज, स्याहीसोख

(१) अपर इंडिया कौपर पेपर मिल्स लिमिटेड, लखनऊ। (२) मीनाक्षी पेपर मिल्स कम्पनी लिमिटेड, पुनालुर (त्रावणकोर)। (३) डेक्कन पेपर मिल्स लिमिटेड, मुंधवा (पूना)। (४) कर्णाटक पेपर मिल्स लिमिटेड, राजमहेन्द्री। (५) इंडिया पेपर पल्प्स कम्पनी, लिमिटेड, कलकत्ता। (६) गिरगाम पेपर मिल्स ७७-७९ अपोलो स्ट्रीट, बम्बई। (७) महमदभाई कमालुद्दीन पेपर मिल्स, सूरत गेट, सूरत।

काँचका सामान

(१) ओगले ग्लास वर्क्स, ओगलेवाड़ी, औंध स्टेट, जिला सतारा। (२) दि नेशनल ग्लास वर्क्स, ट्राम टरमिनस, मजगाँव, बम्बई। (३) पैसाफंड ग्लास वर्क्स, तलेगांव दाभाड़े (पूना)।

केमेरा (फोटोका)

(१) वेलीन्स केमेरा वर्क्स बेलगाँव (२) धोवड़े केमेरा वर्क्स, बेलगाँव।

खड़िया, चीनीके बरतन आदि

(१) ग्वालियर पाटरी वर्क्स, ग्वालियर (२) परशुराम पाटरी वर्क्स, मोरवी (काठियावाड़)। (३) पैसा फंड ग्लास वर्क्स तलेगाँव (पूना जिला)।

खड़ियाकी पेंसिल (चाकू)

(१) इंडियन क्रेयन वर्क्स, नगर। (२) नेशनल क्रेयन वर्क्स, कुम्भकोणम्। (३) गुरुनाथन चाक वर्क्स, कुंभकोणम्। (४) भाषन चाक पेंसिल फैक्टरी, गुजरानवाला (पंजाब)। (५) इंडियन क्रेयन वर्क्स, अहमदनगर। (६) दि इंडियन एजेंसी, धरमपुर और लाहौर। (७) बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, बनारस।

डोरा

(१) केलिको मिल्स, अहमदाबाद (१) सेण्ट्रल इंडिया स्पिनिंग वीविंग ऐंड मैन्युफेक्चरिंग कम्पनी, लिमिटेड, नागपुर।

पेंसिल, होल्डर आदि

(१) भारत एँड सन्स, पूना। (२) दि कामरेड एँड सन्स, दिल्ली। (३) इंडस्ट्रीज धरमपुरा लाहौर। (४) पेंसिल फैक्टरी, पोस्ट आफिस मदरास। (५) नेशनल क्रेयन वर्क्स मुरादाबाद। (६) इंडिया क्रेयन कम्पनी, पेठ, बेजवाड़ा। (७) मारुती पेंसिल फैक्टरी तुंबकुर। (८) एफ० एन० गुप्ता एँड कम्पनी, कलकत्ता। (९) भगत एँड कम्पनी, कलकत्ता।

बाम, मरहम लेप

(१) कर्मवीर बाम। (२) अमृतांजन बाम। पेन बाम। सभी बाम मिलनेका पता, कोआपरेटिव स्वदेशी स्टोर्स, बम्बई

चूड़ियाँ

(१) क्षत्रिय रघुनाथ वेलजी, दीव (काठियावाड़)। (२) भागवत एँड कम्पनी, पांडुरङ्ग निवास, कोल्हापुर नं० ३। (३) सेठ जीवराज त्रिभुवन दुकान नं० ३९, क्रेथेड्रल स्ट्रीट, भुलेश्वर, बम्बई। (४) सिद्धाप्पा कुमाराप्पा, अरजुस, डाकखाना घोड़वेसी, वाया गोकाक जिला बेलगाँव। (५) कांदीवली बैंगल्स मैन्युफेक्चरिंग कम्पनी कांदीवली, बी० बी० एंड० सी० आई० रेलवे। (६) जुएल ग्लास वर्क्स, सिविल स्टेशन, जबलपुर। (७) एम० जो० वर्क्स, चिकानी (जिला थाणा)। (८) चूड़ियोंके कारखाने, फीरोज़ाबाद (यू० पी०)।

बटन हुक आदि छोटी चीजें

(१) वर्धमान एंड संस, पायधुणी, बम्बई। (२) डी० एन० चन्द्र ऐण्ड कम्पनी, नानापेठ, बम्बई। (३) भारत लक्ष्मी कम्पनी लिमिटेड, १३ काजी टोला, ढाका। (४) ईस्टर्न स्माल इण्डस्ट्रीज, लक्ष्मी बाजार, ढाका। (५) द्वार्न मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी, इस्माइल बिल्डिंग, सुतार चाल,

बंबई। (६) भारत बटन फैक्टरी, शाहगंज हैदराबाद, डेकन। (७) चितले ब्रदर्स, बम्बई नं० २। (८) बंगाल कमर्शियल एजेंसी, इस्माइल बिल्डिंग, जामा मसजिद गली, सुतार चाल बम्बई २। (९) दुर्लभदास मूलजी जवेरी, भूलेश्वर बंबई २। खाना सामे, २१ कोकलवाडी, बंबई २। लीडर्स फोटो कम्पनी, विलेपारले बम्बई।

छुरी, चाकू, सरौता, कैंची, अस्तुरा आदि

(१) भास रेजर वर्क्स, मीथगांवणे वाया जैतपुर, जिला रत्नागिरी। (२) स्वदेशी वस्तु कार्यालय, हाथरस (३) इंडियन कटलरी वर्क्स गुजरानवाला (पंजाब)। (४) डायमंड सीज़र्ज कम्पनी, मेरठ। (५) कृष्ण कटलरी वर्क्स, गुजरानवाला। (६) राजा इंडस्ट्रियल वर्क्स, वजीराबाद। (७) के० एन० अजाणी, बंबई नं० ३

निब, लोहेके कलम

(१) मीडज मेनुफेक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड मालवण। (२) डी० आर० पुनी एंड संस, गुजरात (पंजाब)। (३) कुलकर्णी ब्रदर्स, पन्नालाल टेरेसेज, बंबई ७। (४) नम्बर ब्रदर्स, लश्कर (ग्वालियर)। एफ० एन० गुप्ता एंड कम्पनी, १२ बेलुरघाट रोड, कलकत्ता। (६) बा० हरिदास मुकर्जी, ३ काशीचेट्टी स्ट्रीट, जी० टी० मदरास। (७) माडर्न इण्डस्ट्रीज, दयालबाग, आगरा। (८) ईश्वरसिंह बी० एस० सी, राबर्ट्स रोड, लाहौर। (९) निब मैनुफेकचरिंग कम्पनी, टोपीवाला मैन्शस, सैंडहर्स्ट रोड, बम्बई।

ताले

(१) बी० एस० याज्ञिक एंड कम्पनी, अलीगढ़। (२) सिंघल एंड कम्पनी, अलीगढ़। (३) के० एन० अजाणी, दाणा बंदर, बंबई २। (४) माडर्न इण्डस्ट्रीज, दयालबाग, आगरा। (५) तांबट ब्रदर्स, लश्कर ग्वालियर। (६) डी० आर० पुनी एंड सन्स, गुजरात (पंजाब)। (७) कुलकर्णी ब्रदर्स, पन्नालाल टेरेसेज, बम्बई ७

दन्तमंजन, अंजन, औषधादि

(१) सर देसाई ब्रदर्स, बीलीमोरा। (२) दि बेंगाल केमिकल एंड फारमास्यूटिकल वर्क्स, कलकत्ता। (३) दि पंजाब आयुर्वेदिक फारमेसी अकाली मारकेट, अमृतसर। (४) श्रीरामकृष्ण राजपूताना औषधालय जुरहरा, भरतपुर स्टेट।

कंघी

(१) जेसोर कोंजर्ग एंड सेलुलाइड फैक्टरी, जैसोर। (२) बेंगाल स्टोर्स, सुतारचाल, बम्बई। (३) डी० एन० भट्टाचार्य एंड सन्स, ३३ केनिंग स्ट्रीट, बम्बई। (४) गुप्ता एंड ब्रदर्स, जामा मस्जिदके पास, अब्दुर्रहमान स्ट्रीट, बम्बई।

दांत और हजामतके ब्रश आदि

(१) आयर्न ब्रश कम्पनी, दादर, बम्बई। (२) ओरिजिनल ब्रश वर्क्स, ६६ कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट बम्बई। (३) शाह ब्रश फैक्टरी अहमदाबाद। (४) क्लेमक्स ब्रश वर्क्स, ९ मराठा डिचलेन। कलकत्ता। (५) ब्रशवेअर्स लिमिटेड, १२३-१, हेलसी रोड, कानपुर। (६) आगरा ब्रश कम्पनी, जैनीकी मंडी, बेलनगंज, आगरा। (७) गंगा एंड कम्पनी, क्लाकटावर, मेरठ सिटी। (८) इंडियन ब्रश फैक्टरी, बांसमंडी, कानपुर (९) सत्यनारायण एंड कम्पनी, आगरा।

सहयोगी विज्ञान

१. चयन

(१) चाय-पान या आत्मघात

[आजकल चाय-पानका चायके रोजगारी बड़ी धूमसे प्रचार कर रहे हैं। हमारे देशके लिये और सब लतें क्या कम हैं कि यह लत और प्रचारित की जा रही है "हरिजनसेवक"में श्रीघनानन्दपंतजो उपर्य्युक्त शीर्षकसे जो लेख देते हैं, उसे हम विज्ञानके पाठकोंके हितार्थ उद्‌धृत करते हैं। चाय-से परहेज करके तन और धन दोनोंकी रक्षा कीजिये। हमारे दरिद्र देशके लिये तो यह लत महापातक है। रा० गौ०]

एक वैद्यकी हैसियतसे मैं चाय पीनेवालोंको सूचित करता हूँ, कि चाय पीनेसे आर्थिक हानि तो साधारण बात है चाय पीनेवालोंका शरीर भी भविष्यमें किसी कामका नहीं रहता। इस बातको प्रमाणित करनेके लिये कुछ योग्य डाक्टरोंकी स्वास्थ्य-सम्बन्धी पुस्तकोंके उदाहरण नीचे देता हूँ।

डाक्टर वी० जी० घाणेकर एम० बी०, बी० एस०, प्रोफेसर हिन्दू-यूनिवर्सिटी, बनारस, लिखते हैं—

"चाय सेवन करनेसे मलावरोध, अग्निमांद्य, अजीर्ण, अनिद्रा, बृक्करोग, शारीरिक और मानसिक दुर्बलता इत्यादि व्याधियाँ पैदा होती हैं। चायमें कुछ गुण हैं सही, तथापि उसमें नशा है, इसलिये जिसे एक दफा चाय पीनेकी आदत पड़ गयी उसकी आदतका छुटना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसलिये तन्दुरुस्त अवस्थामें जहाँतक हो सके, चायका सेवन नहीं करना चाहिये। चायका टैनिन एसिड कषाय रसका होनेसे श्लेष्मिक त्वचाको अपने सम्पर्कसे सख्त बनाकर अन्नरस-शोषण करनेकी शक्ति कम कर देता है, इससे मलावरोधकी भी शिकायत होती है। [स्वास्थ्य-विज्ञान पृष्ठ १९९]।

डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, सिविल सर्जन, संयुक्तप्रान्त, मेडिकल सर्विस, मदिरा, भांग, अफीम, कोकीन, तम्बाकूके प्रकरणमें लिखते हैं—

'कोको, काफी, चाय ये सब उत्तेजक हैं। हमारी रायमें इसका प्रयोग औषधिके तौरपर जायज है, मनुष्यको इनके पीनेकी आवश्यकता नहीं। भारतमें तो इन चीजोंके पीनेकी आवश्यकता ही नहीं। (स्वास्थ्य और रोग पृष्ठ १०५)

डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा, एम० बी०, बी० एस०, काशी-विश्व-विद्यालय, चायके बारेमें लिखते हैं—

"टैनिन, जो उसमें सम्मिलित रहती है" एक स्तम्भक वस्तु है और यह पाचनको बिगाड़ती है, कोष्ठबद्धता भी उससे उत्पन्न होती है। (स्वास्थ्य विज्ञान, पृष्ठ १९०)

डा० गणपत कालोखे, इन्द्रिय-विज्ञान-शास्त्रके परीक्षक तथा आरोग्य-प्रसारक-ग्रन्थमालाके सम्पादक अपनी "दाँतोंचे आरोग्य" नामक पुस्तकके पृष्ठ १४में लिखते हैं—

"चायका बुरा परिणाम दाँतोंपर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दो प्रकारका होता है। प्रत्यक्ष यह कि चायसे अम्ल प्रति-क्रिया होकर दाँतोंमें कीट लगता है, और टैनिनका भाग अधिक होनेसे लार कम टपकने लगती है। अप्रत्यक्षमें चायसे अग्निमांद्यादि रोग होकर रक्त विकृत हो जाता है, जिससे लार उचित परिमाणमें तैयार न होकर दाँत खराब हो जाते हैं।"

'स्वास्थ्य-समाचार' (बंगला) के २४वें भाग, १ संख्या-में श्रीसुनील कुमार बसु लिखते हैं—

यदि स्वास्थ्य अच्छा रखना हो तो चाय, काफी कोको नहीं पीना चाहिये।

इसी अङ्कमें डाक्टर पञ्चानन वसु, एम० डी० (बर्लिन) ब्लड प्रेशरके बारेमें लिखते हैं—

'चाय काफी' तम्बाकू चुरट शराब आदि नशेकी चीजों-का सेवन करनेसे धमनियाँ रोगग्रस्त हो जाती हैं जिससे हाई-ब्लड-प्रेशर होता है।"

डा० के० सी० वसु कलकत्ता लिखते हैं—

"चाय पीनेसे देशके लोगोंको जो क्षति हो रही है इस विषयको बहुत लोग नहीं सोच रहे हैं।

चायमें ऐसा एक पदार्थ है जो माँस पेशियोंको उत्तेजित करता है। पर कुछ देर उत्तेजनावश काम करनेके बाद शरीर सुस्त हो जाता है फिर बिना चाय पिए काम करनेमें मन नहीं लगता।

चाय नाड़ीमण्डल बात और हृदयको उत्तेजित करता है। इस उत्तेजनासे क्रमशः नाड़ीमंडल निस्तेज हो जाता है। हृद्रोग, हाइब्लड प्रेशर आदि रोग चाय और काफी पीनेवालोंमें अधिक देखे जाते हैं।

बाल-बच्चोंको चाय पिलानेसे उनका वजन नहीं बढ़ता। जिन्हें एक बार चायका नशा हो जाता है उन्हें इसकी आदत छोड़नेके लिये विशेष मनोबलकी आवश्यकता है।

स्कूलके लड़कोंको चायकी आदत न पड़ जाय इस तरफ माँ बाप व अध्यापकोंको ध्यान देना चाहिये।"

यह तो मैंने चायकी बुराइयोंका दिग्दर्शन किया है। हाँ; बीमारीकी हालतमें एलोपैथीवाले दवाके रूपमें चाय देते हैं।

दाँतोंका बिगड़ना; हाजमा; खराब होना; घूमते-फिरते तन्दुरुस्त अवस्थामें भी हार्टफेलका होना इन सब शिकायतोंमें प्रधान कारण चाय ही है।

(२) सप्रू बेकारी कमिटीकी रिपोर्ट, उसका सार

१. प्रस्तावोंका सार

इस रिपोर्टमें सब प्रकारकी शिक्षा—प्राइमरी, सैकण्डरी और हाईस्कूलके पुनरसंगठनपर पूरा जोर दिया गया है और कहा गया है कि यूनिवर्सिटीके स्टैण्डर्डको कड़ा करने अथवा छात्रोंकी प्रवेश-संख्या घटानेसे कोई लाभ न होगा। शिक्षा सम्बन्धमें यह इलाज बताये गये हैं (१) प्राइमरी शिक्षामें सुधार, (२) सैकण्डरी शिक्षाको उसकी वर्त्तमान स्थितिसे मुक्ति दिलायी जाय और इसमें जो इतने अधिक पढ़ाईके विषयोंका समावेश किया गया है, इस बोझसे इसे स्वतन्त्र बनाया जाय। (३) यूनीवर्सिटियोंमें क्रियात्मक अनुसन्धानको उत्साहित किया जाय तथा विज्ञान और उद्योग—धन्धोंमें सम्बन्ध स्थापित किया जाय। (४) पेशोंकी शिक्षाको समयानुकूल और समुचित बनाया जाय (५) विभिन्न पेशोंका सङ्गठन इस प्रकार किया जाय कि उन पेशोंमें उतने ही आदमी आने पावें जितनोंकी जनताको जरूरत है, जिसमें जनताकी माँगसे अधिक आदमी विभिन्न पेशोंमें भर न जाया करें जैसा कि अब है (६) कामके नये रास्ते खोले जायँ।

२. हाथका काम सिखाया जाय

शिक्षा-सुधारके अतिरिक्त रिपोर्टमें हाथका काम सिखानेवाली शिक्षाकी उन्नतिपर जोर दिया गया है। कहा गया है कि ऐसे ऐसे स्कूल खोले जायँ जिनमें वे दस्तकारियाँ सिखायी जायँ जिनमें लोग चतुर कारीगर बन सकें। इसी प्रकार कृषि और उद्योग धन्धोंको आधुनिक ढंगोंपर उन्नति करने और उनकी शिक्षा देनेपर जोर दिया गया है। रिपोर्टमें सलाह दी गयी है कि बेकारीके प्रश्नको हल करनेके लिए कोई एक इलाज नहीं सोचा जा सकता और न यह समस्या एक दमसे तुरन्त ही हल होनेवाली है। हाँ, यदि खूब सोच-विचारसे बनी हुई योजनाके आधार पर ठीक रीतिसे इसपर आक्रमण किया जाय और सरकारके पास इन योजनाओंकी पूर्तिके लिए काफी साधन हों, तभी शिक्षित युवकोंमेंसे बेकारी मिटायी जा सकती है। और साथ ही तब और भी अधिक काम हो सकता है। यदि सरकार शिक्षाकी समस्त प्रणालीकी पुनारचना करने तथा उद्योगधन्धों और शिल्पशिक्षाकी सच्ची भावना भरनेके लिए काफ़ी रक़म खर्च करनेको तैयार हो।

३. बेकारोंकी गणना की जाय

रिपोर्टमें सिफ़ारिश की गयी है कि सरकार, यूनीवर्सिटियाँ शिक्षा-विभाग तथा अन्य विभाग और लोकल बोर्ड शिक्षित बेकार नवयुवकोंकी गणना करायें। सरकारने अपनी नौकरियोंमें जो कमी की है, उसे पूरा करे और पेंशन लेनेके समयके नियमकी सख्तीसे पावन्दी की जाय जिसमें नवयुवकोंको सुन्दर अवसर मिल सके। ५५ साल समाप्त हो जानेपर सरकारी नौकरोंके कार्यकालकी अवधि बढ़ायी न जाय।

४. वकीलोंमें बेकारी

वकीलोंमें बेकारीके सम्बन्धमें बताया गया है कि वकीलोंकी भरमार हो गयी है। उनकी दो श्रेणियाँ बना दी जायँ (१) एक तो वे जो वास्तविक रूपमें वकालतका

काम करें और (२) दूसरे वे जो केवल कानूनी दस्तावेजोंका मसौदा तैयार करें। कानूनी शिक्षाकी कौंसल बनायी जाय जिसमें कानूनके अध्यापक और जज और बड़े-बड़े वकील सम्मिलित हों जो कानूनकी शिक्षापर अबसे भी अधिक ध्यान दें। कानूनकी डिग्रीका कोर्स तीन बरससे कमका न हो। इसके बाद रिपोर्टमें कुछ नये पेशोंके खोले जानेकी सिफारिश की गयी जिससे नौजवानोंको काम मिल सके। कहा गया है कि यूनीवर्सिटियोंको पत्रकारकला तथा पुस्तकालयाध्यक्ष-कलाकी शिक्षाका भी अपने अध्ययनमें समावेश करना चाहिए और कारीगरी भवन-निर्माण आदिकी शिक्षाका भी प्रबन्ध होना चाहिए। एक ऐसी योजना तैयार की जाय जिससे नौजवान छोटे-छोटे धन्धे शुरू कर सकें। घरू धन्धोंद्वारा निर्मित वस्तुओंकी खरीदारी अधिक बढ़ाये जानेकी ओर ध्यान दिया जाय। ज्वाइंट स्टाककी लाइनोंपर एक संस्था बनायी जाय।

५. लड़कोंके बारेमें माँ-बापको सूचना

लड़कोंकी बौद्धिक योग्यताके बारेमें लड़कोंके माँ-बापों और संरक्षकोंको परामर्श दिया जाय और बताया जाय कि लड़कोंकी रुचि किस कामकी ओर है। प्राइमरी प्रारंभिक शिक्षाका उद्देश्य पठितोंकी संख्या बढ़ानेके साथ यह भी हो कि लड़के उत्तम किसान बन सकें। प्रारंभिक शिक्षाका मार्ग देहातकी ओर झुका हुआ होना चाहिए। प्रारंभिक शिक्षा पानेकी आयुको १२—१३ वर्ष तकके लिए निश्चित कर दिया जाय और हर एक लड़केको अनिवार्य रूपसे कमसे कम ६ वर्ष तक पढ़ना पड़े। [हमारी समझमें चार बरस काफी होने चाहिये। रा० गौ०] प्रांत भरमें अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा अवश्य हो। इसके बिना आर्थिक समृद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। सेकन्ड्री और हाई स्कूल परीक्षाके दो सार्टीफिकेट मिलें एक तो ऐसा जिसमें कोर्सकी समाप्तिका प्रमाण हो और साथ ही उसे इंडस्ट्रीयल, (औद्योगिक), व्यावसायिक या कृषि स्कूलमें भरती होनेकी योग्यताका प्रमाण हो। और दूसरा ऐसा सार्टिफिकेट हो जिसमें इंटरमिडिएट कालेजोंकी आर्ट और सायंस कक्षाओंमें प्रवेश कर सकनेका प्रमाण हो। हाई स्कूलका कोर्स एक वर्षका घटा दिया जाय और इंटरमिडिएटका कोर्स तीन सालका कर दिया जाय। इसमें चार बातोंकी शिक्षा हो—उद्योगधंधे, वाणिज्य व्यवसाय, कृषि तथा आर्ट और सायंस। युनीवर्सिटी शिक्षाके लिए भरतीके कड़े नियम हों। विभिन्न युनीवर्सिटियोंमें शिक्षाका साम्य हो ताकि उनमें व्यर्थका मुकाबला न हो। कैम्ब्रिजके आधारपर प्रांतकी पाञ्चों युनीवर्सिटियोंका एक ग्रेजूयेट बोर्ड हो। सरकार दस्तकारी स्कूलोंको आर्थिक सहायता दे।

२. वैज्ञानिक टिप्पणियां

वैज्ञानिक शिक्षाका अजीर्ण—

नवम्बर मासमें प्रो० स्मिथेल्सने "रसायन शास्त्रकी पढ़ाई" इस विषयपर फारमास्यूकिलसोसायटीके सामने व्याख्यान दिया। आपने इस जोखिमकी ओर श्रोताओंका ध्यान विशेष रूपसे दिलाया कि विज्ञानकी बिस्तृत शिक्षा नीचेके दरजोंमें ऐसी बोझल होती जा रही है कि मस्तिष्कके विकासके बदले अत्यधिक भार पड़नेसे अब ह्रास हो रहा है। [नेचर १६।११]।

वैज्ञानिक संडासकी विधि सर्वोत्तम है

सिविल इंजिनियरोंकी संस्थामें श्री वाट्सनने ५ नवम्बरको व्याख्यान देते हुए यह कहा कि मैलेको नदियोंमें बहानेसे ज्यादा निकम्मी विधि बम्पुलिसकी सफाईकी हो नहीं सकती। उन्होंने संडासोंकी उस विधिको सर्वोत्तम ठहराया जिसमें संडासके मलका मलत्व कीटाणुओं द्वारा नष्ट करा दिया जाता है और अवशिष्ट द्रव धरती सोखकर उपजाऊ बन जाती है। [नेचर १६।११] (संडासकी इस विधिकी पूरी व्याख्या हम विज्ञानके एक पिछले अंकमें कर चुके हैं। रा० गौ०)

जीव-दया-विधायक विधियां

वैज्ञानिक प्रयोगोंके लिये पशुओंके साथ बड़ी बेदर्दी बरती जाती है। सर फ्रेडरिक हाबडेने एक व्याख्यानमें जाहिर किया है कि जानवरोंको बिजलीके द्वारा बिना कष्ट दिये मार सकते हैं। खून निकालनेके लिये ७० वोल्टकी धारासे सिर छुला रखनेसे कुछ सेकंडोंमें पशुओंको अचेत किया जा सकता है। [नेचर १६।११]

उबालनेसे खाद्योज ३ बढ़ जाता है।

कलकत्तेके श्री अहमदका कहना है कि प्रयोगसे पता चलता है कि उबालनेसे गांठगोभी, फूलगोभी, गाजर, चुकन्दर, आलू और कुछ और जड़ोंमें खाद्योज ३ बढ़ जाता है। [नेचर १६।११]

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

हा ! कमलादेवी !!

श्रीमान् पंडित जवाहरलाल नेहरू और श्रीमती कमलानेहरूकी जोड़ी विश्वके इतिहासमें अप्रतिम थी। वह स्वार्थत्याग, वह बलिदान, वह कठिन तपस्या, वह कष्ट सहिष्णुता, देशके लिये वह कोमल भक्तिभाव, आज़ादीके लिये वह तड़प, देशके लिये वह कंटकाकीर्ण अपूर्व संयमी जीवन, सत्य और आर्जवका वह असिधारा व्रत, संसारमें दुर्लभ है। वीर दम्पतीका यह जोड़ा कराल कालसे देखा न गया। वीर पत्नीके असामयिक वियोगका जो प्रचण्ड आघात पतिके हृदयपर लगा है उसका अनुमान कौन कर सकता है ? ऐसी कराल चोटको भी उनका धीर वीर हृदय सह सकता है। परन्तु आज सारा देश उनकी इसी चोटपर रो रहा है, इस महाशोकसे सारा राष्ट्र अभिभूत है। राष्ट्रने एक सच्ची, पुण्यात्मा वीर अधिनेत्री खोया और सदाके लिये खोया। उनकी सद्‌गतिमें तो सन्देह ही नहीं। परमात्मा हम निर्बलोंको इस हानिके सहनकी शक्ति दे और शोकित नेहरू परिवारको और स्वजनोंको सान्त्वना।

श्रीकमलादेवीका जन्म संवत् १९५६में हुआ था। सत्रहवर्षकी उम्रमें संवत् १९७३की वसन्तपञ्चमीके दिन पंडित जवाहरलालजीसे विवाह हुआ। चार ही वर्षके वैवाहिक जीवनके भीतर पति और श्वसुर दोनोंको राजनीतिक कारावास हुआ। उनके लिये और देशके लिये यह पहला अनुभव था। हजारों आदमी जेल गये। वह बड़ी घबराहट और भयानक हलचलका समय था। इस युवतीके कोमल हृदयपर उस समय क्या कुछ न गुजरा होगा। संभवत क्षयका बीज उसी समय पड़ा। माता स्वरूप रानीजी और कमलाजी, दोनों देवियोंने अपने दुःखोंको दबाया और हठात् अपनी पीड़ा देशवासियोंकी पीड़ाके सामने बिसरा दी और प्रान्तमें घरघर घूमीं और उन सब देवियोंको जिनके पति जेल गये थे, सान्त्वना दी, समझाया बुझाया। सार्वजनिक कामोंमें भाग लेना तभीसे आरंभ हुआ। अन्य देशभक्त महिलाओंके लिये श्रीमती कमलादेवी पथप्रदर्शक बनीं। राजनीतिक आन्दोलनोंमें इस प्रान्तकी देवियोंमें इनका सर्वोच्च स्थान था और शायद ऐसी देवियोंमें आपने ही पहलेपहल जेलयात्रा की। स्वास्थ्य तो सदासे खराब था, परन्तु जो काम हाथमें लेतीं उसे उत्साहके साथ निर्भीकतासे पूरा कर छोड़ती थीं, स्वास्थ्यकी परवा न करती थीं। फिर भी क्षयरोगका सन्देह होनेके कारण इलाजके लिये मार्च १९२६में ही स्विट्सरलैंड पहुँचायी गयीं। वहाँ आप १९२७के अन्ततक रहीं। अबके आप गत जुलाईमें फिर चिकित्साके लिये युरोप भेजी गयीं, परन्तु रोगसे लगातार सात महीनेतक भीषण युद्ध करके भी आप विजय न पा सकीं। शुक्रवार २८ फरवरी, १९३६को सबेरे पाँच बजे अपने देशसे दूर स्विट्सरलैंडमें—फिर भी सौभाग्यवश अपने पूज्यपतिके सामने ही,—रोग जर्जरित शरीरको त्यागकर वीरलोक सिधारीं।

—शोक-संतप्त रामदास गौड़

शोर जितना ही कम, काम उतना ही अधिक

"औद्योगिक-स्वास्थ्य-अनुसन्धान-समिति"के वेस्टन और आदम्सके लिखे ७०वें विवरणमें बुनकरोंके कामपर शोरके प्रभावकी जाँचका हाल लिखा है। एक ही प्रकारकी सामग्रीसे पूरे छः महीने और फिर सालभर दस-दसके दो दलोंने काम किया। एक दलको शोरमें सदाकी तरह काम करना पड़ा। दूसरे दलको कानोंके बचानेके यंत्र दिये गये जिनसे कि शोर आधा घट जाता था। पहले तो प्रति बुनकर काम बहुत ज्यादा हुआ। पीछे कुछ कम हो गया। किन्तु फिर भी अन्तिम भागतक कामका औसत सैकड़ा पीछे ७॥ अधिक रहा। इसी प्रकार सन् १९३२की ऐसी ही परीक्षामें काम १२ प्रतिशत अधिक रहा। परन्तु उस समय परिस्थितियाँ और अधिक अनुकूल थीं। जो शोरके आदी थे, शोरकी कमीमें उनका भी काम ज्यादा ठहरा। [नेचर १६।११]

वायु-चापपर चन्द्रमाका प्रभाव

साधारणतया चन्द्रमा और सूर्यका प्रभाव समुद्रपर ज्वारभाटाके रूपमें स्पष्ट होता है। वायुमंडलपर भी उसका प्रभाव चापकी कमी-बेशीमें अवश्य पड़ता है, परन्तु इसपर अनुसन्धान होना बाकी है।

क्या हिन्दी उर्दू दो भाषाएँ हैं ?

पिछले अंकमें "हिंदुस्तानी अकेडेमीके वार्षिक अधिवेशनकी चर्चामें हम कह चुके हैं कि उर्दू-हिन्दीके झूठे भाषा-भेदको और लिपिके सच्चे भेदको देखकर विद्वानोंके मनमें भ्रम उत्पन्न हो गया है। वास्तवमें यह भयानक भूलकी बात है कि हम हिन्दी और उर्दूको दो भाषाएँ कहते हैं। भाषा या जुबानकी पहचान क्या है ? कोष और व्याकरण, या शब्द-भंडार और बोलनेमें उनके रूप। अब जरा हिन्दी-उर्दूके कोष और व्याकरण पर विचार कीजिये कि भिन्न हैं या एक।

उर्दूकी सबसे बड़ी लुग़त है "फरहंगे आसफिया"। इसमें लुग़त बनानेवालेने इकतीस हजारसे ज्यादा लफ़्ज़ोंको ["अलफ़ाज़"को नहीं] हिन्दी माना है। कुल पचपन हजार लफ्जोंमें करीब बत्तीस हजार जब हिन्दी हैं, चार-पाँच हजार संस्कृत हैं, तो बाकी बीस हजारमें अरबी, फारसी, तुरकी, गुजराती, बँगला, अंगरेजी, पुर्त्तगाली, ओलंदेजी वगैरा और विदेशी शब्द आये। उर्दू के यही शब्द न हैं ? फरहंगे आसफियाको ही अकारादि क्रमसे नागराक्षरोंमें छपवा दीजिये। कौन कहेगा कि यह हिन्दी शब्दसागरका एक छोटा संस्करण नहीं है ? और हिन्दीके शब्द क्या हैं ? हिन्दी शब्द-सागरमें एक लाख शब्द हैं। इनमें पचपन हजार तो वेही शब्द हैं जो फरहंगे आसफियामें आये हैं। बाकी संस्कृतके, और अंग्रेजी आदि अन्य विदेशी भाषाओंके और हिन्दी साहित्यमें तद्भव तत्सम आदि पैंतालिस हजार शब्द हैं। "फरहंगे-आसफ़िया" इस शब्द-सागरमें डूब गया है। यदि इस शब्दसागरको ही अबजदी क्रममें उर्दू लिपिमें छपवा दीजिये तो कौन कह सकेगा कि यह फरहंगे आसफियाका एक बड़ा संस्करण नहीं है?* इस तरह उर्दू के जितने शब्द हैं वह तो हिन्दीमें ही शामिल हैं। फिर शब्द-भांडारके हिसाबसे हिन्दी-उर्दू दो भाषाएँ नहीं रहीं, बल्कि उर्दू तो हिन्दीका एक अंग बन जाती है।

हिन्दी उर्दूका भेद लिखावटका सवाल है।

अब व्याकरणपर या शब्दोंके रूपपर विचार कीजिये ! क्या शब्दोंके रूप दो हैं ? नहीं। वह भी एकही हैं। सारा व्याकरण एक है। कुछ थोड़ासा अन्तर वहाँ आता है जहाँ साहित्यकी भाषा आती है। उर्दूवाले "लफ़ज़ों" न कहकर "अलफ़ाज़" कहते हैं। "मजमूनों" न कहकर "मज़ामीन" कहते हैं, "नवरतनकी चटनी" और "सादी खिचड़ी" न कहकर "चटनी नवरतन" "खिचड़ी सादी" कहते हैं, और फारसीका अव्यय और समासोंको काममें लाते हैं, जैसे "अज़दफ़तर डिप्टी इंस्पेक्टर मदारिस"। यह उनकी साहित्यिक भूल है। हिन्दीवाले भी कभी-कभी ऐसी एकाध साहित्यिक भूलें करते हैं, पर उर्दू साहित्यिकोंके मुकाबले अत्यन्त कम। इस थोड़ेसे भेदको छोड़कर हिन्दी-उर्दू एक ही भाषा या जुबान है जो दो अलग-अलग लिखावटोंमें लिखी जाती है। क्रियापद तो साहित्यिक भाषामें भी बिलकुल एक ही हैं। गुज़ारना कमाना आदि कुछ थोड़ेसे ही क्रियापद विदेशी धातुके हैं, सो भी शुद्ध होकर देशी रूपमें ही बरते जाते हैं। डाक्टर नजीर अहमदके मरातुल उरूसकी उर्दूको नागरीमें और राजा शिवप्रसादकी हिन्दीको उर्दू लिखावटमें लिख देनेसे, कोई यह न कह सकेगा कि डाक्टर नजीर अहमदका लेख हिन्दी नहीं है और राजाशिवप्रसादकी तहरीर उर्दू नहीं है। "हम हिन्दी लिखते हैं" इस वाक्यको हिन्दीवाला हिन्दी और उर्दूवाला उर्दू कहता है। फिर दो ज़बानें कैसे हुईं ? जबान असलमें एक ही है, लिखावटका भेद है। उर्दू केवल एक शैलीका नाम है, जिसमें फारसी अरबी और तुरकी शब्दोंकी बहुतायत होती है और कुछ विदेशी प्रत्ययोंका भी उन शब्दोंके साथ प्रयोग होता है। यही परोक्ष बात उर्दूकी विशेषता है, जो हिन्दीकी और सभी शैलियोंसे बिल्कुल भिन्न है। परन्तु इतनी सी बातसे भाषा ही भिन्न समझी जाय, यह भाषाविज्ञानके किसी नियमसे संगत नहीं है। गुजरातमें भी हिन्दू और पारसी दो शैलीकी गुजराती है, परन्तु गुजरातमें दो भाषाओंका प्रश्न कभी उठा ही नहीं। क्योंकि वहाँ लिखावट एक है।

देवनागरी लिखावटका खास फायदा

उर्दूवालोंके दिमागमें यह भारी भूल घर कर चुकी है कि हिन्दी एक जबान है जिसका मुकाबला उर्दूको करना पड़ता है। मुकाबला जबानका तो कहीं है ही नहीं। वह तो असलमें लिखावटका है। उर्दूकी लिखावट बिल्कुल

* हिन्दुस्तानी अकेडेमी यह काम कर डाले तो उसका जीवन सफल हो जाय। हिन्दीमें फरहंग और उर्दूमें शब्दसागर अनमोल रत्न होंगे। —रा० गौ०

विदेशी है, यह बात तो मानी हुई है। उसकी वर्णमाला और लिपिमें इतने दोष हैं कि मुस्तफ़ा कमालपाशाने तो अपनी हुकूमतभरसे उसे निकाल बाहर कर दिया है। उसमें ऐसे कोई गुण नहीं जिनके लिये वह भारतसे जबरदस्ती चिपटी रहे। अगर कहा जाय कि उस लिपिसे मुसलिम संस्कृतिका भारी सम्बन्ध है, तो यह निस्सन्देह सही है, परन्तु मुसलिम संस्कृतिका और लिपियों या लिखावटोंमें प्रचार हो तो मुसलिम भाइयोंकी निगाहसे तो और भी खूबीकी बात है। "इसलाम" नामका एक बड़ा ही उत्तम पत्र नागराक्षरोंमें निकलता है और बड़ी खूबीसे निकलता है। इस तरहके पत्रोंसे और नागरीमें मुसलिम साहित्यके निकलनेसे इसलामका अधिक लाभ है। इसलिये भाषाकी तरह लिखावट भी देशी ही हो तो मुसलिम संस्कृतिको बहुत भारी लाभ है, समय और श्रमकी बचत है, हिन्दू मुसलिम दो बड़े राष्ट्रोंका मेल है, दो बड़े सम्प्रदायोंके आपसी भेदों और झगड़ोंका खातमा है।

रोमन लिखावटमें इस निगाहसे कोई लाभ नहीं है। वैज्ञानिक दोष जो रोमन लिखावटमें हैं, वह तो हैं ही।

उर्दू और हिन्दीका नाता क्या है ?

जैसा हम दिखा चुके हैं, हिन्दीकी एक विशेष शैलीका ही नाम उर्दू है। उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है। "उर्दू" शब्द तुर्की है और उसका अर्थ है, "फौजका पड़ाव"। विदेशी सिपाहियों और देशी दूकानवालोंकी आपसकी बोलचालसे ही इस हिन्दी शैलीका जन्म हुआ है। फौजका पड़ाव भूगोलका अत्यन्त छोटा भाग है और आबादीका एक अत्यन्त नन्हा अंश। "हिन्दी" शब्द फारसी जुबानका शब्द है जिसका अर्थ है "हिन्द देशसे सम्बन्ध रखनेवाला।" फारसी बोलनेवाले हमारे देशको "हिन्द" कहते हैं, और हमारी भाषाको "हिन्दी", चाहे वह गुजराती या बँगला ही क्यों न हो। इस तरह "हिन्दी"का अर्थ अत्यधिक व्यापक है और तेरह करोड़की आबादी उसे बोलती है। इस तरह "हिन्दी" कुल है, "उर्दू" जुज़ है। और "हिन्दी" नाम खुद उन्हींका रखा हुआ है जिन्होंने उर्दू शैलीको जन्म दिया। हमारे देशमें इसे "भाखा" कहते थे, परन्तु हमने "हिन्दी" जैसे विदेशी शब्दको भी बड़ी खुशीसे कबूल कर लिया। अब वह शब्द हमें उसी तरह अज़ीज़ है जिस तरह विदेशी शब्द "हिन्द" और "हिन्दू"। हिन्दू पचीस करोड़ हैं। "हिन्दी" बोलनेवाले चौदह करोड़ और समझ सकनेवाले बाईस करोड़ हैं। "हिन्द" देश भी, यानी हिन्दी बोलनेवाला देश भी, संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रदेश, मध्य-भारत, अधिकांश पंजाब और राजस्थान है। अर्थात् आधेसे अधिक भौगोलिक भारत है। जितना विस्तार हिन्द, हिन्दू और हिन्दीका है, उतना तो इंग्लिस्तान, अंग्रेज और अंग्रेजीका भी नहीं है। उर्दू जैसे छोटे अंशका ऐसी बड़ी पूर्ण सत्तासे कोई झगड़ा नहीं है। हिन्दी तो उर्दूको सदासे अपनाती आयी और अपनाती रहेगी।

अकेडेमीकी ही पुस्तक "हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी" इस समस्यापर पूरा प्रकाश डालती है। आश्चर्यकी बात है कि दोनों सभापतियोंमेंसे एकने भी इन बातोंपर ध्यान न दिया। —रा० गौ०

सर अब्दुल कादिरके उद्गार

लंडनके रायल सोसायटी आफ़ आर्टसके समक्ष सर अब्दुलकादिरने सर जार्ज बर्डवुड स्मारक व्याख्यान दिया था। विषय था "भारतमें इसलामके सांस्कृतिक प्रभाव"। यह व्याख्यान उक्त सोसायटीके मुखपत्रके १० जनवरी सन् १९३६के अंकमें छपा था। इसपर ८ फरवरीके "नेचर"ने कुछ टिप्पणियाँ दी हैं जिनसे पता चलता है कि उर्दूके भाषा और साहित्यकी स्थितिपर भी वक्ताने बड़ा जोर दिया है। उनका कहना है कि "हिन्दुओं और मुसल्मानोंके सम्मिलित उद्योगोंसे ही उसका विकास हुआ है, जिसका फल यह हुआ है कि उर्दूका अनेक प्रकारका विशाल साहित्य तैयार हो गया है"। "कुछ लोगोंमें इस भाषाको विदेशी और बाहरसे लायी हुई समझनेकी जो प्रवृत्ति हो गयी है सर अब्दुल कहते हैं कि उसके वास्तविक उद्गमको न जाननेके कारण है। उनकी राय है कि मुसलिमोंके आक्रमणके कारण यह एक नयी देशी भाषा बन गयी है जो फारसी और हिन्दीका मिश्रण है, और काल पाकर यही भारतकी बहुत बड़ी जनतासे समादृत भाषा हो गयी है।"

सर अब्दुलके व्याख्यानमें जहाँ-जहाँ उर्दू शब्द आया है, वहाँ केवल हिन्दी शब्द रख दें तो उनकी कही बातोंसे हमें विरोधका कोई विशेष स्थल नहीं देख पड़ता। उर्दूको जो विदेशी समझता होगा, अवश्य ही कोई मूर्ख ही होगा। उर्दू तो हिन्दीका एक रूपान्तर मात्र है। रा० गौ०

दीक्षान्त भाषणोंका सार

दीक्षान्त भाषणोंमें शिक्षाके विशेषज्ञ अपनी महत्वकी रायें प्रकट करते हैं। गत दीक्षान्त भाषणोंमें आगरेके साहबजी महाराजकी राय महत्वपूर्ण है। आपके भाषणका निष्कर्ष यह है कि **शिक्षाकी प्रगति रोकनेसे बेकारी दूर न होगी, बल्कि शिक्षामें जिन-जिन बातोंकी कमी है उन्हें और जोडना चाहिये।** इस प्रकार साहब जी महाराज देशमें शिक्षामें औद्योगिक विभाग जोड़ देना मुख्य आवश्यकता समझते हैं। सर राधाकृष्णनकी रायमें युनिवर्सिटीकी शिक्षा केवल ज्ञानवृद्धिके लिये नहीं है, परन्तु वह काम करनेके लिये देशके युवकोंको आवाहन है, कि वह कायरता और शिथिलता दूर करके परिश्रममें लग जायँ।

महामाननीय सर तेज बहादुर सप्रू साहित्यिक शिक्षाके अतिरिक्त औद्योगिक और कारीगरी या दस्तकारीकी शिक्षापर ज्यादा जोर देते हैं। आप प्राइमरीसे लेकर अन्तिम शिक्षातक इस तरहका सुधार चाहते हैं कि साधारण जनताको सबसे अधिक लाभ उद्योग व्यवसाय और घरेलू धंधोंके सीखने और करनेमें हो, और जो विशेष शिक्षाके पात्र हों उनकी परिमित संख्या ही उस कक्षातक पहुँच सके। प्राइमरी, सेकंडरी और युनिवर्सिटी तीनों वर्गोंका पाठ्यक्रम परस्पर स्वतंत्र हो कि हर वर्गकी शिक्षा स्वतःपूर्ण समझी जाय। (कुछ अधिक विस्तार पाठक अन्यत्र पढ़ेंगे।) आप वर्त्तमान पद्धतिका आचूड़ान्त संशोधन करना श्रेयस्कर समझते हैं।

किसी संशोधनके विना भी डा० सर गोकुलचन्द नारंग अपने भाषणमें पंजाबके नवयुवकोंको अच्छी ही सलाह देते हैं, जब वह कहते हैं कि—

"जो छात्र लिखने पढ़नेमें होशियार हैं उन्हें पत्रकारकला अपनानी चाहिए। यदि वे लेख नहीं लिख सकते तो नगरोंमें जाकर उन्हें समाचार संग्रह कर सम्वाददाताओंका पेशा अपनाना चाहिए। कुछ छात्र ट्यूशनका काम सँभाल लें। कुछ शार्टहैंड, टाइप राइटिंग या बुक कीपिंग सीखें। विभिन्न कम्पनियों और विशेषतया बीमा कम्पनियोंके कन्वेसर (एजण्ट) बन जाएँ। समाचारपत्रोंके लिए विज्ञापन लानेका काम करें, इससे उन्हें अच्छा कमीशन मिल सकेगा। कुछ दलालीका काम करें तथा जमीदारों और किसानोंके फैसले निपटानेका काम संभालें। जिन्हें गाना बजाना आता है वे फिल्म कम्पनियोंमें एक्टिङ्गका काम देखें। जिनकी रुचि उद्योग धंधा अथवा शिल्पकी ओर है वे किसी कारखानेमें काम सीखें। जब वे काम सीख जायें तो उन्हें काम करनेवालोंमें अथवा सुपरिण्टेण्डेण्ट या असिस्टैण्ट फैक्टरी मैनेजरके रूपमें स्थायी नौकरी दी जाय। यदि उनके पास कुछ धन है तो वे छोटे पैमानेपर ही अपना कोई काम खोलें अथवा अपने पिताको उनके व्यापारमें सहायता दें। हल जोतनेसे भी उन्हें कतराना नहीं चाहिये। जिनको और कोई पेशा न मिले वे ग्रामोंसे अनपढ़ता भगानेपर ही कमर बाँध लें और ग्राम पुनारचना कार्यमें सहायता दें।

अन्तमें उन्होंने छात्रोंको सम्बोधित करते हुए कहा—

"आप चाहें किसी भी जीवनक्षेत्रमें घुसें आपको किसी न किसी सार्वजनिक आंदोलनके साथ होना चाहिये। किसीको भी सार्वजनिक आन्दोलनसे पृथक नहीं रहना चाहिये, क्योंकि इस जीवनमें किसीकी भी स्वतंत्र सत्ता नहीं। आप जितना ही शीघ्र इस तथ्यको समझेंगे उतना ही स्वयं आपके और आपके समाजके लिए हितकर बात होगी।"

अपने दीक्षान्त भाषणमें नवाब भोपाल कुछ महत्वके दोषोंपर जोर देते हैं, और वह वास्तवमें अपनी अँगुली मर्म्मस्थलपर रखते हैं जब वह कहते हैं कि—**"हमारे यहाँका शिक्षण अस्वाभाविक है, क्योंकि एक तो वह ऐसी भाषामें होता है जो न हमारी मातृभाषा है और न देशकी ही भाषा है। इसीका नतीजा यह होता है कि हम अपने यहाँके स्तूपोंके बजाय विलायतके क्रोमलेकोंको ज्यादा जानते हैं, अपने यहाँके कालिदास और गालिबके बजाय चासर और टेनसिनको ज्यादा जानते हैं और यहाँतक कि अपनी भाषाके बजाय हम दूसरी भाषा भी आसानीसे बोलते हैं। अपने राष्ट्रीय जीवनके आधारको दृढ़ करनेके लिये हमें इस पद्धतिको बदलनेकी जरूरत है।"** आगे आपने साम्प्रदायिकता और जाति-धर्मके संकीर्ण विचारोंको दूर करके सबपर प्रेम और सहिष्णुताका व्यवहार रखनेकी सलाह दी क्योंकि इसीसे दुःखी मनुष्यको संसारमें शांति प्राप्त हो सकती है और आपसके झगड़े दूर हो सकते हैं।

यूनिवर्सिटीके कर्त्तव्योंमें आपने बुद्धि-विकासके साथ-साथ उनका आचरण बनानेपर ज्यादा जोर दिया और कहा

कि प्रायः विद्यार्थी अच्छी बुद्धिवाले होते हुए भी आचरण ठीक न होनेके कारण समाजके लिये खतरनाक बन जाते हैं। अगर यूनिवर्सिटियाँ दुनियामें ऐसे नौजवान भेजें जो स्वच्छ दिमाग और अच्छा आचरण और जीवनका सही विचार रखते हों तो उन्होंने मनुष्यताकी सेवामें अपना भाग पूराकर दिया। आपने शिक्षणमें धर्मको उसका उचित स्थान दिये जानेकी भी अपील की और विद्यार्थियोंकी शारीरिक उन्नतिपर भी जोर दिया। इस तरह आपका भाषण अन्य भाषणोंसे कई बातोंमें भिन्न और व्यावहारिक था।

मरते हुए या मरे हुए उद्योगधंधोंको फिरसे जीता जागता बनानेके लिये तो मेरी रायमें प्रत्येक क्षेत्रमें उस उस प्रकारकी शिक्षा देनेवाले प्रैमरी स्कूल खुलने चाहिये जहाँ पढ़ना लिखना हिसाब हो अवश्य, परन्तु गौण हो, और विशेष शिक्षा उस कलाकी दी जाय जिसे जिलाना इष्ट हो। एक ही नगरमें यदि पचास प्रैमरी स्कूल हैं और दस धन्धे सिखलाये जाते हैं तो उचित केन्द्रोंपर प्रत्येक धंधेके स्कूल हों, और प्रत्येक धंधेके पाँच-पाँच स्कूल शहर भरमें बँट जायँ। इस विधिसे अधिक संख्यामें बालकोंका और जनताका लाभ होगा।

इन्हीं धंधोंमें अधिक कुशलता सिखानेके लिये लड़के पढ़ाये जानेके बदले कारखानोंमें नौकरी कर लें अथवा हो सके तो अपने घर ही वह रोजगार कर लें। जब बीस बरससे अधिक अवस्थाके हो जायँ तो इन युवकोंको उनके काममें पूरी दक्षताकी शिक्षाका विशेष बन्दोबस्त किया जाय।　　रा० गौ०

घरेलू धंधोंके लिए एक महत्वका प्रस्ताव

एक बिसातीकी दूकानपर नितके कामकी छोटी छोटी सैकड़ों चीजें रहती हैं जो विदेशोंसे बनकर आती हैं। वह सब पंचोंके सहारे घरेलू धंधोंकी तरह घर-घर बन सकती हैं। यह पंच बाहरसे न मँगाये जायँ। अपने ही यहाँके मेक्यानिकल इंजिनियरिंग कालिजोंमें ये पंच नये सिरेसे बनने चाहियें और देशमें उनका वितरण होना चाहिये कि वह धंधे यहाँ घर-घर फैलें और विदेशी मालका मुकाबला करें। इस तरह अनेक बेकारोंको काम मिल जायगा। बहुतसे पढ़े लिखे जो मारे-मारे फिरते हैं, इन धंधोंमें लग जा सकते हैं। बेकारी घटानेका यह एक समीचीन उपाय है।　　रा० गौ०

देव पुरस्कार विजेता प्रो० रामकुमार वर्म्मा

प्रयाग विश्वविद्यालयके प्रोफेसर रामकुमार वर्म्माको खड़ी बोलीका सर्वोत्कृष्ट काव्यग्रंथ लिखनेके लिये २०००) का देवपुरस्कार मिला है और "नूरजहां"के लेखक कविवर भक्तसिंहजीको द्वितीय होनेके कारण एक प्रमाणपत्र! हमने दोनों सज्जनोंकी स्फुट कविताएँ देखी हैं। नूरजहां"के अंश भी देखे हैं। पूरा ग्रंथ दोनोंमेंसे किसी सज्जनका देखनेका सौभाग्य नहीं हुआ है। अतः हम कोई तुलनात्मक सम्मति देनेमें असमर्थ हैं। फिर भी हम जानते हैं कि दोनों उत्कृष्ट कवि हैं। परीक्षक सहृदयोंने दोनोंके काव्य-रत्नोंके मूल्यकी परख की होगी और ऐसा ही उचित समझा होगा। फिर भी प्रथमको २०००) नकद और द्वितीयको केवल कागजका एक टुकड़ा! अन्तरं महदन्तरम्! यह कैसी रसिकता है!!

हम प्रोफेसर साहबको सहर्ष बधाई देते हैं। उनकी वास्तविक और पूर्ण बलवती योग्यताने विजय पायी है। आन्दोलनकी सेना नहीं जुटानी पड़ी। वह उत्तरोत्तर विजयी हों!

हम श्रीभक्तसिंहजीको भी सानन्द बधाई देते हैं। "नूरजहां"की कद्र उन पत्थरके टुकड़ोंसे नहीं है जिसके भीतर वह दफ़न होती। उसका नूर तो लोकमें सहज ही प्रकाश बिखेर रहा है।　　रा० गौ०

जगतका दाता आज भिक्षुक है

(श्रीमदनगोपाल सिंहल)

जगको खिलाया सदा जिसने स्व-शिष्य जान
　　आज भरनेको निज पेट भी न पाता है।
अखिल जगतका जो तन नित ढकता था
　　आज बिन वस्त्र शीतमें वो ठिठुराता है।
पूरब समयमें जो सदा ही कृपालु रहा
　　आज दीख पड़े बाम वह भी विधाता है;
केवल व्यापार मिट जानेसे स्वदेशका हा
　　जगतका दाता आज भिक्षुक कहाता है॥

साहित्य-विश्लेषण

कर्जके नये कानून—लेखक श्रीशीतलासहाय, बी० ए०। प्रकाशक, राष्ट्रीय परिज्ञानमंडल, शिवगढ़, रायबरेली। १९३५। प्रथमावृत्ति १५००। कीमत चार आने। डबलक्राउन १६ पेजी। पृष्ठ ८ + ६० = ६८। कागज कवर।

गतवर्ष किसानोंके हितके लिये हिन्दप्रान्तकी सरकारने कर्ज-सम्बन्धी पाँच नये कानून बनाकर ३० अपरैल, सन् १९३५से जारीकर दिये हैं। इन कानूनोंके अनुसार सूदकी दरमें, डिगरियों और फ़करेहनीके सम्बन्धमें, तथा नये और पुराने करज़ोंके बारेमें बहुत महत्वके परिवर्त्तन हुए हैं। हमारे देशके किसान कई अरब रुपयेके करजदार हैं। उनकी दशा साहूकारों और महाजनोंकी गुलामीसे भी कहीं गयी बीती है। अधिकांश करजदार तो सूद ही देते-देते अपना जीवन बिता देते हैं। अनेक नालिशें तो सूदकी पैशाचिकताके कारण लाखों रुपयेकी हुई हालां कि मूल ऋण शायद पचास रुपये भी न थे। किसान लोग करजके पीछे उजड़ गये। इन कानूनोंसे उनकी बहुत बचत होती है, अगर उन्हें दलाल और कचहरीके गिद्ध बहकाकर न नोच डालें। यह छोटी सी पोथी लिखकर हमारे मित्र श्रीशीतला सहायजीने सीधी सादी भाषामें उन्हीं पाँच कानूनोंके सिद्धान्त अच्छी तरह समझाये हैं और अदालती गिद्धोंसे दरिद्र किसानोंकी रक्षा करनेकी कोशिशकी है। सचमुच इन कानूनोंसे देशके दरिद्रोंका उद्धार हो जायगा। मेरी सलाह है कि प्रकाशक महोदय दरिद्र किसानोंको यह पोथी रिआयती कीमतपर बेचें, यद्यपि उन्होंने दाम वाजिब ही रखे हैं।

रा० गौ०

पाथेय—श्रीसियारामशरण गुप्तकी स्फुट रचनाओंका संग्रह। डबलक्राउन १६ पेजीके १४० पृष्ठ। साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी-द्वारा प्रकाशित। सुन्दर जिल्द बँधी। मूल्य १)। छपाई सफाई उत्तम।

इस काव्य रत्नसंग्रहके रचयिता श्रीसियारामशरणजी गुप्त हिन्दी भाषाके प्रसिद्ध प्रतिभाशाली महाकवि हैं। आपका विहारक्षेत्र गद्य और पद्य दोनों ही हैं। आपकी गद्यकी एक अति सुंदर पुस्तक अन्तिम-आकांक्षा अभी हाल हीमें प्रकाशित हुई है। उसकी आलोचना मैं इसी पत्रमें कर चुका हूँ। गुप्तजीकी भावात्मक तथा आध्यात्मिक कविताओंका पाथेय एक सुंदर संग्रह है। आपकी प्रकृति आध्यात्मिक है। अतः कविताओंमें भी उसकी स्पष्ट छाप है। आपका सौन्दर्य सात्विक, स्नेहपूर्ण और दार्शनिक है, जिसका दर्शन विषय-वासनासे विमुक्त प्रेमयोगी ही कर सकते हैं। आपकी कविताओंमें एक भी अर्थहीन शब्दकी झनकार नहीं है। जितने शब्द हैं उनका विशेष स्थान और विशेष प्रयोजन है। 'प्रेम युत शत-शत प्रणत-प्रणाम' शीर्षक कविता बहुत ही सुंदर है। जितनी ही बार पढ़ो उतनी ही बार गीताके श्लोकोंकी तरह नवीन भावका उद्रेक होता है। कहते हैं—

सभीसे है मेरी पहचान
सभीसे है सम्बन्ध महान्
विगत जन्मोंमें भी बहुवार
मिले हैं हम इसी प्रकार
× × ×
नहीं अब यद्यपि वह सब याद,
तदपि उसका आह्लाद-विषाद।
नहीं हो गया समस्त समाप्त,
अभी तक है उर उर में व्याप्त।

आगे कवि कहता है कि इसी कारण

× × × एक तनिक सी दृष्टि
कर गई अतुल पुलक की वृष्टि।

कविका अभिप्राय स्पष्ट है। विगत जन्मोंके संस्कारोंके निहित प्रभावोंसे ही तनिक सी दृष्टिसे अतुल पुलककी वृष्टिका होना इंगित हैं। इसका पूर्ण आनन्द बिना पूरी कविता पढ़े नहीं मिल सकता। संग्रहमें बिदा, यात्री, परदेशी, एक बूँद, नेत्रोन्मिलन, आकांक्षा, अक्षतदान और बिदाके समय नामक कविताएँ अपने भाव और ओजके कारण अद्वितीय हैं। "पूजन" तो इन सबसे अधिक उत्तुंगकाय है।

बाल-स्वभाव चित्रणमें तो आप सिद्धहस्त हैं। केवल "आकांक्षा" ही इसके लिये काफी प्रमाण है। कवितामें अबोध बालकके सरल विनोदके वर्णनका अपूर्व दृश्य है। सरिता तीरपर बालू खोदकर कूप बनाना, उस नवजलसे

रेतके ढेरको सींचकर भीत उठाना, धेनुगृह, रसोई घर, बैठक और पौर बनाना। पर शोक ! आकार पानेके पूर्व ही अचानक रेतका फिसलना, निकेतका धसककर गिर जाना, पर फिर भी शिशुका हँसकर सहास उसी आवासके बनानेमें पुनः लग जाना कितना आकर्षक और हृदयग्राही है। बूढ़े होनेपर भी कितने ही उत्साही शिशुकी तरह अपनी बिगड़ी बनानेमें इसी तरह हतोत्साह नहीं होते और फिर-फिर यत्न करते रहते हैं। यह अन्योक्ति कितनी स्वाभाविक है। संग्रह आदिसे अंततक धारणीय है। शब्दावली सरल है परन्तु भाव गम्भीर हैं। विज्ञानके पाठक इस काव्यग्रंथको अवश्य देखें। —व्रजबिहारीलाल गौड़

श्रीरामचरित-मानस—गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण सटीक। टीकाकार पं० रामनरेश त्रिपाठी। प्रकाशक, हिन्दी मन्दिर, प्रयाग। पौष १९९२। पहला संस्करण। मूल्य पाँच रुपये। डबलक्रौन आठपेजी आकारके १६+४+३०८+१२९२= १६२० पृष्ठ। पाँच हाफ़टोन चित्र। छपाई, कागज, और जिल्द सभी सुन्दर।

रामचरित-मानस इतना लोकप्रिय ग्रंथ है कि इसके मूलके तो अगणित संस्करण हो चुके हैं ही, टीकाएँ भी अनेक हो चुकी हैं, और होती जाती हैं। परन्तु प्रकाशकोंकी बेपरवाईसे न तो मूलका ही शुद्ध पाठ अधिक छपा है और न टीकाकार ही शुद्ध पाठपर विशेष ध्यान देते हैं। मानस-प्रेमियोंके बड़े सौभाग्यसे त्रिपाठीजीने बड़े परिश्रमसे शुद्ध मूलपाठके साथ-साथ शुद्ध अन्वयरूप उल्था और भूमिकारूपमें उसकी टीका छपवाकर हिन्दी जगत्‌का बड़ा उपकार किया है। टीका और उल्थाका पारिभाषिक अन्तर त्रिपाठीजी खूब जानते हैं, परन्तु पुरानी परिपाटीके अनुसार उन्होंने भी टीका ही कहा है। पाठका यथार्थ शोध न होनेसे, एवं अनेक शब्दोंका ठीक अर्थ न कर सकनेसे अबतककी टीकाएँ सन्तोषजनक नहीं हुई हैं। मानसपीयूष सर्वोत्तम है और सन्तोषदायक, परन्तु उसके ३२) देनेवाले कितने हैं ? कम दामोंकी शुद्ध पाठ सहित सावधानीसे की हुई टीका हमको अन्तमें यही देखनेमें आयी है। इसमें "भरनी" "पतंग" "किन" आदि अनेक शब्दोंके ठीक अर्थ देकर और ठीक अन्वय करके मूलका अर्थ बड़ी सावधानीसे किया गया है। मानस-प्रेमियोंको पाँच रुपयेमें त्रिपाठीजी अपने अपूर्व परिश्रमका फल देते हैं, इसके लिये मानस-प्रेमी उनके अनुगृहीत होंगे।

मुझे फिर भी संतोष नहीं है। कहीं-कहीं पाठके सम्बन्धमें और कहीं अर्थके सम्बन्धमें भी मुझे त्रुटि देख पड़ती है जिसे अगले संस्करणमें त्रिपाठीजी अवश्य सुधारेंगे। उदाहरणकी तरह "**तुलसी कहूँ न रामसे, साहब सील निधान**" इस दोहार्थमें श्रीग्रौज़की तरह त्रिपाठीजीने भी "कहूँ"का अर्थ "कहता हूँ" किया है। अवधीमें "कहूँ"का अर्थ "कहता हूँ" कदापि नहीं हो सकता। व्याकरणसे अशुद्ध है। अवधीमें "कहीं"के अर्थमें ही "कहूँ"का प्रयोग होता है। "**धिग धरम-ध्वज धंधक धोरी**" शुद्ध-पाठ नहीं है। श्रावणकुंजकी हाथकी लिखी पोथीमें "**धीग धरम धुज धंधक धोरी**" पाठ है, और "धींग"का अर्थ "धिक्कार" नहीं है। "धीग"का अर्थ है, "जबरदस्ती और खोटे कर्म्मोंसे पलकर हट्टा-कट्टा दुष्ट"। तुलसीदासने अपने ही बारे अन्यत्र विनयमें कहा है "अपनायो तुलसी सो धीग धमधूसरो"। "धरम-धुज"का सीधा अर्थ है "पाखंडी, दंभी"। पाठभेदसे अर्थभेद हो जाना स्वाभाविक ही है।

मेरी इस समीक्षासे कोई ऐसा न समझे कि इस प्रकारकी त्रुटियाँ त्रिपाठीजीसे पहलेकी टीकाओं वा उल्थोंमें नहीं है। उनमें तो अधिक हैं ही। त्रिपाठीजीने उनका परिहार और परिष्कार यथासंभव किया है। लोग मानसका पाठ सारी उम्र करते रहते हैं, फिर भी वह महाकाव्य उनके लिये सदा नवीन और रोचक बना रहता है और सदा नये भाव और नये अर्थ सूझते रहते हैं। त्रिपाठीजी स्वयं एक उत्कृष्ट कवि हैं, उनसे मानसका पाठ छूट नहीं सकता और स्वयं प्रकाशक होनेसे आगामी संस्करणोंमें बराबर परिष्कार होते रहनेकी आशा करना समीचीन ही है। ऐसा अच्छासंस्करण निकालनेके लिये हम अपने परममित्र कवि-श्रेष्ठ त्रिपाठीजीको बधाई देते हैं।

आपने गोस्वामीजीको कविकी दृष्टिसे देखा है। इसी दृष्टिसे अर्थ भी किया है। जो लोग केवल भक्तकी दृष्टिसे देखते हैं, वह भूल करते हैं। जो उन्हें केवल कवि समझता है, वह भी मेरी रायमें भारी भूल करता है। गोस्वामीजी भक्तकवि थे। भक्तिके कारण ही उनकी कविता इतनी

उत्कृष्ट थी। भक्ति तो स्वभावसे ही अपंडित और अकृत-विद्यको भी कवि बना देती है। तुलसीदासजी तो एक उद्भट विद्वान् भक्त थे। अतः उनको समझनेके लिये उन्हें पहले भक्त और पीछे कवि समझना ही समीचीन है। नानक, कबीर, दादू आदि अनेक भक्त विद्वान् न थे, परन्तु भक्तिके आवेशमें ही कवि हो गये। आपकी विस्तृत भूमिका विद्वत्तापूर्ण है और बड़े अनुसन्धानसे लिखी गयी है। मुझे उसके अनेक स्थलोंसे मतभेद है जिसपर विचार करनेके लिये यहाँ पर्य्याप्त स्थान नहीं है। फिर भी मैं विद्वज्जनोंसे आग्रह करूँगा कि उसे अवश्य पढ़ें और उसपर विचार करें। रा० गौ०

चांदका विदुषी अंक—चाँदका विदुषी अंक नवम्बरमें ही निकला। तबसे उसके कई अंक विदुषी सम्पादिका श्रीमहादेवी वर्म्मा, एम्० ए० के सम्पादकत्वमें निकल चुके हैं। उसका सम्पादन आपने "विदुषी" अंकसे ही आरंभ किया। हिन्दी साहित्यके इतिहासमें ऐसी उच्चकोटिकी उपयोगी सामग्री केवल विदुषियोंके ही सहयोगसे शायद पहली बार ही हिन्दी-संसारके सम्मुख उपस्थित हुई। अपने लघुजीवनकी संध्यामें यह दिन भी देखनेको मिला, इसे मैंने अपना परम सौभाग्य माना। हम तो स्त्री शिक्षामें इतने पिछड़े हुए थे कि स्त्रियोपयोगी सामयिक पत्रोंका आरंभ ही अभी कलकी बात है। विदुषी अंकके लिये हम सहृदया कवयित्री सम्पादिकाजीको हृदयसे बधाइयां देते हैं। आपके सम्पादनमें चांदकी कला उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। पहले भी वह कुछ मन्द न था, परन्तु आज तो वह तेजीसे चमक उठा है। मासिकपत्रोंमें उसने अपनी खास जगह बना ली है। अब तो आँखें चकोरकी तरह उसकी प्रतीक्षामें रहा करती हैं। परमात्मा करे वह सदा इसी तरह सोलहों कलासे प्रकाशित हुआ करे। रा० गौड़।

हंसका नया अवतार—सहयोगी हंस पहले अपने सरोवरके आसपास ही चक्कर लगाता था। अब सारे भारतके साहित्य-व्योम-मंडलमें मँडलाने लगा है। अब वह सभी सरोवरोंसे मोती चुगकर लाता है और भारतीय भारतीके शृङ्गारके लिये जैसी रत्नमाला प्रतिमास भेंट करता है, भारतीय मासिक साहित्यमें वह अद्वितीय होती है। हम अपने सहयोगीकी इस उन्नतिपर बधाई देते हैं। उसके द्वारा भारतीय समस्त साहित्योंका परस्पर विनिमय ही न होगा, प्रत्युत हमारी राष्ट्र भाषा वास्तविक अखिल भारतीय राष्ट्रीय साहित्यसे समृद्ध हो जायगी—रा० गौड़०

विविध प्रसंग

फैशनके फेरमें

त्याग निज चाल आज भारतके लाल सब
अगुन दिखावें शुभ कीरतीके ढेरमें
धन्य युवा वृन्द तुम्हें धन्य बल वीरता को
खाती है कमर बल बोझ तीन सेरमें
भक्ति और तप सब धूलमें मिले हैं आज
युवक गिरे हैं पर सभ्यताके झेरमें
हाट खोया बाट खोया घर और घाट खोया
सारा ठाट बाट खोया फैशनके फेरमें
—शान्तिस्वरूप वर्म्मा, मेरठ

रहा नहीं कुछ शेष दीख पड़ता है खाली।
भासे श्वेत शरीर रक्तकी रही न लाली॥
जीवन तरुकी सूख गई है डाली डाली।
उठी घटाएँ भाग्य व्योममें इसके काली॥
भारत गारत हो गया पलक मारती बेरमें।
जबसे आया आधुनिक इस फेशनके फेरमें॥
टोपी पगड़ी त्याग शीश पर हैट सजाया।
चन्दन छोड़ा पौडरसे मुख श्वेत बनाया॥
अंगा अचकन तजा कोट अच्छा मन भाया।
धोती को कर दूर पेन्टसे नेह बढ़ाया॥
गुरगाबी को छोड़कर पहना डासन पैरमें।
कालेसे गोरे बने यूँ फैशनके फेरमें॥
—मदनगोपाल सिंहल

"बड़ा" पद कैसे मिलता है ?

[ले०—श्रीयुत ईश्वरचंद्रजी पांडेय शास्त्री, काव्यतीर्थ, वैद्यशास्त्री, हिसार]

मूँग ! तू कैसे 'बड़ा' कहाया ?
"मत पूछो,"–"क्यों क्यों," ? यह पदवी बड़ी कठिन है पानी
लो सुनलो, यदि इच्छा है तो मेरी आत्म-कहानी
"बड़ा" पद जैसे मैंने पाया ॥

पहले था मैं पुरुष, नाम मेरा जो भी गहते थे,
बालकसे लेकर बूढ़े तक मूँग मूँग कहते थे,
सुनो फिर आगे पाँव बढ़ाया ॥

अब क्या था चक्कीमें भी मैं खुदको लगा पिसाने,
टुकड़े टुकड़े हुआ पुरुषसे नारी लगा कहाने,
मूँगकी दाल नाम कहलाया ।

इतने पर भी इष्ट-सिद्धिका मुख न दिया दिखलाई,
पड़ा रहा घंटों पानीमें बक्कल भी उड़वाई,
न जाता आगे हाल सुनाया ।

सिल बट्टों पर लगा रगड़वाने अपने अङ्गोंको,
एक हो गया, हुई हटी, पहचान प्रेम रङ्गोंको,
हुई संगठित हमारी काया ।

पड़े कढ़ाईमें जाकर फिर लगे देह बलवाने,
तप्त तैलमें अपने को, हे सखे ! लगे तलवाने,
न मनको तब भी जरा डुलाया ।

इतने कष्टोंको सहकर मैं लगा प्रतिष्ठा पाने,
प्राप्त किये प्यारे दो अक्षर "बड़ा" प्रेम रस-साने,
सैंतमें नहीं "बड़ा" पद पाया ।

हमारी मति बौरायी है ।

[ले०—श्रीरामचंद्रजी वर्मा, अजमेर]

मन बसी विदेशी चीज, हमारी मति बौरायी है ॥टेक॥
देख देख औरोंको अपनी, अकल गँवायी है ।
देशीको हम त्याग त्याग, धन हान करायी है ॥मन०॥

एक करोड़ बाईस लाखकी, चूड़ी आयी है ।
परदेसिनको दे सुहाग या खुशी मनायी है ॥मन०॥

एक सालमें तीस लाखकी, सिगरेट आयी है ।
पी पी कर भारतकी हमने, धूल उड़ायी है ॥मन०॥

लाख छयासठ जूते पर गये, लेस मँगायी है ।
इन दामों पहनके उनको खाक चटायी है ॥मन०॥

घोड़ा गाड़ी त्याग दई अब, मोटर आयी है ।
फूँक फूँक पेटरोल धूल, दुरगंध उड़ायी है ॥मन०॥

फिजूल-खरची निज सम्पतिकी, हमें सुहाई है ।
अन्न विना मरे नित्य नित्य वह खेतिहर भाई है ॥मन०॥

पाकरके भी ज्ञान, मान, धन, अकल गँवायी है ।
करके एम० ए० पास हमें बस क्लर्की भाई है ॥मन०॥

शिल्प वणिजसे प्रेम छोड़कर, सरविस पायी है ।
देसी गहना रहा नहीं अब, ली नकटाई है ॥मन०॥

वे और हम

वे तो खाने हेतु दाने दाने को तरसें हाय !
कलप कलप योंही भूखों मर जाते हैं ।

रसनाके दास हम सैंकड़ों पुकारके ही
व्यञ्जन-मधुर खाते-खाते न अघाते हैं ॥

फटी सी लगोटी एक चीथड़ोंकी बांधें हुए
शीत कालमें वे नंगी देह ठिठराते हैं ।

और हम एक ही दिवसमें अनेक बार
विविध बसन सेती देह को सजाते हैं ॥

हमीसे दलित, तोभी रोते-धोते कड़ा श्रम
करके हमारे हेत जीवन बिताते हैं ।

राग रागिनियाँ हम स्वरमें अलापते हैं
मधुर मधुर वीणा बाँसुरी बजाते हैं ॥

सनमुख ही कठोर चक्की अत्याचारोंकीमें
दीन हीन दुर्बल वे योंही पीसे जाते हैं ।

भाइयोंकी देखते हैं दशा हम निठुर हो
आँसू न गिराते पै मनुष्य कहलाते हैं ॥

—मदनगोपालसिंहल

अपनी और समाजकी रक्षा

सम्पत्ति रक्षाके तेरह नुसखे

१. मुकदमेबाजीसे बचो। इसमें जो जीतता है वह भी खोता है, हारनेवालेने तो खोया ही है। मेल करके वह धन बाँट खाओ जो अदालतबाजीमें खोओगे। अपने भाईको कुछ अपना त्याग करके राजी कर लो। सचाई और ईमानसे चलो, तो हानि नहीं होगी।

२. नशाखोरीसे बचो। इसमें पैसे जाते हैं, दिमाग बिगड़ता है, आयु घटती है, दरिद्रता बढ़ती है। नशेके बदले कुछ देरतक जबरदस्ती हँसो खेलो और दिनभरका कुफुत मिटाओ।

३. मोटा खाओ, मोटा पहनो। खाना कपड़ा आप उपजाओ। भरसक खाने पहिरनेमें भी किसीके मुहताज न हो। दूसरेका उपजाया खाना पहिरना भी मुहताजी है।

४. मिलनेपर भी भरपेट न खाओ। आठ घंटे कड़ी मेहनत करो। आठ घंटे सोओ। बाकी आठ घंटे पूरी सफाई, खाने-पीने, खेल-कूद, भजन-प्रार्थना, शिक्षा-रक्षा सेवा करने, गाने-बजाने आदिमें लगाओ। इस तरह तनदुरुस्ती ठीक रहेगी। बीमारीमें पैसे बरबाद न होंगे।

५. बीमार होनेपर उपवास, पथ्य, मिट्टीका लेप, सेंक मालिश, धूप, जल और आस-पास मिलनेवाली सहज ओषधियोंसे ही भरसक इलाज करो।

६. तीज-त्योहार, मेले-तमाशे, संस्कार-उत्सव आदिपर कमसे कम खर्च करो। पास न हो तो ऋण लेकर तो कभी खर्च न करो।

७. बच्चोंको बेकार शिक्षा मत दो। अपना रोजगार पहले सिखाओ। भरसक आप शिक्षा दो। परन्तु उपयोगी शिक्षा देनेमें किफायत भी न करो।

८. बेकार कभी न रहो। काम कम हो तो आठ घंटे पूरे करनेको तकली या चरखा कातो। या अधिक जरूरी सार्वजनिक काम हो तो कर डालो। घड़ियोंको काममें लाओ, तो तुम्हारा जीवन अपने आप कामका हो जायगा।

९. आँखें खुली रखो। देखते रहो कोई वस्तु बेकार खराब न हो। कूड़ेमेंसे भी कामकी चीज चुन लो। ईंधन, खाद, मैला ढकनेकी मिट्टी, पशुओंका चारा आदि अकसर कूड़ेमें फेंके जाते हैं। इन्हें वृथा बरबाद न करो।

१०. हर छोटी चीज पर ध्यान रखो। मनुष्य ही तो बनाता है। बनानेकी कोशिश करो। कामको काम सिखाता है। खुद बनाओ।

११. दान देना हर आदमीका धर्म्म है। परन्तु देनेके पहले यह विचार करो कि पानेवाला उचित-पात्र है कि नहीं और हम उसकी सहायता कहाँ-तक कर सकते हैं। पात्रकी सहायता अवश्य करो। सम्पत्तिकी रक्षा इसीलिये की जाती है।

१२. दीन-दुखी-रोगी-दलितकी सेवा करना हर आदमीका धर्म्म है। नित्य खोजकर सेवा करो। अपने स्वस्थ शरीर और बलबुद्धिकी सम्पत्ति इसीलिये है।

१३. बलहीनोंकी रक्षा करना, सीखनेवालोंको शिक्षा देना हर बलवान और बुद्धिमानका कर्त्तव्य है। बलबुद्धिकी सम्पत्ति इसीलिये है। नित्य यह काम करते रहो।